7248

1. Title Oṁkāra Darśana Arthāta Jāgrata Prakāśa
2. Accession No. 5661
3. Folio No./Pages 470
4. Lines 28-30
5. Size 32 × 20Cm.
6. Substance Paper
7. Script Devanāgarī
8. Language Hindī
9. Period Not mentioned
10. Beginning "जाग्रत प्रकाश अनुभव श्रुति ओ३म् अनाम् नमो राम अपाखं [illegible] पूर्ण तत ॥"
11. End "केवल निश्चल [illegible] स्वरूप है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण में इस प्रकार का स्वरूप है ॥"
12. Colophon No
13. Illustrations No
14. Source Donated by Vijay Singh Jigyasu, Meerut city.
15. Subject Darśana

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

005661

Ram, Raghuvir Anam.

Jāgrat Prakāśa.

470 p.

Language -- Hindi, Hand Written.

Size.

(अम्रखं अम्बर गगन पूर्ण ------ प्रमाण
में इस प्रकार का स्वरूप है)

Donated ... Vijay Singh 'Jigyasu'
Meerut City.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ओ३म्

यह पुस्तक मेरे पूज्य पिता श्री रघुवीरसिंह जी
मीरांपुर जिले मुजफ्फर नगर निवासी की उस
समय की लिखी हुई है जब कि वह सन्यास आश्रम
में थे -

मैं इसको गुरुकुल विश्वविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी के संग्रहालय के भेंट करता हूं

विजयसिंह जिज्ञासु
मंत्री आर्य्य समाज
मेरठ शहर
२३-२-१९५४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

005661

# ओंकार दर्शन

अर्थात

# आगत प्रकाश

विचार

राम रघुवीर अनाम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अश्व - अद्रि - अहि - गज - द्विप - नाग - भुजङ्ग - नन्द - छिद्र - अङ्क - दिक
६ ६ ८ ८ ८ ८ ८ ९ ९ ९ १०

५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३
भव - रुद्र रवि - अर्क - सूर्य्य - विश्व - इन्द्र - तिथि - अष्टि नरव - जिन सिद्ध
११ ११ १२ १२ १२ १३ १४ १५ १६ २० २४ २४

६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४
तत्व - भ - दशन - चक्रं - अमर - ब्रह्म - आत्म - यज्ञ - पुरुषं वाकं वाक्
२५ २६ ३२ कालचक्रस्वरूप ३३ ब्रह्म आत्मा नारायण पुरुष वाक्में वाक्

७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१
चतुर्वाको - अहं - हों - हूं - ध्वनिं - प्राकं तत्वंग ॥
चार्वाक मैं मैंही हूं ताँता अनादि जीवईश्वर परोक्ष अपरोक्ष अनादिस्वरूप

८२
ततः
फिर

८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
अद्वितीय - निष्कलङ्क - नित्यं - शुद्धं - शाश्वतं - निर्लेपः - ध्रुवम
एकही निर्दोष सदैवही पवित्र एकरस किसीबंधनमेंनपड़ने वाला अचलकेन्द्र

९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
अक्षरम - अव्ययम - मयैव - आत्मीय - अधिपति - अजो - सारं शिरोमणी
अचल अविनाशी मैंही अपना स्वामी जन्मरहित सार मुख्य

## भावार्थ

अभ्र खं अम्बर गगन पूर्ण शुन्याकार ईश्वर दल अर्थात अर्धमात्रास्वरूप प्रणव इन्दु एक शीतल और कर अर्थात बल शक्ति और चन्द्र अर्थात एक मन रूप और कू भू भूमि धृति से विराटस्वरूप यथार्थ तम रूप स्फुरतिका अधिष्ठान और सर्व का समूह ज्ञात ज्ञान कारण सूक्ष्म ज्ञेय ज्ञाता अनुभव अहंकार आकार अश्वि दस्रयन चैतन्याकार प्रकाशरूप ज्ञान का स्थान गुण अग्नि लोचन द्वन्द्वाकार दुर्भिदा रूप अविद्याकी योनि तीन गुण तीन अग्नि तीन लोचन स्वरूप राम अर्थात तीन प्रकृति उत्पति रक्षा नाश करने वाला मन ब्रह्मा विष्णु महेश अब्धि कृत गो युग सागर वेद अर्थात ब्रह्मा बुद्धि का समुद्र विवेक का विचाररूप अंतः करण का अधिष्ठान इषु शर सायक बाण प्राण अर्थात दिक आकाश पंच कोश अन्नमयी प्राणमयी मनोमयी ज्ञानमयी विज्ञानमयी मरुत पवन पंच प्राण समान प्राण अपान व्यान उदान और छ रस छ अङ्ग छ ऋतु और सूर्य स्वरूप भूभृत वाजि शैल अश्व अद्रि वासुदेव अर्थात पंचमात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध और अहि गज द्विप नाग भुजङ्ग वरुण जल पंच महाभूत आकाश पवन अग्नि जल पृथिवी और कुबेर स्थूलाकार वीर्यरूप आकृति नन्द छिद्र अङ्क और हरण्यगर्भ विराट सर्व का समूह दिक दशरथ और भव रुद्र एकादश रुद्र का स्वरूप और रवि अर्क सूर्य्य संवत सर प्रमाण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ

ॐ श्री ॐ

# जाग्रत प्रकाश

## अनुभव श्रुतिः

ओ३म् अनाम नमो राम

अभ्र खं अम्बर गगन पूर्ण पूर्ण तत ॥ दल इन्दु कर चन्द्र कुम भूमि धृति स
अशिव दस्र यन गुण अग्नि लोचन ॥ राम अब्धि कृत गो युग सागर
वेद इषु शर सायक बाण ॥ प्राण रसाङ्क ऋतु भूभृत वाजि
शेल अश्व अद्रि अहि गज द्विप ॥ नाग भुजङ्ग नन्द छिद्र अङ्को दिव
भव रुद्र रवि अर्क सूर्य्य ॥ विश्व इन्द्र तिथि अष्टि नख
जिन सिद्ध तत्व भ दशन चक्रं ॥ अमर ब्रह्म आतं यजं पुरुषं
वाकं वाको चतुर्वाको हं ॥ हों हूं ध्वनिं प्राकं तत्वम

ततः

अद्वितीय निष्कलङ्कं नित्यं शुद्धं शाश्वतं निर्लेपः ध्रुवमक्षरमव्ययं

मयैव आत्मीयाधिपति अजो सारं शिरोमणी सन्नात्मा विश्वं सच्चिदानंदं

प्रज्ञानमानन्दब्रह्म हं ब्रह्मास्मि ॥

तत्वमसि सो ॐ हं ऽयमात्मा ब्रह्म ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१
अश्व - अद्रि - अहि - गज - द्विप - नाग - भुजङ्ग - नन्द - छिद्र - अङ्क - दिक
७ ७ ८ ८ ८ ८ ८ ९ ९ ९ १०

५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३
भव - रुद्र रवि अर्क सूर्य्य - विश्व - इन्द्र - तिथि - अष्टि नरव - जिन सिद्ध
११ ११ १२ १२ १२ १३ १४ १५ १६ २० २४ २४

६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४
तत्व - भ - दशन - चक्रं - अमर - ब्रह्म - आत्म - यज्ञ - पुरुषं वाकं वाक्
२५ २७ ३२ कालचक्रस्वरूप ३३ ब्रह्म आत्मा नारायण पुरुष वाक्में वाक्

७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१
चतुर्वाको - अहं - हों - हूं - ध्वनिं - प्राकं तत्वंग् ॥
चार्वाक मैं मैंही हूं ताँता अनादि जीवईश्वर परोक्ष अपरोक्ष अनादिस्वरूप

८२
ततः
फिर

८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९
अद्वितीय - निष्कलङ्क - नित्यं - शुद्धं - शाश्वतं - निर्लेपः - ध्रुवम
एकही निर्दोष सदैवही पवित्र एकरस किसीबंधनमैनपड़ेवाला अचलकेन्द्र

९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७
अक्षरम - अव्ययम - मयैव - आत्मीय - अधिपति - अजो - सारं शिरोमणी
अचल अविनाशी मैंही अपना स्वामी जन्मरहित सार मुख्य

# भावार्थ

अभ्र खं अम्बर गगन पूर्ण शुन्याकार ईश्वर दल अर्थात अर्धमात्रास्वरूप प्रणव इन्दु एक शीतल और कर अर्थात बल शक्ति और चन्द्र अर्थात एक मन रूप और कू भू भूमि धृति से विराटस्वरूप यथार्थ तम रूप स्फुरतिका अधिष्ठान और सर्व का समूह ज्ञात ज्ञान कारण सूक्ष्म ज्ञेय ज्ञाता अनुभव अहंकार आकार अश्विदस्रयन चैतन्याकार प्रकाशरूप ज्ञान का स्थान गुण अग्नि लोचन द्वन्द्वाकार दुर्भिदा रूप अविद्या की योनि तीन गुण तीन अग्नि तीन लोचन स्वरूप राम अर्थात तीन प्रकृति उत्पति रक्षा नाश करने वाला मन ब्रह्मा विष्णु महेश अब्धि कृत गो युग सागर वेद अर्थात ब्रह्मा बुद्धि का समुद्र विवेक का विचाररूप अंतः करण का अधिष्ठान इषु शर सायक बाण प्राण अर्थात दिक आकाश पंच कोश अन्नमयी प्राणमयी मनोमयी ज्ञानमयी विज्ञानमयी मरुत पवन पंच प्राण समान प्राण अपान व्यान उदान और छ रस छ अङ्ग छ ऋतु और सूर्यस्वरूप भूभृत वाजि शैल अश्व अद्रि वासुदेव अर्थात पंचमात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध और अहि गज द्विप नाग भुजङ्ग वरुण जल पंच महाभूत आकाश पवन अग्नि जल पृथिवी और कुबेर स्थूलाकार वीर्यरूप आकृति नन्द छिद्र अङ्क और हरण्यगर्भ विराट सर्व का समूह दिक दशरथ और भव रुद्र एकादश रुद्र का स्वरूप और रवि अर्क सूर्य्य संवत सर प्रमाण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

द्वादश मास और संबत्सर का अधिक मास विश्व और दशेन्द्रिय और चतुष्टयरूपी अन्तःकरण इन्द्र
और पक्ष और अयन की आकृति मूर्ति तिथि कृष्ण और शुक्ल रूप और षोडशकला रूप आपृ और
४ १६ तत्व का लिंग सूक्ष्म शरीर और पुरुष और प्रकृति का संयोक पुरुषोत्तम हर और अक्षरसहित
और नरव प्रजापति मूर्ति तीन काल और प्रकृतियों का विस्तार महाकाल दशइन्द्रिय पंच महाभूत
तीनगुण रूप जिन सिद्ध माया के चोबीस अंश अष्टधा प्रकृति का त्रगुणात्मरूप और तत्व
पंची तत्व प्रपंच का साक्षी और म अर्थात नक्षत्र कला शिशुमार चक्र अभिजत शून्य और चन्द्र
गति पथ चन्द्रमास चक्र और सूर्य्य गति अंश चक्र ज्ञान रूपस्वरूप अमर ब्रह्म आत्मानारायण
पुरुषके अन्तर गति है कि जो वाक्यों मे वाक् चार्वाक मैं ही हों हूं ध्वनिमें अनादि जीवईश्वर
आशय ये है कि मेरा कोइ भी वाक अथवा महावाक नही है मैं आप ही चार्वाक अन्देश्वरवादी हूं
और नित्य ही प्राप्त हों हूं " ध्वनि रूपसे सर्वथा प्रवेश कररहा हूं । हों हूं ध्वनि कि जो स्वास द्वारा आप
से आप होती है उसके अर्थ ही ये हैं कि मैं ही ईश्वर हूं प्रणव ॐ इसके अन्तर गति है किंतु स्वासाकी चाली
से प्रकट ॐ हूं ध्वनि भी प्रतीत होती है कि जो सोहं भी कहने में आती है मेरे चार्वाक सूक्ष्म स्वरूपमें मो
प्रथम जीव ईश्वर्य रूप अहंकार है कि जो माया कार्य है और अत्यन्त बलवान है इसी से मेरे तेरे का
बोध होता है यही आत्म ज्ञान का हेतु है और " प्रज्ञानम् आनन्द ब्रह्म " स्वरूप इसका है कि जिसमें
प्रज्ञान पद का जीव वाच है और ब्रह्म पद का ईश है लक्षणा लक्ष्य इस का ये है कि जो ब्रह्मात्म है
सो आनन्द गुण वाला नही किंतु आनंद रूप है और इसी अर्थ के जानने को आनंद पद है कि आत्मा से
अभिन्न ब्रह्म आनन्द रूप है यह इस स्वरूप वाक् का अर्थ है मेरा दुसरा जीव ईश्वर्य रूप बुद्धि
है ये भी माया कार्य है किंतु ये वह शक्ति है कि जिससे सत्यासत्य विवेचना स्थिर होती है
" अहं ब्रह्मास्मि " इस्का स्वरूप है कि जिसमें अहं पद का जीव वाच है और ब्रह्म पद का ईश
वाच्य है और दोनों पदों के लक्षणा लक्ष्य चेतन भाग में ये हैं कि मैं ब्रह्म हूं ये इस स्वरूप वाक्
का अर्थ है मेरा तीसरा जीव ईश्वर्य रूप मन है और यह भी माया कार्य है किंतु मन को सूक्ष्म
भाव से महत्तत्व कहते हैं आशय ये है कि सूक्ष्म कार्य अर्थात उस शक्ति को मन कहा जाता है कि जो
सतांयुक्त वा स्वच्छ प्रकृति संयुक्त चेतन का स्वभाव प्रकाश करे और उस तेज की सामर्थ से सुख
दुखादि का अनुभव करे क्योंकि मन ही संसृति कर्ता है और " तत्वमसि " स्वरूप इस्का है सो
जैसे तत पद का वाच ईश्वर और त्वं पद का वाच जीव है और माया और माया में आभास और माया
का अधिष्ठान जो चैतन्य है सो सर्व शक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म सहित ईश्वर है और यही एक तत्पद
का वाच है और व्यष्टि अविद्या अर्थात माया जो है उसमें जो आभास है उस्का अधिष्ठान चेतन
अल्प शक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म सहित जीव है और जीव ही त्वं पद का वाच है सो तत
और त्वं दोनों पदों की एकता का बोध तत्वमसि से होता है इस लिये आभास सहित
माया और माया कृत सर्व शक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म को बाध अर्थात ईश्वर और जीव के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरुप में जो चेतन भाग का लक्ष्य है उस्का बोध और उसकी एकता का बोध तत्वमसि से भाग त्याग लक्षण अनुकूल होता है कि जिसके अर्थ ये हैं कि जीव ब्रह्म में भेद नहीं है एक ही पदार्थ के दो नाम हैं और ये दो नाम चार प्रकार के मत भ्रम से हैं कि जिनमें प्रथम शुन्यवाद असत्य ख्याति भ्रम है दूसरा क्षणिक विज्ञानवाद आत्मख्याति भ्रम है तीसरा न्याय और वैशेषिकवाद अन्यथाख्याति भ्रम है चोथा सांख्य और प्रभाकरवाद अख्याति भ्रम है। इन्मे असत्यख्याति वह भ्रम है कि जिसमें असत पदार्थ को सतमाना हुवा है जैसे कि मनुष्य देह कि असत पदार्थ है - दूसरा आत्मख्याति वह भ्रम है कि जो बुद्धि द्वारा क्षण क्षण में उत्पन्न और नाश होता रहता है जैसे कि मनुष्य ब्रह्म नहीं है एक इसी प्रकार की अनिश्चय बात को केवल किसी आकार द्वारा ही असत्य आकार को सत्य प्रतीत कर लिया जाये - तीसरा अन्यथाख्याति उस भ्रम को कहा जाता है कि किसी चिन्न द्वारा साँचा भूत विदून प्रक्षा ही सत करके किसी स्थान में होना प्रतीत कर लिया जाये - चोथा अख्याति भ्रम वह कहलाता है कि जब किसी धोके में आकर अर्थात द्वन्द्वा में पड़कर सत को असत या असत को सत जान लिया जाये सो इन चारों भ्रम का खण्डन करते हुवे तत्वमसि का अर्थ यही है कि मैं ब्रह्म हूं। मेरा चोथा जीव ईश्वर्य रुप चित है कि जो चर चेतन वो शक्ति है कि जिसकी अनेक अवस्था हैं और यह भी माया कार्य है किंतु इस माया कार्य में "हों हूं" "ॐ हं" सोऽहं" की ध्वनि एक अद्भुत कार्य है कि जो विश्व में अर्थात विशेषता में सर्वत्र एक रस प्रवेश कर रहा है और इसी के अन्तर गत ॐ पद है कि जो अनंत शक्ति है और स्वरुप भी इसका इस कर के कि ब्रह्म ही माया और माया ही ब्रह्म है "अयं आत्मा ब्रह्म है" कि जिस स्वरुप में आत्मा पद का जीव वाच है और ब्रह्म पद का ईश्वर वाच्य है क्योंकि इससे शुद्ध और वाच ब्रह्म के लिये नहीं होसकता है अर्थात लक्ष्य अर्थ परोक्ष नहीं सो ब्रह्म स्वरुप के अर्थ जान लेने को अयं पद है कि जिसका सार ये है कि जो सब के अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म है वही मैं हूं और यही इस वाक्य स्वरुप का अर्थ है सो इन चतुष्ट माया कार्य करके मैं एको ब्रह्म चार्वाक् स्वरुप से "हों हूं" ॐ हं - सोऽहं - ध्वनि के अन्तर नित्य ही प्राकरुप से तत त्वं के अर्थ सहित गुप्त हो रहा हूं अभिप्राय ये है कि हों हूं ध्वनि अनुकूल मैं ही ब्रह्म हूं।

ततः मैं कैसा ब्रह्म हूं कि केवल ऐक ही निर्दोष सदैव ही पवित्र अर्थात शुद्ध एक रस किसी बंधन में न पड़ने वाला स्वयं मोक्ष अचल केन्द्र अक्षर अचल अविनाशी मैं ही अपना स्वामी जन्म रहित सार मुख्य प्रकट आत्मा विश्वरुप सत चित आनंद स्वरुप वेद हूं।

आशय ये है कि जो चेतन से भिन्न है वही अज्ञान और अज्ञान का कार्य है और अनात्म है और अनात्म पदार्थ सारे स्वप्न के समान मिथ्या होते हैं सो सर्वत्र एक ही आत्मा है कि जिस के अन्यत दोसरी वस्तु नहीं है आत्मा सत चित आनन्द स्वरुप है और ये संसार जो नाना रुप करके प्रतीत होता है अस्ति मास माया का विस्तार है केवल ॐ अक्षर ही अद्वितीय ब्रह्म है ॐ ही प्रकाश रुप है सर्व की रक्षा कर्ता है ऐसा ॐ अक्षर का अर्थ है -

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अक्षरम शब्द का अर्थ ही यह है कि मैं ॐ अक्षर ब्रह्म अभेद वेद वाणी मैं पद अर्थ भेद रूप ब्रह्म का वाचक हूं हूं यदि वाच्य वाचक का आपसमें अत्यंत भेद होवे तो अद्वितीय गति मैं भेद उत्पन्न हो मैं ॐ ब्रह्म पद बाणी में हूं किंतु ॐ का अर्थ ब्रह्म बाणी में नहीं हूं केवल अपनी महिमा में हूं

ब्रह्म का अपार रूप ॐ कार है सो मुख्य मात्रा साकार ॐ केवल ब्रह्म का रूप सिद्ध है और इस रूप के अन्यत्र जो वस्तु है वही माया का विस्तार है। और कारण ॐ ही शरीर का एक मात्र आधार
10 सिद्ध है ॐ वह शब्द नहीं है जो रूपान्तर होता रहता है ये स्फुरती बाणी प्रणव है और प्रणव ही एक अद्वितीय अनाहत शब्द है कि आपसे आप है जैसे कि "अम्ब्रस्व अम्बर गगन पूर्ण पूर्ण तन" से स्वयम आकाश परमाणु का एक ही नाम एक ही संघर्षण है कि जो अलोकिक प्रभा रूप से गतिसिद्ध है और ॐ स्वयं इस रीति से निश्चय सिद्ध है कि स्वर ही ॐ रूप है (अ) किस प्रकार ॐ रूप है। यह प्राणी मात्र के शब्द से तथा स्वास की गति से हौं हूं अनुभव होता है कि जिस का पदार्थ अयं बन्तो हैं और अयं के अर्थ सब के अपरोक्ष आत्मा ब्रह्म मैं ही ॐ हूं ऐसे बनते हैं -

सो केवल ॐ ही सत है सत है सो ओम तत् सत् के अन्य सर्व माया का विस्तार अविद्या का कार्य है इस लिये सब अस्ति अर्थात मिथ्या है और यह संसार जो उपजा हुवा प्रतीत होता है ब्रह्म अज्ञान अर्थात ज्ञान न होने से प्रतीत होता है और आत्मा ब्रह्म अर्थात अयं वा ॐ मैं ये इसी प्रकार से नहीं है कि जैसे स्वप्न विन क्रम के होता है त्यूं ही मिथ्या भ्रम से जगत मासता है "एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म नेह नास्ति किञ्चन" श्रुति प्रमाण अनुकूल - एक मैंही ब्रह्म हूं मेरे अन्यत कोई दूसरी वस्तु किसी भी स्थान पर नाम मात्र को नहीं है सिद्ध है किंतु जगत तो स्वयं मासता और प्रतीत होता है और नाना नाम रूप रखता है ये क्या है अविद्या कार्य और मिथ्या है - सो जब जगत मिथ्या है तो मनुष्य को यह शङ्का कल्पना रूप उत्पन्न होती है कि जब ॐ ही सत और परिपूर्ण एक ब्रह्म है तो अद्वैत में अर्थात एक ब्रह्म में यह जगत कैसे उत्पन्न हुवा है। इस भ्रम का उत्तर केवल यही है कि।

निराकारात्समु त्पन्नं साकारं सकलं जगत ॥ तत्साकारं निराकारं ज्ञाने भवति तत्क्षणात ॥ अर्थ- निराकार नारायण अर्थात अयं से संपूर्ण जगत जो साकार है उत्पन्न हुवा है सो ये साकार जगत ब्रह्म ज्ञान होने से तत्काल ही क्षण मात्र में कि जब ज्ञान हो साकार से निराकार होजाता है प्रमाण — शुद्ध मैवात्मा - करके ये है कि आत्मा निश्चय कर के शुद्ध है इस लिये शुद्ध ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति नहीं होती है ब्रह्म शुद्ध अजन्य अर्थात जन्म रहित और असंग है अक्रिय है और निर्विकार है इस लिये जगत अविद्या रूप माया कार्य है कि जो अनादि सांत अर्थात एक अंत होने वाला मात्र है और ज्ञान अर्थात वेद में इसका अंत व अधिष्ठान है जगत जो माया कार्य है ये माया कार्य सत तथा असत दोनों से विलक्षण है सो माया और माया के कार्य मोह अज्ञान करके प्रतीत होते हैं जैसे कहा जाये कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूं स्वप्न में नाना पदार्थ देखता हूं ये सब जागृत स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था कि जिसमें ऐसा भास हो कि मैं सुख में हूं इस प्रकार का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मान सब अज्ञान का कार्य है सो अज्ञान और माया एक ही वस्तु के दो नाम हैं तत सत तो अयं शब्द अर्थात ॐ कार रूप चेतन ही है माया और उसके कार्य सर्व मिथ्या हैं चेतन सर्व साक्षी तो एक ही ब्रह्म है ब्रह्म के अन्यत सर्व वस्तुओं का नाश है। तथा जगत जो स्वयं प्रतीत होता है इस्का प्रतीत होना ही अविद्या तथा अज्ञान का सत करके प्रतीत होना है यही कारण है कि अद्वय ब्रह्म में द्वैत का भान होता है और ब्रह्म अज्ञान से उत्पन्न होने वाला जगत पृथक पृथक जीव जन्तु के देखने से ब्रह्म अज्ञान से सब सत्य और द्वैत भाव वाला जान्ने में आता है -

हे नृपइन्द्र शङ्का करने वाले मनु जगत में इसप्रकार के परिवर्तन पाये हुवे द्वैत भाव का नष्ट करने वाला मूल ग्रन्थ पूर्ण वेद है सो ॐ कार वेद है यही एक अद्वितीय ब्रह्म ज्ञान है कि जिस से ब्रह्म अज्ञान सांत हो जाता है इसी मूल गृन्थ को निष्कलङ्क वेद अक्षर शब्द अशब्द वेद कहा जाता है और यही वेद निर्वेद भेद निर्णय भी कहने में आता है कि जो अक्षर और शब्द होने पर भी शब्द रहित अर्थात अशब्द वेद है कि जो शब्द द्वारा कथन में नहीं आता है और न किसी प्रकार से वेद का कोई रूप प्रतीत होता है कारण कि शब्द भी माया कार्य है कि जो विकार वाला है किंतु वेद जितना कि शब्द में आता है वह प्राक कहा जाता है इसी को अव्यय अर्थात अविनाशी भी कहते हैं कारण कि प्राक के अर्थ ही ये हैं कि उसका कोई आदि अंत न हो नित्य हो सनातन हो अर्थात प्राक वह है कि जो मन बुद्धि अहंकार चित और जगत की सर्व वस्तुओं का आधार व अधिष्ठान हो प्रकट प्रकाशमान हो अखण्ड रूप अद्भुत चित्र विचित्र हो शिरो मणी और निर्लेपः हो सगुण हो निर्गुण हो सर्वत्र हो उपादान कारण तथा साधारण कारण हो स्वयं ज्योति का एक ही अधिष्ठान हो माया का सिद्ध केन्द्र हो भिन्न भिन्न नाम रूप वाला प्रतीत होने पर भी एक ही सार वस्तु हो सो जो ध्रुव और सार पदार्थ है वही आत्मा वही ब्रह्म और वही प्राक है और वही वेद है और वेद के शब्द क्रम अनुकूल वेद शब्द के यही अर्थ हैं कि जो वर्णन हुए किंतु वेद के दूसरे अर्थ जानने के हैं और समझने के हैं सो किसी एक वस्तु एक पदार्थ एक बात को पूर्ण रीति से पूर्णविधि अपूर्वविधि से समझ लेना ही वेद है -

हे नृपति मनूइन्द्र मनुष्य जो एक मूत्र के कीड़े से उत्पन्न होता है और यह मूत्र का कीड़ा उस नाज और घास पातादि से उत्पन्न होता है कि जो मनुष्य खाता है सो इस प्रकार एक घासादि से उत्पन्न होने वाले कीडे से कि जो मूत्र द्वारा पिता की पींत से माता के उदर में जाकर उस भिष्टा से अपना नवीन से नवीन शरीर रचता है कि जो माता के खाने में आती है और इसप्रकार शरीर रचकर जब माता के पेट से फिर मूत्र द्वारा ही बाहर निकलता है और उन शब्दों को सीखकर कि जो उसकी माता आदि की भाषा होती है वह होश पकड़ता है और अपने छओं दिशा अज्ञान से माया रूपी जगत को देखता है और जगत को देखता हुवा अज्ञान रूपी माया कार्यों में लिप्त हो माता पिता पुत्र पुत्री धन कुल त्रादि बन्धु बान्धव तथा अन्यान्य आत्मीय स्वजनों को देखता है तो विषया मोदू में मतिः भ्रम हो निश्चय से ऐसा विश्वास कर लेता है कि मैं अधम जीव हूं और कभी इस प्रकार से ये सोचना नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं कर्ता कि मनुष्य किसे कहते हैं मनुष्य किस प्रकार की क्या वस्तु है क्या पदार्थ है वही कि जो ऊपर वर्ण हुई अर्थात नाजसे उत्पन्न हो कर मूत्र द्वारा निकलने वाला कीड़ा कि जो आप ही अपना शरीर व शरीर अङ्ग की रचना करता है सो ये कीड़ा जिस प्रकार से असार संसार के असार स्नेह ममता का मतवारी तथा विस्मृत हो कर अपने आपको भूलता है वही अप्रमाण भूल माया अर्थात ब्रह्म अज्ञान है

जगत और जगत के सर्व पदार्थ कि जो संसार में नाम रूप वाले आकारों में देखे जाते हैं असार ही पदार्थ हैं कि जो यथार्थ में नहीं हैं और जिस प्रकार ये पदार्थ नहीं हैं इसी प्रकार इसमें सुख दुःख भी नहीं हैं। कारण कि प्रथम तो मनुष्य जो अपने को मनुष्य मानता है उसका मनुष्य रूप ही एक उपद्रव रूप है फिर सुख कैसा और दुःख कैसा सो जब संसार में सुख दुख दोनों नहीं और मनुष्य एक उपाधी रूप व्याधा का नाम है तो फिर ये शंका कि जब देह उपाधी रूप है तो जगत और जगत के विषय रोग शोक परिताप वंध बन्धन शङ्का भय सन्देह मोह और व्यामोह की उत्पति कैसे हुई इन सब बातों को और इनके सार तत को समझ लेने के लिये शंका और भ्रम से मनुष्य को बाहर निकालने वाला वेद है और वेद वही प्राक् ज्ञान है वही श्रुति है कि जिसको जान कर फिर कुछ जानना नहीं रहता और जिसको देख लेने से फिर और कुछ देखना नहीं होता और जिसे चिन्तन कर लेने से फिर और कुछ भी चिन्तन करना नहीं रहता और जिसे पालेने पर फिर किसी अन्य पदार्थ के पाने व प्राप्ति की इच्छा अपेक्षा नहीं होती न और कोइ किसी प्रकार का प्रयोजन ही रहता है कारण कि भ्रमत मनुष्य मात्र को वेद ही सर्व जगत की प्रभृति अर्थात दुःखों की सृष्टि पर विचार द्वारा त्राकर सर्व प्रकार की शक्तियों का सिद्ध करनेवाला एक रत्न और एक ऐसा पदार्थ है कि जिससे उतम अधिकता के साथ सत निश्चय की दृढ़ता करने वाला कोई अन्य सार अंश प्रकट और गुप्त मे नहीं हो सकता यदि कोई है तो केवल वेद ही तत सत ज्ञान के आदि अंत का अधिष्ठान है वेद ही तत्व विज्ञान नियम का अटल सिद्धान्त है कि जो जनक रूप संसार को याज्ञवल्क रूप से ऐसो ब्रह्म का सार अद्वैत और द्वैत के सम्वाद को रुह जीव अनासर प्रकृति आत्मा परमात्मा नेचर गौड खुदा ईश्वर साँटी अल्लाह आदि के नाम और उनके रूप भेद के सार को इस प्रकार समझाता है कि जिस प्रकार ये वेद सिद्धान्त है अर्थात ज्ञान का अन्त और अन्त का ज्ञान है

## अन्त ज्ञान वेदसिद्धान्त । अन्त ज्ञान

नाना विद्या नाना देवत अङ्ग ब्रह्म की अर्चन मान ॥ सिद्ध विद्या एक ब्रह्म अङ्ग की अर्चन विधि है रूपो ज्ञान
नारद ऋषि विष्णु की भक्ति ब्रह्म यज्ञ है वेदा ज्ञान ॥ तप उपासना मन्त्र ध्यान एक ध्रुव धर्म है समता जान
बाल्मीक है ज्ञान अवस्था मर्यादा पुरुषोतम राम ॥ रामायण है देह हमारी प्रेम भक्त परमार्थ धाम ॥
सनकादिक शिव ॐ रूप में अर्चन है आनन्दी ज्ञान ॥ अत्रि ज्ञान दृष्टि कहिये निश्चय कर है आत्म ज्ञान ॥
काक भुषण्ड एक नाम मात्र है दिर्घायु अभिमाने जान ॥ परम हंस शुकदेव मुनि विज्ञान अवस्था है निर्वाण ॥
नहीं जगत और नहीं शरीर है भासत है एक ब्रह्माकार ॥ नमस्कार जड़ भरत रूप को नमस्कार है बारम बार ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बाम देव है नाम हमारा हम सर्वज्ञ हैं सर्व आधार ॥ नमस्कार नहीं बने आपको नमस्कार हो किस प्रकार ॥
चैतन दृष्टा चेतन दृष्टि चेतन रूप स्वरूप विचार ॥ दृश्य त्रेय अविनाशी आत्मा सर्व व्यापी है एक आकार
मृग तृष्णा जल के सम है माया रूपी जगत बना ॥ भेद अभेद नहीं कोई जग में करे कौन किसकी बन्दना
अष्टा बक्र अवधूत रूप एक स्वयं मुक्त है चेतन जान ॥ सब ध्यानों को छोड़ प्राणी अपने रूप का कर ये ज्ञान ॥
जनक रूप निश्चय कर अपना जनक एक आत्मा जान ॥ हृदय में भर अग्नि ज्ञान को अपना रूप अगोचर मान
केवल एक वसिष्ठ है चेतन निर्णय रूप आत्मा सार ॥ परि पूर्ण है श्रेष्ठ आत्मा जगत विश्व में सर्वाधार
विधि रवि चन्द्र वरुण यम शक्ति सिद्ध ॐ हम विष्णु ॥ अवधि पुरी काशी और मथुरा द्वारका राम कृष्ण ॥
ॐ कार हम रूप आप हैं ॐ कार सद्गुरु स्वामी ॥ ॐ कार हम सार तन हैं गजानंद अन्तर्यामी ॥
ॐ कार हम सृष्टि ॐ हम ॐ रूप सर्व रोग विनाशक ॥ ॐ कार तन धर्म हमी हम ॐ कार मन नेत्र प्रकाशक
ॐ कार हम सकल पदार्थ ॐ कार गुरु नित्य सुखदायक ॥ ॐ कार हम भेद अनुपा ॐ कार हम शिष्य सहायक
ॐ कार ध्रुव अचल अनादि ॐ कार गुरु ब्रह्म स्वरूपा ॥ ॐ कार रूपो पशु पक्षी ॐ कार शिव रूप अनुपा ॥
ॐ कार हम यज्ञ अखण्डा ॐ कार हम दीन दयालु ॥ ॐ कार व्यापी सर्व व्यापी ॐ कार चिदघण कृपालु ॥
प्रज्ञानं आनंद ब्रह्म हम ब्रह्म ज्ञान कीना विस्तारा ॥ ग्रहण त्याग सुर व सङ्कल्प सम कर तत्वमसि महावाक्य विचारा ॥
शेष महेश और ईश हमही हम ॐ रूप से आप विधाता ॥ ॐ अनंत अनादि अगम हम अहं ब्रह्म अस्मि के ज्ञाता ॥
सोऽहं अर्थ सो ॐ हमही हम हंस मंत्र बलहारी ॐ ॥ अयं आत्मा ब्रह्म रूप हम समता के हितकारी ॐ
अविनाशी आत्म अचल कहे सुने और वर्णे कौन ॥ ॐ कार है प्रतिकूल जग अव्यय प्रणव ॐ है मौन ॥
महिमा अगम अपार अनन्त है ॐ अनंत अनंता ॐ ॥ सर्व साक्षी वेद अनंता वेद सकल सिद्धान्त है ॐ ॥
सृष्टि चराचर इष्ट वसिष्ठा पार पराशर ज्ञान विचारा ॥ शक्ति अनाम एक नाम हमारा ॐ कार विष्कुलि विस्तारा ॥

इस प्रकार जैसा कि सिद्धान्त में वर्णन हुवा ब्रह्म रूप और ब्रह्म वत जो ॐ है और वेद है और जिसमें जगत प्रतिकूल है ऐसा ज्ञानी विवेकी आत्मीय सत्य स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञानस्वरूप ब्रह्म मैं ही अद्वितीय निष्कलङ्क आत्मा हूं और मैं कैसा आत्मा हूं कि ।

आसं प्रथमेवाहं वर्तामि भविष्यामि ऽस्मिन्मतो विश्वं ऽस्ति किञ्चन ॥

श्रुति अनुकूल मैं ही प्रथम में था मैं ही वर्तमान में भी हूं और मैं ही भविष्यत में भी रहूंगा कारण कि मैं ही तो अविनाशी हूं सो मेरे विश्व अर्थात मेरी सृष्टि में मुझ से भिन्न कोई वस्तु नहीं है –

हे मनु इन्द्र ! नाम मात्र के मनुष्य सकल सृष्टि संसृति को रचना करने वाले सरवा वासुदेव वसिष्ठ विश्वामित्र अगस्त रोहनी देवकी पराशर कौशल कश्यप साँडल गर्ग गारगी राजेन्द्र मुंद्र हंस गरुड़ पवन वीर महावीर हनुमान स्वर्गवनी अद्वैकान्त सिंह बृहस्पति गौतम जैमिनी कणाड पतञ्जली कपिल व्यास कुवेर वरुण मरुत रुद्र इन्द्र जान ले किन्तु नाम मात्र का ही मनुष्य नहीं है मनुष्य तो एक असत आकृति का नाम है किन्तु इस असत्य आकृति में तू जो अपने को मनुष्य कह रहा है इस असत्य आकृति भेष को छोड़ अपने सच्चिदानंद स्वरूप को देख कि इस एक मनुष्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकृति में तूही भारद्वाज जग गोत्र अद्भुत गौड वंशा तूही जनक तूही याज्ञवल्क तूही श्री तूही शक्ति तूही नारद तूही सारद तूही ध्रुव और बाल्मीक सनकादिक अत्रि शुकदेव जड़ भरत कृष्ण और वामदेव दत्तात्रेय दुर्वासा अष्टावक्र अर्जुन कौरव पाण्डव धृतराष्ट्र दुर्योधन ब्रह्मा विष्णु शिव मैत्रय चन्द्र काल अकाल यम सुनिति असुरुची राक्षस वैष्वा अवधूत योगी संन्यासी साधू अतीत स्वामी वैरागी उदासी संत और गुशाईं दैत्य दैत्यी बानर बाल सुग्रीव राम लक्ष्मण अङ्गद प्रह्लाद श्रुक्राचार्य और नरसिंह हिरण्य कश्यप लङ्का और नास्कि रवि धनेश गणेश रावण दशरथ जट और जटाई मेगनाद भभिक्षण कौशल्या सुमित्रा उग्रसेन कैकेयी व क्षेत्र कुरुक्षेत्र नर नारायण हिरणय गर्भ कुटस्थ भीम परिक्षित सुत महासूत अरुण जन्मजय उग्रशर्वा श्रुतशर्वा सोम शर्वा भीषम द्रोणधृष्टद्युम्न द्रुपद विराट देह महादेह युयुधान धृष्टकेतु चेकितान कुन्ति भोज पुरो जित शोव्य युधामन्यु उत्मौज द्रोपदी सुभद्रा अभय मन्यु कार्य कारण करण कृप भूरिश्रवा विकरण अश्वत्थामा सोमदत्त आदि ऋषि महाऋषि आपही एक अचल रूप आदि गुरु निष्कलङ्क आत्मा है तुझही को देवदत्त - पांच जन्य युदुराय मुरारी स्त्रि पुरान्तकारी भानु शशी भूमि शनि राहु केतू - अनन्तविजय नृपति - युधिष्ठिर सहदेव नकुल मणिपुष्पक घोष सुघोष पौण्ड्रक संजय वेद ॐकार आत्मीय अधिपति कहाजाता है तू ही अलौकिक वा ऐश्वरिक भाव से लौकिक में परिवर्तन अवतार है और तेरी ही अनेक प्रकार की सर्वत्र परिवर्तन है

हे मनु इन्द्र प्रभृति ऋषिगण महा बली प्रजा पतिगण सब ही कलारूप से इस विश्व में तू अवतीर्ण है तू ही पारलौकिक स्वभाव ज्ञानादिक उन्नति ध्रुव वेद है तूही कल की अवतार है तूही सत्य त्रेता द्वापर कलू का एक रूप है एक महा युग आधार है तू ही बीज रूप से विश्व में अंकुरित हो रहा है सो तू " मयैवो त्पादितं जगतो मयैव पाल्यते नित्यं सर्व स्मम । अहमेको जगन्मृत्युर्मृत्यो रपि ग्रसे अहमेव सकलं चराचरम ॥ श्रुति अनुसार निश्चय कर के ऐसा जान कि मैं ही जगत को उत्पन्न करने वाला और मैं ही नित्य एकरस इस जगत का पालने वाला हूं और मैं ही महा मृत्युरूप मृत्यु से चराचर जगत का खाने वाला भी हूं । अर्थात हे मनु इन्द्र तू ऐसा जान कि मैं माया की एक ही विष्णु मूर्ति हूं कि जिस को देख कर मैं आप ही रिपुवश से वशी भूत हो अपने को असमर्थ सा जान कर आप अपने रूप को मायामय भाव को प्राप्त हो भूल रहा हूं और माया वासना में लिप्त हो रहा हूं और इस कारण अपने " ब्रह्मैक सारशिरोमणि सत्तं रूप को भूलकर मिथ्या भ्रम में पड़ा हूं मैं तो आप ही केवल विश्वरूप में प्रकट प्रकाशमान अविनाशी नाश न होने वाला आत्मा नित्य शुद्ध पूर्ण ब्रह्म सचिदानंद स्वरूप प्रणव ॐ रूप हूं और ।

असंगो निरहंकारः शुद्धं ब्रह्म सनातनः ॥ अनाद्ये विद्यायुक्तः सज्जगत्कारणतां व्रजेत ॥

अर्थात - मैं संग रहित निरहंकार शुद्ध सनातन ब्रह्म हूं मैं अनादि सिद्ध माया से युक्त होकर जगत का कारण होता हूं । ऐसा तू जान यदि अभि तुझे शंका हो तो अपनी माया अजगर रूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देखकि जहाँ ॐ का द्वार ध्रुवा है और जहाँ न देवस है न रात्री है केवल असंग स्थान है और क्षपरा व चंचल का संगम है और इसी स्थान को सन्कूधारा क्षेत्र भी कहा जाता है अनादि काल से धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र नामक मेंढ़ी में मेरा रहना है! अद्वैकान्त मेरे पिता और स्वर्गवनि मेरी माता का नाम है! मेरा ये उत्तर सुनते ही तुझे मौन होना उचित है किंतु मनुइन्द्र तू मौन होना नही जानता और मेरे से तर्क कर्ता है कि संसार अति उत्तम स्थान है और मैं उसे मिथ्या कह रहा हूं ऐसा कहना महा अधर्म है सो तू निश्चेकर उत्तर सुन कि धर्म क्या है

## धर्म क्या है।

हे मनुइन्द्र तूने जो ऐसा तर्क किया है कि संसार अत्यन्त शुद्ध स्थान है इसको मिथ्या कहना नहीं बन्ता कारण कि मुरख से मुरख भी जगत को प्रिये बताता है और कोई विद्वान चावल देकर भूसी को नहीं लेता और ज्ञानी पुरुष बुद्धि विचार से काम लेता हुवा दुःखों से बचता और सुखों को भोगता है — सो तुमने धर्म अधर्म के अर्थ और लक्ष को नहीं जाना। हे मनुइन्द्र निश्चय करके जानो कि तुम्हें इस संसार में बारम बार नहीं आना है इस कारण संसार में कि जो माया कार्य है न तो कोई धर्म है न अधर्म है! धर्म तो केवल नाम ही इस बात का है कि जिस बात से चार मनुष्यों को हित होता है वही उन के लिये उन्का धर्म हो जाता है और जिससे हित नहीं होता वही उन के लिये अधर्म हुवा करता है!

इसी प्रकार विद्या तपस्या और सद्वत की सम्पति जिन में होती है वे निर्पक्ष लोभ मोह अहंकार से रहित होकर सर्वलोक हित के लिये ऐसे शुद्ध शास्त्र बनाते हैं और ऐसा धर्म सिखाते हैं कि जिस से जगत का हित हो किंतु अहंकारी लोभी इनके विरुद्ध ऐसे कार्यों से हित करते हैं कि जिसमें उनका मतलब सिद्ध होता हो सो धर्म के विषय में जो मत भेद हैं सो सब व्याख्या अर्थात वर्णन करने वालों और समझने वालों की मति के भ्रम हैं। और बहुधा धर्म के अर्थ तो शब्द जाल से ढके हुवे होते हैं या टीका करने वालों ने उलटे अर्थ बनाकर दिखाये हैं। कारण कि कामी क्रोधि लोभी अहंकारी पुरुष सत बात को अपने लाभ में हानि न होने देने के कारण नित्य ही उलटी बनाकर बताया करते हैं और टीका करने वाले शब्द जाल में ढकी हुई बात के अर्थ न समझ कर अर्थ स्पष्ट कहकर उसे छोड़ देते हैं। इसी प्रकार व्यर्थ बात कि जिस से कोई प्रयोजन नहीं होता है उस्का विस्तार फैलाकर भ्रम को उत्पन्न करते रहते हैं।

हे मनुइन्द्र इन कारणों करके धर्म के वास्तुवक अर्थ का सार कि जो लोक के हित का विज्ञान विचार है तत्व क्रया से नहीं होता है धर्म जिसका नाम यथार्थ धर्म है सो वो धर्म एक ही धर्म ध्रुव धर्म है ध्रुव धर्म क्या है कि जगत साकार नारायण है और ये ज्ञान से निराकार होता है और ज्ञान तत्व बोध से और तत्व बोध की प्रीक्षा करने पर उत्पन्न होता है और तत्व बोध के ज्ञान को ही सत धर्म ध्रुव धर्म कहा जाता है। सो संसार साकार का बोध होने पर निश्चय हो जाता है कि एक मनुष्य जिस एक ही बात को धर्म मानता है तो दूसरा उसी को अधर्म कहता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सो धर्म और अधर्म के अर्थ उस समय तक नहीं खुलते कि कि जब तक निम्नवर्णी शब्दों के अर्थ का बोध नहीं होता। सो जब आकृति १ लोक २ बाणी ३ व्यापार ४ इन चारों शब्दों का बोध होजाता है तो धर्म के विषय में फिर कुछ जानना नहीं रहता है और जब जानना नहीं रहता तो धर्म के अर्थ
16 इस प्रकार प्रकट होजाते हैं कि।

(१) आकृति एक शब्द है इस का अर्थ समस्त पदार्थों की शकलों अर्थात रूप और स्वरूपों को समझाना है - आशय ये है कि जो पदार्थ देखने में आते हैं खाये जाते हैं पाये जाते हैं सूंघे जाते हैं स्पर्श होते हैं और जो सूक्ष्म रूप के द्रव्य हैं कि जो युक्ति से सिद्ध होते हैं और वे कि जो पहिचान में आते हैं जैसे वायु व परमाणु इन सबका नाम ब्रह्म आकृति मात्र। अर्थात ब्रह्म रूप हैं अभिप्राय ये है कि आकृति शब्द के अर्थ ही रूप स्वरूप सूरत शकल के हैं कि जो माया कार्य है

(२) लोक दूसरा शब्द है इस का अर्थ ये है कि सम्मत धर्म सम्बन्ध में जो सार्व भौम मन्तव्य है उस को लोक सम्मत शब्द कहा जाता है जैसे चन्द्र सूर्य लोक आदि तारागण सम्मत शब्द हैं।

(३) बाणी तीसरा शब्द है इस के अर्थ भांति भांति की आवाज़ें हैं कि जो सुन पड़ती हैं यथा स्वरध्वनि नाद और वार्तालाप के शब्द इन के अन्यत गरजना बरसना कड़कना इत्यादि इन सब आवाजों को शब्द से बोध किया जाता है सो शब्द अक्षर रूप ब्रह्म बाणी तीसरी ब्रह्म आकृति है

(४) व्यापार चौथा शब्द है जो वस्तु सम्बन्धी संज्ञा है और धर्म सम्बन्धी संज्ञा है और व्यवहार सम्बन्धी संज्ञा है इन सब को शब्द व्यापार से बोध किया जाता है

हे मनुइन्द्र जानले कि धर्म एक ही ब्रह्म धर्म है इसी को ध्रुव धर्म कहा जाता है और ऊपर वर्णन किये हुवे चार प्रकार के शब्दों में केवल बाणी के एक "हौंहूं" शब्द के कि जिस की आप से आप श्वासाद्वारा ध्वनि होती है अन्तरगत है और इस रीति से हौंहूं शब्द से ॐ शब्द रूप बाणी की ब्रह्म आकृति प्रकट हो सब विश्व की लीला स्थल बन कर सर्व का एक ही धाम बना हुवा है और शक्ति रूप से सारे विश्व के कार्य कर रहा है कि जिस के अतिरिक्त और कहीं कुछ देख नहीं पड़ता है। सर्वत्र ॐ ही ॐ की अलौकिक प्रभा है ॐ ही अमोघ शक्ति है ॐ ही नित्य है सत्य है। भूख प्यास काम इत्यादि का बोध शारीरिक धर्मों का बोध इच्छा की प्रबलता से होता है कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय से नहीं होता है इसी प्रकार संसार के सारे कार्य इच्छा से होते हैं शङ्का से किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती। जगत में इच्छा की ही प्रबलता व प्रेरणा से उत्साह उत्पन्न होता है और उत्साह से ही मनुष्य अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति का यत्न करता है इस लिये अवगुणों का त्याग और शुद्ध गुणों का ग्रहण करना ही मुख्य धर्म है।

इसी प्रकार शङ्का में पड़े रहकर भ्रम भाव से दुखों को भोगना जगत के अन्य कोई भिन्न ईश्वर मानना और कार्य कारण को नित्य एक ही रूप एक ही गुण एक ही स्वभाव होते हुवे न मानना और जगत आकृति व शब्द मय नहीं है अन्य वस्तु है अर्थात आकृति और शब्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation, USA

नित्य एकरस स्थत नहीं है ऐसा जानना और अन्य माने हुवे ईश्वर को कर्मों का फल दाता मान्कर पुर्व जन्म कर्म अनुसार पुनर जन्म होना मानना आकृति और शब्द को जगत साकार नारायण और ॐ कार वेद न मान्ना और दुःखों की निवृति और सुखों की प्रवृति के हेतु तथा स्वर्ग प्राप्ति को मिथ्या सांसारिक भ्रम गति के पथ पर चलके सुखों को त्याग दुखों को भोगना अधर्म है व महा मुरख तायी है। अधम गति है। 17

हे मनु इन्द्र राजा काल यमनु ने मेरे से तर्क किया कि हे दत्तात्रेय तुझे गुणों का सिखाने वाला और तेरे अवगुणों का छुड़ाने वाला तेरा गुरु कौन है तो मैंने उत्तर में कहा था।

## दोहा । 005661

आप आत्मा आप गुरु हूं पर मानन्द स्वरुप ॥ उदासीन मोहे पथ है प्रणव ॐ मोहे रुप ॥

हे मनु इन्द्र काल यमनु मेरा उत्तर सुन के धर्म शिक्षा पाई यद्यपि तुझे धर्म अर्थ के अर्थ प्रकट कराने को ये बताता हूं कि गुणों की ग्राह्की और अवगुणों का त्याग किस प्रकार होता है कि जिस से तू यह जान लेवे कि धर्म क्या होता है। गुरु क्या शिक्षा क्या और युग क्या पदार्थ है।

## सद्गरु धर्म उपदेश लावनी ।

हे मनु इन्द्र निश्चय कर के जानकि!

सत्युग सतका मान है त्रेता जगत अपार ॥ द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग माया सार ॥ टेक ॥
सत अद्वितीय धर्म है त्रेता धर्म प्रचार ॥ द्वापर इच्छा रुप है कलियुग विघ्न अन्धार ॥
अत्रि पुरुष है आत्मा अनसूया माया नार ॥ इच्छा से सन्तति भई सत रज तम निर्धार ॥
याही व्यवस्था भेद से युग भेद पड़ा संसार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ १ ॥

अनसूया इच्छा नियम आदि अन्त को मान ॥ सन्तति हित तपस्या करी त्रेय वेद भगवान ॥
त्रेय वेद में वेद ब्रह्म एक ब्रह्मा ज्ञान ॥ दूजा शिव और तीजा विष्णु देव ज्ञान कर ज्ञान ॥
समझो या गति भेद को युग हित शङ्का मार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २ ॥

अनसूया तप कर रही बीत रहे युग सात ॥ तीनों देव समता करि आये देख रहे तप हाल ॥
हो प्रसन्न कहा देवन ने माँग अनसूया वर तत्काल ॥ कठन तपस्या की है तैं ने वर दीगे हम अचल अकाल ॥
विलम्ब न कर तू वर माँग न में युग मेल है अचल विचार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ ३ ॥

अनसूया ने सुनी बात ये खोले नेत्र और तर्क किया ॥ प्रसन्न पुर्वक तीनों देव मम पुत्र बनो वर माँग लिया ॥
तथास्तु कह देवन ने इसी बात कु मान लिया ॥ पृथक पृथक तीनों देव अनसूया उदर अवतार लिया ॥
दत्तात्रेय गुप्ताग्नि सूर्य विष्णु युग सत्य युग अवतार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

अनसूया की कुक्षि से मन बुद्धि और हंकार ॥ चन्द्र और दत्तात्रेय दुर्वासा तीन अवतार ॥
प्रकट हैं संसार में रज सत तम आकार ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव कहे इन्हें सकल संसार ॥

सत्युग पृथक रूप है दत्तात्रेय अवतार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ ५ ॥

नग्न रूप अवधूत है सत्युग सतौगुण रूप ॥ देश देश और गगन में राज्य करे यही भूप ॥
विषय वासना रहित है तत निग्म ये स्वरूप ॥ चाल मस्त हस्ती चले चिन्ता रहित अनूप ॥

आनंद इस्का राज्य है यही सत धर्म प्रचार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ ६ ॥

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषत भास ॥ यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते प्रकाश
याविधि गुरु है आत्मा जगत आत्मा भास ॥ जिस जिस से जो गुण मिले वा गुरु नेत्र प्रकाश ॥

सद्गुरु का उपदेश ये गुरु आत्मा सार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ ७ ॥

ज्ञान विराग उपदेश देत है आत्मा अपने आप ॥ अपनी आत्मा अपन गुरु कर मेट सकल संताप ॥
दत्तात्रेय के गुरु हैं चोविस त्रेता जिन सिद्ध माया आप ॥ इन्का सार समझ अज्ञानी गुण ग्राहक बन करके आप ॥

गुण ग्राहक हो जान विधि को सत्युग और त्रेता चार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ ८ ॥

भूमि[१] जल[२] अग्नि[३] पवन[४] खं[५] चन्द्र[६] सूर्य्य[७] और कपोत[८] ॥ अजगरो[९] सिंधु[१०] पतंग[११] और भ्रमरो[१२] मधुमक्षि[१३] कोत ॥
गज्य[१४] मृगो[१५] मीन[१६] पिंगला[१७] कुररपक्षी[१८] बाल[१९] कोत ॥ कन्या[२०] सर्प[२१] और शरकत्य[२२] मकड़ी[२३] भृंगी[२४] गोत ॥

दत्तात्रेय के गुरु ये चोविस सद्गुरु धर्म इन्से सतकार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ ९ ॥

परोपकार और क्षमा की शिक्षा पृथ्वी[१] गुरु से मिलती है ॥ स्वच्छता और माधुर्यता शिक्षा जल[२] गुरु से मिलती है ॥
अग्नि रूप रहने की शिक्षा अग्नि[३] गुरु से मिलती है ॥ भोग त्याग सन्तोष की शिक्षा वायु[४] गुरु से मिलती है ॥

खं[५] आकाश गुरु की शिक्षा असंग अवस्था किया विचार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्ध्यार ॥ १० ॥

घटत बढ़त नहीं एक रस रहना चन्द्र[६] गुरु की शिक्षा है ॥ ग्रहण त्याग में समुति रखना सूर्य्य[७] गुरु की शिक्षा है ॥
स्नेह त्याग कर निश्चित रहना कपुत[८] गुरु की शिक्षा है ॥ इच्छा रहित हो निश्चल रहना अजगर[९] गुरु की शिक्षा है

सिंधु[१०] गुरु की शिक्षा अचल है मन न डुलाना आपा मार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ ११ ॥

नाम रूप अभिमान मिटाना पतंग[११] गुरु की शिक्षा है ॥ आचार धर्म कोइ सार नहीं ये भ्रमर[१२] गुरु की शिक्षा है ॥
कोई पदार्थ जमा न करना मधुमक्षि[१३] की शिक्षा है ॥ काम त्याग मदान्ध न हो ये गज्य[१४] गुरु की शिक्षा है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रागरूप परमोहित न होना मृग गुरु का यही विचार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २२ ॥

मीन गुरु की शिक्षा इतनी लोभ त्यागकर कर आहार ॥ पिंगला वेष्या गुरु की शिक्षा आशा रहित हो रहना सार ॥
कुरर गुरु की शिक्षा इतनी भोग त्यागकर कर व्यवहार ॥ बालक गुरु की शिक्षा उत्तम चिन्ता रहित हो रहना सार ॥

गुरु विद्वान कुमारी शिक्षा स्का की है उत्तम चार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २३ ॥

सर्प गुरु की शिक्षा ये है घर न बना सब घर तेरे ॥ शर कृत गुरु ये शिक्षा दीनी स्थाग्र कर मन को रे ॥
संकल्प त्याग सुतन्त्र शिक्षा गुरु मकड़ी से पाई रे ॥ अद्वय रूप आत्मा अपनी गुरु भृंगी ने बताई रे ॥

परमार्थ का बोध है इतना यही योग युग धर्म विचार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २४ ॥

धर्म तत्व की शिक्षा इतनी इसके अन्यत दम्भ भरा ॥ पाखण्डी दम्भी असुरन ने वेद भ्रम कर डण्ड भरा ॥
यंत्र तंत्र और मंत्र बना के कपटी ठग ठग पेट भरा ॥ गुरु दम्भी और शिष्य मूरख ने पशु योनि का भेष भरा ॥

स्वार्थी मूरख संदेह दुये धर्म तत्व का कर तृष्कार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २५ ॥

संदेह रूप है आवा जावा संदेह खाया सब संसार ॥ यज्ञ आत्मा रूप वसिष्ठ है राम अर्जुन कृष्ण अवतार ॥
जनक रूप प्रकाश आत्मा याज्ञवल्क्य है आत्म चार ॥ पूर्ण जगत है एक आत्मा धर्म तत्व आत्म आकार ॥

अनिर्वचनीय सत्य आत्मा त्रैता विश्व बना संसार ।
द्वापर द्वैत अज्ञान है कलियुग विघ्न अन्धार ॥ २६ ॥

—+—

हे मनु इन्द्र तें ने जाना कि धर्म क्या है और तू क्या है ! तू किस लिये शङ्का में पड़ा हुवा दुःखों को भोग-रहा है जगत से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। कार्य कारण नित्य ही एकरूप एक गुण एक स्वरूप एक स्वभाव होते हैं तो जगत आकृति व शब्दमय है अन्य वस्तु नहीं इस कारण न कोई ईश्वर है और न कोई कर्मों का फल दाता है और न ही पुनर जन्म है केवल आकृति और शब्द ही जगत साकार नारायण और ॐ कार वेद है जब इस प्रकार संसार की गति है तब जगत को मिथ्या जान सुखों को त्याग दुःखों को भोगना अधर्म है।

हे मनु इन्द्र तू मेरी बातों को सुन कर असंतोष होता जाता है देख खण्ड खण्डन में तेरा मन उपदेश ये है - और यह पुनर जन्म खण्डन उपदेश है ।

## पुनर जन्म खण्डन उपदेश ।

हे मनु इन्द्र ऊपर वर्णन हुई वार्ता को सुन के तू चकित होता है कि खण्ड खण्ड में मेरा मन उपदेश क्या है मैं ने तो किसी काल में भी कोई उपदेश नहीं किया ये सत्य है परन्तु उपदेश तेरा ही है कारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वत्र तू ही शब्द तू ही आकृति तू ही वाणी तू ही लोक और तू ही सकल व्यापार है और इसकरके पुनर्जन्म खण्डन तेरा ही उपदेश है। कि चन्द्रकालमनु ने महाकालमनु से उसके स्वयं ही ऐसा तर्क किया कि हे अकालपुरुष चार्वाक कहता है कि पुनर्जन्म नहीं है तो फिर प्रलोक की इच्छासे प्रलोक फल प्राप्ति के हेतु जो अग्निहोत्र इत्यादि कर्म किये जाते हैं क्या वे निष्फल ही जाते हैं क्या ईश्वर जीव दो पृथक पृथक नहीं हैं क्या जड़ और चेतन पृथक पृथक नहीं हैं क्या वर्णाश्रम जाति भेद पृथक पृथक नहीं हैं क्या नारायण निराकार नहीं हैं क्या मनुष्य मात्र का कोई धर्म नहीं है क्या सृष्टि कर्ता ईश्वर नहीं है क्या विदु नक्रम ही आपसे आप जगत बनता रहता है क्या आत्मा नाना नहीं हैं।

हे मनु इन्द्र चन्द्रकालमनु के तर्क का उत्तर अकालपुरुष रूपसे तू ऐसे देता है कि चार्वाक जो कहता है सो सब सत्य कहता है कि अग्निहोत्र इत्यादि कर्मों को मानता कौन है ये सब धूमण्ड और पाखण्ड हैं बृहस्पति का वाच है कि तीन वेद अग्निहोत्र और संन्यासी के त्रिदण्ड और अवधूत बन के शरीर में भस्मी लगाना है ये तो उन पुरुषार्थ हीन अधम गति में पड़े रहने वाले मंद मति के लोगों के रोटी कमा खाने के ढंग हैं कि जिन में न तो किसी प्रकार का साहस है न वीरता पुरुषार्थी को फल अफल का कोई ध्यान ही नहीं होता न कहीं फल है न अफल है न लोक है न प्रलोक है न ईश्वर जीव जड़ और चेतन पृथक पृथक करके कोई वस्तु हैं और न वर्णाश्रम जाति का पृथक पृथक करके कोई भेद है न कोई नारायण निराकार है और न मनुष्य मात्र का कोई धर्म है धर्म तो केवल हित को कहा जाता है। सो न सृष्टि कर्ता कोई ईश्वर है न जगत के सारे कार्य आप से आप बनते हैं और न आत्मा नाना हैं आत्मा केवल एक ही है और वही साकार शरीर है कि जिससे देह के सारे कार्य बनते हैं इसके अन्य कोई वस्तु आत्मा नहीं है जो ये शरीर आत्मा न होता तो मनुष्य को अपने तथा दूसरों के शरीरों को देख करके बोध न होता कि मैं सुखी हूं वह दुःखी है। सो मनुष्य मात्र से सब कोई शरीर को ही आत्मा जानता है। और जो शरीर आत्मा नहीं है और जो सार है सो चेतन शक्ति है तो वही एक शक्ति है और उसी का नाम आत्मा है और दो नाम नहीं है इसकरके मानुषी रचन प्रपञ्च है और स्वर्ग आदिक की प्राप्ति के लिये जो कर्म किये जाते हैं वे सब मिथ्या हैं उनका कोई फल नहीं है। कारण कि प्रपञ्च रचना ही उसे कहा जाता है कि जो रचना अनिमित्त हो अनिश्चित हो और सदैव जिसका परिवर्तन होता रहे एक अच्छा और दूसरा उसे बुरा सिद्ध करे इस रीति से शरीर और जगत की सारी वस्तुओं को प्रपञ्च जानना चाहिये सो न ईश्वर सिद्ध है न जीव है प्रपञ्च एक सार वस्तु है इसके अन्य कोई सार नहीं

यदि चार्वाक की इस बात को न माना जाय और कहा जाय कि ईश्वर जीव पृथक पृथक हैं और प्रमाण अनुकूल उनकी सिद्धि है तो ऐसे प्रमाण प्रमाण १ अनुमान २ शब्द ३ तीन ही प्रमाण हैं इन्में प्रमाण इन्द्रियों के बोध अनुमान मिथ्या ध्यान और शब्द वाणी तथा आवाज को कहा जाता है और ये तीनों भ्रम उत्पन्न कर बुद्धि को नष्ट करने वाले हैं। प्रमाण केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है और इसके अन्य प्रमाण दूसरे प्रमाणों के आधीन हैं। शरीर प्रत्यक्ष प्रमाण से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देखा जाता है और उसके दुःखी होने से दुःख तथा सुखी होने से सुख दुःख की प्रतीत होती है सो आत्मा शरीर से भिन्न नहीं कि कोई उसे पकड़ नहीं सकता। और जो ऐसा कहा जाये कि आत्मा अदृष्ट है तो अदृष्ट का प्रमाण क्या। क्या वायु को प्रमाण से पकड़ा जासकता है कदाचित नहीं। इसी प्रकार चेतन का प्रमाण है। चेतन तो प्रपञ्च के साधारण स्वभाव को कहा जाता है जैसे गुलाब में सूल वैसे देह में चेतनता उसका प्रपञ्च का स्वभावक धर्म है और जो समस्त प्रकार के प्राणीयों में ३० भांति का आप से आप होता है। इसी को प्रकृति भी कहा जाता है प्रकृति किसी जड़ पदार्थ का नाम नहीं। २।

प्रकृति का दूसरा नाम समान धर्म है इसी धर्म मे सब प्रकार के प्राणी जन्मते पलते रूपान्तर होते और मरते रहते हैं सो प्रपञ्च के वे ३० धर्म इस प्रकार पर हैं कि।

(१) प्रथम तो चार भांति के शब्द व्यापार हैं रोना १ चिल्लाना २ गाना ३ हँसना ४ कि सब प्रकार के प्राणी इन्हीं शब्द व्यापारों से अपना आन्तरिक भाव अपने से अन्य को बोध कराते हैं और अन्य के बोध करते हैं

(२) इनके अन्यत जो मनुष्यों की बोल चाल का शब्द व्यापार है वो भी प्रपंच है और ये दश प्रकार में ऐसे हैं कि। संयोग १ वियोग २ बनी ३ निर्बल ४ हित ५ अहित ६ भक्ष्य ७ भक्षक ८ अन्धयारा ९ उज्यारा १० ये इस प्रकार का दृष्टि ज्ञान है और इन्हीं इस प्रकार के दृष्टि ज्ञान में मनुष्यों ने अनन्त दृष्टि को मानिन कर के ईश्वर-जीव सतोगुण रजोगुण-तमोगुण-पुरुष प्रकृति सत्य असत्य पुण्य पाप जड़ चेतन मन बुद्धि अहंकार चित नाम रूप गुण कर्म स्वभाव अवस्था अच्छा बुरा मेरा तेरा आदि बातों का कि जो सब प्रपञ्च हैं और मनुष्यों के अन्यत और कोई प्राणी पशु पक्षीादि इन शब्दों के भेद नहीं समझते हैं अज्ञानता और भ्रम से जाति पाति वर्णाश्रम और द्वैत के भेद और भिन्न भिन्न वासना उत्पन्न कर के प्रकट कर रक्खी हैं सो इस दस प्रकार के ज्ञान को इन्द्रिय जन्य बोध कहते हैं और इसी दस विधि ज्ञान से समस्त प्राणी अपनी अपनी शरीर रक्षा करते हैं।

(३) इनके अन्य सर्व प्राण्यों में चार प्रकार के संसर्ग जन्य विकार उत्पन्न हुवा करते हैं कि जो क्रोध १ प्रेम २ भय ३ रोग ४ ये चार संसर्ग जन्य विकार हैं।

(४) इनके अन्य छः प्रकार के समस्त प्राणियों के शरीर धर्म हुवा करते हैं कि जो पीना १ मल मूत्र का त्याग २ खाना ३ मैथुन ४ निद्रा ५ आलस्य ६ शरीर धर्म हैं।

(५) इनके अन्य प्राणियों में छः ही प्रकार के जीव लक्षण होते हैं जो इच्छा १ द्वेष २ सुख ३ दुःख ४ यत्न ५ ज्ञान ६ कहने में आते हैं।

सो इस ३० भांति की प्राकृतिक क्रिया से आप से आप प्राणी मात्र की उत्पति और उनका पालन पोषण और उनका नाश होता रहता है और ये प्रकृति के सब समान नियमित धर्म हैं।

इनके अन्यत और इनके परे जो अन्य दृष्टि व अन्य शब्द व्यापार हैं वे सब प्रपञ्च हैं और ऐसे ही प्रत्यक्ष में मनुष्य और प्राणी जाति के समान व्यापार प्रतीत होते हैं। जैसे कि मनुष्य कपटाचारी व्यभिचारी होते हैं वैसे ही पशु और पक्षी भी होते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

विचार अनुकूल ये बात सिद्ध है कि जिस प्रकार की मनुष्यों में प्राकृति है ऐसी ही पशु पक्षीयों में भी
२२ थाई जाती है जैसे बहुत मनुष्य मांस नहीं खाते ऐसे ही बहुत से पशु पक्षी भी नहीं खाते और जिस
प्रकार कोई कोई मनुष्य एक नारी व्रती रहता है इसी प्रकार चकवा चकवी सारस सर्प सिंह आदि भी
देखे जाते हैं सार अंश ये है कि जिस प्रकार सिखाई हुई क्रिया तथा शब्द भाषा बिना अभ्यास के
पशु पक्षियों को विस्मरण होजाता है तैसे ही मनुष्यों को भी सीखी हुई क्रिया और पढ़ी हुइ विद्या कि
अभ्यास के विस्मरण होजाती है इसकर के निश्चय से विश्वास करके मानना चाहिये कि सब प्राण
मात्र का धर्म एक ही है और जो धर्म है सो प्रकृति अनुकूल आपसे आप होता रहता है उस का होना
किसी ईश्वर या पुनर जन्म कर्म द्वारा नहीं है सो पुनर जन्म अनुकूल किसी को जन्म नहीं हो
ता है और जगत की कोई वस्तु पृथक पृथक प्रतीत होने पर भी पृथक नहीं है ।

संसार के सारे कार्य धर्म अधर्म सम्बन्धी आपसे आप ही प्रकृति अनुकूल होते रहते हैं औ
होते रहैंगे परन्तु भ्रम अविद्या और इच्छा में डूबे हुवे विश्वास हीन मंद पुरुषों को इस बात
पर विश्वास नहीं होता है कारण कि बुद्धि असत्य की ओर ही दौड़ती रहती है सो मूरख पुरुष
सुनी हुई बातों को विस्मरण कर प्रालब्ध को रोते हैं और अज्ञानता से ऐसे तर्क करते हैं कि
जैसे चन्द्रकाल मनु के तर्क हैं सो जो ऐसे अज्ञानी मायाधारी हैं वही ऊंच नीच के भांति
अभिमान में पड़ के मिथ्या मत मतान्त्रों के वाद विवाद का बतङ्गड़ा बना स्वार्थी बना होस
बुद्धि और पराक्रम खो भाग्य कर्म और प्रालब्ध को ही रोते देखे जाते हैं और कहा करते हैं
कि यह हमारे पुर्व जन्म के कर्मों का फल है ऐसे ही अधर्म गति में पड़े रहने वाले मनष्यों की
शिक्षा को हे मनु इन्द्र तेरा वृहस्पती रूप से ये उपदेश है ।

(१) निश्चय करके याद रखो कि किसी स्थान वा किसी अधिष्ठान में और किसी लोक वा
प्रलोक में न तो न तो कहीं कोई स्वर्ग है और न किसी को कभी मिथ्या मोक्ष मुक्ति है और
न बन्धन है केवल एक ही आत्मा साकार और निराकार रूप से स्थित है ।

(२) मरना एक सुतन्त्र अवस्था है और मर कर फिर न कहीं आना है न जाना है स्वर्ग नर्क
और पुनर जन्म आदि जैसी भ्रम उत्पन्न करने वाली पारवण्डी बातें सब ठगों की निकाली
हुई हैं इसी प्रकार जरपरी व्रतारी जैसे कल्पित मन्त्र और दान दक्षना जैसे अङ्गन स्वाँग गुरु पुरोहि
नाम रखाने वाले सभी ठगों के कर्तव्य हैं और मूरखों की माननिय बातें हैं ।

(३) इसी प्रकार अग्नेहोत्र बली पितृ निमित्त शराध त्रिपण पिंड कर्म आदि सब व्यर्थ स्वांग ठोंगों औ
धूर्त मांस अहारी निशाचरों के रंग हैं कि अपने मज़ों के कारण मत मतान्त्रों में भरे हैं ।

(४) जीव जड़ कर्म जन्म पुनर जन्म देव पितृ धर्म अधर्म कोई वस्तु नहीं केवल आत्मा है और
आत्मा एक ही है और आत्मा का धर्म भी एक ही है और वही धर्म अद्वितीय धर्म ध्रुव धर्म अव्यय
निर्लेपः [illegible] ये तेरा पुनर जन्म खण्डन उपदेश है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे मनु इन्द्र संभव है कि तू ऐसा तर्क करे कि आत्मा क्या है इस्का भी उत्तर सुन कि आत्मा क्या है ।

## आत्मा क्या है ।

आत्मा ! एक आनंद अवस्था है अलौकिक प्रभा रूप अमोघ शक्ति है जो नित्य एक रस है जो न्यूनाधिक नही होती और न्यून कम नही होती आत्मा वह शक्ति है कि जिसमें अप्रमेता है और जिसके समान सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा दीर्घ से दीर्घ अन्य रूप नहीं है सो उस अलौकिक रूप प्रभा शक्ति की संज्ञा ही अद्वितीय है इसी को पुरुष हिरण्यगर्भ विराट ब्रह्म प्रणव चेतन शब्द आत्मा परमात्मा रुह जीव ईश्वर खुदा और अल्लाह नारायण निराकार गौड सॉंटी मियॉं महतर किंग नर्प निर्गुण निर्विकार जान आदि नाना शब्दों से बोध कर के सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान कहा जाता है । आत्मा वो सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप स्फुर्ति वाणी ॐ है और वो स्फुरण का स्थूल रूप शब्द है और शब्द का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप परमाणु है कि जिसका दीर्घ से दीर्घ बड़े से बड़ा रूप आकाश विश्व प्रत्यक्ष है सो आत्मा प्रमाण रहित अप्रमाण अवस्था है ! इस अप्रमाण अवस्था को पूर्ण रूप से जगत विषय वासना की इच्छाओं में भटकने वाला अज्ञानी पुरुष न तो आत्मा को ग्रहण ही कर सकता है न देख ही सकता है । कारण कि आत्मा शक्ति रूप में जगत शब्द और आकृति रूप सिद्ध गोचर है । और संपूर्ण विश्व की वस्तुओं का बोध नाम रूप गुण स्वभाव अनुकूल केवल आकृति द्वारा या शब्द द्वारा हुवा करता है । सो जगत में जितनी संज्ञा हैं वे सब शब्द हैं और शब्द स्वर तथा व्यंजन से उत्पन्न होते हैं कि जो अपना बोध कराते हैं और स्वर एक ही " हों हूं " नित्य और अचल रूप है कि सर्व प्राणियों में आप से आप स्वास के अन्दर की ओर खिंचते समय हों और बाहर की ओर निकलते समय हूं की ध्वनि में प्रकट होता है और इसी एक स्वर ध्वीन से ॐ और सर्व अक्षर पदार्थ शब्द प्रकट हुए हैं इसलिये जो आत्मा है वो संपूर्ण अक्षर शब्द आकृति रूप सिद्ध है । सो आत्मा के विषय में निश्चय करके ऐसा जानना चाहिये कि शब्द की संयोग क्रया से परमाणु उत्पन्न होता है और परमाणु से सर्व विश्व का ही प्रादर्भाव होता है और शब्द का मूल स्वर सिद्ध है और स्वरों का आदि आकार हों हूं अक्षर शब्द है कि जिस के अन्तर ॐ अक्षर गुप्त हो रहा है और आत्मा आदि आकार अक्षर है सो आत्मा जिस को कहा जाता है उस आत्मा का आदि आकार " अभ्र खं अम्बर गगन पूर्ण पूर्ण तत " प्रमाण अनुकूल ॐ है कि जो प्राणियों के स्वासा द्वारा आपसे आप हों हूं की ध्वनि में ॐ हं तथा सो ॐ हं के अर्थ प्रकट कर " हों हूं " स्वर आप अपने साकार आकार को प्रकट कर रहा है ॥

आत्मा अव्याकृत रूप में निर्गुण और व्याकृत रूप में सगुण है आत्मा ही व्यक्त रूप से जीव और अव्यक्त रूप से नारायण है और आत्मा एक है संपूर्ण जगत उसी एक आत्मा की ही निश्चय करके विस्मय व्यवहार लीला बना हुवा है । आत्मा क्या है केवल ये आत्म श्रुति है कि ।

ॐ नित्यहं ब्रह्मैकः अक्षरं तस्य वाचकः प्रणवः तज्ज्य पर्स्तदर्थ भावनम ॥

### अर्थ

मैं नित्य ही एक ब्रह्म अक्षर ॐ कार रूप स्वरूप हूं कि जो वाणी में प्रणव और अपूर्व अर्थ में भावी हूं ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५ इंगलिश भाषा में इस आत्म श्रुति का "God in nature and nature in god" - रूप है और - गौड इन नेचर ऐंड नेचर इन गौड के अर्थ ये हैं कि आत्मा शक्तिरूप संसार साकार है और संसार साकार रूप शक्ति निराकार आत्मा है ।

हे मनुइन्द्र जानले कि आत्मा कार्य कारण एक रूप एक गुण एक स्वभाव बीज वृक्ष पिता पुत्र के तुल्य विश्व साकार प्रत्यक्ष और निराकार दृष्टि से अदृश्य अक्षर पदार्थ है । आत्मा जगत और वाच शब्द भेद साकार निराकार विश्व का आधार है । आत्मा आकृति शब्द रूप है और जिस जिस गति में जिस जिस प्रकार आत्मा परिवर्त है तैसे ही अलग अलग आकृति संज्ञा में आत्मा का बोध है ।

आत्मा आकृति शब्द रूप में नित्य प्रकाश रूप साक्षी रूप व्याप्य व्यापक रूप है और अद्वय है किंतु आत्मा में जो द्वैत भाव प्रतीत होता है ये केवल प्रपञ्च रूप शब्द व्यापार है वाच भेद है जड़ चेतन कार्य कारण रूप निर्विवाद चराचर विश्व में एक मय केवल निर्विकार एक ही आत्मा अद्वितीय है

द्वैत भावना मित्रता शत्रुता जो नाना भांति से जगत में परिवर्तन कर रही है ये आत्मा में नहीं है यह सब अविद्या माया कार्य है जो अपने अपने हित और अपनी अपनी इच्छा और अपने अपने आशय की है कि जो भ्रम उत्पन्न कर कर के मनुष्यों द्वारा प्रकृति अनुकूल प्रकट हुई है और सिरवाय समभाय से दृढ़ हुई है । आत्मा ज्ञान और अज्ञान दोनों से रहित है आत्मा स्वयं सच्चिदानंद ॐ कार वेद रूप है इस कारण विश्व की चराचर आकृतियों का एक ही ॐ कार रूप स्वरूप है आत्मा सर्व प्रपंच का अधिष्ठान अचल अविनाशी है ।

हे मनुइन्द्र आत्मा क्या है इस विषय में तेरा तेरी प्रकृति अनुकूल भारी सम्वाद है यदि भ्रम में परिवर्तन करवता हुवा आत्मा को नहीं जान्ता अर्थात आप अपने को नहीं पहचानता तो तू अपने संवाद को देख कि जिस में तू आपही अपने अन्तःकरण में अपनी प्रकृति अनुसार नाम मात्र को एक नाम रूप रच कर अपने भ्रम और अपनी कल्पना को शास्त्र का रूप देकर अपना भ्रम और अपनी कल्पना को प्रकट करता है और फिर दूसरे नाम रूप से आप ही उस को काट भी देता है । हे मनुइन्द्र तेरा ये संवाद तेरे विचित्र लीलाओं में तेरी प्रकृति महिमा का अद्भुत कार्य है और वो इस प्रकार पर है !

## मनुइन्द्र आत्म संवाद !

हे मनुइन्द्र ! तेरे को क्या भ्रम है क्या शङ्का है तुझे अपने विषय में किस पदार्थ की खोजना है क्या तू अपने आप को देख देख कर इस भ्रम चक्र में पड़ गया है कि दिन क्या है रात क्या है पृथिवी क्या है सूर्य चन्द्र तारागणादि क्या हैं इनका बनाने वाला कौन है कोई राजा है कोई सोगी है कोई जन्मता है कोई मरता है ये क्या कार्य कारण है । इनसब पदार्थों का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे मनु इन्द्र ये सब कुछ जो तू देखता है कुछ भी नहीं है केवल सर्वत्र तू ही तू है और जो तुझे दिखता है ये तेरी ही माया का आभास (छाया) है किंतु तुझे भ्रम उत्पन्न है और इस भ्रम जाल में पड़कर चार प्रकार की विलक्षण रूपी अविद्या का नाम न्याय रख व अपने को गौतम रूप से मॉनित कर तो आप अपनी प्रकृति और अपने को इस प्रकार प्रकट करता है कि-

(१) मेरा नाम गौतम है मैं ने न्याय दर्शन रचा है न्याय के हेतु प्रमाण की अविश्यक्ता है सो प्रमाण अनुकूल इस दर्शन से यह बात सिद्ध है कि इस जगत का कर्ता केवल ईश्वर है और परमाणु प्रकृति से जगत उत्पन्न हुवा है ईश्वर जीव प्रकृति तीनों अनादि हैं जीव अनेक हैं सो जीव को इस ज्ञान से मोक्ष मिलती है

(२) इसके पश्चात तू आप ही जैमिनी रूप से मीमॉसा शास्त्र रच कर अपना विजय रूप बता कर न्याय को काट कर इस प्रकार अविजय रूपी भ्रम उत्पन्न करता है कि मेरा नाम जैमिनी है मने ये पूर्व मीमांसा दर्शन रचा है मैं गौतम न्याय कर्ता से सम्मति नहीं करता हूं कारण कि गौतम ईश्वर को कर्ता कहता है यदि ईश्वर को कर्ता माना जाये तो कर्म स्वतन्त्र होते हैं और जब कर्म ही स्वतन्त्र हुए तो कर्म से ईश्वर होता है कर्म से जगत और जीव बनता है जो कर्ता है सो होता है बिना पुरुषार्थ कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती सो पुरुषार्थ ही मुख्य मोक्ष कार्य है।

(३) तिस अन्तर तू आप ही कणाद रूप से वैशेषक शास्त्र रच कर अपना वैशेषक रूप बनाकर न्याय और मीमांसा को काटता हुवा काल की भ्रम अविद्या रूप से अनेक इस प्रकार प्रकट करता है कि ईश्वर और कर्म दोनों ही काल के आधीन हैं सो जब काल का अटल चक्र चलता है तब देश के अधिष्ठान में वस्तु के भाव होने पर ईश्वर जीव जगत और कर्ता कर्म कार्य प्रतीत होते हैं सो जो काल चक्र नहो तो इन का अधिष्ठान कहाँ बनसकता है सो कर्म से फल की प्राप्ति समय की अनुकूलता बिना हो ही नहीं सकती इसलिये समय अनुसार मोक्ष मिलती है।

(४) तिस पीछे तू आप ही पतञ्जली रूप से पतञ्जली योग शास्त्र रच कर अपना पतञ्जल रूप बता न्याय मीमांसा को और वैशेषक को काट योग भ्रम असंतोष रूप में शान्ति और पत को इस प्रकार छिन्न भिन्न करता है कि योग को मुख्य प्रकट करते हुवे कहता है कि योग के अन्य और कोई वस्तु सार नहीं योग ही प्रसिद्ध है योग के अर्थ मिलाप के हैं सो मिलाप से जगत बनता और बिगड़ता है योग से ही जगत की उत्पत्ति हुई है और योग में ही जगत की स्थिती है सो जिस काल अनुभव का ज्ञान से योग होता है उसी समय सारा जगत लय हो जाता है योग से ही मोक्ष मिलती है और योग के अन्य जो कुछ है सब कथन मात्र है।

(५) तिस अनन्तर तू आप ही कपिल रूप से सांख्य दर्शन रच कर ऊपर के चारों प्रकार के भ्रम खण्डन कर अपना सांख्य रूप बता प्रकट करता है कि जगत में कपिल रूप अर्थात उत्तम बुद्धि विचार ही सार है बिना विचार न तो कर्ता ही सिद्ध होता है न कर्म और पुरुषार्थ से कुछ बनता है न काल चक्र आड़े आता है न योग अयोग की समझ पड़ती है संसार सार अंशों में विचार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

सबसे उत्तम है विचार से सब वस्तुओं का ज्ञान योग्य प्रतीत होती है विचार रूपी नेत्र बिना सकल संसार अविद्या अन्धकार का नष्ट है विचार से तत्व बोध होता है और विचार से ही सत असत का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो मोक्ष मिलती है।

(६) इसके पीछे तू आप ही वेद व्यास रूपसे वेदान्त दर्शन और उत्तर मीमांसा को रच कर सर्व प्रकार के भ्रम अभ्रम का साक्षी रूप बना अपना नाम वेद व्यास ज्ञान बुद्धि बता प्रकट करता है कि चेतन सब का साक्षी है सब कुछ चेतन के आधार पर ठैरा हुवा है सो जो वस्तु आना जाना अनुकूल अनादि हैं उनके गुण कर्म स्वभाव भी अनादि हैं कर्म से कर्ता और कर्ता से होता से पुरुषार्थ और पुरुषार्थ से काल बली हैं और काल योग के और योग कपिल अर्थात बुद्धि विचार के आधीन हैं किंतु विचार किस अधिष्ठान में होता है और विचार की प्रेरणा कहाँ से आती है कि जहाँ चेतन का प्रकाश होता है सो चैतन्य को सर्व प्रकार से अद्वय जानना ही सब सारों का सार अंश है इसी को ब्रह्म इसी को वेद इसी को ज्ञान कहा जाता है। वेदान्त दो शब्दों का संज्ञक है वेदान्त की संज्ञा में दो शब्द वेद और अन्त का योग है वेद के अर्थ जानना और अन्त का अभिप्राई अर्थ अवधि अथवा लय होने के हैं सो जिस काल व जिस अवस्था में जानना भी लय होजाता है वही वेदान्त काल है। सो जब अहंकार बुद्धि में और मन बुद्धि चित में स्थिर हो समाधिस्थ हो स्फुरना रहित होजाते हैं तब ही ज्ञान दृष्टि होती है वासना से इन्द्रियाँ आकर्षित अर्थात विचकर माया से उत्पन्न विद्या की सहायता से आत्म स्वरूप में आती हैं तो प्रेम में मग्न हो आत्म ज्ञान व दिव्य दृष्टि प्राप्त हो ज्ञान आनन्द प्राप्त होता है और ज्ञान से साक्षात ब्रह्म का अद्वितीय स्वरूप भासने लगता है फिर किसी प्रकार का द्वैत भाव नहीं रहता केवल अद्वैत ही अद्वैत भासता है। सो अद्वितीय आत्मा ही सत है और यही वेद और सत्य का निरूपण है कारण कि " एको हम बहुस्यामि सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन " मैं ही एक से अनेक रूपों में सर्वत्र परिपूर्ण ब्रह्म प्रवेश किये हुवे हूं और मेरा कभि किञ्चन मात्र नाश नहीं होता है

(७) फिर तू अपने को साक्षात अद्वय रूप स्वरूप प्रकट करता है फिर आप ही द्वैत वाद रच कर इस प्रकार द्वैत निरूपण करता हुवा द्वैत निरूपण में अद्वय प्रकाश दिखा द्वैत का खण्डन करता है कि मैं तो न्याय दर्शन को सत करके मानता हूं कारण कि परमाणु से ही जगत बनता है जैसे कि बालक प्रथम जन्मता है और रोता है तथा आकृति वान वस्तु व पदार्थों को देखता है पश्चात मा बाप को पहचानता है और उन आकृति वान वस्तु व पदार्थों में लक्ष कराने से भला बुरा प्रतीत करता है और शब्द व्यापार सीखता है याकि अन्य प्राणी जाति जिनमें व्यक्त वाणी का व्यापार नहीं है वे भी जन्म के पश्चात स्वयमेव अपनी जाति की बोली बोलते और आकृति वान वस्तु व पदार्थ को देखते हैं तथा जन्म से मरण पर्यन्त सब का आकृति वान वस्तु में ही उपयोग तथा भोग होता है इस से सृष्टि आकृतिमय तथा शब्दमय और अनादि सिद्ध है और प्रमाण " यथा पूर्वम-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जब वस्तु नहीं होती तो नाम भी नहीं होना और विश्व में बिना कारण के कार्य का होना नहीं देख पड़ता सो जो निमित को कारण माना जाय तो निमित कारण भी वस्तु के संयोग से ही उत्पन्न होता है इस से सिद्ध हुवा कि वस्तु मुख्य है उसी वस्तु को नाना शब्दों से हिरण्यगर्भ ब्रह्म शक्ति आदि नामों से पुकारा जाता है किंतु ये सब शब्द हैं तिस से मुख्य वस्तु शब्द ही है इसलिये पृथिवी मण्डल को देख ने से इस का बनाने वाला निराकार ईश्वर है और इस का स्वामी और देवता कुबेर है कारण कि कुबेर शक्ति के प्रभाव से प्रमाणु मिल कर पृथिवी गोलाकार की भांति बनी है और जिस शक्ति के आधार पर पृथिवी ठेरी हुई है उस का कोई पञ्च भौतिक आकार नहीं केवल कुबेर शक्ति ही पृथिवी मण्डल को अपने अन्तर लिये हुए है और पृथिवी के परमाणु सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देते तथा किसी छेद द्वारा कि जिसमें सूर्य्य का प्रकाश पड़ता हो छोटे छोटे परमाणु साक्षात प्रतीत होने लगते हैं कि जो सर्वत्र आकाश के अन्तर कि जहाँ लो कुबेर अपना प्रवेश रखता है पृथिवी मण्डल के चारों ओर भरे हुए हैं सो न्याय अनुकूल परमाणु कि जिस से जगत की उत्पति है और परमाणु को ही कुबेर देवता कहा जाता है आप अपना प्रमाण देते हैं कि ईश्वर जीव परमाणु पृथक पृथक वस्तु हैं इस कर के इस कर के अद्वैत मत सिद्ध नहीं है।

(८) ये निश्चय कर के हे मनु इन्द्र तू आप ही इस प्रकार इस बात का काट करता है कि पृथिवी केवल ब्रह्म के आधार पर ठेरी हुई है गंध मात्रा इस का सूक्ष्म रूप शान्ति स्वभाव स्वरूप और सत इस का अधिष्ठान है निश्चय इस का गुण और स्थिति इस का प्रत्यक्ष कार्य्य प्रतीत होता है कार्य कारण एक रूप एक गुण एक स्वभाव होते हैं और कारण ही कारण कार्य दोनों रूप होते रहते हैं यह मीमांसा भ्रम मय है यथा बीज वृक्ष की भांति ईश्वर मूर्तिमान है प्रत्यक्ष है निराकार कोई वस्तु नहीं और न निराकार से साकार उत्पन्न होती है और न ऐसा कोई प्रमाण व ऐसी कोई पहचान है और परमाणु साकार है इसलिये परमाणु ही साकार नारायण है और उसी से पृथिवी की उत्पति है सो पृथिवी साकार रूप नारायण है यद्यपि पृथिवी दृष्टि में आती है और नारायण दृष्टि में नहीं आता अदृष्ट है किंतु युक्ति उसे सिद्ध करती है तथा निराकार की किसी युक्ति से सिद्धि नहीं होती और जो सिद्ध है सो साकार है इसलिये अद्वैत ब्रह्म सिद्ध है द्वैत नहीं

(९) तिस अनन्तर तू आप ही यह कहता है कि वरुण देव के चक्र आधार पर पृथिवी और चन्द्र दोनों मण्डल मिश्रित हैं पृथिवी का जो कुबेर के आधार पर होना कहा गया उस का कारण ही ये है कि वरुण देव का विशेष भाव चन्द्र मण्डल में है और पृथिवी में सामान्य रूप से स्थित है सो पृथिवी में शान्ति वरुण देवता का गुण है और रसमात्रा उस का सूक्ष्म रूप और शीतलता कार्य है इसलिये द्वैत सिद्ध है।

(१०) इस के पीछे तू आप ही ऐसा कहता है कि जगत से भिन्न ईश्वर की सिद्धी नहीं है जगत और ईश्व दोनो शब्द वाच्य भेद हैं लक्ष भेद नहीं हैं सो ब्रह्म के आधार पर सूर्य्य है सूर्य्य अग्नि का रूप है और पृथिवी व चन्द्र दोनों इस के सहारे पर हैं पृथिवी में सत की भावना और चन्द्र में प्रकाश सूर्य्य से है जो सूर्य्य न होता तो सब संसार में किसी वस्तु का निश्चय और प्रकाश रूप की प्रतीत न हो इसलिये रूप मात्रा सूर्य्य का सूक्ष्म भाव है और सूर्य्य ही त्रिलोकी का स्वामी और प्रजापति है उषाता उस का कार्य है और सूर्य्य ही पृथिवी को वरुण की जल बिन शक्ति के प्रभाव मह जाने से बचाता है सूर्य्य ही मनुष्य देह में जठर अग्नि रूप से वाणी और नेत्रों में प्रकाश रूप से अधिष्ठान रखता हुवा जगत के कार्य करता है और सूर्य्य एक ही प्रकाश रूप है इसलिये एको ब्रह्म ही प्रसिद्ध है। इसी भांति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

(क) प्राण पवन को संसार मरुत देवता कहता है और त्रिलोकी इसकी शक्ति से ठहरी हुई है और यही सूर्य्य चन्द्र पृथिवी तारा गण आदि का साक्षी है यदि इसकी प्रेरणा न हो तो सब जड़ रूप प्रतीत हूं किंतु सब आकार इसी के बल से चर रूप हैं सो स्पर्श इसका कार्य और निश्चय इसका रूप है और ये अद्वैत का भास है ।

(ख) परमाणु का एक नाम तो रुद्र कहा जाता है और इसी को कुबेर और इसी को पञ्च भौतिक आकार से शिव भी कहने में आता है किंतु रुद्र ही पञ्च महा भूत का साक्षी है तमो गुण इसका रूप है और स्थिति इसका कार्य है शब्द इसका गुण है आकाश इसका स्थान है और प्राण अपान का वेग इसकी गति है और ये सब अद्वैत का भास है ।

(ग) प्राण शक्ति को इन्द्र देवता कहा जाता है इच्छा इसका स्वरूप है सो जब प्राण शक्ति इच्छा रूप से मन को प्रेरणा करती है तब अविद्या रूप संसार की उत्पति होती है और जिब प्राण मन की फुरना रोक लेता है तो तत्काल ही जगत प्राणों में लय हो जाता है कारण कि संसार प्राण संकल्प से उत्पन्न होता है और मन जो चार अंश मन चित बुद्धि अहंकार में निर्म्मित है जगत को उत्पन्न करता है कि जो प्राण की अविद्या शक्ति में स्थिति होता है और प्राण के विरोध से लय हो जाता है । संसार सार वस्तु नहीं है स्वप्न मात्रा मृगतृष्णा के जल के समान इन्द्र जाल की भांति रज्जु में सर्प की भ्रान्ति के तुल्य है चित का व्यापार जिसका श्रुति यथा सुरत नाम है केवल इन्द्र देवता के बल से बहिर्मुख हो के फैला है और ये सब अद्वैत का भास है ।

(घ) बुद्धि वासुदेव का रूप है और वासुदेव ब्रह्म का भास है इस लिये जगत की कोई वस्तु बुद्धि के वासुदेव स्वरूप से भिन्न नहीं है और केवल बुद्धि का नाम ही भली प्रकार इसबात को दिखाता है कि सर्वत्र एक बुद्धि ही व्याप्त है इसी से हर एक वस्तु का रूप और ईश्वर्य्य ज्ञान प्रतीत होता है जो ऐसा न हो तो कुबेर परमाणु पृथिवी के देवता वरुण पृथिवी और चन्द्र मण्डल के देवता और सूर्य्य पृथिवी अन्तरिक्ष और चन्द्र में प्रकाश के देवता और मरुत प्राण पवन यथा त्रिलोकी का देवता रुद्र पंच महाभूत का देवता और इन्द्र प्राण शक्ति का देवता अर्थात मन प्रेरणा फुरना का देवता इनमें से किसी का भी कोई लक्षण प्रतीत न हो केवल बुद्धि ही वासुदेव सामान्य विशेष रूप से संपूर्ण जगत की मूर्ति बन रही है और ऊपर कहे हुए ८ आवर्ण पटों में इस प्रकार गुप्त है कि कोई इसकी महिमा को नहीं देखता कारण कि कुबेर आदि देवता ही वासुदेव के आवरण पटों की व्यक्त मूर्ति यां हैं कि जिन्हें ब्रह्म चक्र सप्त व्यहृति व विराट कहा जाता है । इस कर के वासुदेव का एक और भी अव्यक्त रूप है और वहाँ बुद्धि कि जो वासुदेव का रूप कही जाती है उसकी भी गम नहीं और उस रूप का निश्चय केवल अनुभव द्वारा हो सकता है और कोई युक्ति नहीं सो कुबेर पृथिवी परमाणु १ वरुण जल २ सूर्य्य अग्नि ३ मरुत पवन ४ रुद्र आकाश ५ इन्द्र प्राण ६ वासुदेव बुद्धि ७ इनके अतिरिक्त जो आठवां आवर्ण है उसको कारण अहंकार हिरण्यगर्भ यथा मूल प्रकृति कहा जाता है इसी में सर्व जगत का ज्ञान रूपी बीज रहता है और इसी से मनुष्य देहादि में इच्छा की उत्पति होती है सो ये स्थान चौरासी के चक्र से भी परे है और सूक्ष्म होने के कारण सर्व लोकों का प्रकाशक हो कर भी मन और इन्द्रियों का विषय नहीं बनता सो इस रूप का वर्णन पुरुष विभूति शुद्ध सनातनादि विशेषणों से किया जाता है परन्तु इन शब्दों से इनको सुन कर अनुभव और विचार के विचारना लक्षार्थ का ज्ञान नहीं होता और ऊपर वर्णन हुए शब्द वासुदेव के स्वरूप को सिद्ध कर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं कर सके: वासु देव का स्वरूप इन सब के अर्थ को सम्यक दर्शाता है यद्यपि वासु देव का एक और भी स्थान व्यक्त और अव्यक्त से अत्युत्तम और ऊंचा है और उसी को परम पद कहा गया है और अधियज्ञ पुरुषोत्तमादि वाक्यों से उस्का बोध जाना गया है और महा पुरुष निरञ्जन निराकार निरविकार निराधार निर्लेपः निर्गम निष्क्रयादि शब्दों से उस्का लक्ष प्रकट होता है अञ्जन आकार विकार शब्द माया के प्रतिपादक हैं और निरउपसर्ग उसके बाधक अभिप्राय ये है कि निर शब्द चैतन्य का वाचक है और अञ्जनादि विशेषण जड़ रूपी माया के भाव को दिखाते हैं वास्तव में ज्ञान चक्षु से ये आश्चर्यवत स्थान ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि स्फटिक मणी किसी रङ्ग के समीप होने पर भी अपनी स्वच्छता में विकार नहीं आने देता सो इसी स्थान लो ज्ञान का गम है ज्ञान से आगे जो विज्ञान अधिष्ठान है उस्को निर्वेद और उत्तम निर्वाण पद कहा जाता है जहाँ स्वयं प्रकाश और स्वयं रूप रहता है अपने ज्ञान विज्ञान से आप ही इस्को जान लिया जासक्ता है दूसरे के कहने सुनाने समझाने से जाना नहीं जाता कारण कि अद्वैत रूप में कहना सुनना दोनों नहीं है ये अवस्था ही अद्वैत अखण्ड अविनाशी अगम अपार आदि वाक्यों से प्रतीत होती है सो नेत्र द्वारा देखना कानों से सुनना बुद्धि और ज्ञान से विचारना यह सब अद्वैत का भास है इसलिये एको ब्रह्म सिद्ध है

(११) इसके उपरान्त तू फिर भ्रम में पड़ कर ऐसा विचार कर द्वैत में जाता है कि पञ्च महाभूत को परमाणु कहा जाता है कि जिनमें मुख्य आकाश है आकाश में पवन के प्रवेश होने और फिर उसके सूर्य्य की किरणों से टकराने पर अग्नि की उत्पत्ति होती है और ये अग्नि जल को भाप द्वारा ऐंच के बादल बनाती है और आप बिजली बन के बादलों में गरगराहट के शब्द उत्पन्न करती है और चन्द्र ज्योति से स्पर्श करके बादलों में ओला बनाती है और पृथिवी से स्पर्श करती हुई उसके अंश को लेकर पृथिवी पर जल बिन्दु बादलों से बरसाती है कि जिस से पृथिवी का पोषण होता है और अनेक प्रकार की ओषधियां उत्पन्न होजाती हैं। चर्मदृष्टी में आकाश का रूप शून्य देख पड़ता है तथा ज्ञान चक्षु आकाश को अशून्य और शक्तियों से भरपूर पाती है इसी प्रकार परमाणु के पांचों मण्डलों में पञ्च भौतिक शक्तियाँ सामान्य और विशेष होके भरी हैं किसी स्थान और किसी मण्डल में सुई के नाके मात्र भी कोई स्थान शुन्य नहीं है और इसप्रकार सर्वत्र पूर्ण ब्रह्म की शक्ति संपूर्ण आकाश में प्रवेश कररही है मनुष्य की बुद्धि का वेग आकाश के अधिष्ठान से आगे नहीं जाता और इस भेद के जानने को कर्म और पुरुषार्थ भी लाभ नहीं देता सर्वत्र परमाणु जीव ईश्वर के भाव प्रतीत होते हैं कारण कि

(क) पवन शक्ति से जल बिन्दु पृथिवी में पहुंच कर वीर्य का रूप धारण करता है और पवन ही उसको चर शक्ति देती है कि जिस से अङ्कुर निकलता है विना पवन की सहायता के वीर्य पृथिवी के बाहर नहीं आसक्ता इस कारण परमाणु से जगत का बनना सिद्ध होता है

(ख) अग्नि जब वीर्य को रूप शक्ति देती है तब अंकुर बनता है जो ऐसा नहो तो अंकुर बनने से परमाणु से ही जगत का बनना सिद्ध है। कारण कि जल शक्ति द्वारा रस से वीर्य कोमल बनता है यदि ऐसा नहो तो वीर्य में पुष्टाई रूप और चर शक्ति कार्य सिद्ध नहीं सो उत्पत्ति के प्रकरण में जल की शक्ति सब से बलवान है और पृथिवी जब तक इन सब परमाणु शक्तियों को अपने गर्भ में धारण नहीं कर लेती उस समय तो उस से उत्पत्ति नहीं होती सो उत्पत्ति के लिये परमाणु पृथिवी का संस्कार सब से हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अधिक सिद्ध है। पृथिवी का प्रथम कार्य नाना प्रकार के परमाणुओं को अपने गर्भ स्थान में इकट्ठा करके धातुनी
अर्थात धातुओं को और अनमोल रत्नों को उत्पन्न करना है कि जिन्में पृथिवी शक्ति विशेष है और रस रूप स्पर्श
और शब्द ये चार शक्तियां सामान्य होती हैं और ये सब धातु जड़ समान हैं दूसरे सृष्टि अन्नादि कि जैसे
औषधियाँ कि जिनमें पृथिवी और जल दोनों की शक्ति विशेष होती हैं और रूपस्पर्श शब्द शक्ति सामान्य
होती हैं यह पंच भौतिक शक्ति का विशेष और चैतन्य शक्ति का सामान्य भाव है। तीसरे जीव
जन्तु प्राणी वर्ग की उत्पति के प्रकरण में पृथिवी का आश्चर्यवत कार्य है कारण कि उत्तर वर्णी
दो प्रकार की सृष्टि का वीर्य तो पृथिवी अपने शरीर में धारण करती है और तीसरी सृष्टि का वीर्य पृथिवी
की सूक्ष्म योनि में ठहरता है सो जहाँ जहाँ चैतन्य और जड़ का संयोग होता है तहाँ तहाँ पृथिवी का सूक्ष्म
देह समझा जाता है। कारण कि चेतन प्रधान होता है और जड़ता गुप्त रहती है सो इस प्रकार की सृष्टि
में पञ्चभौतिक शक्तियां तो वैसी ही बनी रहती हैं कि जैसी औरों में परन्तु इसमें मन और बुद्धि अधिक
होते हैं इस कारण यह सृष्टि दोनों से उत्तम होती है और इसके अन्तर मन और बुद्धि के कहीं सामान्य
और कहीं विशेष होने के कारण चार प्रकार के जन्तु होते हैं। प्रथम स्वेदज कि इन्की उत्पति आकाश
और पृथिवी सन्धि के स्थान में पञ्चभौतिक शक्तियों की ग्रन्थि पड़ने से होती है और इन ग्रन्थि-
यों में चेतन के व्यापक होने से चैतन्यता आजाती है परन्तु इन जन्तुवों में मन और बुद्धि का भाग
थोड़ा होता है और बिच्छू मुङ्गा आदि इसमें होते हैं। दूसरी सृष्टि को उद्भिज मैथुनी कहा जाता है
और सर्पादि जन्तु कि जिन की आयु अधिक होती है इस सृष्टि की रचना है। तीसरी अण्डज नाम है
और सर्व पक्षी इसके अन्तर गत हैं कि जो पवन और अग्नि की ही शक्तियों की अधिकता से उड़ते हैं
चौथी जरायुज में दो प्रकार की योनि के जन्तु होते हैं एक तो पशु कि जिन के रूप और कार्य में गुण
विभाग के अनुसार परस्पर का भेद है जैसे गाय भेड़ बकरी हाथी घोड़ा ऊंट पाड़ा चीतल हिरण
सिंह स्वान आदि हैं दूसरे मनुष्य हैं कि जिन का शरीर अन्य पशुवों की भांति पञ्चभूत का होता है
किंतु अन्तःकरण में मन और बुद्धि की विशेषता रहती है और अहंकार बलवान होता है इस प्रकार
की योनि को सब से उत्तम और श्रेष्ठ कहा जाता है कारण कि इसी द्वारा अनुभव ज्ञान विज्ञान पुरुषार्थ
की प्राप्ति होकर वैराग्य की सहायता से ईश्वर कर्ता जाना जाता है और जीव को मोक्ष मिलती है सो
ईश्वर जीव परमाणु पृथक पृथक प्रतीत होकर द्वैत भाव निश्चय करके सिद्ध है।

(११) इस भ्रम उत्पति के पश्चात तु आप ही इस न्याय और मीमांसा मत को खण्डन करता हुवा
ऐसा भ्रम उत्पन्न करता है कि सृष्टि क्या है काल बन्धन है जो एक स्थान रूप है। सो जिस स्थान
में नाना रूप की शक्तें भरी हैं इसी को सृष्टि कहा जाता है यह सृष्टि अनादि एकोब्रह्म रूप सिद्ध है
और अपने शक्ति से ही सिद्ध है और स्थित है "सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत्-
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥ आकाशस्थ वस्तु ग्रह नक्षत्रादि
जो देखे जाते हैं ये प्रथम ही से प्रथम कल्पित हैं और ये कभी मृत्यु को प्राप्त होने पर भी नष्ट
नहीं होते कारण कि कारण शरीर पञ्चभूत और कार्य शक्ति मैं आत्मा हूं। सूर्य चन्द्रादि तारा
गण १ और धातु वनस्पति और प्राणी २ इन दोनों प्रकार की रचना में संयोग तथा काल ही
निमित्त कारण है। तिससे एक वस्तु ही नाना प्रकार के रूपों में आकृति रूप हुई है। कारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सृष्टि अनन्त है और मनुष्य की दृष्टि परमित है। परमित दृष्टि से अत्यन्त दूरी का अनुसन्धान सम्भव नहीं है। और ये अनुभव तथा प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि सृष्टि क्रम का बीज शब्द अथवा आकृति ही है अन्य कुछ नहीं है। सृष्टि क्या है। केवल शब्द और आकृति ही अगोचर में अपनी महिमा में व्याप रहे हैं और संयोग करके प्रकाशमान अर्थात गोचर होते रहते हैं और वियोग करके अगोचर गति में प्रतिष्ठित रहते हैं। कारण कि विश्व की सम्पूर्ण वस्तु का या तो आकाशस्थ गर्भ से या भूगर्भ से या उदरगर्भ से प्रादुर्भाव होता है यही अगोचर से गोचर होना है और संपूर्ण पार्थिव पदार्थ व पदार्थ का लय पृथिवी में होता है यही गोचर से अगोचर गति में प्रतिष्ठित होना है। गोचर अगोचर का उदाहरण यही है कि जैसे कोई पुरुष परदेश में है तो वह अपने कुटुम्ब से अगोचर है और यदि परदेश से वापस आया है तो अगोचर से गोचर हुवा है। इसी प्रकार आकाशस्थ तारागण दिन में रहते हैं किंतु देख नहीं पड़ते तो इसी कारण कार्य का नाम अगोचर है और रात को देखे जाते हैं तो इसी कारण कार्य का नाम गोचर है। सो काल अनुकूल दिन रात के संयोग से गोचर व अगोचर की प्रतीत होती है। इसी रीति से कभी किसी वस्तु का नाश नहीं होता सब अगोचर में स्थित रहती हैं और गोचर रूप हैं। और शब्द ही स्वयं विश्व रूप बना हुआ है सो शब्द ही जीव ब्रह्म परमाणु प्रकृति कारण कार्य रूप से सागर तथा परमाणु रूप से समुद्र बना हुवा काल कर्तव्य रूप बन रहा है सो ज्यों ही परमाणु इच्छित अवस्था से आपस में रगड़ खाते हैं तब पूर्ण गगन से शब्द "हों हूं" अर्थात मैं ही ॐ ब्रह्म प्रणव हूं उसी समय प्रकट होता है सो परमाणु ही काल और शब्द ॐ रूप से स्वयं सृष्टि है और शब्द ही परमाणु है कि जो स्वयं संयोग हो हो कर स्थूलाकार नाना चित्र विचित्र की आकृतियों में परिपूर्ण हो रहा है। सार सिद्धान्त ये है कि आकाश[१]-शब्द व वायु[२]-स्पर्श व अग्नि[३]-रूप व जल[४]-रस इन चारों तत्व की जुदी जुदी-आठ आठ संज्ञा कल्पना हैं कि जिनको अहि गज द्विप नाग कहा जाता है और इनही संज्ञावों को दशन कहा गया है इनके अन्य पृथिवी की भी आठ संज्ञा हैं और उनको भुजङ्ग कहा जाता है इनकी संज्ञाओं में गुण १ गुणी २ नाम ३ नामी ४ देह ५ देही ६ ये छ रस-अङ्ग ऋतु रूप से प्रसिद्ध हो विश्व ७ विश्वी ८ कल्पना हुई हैं। सो शब्द ही से विश्व हुवा है। विश्व में भी आश्चर्य वत कार्य है कारण कि एक गुण को शब्द दो गुण को वायु तीन गुण को अग्नि चार गुण को अब्धि रूप सागर जल पांच गुण को पृथिवी प्राण शब्द में कल्पना कर छ गुण को मन अङ्ग सात गुण को भूभृत बुद्धि वासुदेव और आठ गुण को अहि अर्थात अहंकार कल्पना होता है। अर्थात शब्द से वायु वायु के गुण से स्पर्श हुवा तब वह आकृति हुवा। और स्पर्श में शब्द व स्पर्श दो गुण प्रतीत हुवे जब वह दो गुण हो स्पर्श हुए तो रूप बना देख पड़ा अर्थात बोध हुवा। और वायु स्पर्श के बोध ही से जानी गई सो जो बोध है वही आकृति है सो इस्में किसी प्रकार का भी संदेह नहीं कि शब्द ही विश्व बना हुवा नहीं है ये अत्यन्ता सिद्ध प्रकट बात है कि-आकाश से वायु वायु से अग्नि और अग्नि से जल उत्पन्न होता है। सो जब तीन गुण के परमाणु एकत्रित होते हैं तब जीव जल रूप होता है और उसमें स्वाद गुण प्रकट होता है वही जल रूप कीड़ा ही जीव रूप दृष्टि गोचर है और पृथिवी के संसर्ग से वही जीव क्रम क्रम नाना विचित्र विचित्र अनन्त शाकलों में व्यक्त हुआ है इसी से सब शकलों की संज्ञा जीव है और जीव

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यथा जीवही मन अङ्ग रूप है और मन ही बुद्धि वासुदेव स्वरूप है और बुद्धि अहं रूप अहंकार
है और अहंकार चित स्वरूप ज्योति है और चित स्वरूप ज्योति काल चक्र रूप अमोघ प्रभा है
कि जिसमें सर्व जगत बंधा हुवा है और वही अद्वितीय रूप स्वरूप आत्मा है। सो जगत की उत्पत्ति
और लय का हेतु काल चक्र ही है काल चक्र से प्रबल कोइ अन्य वस्तु नही काल चक्र सर्व वस्तुओं के
नाश होने पर भी अपने साक्षी भाव से बना ही रहता है। सिद्धान्त ये है कि जिस प्रकार आकाश में
वायु अग्नि जल पृथिवी चारों महा भूत विचरते हैं और आकाश को मलिन नही करते इसी
प्रकार सर्व लोक काल चक्र के अन्तर ही चक्कर खाते हैं और काल चक्र नित्य निर्लेप रहता है
किंतु फिर भी उस का स्वरूप बुद्धि अनुभव और ज्ञान से तीन प्रकार का दिखता है। बुद्धि जिस
का कि पंच मात्रा शब्द स्पर्शादि से सम्बन्ध है काल चक्र के स्वरूप को त्रिगुण काल चलायमान
अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान करके तीन प्रकार का बतलाती है कारण कि पंच मात्रा शब्द
स्पर्श रूप रस गंध चलायमान हैं और बुद्धि का जिस प्रकार उनसे सम्बन्ध है उसी प्रकार बुद्धि
काल चक्र के स्वरूप को भी चलायमान समझती है। जैसे कि पृथिवी के एक चक्र से कि जो
वह अपने धुरे पर करती है एक दिन रात का उन्मान होता है और इतने समय के विभाग करने से
आठ पहर सात घड़ी बीस मुहूर्तादि की कल्पना की जाती है और अधिक गुणा करने से सप्ताह
पक्ष मास वर्ष युगादिक का अध्यास होता है। वास्तव में पृथिवी का ऐसा चक्र नित्यो नित्य
ही चलायमान रहता है कि जिस से पृथिवी के निवासी अपने को अपने अपने स्थान में रहकर
ही प्रातः मध्यान्ह सायंकाल और रात्री प्रतीत कर लेते हैं। किंतु जिस समय भूगोल अर्थात
पृथिवी के किसी अर्द्ध भाग में दिन होता है तो दूसरे अर्द्ध भाग में रात्रि होती है। यदि बुद्धि
द्वारा उस स्थान का विचार किया जाय कि जो पृथिवी के चक्र के बाहर और सूर्य्य के सदैव
ही सन्मुख है तो दिन रात का अभाव होजाने से भूत और भविष्यत का अभाव होजाता है
और ये प्रत्यक्ष प्रमाण भी है कि भूत काल वर्तमान होकर व्यतीत हुवा है और भविष्यत काल
में भी वर्तमान की प्रतीत होगी ऐसा बुद्धि का विचार है। कि जो भूत भविष्यत की कल्पना है।

अनुभव में तो वर्तमान काल में ही प्रातः मध्यान्ह सायं रात्री आदि सारे समय एक
ही निश्चल रूप से खड़े हुए देखने में आते हैं। कारण कि जिस दिशा में पृथिवी अपने चक्र द्वारा घूमती
हुई सूर्य्य के स्वयं आती है और उस की किरणों को लेना आरम्भ करती है तो वहाँ वहाँ कि जो जो भाग
पृथिवी का सूर्य्य के सन्मुख आता रहता है तहाँ तहाँ प्रात काल सदा ही विराजमान रहता है इसी
प्रकार मध्यान्ह सायं और अन्य समयों की अवस्था होती है। सो निश्चय अनुभव वर्तमान की सिद्धि है

ज्ञान में ज्ञान दृष्टि वर्तमान काल की साक्षी होकर काल को अकाल रूप देखती है और ये
निश्चय करती है कि पृथिवी चन्द्र और सूर्य्य मण्डल तक काल का काल चक्र है और सूर्य्य से ऊपर
पवन आकाश और मन के मण्डलों में काल चक्र महा काल रूप से स्थित है और इनसे ऊपर
बुद्धि अहंकार और चेतन के अधिष्ठानों में काल चक्र का अकाल रूप है तात्पर्य ये है कि काल
चक्र तो एक ही है किंतु बुद्धि अनुभव और ज्ञान दृष्टि के अनुसार काल महा काल और अका-
ल रूप हो कर प्रतीत होता है। इसी प्रकार ईश्वर जीव परमाणु का विचार है। सो जिस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्धि वर्तमान से भूत काल की ओर जाती है और अनुभव भूत और भविष्यत दोनों काल का दृष्टा होकर वर्तमान में स्थित रहता है और ज्ञान की अवस्था में तीनों काल सम रूप होते हैं इसी प्रकार ईश्वर जीव प्रकृति का भेद है। किंतु जिस प्रकार स्फुरति के न होने के कारण जगत का आदि अन्त सिद्ध नहीं होता ऐसे ही काल का स्वरूप सर्व का प्रकाशक और द्वैत भाव वाला ईश्वर जीव प्रकृति प्रतीत होने पर भी परमार्थ से अतीत भासता है और नाना प्रकार के रूप से भासत होने पर भी जगत ब्रह्म एक ही अकाल रूप वेद है तथा देश काल और वस्तु के सम्बन्ध से तीन प्रकार का प्रतीत होता है और श्रुति कहने में आता है वेद के तीन रूप जो प्रतीत होते हैं इन्में एक तो लौकिक अथवा शब्द वेद का रूप है कि जो अक्षर और बाणी के सम्बन्ध से प्रकट हो रहा है और प्रकट होता है इसी का नाम अन्तःकरण वेद है कि जिसके चार नाम प्रथम ऋग्वेद अहंकार रूप दूसरा यजुर्वेद बुद्धि स्वरूप तीसरा सामवेद मन स्वरूप और चौथा अथर्वण वेद चित रूप हैं शब्द लौकिक वेद है कि जो बाणी द्वारा मन्त्र और छन्द के रूप में प्रकट है और इस वेद को बुद्धि श्रोत्र और नेत्र द्वारा ग्रहण करना चाहती है परन्तु उसकी यथावत को नहीं पाती कारण कि मानषी रचना प्रपंच रचना है और सृष्टि ब्रह्म रूप है नित्य है। सो समस्त वस्तुएं संयोग करके गोचर व वियोग करके अगोचर हुवा करती हैं। सो सर्व प्रपंच मनुष्य के मानने करके अर्थात सिखाए समझाए के अभ्यास से भासत होते हैं। अन्य प्राणी जाति नित्य एकरस ही रहते हैं वह रूपान्तर व नाश प्रतीत नहीं करते। सो संयोग और वियोग की क्रिया जाने बना अन्तःकरणी गोचर वेद के अर्थ नहीं खुलते।

संयोग शब्द का भाव ये है कि एक शकल दूसरी शकल में आकस्मिक या स्वतः मिलना अर्थात एक व्यक्ति की वस्तु दूसरे व्यक्ति सजातीय या विजातीय में सम्पर्क करके दूसरे व्यक्ति नूतन रूप में हो पड़ती है यही संयोग है और व्यक्ति से अव्यक्ति होना वियोग है सार अंश ये है कि संयोग ही से उत्पत्ति हुवा करती है संयोग ही से पोषण होता है संयोग ही से सृष्टि क्रम कालय हुवा करता है। आकृति तथा शब्द नित्य ज्यों के त्यों ही विद्यमान रहते हैं। इसलिये रचना व पालन में संयोग के सात भेद हैं रचना में दो और पालन में ५ संयोग भेद हैं। प्रथम रचना के दो भेद इस प्रकार पर हैं कि — प्रथम गर्भाधान संयोग समय जैसा संसर्ग हो पड़ता है। जैसे खेत में बोने के समय एक ही बीज रहता है और एक ही खेत और एक ही समय रहता है किंतु उगने पर हर एक के अंकुर डाल पत्ता वाली छोटी बड़ी होती हैं। दूसरे फिर गर्भ के पोषण तक पश्चात जो संसर्ग होता है उसके प्रभाव से ही हर जाति की वस्तु में एक व्यक्ति के अपेक्षा हर अवयवों में भिन्नता होती है। पोषण के समय में संसर्ग के विकार से ही अन्धा बहरा गूंगा छ आंगुर का व हिजड़ा आदि अनेक रुगी उत्पन्न हुवा करते हैं। इस रचना संयोग को प्रारब्ध भावी और भाग्य कहा जाता है कि जो अमिट है और इसी संयोग रचना का नाम प्रकृति है कि जो अटल है अर्थात प्रकृति के इस संयोग के रोकने को कोई यतन नहीं है। सो प्रकृति अनुकूल जो जिस कार्य के लिए यथा जिस कर्तव्य के लिये उत्पन्न होता है सो प्रकृति अनुकूल वैसा ही उसका रूप और उसके लक्षण उस से प्रकट होते हैं और वह वैसे ही कार्य आप करने लगता है। पुनर्जन्म आदि कुछ नहीं है केवल धोका और भय है जैसे बालकों के डराने को निमित्त हौवा कल्पना हुवा है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दूसरा पालन संयोग जो गर्भ से निकल कर मरण पर्य्यन्त जो शारीरिक व्यवसाय में प्रति क्षण सम्पर्क हुवा करते हैं इस पालन संयोग को क्षणिक संयोग कहते हैं। इस क्षणिक संसर्ग का मनुष्य सुधार करसकता है। और इसी क्षणिक संसर्ग के वसूल से ही मनुष्य मात्र का स्वभाव प्रतिक्षण बदला करता है। तथा जो मनुष्य क्षणिक संयोग का सुधार नहीं करता उसको कदापि सुरव मिलता नहीं और वह अपने सुरव को अपने कुटुम्ब सम्बन्धयों को भी दुःखी कर देता है।

सो इस पालन संयोग में ५ प्रकार के संयोग से पहिला संयोग तो स्थान यथा अपना घर व परायाघर परदेश मेला समारणस्थल बाजार दर्बार कचहरी मन्दिर मस्जिद गिरजा शराब भंग के पीने और चरस गांजा अफयुन मद्य चान्डु के उड़ाने के स्थान जुवाघर आदि इनसब शकलों में जो संयोग मिड़ता है वही स्थानसम्बन्ध कहा जाता है। दूसरा सम्बन्ध गृहस्थी कुटुम्ब जाति नाता सहवास अफसरी - सरदारी मानहती चाकरी आदि के सम्बन्ध को सम्बन्ध कहा जाता है। तीसरा समय जाड़ा गरमी वर्षा रात दिन सबेरा दुपहर शाम तथा कालसुकाल राग हर्ष खुशी रंज शोक के समय को समय कहा जाता है। चौथे अवस्था बाल युवा वृद्ध रोगी निरोगी भूख प्यास काम क्रोध मोह लोभ मद मात्सर्य आदि को अवस्था कहा जाता है।

पांचवे - प्रयोजन (गर्ज़) में जो जो संसर्ग मिड़ता है उसको प्रयोजन कहा जाता है। ये पांच भांतिके पालन संयोग हैं इनको क्षणिक संयोग कहा जाता है। सो रचना के संयोग वा पालन संयोग करके प्राणी मात्र के तथा मनुष्य के स्वभाव में प्रवृति के लिये प्रेरणा शक्ति उदय हुवा करती ही उसी को मन कहा जाता है जिस से स्वे स्वे कर्म में सब प्रवृत होते हैं यथा -

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥

अर्थात - प्रकृति अनुकूल क्रिया और गुण प्रकट हो कर ही सर्वत्र सब कार्य होते हैं सो आचार विचार की सीमा को लौकिक वेद कहा जाता है कि जिस से क्षणिक संसर्ग करके परिणाम दुःख सुरव प्रतीत हो इसी को पुरुषार्थ रूप दिया जाता है। कारण कि बिना मन के रोके अर्थात क्षणिक संयोग के निवारण किये कदापि सुरव प्राप्त नहीं होता। और संसर्ग ही से मनुष्य का उत्साह संकुचित व विक्षापित हुवा करता है और इसी बात को जानने का नाम लौकिक गोचर शब्द वेद को जान लेना है यह वेद का प्रथम रूप है।

वेद का दूसरा रूप कालक्रम गति है गति उसको कहा जाता है कि जिस गति में सर्व समस्त वस्तुओं का प्रतिक्षण परिवर्तन हुवा करता है जिस को काल समय नियम तथा माया भी कहते हैं। माया को ही शक्ति और गति और चैतन्ता का कोश कहा जाता है कि जिस से बुद्धि मन पञ्चइन्द्रिये और पञ्चगोचर प्रकाशित होते हैं। गति की सूक्ष्मता का बोध चर्म चक्षु से नहीं होता अनुभव से होता है इसलिये इस वेद का रूप अनुभव रूप है कि जिस को अक्षर और वाणी यथावत कथ नहीं सके किंतु इसका पता देते हैं कि जिस में से वाणी द्वारा कुछ कुछ अपने कोश से बाहर निकल आता है जैसे गति का अनुभव सब को होता है परन्तु उस गति का रूप क्या है किसी को देर तक नहीं पड़ना किंतु जिस प्रकार ध्रुव से अग्नि का और भाप से जल का अनुभव होता है ऐसे ही इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनुभव का कि? काल ही के प्रभाव से सृष्टि क्रम नियम रूप में स्थित है। लौकिक वेद से अनुभवी वेद का होना सिद्ध होता है "कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रम" अर्थ ऐसा है कि काल ही से भूतों की उत्पत्ति है और काल ही से उनका संहार भी होता है और काल ही सुषुप्त जागर्त है और काल ही निश्चय करके दुरतिक्रम है। काल गति अगोचर रूप है इसी में समस्त आकृतियों के वस्तु गर्भ में स्थित रहते हैं सो जिस वस्तु का जब समय होता है तब वह दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार मनुष्य के भावी चिन्ह के संस्कार का जब समय आता है तब उदय हुवा करता है तृष्णा व्यर्थ होती है यही गति ध्रुव मूल है। सब क्रियाओं का नियम रूप में स्थित रहता है यही गति की शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव है। जाड़े से गर्मी गर्मी से वर्षा वर्षा से फिर जाड़ा रात्रि से दिन दिन से रात्रि आदि नित्य यही गति नियम रूप स्थित है। जैसे जैसे गति का परिवर्तन होता है तैसे तैसे आकृतियों का रूप परिवर्तन होता है। तैसे ही तैसे आकृतियों की जुदी जुदी संज्ञा मनुष्य ने कल्पना करी है वस्तु एक ही है गति के परिवर्तन में संज्ञा का परिवर्तन कल्पना रूप है यही द्वैत का प्रपंच है। काल नियम रूप नित्य एक सा है उसमें कोई भेद नहीं सो दूसरा रूप अनुभवी वेद का काल क्रम गति रूप है।

वेद का तीसरा रूप समुद्रवत है। उसका पता गति के नियम प्रकृति के गोचर से ही अगोचर होने पर लगता है। स्फुरण शक्ति को प्रकृति और गति नियम कहा जाता है। और शब्द को भी स्फुरण ही रूप दिया गया है और शब्द के गोचर व अगोचर दोनों रूप हैं। सो शब्द अगोचर रूप में अशब्द रहता है और अगम अपार अखण्ड अनन्त अनादि कहने में आता है इस अगोचर वेद का अधिष्ठान कारण त्रिपुटि से ऊंचा है इसमें और केवल ब्रह्म में कुछ अन्तर व भेद नहीं है दोनों शब्द एक ही लक्ष को जताते हैं। सो शरीर में जो जान है वह अशब्द ही है किंतु इसी अशब्द को शब्द रूप कहा गया है। जैसे शुषुप्ति अवस्था में जान के भिन्न न ज्ञान रहता है न रूप प्रतीत होता है न क्रिया सो इसी से शुषुप्ति अवस्था को ही ब्रह्म रूप कहा गया है। यथा जहां पर न सूर्य्य का प्रकाश है न चन्द्रमा का प्रकाश है न अग्नि अर्थात दीपक का प्रकाश है न कोई वस्तु है उस अवस्था के पीछे जब स्वप्न अवस्था आती है तब वही जान स्वप्न के नाना भांति के रूप क्रिया युत हो देख पड़ता है इस अनुभव से सिद्ध है कि वही जान का प्रकाश निद्रा खुलने पर जगत रूप देख पड़ता है। अर्थात जान का प्रकाश ही नाना शकलों में जगत रूप हो देख पड़ता है जैसे संयोग क्रिया से आकाश में नाना शकल के विचित्र विचित्र रूप हो जाते हैं वैसे ही शब्द के आर्थिक अवस्था में विश्वरूप हो जाता है। यही तत्व विज्ञान "गति शक्ति" जो अस्तित्व है शक्ति बीज और बीज का सार रूप है इसी में वृक्ष का समस्त अंग स्थित है यही शक्ति रूप और चैतन्य रूप है और अलक्ष है इसी अलक्ष का लक्ष "एकोहम बहुस्यामा" है कि जिस से ये सिद्ध होता है कि शब्द ही आकृति रूप हुवा है। और शब्द ही अशब्द रूप प्रकाश की अलौकिक प्रभा है। इसलिये वेद का ये तीसरा रूप भेद को वाणी से कथन में नहीं आता इस लिये अनिर्वचनीय है। कारण कि किसी भाषा के शब्द व्यापार में उस्का भाव ठीक ठीक बोध कराने को अनुकूल शब्द नहीं हैं। जैसे मैथुन का सुख तथा घृत में क्या स्वाद है उसके समझाने को शब्द नहीं हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

केवल अनुभव सिद्ध है। जगत में मनुष्यों की बुद्धि पंच भूतसे मिश्रित है। और नेति नेति जैसे शब्द का समाधिस्थ बोध नहीं है। शरीर के प्रेम में मग्न रहते हैं ऐसी अवस्था में उनके हृदय में विश्व रूप का स्वरूप नहीं समाता और अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होता इसलिये हर कोई इसी लौकिक वेद को कि जो प्रथम वेद रूप कहा गया अनादि कहते और अनादि मानते हैं। और वेद के यथार्थ रूप स्वरूप को अनुभव करने के योग्य नहीं हैं। कारण ये है कि अनुभव द्वारा सिद्ध है कि वेद जो कि अनादि है वह चैतन्य मय कोश है और यही वेद का तीसरा स्वरूप है कि जो ज्ञान दृष्टि से वास्तव के वेद प्रसिद्ध है वेद और ज्ञान का एक ही स्वरूप है और ज्ञान तथा ब्रह्म का एक ही लक्ष है। और वेद के ये तीनों स्वरूप ब्रह्म आकृतियों के अनुसार बने हैं आशय ये है कि वेद अकाल रूप स्वरूप है। और जो अकाल रूप स्वरूप है सो ही मैं अपने आप अद्वितीय हूं ॥

हे मनु इन्द्र ये तेरा ही आत्म संवाद है तेरे में नाम मात्र को भी द्वैत का सार अंश नहीं कारण कि तू ही तो अद्वितीय वेद है। किंतु सार अंश ये है कि इस वेद का दर्शन स्त्री शरीर की ममता त्यागने से ही होता है। इसी अवस्था को परम पद परम गति कैवल्य पद कहा जाता है कारण कि स्वप्न का तप तब ही प्रतीत होता है कि जब अपने शरीर की सुध नहीं रहती जब तक शरीर की सुध रहती है तब तक स्वप्न नहीं होता है। और जब तक स्वप्न नहीं होता है तब तक आनन्द गति की प्राप्ति नहीं है। आनन्द गति क्या है। कि जो देख पड़ता है वही सब आकृति है जो सुन पड़ता है वही शब्द है और जो देखता व सुनता है वही साक्षी स्वरूप अशब्द वेद अकाल रूप कैवल्य ब्रह्म है इसके परे अन्य कोई वस्तु विश्व में देख नहीं पड़ती यही मुख्य एक वस्तु है यही विश्व का उपादान कारण है यही निमित कारण है ये ही साधारण कारण है ये ही विश्व है और ये ही जगत स्थित और जगत व्यवहार का आधार है। इस से परे और वस्तु नहीं है और दृश्य नहीं है और आधार नहीं है। जो स्थान भांति भांति की विचित्र विचित्र शकलों से भरा है वही विराट रूप सृष्टि है। और ये अनन्त रूपी सृष्टि सम्पूर्ण विश्व आकृति और शब्द मय हे मनु इन्द्र तू आप ही तो है। जो चार रूप में नाना प्रकार की विचित्र विचित्र शकलों से तू आप ही विराट बन रहा है। इन चार रूपों में प्रथम रूप तेरा आकाशस्थ ग्रह नक्षत्रादि है। दूसरा सकल पार्थिव पदार्थ अर्थात वस्तु है। कि जो नाना रूप करके तीन विचित्र विचित्र शकलों में धातु २ खनिज पदार्थ २ और प्राणी ३ वस्तु में वस्तु जीव और जगत बन रहा है। वस्तु के अन्य न जगत है न जीव है। सो जो ऐसी आनन्द गति अवस्था वस्तु है वही हे मनु इन्द्र तू आप ही है।

हे मनु इन्द्र तू आप ही संयोग घटना है। तू आप ही सम्पूर्ण वस्तु संयोग है। तू ही तो हे मनु इन्द्र सम्पूर्ण विश्व विराट के रूप में उत्पन्न हो रहा है। तू ही तू सम्पूर्ण विश्व वस्तु का पोषण संयोग रूप बन रहा है। और तू ही सम्पूर्ण विश्व वस्तु का नाश संयोग रूप हो रहा है। तू ही तो काल तू ही गति तू ही नियम रूप है तू ही दृश्य तू ही दृष्टा तू ही शब्द तू ही आकृति तू ही स्वप्न तू ही सुषुप्ति तू ही लय अवस्था है तू ही आदि तू ही अन्त है तू ही विश्व में शब्द और आकृति रूप से उत्पन्न होता है तू ही अन्त में व्याकृत से अव्यय अनन्त रूप की गति दिखाता है ये सब कुछ प्रपंच जो जगत में फैल रहा है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ये तू ही है कि जो हौंहूं की ध्वनि बना हुवा ॐ लीला स्थल का रूप धार ॐ रूप स्वरूप से सकल प्रकार के लीला व्यवहार रचन करकर के आप ही अपनी लीलाओं की सैर देख रहा है तुझे न कहीं आना है न जाना है तेरी उलट फेर ही तेरा आना जाना और तेरा रूपान्तर होना ही तेरा क्रम अनुकूल जन्म लेना और दुःख सुख की प्रतीत करना भ्रम अज्ञान है तू न जन्मता है न मरता है कर्ता है न भोक्ता है तू तो " सर्वस्य सर्वाङ्गस्य सर्वत्रय प्रकाशय रवि मण्डला यज्ञ चर अचर एको ब्रह्म सर्वज्ञय " रूप स्वरूप आनन्द गति अवस्था है। तू अपनी आनन्द अवस्था में मग्न रह तू अपने आनन्द स्वरूप का रूप ले तू आवा जावा के भ्रम से रहित है तू कर्म अनुकूल राजा योगी मूरख गुणी सोगी की भ्रम अवस्था मे जन्म लेने और मरने से स्वतन्त्र है। तेरी आनन्द अवस्था ही तेरा स्वभाव तेरी प्रकृति तेरे शक्ति है। कि जो शब्द की आर्थिक गति में विकाश और बिना अर्थ में संकोच है। जैसे कि जब इच्छा होती है तब ही प्राणी बोलते हैं। सो जो इच्छा है वही अर्थ है और बिना अर्थ कोई बोलता भी नहीं। सो इसी भांति हे मनु इन्द्र तेरी स्वभाव के आनन्द अवस्था तेरी प्रकृति तेरी शक्ति यही है कि तू आप आर्थिक गति में शब्द गोचर रूप में ही रहता है। और बिना अर्थ अगोचर रहता है। हे मनु इन्द्र अब तुझे फिर भ्रम उत्पन्न है और तू तर्क करता है कि जब मेरी आनन्द अवस्था है तो मेरा इस संसार के रचन करने में कौन अर्थ था इस का उत्तर यही है। कि विश्व की समस्त वस्तुओं में जो गति है वही बाढ़ है और वही तेरी आनन्द अवस्था की स्वभाव ब्रह्म स्वभाव शक्ति प्रकृति है। जैसे कि शब्द का प्रभाव उसकी आर्थिक गति में बोध होता है और उसी बोली से शक्ति का प्रभाव भी जान पड़ता है। ऐसे ही सूक्ष्म रूप गति के उदर में ये भारी से भारी ब्रह्मांड कि जिस को हे मनु इन्द्र तू रचन करना कहता है समाया हुवा है यही परमाणु रूप तेरा उदर है यही तेरा स्वभाव यही तेरी प्रकृति और यही तेरी शक्ति का चमत्कार है। सो न सृष्टि है न ब्रह्मांड है कैवल्य तू ही तू एक बीज है कि जिस के उदर में वृक्ष समाया रहता है ऐसी तेरी इस प्रकृति का अकथनीय चमत्कार है सर्वथा तू ही तू " ॐ इमैकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति " के वाक्य में वाणी ॐ शक्ति रूप और वाणी ॐ बोधक रूप और सर्व ब्रह्मांड अक्षर मय शब्द आकृति रूप धर्म " बीजात मूलम मूलात बीजम " सदृश तू है।

हे मनु इन्द्र जो तू देवता है यही अनादि अकाल रूप आनन्द गति है तू ही सम्पूर्ण देवता है तो तू ही तू है तेरे अन्य और कुछ नहीं तू क्या देवता है आप ही अपनी लीला शक्ति को देवता है यदि फिर भी तू भ्रम करे तो तू अपने मिथ्या द्वैत भेद कल्पना खण्डन उपदेश को देख कि तेरा क्या उपदेश अपने आप को है

## मिथ्या द्वैत भेद कल्पना खण्डन उपदेश ।

हे मनु इन्द्र तेरा आप ही अपने को ये उपदेश है कि मैं चार्वाक अनीश्वर वादी हूं मेरा मेरे अन्यत कोई ईश्वर नहीं। मैं ही अग्नि रूप ऋग वेद हूं कि जो प्राकृत गति रूप में ॐकार रूप स्वरूप हूं। सो ॐकार की साधना विधि युक्त करने से मनुष्य ब्रह्म वेता हो जाता है ॥ " प्रज्ञानं आनंद ब्रह्म " महावाक्य मेरे इस रूप का रूप स्वरूप है और मेरे इस रूप स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वाक्य शब्दों के आशय को ऋग वेद की सब ऋचायें और मन्त्र सिद्ध करते हैं। सो हे मनु इन्द्र तू कहता है कि हे चार्वाक तू कौन है कि जो अपने को ॐ कार प्रकट कर फिर आप अपना नवीन ईश्वर रचता है अद्वितीय प्राक् गति के पथ को तोड़ द्वैत के खड्ड में गिरता है। जब तू आप ही आप है तो मनुष्य का और ॐ कार की साधन युक्त क्या सब पारखण्ड धूर्तगति है तू ॐ कार है किंतु तू जो ॐ कार की साधना विधि युक्ति का जाल पूरता है ये तो निरा पारखण्ड है मैं इससे रहित हूं।

हे मनु इन्द्र इसके आगे तू आप ही अपने से कहता है कि हे चार्वाक मैं ऋग के स्वयम यजुर्वेद दूसरा वेद हूं मैं ही प्राक् गति रूप में ॐ कार स्वरूप हूं ऋग से अधिक युक्ति सम्पन्न हूं कि जो उस में विस्तार पूर्वक नहीं है सो इसमें है। और इस्का महावाक्य स्वरूप "अहं ब्रह्मास्मि" है सो इन शब्दों के आश्रय होकर जिज्ञासु पुरुषार्थ से ब्रह्म रूप होजाता है। सो हे मनु इन्द्र तू कहता है कि हे चार्वाक तेरी मति मारी गई है कि जो आप ही अपने को "ॐ हं ब्रह्मास्मि" प्रकट कर के फिर आप ही कोई दूसरा बन्ता है तू महा पारखण्डी धूर्त असुर प्रतीत होता है मैं तो स्वयं ॐ निराश्रय हूं मैं ही हे चार्वाक "ॐ हं निराश्रयादित्य ब्रह्म" प्राक् गति रूप हूं॥ यजु नहीं हूं

इसके उपरान्त तू चार्वाक रूप से ऐसा कहता है कि मैं ही तो साम वेद तीसरा वेद हूं कि जो ॐ कार रूप से तत्वमसि महावाक्य स्वरूप हूं और इस महावाक्य के विचार से अभ्यास से आप अज्ञ रूप से अल्पज्ञता और सर्वज्ञता दोनों का साक्षी होकर परमानन्द स्वरूप हो जाता है।

फिर तू आप ही ऐसा कहता है कि विचार और अभ्यास का मारी पारखण्ड है "ॐ नित्यम् परमानंदं। आनंद रूपं परमार्थ तत्वं॥ केवल मेरा प्राक् गति रूप स्वरूप है। साम नहीं हूं।

इसके पश्चात तू कहता है कि मैं अथर्वण अनुभवी वेद हूं। सोऽहं। हंस मन्त्र मेरा स्वरूप और "अयं आत्मा ब्रह्म" मेरे रूप स्वरूप का महावाक्य है। ऊपर के तीनों वेद पारखण्ड से भरे हैं। कारण कि उनके महावाक्यों की साधना द्वैत पारखण्ड असुर गति के कार्य कर के भ्रम उत्पन्न कर कीट मार्ग की भांति कर्म योग अथवा प्राणायाम द्वारा ॐ की ध्वनि की सहायता से साधन करने वाले को ब्रह्म के ज्ञात रूप अधिष्ठान तक पहुंचाती है। और नित्य रस वासना को बनाय रखती है सो इस करके साधन करने वाले का मूल प्रकृति से बाहर निकलना नहीं होता वह मूल प्रकृति के चक्र का ही चक्र बना रहता है। और ब्रह्म अज्ञान भ्रम में लपटे ईश्वर जीव प्रकृति के भ्रम जाल में पड़ कर स्वयं साक्षी रूप ब्रह्म होने पर भी जगत का ही दृष्टा बना रहता है। किंतु मेरे महावाक्य हंस मन्त्र की अद्भुत महिमा है। कि स्वतः सर्व ही प्राणियों में आप से आप अपने रूप स्वरूप के शब्द को स्वाँसा ध्वनि द्वारा केवल ध्वनि में ही उच्चारण कर रहा है उसके हेतु किसी परिश्रम की अवश्यकता अपेक्षा नहीं है इस लिये हंस मन्त्र ही अजपा जाप है जो श्वास रेचक समें सकार श्वास निकलने समय हकार ध्वनि जैसे शब्द को उत्पन्न करती है इन दोनों स्वाभाविक शब्दों ने ॐ कार शब्द को अपने अन्तर लेलिया है। कि जिस की महिमा अनन्त है। अर्थात सः के अन्तर अकार और उकार गुप्त है और अहं शब्द में मकार अन्तर्गत है। अर्द्ध मात्रा की ध्वनि तुर्यातीत अवस्था के आनन्द का लक्ष दिखाती है। सो "सोऽहं" शब्द के अभ्यास से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि जो ज्ञान योग अवस्था विहङ्गम मार्ग है। और विहङ्गम पक्षी का नाम है कि जिस की उड़ान आकाश में शीघ्र होती है। कीड़ी के स्वयं कि जो पृथिवी पर मन्द गति से चलती है और अपने मार्ग को बहुत काल में पूर्ण करती है। श्रुति के सोऽहं शब्द से एकता होने पर जीव हंस का रूप धारण कर तत्काल ही अपने लोक को उड़ जाता है। कारण कि श्रुति चित्त का कार्य वाहन है जैसे ब्रह्मा का वाहन हंस विष्णु का गरुड़ शिव का नादिया और इन्द्र का उच्चैश्रवा घोड़ा है

हे मनु इन्द्र तू कहता है चार्वाक क्या यही तेरा रूप स्वरूप है क्या तू ही ब्रह्म तू ही जीव है यदि तेरा निश्चय यही है कि जीव ही ब्रह्म आत्मा चैतन्य आत्मा परमात्मा है और तू अपने मन्त्र भाग के अन्यत ऋग यजु साम आदि के सार को अपने मन्त्र का रूप नहीं मानता है तो तू महा कपटी द्वैतवादी है कि तेरे अङ्ग अङ्ग में द्वैत की वासना भरी है। इसी का नाम तिमिर अन्धकार अज्ञान है। "विश्व अकालं परमानंदमव्ययम" मेरी श्रुति है। मैं अकाल पुरुष परमानन्द स्वरूप अविनाशी विश्व रूप हूं। आशय ये है कि मेरे विश्व रूप रूप की समस्त वस्तु केवल अर्थात निरविकार हैं। किसी शकल वा किसी वस्तु में अच्छे बुरे का दोनों भेद नहीं हैं क्योंकि प्रत्येक शकल के पदार्थ सब कार्य कारण रूप रहते हैं। सो कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि एक वस्तु को स्थिर करके अथवा एक वस्तु का नाम रख के सिद्ध करे कि यह अच्छा है या बुरा है व्यवहार में जो अच्छे बुरे का भेद देख पड़ता है वह भेद अपनी परिचय अपने मतलब अपने हित और एक की अपेक्षा में रहने से रहता व होता है और वही सिखाए समझाए से दृढ़ होता है। और इसी को वासना कहा जाता है। ..... हे चार्वाक किञ्चित् विचार कि मनुष्य का बालक जन्म के पश्चात तो प्रथम पहचान सीखता है। किंतु उससे प्रथम मा बाप कौन हैं और क्या हैं इन शब्दों को भी नहीं जानता और मा को मा और बाप को बाप नहीं कहता। पश्चात मा बाप व अन्य रक्षक पोषक शिक्षक के शब्द सिखाने से जिस भाषा के बोलने वालों में संसर्ग होता है उसमें जिस विषय का जितना शब्दों का व्यापार सुनता है तथा जितने प्रसंग की क्रिया निर्माण करना सीखता है उतने ही का वह धीरे २ बोधक व जान कार होता है वह जिस प्रकार व जाति की वस्तु को पहिचान लेता है व उस को भेद समझ लेता है उन शकलों की वस्तुमें ही भले बुरे को चीन्हता है और उतनी ही उसके शब्द व्यापार उच्चारित क्रिया होती है। शेष अन्य वस्तुयें जिनको उसने नहीं चीन्हा तथा जो क्रिया नहीं सीखी व अन्य भाषा तथा अन्य विषय के शब्द व्यापार में जिन का भाव उसको समझा नहीं होता उनमें भला बुरा कीमती बे कीमती उच्च, लघु श्रेणी, कुल, जाति आदि का ज्ञान उसे नहीं रहता।

सो जिस मनुष्य ने कीमियां की पत्ती संजीविनी व अन्य गुणी औषधों को नहीं चीन्हा है उसको वे यदि मिल भी जायें तो वह उनको तुच्छ ही प्रतीत करता है। यदि किसी अंगली मनुष्य को उत्तम जवाहरात भी मिल जायें तो वह मूल्य न जानने से स्वल्प मूल्य में ही अर्थात गुड़ नमक अन्न कपड़ा आदि के बदले में उन्हें दे देता है। इसी प्रकार धनाढ्यों के उत्तम रस अमूल्य वस्त्र व कीमती कीमती रत्न आदि जो चोरी से बिकते हैं वे सब कौड़ीयों मोल ही बिकते हैं। बालक भी रत्न व सुवर्ण के गहनों को भक्ष्य पदार्थ व खेल की वस्तु समझ कर उसका गुण व मोल मूल्य न जानने के कारण उसके खो जाने या किसी के लेजाने की चिन्ता नहीं करते। इससे सिद्ध है कि कीमती व बेकीमती, भला बुरा कुछ भी नहीं केवल एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

वासना चिन्हारी है। उदाहरण: ये है कि अपरचित गुणी धनी पंडित सभ्य कुलवान ब्राह्मण क्षत्री उच्च श्रेणी जाति और निगुणी, निर्धनी, मूर्ख, असभ्य, अकुलीन नीच श्रेणी जाति इन दोनों को साधारण कपड़ा पहिराकर एक स्थान में बठा देने तथा लड़के को लड़की के वस्त्र पहरा देने से अपरचित जो विद्वान होगा वह भी उसका नाम गुण चलन अवस्था जाति सम्बन्ध आदि का भेद कथन करने योग्य न होगा और पशु पक्षी तो गोरे काले सुन्दर कुरूप का भी भेद नहीं देखते।

हे चार्वाक उच्छिष्ट भोजन व पुराने वस्त्र को धनी बुरा समझता है किंतु कंगाल को वे ही सब भले होते हैं। इसी प्रकार एक ही मनुष्य किसी का मित्र और किसी का शत्रु होता है। तथा अपरचित मनुष्य में बिना प्रयोजन के किसी मनुष्य से शत्रुता व मित्रता व अच्छे व बुरे की भावना नहीं होती इससे सिद्ध है कि भला बुरा व मित्रता शत्रुता कुछ नहीं केवल सारतो अपना मतलब है। मतलब ही से पिता माता भाई पुत्र और स्त्री आदि हैं। अभिप्राय ये है कि अपने आशय की सिद्धि न होने से सब एक दूसरे को छोड़ देते हैं और अलग होजाते हैं। फिर तू किस कारण ऋग यजु साम आदि को बुरा बताता है। विश्व में कोई छोटा बड़ा व बुरा भला नहीं है। जो भले बुरे रूप से परिणत होता है वही तो अपना मतलब अपना हित और अपनी ही वासना होती है।

उत्तम स्वाद्य पदार्थ - मेवा, फल मिष्टान्न घृत दूधादि निरोगी मनुष्य को हित कर और शक्तिदायक होते हैं और यही उत्तम पदार्थ रोगी मनुष्य को अहित कर और रोगोत्पादक होते हैं। बादाम मनुष्य को शक्ति रूप है किंतु घोड़ों को विष रूप इन सब उदाहरणों से सिद्ध है कि कोई वस्तु भली बुरी नहीं है अपने हित में हित और अहित में अहित होती है। अन्न प्राण रखनेवाला है। विष प्राण खोने वाला है किंतु विष भी जान बचाता है और अन्न भी जान मारने वाला होता है भले बुरे का ज्ञान एक दूसरे की सापेक्षता से होता है। जैसे तांबे से चांदी और चांदी से सोना आदि श्रेष्ठ है इसी प्रकार व्यवहारिक भाव में प्रजा से राजा श्रेष्ठ है और धन की तृष्णा से कीर्ति की तृष्णा श्रेष्ठ है और स्वाद्य पदार्थों में घृत और मान्यों में पिता उपासना में सत्यावलम्बी व साधना में सन्तोष पुरुषार्थ में आत्म विचार शिक्षकों में गुणग्राहक ज्ञान में अनुभव और विश्व में कैवल्य में ही अकाल पुरुष श्रेष्ठ है। ऐसे ही समस्त वस्तु तथा प्राणी और मनुष्य मात्र में एक व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा रूप गुण में न्यूनाधिक होता है इन उदाहरणों से तो यही एक बात सिद्ध है कि द्वैतता केवल समझ के सिवाय से ही दृढ़ होती है। और यही निश्चय से सिद्ध भी है। कारण प्रमाण ये है कि सुषुप्ति अवस्था व गाढ़ निद्रा में शक्ति अर्थात ज्ञान ही एक वस्तु है कि जो चेतन साक्षी और विद्यमान रहती है उस अवस्था में ज्ञान रूप क्रिया कुछ नहीं रहती है। वही शक्ति अथवा ज्ञान स्वप्न अवस्था में संयोग क्रिया से रूप युक्त हो देख पड़ती है। जैसे आसमान में संसर्ग से नाना रंग और रूप रूप की विचित्र २ शकलें बना करती हैं और उन्हीं रूपों से क्रिया भी उदय होती है किंतु उस रूप में अहंकार तथा अहं भावना अथवा बुरे भले का ज्ञान नहीं रहता तथा मनुष्य द्वैतता मानने के कारण जागने पर अपने में अहं भावना करता है व स्वप्न के मिथ्या स्वरूप में वा उसकी क्रिया में बुरे भले की कल्पना करता है। कि मैं ने आज भला या बुरा स्वप्न देखा तथा अपने को करता भोक्ता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मानता है। हे मनु इन्द्र तु कहता है कि हे चार्वाक अपने को करता भोक्ता मानना ही मनुष्य के लिये यही द्वैत भावना भ्रान्ती वा अज्ञान है कि जो मानने से दृढ़ हुवा है इसी से असत्य सत्य सा प्रतीत होता है। हे चार्वाक सत का अभाव नहीं असत में भाव नहीं ऐसा जानना ही सत्य है। तु जो ऋग आदि को बुरा कहता है ठीक कहता है कि वे अनादि नहीं लौकिक को नित्य कहना ही कहनावट है।

यद्यपि उनमें जो कुछ है वह सब तेरा ही कथन है और तू ही समस्त जीव और उनकी क्रिया तथा मानुषी प्रपंच प्रतीत होता है और तू ही सम्पूर्ण देखता है सो तू आप ही सब कुछ है तेरे अन्य कुछ नहीं है। फिर द्वैत भावना में जो समस्त शकलों का जो शब्द व्यापार है वही असत्य है और सत्य तो केवल तू ही है यही सत्य है। ईश्वर जीव पुण्य पाप उत्पन्नता और नाश मेरा तेरा ये वह कर्ता भोगता उत्तम मध्यम मन बुद्धि अहंकार चित आदि सब शब्द व्यापार द्वैता के हैं इसी द्वैता की दृष्टि ने मनुष्यों में तृष्णा व अधिरोग उत्पन्न किया है और बड़े बड़े पारंगत विद्वानों को भी व्यामोह में डाल दिया व डाल रक्खा है जैसे कि श्रुति प्रमाण है। श्रुतिः

"न पूर्वे वार्ता न कदापि दृष्ट्वा न श्रूयते हे ममई कुरंग। एको तृष्णा सर्वत्रः विनाश काले विपरीत बुद्धि"

अर्थ ये है कि ये कोइ प्राचीन वार्ता नहीं है न कभी देखी गई न सुनी गई कि सर से पाँव लो ही ये कूरूप है और ये क्या है एक प्रवेश की हुई संसार में तृष्णा है कि जो सर्वत्र बुद्धि को विपरीत कर के समता रुपी अमरत का नाश करती है। यही एक ऐसा रोग है कि जब मनुष्य में ये रोग व्याप्त होता है तो उसमें असत्यता छल निर्दयता धूर्ता दम्भता कृतघ्नता और विश्वास घातकता उत्पन्न हो जाती है। और द्वैत कल्पना ही इस विनाशकारी तृष्णा का उपादान कारण है। इसी तृष्णा रुप अधि रोग का विनाश करने के लिये मैं ने आप ही उपदेश क्रिया ईश्वर जीव प्रकृति कर्म काल योग व विचार व्रत सन्ध्या बन्धन साधन धर्म उपासना मर्य्यादा दण्ड का प्रबन्ध लोक सम्मत पर पृथक पृथक रुप में नित्य नैमिमितिक यज्ञादि कर्म तथा भगवत आराधना आदि उपासना रुप तपों और पुनर जन्म आदि जन्म होने और दुख सुख को भोगने का भ्रम भय शंका संदेह उत्पन्न कर और वेद शास्त्र श्रुति स्मृति उपनिषद आदि ग्रन्थ रच कर भेद उत्पन्न किया है और तप मंत्र जप प्राणायाम आदि योग साधन और अनेक प्रकार की साधना नियत कर के वेद के मन्त्रों को वीर्य रुप और उपनिषद आदि को वृक्ष के समान कि जिस से वीर्य की प्रीक्षा होती है प्रकट कर के वीर्य से वृक्ष और वृक्ष से वीर्य की उत्पति का चक्र चला कर निश्चय से इस भ्रम भय संदेह को प्रकट कर कि जो जैसा करता है वैसा पाता है। मैं ने संसार को संसार रुपी सागर बन्धन से मोक्ष अर्थात पार हो जाना कहा है। और नाम और रुप का माया कृत सम्बन्ध कहा है कि बिना नाम के रुप वाले की प्रतीत नहीं होती और रुप के देखे बिना नाम वाले का निश्चय भी नहीं होता। सो इस भ्रम उत्पति से और "सोऽहं" श्रुति को शब्द से मिलाकर आत्म स्वरुप का भली प्रकार निश्चय हो जाना और उपनिषदों को वेद का अङ्ग बताना इस हेतु कहा है कि बिना तृष्णा के मिटाय उपनिषदों का बोध नहीं होता और बिना उपनिषदों के जाने वेद के मन्त्र भाग का यथार्थ ज्ञान किसी मनुष्य को नहीं होता ये मिथ्या भ्रम केवल इस लिये ही मैं ने सर्वत्र फैलाया है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म में रुचि और प्रवृत्ति की वृद्धि होकर विश्वास की नियुन्ता दृढ़ हो। कारण कि यज्ञादि कर्म और
कर्म योग उपासना आदि की जो विधि ऋग यजु साम में मेरी कही हुई है वह केवल अन्तः करण
की शुद्धि मात्र को ही है मोक्ष का साधन तथा मोक्ष का कारण नहीं है। कारण कि मोक्ष जो
शब्द है ये भी भ्रम मात्र ही है कि जो कर्म करने वाले में स्वर्ग आदि जैसी बातों की रस और
वासना को बनाय ही रखवती है। किंतु जब भ्रम से विश्वास दृढ़ होजाता है। तो वही
विश्वास सब को फली भूत होकर चित व बुद्धि को शुद्ध व निर्मल करता है। और जब चित व
बुद्धि शुद्ध व निर्मल होती हैं तो तृष्णा से छूट कारे का यत्न व उपाय किया जाता है। और
इस उत्कट रोग तृष्णा से छूट कारे की मुख्य औषधियाँ ही नियत हुई हैं॥ सत्य धारण
और विचार। द्वैत भावना जो केवल व्यवहार भेद के बोध हेतु कल्पित हुवा है। यही इस
रोग तृष्णा को इस प्रकार उत्पन्न करता है कि मनुष्य जब अपने से अन्य के विभव को देख
ता है कि जो उत्तमोतम पदार्थों का उपभोग करता है तो इसको अपने पर द्वेष। अथवा
पुनर जन्म की भ्रमत शंका उत्पन्न होकर इसके मन को छोटा कर देती है और ये मलिन चित
तथा निर्बल होकर साहस हीन और असत उपासी होजाता है। किंतु भ्रम को छेद कर इस
श्रुति पर विचार नहीं करता कि "विश्व अकालं परमानन्दम व्ययम" मेरा रूप व स्वरूप
है। तत्व ज्ञान में द्वैतता की सिद्धि नहीं होती है ये सब अच्छे और बुरे सम रूप केवल
एक मेरा ही परमानन्द अविनाशी स्वयं आकाल विश्व रूप स्वरूप है कि जो मैं ने
आप ही अपने हर्ष को ये मिथ्या स्वाँग रचा है। यदि ऐसा अनुभव हो तो तत्काल ही
द्वैत भेद भ्रम का व तृष्णा का खण्डन हो। कारण कि प्राणी मात्र में कभी कोई एक
अवस्था में नहीं रहता सब को सुख तथा दुःख समान प्राप्त होते रहते हैं यही शक्ति
धारी का नियम है और ऐसी ही मेरी विभव प्रकृति तथा शक्ति है। सार अंश ये है कि
इस प्रकार मिथ्या द्वैत भेद कल्पना से उत्पन्न होने वाली तृष्णा से रहित होने को मनु-
ष्य मात्र के लिये मैं ने अनेक प्रकार से अनेक उपदेश अपने आप को किये हैं।

सो हे मनुइन्द्र इस से आगे तू आप ही अपने नाम और रूप का माया कृत सम्बन्ध रचन कर इस
प्रकार तर्क करता है कि जैसे कोई किसी नाम को सुन के उस नाम वाले के रूप की प्राप्ति करता है
और इस भांति आप ही उत्तर देता है कि जैसे को किसी रूपान्तर वस्तु को देख उस रूपवति
वस्तु के नाम का निश्चय करता है। तू आप ही भ्रम संदेह रूप बनाता है और आप ही उस का
खण्डण कर उसे मिथ्या द्वैत भेद कल्पना आशा तृष्णा बता हुवा वेद के भावार्थ सिद्धि कर-
ने के लिये अनेक नाम रूप वाला बनकर तर्क उत्पन्न करकर के और तर्कों के ऊतर वर्णन
करकरके आप ही अपने को द्वैत भेद कल्पना आशा तृष्णा निवारणीये उपदेश करता है।

## प्रथम तर्क! वेद क्या है।

### वेदकिम? अयं।

सागर से की बुदबुद वाणी तू और नहीं मैं और नहीं। मुझ से न तुम अपने से अलग तू और नहीं मैं और नहीं
हे राजेन्द्र तू किससे तर्क करता है कि वेद क्या है। और कौन ये उत्तर देता है कि वेद में ही दे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे चार्वाक क्या तू सागर रूप राजेन्द्र नदी है और हे राजेन्द्र क्या तू बुद्द बुद्द रूप चार्वाक नहीं है तुझे कौन तृष्णा व्यापी जो बुद्द रूप का चित्र बनाया और मैं और नदी तू और नदी का राग गाया। कारण यही है कि ये मेरी प्रकृति आकृति का लक्ष्य ही है। मेरी प्राकृति यही है कि मैं आकृति रूप बनाऊं और आकृति चिन्ह से अपनी अवस्था को निश्चय से जानूं सो आप ही तर्क करता और आप ही देता हूं कि वेद क्या है मैं आप ही वेद हूं आप ही धर्म और आप ही कर्म हूं सुख शान्ति का नाम धर्म और एक सम्मत का नाम सत्य लोक सम्मत नीति मर्य्यादा कानून ईमान और ला और सनातन धर्म का नाम ही कर्म है और धर्म व कर्म दोनों पर्य्याय वाचक शब्द हैं। इसी प्रकार आशा इच्छा और तृष्णा स्वार्थ को कहते हैं। सो "जानामि मम परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम। आशा न तृष्णा धर्मो न कर्मो नैव वेदाय" श्रुति अनुकूल। मैं जानता हूं मेरे रूप को प्रत्यक्ष है गगन की उपमा वाला है उसमें न इच्छा है न स्वार्थ है न धर्म है न कर्म है निश्चय करके मैं आप ही वेद रूप स्वरूप हूं। फिर वेद क्या है वेद व्यास यदि कोई वेद है तो वही भ्रम अविद्या द्वैत आशा तृष्णा रूप मिथ्या है।

नहीं मेरे अन्यता और कोई वेद नहीं केवल मैं ही वेद व्यास हूं ऋग यजु साम अथर्वण मेरी चित श्रुति का नाम है और इस श्रुति अनुकूल मैं ने ॐ कार अपने रूप और महावाक्यों के शब्द द्वारा अपने स्वरूप की अनन्त माहिमा को प्रकट किया है। किंतु जो विधि उनकी साधना की स्पष्ट कर दिखाई है उनके लक्षार्थ का बोध जब द्वैज आर्या उत्पति द्वैत भावना तृष्णा के प्रकट होने से मनुष्य मात्र की बुद्धि से दूर हो गया और विश्वास की न्यूनता की जो परनाली थी खण्डन हुई तो समस्त वराह कालि सृष्टि बन गई और वराह कल्प का राज्य हुवा तृष्णा अत्यन्त बढ़ गई। और तृष्णा के उत्पन्न होते ही समस्त सृष्टि गू मक्षण करने लगी उस समय सर्वथा मनुष्य मात्र ने अद्वैत पथ को छोड़ द्वैत भाव में अपना अपना अपना निश्चय सिद्ध किया और सब कोई द्वैतता के मार्गों पर चल चल कर इस प्रकार के कर्म करने लगे कि प्रथम सब ने आर्या द्वैज बन के स्वार्थ को ग्रहण किया "आर्या वर्ते भारत खण्ड जम्बू दीपे" जैसे जैसे मन्त्र और संकल्प विकल्प की परनाली फूली विचार धर्म की जगह आचार धर्म ने घेरी निष्काम कर्म धर्म सिद्ध नरहा जगत की ईश्वरी गति भ्रष्ट हुई तथा देश भक्ति कि जो ईश्वरी भक्त गति थी नष्ट हुई प्रवृत धर्म के मार्ग सौ ता सुखा का निवृत गति धर्म के मार्ग का सागर पार खण्ड भरा टूटा। प्रवृत मार्ग में लोक हित कर्म को मुख्य धर्म न मान के संसार ने परोपकार से मुख फेरा अभक्ष्य तथा कुसंग का ग्रहण आचार और मानव धर्म का तृष्कार विचार बना और निवृत मार्ग में पुष्प स्थानों पर शूल उगे निःसंग अवस्था के पौनड़े नपट आश्रमों से मुक्त होना तो एक ओर पार खण्डी निठल्ले आशा तृष्णा के आचार में घुसे और अपने को भली प्रकार जान और पहचान ना तो दूर रहा और उलटा विचार में विघ्न करने लगे और कोई धर्म संस्था विमुक्त की परनाली अछूत न रही अद्वैत सिद्धान्त ने द्वैत में पलटा खाया द्वैतता के स्वयं अद्वैतता को किसी युक्ति और तर्क का साहस न रहा तो मैं ने कि जो मैं ही केवल सम्पूर्ण रूप वस्तु और शक्ति रूप हूं और मैं ही कारक व मोरक रूप हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

निरन्तर एक गति हूं। अर्थात सूक्ष्म रूप से स्थूल होकर गोचर होना व स्थूलाकार गोचर से सूक्ष्म व अगोचर हो जाना मेरा मेरे लिये एक नियम नियत है। अर्थात ३० भांति की प्राकृत क्रिया में ही मैं नित्य प्रवृत रहता हूं और फिर भी निर्लेपः व सुतन्त्र हूं। जगत में जब नाना प्रकार के अनाचार को आशा तृष्णा सहित मैं ने बढ़ा पाया तो प्रथम अपना कृष्ण अवतार रूप बनाया और लोक हित के प्रतिकूल नाना प्रकार के संशय मय संदेह भेद भ्रम उत्पन्न कर समस्त जगत को एक ही अभेद धर्म ध्रुव धर्म पर प्रचलित करने के हेतु तथा धर्म मार्ग में जितनी क्रिया तथा साधन हैं तिन सबका साध्य केवल सुख है इस बात के प्रकट करने के निमित सर्व प्रकार का विकार हटाने को सब वेद और उपनिषदों और सर्व शास्त्रों का सार अंश अपनी दृष्टि से और प्रधान क्रिया से एकत्र कर वेद व्यास नाम रूप से महाभारत ग्रंथ रचन कर उसके अन्तर भीषम पर्व में अमृत्य आशय सत्य सनातन धर्म ध्रुव धर्म के सार अर्थात अदृष्टि गति अनुसार श्रुति अनुभव और प्रत्यक्ष तीनों प्रमाणों के अनुकूल अपनी ब्रह्म विद्या और अध्यात्म विद्या के रहस्यों को खोला है वह परमार्थ का लाभ देने वाला सर्व वेद और विद्याओं का वीर्य अंकुर रूप मेरा आप अपना अपने ही को कृष्ण अर्जुन रूप से द्वैत भेद कल्पना आशा तृष्णा निवारणीये उपदेश है।

महाभारत कोई प्राचीन इतिहास नहीं है किंतु इतिहास से किसी काल में कम भी नहीं कारण कि महाभारत सृष्टि क्रम रचना उत्पति आदि अन्त और लय के प्रत्यक्ष मार्ग बताने वाली मेरी शिक्षा है। जिस समय मैं ने महाभारत को रचन किया था उस काल तक मैं ने ऋग यजु साम को ही अपरोक्ष किया था चौथा अथर्वण मेरे हिरण्य गर्भ रूप में वास कर रहा था - महाभारत के मध्य का एक एक नाम और स्थान विचित्र गूढ़ अर्थ की वह शिक्षा देने वाला है कि जिसे जानकर मनुष्य को फिर कुछ जानना नहीं रहता है जैसे भीषम कि ये एक असंग अवस्था मेरी का नाम है इसी प्रकार सब नाम और स्थानों और उसमें वर्णी चरित्रों के महा गूढ़ से भी गूढ़ अर्थ हैं। महाभारत में द्वैत भेद कल्पना आशा तृष्णा निवारण उपदेश को ही भगवत गीता सर्व संसार कहता है। इसमें ऋग के अनुसार तो मैं ने उसके ५ वे अध्याय के मन्त्र २६ व २८ में साधना दिखाई है और यजु के अनुसार छटे अध्याय के ११ व १२ मन्त्र में सिद्धान्त और १३ व १४ मन्त्र में साधना की क्रिया को बताया है और साम के अनुकूल आठवें अध्याय के ८ वे मन्त्र से २३ मन्त्र तक एकाग्र और मोक्ष का वर्णन किया है। अथर्वण का अभिप्राय नवी अध्याय में दिखाया है। सो मेरे इस ग्रन्थ रूपी देह में ऋग से ज्ञान का अङ्ग और यजु से कर्म और उपासना का अङ्ग अंश और साम से वैराग्य और भक्ति का साधन एकत्र किया गया है। अथर्वण का ज्ञान रूप आनंद सर्वत्र सामान्य रूप से भरा है। तथा नवी अध्याय में उसकी विशेषता है। और विचार शक्ति से तो देखने में ऋग यजु साम अथर्वण के सब अङ्ग सामान्य और विशेष होकर प्रतीत होते हैं। तथा गीता श्रुति की महिमा को मनुष्य पाठ मात्र से नहीं समझ सकते वैराग्य साधन और विचार की युक्ति से तो उसका गूढ़ से गूढ़

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लक्षार्थ भी निश्चय हो जाता है। और फिर ऐसे मनुष्य को कुछ करना नहीं रहता वह आप ही कृत कृत्य होजाता है। उसे फिर किसी वेद के पढ़ने तथा किसी कर्म व साधन के साधने की इच्छा नहीं रहती है। वह स्वतः निर्वैर रूप होजाता है। अल्प बुद्धि वाले जो अपनी सारी आयु पाठ मात्र में व्यतीत करते हैं वह गीता के लक्षार्थ को नहीं जानते वास्तव में गीता वेद रूपी गाय के उपनिषद रूपी दुग्ध से मथ्यन होकर निकली है। सम्पूर्ण वेदों में गीता शिरो मणी वेद है कि जिस के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है।

गीता के उपरान्त जो शास्त्र स्मृति पुराण हैं व और जो अन्य ग्रन्थ हैं उन की कथना अथवा सर्व विद्या मेरेही आगम निगम वेद रूपी आश्रय पर है। किंतु अनुभव वाणी स्वतः सिद्ध है वाणी ही श्रुति है और वाणी ही ॐ शक्ति रूप है और वाणी ॐ ही बोधक रूप है और सारा ब्रह्माण्ड अक्षर मय है इस लिये " एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति " श्रुति अनुकूल मैं प्रकट करता हूं कि बुद्धि विचार से जो कुछ वर्णन होता है उसी का नाम स्मृति होता है और जो बात प्राचीन होती है वही पुराण कही जाती है सो पुराण कि जिन की भाषा नवीन और संस्कार की हुई सी प्रतीत होती हैं वह भी कोइ इतिहासक ग्रंथ तो हैं नहीं कि विचार हीन बुद्धि वाले मनुष्य उन के गूढ़ अर्थ को तुलमता से ग्रहण करलें वह तो अत्यन्त गुप्त आत्मीय मेरी आत्म शिक्षा है कि जिन के रूपकमय चरित्रों को वही समझ सक्ता और जान सकता है कि जो निष्कलङ्क अनुभव गामी हो सो जो ऐसा नहीं है वही वह है कि जो आशा तृष्णा का मतवारी निर्बुद्धि मूर्ख है सो जो ऐसा है वही पुराणों में दोष भी निकालता है। अभ्र रूप एक ही गगन रूप मैं वेद महा भवन है पुराण इसकी बाटिका और शास्त्र इस का कोट स्मृति इसके गढ़ गज और उपपुराण इसकी बुर्जियां हैं। और जिस प्रकार विश्व के सम्पूर्ण प्रकार व जाति के पदार्थों के स्थूलाकार शरीरमें प्रति अवयव के भीतर बाहर चिन्ह प्रतिचिन्ह कदली स्तम्भवत समाये हुए हैं। और जैसे प्रति चिन्ह के भीतर बाहर अवकाश भी व्याप्त हुआ है और ऐसा कोइ भी चिन्ह नहीं कि जो अवकाश रहित हो तैसे सूक्ष्म रूप गति के उदर मैंये सारी ब्रह्माण्ड समाया है। और जैसे परमाणों के उदर में समस्त विश्व समाया है। और बीज के उदर में वृक्ष समाया है। और जैसे शब्द का अकथनीय चमत्कार आकृति के अवकाश में समाया है। कि आकृति के अवकाश से ही शब्द की उच्चारण क्रिया और ध्वनि प्रकट होती है। और जैसे आकृति में शब्द ही शक्ति रूप चिन्ह है। और जिस प्रकार गुण से गुणी और गुणी से गुण की पृथकता नहीं होती एवं अनेक विद्यायें धर्म बीजात मूलम मूलात बीजम के सदृष्ट सम्पूर्ण विश्व को अभ्र रूप गगन रूपी महा भवन के अन्तर शब्द आकृति से धारण किये हुए आप इस भवन के कोट की दीवालों के किंगूरे बनगई हैं। और यह महा भवन मन रूपी खाई से इसी प्रकार घिराहुआ है। कि विद्वान इस खाई के पेरे भवन के अन्दर जाने का मार्ग नहीं मिलता है। कि जहां मैं एक अकाल रूप वेद और परमानंद स्वरूप वेद आनन्द पूर्वक स्थित हो आस्तिक धर्म की पालना करते हुए निवास करता हूं। और ऊपर वर्णन की हुई सामग्री और सेना के बल से अज्ञान रूपी शत्रु को अपने समीप नहीं आने देता। ऐसी अवस्था में अश्रद्धावान और आलसी पुरुष आशा तृष्णा वश हो [illegible] मन रूपी खाई में गिरते और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और ग्रिने के पश्चात अहं बुद्धि से भाग्य तक़दीर और पुनर जन्म के भ्रम रुपी संदह को उत्पन्न कर अपने वर्तमान काल के घिन्न उत्पन्न करने वाले कर्मों के फल भोग को अपने जन्म जन्मांतर के कर्मों का फल भोग भोगना कह कह कर रोते हैं। किंतु श्रद्धा वान पुरुषार्थी जीव ड़ हँसते खेलते नाना प्रकार के दुःखों को झेलते भी मन रुपी खाई से पार ही होजाते हैं।

## द्वितीय तर्क

### सतो सत्य किम? अयं ।

हे वेदव्यास रुप राजेन्द्र? तू क्या कह रहा है। कौन द्वैज और कौन आर्या कौन धर्म और कौन अधर्म सतों में सत्य तो केवल मैं ही चेतन्याचार्य हूं। मैं सम्पूर्ण विश्व का रचणक सिद्ध नियम एक ही बीज वृक्ष हूं। मैं ही जीव मैं ही ईश्वर मैं ही जगत मैं ही वस्तु मैं ही जड़ मैं ही चेतन शक्ति रुप कारण कार्य का धर्म मैं ही उत्पादक धर्म मैं ही पालक धर्म मैं ही नाशक धर्म हूं। कालान्तर मैं ही हूं कि जो पालक उत्पादक नाशक रुप रहता हूं। फिर द्वैज आर्या आदि का भ्रम भेद कैसा।

दम्भ धर्म तथा धर्म के नाम पर अधर्म्म तथा अमर्य्याद का बढ़ना व घटना सदैव ही शक्ति और कार्य कारण रुप मैं हूं वेद मैं हूं कर्म मैं हूं पुरुषार्थ मैं हूं श्रद्धा मैं हूं काल मैं हूं चक्र मैं हूं योग मैं हूं विचार मैं हूं नित्य मैं हूं न्याय मैं हूं। अनेक प्रकार की विद्या और अनेक देवताओं की अर्चना ब्रह्म का अङ्ग उपदेश और अङ्ग अर्चना केवल सर्वत्र एक समाधिस्थ सिद्ध विद्या वेद और वेद का सार तत ब्रह्म यज्ञ विधि आज्ञा रुप याज्ञवल्क्य मैं हूं। विष्णु भक्ति का आराधना सार प्रह्लाद विष कष्ट नारद मैं हूं। तप रुप स्वरुप संतोष रुपी उपासना अचल धर्म ध्रुव रुप मैं हूं। बाल्मीक रुप राम चिरित्र ज्ञान अवस्था मिर्य्यादा महिमा भक्ति प्रेम परमार्थ धर्म सम्बन्ध मैं हूं। प्राप्ति उत्पति परमानन्द शिव अर्चन रुप सनकादिक मैं हूं। अनेक निश्चय आत्मा परमात्मा ज्ञान दृष्टि ऋषि रुप ऐत्रेय अत्रि मैं हूं। योग साधन सिद्ध दीर्घायु रुप काकभुषण्ड मैं हूं। विज्ञान आनन्द निर्वाण निर्वेदपद विदेहमुक्ति अवस्था उत्तम परमानंद का लक्ष परम हंस गति बाणी समझ महात्मा स्वयं तत्काल रुप स्वरुप आकृति अल्पज्ञ सर्वज्ञ मग्न अवस्था श्री मुनि रुप शुकदेव मैं हूं। अद्वय रुप नमस्कार नमस्तो नमोनमः रामराम जयश्रीजी जे जे हरी अवधूत देह शरीर और जगत से भिन्न सर्वत्र केवल ब्रह्म आकार आकृति बाणी रहित अगोचर अखण्ड वृति रुप स्वरुप जड़ भरत मैं हूं एकं सर्वोपर प्रयोजन रहित सर्वज्ञ सर्व इन्द्रियों का विषय सर्व जगत रुप स्वरुप वस्तु सर्व दृष्टि सर्व साक्षी अद्वय प्रकाश आप ही अपने अंगों में खेलने वाला अव्यय व्यापक माया रुप माया विस्तार स्वरुप वाम देव मैं हूं। परमार्थ निश्चय शिव स्वरुप और कल्पित देह जगत विभाग रहित सर्व व्यापी निराकार स्वभाव से ही आत्मा परमात्मा विज्ञान का रहस्य ज्ञान का सिद्धान्त वेद वेदान्त का सार आश्चर्यवत अवस्था कहन सुनन भाव अभाव भेद अभेद में सम केवल एकं रुप आत्मा जगत माया अविनाशी कल्यान स्वरुप जीरण मरण के भय से सुतन्त्र अद्वय चेतन आप अपने रुप का साक्षी अवधूत दत्तात्रेय स्वरुप मैं हूं। स्वतन्त्र परम पद संकल्प निवृत स्वतन्त्र ज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मानु प्रभा सुतन्त्र सुख प्रेम कल्पना आयास और उपाधि से रहित नित्य आत्मा और आत्मा अधिष्ठान सम रूप निश्चिन्त अकर्ता अभोक्ता स्वयं मुक्त निराकार निराधार निर्ध्यान अमृत तथा स्वरूप शान्त निर्लेपः कर्म निवृत निश्चय अद्वय रूप अवधूत अष्टावक्र मैं हूं। महात्मा, बाणी, श्रोत्र, अष्टावक्र, सत्सङ्ग, उपदेश, गृहस्थ, आश्रम, राज्य, कार्य, विदेही, साधु, दृष्टि, चक्षु योग, आकृति शब्द, संसार व्यवहार, रूप, स्वरूप, विलक्षण अवस्था पुरुष प्रकृति ज्ञाता ज्ञान निर्बन्ध अग्नि अन्तःकरण प्रकाश भाव प्रभाव निश्चय कि जिसे इन्द्रियों का विषय नहीं जिसका भाव और अभाव नहीं और जो अविनाशी प्रमाण रहित जन्म रहित नित्य एकरस पुरातन पूर्ण शुद्ध जितेन्द्रिय वीर्य यज्ञ उत्पत्ति पालन सेव स्वतः प्रवृत तितिक्षा त्यागी परम हंस अमोघ प्रभा रूप स्वरूप पुरुषोत्तम प्रत्यक्ष हूं सो जनक मैं हूं। निश्चय पारि पूर्ण आत्मा चेतन केवल निर्णय जगत रूप सर्व श्रेष्ठ ज्ञान विचार अनुभव स्वरूप महर्षी वसिष्ठ मैं हूं। काला पीला लाल अनेक प्रकार का जगत माया मास श्वेत वर्णी उपनेत्र मैं हूं। साधनों के सारे बन्धन यज्ञ तप उपासना ध्यानादि कर्म योग मार्ग से रहित यथार्थ स्वरूप दृष्टा केवल निश्चय निरहंकार गुणेंद्रियों के समूह से विकार रहित अकर्मे अवस्था का आनन्द रूप मुनि पराशर मैं हूं। त्रिकाल दृष्टि बद्रिकाश्रम उत्तर माना ग्राम स्वयंस्कान्त स्थान व्यास पुस्तक वेद और वेद की शारवा शक्ति और पुराण वेदान्त ब्रह्मसूत्र निवृत रूप परमार्थ धर्म व्यवस्था नीति महाभारत बहु प्रकार की विद्या व्यास मोक्ष स्वरूप कृष्ण द्वैपायन पिंड मैं हूं और विश्व का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा रूप आकाश (खं ब्रह्म) मैं ही जगादीश रूप स्वरूप सबों में केवल सत्य हूं।

" अविनाशं तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। विनाशयति यस्त्वास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

अर्थ आशय ये है! कि मेरे ब्रह्म आकाश रूप स्वरूप में कि जो मेरा अविनाशी रूप स्वरूप है सम्पूर्ण विश्व स्थित है पृथिवी जल अग्नि वायु मेरे ही आधार में क्रम क्रम से सर्वथा व्याप्त हैं सूर्य आदि ग्रह नक्षत्र वायु मंडल में स्थित एक अन्योन्याश्रयी आकर्षण शक्ति में विश्व मुख आकाश में कि जो नित्य ही अविनाशी ब्रह्म है स्थित है। मैं आकाश रूप स्वरूप अविनाशी ब्रह्म जिस प्रकार कि रात्रि में सूर्य दिन में चन्द्र व तारे और भूमि में दबके अग्नि, सूखने में जल, निस्पन्दता में वायु और जल में डूबने से पृथिवी का लोप होता रहता है इस प्रकार मेरे आकाश रूप स्वरूप का कदापी लोप नहीं होता। नीलाई रूप मेरे आकाश रूप की आकृति है और " शब्द गुण माकाशम् " प्रमाण से सर्वथा मेरा प्रतिबिम्ब साकार ही पड़ता है। जैसे सूर्य्य का बिम्ब जल में पड़ता है वैसे आकर्षण रूप अव्यक्त शक्ति से मैं अगम वेद पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश आदि नाम से आकर्षण शक्ति स्वरूप शब्द की धारणा बना हुआ अशब्द गति में मौन ही हूं। शब्द की धारना प्राणी मात्र के हृदयाकाश में अशब्द गति से रहते हुए मैं ही मौन बिन्दु आकाश हूं।

और मैं पूर्ण बिन्दु आकाश ही संयोग क्रिया से आकृति रूप होता हूं। जैसे घटाकाश और मठाकाश और आकाशी घटना में गरजना लपकना और नाना रंग आंधी पानी तथा नाना रूप के चित्र और विचित्र शकलें प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रकट प्रतीत हैं। "अम्ब स्तु अम्बा गगन पूर्ण पूर्ण नत" से मैं आकाश सागर पृथ्वी अग्नि वायु [illegible] हूं ऐसी भ्रान्ति रहित

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विश्व का उपादान कारण, निमित्त कारण व साधारण कारण प्रसिद्ध है यथा मकड़ी व मकड़ी जाल की भांति सम्पूर्ण वस्तु मेरे आकाश स्वरूप से ही उत्पन्न होकर मेरे आकाश स्वरूप में ही अस्त होती है। वस्तु का आधार तथा विद्या की धारणा मेरे हृदयाकाश ही में समाई रहती है और मेरे रूप आकाश ही से विश्व होता है और फिर गति परिवर्तन से आकाश ही में लीन हो जाता है। और मैं आकाश रूप सब दशाओं में ज्यों का त्यों ही बना रहता हूं। सार अंश ये है कि सातों में सत्य केवल मैं ही हूं हे व्यास राजेन्द्र मनु इन्द्र फिर तुझे क्या शंका और कौन भ्रम है।

## तृतीय तर्क।

### योग युक्तेः कर्म किम!

हे मनुइन्द्र! निश्चय कर मनुष्य मात्र स्वरूप के यथार्थ ज्ञान को जो क्रिया करते हैं उसी क्रिया का प्रपंच नाम योग युक्ति कर्म है। इसी को साधना का सार बन्धन, यज्ञ तप उपासना और ध्यानादि कर्मयोग मार्ग भी कहा जाता है। इसी मार्ग को स्वरूप के यथार्थ ज्ञान का कोई चाल कठन दुरलभ मार्ग नाम है। परिश्रम अवस्था है। और इसके अन्यकि जिसमें किसी वाह्य त्याग की अपेक्षा नहीं है केवल निश्चय मात्र को दृढ़ करना ही सार है वही विहङ्गम मार्ग युक्ति है इसमें साधना और बन्दना को छोड़ कर केवल इसी निश्चय का आभ्यास होता है कि "मैं नहीं हूं" कि जिस को आत्म त्याग कहते हैं। इस अभ्यास के दृढ़ होने से विचार की शक्ति बढ़ जाती है और फिर ऐसा संङ्कल्प उत्पन्न होता है कि जब मैं नहीं हूं तो फिर और कौन है। और जगत क्या वस्तु है। मेरा जगत से क्या सम्बन्ध है। सो जब इन संकल्पों से एक एक का निर्णय हो जाता है तब ऐसा निश्चय होता है कि मेरा अहंकार मिथ्या है। ये जो कुछ मान व भास होता है तीन गुण और पंच इन्द्रियों के समूह का विकार है। ऐसा प्रतीत होते ही सर्व का त्याग हो जाता है। सो विवेक अनुकूल जब अहङ्कार का नाश निश्चय में आता है तब देह और सारे जगत का अधिष्ठान "अयं" शब्द में कि जो एक विश्व की सम्पूर्ण प्रकार व जाति की वस्तु में आकृति आकाश वत रूप स्वरूप से व्याप्त है और कोई भी चिन्ह इस से सृष्टि क्रम का भिन्न नहीं और मुख्य बीज प्रत्यक्ष स्फुरणा अनुभव से साक्षात्कार से ॐ कार (का) चार्वाक (नाम) सिद्ध है। और जिस में नाम रूप गुण प्रकार जाति कर्म स्वभाव व अवस्था का शब्द व्यापार नहीं और जो अशब्द रूप से निर्गुण निष्क्रिय निरवयव निर्विकल्प निरञ्जन निर्विकार निराकार नित्य मुक्त निर्मलः सर्व (ॐ) परोक्ष एक ही सिद्ध ही अधिष्ठान है अधिष्ठान बनता है। जैसे आप मेरे जग प्रलय एक साधारण ही सी बात है। तथा मानुषी प्रपञ्च कि जो मानुषी तृष्णा द्वैत की रचना है। और जो अनियमित अनिश्चित है और जिस का सदैव परिवर्तन होता रहता है। और जिस को एक अच्छा और दूसरा बुरा कहता है व इसी प्रपंच में पृथक पृथक समस्त जाति के जो प्राणी हैं तिन में तत्व विज्ञान नियम से स्वे स्वे जाति की बोली व जाति रचना नियम रहती है। जैसे मधुमक्षका का छत्ता बनाना मकड़ी का जाल बिनना देखा जाता है इसी प्रकार सभी में जाति प्रपंच की रुचि मन भी समाई रहता है किसी को उन्हें उनका कर्म सिखाना नहीं पड़ता जन्मते ही वे सब अपने अपने कर्म में प्रवर्त हो पड़ते हैं। किंतु मनुष्य कि जिस में जाति रचना व जाती बोली दोनों ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बातों का कोई तत्व विज्ञान नियम नियमित नहीं है। और वह अनेक प्रकार की बोली व भाषा और अनेक प्रकार की वस्तु रचने व उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। और जिसके स्वभाव में अधिरोग वासना मिथ्या चिन्ता अनुकरण के नियम से यथा वासना वद्धैनता की दृढ़ भावना केवल शब्द व्यापार से प्रकट हुई है। मनुष्य इसी संसर्ग युक्त जिस भूमि प्रान्ती में जन्मता है तैसी ही मात्री वह भाषा सीखता और वैसी ही भाषन करता है यथा जिस प्रकार उसके मा बाप की भाषा व चलन व्यापार रहन सहन की क्रिया होती है तैसे ही वह भी करने लगता है। इस गति से मनुष्य में व्यक्ति २ की जुदी जुदी क्रिया होती है जुदे जुदे व्यसन होते हैं तिसी कारण मनुष्य के नाना प्रकार के मार्ग रहते हैं तथा सभी मनुष्य अपने अपने स्वभाव व्यवसाय रचना व चलन को अच्छा ही मानते हैं। ५१

अभिप्राय ये है कि हरकोई बुद्धि में अपने को उत्तम और समस्त विश्व को मध्यम देखता है। और जन्म से मरण पर्यन्त अन्य के स्वभाव व्यवसाय का अनुकरण ही करता रहता है अर्थात सीखता ही रहता है। सो जिस जिस संसर्ग में प्रवर्त होता रहता है तैसी ही तैसी रुचि व मत व्यसन व खयाल सब बदलता रहता है। ऐसे ही योग युक्त कर्म आदि की मानुषी रचना में भेद उत्पन्न होरहा है।

जैसे कि कर्म योगी कहता है कि प्राणों की साधना से ब्रह्म की प्राप्ति है और उसकी विधि रेचक पूरक और कुम्भक है। किंतु विहङ्गम मार्गी दूसरा ज्ञान योगी कहता है कि कर्म योग पाखण्ड और असुर गति है ब्रह्म की प्राप्ति तो ज्ञान योग द्वारा विचार अथवा यतन से ही सिद्ध है। कारण कि कर्म योगी तो प्राणों की साधना में श्वास को रेचक क्रिया में देह से बाहर निकालता है और ज्ञान योगी का रेचक तो सर्व सङ्कल्पों को अपने अन्तः करण से बाहर करदेना है। इसी प्रकार कर्म योगी का पूरक श्वास को बाहर से खैंच कर देह के अन्दर भरना है। और ज्ञान योगी का पूरक सङ्कल्प रहित अन्तः करण में ब्रह्म स्वरूप को स्थापित करना है। तिसी प्रकार कर्म योगी का कुम्भक प्राण पवन की गति को रोकना है तो ज्ञान योगी का कुम्भक ब्रह्म रूप स्वरूप के निश्चय को साक्षी रूप स्वरूप में लय कर देना है। कारण कि कर्म कांडी कर्म योगी का साधन तो उस्का कर्म है और ज्ञान योगी का साधन केवल यत्न है। हे मनु इन्द्र ये योग युक्त कर्म का विधान है। सो जो अल्प बुद्धि वाले मनुष्य हैं वे कर्म योग और ज्ञान योग को एक ही करके मानते हैं किंतु इनके अर्थों में भारी भेद है। जैसे गङ्गा में तैरना एक प्रकार का कर्म है परन्तु विचार द्वारा तैरने में दो प्रकार की क्रिया देखने से प्रतीत होती हैं एक तो चढ़ाव पर जाना और दूसरे बहाव पर तैरना। इनमें बहाव पर तैरने का नाम कर्म योग और चढ़ाव पर जाने का नाम यत्न योग युक्ति है। सो बहाव पर तैरने वाला तो जल के वेग से कर्म के समुद्र में पहुंच कर उसके बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं पाता है और चढ़ाव पर जाने वाला उस स्थान को पाता है कि जहां से नदी का आरम्भ हुवा है कि जहां पहुंच कर उस्का यत्न भी छूट जाता है और बुद्धि वान ज्ञान योगी उस अवस्था को प्राप्त होता है कि जिसका वर्णन कृत कृत्य के शब्द से होता है। अर्थात वृत्ति रूपी नदी बहिर्मुख होके इन्द्रियों और इन्द्रियार्थों के वनों में डोलती ही रहती है परन्तु चित के निरोध से वृत्ति रूपी नदी का बन्ध बांधना व बहाव अन्तर मुख करना अर्थात रोकना ज्ञान है यत्न है। और कर्म में प्रवृत्ति होने से कर्म की वृद्धि और अभिमान को विशेषता होती है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किजिससे अकर्म अवस्था आनन्द दुर्लभ होजाता है। हे मनु इन्द्र ये कर्म भ्रम की परनाली एक ऐसा संदेह और भय का चक्र है कि जिसने मनुष्य मात्र की वृति को रजोगुणी बलहीन करके उनके मन चञ्चल करदिये हैं वे अनेक प्रकार की कामनाओं और परिश्रमों में रात दिन लगे हुए आत्म ज्ञान से अर्थात आप अपने से विमुख हो विपरीत भावना से आप ही अपने को खोकर आपही कि अपने आपको खोजते फिरते हैं। अथवा उस नाम मात्र असत्य भांति के ईश्वर की खोजना में अपना अन्मूल्य समा वृथा खोते हैं कि जिसकी खोजना नित्य ही व्यर्थ है। कारण कि वह जो अलौकिक प्रभा रूप अमोघ शक्ति नित्य एक रस है जो न्यूनाधिक नहीं होती तथा जिस शक्ति में अप्रमेता है तथा जिसके समान सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा दीर्घ से दीर्घ अन्य रूप नहीं है उस अलौकिक रूप शक्ति की संज्ञा ईश्वर जीव ब्रह्म है और यही वस्तु अद्वय पुरुष रूपी हे मनु इन्द्र तू ही ब्रह्म ईश्वर है कि जो वस्तुओं में शक्ति की तथा विस्तृत और स्थूलाकार होने की सीमा है और जो कि सूक्ष्म से स्थूलाकार हो कर दृष्टगोचर होने और स्थूलाकार से सूक्ष्म रूप में ही अदृष्ट होजाने तथा अपने अन्य और किसी शक्ति से शक्तिमान न होने की शक्ति रखता है। तू ही स्वयं शक्ति और संपूर्ण शक्तिमान और प्रेरता है। अर्थात "हरिरेव जगत जगदेव हरिः" श्रुति अनुकूल तू आप ही जगत रूप शक्ति और शक्ति रूप नारायण है। हे मनु इन्द्र मनुष्य रजोगुण वृति वासना में पड़कर वास्तविक आशय को न जानकर हे व्यास राजेन्द्र मैं ने महाभारत रचन किया था और दुर्बुद्धि रूप दुर्योधन नाम रखकर महा भारत ग्रन्थ रचन करने के समय हे चार्वाक[१*], वेदव्यास वृति से मैं ने तुझ से ऐसा कहा था कि महाभारत ग्रन्थ के रचन करने में धर्म की परनाली न बिगड़ने देना। सो हे वेदव्यास राजेन्द्र तूने मेरी आज्ञा का पालन किया और अपनी त्रिकालदृष्टि से रजोगुणी सृष्टि के उत्पन्न होने वाली सृष्टि के स्वभाव का विचार करके बद्रिकाश्रम से उत्तर की ओर माना ग्राम के समीप एकान्तिक स्थान में व्यास का पुस्तक में निवास कर अर्थात मन को बुद्धि के स्वयं कर और ध्यान रूपी बुद्धि को चित रूपी पुस्तक में स्थिर कर वेद की शाखाओं को यथा शक्ति संग्रह करदिया और अनेक पुराणों को कि जो वाणी रूप चल रहे थे ग्रन्थों का रूप देदिया और वेदान्त के उत्तम से उत्तम सिद्धान्तों को एकत्र कर ब्रह्मसूत्र को रचदिया कि मनुष्य मात्र की सर्व प्रकार की शंकायें निवृत होकर परमार्थ की प्राप्ति हो और इसी हित से महाभारत जैसे शिक्षक ग्रन्थ को कि जिसमें जिसमें अनेक प्रकार की उत्तम शिक्षा हैं हे वेदव्यास राजेन्द्र धर्म व्यवस्था नीती और बहुप्रकार की विद्याओं को सोध के महाभारत में उन्का वर्णन किया और जैसा कि प्रथम कहा गया है कि इसके भीषम पर्व में सब वेद शास्त्रों और उपनिषदों का सार निकाल कर जैन भेद कल्पना आशा तृष्णा निवारणार्थ उपदेश में ६०० मन्त्रों में कि जो भगवद्गीता कही जाती है मरदिया कि मनुष्य ब्रह्म विद्या की प्राप्ति से विमुख न रहें और संक्षेप से ग्रन्थ को पढ़कर क्लेश से बचते हुए केवल ब्रह्म के सार को ग्रहण कर कृतार्थ होजायें सो हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र महाभारत जैसे ग्रन्थ के रचने वाले तुझे क्या शङ्का और कौन भ्रम है तेरे को तो नित्य मुक्त जीवन मुक्त और सुख ही सुख है। तू तो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१* ॐ शब्द अक्षर का अर्थ चार्वाक शब्द चार प्रकार की वाणी का एक नाम है—

कर्म करके भी किसी काल कर्मों में लिप्त नहीं होता। फिर तुझे योग युक्त कर्मकिम के तर्क करने से तेरा कौन आशय है। तू तो योग कर्म युक्ति भक्ति सब पारवण्डों से अपनी प्रकृति शक्ति के अनुकूल कार्य करते हुए भी शुद्ध ही है। कारण कि तू ही पूर्ण कर्म तू ही पूर्ण विधि तू ही पूर्ण गृहस्थी तू ही पूर्ण अपना प्रेमी तू ही पूर्ण योगी तू ही सर्व सिद्धान्त तु आप ही अपना भक्त और तू आप ही स्वयं ज्ञान और प्रकाश और धर्म है। हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू अपने कृत महाभारत ग्रन्थ के भीषम पर्व में आप ही अपने उपदेश गीता में उसके दूसरे अध्याय के १२ वे मन्त्र के प्रथम अर्द्ध भाग को पृथक करके देख कि तू तो सर्व सृष्टि का वही अर्द्ध मन्त्र बीज रूप है अष्टादश अध्याय के ६६ वे मन्त्र के प्रथम के अर्द्ध भाग अनुकूल तू आप ही शक्ति रूप है और षोष के अर्द्ध मन्त्र अनुकूल तू आप ही सर्व शोक संताप का कीलक रूप है। सो जिस प्रकार तू आप ही सर्व सृष्टि का सार अंश अपने ही रचन किये हुए ग्रन्थ के अर्द्ध मन्त्र अनुकूल विश्वो विराट का सूक्ष्म में से सूक्ष्म और दीर्घ से दीर्घ बीज रूप है। और ग्रन्थ आशय में तू आप ही अर्जुन और आप ही कृष्ण रूप है तू आप ही क्षेत्र और आप ही कुरुक्षेत्र बना हुआ है। और जिस व्यूह का हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तें ने महाभारत ग्रन्थ रच का उसमें वर्णन किया है वह वही व्यूह है कि घट घट रूप में नित्य होती है। और यही व्याधा इस समय भी तेरे को उत्पन्न हो रही है। अपनी रचना महाभारत ग्रन्थ में तू आप ही अर्जुन अधिकारी जीव है और आप ही माया शक्ति अन्धकार व प्रकाश रूप श्री कृष्ण है। तू आप ही प्रत्यक्ष प्रमाण में अपना गुरुत्व गुरु उपदेश है और आप ही अन्तर्य दृष्टि में अपना ईश्वर और आप ही प्रकट में अपनी उन्नति करने वाला अपना शिष्य है। तू आप ही नर और आप ही नारायण का अवतार है। और आप ही नेत्र हीन अज्ञयान वृति धृतराष्ट्र रूप और आप ही स्वयं प्रकाश रूप संजय बना हुआ तर्क करती और उत्तर देता है और आप ही अज्ञान वृति के १०० पुत्र रच कर दुर्बुद्धि को दुर्योधन का रूप देकर अज्ञान वृति का पुत्र और राजा प्रकट कर उस मिथ्या व्यूह का साज सजाता है कि जो महाभारत करके प्रसिद्ध है। हे मनु इन्द्र वेदव्यास तेरी लीला विचित्र है तू किस भ्रम को उत्पन्न कर रहा है तेने तो अपने रचनी महाभारत में प्रत्यक्ष प्रमाण से वर्णन किया है कि अज्ञान वृति से जो जो भावना हृदय में उत्पन्न होती हैं उनकी गति का कोई भाव नहीं इन्हीं को दुर्योधन दुर्बुद्धि कहा जाकर अहंकार का रूप दिया जाता है कि जो देह रूपी क्षेत्र का राजा है इसके ऊपर विजय की प्राप्ति अति कठन है। हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र महाभारत के रचने में आदि से अन्त तक तुही महाभारत रूप बन रहा है महाभारत तेरी ही वह गुप्त अवस्था और वह शिक्षा है कि जिसके विषय में महाभारत का एक एक शब्द पुकार पुकार कर ऐसा कह रहा है कि महाभारत क्या है। और ऐसा ही तेरा भी तर्क है कि

## महाभारत क्या है।

महाभारतमिदं एकं वेदव्यासेन नारायणात्मकं वैशंपायनं प्रकाशितं बीजं ब्रह्म तत्वं प्रणवाख्यम ॥

श्रुति प्रमाण - महाभारत क्या है व्यास रूप नर नारायण अद्वय आत्म प्रकाश रूप बीज ब्रह्म तत्व वस्तु एक ओंकार वेद में है। हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र महाभारत रूप स्वरूप तो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तेराही वैशंपायन अद्वय रूप है महा भारत एक ही ॐ कार वेद प्रकाश रूप बीज तू है। तू ही सर्व प्रकार का पुरुषार्थ और पुरुषार्थ साधन में सर्व नाम रूप महा भारत प्रवृत अर्थ परम सूक्ष्म तत्व अत्यंत गूढ़ अर्थ तू है। तेरे अपने आप के अन्यत और कौन है कि जो वेद व्यास अर्थात महा भारत अर्थात अत्यंत दुर्विज्ञय महा से भी महा वेद के अर्थ को जाने। हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तेरे अन्य और कोइ समर्थ नहीं है। तू केवल मुमुक्षु प्रपंच कार्य रहित अनादि अविद्या निवृत विदेह कैवल्य रूप ब्रह्म जीव गति अभेद कृष्ण द्वैपायन अर्थात कृष्ण अर्जुन संवाद रूप तथा अद्वैत रूप अमृत वर्षा इन्द्र प्रस्था धर्म क्षेत्र और कुरु क्षेत्र कुरु श्रेष्ठ है। तू ही अद्वितीय ब्रह्म विष्णु परम पद है। तू कर्म उपासना ज्ञान रूप वेद है। तेरे को न कहीं पाप है न पुण्य है न स्वर्ग है न नर्क है न जीवन है न मरण है न आवा है न जावा है। न तीर्थ है न वर्त है। और तेरे अन्य न कहीं ऋषि है न योगी न देव है न असुर है न नाग है न वाग है न गुवाल है न बाल है न गोप है न गोपी है न नारद है न सारद है न आशर है न पराशर है न विद्या है न अविद्या है न वेद है न परवेद न मर्यादा है न कुमर्यादा है न गति है न प्रगति है न मोक्ष है न बन्धन है न धर्म है न अधर्म है न कर्म है न अकर्म है न फल है न अफल है न स्नान है न ध्यान है न संध्या है न उपासना है न यज्ञ है न अयज्ञ है न लोक है न अलोक है न सोम है न रस है न शिव है न गण है न योनि है न अयोनि है न पथ है न अपथ है न मुक्ति है न अमुक्ति है न वैकुण्ठ है न धाम है न ब्रह्मा है न विष्णु है न सिद्ध है न असिद्ध है न कीर्ति है न विहङ्गम है न मार्ग है न कुमार्ग है न जनक है न धन है न पर है न अपर है न राजा है न प्रजा है न राग है न द्वेष है न रोगी है न भोगी है न मोगी है न आत्मा है न परमात्मा है न पुरुष है न स्त्री है न पशु है न पक्षी है न गीता है न सीता है न राम है न कृष्ण है न रावण है न महारावण है न शब्द है न स्पर्श है न रूप है न गन्ध है न कहन है न सुनन है न दृष्टि है न मनन है। और यदि विश्व में कहीं कुछ है तो वही भीम गपोला अर्थात नरनारायण दंत प्रपंच कथा स्वार्थ मय धोका है कि जो संशय रूप में आप ही अपने आप को संहार अपना भक्ष कर रहा है। और आप ही अपना नरनारायण रूप बना बना मानमति के स्वांग रच रच कर संशयात्मा स्वार्थ मय धोके की नर नारायण दंत कथा सुना २ इस प्रकार विजित करता है कि है ऐसा न करना ऐसा करना पाप है। और फिर आप ही कहता है कि नहीं पाप नहीं यही धोका और माया जाल रूप है। हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तेरी अद्भुत कथा नर नारायण महा भारत कथा है कि जिस में तू प्रकट करता है कि नर जिसका नाम है वही इन्द्र स्थान है इसी को क्षेत्र इसी को कुरु क्षेत्र इसी को धर्म क्षेत्र प्रकट कर तू आप ही नर ना रा यण के अर्थ का इस प्रकार भाष करता है कि नर क्षेत्र अर्थात अधिष्ठान रूप नारा नहीं है यण द्वैतता अर्थात अद्वैत रूप स्वरूप का मेरा ही नरनारायण भाषन महाभारत महा वेद है। कि जिसका अनेक नाम रूपों में एक वेद व्यास वैशंपायन प्रज्ञा रूप बीज केवल ॐ कार रूप स्वरूप में हूं। महाभारत किसी प्राचीन व्यूह का वर्णो ग्रन्थ अथवा इतिहास नहीं है महा भारत महा वेद ॐ कार रूप पुरुष और प्रकृति संयोग स्वरूप तू आप ही है। महा भारत के अष्टादश पर्व अथवा अष्टादश देवस्य व्यूह तो तेरी अपनी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ही पुरुष प्रकृति संयोग रूप संसृति का रूप है और पुरुष प्रकृति संयोग संसृति का सार भीषम पर्व के मध्य अष्टादश अध्याय रूप भगवद्गीता में तू आप ही प्रत्यक्ष प्रमाण से स्वरूप ज्ञान स्वरूप दर्शन रूप बन रहा है। जैसे कि प्रथम आदि पर्व में ही अब्धि के मध्य नियम सार का वर्णन है सूत जी का सतसङ्ग है और आनन्द है और १२ वर्ष से यज्ञ हो रहा है यह राजा जैन्मजय का सर्प यज्ञ है कि जो महाराज परिक्षित को डसने वाले तक्षक नाग और उसके वंश के नष्ट करने के लिये परिक्षित पुत्र जैन्मजय ने किया है

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र महाभारत रूप तो तू केवल इतना ही है इसके अन्य जो है वही तेरा माया प्रकृति पुरुष संयोग विस्तार है। जैसे कि तक्षक पाताल का राजा है और यज्ञ में हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू सनकादिक सहित विराजमान है। सूत के पुत्र उग्रश्रवा लूम हर्षण वैशम्पायण तीन नाम रखने वाले स्वयं एक ऋषि इस यज्ञ में विराजमान हुये हैं और हे वेद व्यास तेरी आज्ञा व आवृत ऋषि के तर्क से उग्रश्रवा ने महाभारत की कथा सुनाई है कि जो तूने बनाई और गणेश ने लिखवी है। परन्तु सब से प्रथम हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र महाभारत के २४००० श्लोक तूने बनाकर शुकदेव अपने पुत्र को सिखाय व ६० लक्ष में महाभारत को वर्णन किया कि जिसमें से १५ लक्ष देवल मुनि पितृ लोक को ले गये ३० लक्ष नारद ने देवताओं को सुनाये १४ लक्ष शुकदेव ने गन्धर्वों को सुनाये चार लक्ष सनकादिक ले गये एक लक्ष वैशम्पायन नेमित्त लोक में गाये बस इतना ही आदि पर्व का प्रथम अध्याय है।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र इस अध्याय का आशय और सार क्या है। प्रत्यक्ष प्रमाण में अर्थ ये हैं कि अब्धि ४ को कहते हैं और ४ का अन्तः करण संसृति अर्थात संसार रूप है कि जो समुद्र तथा सागर कहा जाता है सो इस सागर के मध्य अर्थात अन्तः करण विराट में कि जो नियम का सार सूत अर्थात एक सतसङ्ग अर्थात अद्वितीय आनन्द अधिष्ठान है इसमें १२ वर्ष का यज्ञ एक युग होता है कि जो मनुष्य मात्र के लिये जन्म पर्यंत १२ वर्ष की अवस्था कलियुग रूप अन्धकार और राजा जैन्मजय का सर्प यज्ञ है। जैन्मजय अन्तः करण में चित को कहते हैं सर्प तथा तक्षक नाग अहंकार रूप भावना अर्थात वासना का नाम है यही परिक्षित रूपी राजा अर्थात बुद्धि का डसने वाला है मन कि जो सूक्ष्म कार्य भाव से महतत्व कहा जाता है और जैन्मजय के अन्तर गत है बुद्धि का पुत्र है — और अन्तः करण में हे वेद व्यास तेरा वेद से ज्ञान और व्यास से बुद्धि रूप है और ज्ञान होने पर अन्तः करण का सनकादिक रूप होता है। सूत अद्वितीय स्वरूप और सूत के पुत्र वैशंपायण प्रकाश स्वरूप शक्ति का नाम है कि जो वेद स्वरूप में आवृत डोरी से संयोग रखता है। सो जिस समय व्यास रूप से उग्रश्रवा का मिलाप होता है उस समय आवर्त ऋषि अर्थात अविद्या निवृत्त होकर महाभारत के अर्थ खुलते हैं कि जो वेद व्यास अर्थात बुद्धि प्रकाश का ज्ञान श्री गणेश कृत अर्थात शक्ति ॐकार रूप स्वरूप भेद है। वह क्या भेद है केवल इतना कि मनुष्य मनु स्वरूप ॐकार रूप है इस स्वरूप की आयु नियम सार सूत सतसङ्ग जो आनन्द रूप है प्रथम के १२ वर्ष कलियुग समान अन्धकार अवस्था है। इसके ऊपर २४ वर्ष द्वापर द्वैत भावना रूप है कि जिसमें मन और अहंकार की एकता से रिपुगण की उत्पत्ति होती है और बुद्धि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन व अहंकार के आधीन होकर काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य की उत्पति में अर्थात
इन्द्रियों की जो सब क्रिया माया से मुग्ध होकर प्रकाशित होती हैं और इन्ही को रिपु कहते हैं
54 सहायी रहती है इस गति से ३६ वर्ष में एक मनु के दो युग समाप्त होते हैं इसके उपरान्त
३६ वर्ष त्रेता रूप में ७२ वर्ष की आयु तक ऐसी अवस्था है कि जिस में जगत की वस्तु-
ओं से प्रेम किया जाता है तिस उपरान्त ४८ वर्ष अर्थात १२० वर्ष की आयु तक सतयुग
सम मनुष्य एक धर्म नियत कर उसपर दृढ़ हो जाता है। कि जिस में से ६० वर्ष उसके
स्वप्न अवस्था में वितीत हो शेष के ६० वर्ष रहते हैं कि जो महाभारत के ६० लक्ष प्रकट
हैं। किंतु इन ६० वर्ष में सर्व सुख के देने वाला केवल एक ही वर्ष है। कारण यह है कि
महा वेद महाभारत में कि जो एक लक्ष श्लोक मृत लोक अथवा संसार में प्रसिद्ध हैं वह केवल सुखदायी
हैं तथा उन्में २४००० पूर्ण सुख दाता विज्ञान आनंद निर्वाण निर्वेदपद विदेह मुक्त अवस्था उत्तम
परमानंद का लक्ष परम हंसगति बाणी समझ बुद्धि स्वयं महात्मा तत्काल रूप स्वरूप आकृति
अल्पज्ञ सर्वज्ञ मग्न अवस्था मौन शक्ति शुकदेव है। इस सुख दाता शिक्षा के ६० लक्ष हैं कि जिस
६० से १५ लक्ष का अर्थ देवल मुनि पित्र लोक स्वरूप हैं अर्थात सूक्ष्म गति चाल का सिद्धान्त व
सूक्ष्म गति के जान्ने का क्रिया विधान प्रमाण तिथि पक्ष विधि का सार कि किस रीति से कौन
वस्तु किस प्रकार बनती व बिगड़ती है। ऐसा गुप्त लक्ष है। ३० लक्ष का अभिप्राय कि जिन को
नारद का ले जाना और देवताओं को सुनाना वर्णन है ये है कि विष्णु भक्ति की आराधना का सार
रूप में से खाकर झेलना शून्य
प्रह्लाद रूप विष कष्ट नारद स्वरूप है अर्थात (३ व ०) की प्रमाण विधि से अब्धि रूप संसृति
की उत्पति है सो तीन तीन वस्तु मिलाने से नाना प्रकार की बिन्दु रूप गगन वत पूर्ण वस्तु आकृति
रूप प्रकट होती हैं हुई हैं और होती रहैंगी किंतु ऐसी प्रीक्षा का करना प्रह्लाद रूप में नारद स्वरूप से कि
खाकर कष्ट झेल झेलकर विष्णु आराधना आर्थात विष्णु भक्ति का करना है। अर्थात बैठे
बैठे दुःखों को मोल लेना है। १० लक्ष का अभिप्राय कि जिन को शुकदेव का ले जाकर गंधर्वों
को सुनाना कहने में आया है सो इनमें ५ ज्ञानेंद्रिय सूक्ष्म रूप गन्धर्व और ५ कर्मेंद्रिय स्थूल
रूप कलश प्रत्यक्ष प्रमाण हैं और इनहीं द्वारा सर्व प्रकार की प्रिक्षा व प्रिक्षा की सिद्धि है। ४
लक्ष जिनको सनकादि ले गये वही अन्तः करण चतुष्ट अन्तः करण ब्रह्मा का स्वरूप है
कि जो विवेकाकार विचार संसृति उत्पन्न अधिष्ठान है। और सब कुछ उत्पन्न करता है। एक
लक्ष का अर्थ संसृति वश्य रूप अद्वय अद्वैत स्वरूप है कि जो एक ब्रह्म के अन्तर गति
अयं शब्द में गुप्त रहता है। सो यही महाभारत महा वेद है। और हे मनु इन्द्र ये तू आप ही
है कि जो होंहूं ध्वनि से प्राक् रूप स्वरूप बन रहा है। और काव्ये रचना में शब्दों स्थानों
और नामों के इस प्रकार परमार्थ से अर्थ प्रकट होते हैं। जैसे कि कुकर कुत्ता अहंकार है
कुत्या माया शक्ति को कहा है उग्रसेन बुद्धि का प्रकाश रूप और भीमसेन चित का गुप्त
रूप है होनी रिपु का नाम है कि जो मरा हुवा सर्प भय रूप से प्रिक्षित को डसता है शराप
मतिभ्रिष्टा दोष उपाधि है कि जो सुख सम्पत को नष्ट करती है। हस्तनापुर अत्यंत प्रेम
रिपु प्रवृत गृहस्त रूप संसार का नाम है पुरोहित पूर्णहित्कारी प्रवृति के रूप संसार को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कह्या जाता है सुरतश्चा श्रुति चित का नाम और सोमश्चा शान्ति चित का नाम है धूम ऋषि उन्नति
तीन स्वरूप आरौन भावना व अन्मपु दुब्धा रूप आशा व वेद ज्ञान रूप रुचि को कहा गया है उन्नति
निश्चय ज्ञान से होती है यज्ञ कर्म क्रिया और वेद रूप को कह्या जाता है। उतङ्ग ऋषि प्रमाद अवस्थावृति
और भत मन का नाम है बुद्धि का नाम महारानी विद्या है और शान्ति जड़ाऊ कुंडल है इन्द्र मन का नाम है। आहूति 55
रिपु नष्टा क्रिया गति का नाम है सर्प यज्ञ रिपु वश करण कर्म का नाम है कद्रु माया का भास व
अविद्या के कार्य कि जिस से सहस्र नाग अर्थात सर्प की उत्पति है। एक नाम है। और विनता प्रका-
श रूप शक्ति कि जिस से अरुण अर्थात तेज व गरुड अर्थात चित रूप श्रुति की उत्पति है अनुभव
का नाम है। कश्यप साक्षी चेतन रूप स्वरूप का नाम है अरुण इन्द्र रथ सार्थी अर्थात मन को चं-
चल करने वाली शरीरक प्रेरक शक्ति है और गरुड विष्णु वाहण अर्थात रक्षक शक्ति में वेद रूपी शंका
निवारण अर्थात संदेह रूप सर्प की भक्ष करने वाली शक्ति महा बीर रूप स्वरूप सर्वथा विजय
प्राप्त करने वाली शक्ति का नाम है लोक मार्ग का नाम है नाग वायु व सर्प का नाम है रमन्यि दीप अनंद
स्थान का नाम मकरा दास दीप छल गति स्थान का नाम घोर लवानासर आशा तृष्णा का पूर्ण
सागर मनोरम कानन सुफलता का रूप निषाद नौका चलाने वाले मल्लाह कूर्म कपटी त्यागी
हसती धन अभिमानी गृहस्थी का नाम है गन्धमादन स्वयं भों मध्यस्थ स्थान का नाम है।
पाण्डु ज्ञान का अभिमन्यु निर्भय स्वरूप रूप का श्रृङ्गी शरोमणी अंग शक्ति बुद्धि का नाम है कृष्ण
महा अन्धकार अज्ञान वृति माया कार्य का नाम है समेयक ऋषि समय का नाम है पांच पण्डु ५
पाँच प्राणों का नाम है द्रोण द्रव्य विचार शक्ति का नाम है धृष्टद्युम्न द्वन्द्वाकार द्वेष्या का रूप है
अर्जुन नेत्र का नाम है द्रुपद प्रमाद पक्ष व युयुधान अन्तर्य दृष्टि का नाम है धृष्ट केतु द्वेष
दृष्टि। काशिपति ज्ञान स्वरूप। चेकितान बलवान चित वृति का नाम। कुन्ति भोज श्रेष्ठ ज्ञान।
कुन्ति अनुभव अन्तर्य शक्ति। युधामन्यु बहु काजी मन। उत्तमौजा गम्भीर लहर। द्रौपदि
माया शक्ति। द्रौपदि पुत्र पाँच कर्मेन्द्रिय। सुभद्रा शाश्वत शक्ति। कर्ण कान। कृप हाथ।
भूरिश्रवा देह। विकर्ण श्रोत्र शंका। अश्वत्थामा नरव रूप विश्व सृष्टि का नाम। सोम
दत्त चन्द्र उज्यारी मन त्रिङ्ग। रथी देह महारथी प्राण शक्ति अन्तः करण। श्वेत वर्ण घोड़े
नेत्र। माधव विचार। पाचजन्य पंच मात्रा। देव दत्त प्राण प्रकाश रूप श्वासा ध्वनि। पौण्ड्रक
शब्द जो ध्वनि से प्रकट होता है। युधिष्ठिर अनन्त रूप शक्ति अनंत विजय नित्य एकरस।
घोष अर्थात हौंहूं शब्द की ध्वनि। सहदेव बुद्धि मणि और पुष्प के समान्य। नकुल विचार।
सुघोष वाणी। शिखण्डी अभिमान। सात्यकि सत वृति का नाम है। और इसी प्रकार
अन्य नाम और स्थानों के गूढ़ अर्थ हैं। महाभारत ब्रह्माण्ड धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र का अद्वितीय
स्वरूप है कि जो एक ॐकार रूप देह है इसमें सर्व प्रपंच का व्यूह रूप है। कि जो नित्य ही एक रस होती
रहती है। कारण ये है कि जब मनुष्य जगत प्रपंच के सुने हुए विषयों पर विचार करता है और
अपने मन को अर्जुन रूप देकर ज्ञानानन्द अवस्था व्याप्त करनी चाहता है, उस समय उसके स्वयं
दो स्वरूप होते हैं कि जो धृष्टद्युम्न द्वन्द्वाकार का स्वरूप हैं कि जो व्यूह का साज हैं। इस साज में
द्वन्द्वाकार कृष्ण अविद्या अन्धकार का रूप और अर्जुन नेत्र रूपी ज्ञान व प्रकाश का रूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्राकारमें विद्या के स्वयं अविद्या और प्रकाश के स्वयं अन्धकार नष्ट होजाता है अर्थात अविद्या विद्यामें और अन्धकार प्रकाशमें लय होकर दोनों का अकाल गति स्वरूप बन जाता है इन्द्र रहता है न आकार भासता है। तब हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तेरे ही सर्व साक्षी स्वरूप से सत्य श्रुति अकाल वेद अगम वेद अपरोक्ष होता है कि जो तू धृतराष्ट्र रूप से तर्क करते हुए संजय रूप से उत्तर पाता है और कृष्ण स्वरूप की अर्जुन के स्वयं महिमा बढ़ाता है। अर्थात इन चार अन्तःकरणी हरण्यगर्भ रूप में हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र धृतराष्ट्र मन संजय चित अर्जुन बुद्धि और कृष्ण अहंकार चार अंशों में निर्म्मित हो तू ने इस प्रकार सत् श्रुति अगम अकाल वेद को प्रकट कियाहै। कि जैसे हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र देख ये तेरा ही अगम स्वरूप है।

ॐ सत् श्रुति अगं अकालं इन्द्रस्कादिं वेदः ॥
किं एकं धृतराष्ट्रं संजय अर्जुन कृष्णो रामः ॥

महावेदं
अगम अकाल वेदं ।
अद्वयकांडं ।
एकक्रमकांडं ॥
धृतराष्ट्र उवाचं ।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥ मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

| | | |
|---|---|---|
| संजयः - हे चित संजय | युयुत्सवः - युद्धकी इच्छा करते हुए | पांडवाः - पांडु राजा के पुत्र |
| धर्मक्षेत्रे - धर्म क्षेत्र रूप | मामकाः - मेरे पुत्र | किं - क्या |
| कुरुक्षेत्रे - कुरुक्षेत्र विषे | च - तथा | अकुर्वत - करते भये |
| समवेताः - एकट्ठे हुए तथा | एव - निश्चय करके | |

## आशय ।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र । तु इस महा वेद अगम अकाल वेद के वर्णन करने को आप ही अपने मन में चिन्ता उत्पन्न कर मन का धृतराष्ट्र रूप बना अपने ही चित को संजय का रूप देकर उससे तर्क करता है कि हे संजय मेरे पुत्र अर्थात माया अविद्या कार्य और पांडु पुत्र हे साक्षी रूप चित चेतन संजय तेरे ज्ञान विज्ञान और प्रकाश चमत्कार के विषे धर्म क्षेत्र अर्थात विश्व स्थान कुरुक्षेत्र अर्थात महा नारायण रूप विराट में निश्चय कर किस प्रकार हे संसार रूप संसृति जगत की सब एकत्र होके प्रपंच व्यूह रचना करते भये सो तु वर्णन कर

संजय उवाचं ।

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥ आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

| | | |
|---|---|---|
| राजा - राजा माया शक्ति | व्यूढं - व्यूह रचन युक्त | दृष्ट्वा - देख करके |
| दुर्योधनः - माया कार्य ने | पांडवानीकं - प्रकाश चमत्कार कूं | तदा - ता संग्राम आरंभ काल विषे |

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तु - तत्काले | उपसंगम्य - स्वयमजायकै | अब्रवीत - कहा
आचार्यम् - दिव्य शक्ति के | वचनम - या प्रकार वचन

## आश्य

हे मनुइन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र! तू आपही अपने धृतराष्ट्र रूपीकिये हुए तर्कका संजय रूप सेआपही अपनेको ऐसा उतर देता है कि। हे मनुराजराजा धृतराष्ट्र तेरे पुत्र माया शक्ति मायाकार्यराज दुर्योधन नेजो व्यूह रचना युक्त कुरुक्षेत्र में प्रकाश चमत्कार रूप प्रपंचसेना पाडवों की सेना को रवड़े देखा तो संग्राम काल आरंभ के समय तत्काल ही वह दिव्य शक्ति अर्थात आत्मानंद साक्षी स्वरूप द्रोणा चार्य के स्वयं जायकै इस प्रकार वचन कहता भया कि।

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ॥ व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

आचार्य - हेसर्व शक्ति अकालरूप | चमूं - सेनाकूं | शिष्येण - शिष्य
पांडुपुत्राणाम् - पाडुराजाके पुत्रोंकी | पश्य - देखव | द्रुपदपुत्रेण - द्रुपदपुत्रनै
एतां - इस | तव - तेरे | व्यूढां - व्यूहरचना कीहै
महतीं - महान् | धीमता - बिद्धिमान

## आश्य

हे सर्व शक्ति अकाल रूप आचार्य दिव्य दृष्टा तू पांडुराजाके पुत्रों की अर्थात प्रकाश चमत्कार गति की इस महान शक्ति रूप प्रकाशित गति शक्ति अर्थात सेना चमत्कार कूं देख कि जो तेरे बिद्धिमान शिष्य अर्थात तेरीही आधीन शक्ति राजा द्रुपद पुत्र नै अर्थात माया शक्ति कार्य कारण रूपने व्यूह रचना युक्त कीहै अर्थात किस प्रकार द्वन्द्वाकार रूपमें प्रपंच गति स्वरूप आकृति को संदेह मय जाल रूप शब्द आकृति स्वरूपमें इस संसारसागर संसृति सृष्टि को नियम युक्त उत्पन्न कर प्रकट किया है। आशय ये है कि ये जो कुछ चमत्कार व प्रकाश प्रपंच है हे महान चमत्कारी तेरीही शक्ति और तेरीही आकृति का आश्य रूप स्वरूप है इसे तू देख कि भय सेरहित अनेक अक्षौहिणी संख्या वाली तेरी महान शक्ति माया गति अर्थात सेना है। अर्थात धर्म क्षेत्र रूप स्वरूप कुरुक्षेत्र मानु महा मंडल अश्वत्थामा रूपी संसृति सृष्टि ऐसी द्वेष बुद्धि हुई है कि कदाचित पश्चाताप को प्राप्त होने वाली तेरी महिमा माया शक्ति नहीं कि जिसकी साधारण गति निर्भय रूप है।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ॥ युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥ पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५॥
युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥ सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथा ॥ ६॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

अत्र - इस | युयुधानः - युद्ध करनेवाला | वीर्यवान - विशेष | च - और | युधामन्यु - मन | द्रौपदेयाः - माया शक्ति
युधि - युद्धविषे | च - शक्ति और | धृष्टकेतु - द्वेष | कुंतिभोजः - श्रेष्ठ प्रकाश | च - और | सर्वे - सबही
भीमार्जुनसमा - भीम नेत्र सम | विराट - स्वरूप आकृति | चेकितानः - चित | च - और | वीर्यवान - अत्यंत | एव - निश्चय रूप
महेष्वासाः - महान | च - और जैसे | काशिराजः - ज्ञान | शैब्य - महा शक्ति | उत्तमौजाः - उत्तम | महारथाः - नाना
शूरा - बलवान | द्रुपदः - द्रुमक्ष व प्रमाद चक्ष | पुरुजित् - पूर्ण श्रेष्ठ | च - और | च - आदि | प्रकार की अद्भुत
महारथाः - आकृति अनंतरूप | च - व | विक्रांत - काल | सौभद्रः - शाश्वत शक्ति | आकृतियां हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आशय

इस संसृति सृष्टि प्रकृति प्रपंच कृत्त विज्ञान रूप सेनामें युद्ध करने वाली संसार में पांडु सेना विषे प्रवृत्ति मीमार्जुन समा अर्थात चित और नेत्र प्रकाश सम शक्ति रूप ज्ञान विषे जानणे योग्य महेष्वासा अर्थात महान धनुषोंवाली ऐसी अत्यंत बलवान बहुत शक्ति हैं कि जो विद्यमानी से जानने में आती हैं। और उन सूक्ष्म रूप शक्ति आकृतियों के ये नाम हैं। अर्थात महारथी रूप अर्थात आकृति रूप युयुधान नामा राजा युद्ध करने वाली शक्ति अन्तर्यदृष्टि तम उहाने खेंचने पकड़ने ठहराने ठहरने खड़े होने चलने वाली शक्ति तथा विराट स्वरूप आकृति व द्रुपद नामा राजा अर्थात द्रुभक्ष उत्पन्न करने यथा प्रमाद पक्ष धारण करने वाली सूक्ष्म शक्ति जैसे विशेषकर के प्राक्रम वाला धृष्ट केतु नामा राजा अर्थात द्वेष दृष्टि प्रकट रूप यथा गुप्त रूप सूक्ष्म स्थूल आकृति व चैकितान नामा राजा अर्थात चित रूप चिकटने सुकड़ने फैलने जमने रूपान्तर होने वाली और उड़ने वाली शक्ति व काशी राजा अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण रूप स्वरूप स्थूलाकार आकृति शक्ति व सर्व में श्रेष्ठ पुरुजित नामा राजा अर्थात पूर्ण रूप स्वरूप श्रेष्ठों में श्रेष्ठ कुंती भोज स्वयं प्रकाश रूप साक्षी रूप महान शक्ति और विक्रांत काल रूप युधामन्यु बहुकाबरचने वाला मनुमन अत्यंत उत्तम आदि शांश्वत शक्ति माया शक्ति सबही निश्चय रूप नाना प्रकार की अद्भुत आकृतियाँ हैं। कि जो इषु अर्थात बाण व प्राण व शर सायक रूप हैं। इन्ही को इष्वास नाम दिया जाता है। युधामन्यु ही पंचाल देश अर्थात प्रपंच प्रकृति का राजा है कि जो विक्रांत अर्थात काल रूप है प्राक्रमि है। युयुधान व सात्यकि व विराट ये तीन भ्रमण क शक्ति हैं। द्रु वृक्ष व पद चिह्न ध्वजा। व धृष्ट भय कारण केतु ध्वजा नरपुंगव सर्व श्रेष्ठ। उत्तमौज उत्तम पाँचाल देश का राजा वीर्यवान नरपुंगव विक्रांत रूप है। अर्थात यह सब सृष्टि उत्पति व्यूह की रचना में महारथी नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियां एक रूप स्वरूप अतिरथी अक्षय रूप हैं। हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र इस प्रकार कथन करता कहता है कि

**अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ॥ नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥७॥**

### पदच्छेदः शब्दार्थ

**तु** तत्काल - **द्विजोत्तम** - हे सर्व श्रेष्ठ द्विव्य शक्ति रूप - **ये** - जो **अस्माकं** हमारी - **विशिष्टा** - श्रेष्ठ शक्ति **मम** मेरी - **सैन्यस्य** - सेनामें - **नायका** प्रधान शक्ति है - **तान** तिस प्रधान शक्ति कूं - **ते** तुम्हारे कूं **संज्ञार्थं** - प्रकट कर **ब्रवीमि** कथन करता हूं **तान्** तिसे - **निबोध** - निश्चय करो -

## आशय

हे द्विव्य शक्ति अद्वय स्वरूप इस संसृति संसार प्रपंच रचना में तेरी पांडु और कौरु अर्थात उज्यारा व अन्धकार दो गति हैं उनमें पांडु गति के स्वयं जो अन्धकार गति है वह तत्काल निश्चय कर कि कैसी श्रेष्ठ प्रधान शक्ति है कि जो मेरा अपना आप ही बहुरूप है और वह बहुरूप कैसा है कि

**भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ॥ अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥८॥**

### पदच्छेदः शब्दार्थ

**भवान्** - आप - **च** - और - **भीष्म** पितामह - **च** - और **कर्ण** - श्रोत्र **च** - तथा - **समितिंजयः** जय रूप संग्राम सृष्टि प्रपंच **कृप** कृपा चार्य तथा आकर्षण बल शक्त **च** तथा **अश्वत्थामा** विश्वरूप जगत **विकर्ण** - शंका रूप मय प्रपंच - **सौमदत्ति** - सृष्टि कर्ता मन ब्रिंगी - **जयद्रथ** - नित्य जय स्वरूप निगम रूप

## आशय ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आपही पितामह अर्थात असंग अवस्था में सुनेहुए कर्ण अर्थात श्रोत्र रूप व सर्व प्रपंच संसार संग्राम जय रूप व आकर्षण बल शक्ति रूप मेरा स्थूल सूक्ष्म भाव सर्व प्रपंच अश्वत्थामा रूप विश्व बना हुआ शंका मय चिन्ता प्रपंच लिप्त सृष्टि क्रम मन त्रिगुणी नित्य अज स्वरूप आगम प्रधान शक्ति माया स्वरूप है। और

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥ नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

अन्ये दूसरी - च और - बहवः बहुत शूरा शक्ति मदर्थे जय रूप त्यक्तजीविताः अपने को जीव न मानने वाली आशा तृष्णा रहित - नानाशस्त्रप्रहरणाः अनेक विद्या प्रकाश रूप - सर्वे - सर्व युद्धविशारदाः प्रपंच में विशारदाः अर्थात शुद्ध स्वरूप -

आशय ।

दूसरे और बहुत बलवान शक्ति जय रूप अपने को जीव न मानने वाली आशा तृष्णा रहित अनेक प्रकार की प्रकाश रूप विद्या सर्व प्रपंच अर्थात सृष्टि में शुद्ध मेरा सेना स्वरूप है। ऐसा वर्णन करके हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू आपही दुर्योधन और द्रोणाचार्य बना हुवा प्रकट करता है कि मेरे स्वरूप की ये जो दो गति हैं। इनमें

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥ पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

अस्माकं मेरा अपना तत सार बलं बलशक्ति अपर्याप्तं अनंत है भीष्माभिरक्षितम - असंग रूप है तु और एतेषां या पांडवी रूप इदं यह बलं बलशक्ति पर्याप्तं न्यून तथा कम है भीमाभिरक्षितं चित रूप है

आशय ।

प्रथम मेरा अपना सार बल शक्ति एकादश अक्षौहिणी संख्या वाला अनंत असंग एकादश रुद्र स्वरूप है और दूसरा पांडवी रूप रूपी बल शक्ति न्यून सप्त अक्षौहिणी चित रूप वासुदेव स्वरूप है और इस प्रकार ये दोनों रुद्र तथा वासुदेव स्वरूप पुरुष प्राकृति संसर्ग रूप प्रपंच व्यूह रचना संसृति स्वरूप है सो इसमें

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥ भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

च अब सर्वेषु सबको अयनेषु जिस यथाभागम प्रवर्त मार्ग में अवस्थिताः स्थित होने भवन्तः दिव्य शक्ति निमित - सर्वे पूर्ण एव निश्चय है हि निश्चय - भीष्मम् में असंग स्वरूप एव निश्चय से ही अभिरक्षन्तु - रक्षणी सर्व अधिकारी हूं।

आशय ।

अर्थात सर्व प्रपंच सृष्टि में अर्थात सब प्रवर्त मार्गों में स्थित होने वाला जो मेरा अदृश्य शक्ति रूप निश्चय पूर्ण निश्चय स्वरूप है वह मैं असंग स्वरूप निश्चय से ही अपना आप रक्षणी सर्व अधिकारी आद्यन्तीय हूं

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ॥ सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

प्रतापवान् - महान प्रतापवाला कुरुवृद्धः - महान श्रेष्ठ पितामहः आदि अनादि अनन्त असंग तस्य - तिस प्रपंच सृष्टि व्यूह रूप को हर्षं हर्ष आनंद का संजनयन - उत्पन्न कर्ता - उच्चैः उत्तम सिंहनादं - सिंह की भांति नाद करने वाला नाद आकृति विनद्य - ध्वनि कारक शंखं अक्षर शब्द स्वरूप दध्मौ - प्रणव ॐ कार रूप स्वरूप मैं ही हूं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आश्य ।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र! तू कहता है कि यह प्रपंचि व्यूह रूप सृष्टि महां प्रतापवान महां श्रेष्ठ आदि अनादि अनन्त असंग हर्ष आनंद उत्पन्न करने वाला उच्चैः बहुङ्कार मय रूपनाद आकृति ध्वनि आकार अक्षर शब्द स्वरूप प्रणव ॐ कार रूप स्वरूप मेरा ही तो है।

**ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥ सहसैवाभ्यहन्यंत सशब्दस्तुमुलोऽभवत ॥ १३ ॥**

### पदच्छेदः शब्दार्थ

**ततः** फिर **शंखा** अनेक आकृति शब्द **च** - तथा अनेक **भेरी** अर्थात गुंमार - **च** तथा - **पणव** अनेक बौंग शब्द व अनेक **आनक** अर्थात घन्घन्हाट शब्द व अनेक **गोमुखाः** अर्थात रम्भार शब्द **सहसा** शीघ्र **एव** निश्चय **अभ्यहन्यंत** प्रकट होने वाले शब्द **सः** सर्व आकृतियों का **शब्दः** शब्द **तुमुलः** महान शब्द अर्थात सहस्र शब्दों से मिलकर बना हुवा एक भारी शब्द - **अभवत** अनादि अनंत है

## आश्य ।

फिर ये सर्व प्रपंच व्यूह रूप सृष्टि कि जो अनेक आकृति शब्द तथा अनेक गुंमार शब्द और अनेक बौंगहार शब्द और अनेक घन्घन्हार शब्द और और अनेक रम्भार शब्द और शीघ्र ही निश्चय प्रकट होने वाले शब्द और सर्व आकृति शब्द महान शब्द एक अनादि अनंत रूप मेरा है।

**ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥ माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४**

### पदच्छेदः शब्दार्थ

**ततः** फिर **श्वेतैः** श्वेतवर्ण **हयैः** कांतिमा करके अश्वों **युक्ते** मिला हुवा **महति** महान् महत मन **स्यंदने** शरीर **स्थितौ** स्थित **माधवः** मधुर - **च एव** - और निश्चय करके **पांडव** ज्ञान स्वरूप **दिव्यौ** दिव्य रूप **शंखौ** अक्षर शब्द आकृति **प्रदध्मतुः** प्रकाशक वाणी मेरा स्वरूप है

## आश्य ।

फिर मैं श्वेतवर्ण कांतिमा युक्त नेत्र स्वरूप अश्व महति एक एक करके अनेक शरीर स्थित मधुर स्वरूप वाला निश्चय करके महान् ज्ञान स्वरूप दिव्य रूप अक्षर शब्द आकृति प्रकाशिका वाणी रूप आनंद अवस्था गति हों हूं ध्वनि में प्रणव ॐ कार आनंद रूप गति हूं। और

**पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥ पौंड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५**

### पदच्छेदः शब्दार्थ

**पांच** - पंचतत्व **अजन्य** जन्मरहित अविनाशी - **हृषी** हर्ष आनंद **अकेशो** अद्वय प्रकट रूप **देवदत्तं** आदित्य सुरा अर्थात मानु प्रकाश **धनं** दिव्य रूप **अन्न** मूल रूप **जय** अनंत अचल रूप **पौंड्रं** श्वांसा रूप **दध्मौ** प्रणव ध्वनि ॐ कार रूप **महाशंखं** नानाभांतिके अक्षर शब्द रूप आकृतियों वाला महान शब्द विराट रूप **भीमकर्मा** विचित्र कार्य कारण रूप **वृकोदरः** सूक्ष्म स्वरूप मैं हूं।

## आश्य ।

पांचजन्यं अर्थात मैं पांच तत्व अम्बर वायु अग्नि जल पृथवी स्वरूप जन्मरहित अविनाशी हर्ष आनंद गति प्रकट रूप अद्वय आदित्य सुरा अर्थात मानु प्रकाश दिव्य रूप मूल रूप अनंत अचल रूप श्वासा रूप प्रणव ध्वनि ॐ कार रूप अनेक प्रकार से अक्षर शब्द रूप आकृतियों में रूपान्तर महान शब्द महान रूप महान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूप विराट विश्व रूप अन्तर्यामी विचित्र कार्य कारण रूप अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप हूं। और

**अनंतविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ नकुलः सहदेवश्च सुघोष मणि पुष्पकौ ॥ १६ ॥**

61

पदच्छेदः शब्दार्थ।

**कुंतीपुत्रो** - प्रकाशरूप शक्तिका पुत्र **राजा** अखंडरूप **युधिष्ठिरः** युद्ध विषे प्रपंचरूपअर्थात सर्वसृष्टि प्रकृतिरूपसंसृतिमहानमाया शक्ति**अनंतविजयं** - अनंतनित्य एकरस नाशको प्राप्तन होने वाली शक्ति विजयरूप - **नकुलः** अद्भुतअनुभव विचार**शक्ति** च तथा **सहदेव** बुद्धिसूक्ष्मरूप **सुघोष** बाणी - **मणि** - उत्तम अमोल्यरत्न **पुष्पकौ** सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म स्वरूपवाला मैं हूं।

आशय।

मैं प्रकाशरूप शक्तिसेउत्पन्नहोने वाला अर्थात चमकने वाली प्रकाशरूप शक्तिका पुत्र अखण्डरूप युद्ध विषे प्रपंचरूपअर्थात सर्व सृष्टि प्रकृति संसृतिका महान माया अकाल शक्ति रूप एक रस अनंतविजय रूप अद्भुतअनुभव विचार शक्ति तथा सूक्ष्मबुद्धि स्वरूप वाणी अमोल्य रत्नसूक्ष्मसे सूक्ष्मस्वरूप हूं

**काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥ धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥**
**द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥ सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥**

पदच्छेदः शब्दार्थ

**परमेष्वासः** महान बल शक्ति वाला - **काश्यः** देहविषे ज्ञानस्वरूप **च** तथा **महारथः** महारथी अनेकप्रकार की देहरूपमें प्रकाशित शक्ति **शिखंडी** अहंकार **च** तथा **धृष्टद्युम्न** द्वन्द्वाकार **विराट** विश्व **च** तथा **सात्यकि** - सतोगुण शक्ति - **च** तथा **अपराजित** अपूर्व अजय शक्ति **पृथिवीपते** - देहरूप पृथिवी की रचनेबनाने वाली शक्ति **द्रुपदो** वृक्षबीज एकरूप - **च** तथा **सर्वशः** सर्वत्र सबही **द्रौपदेयाः** बीजसे वृक्षरूपमें उगने यथा पृथिवी से फूटकर उत्पन्न होने वाली माया कार्यकारण रूप शक्ति **च** तथा **महाबाहुः** - महान भुजबल रूप शक्ति - **सौभद्रो** निरन्तर निर्भयअचलप्रकाशमान शक्ति महत्तमनस्वरूप **पृथक्पृथक्** एक एक करिके **शंखान्** - अक्षरशब्द **दध्मुः** प्रणव ॐ कार रूप मैं हूं।

आशय।

महान बल शक्ति वाला देहविषे ज्ञान स्वरूप तथा अनेक प्रकार की देहरूपमें प्रकाशित शक्ति रूपअहंकार तथा द्वन्द्वाकार विश्व तथा सतोगुण शक्ति तथा अपूर्व अजय शक्ति देहरूप पृथक्पृथक करकरके बनाने वाली शक्ति वृक्ष बीज एक रूप तथा सर्वत्र सब ही बीज से वृक्षरूपमें उगने तथा उत्पन्न होने वाली माया कार्यकारणरूप शक्ति तथा महान भुजबल रूप शक्ति निरन्तर निर्भय अचल प्रकाशमान शक्ति महत्तमन स्वरूप सूक्ष्म रूप एक एक करिके अक्षरशब्द प्रणव ॐ कार रूप मैं हूं।

**सघोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥ नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥**

पदच्छेदः शब्दार्थ।

**च** और - **तुमुलः** महान महङ्कार **सः** जैसा **घोषः** शब्द **नभः** तथा **च** और **एव** निश्चय करके **पृथिवीं** - भूमि **व्यनुनादयन्** अपनेआप प्रतिध्वनिरूपशब्द मेरेसे पूर्णरूप उत्पन्न होती और **धार्तराष्ट्राणां** - मायाकार्य शब्द मेरेआधारशब्द से पंचकृतभूमि **हृदयानि** भयाभूतकंपित होकर **व्यदारयत्** - विदारण होजाती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आरय ।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र ! तु प्रकट करता है कि महान जैसे मयङ्कर शब्द मेरे से निश्चय कर भूमि तथा ये सर्व प्रपंच प्रकृति सृष्टि पूर्ण रूप से रूप से उत्पन्न होती है। और मायाकार्य आधार शब्द मेरे ही से मय मित तथा कंपित होकर विदारण होती है। अर्थात शब्द से ही सर्व प्रकार की प्रपंच सृष्टि संसृति अर्थात संसार उत्पन्न होती और शब्द से ही विदारण तथा नास्ति को प्राप्त हो नाश हो जाती है इसी प्रकार धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मे संसार प्रपंच की रचना मई है। सो इस प्रपंच कुरुक्षेत्र व्यूह रचना में।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान कपिध्वज ॥ प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अथ आदि आरम्भ में - महीपते राजन् कपिध्वज वायु समान विचरने वाली अर्थात झंडेकी वायु से फरफराने अर्थात लहराने वाली ध्वजा के समान बुद्धि से पांडवः ज्ञान रूप व्यवस्थितान उद्यम करि के स्थित धार्तराष्ट्रान् माया कार्य सृष्टि प्रपंच संबंध दृष्ट्वा देखकरि के धनुः द्विव्य रूप माया कार्य कारण रूप बल शक्ति गांडीव नाम धनुष अर्थात अभिमान गति प्राप्त हे उद्यम्य उठाव शस्त्रसंपाते शस्त्र प्रहार सावधानी से प्रवृत्ते प्रवर्तरूपे तदा तिस कालविषे हृषीकेशं हर्ष आनंद अद्वय अवस्था गति ईदृ ऐसा वक्ष्यमाण वाक्यं वाच आह अपने से कहता है।

## आरय ।

तू ही हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र ! संसृति विषे अर्थात संसार गति में प्रवर्त हो देख दृष्टि उत्पन्न कर भ्रम वश हो दृष्टा के बुद्धि हो मय उत्पन्न कर ज्ञान कूं खो स्थित हो माया कार्य सृष्टि प्रपंच संबंध कूं देखके अभिमान गति को प्राप्त हो उठान अर्थात नाम मान के हेतु और शस्त्र प्रहार संसार प्रवर्त रूप बनाने के तिस काल हर्ष आनंद अद्वय अवस्था गति को भूल अपने को प्रपंच व्यूह विषे बुद्धि से जीव मान अपना अर्जुन नाम रख अंहकार को कृष्ण रूप दे प्रपंच व्यूह रचना करता और उस रचना को देखके ऐसा कहता है

अर्जुन उवाच ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अच्युत किसी काल नाश को प्राप्त न होने वाला स्वरूप उभयोः प्रपंच सैन्योः सृष्टि सेना मध्य बीचों बीच मे मेरा रथं अर्थात शरीर रथ मेरा स्थापय स्थापन हो स्थित हो

## आरय ।

अच्युत रूप संसार सेना प्रपंच के बीच मेरा रथ अर्थात मेरा शरीर स्थापन हो कारण कि।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ

यावत इस प्रकार अहं मैं योद्धुकामान् युद्ध की कामनावाली अर्थात प्रपंच आशा तृष्णा रूप सृष्टि अवस्थितान - रण भूमि प्रपंच आशा तृष्णा रूप सृष्टि विषे - एतान् इस अर्थात इन आशा तृष्णा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रुप प्रपंच सृष्टि माया कार्य कारण रुप आकृतियों कूं निरीक्षे - भली प्रकार देखौं अस्मिन् इस रणसमुद्यमे - युद्ध रुप व्यापार विषे अर्थात प्रपंच रुप सृष्टि संसार जगत विषे मया मेरा कैः क्या क्या स्वरुप इस संसृति प्रपंच में किस योग के सह - साथ अर्थात अनुकूल अनुसार योद्धव्यम् मेरा युद्ध होयगा अर्थात किस आशा तृष्णा से व्यम मैं ने योद्ध ये अपना प्रपंच सृष्टि रुप बनाया है इस रुप में मेरा क्या संबंध है ।

63

## आश्य ।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र ! तूं अपने कूं अच्युत रुप संसार सेना प्रपंच रुप प्रकट कर विश्व विराट का अपना एक ही रथ अर्थात एक ही शरीर बना स्वयं स्थापन हो कृष्णा रुप अहंकार अर्थात माया उत्पन्न कर उस माया रुप कृष्णा से अर्थात सृष्टि प्रपंच से अपना जीव रुप बना और अपने शक्ति अहंकार अर्थात माया में प्रवेश कर अज्ञान वृति में पड़के आप निरशक्त अल्पज्ञ भाव में आ आशा तृष्णा रुप हो संशय खा यथार्थ अच्युत सत्यता को भूला फिर उसी की प्राप्ति को भ्रम उत्पन्न करते हुए कहता है कि हे अच्युत मेरे रथ को इस प्रपंच सेना के मध्य अर्थात प्रकाश शक्ति व अन्धकार शक्ति के मध्य खड़ा कर कि इस प्रकार मैं देशकाल विषे स्थित होइके युद्ध की कामना वाली वृति अर्थात प्रपंच आशा तृष्णा रुप सृष्टि को रण भूमि संसार प्रपंच को इस अर्थ आशय से भली प्रकार देखौं कि इस आशा तृष्णा रुप संसार से अर्थात नाना प्रकार की आकृति तथा रुपों से युद्ध रुप व्यापार अर्थात प्रपंच रुप संसार के विषय मेरा अपना किस से क्या संबंध है कारण कि « अच्युतो एकंऽयम » श्रुति प्रमाण - सर्व देश विषे तथा सर्व काल विषे तथा सर्व वस्तु विषे जो नाश कूं प्राप्त नहीं होता है एक ऐसा अच्युत स्वरुप केवल मैं ही हूं । कि मुझको कौन है कि जो नीचे गिरावने में समर्थ है कोइ भी नहीं और हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र फिर तू आप ही ऐसा कहता है

योत्स्यमानानवेक्षेहं य एतेऽत्र समागताः ॥ धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

## पदच्छेदशब्दार्थ

दुर्बुद्धेः दुर्बुद्ध वाले माया कार्य - कारण - धार्तराष्ट्रस्य - माया कारणों से उत्पन्न हुए हुवे माया कार्य अन्धकार के विषे - युद्धे - प्रपंच सृष्टि के अवगुण रुप संबंध - प्रियचिकीर्षवः प्रिय की इच्छा करते हुए अर्थात मोह प्रेम के वश ये जो एते ये माया संबंधी एक ही दिव्य असंग अवस्थई स्वरुप अत्र - या कुरुक्षेत्र भूमि अर्थात विराट विश्व विषे समागताः - एकत्र हुए हैं योत्स्यमानान् - तिन प्रपंच सृष्टि के अवगुण रुप संबंध माया कार्य अन्धकार विषे एक ही दिव्य असंग अवस्थई स्वरुप कूं अहं - मैं अवेक्षे - भली प्रकार देखौं ।

## आश्य ।

दुर्बुद्ध वाले माया कार्य अर्थात माया कारणों से उत्पन्न हुए हुवे माया कार्य अन्धकार के विषे प्रपंच सृष्टि के अवगुन रुप संबंध आशा अनुकूल तृष्णा रुप मोह प्रेम के विषे कि ये सब एक ही माया संबंधी दिव्य असंग अवस्था का स्वरुप हैं और जो विराट विश्व रुप विषे में एकत्र हैं तिस सूक्ष्म से सूक्ष्म और दीर्घ से दीर्घ स्वरुप को एक ही असंग अवस्था रुप में भली प्रकार मैं देखूं कि उसमें क्या शुद्ध और क्या अशुद्ध गति है । सो तू फिर संजय रुप हो ऐसा कहता है

## संजयं उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥
तत्रापश्यात्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ॥ आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ २६ ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौंतेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥ कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र गूढ़ार्थ शब्द जाल साक्षी स्वरूप कैवल्य शरोमणी सूक्ष्म रूप आप ही आप अद्वय प्रकाश एवम् - इस प्रकार - गुडाकेशेन - निद्राजीत प्रकाश स्वरूप साक्षीरूप - उक्तः उपजाहुवा श्रुति अनुकूल कह्या हुआ
५ हृषीकेशः हर्ष आनंद की विसारी हुई अद्वय अवस्था - उभयोः सर्व प्रपंच संसार द्वैतता गति कू मार्ग दूभांति कोएक वस्तु - सेनयोः माया शक्ति आस्ति भांति का प्रकाश नाश मान रूप आकृति - मध्ये: बीच केन्द्रस्थान भीष्म द्रोण प्रमुखतः स्वयं असंग दिव्य स्वरूप - च - तथा - सर्वेषाम् एकत्र सर्व एक स्वरूप महीक्षितां स्वयं प्रकाश रूप विलक्षण शक्ति रथोत्तमम् - मेरा उत्तम रथ उत्तम विराट विश्व शरीर स्थापयित्वा स्थित अर्थात स्थापन किया हुआ - पार्थ - पृथा नाम माता से अर्थात परा शक्ति से उत्पन्न होने वाला कुरु श्रेष्ठ अद्वय आदि स्वरूप एतान् - इन समवेतान् एकरस एकरूप कुरून् माया कार्य रिपुगण - पश्य दृष्टि इति उवाच - अन्त वचन मूल बात तत्र तहां पार्थ आदि स्वरूप उभयोः आगौ पाछौ दौ गति अचल रूप अखंड स्वरूप सेनयो प्रपंच आकृति - स्थितान - स्थित - पितॄन - पितृव्यय नाशन होने वाली गोचर अगोचर सूक्ष्म व स्थूल आकृति पूर्ण दिव्य शक्ति अर्थ आदि स्वरूप पितामहान् महान अनादि रूप आचार्यान् दिव्यांस्वरूप मातुलान शल्य शकुनि अग्नि स्वरूप आनन्दशान्ति रूप शक्ति भ्रातॄन भ्रम रूप माया कार्य कारण भुजंग पुत्रान् लक्ष्मण आदिक शक्ति नाग रूप - पौत्रान - शक्ति अनु शक्ति नन्द रूप तथा और सखीन् दिक रूप श्वशुरान् भव रुद्र रूप च और सुहृदः रवि रूप एव निश्चय अपश्यत्त दृष्टा रूप देखता हुआ अपि भी सः - सो कौन्तेयः - प्रकाशं प्रकाश रूप - अवस्थितान् - स्थित स्वरूप तान् - तिस सर्वान सर्व कूं बंधून अपने को समीक्ष्य देखते हुए - परया परम कृपया स्नेह में - आविष्टः व्याप्त हुआ विषीदन् - विषाद करना इदम् इस भांति अब्रवीत् कहता है।

## आशय ।

हे भारत स्वरूप अर्थात हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र गूढ़ार्थ शब्द जाल साक्षी कैवल्य पद शरोमणी रूप अद्वय प्रकाश आप ही आप इस प्रकार गोलमोल मुंद्रिका अग्र केश गुडं गुड ब्रह्मांड रूप अंतर बाहर व्याप्त स्थित गुडाक - विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा ध्रुवनाद्यम - श्रुति कर्ता अर्थात सर्व विश्व में एक ही रूप से व्याप्त सब के अपरोक्ष सब कुछ जानने वाला ध्रुवनाद स्वरूप गुडाकेश सर्वथा उपना हुआ तू हृषीक नाम अर्थात हर्ष आनंद की विसारी हुई अवस्था का स्वामि इंद्रियादि रूप कार्य कारण प्रवृत रूप तू आप ही सारथी सर्व प्रपंच संसार द्वैतता गति मार्ग का एक मूल पदार्थ माया शक्ति सेना रूप स्वतः केन्द्रस्थान स्वयं असंग दिव्य स्वरूप तथा सर्वेषाम् स्वयं प्रकाश रूप विलक्षण शक्ति उत्तम रथ उत्तम विराट विश्व शरीर स्थित हुआ हुआ पार्थ यथा पृथा नाम माता तथा परा शक्ति से उत्पन्न होने वाला कुरु श्रेष्ठ अद्वय आदि स्वरूप इन एकरस एक रूप कुरुन को अर्थात माया कार्य रिपुगण कूं तूं देख इस प्रकार अंत वचन मूल बात एक से चार रूप और अनेक रूप प्रपंच बने हुए तूने कही - तहां हे आदि स्वरूप आगौ पाछौ दौ गति एक अचल अखंड स्वरूप प्रपंच आकृति स्थित अपने सूक्ष्म आदि स्वरूप महान अनादि रूप दिव्यांशक्ति स्वरूप शल्य शकुनि अग्नि स्वरूप शान्त आनंद रूप व भुजंग रूप नाग रूप शक्ति अनु शक्ति नन्द रूप दिक रूप भव रुद्र रूप रवि रूप निश्चय दृष्टा रूप होने पर भी तू आप अपने स्वरूप कूं कि जो प्रकाशान् प्रकाश स्थित स्वरूप है तिस सर्व अपने स्वरूप कूं तूं देखते हुए परम स्नेह में व्याप्त हुआ हुआ विषाद कर इस भांति कहता है कि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्जुनउवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥ वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

कृष्ण - हे कृष्ण अर्थात स्वार्थरूप सारथी तृष्णा अन्धकार माया शक्त अहंकार - समुपस्थितम इस रण भूमि विषे प्राप्त हुए यथा स्वरूप में समाये हुए युयुत्सुं - युद्ध की इच्छा वाले प्रपंच प्रकृति के विषे ईमं इन स्वजनं अपनों कूं दृष्ट्वा देखि करिकै - मम मेरे गात्राणि - हस्त पादादिक अंग सीदंति व्यथा कूं प्राप्त होवैं हैं च और मुखं मेरा मुखभी परिशुष्यति सूकता जावे है च और मे - मेरे शरीरे - शरीर विषे वेपथु - कंप - जायते - उत्पन्न होवे है च और रोम हर्षः - रोम अर्थात बालभी खडे होवैं हैं।

आशय ।

हे मनुइन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र ! तू अपने विराट स्थित स्वरूप प्रपंच को देख कर प्रकाश रूपित अर्जुन बना हुआ आप अपने ही कृष्णा स्वार्थ रूप सारथी तृष्णा अन्धकार माया शक्ति अहंका रूप से कि जो तेरे स्वरूप विराट में प्रपंच विश्व के बीच सब शक्तियों से बलवान तेरी शक्ति है और इस शक्ति अहंकार के बल से ही तु अर्जुन बुद्धि व्यास रूप बुद्धि में ब्रह्म - साक्षात होता है और इसके द्वारा ही मानुषी प्रपंच रूप हो अनेक रूपों में रूप वाला भव रूप्या बना हुआ अहंकार माया शक्ति के वश में होकर तेरा - मेरा द्वैत प्रपंच का बोधक होता है यथा रूप स्नेह से मरिडत होकर सांसारिक रिपु रचना रचता है और येही स्वर्ग मर्त्य अर्थात पाताल अर्थात ज्ञान निवास इन्द्रिय योग निवास और रिपु योग निवास अर्थात संसार रूप में रिपु योग निवास - आशा तृष्णा रहित वैराग में इन्द्रिय योग निवास - और ब्रह्म साक्षात कार से पूर्ण शक्त्यावस्था ज्ञान निवास में अंतरंग धारना रूप और बहिरंग त्याग रूप से रूपान्तर ज्ञान निवास स्वर्ग मर्त्य और पाताल कला है वासना का अधिष्ठान तत्व परम तत्व ब्रह्म निर्देश है अपने इस स्वरूप को अपने ही समीप ऐसा कहता है कि हे कृष्णा इस रण भूमि विषे प्राप्त हुए यथा स्वरूप में समाये हुए युद्ध की इच्छा वाले प्रपंच प्रकृति माया के विषे अर्थात विष्णु मोहिनी मूर्ति कि जिस को देख कर अर्थात अपने इस स्वरूप को देख कर मैं असमर्थ होगया हूं। अर्थात अपनी विष्णु मूर्ति माया शक्ति अपने रूप को देख माया मय भाव को प्राप्त हो मैं आप अपने को भूल रहा हूं मेरे हस्त पादादिक अंग इस अपने स्वरूप को देख के व्यथा कूं प्राप्त होरहे हैं और मेरा मुखभी सूकता जाता है और मेरे शरीर विषे कंप उत्पन्न हो मेरे रोम रोम को खड़ा कर रहा है ये कैसी गति है कि।

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥ न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

केशव - हे कश्यब हस्तात हाथों से - गांडीवं धनुष द्रव्य रूप अहंकार शक्ति स्रंसते छूटी पड़ती है च अरु और निश्चय करके त्वक् त्वचा परिदह्यते दाह कूं प्राप्त होती है च और मे मेरा मनः मनभी भ्रमति इव भ्रमण कर रहा है च और अवस्थातुं मैं शरीर स्थित करने को भी न नहीं शक्नोमि समर्थ रहता च और विपरीतानि विपरीत अशुद्ध गति - निमित्तानि - निमित्तों को भी पश्यामि देखता हूं।

आशय ।

हे कश्यब मेरे हाथों से स्वरूप अवस्था कूं देख के मेरी अहंकार शक्ति अर्थात धनुः गिरा जाता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और निश्चय करके मेरी त्वचा दाह कूं प्राप्त होती है। और मेरा मन भी भ्रमण कर रह्या है कि मैं उस भ्रमण युक्त हूं। अपने शरीर को स्थित करने योग समर्थ नहीं हूं ऐसी विपरीत गति अनामित भी मैं इस प्रपंच स्वरूप दशा में देखता हूं। हे कृष्ण मैं किस प्रकार युद्ध करूं मैं तो स्वरूप विषे अनात्मता देखता हूं यथा इस सर्वान प्रपंच सृष्टि में सत आनंद रूप को नहीं पाता हूं किस प्रकार इस द्वैत भाव प्रपंच को निर्वाहूं। हे केशवः यथा जगत के उत्पन्न करणेहारे कश्यप अर्थात प्रपंच के रचने वाले ब्रह्मा और नष्ट करने वाले शिव रुद्र तूं अवश्य पालनहारा विष्णु भी है सो है केशव इस विपरीत प्रवृति का अर्थात द्वैत प्रपंच का कारण रूप कौन है कि जो विपरीत बुद्धि से व्यूह रचन कर युद्ध करने की प्रेरणा करता है। अर्थात द्वैतता का प्रवृतन करता है क्या ये

**न च श्रेयो नुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ

**आहवे** इस युद्ध प्रपंच द्वैत विषे **स्वजनम्** अपनों को अर्थात अपने आपको **हत्वा** - हत कर अर्थात मार करिके **श्रेयः** स्वार्थ कूं **नच** नहीं **अनुपश्यामि** - देखा जाता है।

## आशय।

इस युद्ध प्रपंच द्वैतता विषे कारण रूप में द्वैतता का स्वरूप क्या अपना ही स्वार्थ अर्थात आशा तृष्णा रूप नहीं हैं। कि जो अपने आपको ही मार कर स्वार्थ का पुरुषार्थ क्रिया रूप फल देखने में आता है। हे कृष्ण श्रेयः प्रथम दृष्ट श्रेय द्वितीयो अदृष्ट श्रेय है। अर्थात स्वार्थ प्रकट गुप्त दो प्रकार का है। किंतु स्वरूप स्वार्थ रहित है सो आपही अपने को हनन करके स्वार्थ की किसी प्रकार प्राप्ति नहीं होती है इस कारण प्रपंच में द्वैत में पड़ कर युद्ध करना अपने आपको ही हनन करना है इस से किसी प्रकार की कार्य सिद्धि नहीं होती है फिर श्रेय कैसा और युद्ध कैसा मैं तो निस्वार्थ हूं इस लिये। द्वैत अर्थात प्रपंच रहित हूं। मुझे तो

**न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ॥ किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ

**कृष्ण** - हे कृष्ण - **विजयं** विजय को **न** कांई नहीं - **काङ्क्षे** इच्छा आशा **च** और **राज्यं** राज भोग राज्य को भी **न** नहीं - **च** तथा **सुखानि** सुखों को भी **गोविंद** - अविद्या द्वैत निराश्रय शक्ति **नः** अपने को **राज्येन** - राज के विषे **किं** क्या - **भोगैः** सुख **किं** क्या **वा** और **जीवितेन** - आनंद फल

## आशय।

हे कृष्ण इस द्वैत प्रपंच अर्थात युद्ध रूप स्वार्थ से क्या लाभ कुछ भी नहीं इस लिये इस युद्ध रूपी प्रपंच द्वैत भाव में पड़ना कि जो स्वरूप से भिन्न है अर्थात अनात्मता है तथा जिस में स्वरूप सत आनंद का नाम मात्र लेस नहीं है। तथा जो स्वरूप के हेतु व्याधा है तथा जिस व्याधा का कार्य कारण रूप मिथ्या नाम मान उपमा राजादिक सुख भोग हैं। हे कृष्ण क्या ये वासना अविद्या माया मोह नहीं है कि जिसके सुख में दुःख भोग हुआ करता है। हे कृष्ण मिथ्या नाम मान उपमा ही तो माया कार्य है कि जो त्रिगुणात्मक आवरण से आवृत अर्थात माया मोहित रूप अनेक रूप वाली स्त्री शक्ति बनके सुख दुःख का बोध कराती है। हे कृष्ण ऐसी अभिमान रूप वासना उपमा उत्पन्न करने वाली अविद्या शक्ति अर्थात विजय रूप इच्छा राज्य भोग तथा सुखों की हे अविद्या द्वैत निराश्रय शक्ति गोविंद मेरे अपने आपको राज्य भोग विषय आनंदमय फल रूप फल नहीं कारण कि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥ त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

येषाम जिस अर्थे कारण काङ्क्षितं अपेक्षित इच्छा आशा नः मेरे को आपनेआपको हमको हमारे को राज्यं राज्य भोगाः विषय भोग आनंद गुप्तभाव आकृति - सुखानि सुख - संतोष - शान्ति - स्वरूप च वे व और तथा ते - नव - तेरा - री - रा - तुझको तेरेकूं तोकं - ते इमे - मैंये इस मेरा ये अवस्थिताः अवस्था स्थान स्थित रूप युद्धे व्यूहरूप - मिश्रितप्रपंचआकृति द्वैतभावअशुद्धि - प्राणान् सूक्ष्म आकृतियाँ सूक्ष्म आकृतिस्वरूप त्यक्त्वा त्यागा हुआ धनानि द्रव्य आशा - च और इनमें

आशय

मायाकार्यसम्पद्रूप मान ऐश्वर्य्य व विपद्अर्थात दुःखरूप सुख दुःख अनुभव कर्ता हैं और कर्ता जिसे कहा जाता है वह अभिमान है। और ये अभिमान ही द्वैतरूप प्रपंच युद्धस्वरूप है। सो जो अपनी सम्पतिके ऊपर अभिमान करता है वही अपनेसेअधिक सम्पतवान को देख अवश्य कातर होता है। इसकारण सम्पति के रहनेमें अभिमानी को सुख नहीं होता ऐसे ही अपनेको ऊंचा और आपने अन्य को नीचा जानकर अभिमान करना और उस नीच निरूपित व्यक्ति से अपने मान कराने की इच्छा रखना और उस्का मान चाहनेवाले को मान उपमा न देना अभिमानीके लिये महान शोकात्मरिपु परवश गति से क्रोध हिंसकरूपी अग्निमें जलना होता है। तैसे ही आत्मीय जनों के ऊपर अभिमानी होना अर्थात मेरा पुत्र मेरी कन्या मेरी स्त्री मेरी माता इत्यादभावसे अभिमान करना उन आत्मीय जनोंके विनाशसे महा शोकरूपी दुःख भोग करना होता है। और ये सब माया कार्य है। सो मैं देखता हूं कि मेरे आत्मीय जन राज्य भोग और सुखकी कामना त्याग युद्धविषे स्थित हुए हैं वे अपने हेतु अपने को प्राण नहीं जानते कि जिनके हेतु राज्य भोग और सुखकी अवश्य त्यक्ता हो। और इनमें -

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥ मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनः तथा ॥३४॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ॥ अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

आचार्याः असंग सर्वज्ञ दिव्य शक्ति गुरुअप्रारूप - पितरः सूक्ष्मरूपपितास्वरूप पूर्ण शक्ति पुत्राः नागरूप पूर्ण तथा और एव निश्चय - च तथा पितामहाः महानअसंग अनादिरूप मातुलाः शल्य शकुनि सूक्ष्म अग्नि जल रूप - श्वशुराः भव तथा रुद्ररूप मूलबीजरूप पौत्राः नन्दरूप - श्यालाः अहिरूप संबंधिनः विश्वरूप सूर्यस्य रूप तथा और एतान् सर्व नहीं हंतुम् हनन मैं - इच्छामि इच्छा मेरी - घ्नतः हनते अपि भी मधुसूदन बीज रुद्रजल शहत अग्नि अर्थात मद्रा सब एकरूप बीजरूप अपि भी त्रैलोक्य तीन लोक स्वर्ग मर्त्य पाताल कला ब्रह्मा शिव विष्णु रूप राज्यस्य राज्य पूर्ण आकृति मनुष्य रूप सुख भोग प्राकृति प्रपंच। हेतोः भी - किं नु क्योंकर किसप्रकार सर्वथा महीकृते - केवल कारण रूप मेरा ही कार्यस्वरूप कार्यकारण कैवल्यरूपस्वरूपहै

आशय ।

हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू कहता है। कि असंग सर्वज्ञ दिव्य शक्ति गुरुअपरा रूप पितास्वरूप सूक्ष्म शक्ति पूर्णरूप नागरूप पूर्ण पुत्राः रूप और निश्चय पिता महान असंग अनादिरूप मातुलाः शल्य शकुनि सूक्ष्म अग्नि जल रूप श्वशुराः भव रुद्र मूलबीजरूप पौत्राः नंदरूप श्यालाः अहिरूप संबंधिनः विश्व सूर्यस्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रुप इन सर्वको हननेमें नहीं इच्छा मेरी हनन करते हुए भी कि ये सर्व मधुसूदन बीज रुप त्रैलोकी पूर्ण राज्य आकृति पुरुष रुप सुख भोग प्राकृति प्रपंच भी सर्वथा केवल कारण रुप मेरा ही कार्य स्वरुप कार्य कारण एक ही रुप स्वरुप है। सो हे मनु इन्द्र इस प्रकार तू अर्जुन रुप से वर्णन करता हुआ फिर संजय रुप हो आप ही धृतराष्ट्र रुप अपने ही स्वरुप से ऐसा कहाता है कि।

## संजयं उवाचं ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ॥ संख्ये रथोपस्थ अपाविशत् बभूवऽर्जुनः ॥३६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

एवम् - इस प्रकार उक्त्वा उपजा हुआ कहना - वचन कहना हृषीकेशं - शुद्ध शाश्वत रुप गुडाकेशः अचल रुप परन्तप पूर्ण सिद्ध शक्ति महत मन धृतराष्ट्र - संख्ये संग्राम रुप संसार रथोपस्थ रथके ऊपर विश्व विराट के मध्य अपाविशत वैठना वैठ जाना वैठा हुआ होना - बभूव रचना शक्ति अर्जुनः सृष्टि केवल पद एक ही स्वरुप

## आइया ।

इस प्रकार उपजा हुआ शुद्ध शाश्वत रुप अचल स्वरुप पूर्ण सिद्ध संग्राम रुपी संसार विश्व विराट के मध्य वैट गया हुआ विभूती रचना शक्ति रुप सृष्टि अर्जुन केवल पद एक ही स्वरुप है इसमें अन्य प्रकार का कोई आश्रा अर्थात सहारा नहीं है इस प्रकार हे परन्तप धृतराष्ट्र तू इस संसृति कुरुक्षेत्र आर्थात कुरु श्रेष्ठ संसार प्रपंच की एक ही रुप एक ही स्वरुप सर्व रचना को जान। ऐसा कह कर हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तु कृष्ण रुप से आप ही अपने को कहता है कि "अयं अर्जुनः कृष्णं शुद्धं ब्रह्म" मैं अर्जुन अर्थात एक प्रकाश स्वरुप ही शुद्ध ब्रह्म कृष्ण रुप हूं। सो तू फिर कृष्ण रुप से ऐसा कहता है। कृष्णं उवाचं -

जानामि मम परमरुपं तत्राहं जानवमिच्छामि ॥ अशोच्यानन्वशोचस्वयं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ॥३७॥

## पदच्छेद शब्दार्थ

जानामि - जान लिया है मैं ने - मम मेरे को अपने को - परमरुपं परमरुप मेरा जो है उस्को तत्र तहां तौ भी अहं मैं जानवम - अपने जान लेने को इच्छामि मैं इच्छता हूं अशोच्यान् नहीं सोचने के योग वयं हम आप आपने आप - अन्वशोचः हैं शोक संताप रहित च तथा प्रज्ञावादान् बुद्धि और ज्ञान से नहीं - भाषसे कहणे योग्य

## आइया ।

जान लिया है मैं ने आप अपने आप को अपने परम रुप को अर्थात मेरा परम रुप जो है सो उस रुप को तौ भी मैं अपने जानणे के लिये कि मैं कौन हूं क्या हूं मैं इच्छा करता हूं अर्थात इस भ्रमण भ्रान्ति में पड़ कर कि मैं मरता हूं तथा मैं मारता हूं इस प्रकार का भ्रम और ऐसी भ्रान्ति नहीं है सोचने व विचार करने के योग्य कारण कि मैं तो आप ही अपने आप निर्शोक अर्थात शोक संताप रहित अविनाशी स्वरुप हूं कि जो बुद्धि और ज्ञान करके भी कहणे में नहीं आता हूं कि मैं कौन हूं "सदैव परमानन्दः स्वप्रकाशश्चिदात्मकः। न कालः पञ्च भूतानि न दिशो दिशश्च न" श्रुति अनुकूल मैं नित्य प्रमानन्द स्वप्रकाश और चिदात्मा हूं काल दिशा विदिशा पंचभूत मेरे प्रमानन्द स्वरुप में कुछ नहीं है कारण कि "मदन्यन्नास्ति यत्किञ्चित्तदा वर्त्तेऽहमेकलः" श्रुति प्रमाण मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है निरन्तर मैं केवल एक ही विद्यमान रहने वाला रहता हूं। सो हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तेरा कहन ये है कि मैं वह हूं कि जिसे कुछ नहीं कह सक्ते अर्थात कोइ किसी को मारने वाला जाने कि मैं ने उसे मारा और वह मरने वाला समझे कि मैं मरा यही भ्रान्ति और भ्रम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विचारयोग्य नहीं हैं कारण कि देह और जगत नाशमान वस्तु हैं सो न मारता मारता है न मरता मरता है मरते को मारता और मरते को मरता मानना ही अविद्या कार्य है अहंकार गति है कि जिससे शुद्ध स्वरूप को भ्रम उत्पन्न करने वाले काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य यह छः रिपु गण उत्पन्न हो स्वप्न और जागृत अवस्था में दुःख देता प्रतीत होता और सुषुप्ति में सूक्ष्मरूप के होने तथा अहंकार गति के अभाव से आनंदित होता हुआ प्रतीत होता है। स्वरूप अर्थात आत्मा देह इंद्रिय उपाधि से रहित स्वप्रकाश है परन्तु स्वरूप की स्मृति लोप करने वाली माया ने विस्मृति को प्राप्त करदिया है इस से सब प्रपंच इस में अज्ञान से विदित होता है कारण कि माया अघटित घटना पटीयसी अर्थात न होने वाली बात को भी होने वाली करके दिखा देती है माया के योग से स्वरूप विषे आत्मा में नाना प्रकार के देहादि और नाना प्रकार के प्राणी भिन्न भिन्न करके स्वरूप के विरुद्ध कर्म देखने में आते हैं और ये ही एक असोचनिय अर्थात सोचने योग बात नहीं - स्वरूप चेतन अंतर बाहर एकरस भर पूर है। सो हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू कहता है कि ब्रह्मांड के अंतर अर्थात भीतर और बाहर महाकाश की भांति जो अदृष्ट व दृष्टगोचर भरपूर चेतन है वही अशोच्य आत्मा मेरा जाना हुआ मेरा स्वरूप मेरे से अभिन्न उपाधि रहित सर्व का आत्मा गुडाकेश ब्रह्म है। यद्यपि ब्रह्म शब्द का वाच्य जो है सो सोपाधिक है और सोपाधिक व्यापक वस्तु को कहा जाता है इसलिये स्वरूप जो सोचन योग वस्तु नहीं है सो व्यापक वस्तु ब्रह्म है। और व्यापकता दो प्रकार की होती है इनमें प्रथम औपाधिक व्यापकता है और दूसरी निरुपाधिक व्यापकता है इन्में उपाधित माया है और निरुपाधित स्वरूप है सो निरुपाधित स्वरूप क्या है इस विषे में तेरा ही ये कहन है कि।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्॥ विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥३८॥

पदच्छेदः शाङ्कर्य।

अविनाशि जो देशकालवस्तु विषय नाश न हो ऐसे स्वरूप मया मैंने मेरे करिके मेरे से तत् सार सत रूप स्फुरण - विद्धि क्रिया कारण रूप यत्न - येन - सत रूप स्फुरण - सर्वम सर्व में - इदं यह - ततम् सार जो है उस को व्याप्त विनाशम् परिच्छिन्न नाशमान पदार्थ जो हैं उसको अव्ययस्य अपरिच्छिन्न सत रूप स्फुरण अजन्य कुटस्थ भ्रांति नाश जन्म मरण दोनों से रहित अस्य इस को न नहीं कश्चित् कोइ कोइ भी कर्तुम करने को अर्हति - समर्थ।

आशय।

जो देश काल वस्तु से नाश नहो ऐसे अविनाशी स्वरूप मेरे से जो तत सार सत रूप स्फुरण है क्रिया कारण रूप यत्न है सो सत रूप स्फुरण सर्व प्रपंच में जो स्वरूप व्याप्त है उस अपरिच्छिन्न सत रूप स्फुरण अजन्य कुटस्थ भ्रान्ति नाश जन्म मरण दोनों से रहित इस स्वरूप को कोई भी नाश करने को समर्थ नहीं ऐसा यह मेरा "महद्भूतमनंतमपारं विज्ञानघन एवेति सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" श्रुति वाला अर्थात सत वस्तु रूप महान् रूप है तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञान घन है तथा सत्य है तथा ज्ञान रूप है और "अस्य पुरुषान्नरूपं परंकिंचित्सा काष्ठा सा प्रागतिः" श्रुति करिके अर्थात इस स्वयंज्योति रूप मेरे से परे कोइ भी वस्तु है नहीं - कारण कि ये स्वयं ज्योति पुरुष ही सर्व जगत का अविधि रूप है तथा परागति रूप है। इसलिये आत्म क्षणिक नहीं सर्वत्र व्यापक तत्सार एक अद्वितीय रूप स्वप्रकाश स्फुरण रूप सत वस्तु है कि जिसका अभाव नहीं होता है कारण कि ये मेरा स्वरूप अर्थात अद्वितीय रूप।

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥
अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्य एव च॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥२४॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते ॥ तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

नैनं नहीं एनं ये इसे इसको आत्मा को छिंदंति छेदना छेदनकरसकना शस्त्राणि शस्त्रभी नैनं नहीं एनं इस आत्मा को दहति दाहकरना जलाना सकना पावकः अग्निभी न नहीं च तथा एनं इस स्वरूप को क्लेदयंति गलाना गलासकना आपः जलभी न शोषयति शोषण करना सुखासकना मारुतः वायुभी अच्छेद्यः नहींछिदनेवाली अयं ये मेरा अपरोक्षस्वरूप अदाह्यः नजलनेवाला अयं स्वरूप यह आत्मा अक्लेद्यः नगलनेवाला अशोष्यः नसूखनेवाला एव निश्चय च तथा नित्यः सदैव सर्वगतः सर्वगत स्वरसभरपूर पूर्ण स्थाणुः स्थान अधिष्ठान अचलः पूर्ण भरपूर अयं मैं सनातनः अनादि अव्यक्तः अप्रत्यक्ष गुप्त अयं मैं मेरा स्वरूप आत्मा अचिंत्यः चिंत्य नहने वाला पदार्थ अयं मैं मेरा स्वरूप ये आत्मा अविकार्यः विक्रियारहित अयं मेरा स्वरूप आत्मा उच्यते कहा हुआ होना तस्मात् तिस कारण करिके एवं इस प्रकार विदित्वा जानासमझलेना जानिके अनुशोचितुं जो शंका संदेहकरनेके योग नहो विचार्निये नहो एनं इस स्वरूपको नैं नहीं अर्हसि योग्य

आर्य ।

नहीं है विनाश स्वभाव जिस्का ऐसी अविनाशी आत्मा जो अंत विकारसे रहित है अव्यय निर्गुण अजन्य है अर्थात कभी जन्म नहीं लेती सर्वकाल विषे विद्यमान रहती है। नित्य है सर्वत्र व्यापक है सर्व पदार्थों का प्रकाशकरूप है तथा सर्व द्वैत प्रपंच से रहित है तथा परमानंदबोधरूप है साक्षात कर्ता पणे से रहित है अर्थात "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत । श्रुति अनुकूल जो विद्यमान पुरुष परिपूर्ण अद्वितीयब्रह्महै वही मेराआत्मा स्वरूप इच्छा रहित कर्तृत्व भोक्तृत्वसे अभाव प्रपंचसे रहित राग द्वेषादिसे रहित सर्व विकारोंसे रहित अर्थात "आनंदं ब्रह्मणो विद्वान नबिभेतिकुतश्चनेति" श्रुति प्रमाण ब्रह्मके स्वरूप भूतके आनंदको जानने वाला किसी प्रकार भयको न प्राप्त होने वाला किसी तीक्ष्ण शस्त्रसे न छिदने वाला और प्रज्वलित अग्नि अग्निसे भस्म न होने वाला और जलके अत्यंत वेगसे न गलने वाला और अत्यंत प्रबल वायुसे शोषण न होने वाला अपरभाव अनित्यसे रहित नित्य उत्पतिसे रहित तथा अस्तिभांतिप्रियरूप करिके सर्वत्र व्यापक स्थाणु अधिष्ठान अधिकारी चलन रूप क्रियासे रहित अचल रूप सनातन सर्वदा एकरूप किसीक्रिया कर्मको न करने वाला संस्कार्यरूप कर्म न बनणे वाला - अर्थात "आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः वृक्षइव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः निष्कलं निष्क्रियं शांतं इति" श्रुति प्रमाणसे तथा आकाशकी भांति सर्वत्र व्यापक तथा नित्य तथा महान वृक्षकी भांति अचल स्थित व अपणे स्वप्रकाश स्वरूप विषे स्थित तथा एक अद्वितीय रूप तथा निरवयव तथा क्रियासे रहित तथा शांतस्वरूप सर्वगत स्थाणु स्थित सर्व अंतर्यामि रूप प्रेरक अंतर्यामि रूप अव्यक्त गोचर प्रत्यक्ष प्रकटसे परे अव्यक्त अगोचर अप्रत्यक्ष गुप्त रूपादिक गुणोंसे रहित अनुमान प्रमाणसे रहित शब्द श्रुति ध्वनिरूप अचिंत्य अच्छेद्य निर्विकार अदाह्यरूप दुर्बोध "नरति शोकमात्मवित्" श्रुति करके स्वरूपआप ही स्वरूपके वास्तव स्वरूपको जानणे वाला सर्व शोकोंसे रहित जो स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है वही मेरा स्वरूप है! हे मनुइसवेदव्यास राजेन्द्र तू आपही अपने को कहता है कि

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ गुणा गुणेषु वर्तंत इति मत्वा न सज्जते मे ॥ ४२ ॥ 71

## पदच्छेदः शब्दार्थ

प्रकृतेः माया के कार्य कारण क्रियमाणानि - क्रिया अर्थात कर्म करने वाले कर्म कार्य कारण - गुणैः इंद्रियादिक कार्य कर्माणि सर्व कर्म सर्वशः सर्व प्रकारसे गुणा इंद्रियादिक क्रिया गुणेषु रूपादिक जैसे विषयाविषे वर्तंते प्रवृत होते हैं इति ऐसे मत्वा मानिना न नहीं सज्जते कर्तृत्व कर्ता मे मैं आत्मा -

## आशय ।

माया जो सत्व रज तम तीन गुण रूपहै तथा मिथ्याज्ञान रूपहै और जो मेरीशक्ति कहनेमें आती है इसका नाम प्रकृतिहै और यह प्रकृति ही जगत रूप उपाधि महेपृवर रूप विकार रूप जितने किदेह इंद्रिय अंतः करणादिक सर्व कार्यकारण रूप गुण हैं सो इन गुणों करकै ही अर्थात क्रिया कर्म करने वाले कर्म कार्य कारण इंद्रियाद तथा कार्यगुण अंतःकरण आदि जो अभिमान विषे रूप देह इंद्रिय अंतःकरण का व्यापार हैं और जिन व्यापारों का नाम कर्म है और कर्म अर्थात गुण जड विकार मात्र रूपहैं। और ये इंद्रियादिक कारण ही विकारमान होनेसे अपने अपने रूपादिक विषयोंविषे प्रवृत होते कार्यकारण रूपहो माया प्रपंच कार्य करती हैं । और मैं आत्मा असंग रूप जो माया कार्य चक्षु श्रोत्रादिक इंद्रियों की ही दर्शन श्रवणादिक क्रिया हैं और वाक् बाणी आदिक इंद्रियों की ही वचन आदानादिक क्रिया हैं और अंहकारण रूप बुद्धि की क्रिया और संकल्परूप मन की क्रिया है इस प्रकार ये सर्व प्रपंच रूपजगत जो प्रत्यक्ष कर्म रूप बना हुआ प्रतीत होता है मायाकार्य है इस माया के कारणों करकै ही सर्व कार्य होते हैं मैं आत्मा स्वरूप सर्वदा कुटस्थ असंग चिद्रूप करिकै स्थित यथार्थ स्वरूप कर्तृत्व कर्ता नहीं हूं । मैं आत्मा स्वरूप न श्रवण करता हूं न देखता हूं न बोलता हूं न करता हूं न चलता हूं मैं कुटस्थ असंग चेतन रूप सर्वदा तूष्णीं ही स्थित हूं और « कर्ता न कर्मशक्ति नित्यमे नामे वधूत रूपऽयम » श्रुति करिकै मैं कर्ता रूप माया शक्ति नहीं हूं मैं नित्य ही अनाम अर्थात नहीं है नाम जिसका कोई ऐसा अवधूत रूप मैं हूं अर्थात कर्ता कर्म शक्ति माया प्रकृति का नाम है कि जो जगत महेपृवा रूप विकार स्वरूप है इस स्वरूप में माया कार्य कारण बुद्धि चक्षु आदिक गुण ही सुरूपादिक विषयों विषे प्रवृत होरहे हैं । आत्मा किसी भाव विषय विषे प्रवृत नहीं है सो गुणविभाग विषे तथा कर्म विभाग विषे सत्व रज तम इन तीन गुणों का जो बुद्धि अहंकार ज्ञान इंद्रिय कर्म इंद्रिय विषय रूप करिकै अवस्थान है उसी का नाम गुण विभाग है । यही कर्तापन भोगता है । मेरा स्वरूप आत्मा अनामस्वरूप आप अपना अध्यास देह नहीं रखता है कैवल्यब्रह्माकार है सर्वत्र दृश्यमान तथा मौन अवस्था धारण किये अटल नियमसे उदय है निर्वेद अवस्था में स्थित निर्दृश्य निरस्थान निर्भाषण किंतु सर्वस्थानों में अवस्थित निर्जीव कल्पना निष्क्रिय निष्कलंक रूप अत्यन्त सावधान अरूप रूपहै । और कैसा रूप है कि

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ॥ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ४३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

अजः जन्मरहित - अपि भी - सन् हूआ - अव्ययात्मा मरणसे रहित अविनाशी आत्मा चैतन्य भूतानाम् भूतोंका ईश्वरः ईश्वर अपि भी सन् हूआ प्रकृतिम् माया को स्वाम् अपनी शक्ति अधिष्ठाय आश्रयण करिकै संभवामि जन्मवाला होता हूं आत्ममायया अपनी माया करिकै

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपूर्व देह इंद्रियादिकों की जो ग्रहण योग ग्रन्थि पड़ती है जैसे कि वर्षा काल में बुदबुद उत्पन्न होता है इसी प्रकार शरीरादिकों के उत्पन्न होने का नाम जन्म है। और पूर्व ग्रहण ग्रन्थि के तूट जाने तथा देह इंद्रियादिकों का जो व्योग रूप है इस्का नाम मरण है। सो मैं जन्म मरण से रहित होने पर भी सर्व भूतों का ईश्वर बना हुआ अपनी माया को आश्रयण करिकै तथा अपनी माया करके में प्राशक्ति से अप्रारूप में अपनी माया करके जन्म मरण वाला अर्थात अरूप से रूपान्तर होता हुआ प्रतीत होता हूं यह प्रतीत सर्व मिथ्या और भ्रम रूप है कि इंद्रियों के बोध अर्थात माया करिकै इस प्रकार प्रकट है कि

(१) सर्व साक्षी स्वरूप चैतन्य आत्मा का जो आभास अन्तः करण में पड़ता है बुद्धि उसी को जीव का रूप देती हुई जीव मान लेती है और ये एक मिथ्या भ्रम और धोका है कारण कि जीव कोइ वस्तु नहीं है

(२) चेतन का जो आभास अर्थात प्रकाश माया में पड़ता है अनुभव उसी को ईश का रूप देता है कि जो एक भ्रम और धोका है कारण कि ईश अर्थात ईश्वर कोइ वस्तु नहीं सर्वदा कैवल्य स्वरूप है

(३) जो वास्तव में कोई वस्तु नहीं है किंतु अविद्या करिकै प्रतीत होती है इसी का माया भ्रम नाम है

(४) वह ज्ञान निश्चय कि जिस में अविद्या रूप माया लय हो जाती है उसी का नाम अनामयः स्वरूप अर्थात ब्रह्म शक्ति है अर्थात जन्म मरण आवागमन धर्म अधर्म कर्म आदि के मिथ्या भ्रम को मिथ्या जानना ही स्वरूप शक्ति का जानना और जन्म मरण से स्वतन्त्र हो स्वरूप ज्ञान है।

(५) स्वरूप ज्ञान ब्रह्म का ध्यान कपिल गति विचार है इसके अन्यत सब ध्यान कल्पित मिथ्या हैं

(६) भाव और अभाव दोनों पथों का साक्षी अनुभव जीवन मरण रूप स्वतंत्र अवस्था स्वरूप ज्ञान अनाम रूप देह इंद्रियादि कैवल्य बुदबुद रूप अनादि अनंत स्वरूप की माया अवस्था है यही स्वरूप ज्ञान है।

(७) अविद्या का अर्थ भ्रम अज्ञान और विद्या का आशय स्वरूप ज्ञान तथा आत्म ज्ञान है और स्वरूप ज्ञान तथा अनाम रूप विद्या अविद्या दोनों का अधिष्ठान है। विद्या अविद्या का परस्पर विरोध है किंतु स्वरूप ज्ञान निर्वैर रूप निर्वैरता से दोनों का प्रकाशिक स्वरूप है। इस प्रकार मेरा जन्म लेना मेरे को प्रतीत है।

(८) नाम रूप आकृति का नाम भ्रम मात्र जीव है। जीव न जन्मता है न मरता है नाम रूप व्यक्त और अव्यक्त होता रहता है। सो जहाँ पंच भूत की ग्रन्थि पड़ती है तथा जिस स्थान में आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी की ग्रहणी ग्रन्थि लगती है वहाँ पर ही ऋतु रस अङ्ग रूप में पुरुष प्रकृति का संयोग अर्थात अनाम रूप चैतन्य स्वरूप कला माया को प्रकाश देता है और ऋतु रस रूपी अङ्ग आकृति में नाम मात्र अनाम रूप आकृति उत्पन्न हो व्यक्त अर्थात प्रकट हो जाती है कि जिस व्यक्ति रूप का नाम जन्म लेना है इस प्रकार मैं जन्म लेता प्रतीत होता हूं। किंतु जब और जहाँ वही अंग रूपी ग्रन्थि टूट जाती है तहाँ ही चैतन्य का प्रकाश भी नहीं पड़ता वास्तव में सार अंश यह है कि न मैं जन्मता हूं न मरता हूं न कोइ आता है न जाता है न किसी देहा देह पुनर जन्म अनु कर्म अनुसार किसी का जन्म होता है यह द्वैजाकारी विघ्न अन्ध्यारी तीन वेद ऋग यजु साम के कर्ता त्रिडंड डंडाश्रम संन्यास गति वर्णादि का पारवंड रचन करने वाले अहंकारी द्वैज नाम रूप पर मरने वाले आकृति गति का उत्पन्न किया हुआ भ्रम प्रपंच है कि जो मिथ्या है और इसी प्रपंच से द्वैतता की प्रवृति का प्रवेश है यही आचार धर्म मिथ्या धर्म है

(९) मैं अनाम रूप चेतन स्वरूप आकृति स्थित जाग्रत में चेष्टा करता हूं स्वप्न के समय मोद में प्रवृत हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रवृत्त रूप हो कर भ्रपूर गगन वत अचल रहता हूं और सुषुप्ति में चित और आनंद दोनों लक्षणों को आपने सत् स्थान में गुप्त कर लेता हूं इस प्रकार नित्य ही जन्मता मरता ईश्वर जीव प्रकृति के नाना रूपों में मैं ही अनाम स्वरूप जन्म रहित तथा मरण रहित अविनाशी होने पर भी जन्म वाला प्रतीत होता हूं।

(१०) तुर्य अवस्था ब्रह्म का स्वरूप ज्ञान अर्थात मेरा ही अनाम रूप नाम और तुर्यातीत भाव ब्रह्म के विज्ञान स्वरूप का नाम अर्थात मेरे ही अनाम रूप स्वरूप सृष्टि क्रम के उपादान कारण फुरना शब्द ॐ प्रणव के निमित कारण तथा साधारण कारण का जन्म मरण रूप स्वयं विश्व विराट ईश्वर का स्वयं सिद्ध स्वरूप नाम है सो इस प्रकार इस गति रूप से मैं अनाम अवधूत स्वरूप अविनाशी आत्मा जन्म वाला प्रतीत होता हूं।

(११) जाग्रत और स्वप्न की सिंधी में अर्थात ऐसी अवस्था में कि जब मनुष्य आकृति स्वरूप वृति में न तो जाग्रत हो न स्वप्न हो इसी अवस्था का नाम जीवन मुक्ति है इसी अवस्था का नाम सविकल्प समाधी है इसी अवस्था का नाम सविकल्प समाधी है इसी अवस्था का नाम जनक स्वरूप जीवन मुक्ति है यही अवस्था नासाग्र ध्यान साधन ॐ कार रूप गणेपति स्वरूप है यही गणेश रूप अनाम स्वरूप है।

(१२) जब जाग्रत अवस्था में सुषुप्ति प्रगल्भ हो जाती है अर्थात जिस गति में मनुष्य रूप आकृति स्वरूप वृति में अनाम स्वरूप अर्थात मेरे अजन्य अविनाशी आत्मा स्वरूप को जगत का भाव स्वप्नवत ही करिकै मानता है इसी अवस्था का नाम स्वरूप विदेह मुक्ति सविजनक विदेह मुक्ति तथा निर्विकल्प समाधि तथा त्रिकुटी ध्यान साधन अनाम रूप अर्थात नाम मान अभिमान भेद भेद रहित अभेद स्वरूप असंग भीष्म शुकदेव व्यास वसिष्ठ पराशर गर्गादि अनेक नाम रूप वाला आदि अनंत मेरा ही स्वरूप है

(१३) आकृति नाम रूप का संपत और विपत की प्राप्ति में अचल धैर्य में स्थित रहना ही अनाम स्वरूप ज्ञान है इसी का नाम आत्म ज्ञान स्वरूप ज्ञान सनातन ज्ञान ध्रुव धर्म ज्ञान सिद्ध ज्ञान निर्वैर ज्ञान मुख्य ज्ञान है

(१४) विज्ञान ज्ञान स्वरूप स्थित वह स्वरूप गति है कि जिसमें नाम रूप आकृति मान अवस्था से स्वरूप के होने तथा रहने में अनाम स्वरूप आत्मा नाम रूप आकृति मान रहते हुए भी जगत के भाव और अभाव से अदृश्य रहते हुए कैवल्य अपने आत्मानंद स्वरूप में ही एकरस मग्न रहता है साधन और सिद्ध की कोइ क्रिया नहीं रखता सर्व को अपने ही अन्तर रखते हुए उत्पति प्रलय काल कर्म ज्ञान विज्ञान वर्णाश्रम से कोइ एक भी नाम मात्र वस्तु नहीं रखता है न सोता है न जागता है परमानंद सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा जैसे का तैसा ही रहता है यह मेरी अर्थात मेरे अनाम स्वरूप के जन्म मरण की मिथ्या होने वाली प्रतीत का स्वरूप भेद है और यही वह भेद है कि जिस के विषे में कहा जाता है।

ईहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ॥ निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ ४४ ॥

## पदच्छेद शब्दार्थ

ईह - इस स्वरूप भेद विषे - एव ही अर्थात निश्चय स्वरूप ही - तैः तिन स्वरूप ने - जितः अतिक्रमण किया है सर्गः कि यह द्वैत प्रपंच अर्थात माया रूप जगत प्रकृति प्राकृत येषाम जिस पुरुष स्वरूप आत्मा अनाम प्राकृत उत्पन्न करने वाले का साम्ये ब्रह्म भाव विषे अर्थात स्वरूप भाव विषे स्थितम् स्थित हुआ है मनः मन अर्थात महत्तत्व विराट विश्व स्वरूप निर्दोषम् नहीं है दोष उस स्वरूप को कोई हि किसी कारण से कि समम् स्वरूप सर्वदा सर्वथा एकरस अचल है ब्रह्म स्वरूप आत्मा तस्मात् - तिसी कारण विधि से ब्रह्मणि स्वरूप अनाम स्वरूप विषे ही ते समदर्शी स्वरूप स्थिता स्थित है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्व भूतों विषे स्वरूप भेद विषे निश्चय स्वरूप ही आस्ति भाति प्रिया रूप करके इस द्वैत प्रपंच अर्थात
माया रूप जगत प्रकृति प्राकृत में महतत्व को उत्पन्न करीके सर्वदा एकरस अचल रूप से निर्दोष रूप ही
स्थित है इस स्वरूप में जो भी आकृति है वही वही अवतार रूप अनाम स्वरूप अद्वैत प्रमाण आकृति है कि
सर्व जगत एकही सच्चिदानंद ब्रह्म अनाम स्वरूप का निष्कलंक निर्दोष अवतार अर्थात माया रूपी
आलरवः आनंद बनेउवा है इसमें माया अलरवः नन्हीं उत्पति प्रकृति शक्ति है इस में जो जो रूपमान
भिन्न भिन्न करिके नाम मात्र आकृतियाँ हैं तथा जीव जन्तु हैं वह सर्व आकृति सदैव ही बनी रहती हैं
इस स्वरूप में अनाम स्वरूप आत्मा सर्व शक्ति सम्पन्न नित्य ही एकरस अचल भरपूर है। सृष्टि चित्र
ही अचित्र रूप है। तथा रूप स्वरूप से नाम वाले का पता लगता है और शब्द से अर्थ का ज्ञान होता है
आकार से निराकार का भेद खुलता है। सो आकृति मान स्वरूप आकार में मन और बुद्धि की गम
आकार तक है निराकार में उनका प्रवेश नहीं किंतु आकृति मान स्वरूप आकार का निराकार रूप
स्वरूप में प्रवेश करने के निमित मन का लय करना अवश्य है और मन के लय करने को किसी
मूर्ति तथा चित्र तथा आकार की अवश्यता नहीं तथा मन का ठेराना तथा एकागर करना अवश्य
है। मन के लय होने पर निराकार का ज्ञान कि जिसका अनुभव नाम है स्वतः प्रकट होता है।

अनाम स्वरूप स्वरूप उपासिक स्वयं देव उपासना स्वरूप आकार रहित निराकार श्रुति और
निप्रयोजन अटल नियम रूप समदर्शी स्वरूप अद्वितीय गति है। तथा माया प्रपंच यथा द्वैतता का
आशा तृष्णा स्वार्थ रूप नाना पदार्थों की ममता चाहत क्लेश स्वरूप जगत शिव रूप है शिव क्या है
माया द्वन्द्वाकार नाना प्रकार की आकृति पदार्थ वस्तुओं का एक भारी गोला सर्प बिच्छुओं का
डसलेने वाला निराला झुंड कि नाना प्रकार के प्रपंच विषे उससे उत्पन्न होते हैं किंतु अन्त में
सब उसी में लय हो जाते हैं। अनाम निराकार साक्षात्कार स्वरूप है इसी एक निराकार स्वरूप से
सर्व प्रकार के आकार निकलते हैं और फिर उसीमें निराकार रूप से लय होजाते हैं। सो अनाम स्वरूप
भेद विषे निश्चय स्वरूप अद्वैत आत्म सुख स्वरूप सुख और द्वैत प्रपंच अनात्म दुष्टि दुःख व
क्लेश रूप है। उत्साह पूर्वक चित्त में स्नेह मोह आदि किसी प्रपंच पदार्थ वस्तु रखते हुए परमार्थ
सत्य स्वरूप अनाम रूप को छोड़ प्रपंची वस्तु पर दौड़ने से किसी काल परमार्थ की तथा
किसी क्रिया की सुफलता नहीं होती। यह द्वैत प्रपंच अर्थात माया रूप जगत पुरुष रूप अनाम
आत्मा स्वरूप का स्थूल १ सूक्ष्म २ कारण ३ तीन प्रकार से तीन रूप में शिव १ विष्णु २ व
ब्रह्मा ३ तीन रूप में पृथक पृथक कर के होने पर भी अद्वितीय अनाम स्वरूप निराकार है
कारण कि स्थूल स्वयं आकृति रूप आकार है। और शब्द जो अन्तः करण से प्रकट होता है
सूक्ष्म निराकार रूप है। कारण अन्तः करण की निरोधता से उत्पन्न होने वाले तेज का तथा
प्रकाश रूप का नाम है। और स्वरूप विषे ये भेद द्वन्द्वाकार रूप है द्वन्द्वाकार कामना तथा
विषय वासना का स्वरूप है। इस द्वैत प्रपंच में भी आत्मा अनाम के अंतर स्वरूप के दो भेद
हैं कि जिनमें प्रथम प्रतीक क्रिया भेद रूप है दूसरी अहंग्रह अवस्था अभेद स्वरूप है इसमें
(१) प्रतीक वह स्वरूप भेद विषे है कि जिसमें सर्व प्रपंच कृत नाम रूप आकृतिमान पदार्थों से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकृतिमान आत्म स्वरूप दृष्टि को हटाकर तथा सर्व नामरूपी पदार्थों को मिथ्या समझकर कैवल्य स्वरूप को देखता है अर्थात सर्व पदार्थों में केवल अद्वैत स्वरूप को ही निश्चय करता है।

(२) अहंग्रह अवस्था वह अभेद रूप स्वरूप अवस्था है कि जिसमें अपने ही अन्दर की अहंता ममता की कि जो आकृति मान आत्म स्वरूप ने अहंकार अर्थात रिपुगण वश हो कल्पनाकल्प रची होती है उस से पल्ला छुड़ाकर कैवल्य ब्रह्म ही ब्रह्म तथा अनाम रूप स्वरूप ही स्वरूप का स्वरूप का देखना है। और इस गति में उस अवस्था को प्राप्त होना है कि जिसके परमानन्द का वर्णन वाणी नहीं कर सकती स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो साक्षात स्वरूप भासने लगता है और प्रपंच की सर्व आकृति वस्तु स्वयं निर्त करती प्रतीत होती हैं। साक्षात आकृति नाम रूप से ही स्वरूप शिवरूप अनुभव का दृष्टा स्वरूप आनंद में मग्न रहता है कि फल की इच्छा नहीं रखता आत्म स्वरूप आप ही वेद आप ही मंत्र आप ही देवन का देव तथा जगत के सर्व पदार्थों का रूप अन्तर्यामि पंचभौतिक आकृतियों की सामग्री बनाय निज हृदय स्थान में ज्ञान अग्नि चिताय सूक्ष्म अहंकार को कि जिसमें जगत का भास रहता है आत्म निश्चय की वेदी में आप ही अपने को अपने स्वरूप तथा अपने स्वरूप ज्ञान यथा अपनी ब्रह्म विद्या के अर्पन से दग्ध किये हुए आप अपनी विद्या के हुतशेष का स्वाद लेते हुए जीवितदशा विषे ही चार्वाक् सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूप जगत प्रपंच अर्थात सर्व द्वैत प्रपंच का अतिक्रमण रूप साक्षात सौम्य ब्रह्म निर्दोष भेद रहित सर्व में सम जन्म मरण के सर्व विकारों से रहित कूटस्थ नित्य एकरस अद्वितीयरूप स्वरूप पक्षपात रहित स्वतः स्वरूप प्रत्यक्ष साक्षी भूत भविष्यत वर्त्तमान तीनों का प्रधान त्रिगुण काल में प्रत्यक्ष प्रमाण चैतन्य अपूर्व चैतन्य अकाल रूप निर्वेद भेद निर्णय कर्ता और कर्म दोनों से रहित शाश्वत निरन्तर अभेद रूप करिके स्थित है।

स्वरूप आत्मा आकाशवत असंग है सर्व भेद दोषों से रहत है "साक्षी चेता केवले निर्गुणश्च" श्रुति प्रमाण अनाम आत्मा सर्व धर्मों से रहित निर्गुण स्वरूप है। यथा स्वरूप ही अनाम आत्मा रूप है और अनाम आत्मा रूप ही का नाम जीवन्मुक्त संन्यास स्वरूप है यही महान भेद स्वरूप भेद प्रवर्त व निवृत अर्थात गृहस्थ व संन्यस्थ तथा बंध मोक्ष यथा बंधन व मुक्ति का भेद एकही रूप स्वरूप में अभेद रूप है कारण कि

(१) जीवन्मुक्त संन्यास अनाम स्वरूप के निराशा अर्थात निस्वार्थ स्वरूप का नाम है और यही भेद रूप में निवर्त संन्यस्थ मुक्त मोक्ष स्वतन्त्र होने पर भी यथा पाप की उत्पति तथा तपरूप धन की हानी तथा धर्म की हानी इत्यादिक दुष्ट दोषों से रहित अविद्याकृत अविद्वान परिवर्त गृहस्थ तथा बंध तथा बंधन रूप ही प्रतीत होवै है। कारण प्रमाण यह है कि जो वस्तु जहां होती है वहीं से प्राप्त भी होती है और जो वस्तु जहां से प्राप्त होती है उस का वहां ही निषेध भी होता है अप्राप्त वस्तु का निषेध होता नहीं सो आशका तथा धन का संग्रह ग्रहस्थ प्रवृत रूप आकृतिमान पुरुष को ही प्राप्त है संन्यासी निराशी निराकार अनाम स्वरूप को अन्न धनादि का संग्रह प्राप्त नहीं इसलिये भेद में अभेद रूप एकही गति के दो नाम हैं

(२) पुण्य पाप दोष दृष्टा कार्य स्वर्ग नर्क धर्म अधर्म यह सब द्वैत प्रपंच भाव के शब्द मृत्यु अर्थात मौत का भय दुःख क्लेश जैसी बातें कर्म प्रारब्ध का भेद द्वैत प्रपंच सर्व मिथ्या भय रूप द्वैत प्रपंच द्वैतवादियों के उत्पन्न किये हुए भय रूपी शब्द जाल हैं इन शब्द जालों को मिथ्या जान कर निर्भय निस्वार्थ रूप होना ही मुक्ति स्वयं मोक्ष स्वयं स्वतंत्रता स्वयं आत्म ज्ञान स्वयं स्वरूप ज्ञान है स्वयं परमार्थ वस्तु ज्ञान है

(३) तत्व विज्ञान में अर्थात परमार्थ स्वरूप में प्रवृति और निवृति का एकही रूप एक ही स्वरूप है तथा बंधन और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मोक्ष का एक ही रूप है किंतु इन के सर्ल अर्थ तथा लक्षार्थ भेद का इतना ही भेद रूप अभेद स्वरूप भेद है कि जो आकृतिमान रूप वाली वस्तु पंच भूत की ग्रान्थि पड़ने से तथा चेतन के माया को प्रकाश देने से उत्पन्न होके व्यक्त तथा प्रकट होती है वही प्रवृति का रूप है और उस ग्रन्थि के छूट जाने तथा आकृति के अव्यक्त होजाने का नाम निवृति है। तथा प्रवृति ऋतु रस में माया पुरुष संयोग से अङ्ग रूप आकृति की व्यक्ति और निवृति माया पुरुष संयोग अङ्ग रूप आकृति का अव्यक्त रूप होजाने का नाम निवृति है। अनाम स्वरूप सर्व दोष द्वन्द्व आदिक भेदों से रहित निर्द्वन्द्व निरहंकार सर्व सृष्टि का स्वामि पूर्ण रूप है।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र निष्कल अङ्ग निर्दोष स्वरूप तू अपने अनाम स्वरूप का कृष्ण रूप बनाय वर्णन करते हुए फिर अपने आप से ही ऐसा कहता है कि कैसा है मेरा निर्दोष प्रकृति प्रकृत प्रवृत तथा संन्यस्थ निवृत असंग रूप गति प्रपंच माया रूपी जगत आत्म अनाम एक रस अचल कि जिस के विषे में कहा जाता है कि

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ ४५ ॥
भूमिरापो नलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥ अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४६ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥ जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ४७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

योगयुक्तात्मा - मैं अनाम आत्मा - समदर्शनः एकरस दृष्टि वाला बना हुआ सर्वत्र सर्व प्रपंच विषे सर्वभूतस्थम् - सर्व भूतों विषे स्थित - आत्मानम् अपने आत्म स्वरूप को - च तथा आत्मनि स्वरूप विषे - सर्वभूतानि सर्व भूत प्रपंच को ईक्षते देखौं हूं कि। भूमि पृथिवी - आपः जल अनलः अग्नि वायु वायु खं आकाश मनः मन बुद्धिः बुद्धि एव निश्चय च तथा अहंकार अहंकार इति इस प्रकार इयम् यह मे मेरे स्वरूप की भिन्ना भेद रूप प्रकृति माया अष्टधा अष्ट प्रकार की है महाबाहो महान बल शक्ति रूप इयम - ये प्रकृति माया अपरा - अपरा रूप - तु किंतु - इतः इससे अन्याम् - विलक्षण - मे - मेरे अनाम स्वरूप की - जीवभूतां चैतन्य रूप पराम् परा रूप - प्रकृतिं प्रकृति को विद्धि विधि रूप ज्ञान ययेदं परा रूप इदम् यह धार्यते धारण किया है जगत् जगत-

## आर्थ

स्थावर जंगम शरीर रूप जितने क भूत हैं तिन सर्व भूतों विषे भोक्ता रूप करिकै स्थित हुआ जो एक अद्वितीय विभु सच्चिदानन्द रूप प्रत्यक साक्षी अनाम आत्मा है यही मेरा प्रत्यक साक्षी आत्मा अनृत जड परिच्छिन्न दुःख रूप साक्ष्य पदार्थों से पृथक साक्षात कार तथा प्रत्यक साक्षी स्वरूप विषे आध्यासिक संबंध करिकै स्थित जो मिथ्याभूत परिच्छिन्न जड दुःख रूप सर्व भूत हैं इन सर्व भूतों को साक्ष्य रूप अनाम स्वरूप अर्थात आत्मा स्वरूप सर्व वस्तुवों विषे समान एक रस दर्शन है अर्थात अनाम आत्मा पुरुष योगयुक्तात्मा है सर्वत्र समदर्शन है साक्षात कार है स्वयं स्वतंत्र स्वयं मोक्ष है। " ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः " श्रुति अनुकूल कि जिसका यह अर्थ है कि ज्ञान से रहित पुरुष की मुक्ति नहीं होती एक भ्रम रूप माय उत्पन्न करने वाला धोका है। और धोका खाना तथा भ्रम उत्पन्न कार्य बंधन रूप है। कारण ऊपर वर्णी श्रुति का उत्तर इस दूसरी श्रुति में है कि " ज्ञाद्देव तु कैवल्यम् " अर्थात अर्थ यह है कि ज्ञान देव जो सर्व के अपरोक्ष है वह मैं ही कैवल्य स्वरूप हूं फिर ज्ञान क्या और अज्ञान क्या स्वरूप आत्मा तो स्वयं मोक्ष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथा « स्वयं ज्ञात्वा देवं सर्व पाशापहानिः » श्रुति अनुकूल स्वरूप आत्मा स्वयं स्वरूप का जानने वाला सम्पूर्ण बंधनो से हुआ धिरा सम्पूर्ण बंधनों से स्वयं मोक्ष है आत्मा अद्भुत शक्ति स्वरूप स्वयं राजा जनक अर्थात साक्षात अविनाशी प्रकाश स्वरूप है कि जिस्का कोइ भी विरोधी नहीं स्वरूप तथा मैं अनाम आत्मा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप ब्रह्म हूं अकर्ता अभोक्ता सच्चिदानन्द स्वरूप कुटस्थ असंग व साक्षी ब्रह्म हूं राग द्वेष आदि करके व्याप्त यह संसार स्वप्न के तुल्य मिथ्या है इस भ्रम कल्पित संसार करके मेरे अनाम आत्मा अद्वितीय स्वरूप में कोई हानि नहीं होती है कारण कि जिब तक स्थूल शरीर जो माया कार्य है रहता है तब ही तक इस का प्रपंच भाव भ्रम कल्पित यह मिथ्या भूत प्रपंच सत्य सा प्रतीत होता है तथा जब माया ग्रन्थि टूटती है और स्थूल देह का मर्त्य रूप देखा जाता है तो संसार स्वयं असत्य प्रतीत होने लगता है। इसकारण यह सम्पूर्ण जगत सर्वाधिष्ठान स्वरूप योग युक्तात्मा अर्थात ब्रह्म आत्मा यथा मेरे ही अनाम स्वरूप के विषे कल्पित है। जैसेकि एक सुवर्ण के विषे ही कटक कुण्डल केयूर आदि अनेक प्रकार के आभूषण कल्पना होते हैं तैसे ही सच्चिदानंद स्वरूप तथा अनुस्यूत अर्थात अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा के विषे तथा नाम रूपात्मक जगत के विषे तथा मणियों के विषे सूत्र की समान ओतप्रोत जैसे व्यापक तथा नित्य अर्थात त्रिकाल में जो सत्यस्वरूप सर्वव्यापक विष्णु माया मूर्ति उसके विषे अर्थात सर्व के उपादान भूत अनाम स्वरूप ब्रह्म के विषे देव मनुष्य पशु कीट आदि नाना प्रकार की व्यक्ति आकृतियें माया करके कल्पित हैं इस कारण जगत की प्रतीति वाचारम्भण मात्र है तहां श्रुति « वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम » प्रमाण - प्रपंच मिथ्या है सत्य तो केवल अनाम स्वरूप ब्रह्म अधिष्ठान रूप अद्वितीय आत्मा ही है। कारण कि जिस प्रकार सर्व व्यापक आकाश घट पट मठ आदि नाम से भिन्न भिन्न उपाधियों को - प्राप्त होकर घटाकाश मठाकाश आदि नाम से व्यवहार करता क्रम प्राप्ति प्रतीति होता है तथा घटपटादि उपाधियों का नाश होने पर पूर्ववत् केवल एक आकाश पदार्थ ही रहता है उसी प्रकार मैं हृषीकेश सर्वव्यापक इंद्रियों का नियन्ता परमात्मा देवता मनुष्य आदि उपाधियों को प्राप्त होकर भिन्न भिन्न रूप करके प्रतीत होते हुए जीव ईश्वर के भेदाभेद में प्रतीति होता हुआ उन माया कार्य तथा देव मनुष्यादि की तथा सर्व प्रकार की नाम रूप की आकृतियों के नाश होने पर केवल अद्वितीय असंग मैं अनाम ब्रह्म स्वरूप ही रहता हूं। पुनर् जन्म पुनर् कर्म अनुकूल जन्म तथा मैं ब्राह्मण हूं मैं संन्यासी हूं मैं ईसाई हूं तथा यहूदी हूं या बौद्ध हूं या महम्मदी मुसल्मान हूं या पारसी हूं या जैनी हूं तथा इनके अन्य और कोइ वर्ण आश्रम आदि नाना प्रकार के धर्म युक्त वाला हूं यह सब प्रपंच माया कार्य हैं मिथ्या गल हैं कारण कि मैं अनाम आत्मा कैवल्य असंग ही हूं। कारण कि पूर्वोक्त सर्व प्रपंच नाना प्रकार की देव मनुष्यादि उपाधियों करके पुरुष प्रकृति अर्थात देह और आत्मा की एकता का भ्रम होने से शरीर के धर्म जो जाति नाम आश्रम आदि मेरे अनाम स्वरूप को जीव रूह आदि करके जीव आत्मा के विषे आकृति मान मेरे स्वरूप के आकृति विषे भिन्न भिन्न मत पंथा आकृति मानों ने मान लिये हैं वे सब अविद्या अज्ञान अर्थात माया करके कल्पित हैं कि जो अपने अपने हित तथा अपने अपने स्वार्थ आधीन हो उन मनुष्यों ने अपने अपने धर्म मान रक्खे हैं वे वास्तव में सत्य नहीं हैं। मैं अनाम आत्मा इसी प्रकार कि जिस प्रकार जल स्वभाव से ही मधुर और शुभ्र है किंतु कटु कषाय और लवणादि तथा हरित पीत रक्तादिक के संसर्ग से कटु कषाय हरित पीत रक्त आदि रूप वाला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतीत होने लगता है। यद्यपि वास्तव में जल कटु कषाय हरित पीत आदि रूपवाला नहीं होता उसी प्रकार जाति वर्ण आश्रम के भेद के साथ एकता होने से अनाम आत्मा जाति वर्ण आश्रम भेद वाला नहीं होता। वास्तव में अनाम अद्वितीय आत्मा अविद्याकल्पित तीन उपाधियों के कारण से अर्थात स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों उपाधियों से रहित अजंत्य असंग ही है कारण कि

(१) पंचीकृत कहिये पंचीकरण किये हुए जो पंच महाभूत अर्थात पृथिवी जल तेज वायु आकाश नाम रूप जगत के परिणामी अर्थात पंचभूत उपादान कारण हैं और उनसे है उत्पति जिसकी तथा माया कार्य कारण रूपी आत्मा हर्ष रचना संसार जगत स्थान स्थूल शरीर की यह स्थूल शरीर ही अनाम स्वरूप आत्मा की प्रथम हर्ष स्थूल रूप उपाधि है। और मिथ्या प्रतीति है।

(२) प्राण - अपान - व्यान - उदान और समान ये पांच प्रकार के प्राण अर्थात पांच प्रकार की यह पांच वायु और सङ्कल्पविकल्पात्मक अन्तःकरण की वृतिरूप सूक्ष्म आकृति मन तथा निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृतिरूप जो बुद्धिरूप श्रोत्र - त्वक चक्षु जिह्वा घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रियः और हस्त चरण मुख गुदा लिंग यह पांच कर्म्मेन्द्रिय स्थूल सूक्ष्म आकृतियें इन सप्तदश अर्थात १७ अवयवों करके युक्त और अपंचीकृत सूक्ष्म पंचमहाभूतों का रचा हुआ सूक्ष्म शरीर यह अनाम स्वरूप आत्मा की द्वितीय मायाकार्य कारण रूप सूक्ष्म रचना स्वरूप हर्ष की दूसरी मिथ्या प्रतीत उपाधि है। कि जो सुखदुःख भोग भोगने का साधन तथा स्थूल शरीर कर्म का साधन करके प्रतीत होता है सो सुख दुःक कर्म आदि की प्रतीत सर्व मिथ्या प्रतीत है।

(३) जो अविद्या अर्थात माया अनादि है अर्थात उत्पति रहित है तथा अनिर्वचनीय है अर्थात सत् असत रूप से जिसका वर्णन नहीं होसकता है वही अविद्या माया सत् और असत् से विलक्षण रूप अनिर्वचनीय कारण आकृति स्थूल सूक्ष्म शरीर की उत्पति का बीज रूप माया कार्य कारण अविद्या रूप कारण रचना हर्षस्वरूप अर्थात हृषीकेश अनाम आत्मा की तृतीय मिथ्या प्रतीत उपाधि है कि जो ईश्वर रूप तथा धर्म अधर्म कर्मों की फली भूत क्रिया की फल देने वाली प्रतीत प्रतीति होती है किंतु प्रकृति माया अविद्या स्थूल उपाधि १ और जीवरूप सूक्ष्म उपाधि २ और ईश्वर कारण कर्तारूप उपाधि ३ इन तीनों वर्णन की हुई स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप उपाधियों से साक्षीस्वरूप अनाम अवधूत मैं निष्कलङ्क आत्मा मैं सम्बल अवतारी अवधूत मैं आकृष्ण अतीतः इसी प्रकार भिन्न हूं कि जिस प्रकार मायारूपी घट का देखने वाला घट से भिन्न होता है। तथा श्रुति " अहमेको नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययं पुरुषो सर्वत्रं यथाऽन्नो रसमयः " प्रमाण! मैं नित्य तथा शाश्वत शुद्ध ध्रुव अक्षर अव्यय एक ही पुरुष सर्वत्र जिस प्रकार कि अन्न के मध्य रस तथा स्वाद होता है इसी प्रकार हूं। यथा सीपी में जो रजत बुद्धि है सो भ्रम ही है तथा रजत के भ्रम का आधार शुक्ति यथार्थ है उसी प्रकार मेरे स्वरूप में भासनेहारा जगत मिथ्या है किंतु उस्का आधार मैं सत्य तथा एकरूप हूं। मैं ही यह पंचभूतात्मक जगत धारण किये हुए हूं। भूमि जल तेज वायु आकाश इन से मैं लिप्त नहीं हूं। इस प्रकार " स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः " श्रुति करके कि जिसके ये अर्थ होते हैं कि आत्मा एक ही अन्नरसमय पुरुष है अत्यंत यथार्थ हैं। कारण कि मैं अनाम आत्मा इसी प्रकार से कि जैसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अन्न में रस रहता है पंचकोशात्मक गुहा में निवास करने हारा निर्विकार संग रहित सर्व साक्षी कार्यकारण भेद शून्य स्वरूप हूं तथा मैं पञ्चकोशरूप नहीं हूं कारण यह है कि।

(१) अधिकारी संबंध विषे प्रयोजन का नाम अनुबंध होता है। और अनुबंध प्रवर्त रूप स्वरूप का नाम है कि जो माया कार्य कारण रूप में स्थूल सूक्ष्म कारण तीन रूप अर्थात परमाणु जीव ईश्वर तीन रूप की निष्ठा प्रतीति का प्रमाण है। और परमाणु जीव ईश्वर का प्रवर्त रूप अन्तःकरण स्वरूप है। अन्तः करण में तीन दोष मल विक्षेप आवरण के होते हैं। सो विष्काम कर्म से अंतःकरण का मल दोष उपासना तथा शुद्ध प्रेम यथा निरप्रयोजन हित से विक्षेप दोष और ज्ञान तथा निरपक्षता से आवरण दोष दूर होते हैं। इसी प्रकार की प्रवर्त रूपी आकृति का नाम अधिकृत तथा अधिकारी है।

(२) अनाम आत्मा स्वरूप अविनाशी यथा नाश रहित है अचल है क्रिया रहित है। इसी स्वरूप में माया रूपी जगत जो विपरीत स्वभाव वाला तथा विनाशी है तथा चल रूप है प्रतिकूल रूप है सो इस प्रतिकूलता के भेद को जान लेने का नाम विवेक है। विवेक का नाम मूल साधन है और इस मूल साधन का वैराग रूप है और विराग निराश्रय स्वरूप का नाम है इसी स्वरूप का दूसरा नाम सर्व भोग त्याग भी है इसी स्वरूप को शमादि षट संपत्ति तथा मुमुक्षता अर्थात स्वरूप प्राप्ति इच्छा भी कहते हैं

(३) मन को विषयों से रोकने का नाम शम और इंद्रियों को उनके विषयों से रोकने का नाम दम सत्य स्वरूप विश्वास का नाम श्रद्धा और शंका भय से निवृत तथा सुतंत्र होने का नाम समाधान और कर्म त्याग तथा सर्व साधन त्याग तथा नेत्रों से स्त्री की देखभाल के त्याग का नाम उपराम है और तितिक्षा धूप वा उष्णता तथा शीत तथा क्षुधा तथा तृषा के सहन करने का नाम है और यह एक साधन है

(४) ब्रह्म की प्राप्ति और अनर्थ की निवृति मोक्ष का स्वरूप है और इसकी इच्छा का नाम मुमुक्षुता है

(५) श्रवण मनन निदिध्यासन ये तीन तत पद के अर्थ का और त्वं पद के अर्थ का शोधन इस प्रकार षट नाम एक साधन सहित ये चार तथा षट नाम हुए और तत व त्वं पद के दो साधन आत्म ज्ञान साधन हैं

(६) बहिरंग नाम दूर का और अंतरंग समीप का नाम है।

(७) श्रवण से प्रमाण का संदेह मनन से प्रमेय का संदेह दूर होता है और निदिध्यासन से प्रपंच भेद अर्थात माया कारण कार्य भेद दूर होता है

(८) ब्रह्म है इस का नाम परोक्ष ज्ञान है। ब्रह्म मैं हूं यह अपरोक्ष ज्ञान है

(९) प्रपंच का कारण जो अज्ञान है और प्रपंच को बोध तथा प्रपंच प्रतीत में जन्म मरण दुःख सुख के बोध का अनर्थ नाम है इसी को बंधन भी कहा जाता है

(१०) सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृति की साधन का नाम ज्ञान है और अनर्थ की निवृति व परमानंद की प्राप्ति का नाम मोक्ष है और स्वतंत्र अवस्था अजन्य असंग स्वरूप का रूप है

(११) प्रपंच बंधन से तीन प्रकार के दुःखों की निवृति अर्थात अध्यात्म दुःख अर्थात रोग क्षुधादिकों से जो दुःख हो १ व चोर व्याघ्र सर्पादिकों से जो दुःख हो सो अधिभूत दुःख २ और यक्ष राक्षस तथा शीत वात आपतों से जो दुःख हो सो आधिदैव दुःख ३ इन तीन प्रकार के दुःखों की इच्छा निवृति का नाम पूर्वत प्रपंच है। और यही बंधन रूप तथा बंधन नाम है। और यही माया तथा प्रकृति रूप है। और प्रपंच तथा माया बंधन से निवृति का नाम मोक्ष तथा अनाम स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दर्शन इच्छा रूप है और यह इच्छा नित्य स्वरूप सुखरूप है और सुख की प्राप्ति का नाम मोक्ष है और आत्म स्वरूप सुख स्वरूप मोक्ष है इसलिये सर्व माया आकृतियें मोक्ष स्वरूप हैं
(१२) माया प्रपंच विलक्षण बंधन रूप है और इस बंधन से ज्ञान द्वारा निवृति है नहीं कारण कि आत्मा में मिथ्या बंध की सामग्री है नहीं इसलिये प्रवृति सत्य है निवृति कोई भी वस्तु है नहीं इस हेतु से सर्व संसार ही मुक्त रूप स्वरूप है इसके अन्य निश्चय मुक्ति है नहीं
(१३) सर्व प्रपंच में आकृति मान पुरुष बुद्धि में पांच प्रकार का प्रपंच भेद मान अर्थात-१ जीव ईश्वर का भेद २ जीवन का परस्पर भेद ३ जीव जड़ का भेद -४ ईश जड़ का भेद -५ जड़ जड़ का भेद हुआ ही करता है और भेद ही भय का हेतु हुआ करता है सो भेद खंडन भेद निराकरण तथा निर्भय अवस्था का नाम स्वतंत्रता तथा मोक्ष तथा मुक्त तथा अद्वय अनाम स्वरूप दर्शन है।
(१४) उप नाम आकृति का और दैशिक आत्मा का नाम है इसलिये शिष्य गुरु आकृति का नाम उपदेशिक है
(१५) अज्ञ अज्ञानी चर्म पात्र और घट रूप है और सुज्ञान मेघ समान ज्ञानी का नाम है जो स्वयं स्वतः है
(१६) ब्रह्म वेता ब्रह्म स्वरूप ब्रह्म रूप का नाम है और इसकी बाणी का रूप वेद रूप है
(१७) पत्नी स्त्री का नाम पुत्र बेटे का नाम भूमि पृथिवी का नाम पशु ढोर का नाम द्रव्य धन का नाम गृह घर का नाम व्रीहि धान्य का नाम विनाशी नाशवान का नाम सब प्रपंच नाशमान रूप है
(१८) सर्व जगत तथा एक एक आकृति एक ही परमानंद अनाम स्वरूप है और यही प्राप्ति रूप है अप्राप्त न कोई वस्तु है और न अप्राप्त की प्राप्ति है इस लिये स्वरूप स्वयं प्राप्ति रूप है
(१९) प्रपंच का प्रवृत विषय की इच्छा का रूप है और विषय इच्छा का नाम ही प्रवृत भोग प्रपंच है यथा धन पुत्रादिकों का ग्रहण क्षण कु बुद्धि भ्रांति है सो विषय भोग आनंद आनंद नहीं कारण कि यही वासना चंचल बुद्धि क्षणक माया शृङ्गार है अचल स्वरूप नहीं मिथ्या प्रतीत है जैसे रज्जु में सर्प सीपी मे रुपा भ्रम मात्र है ऐसे ही विषय भोग आनंद भ्रम मात्र है
(२०) अनिर्वचनीय ख्याति सत्य ख्याति माया स्वरूप है और शून्य वादी असत्य ख्याति १ व क्षणिक विज्ञान वादी आत्म ख्याति २ व न्याय वैशेषिक अन्यथा ख्याति ३ और सांख्य प्रभाकर अख्याति ४ यह चोरों की भांति असंगत असत्य ख्याति प्रपंच गति प्रपंच प्रवृति माया का रूप है और सिद्धि में सिद्धांत अनिर्वचनीय ख्याति प्रत्यक्ष अनाम आत्मा का आभास स्वरूप है जो माया साकार रूप है
(२१) भ्रम भ्रान्ति अन्तः करण की वृति आवरण अज्ञान की शक्ति माया का नाम है। और आवरण भंग शक्ति का नाम चिदाभास प्रकाश स्वयं प्रकाश आत्मा निर्भय स्वतंत्र गति है।
(२२) निवृति दो प्रकार की होती है १ तो अत्यंत निवृति और दूसरी कारण युक्त कार्य निवृति है सो कारण रहित कार्य की निवृति अत्यंत निवृति है। किंतु सर्व वस्तु का कारण अधिष्ठान कल्पित रूप अज्ञान है। और अज्ञान सहित कल्पित कार्य की निवृति का अधिष्ठान ज्ञान है तथा कारण में लय रूप निवृति का अधिष्ठान अज्ञान तथा माया ही में है जैसे सुषुप्ति प्रलय में सर्व पदार्थों का लय है सो लय के निमित्त भोग के सन्मुख कर्म का अभाव है इस प्रकार ज्ञान विना ही प्रपंच कर्मों का प्रपंच माया में ही लय अधिष्ठान है कर्म और माया भेद अभेद रूप हैं और यही कारण लय निवृति है
(२३) आभास सहित अन्तः करण की वृति का नाम कि जो इंद्रियों द्वारा निकल के घटादिक विषयों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को प्रकाशती है १ और घटादिक विषय अर्थात् आभास सहित वृत्ति रूप का ज्ञान २ तथा आभास सहित अन्तः-
करण रूप ज्ञाता ३ — इन तीनों का साक्षी प्रकाश स्वरूप है और यही घट रूप है और साक्षी आप ज्ञाता है ४।
और ज्ञाता स्वयं साक्षी स्वयं निवृति रूप है इस लिये सत असत्य से विलक्षण अनिर्वचनीय ख्याति माया है
(२४) निजरूप ब्रह्म रूप है इस में अज्ञान से मिथ्या जगत प्रतीत होता है जैसे अन्धकार में रस्सी ही मिथ्या
भूजंग अर्थात झूठा सांप प्रतीत होता है सो जैसे मिथ्या सांप का आधार रस्सी है इसी प्रकार इस मिथ्या
जगत का आधार मेरा अनाम स्वरूप है। और इसके सामान्य रूप और विशेष रूप दो स्वरूप हैं इनमें
सत रूप सामान्य है और असंगता कूटस्था नित्य मुक्तादिक विशेष रूप हैं इस लिये साक्षी स्वरूप चेतन
ही सर्व का अधिष्ठान साक्षी और दृष्टा रूप है। सो संसार रूपी दुख मिथ्या भ्रान्ति मिथ्या की निवृत्ति का
निजरूप में तो जगत और जगत के दुःख तीन काल में हैं नहीं जगत का उपादान कारण तम अर्थात माया
है और तम के तथा अज्ञान के नाश से माया कृत जगत का नाश है इसलिये अंतरंग बहिरंग ब्रह्म ही ब्रह्म है
(२५) जीव मिथ्या आभास चेतन का नाम है कुटस्थ नाम चेतन के शिवरूप कल्याण स्वरूप का नाम है
मिथ्या का भोग रूप है और कल्यान प्रकाश रूप है परमाणु १ जीव २ ईश्वर ३ तीन नाम रूप भेद रहित
जो शुद्ध चेतन है उसी के आश्रित माया है ये आदि रहित अनादि शांत है इसमें जीव भाव और
ईश्वर भाव माया कार्य रूप और परमाणु कारण रूप है और सांत तथा अंत वाली है इसी माया में
तीन शरी और पंच कोश हैं। सो शुद्ध सत्वगुण सहित माया ईश्वर कारण शरीर का नाम है और मलिन सत्व
गुण सहित अविद्या अंश जीव का कारण शरीर है इनमें ईश्वर कारण शरीर के आरम्भक पंच सूक्ष्म भूत मन
बुद्धि चित अहंकार पंच प्राण पंच कर्म इंद्रिय पंच ज्ञान इंद्रिय जीव का सूक्ष्म शरीर है और सर्व जीवन के सर्व
सूक्ष्म शरीर मिलके ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है और संपूर्ण स्थूल ब्रह्मांड स्थूल ईश्वर का परमाणु स्थूल शरीर
है और जीवन की व्यष्टि प्रसिद्ध स्थूल शरीर हैं और यही माया का स्वरूप है और इनही तीन माया के
शरीरों में पंच कोश हैं सो जिस प्रकार स्वभाव से शुद्ध स्वच्छ स्फटिक नील पीत रक्त वस्त्रादि के योग
करके नील पीत वर्ण सा प्रतीत होता है। किंतु वास्तव में स्फटिक मणि नील पीत नहीं है। इसी प्रकार
पंच कोश आदि के योग से अर्थात पंच कोश आत्मा की एक रूपता के भ्रम होने से आत्मा जो कोश रूप
प्रतीत होता है पंच कोश रूप नहीं है जैसे की
(१) अन्न के रस से जो उत्पन्न होता है तथा स्थूल रूप शरीर और अन्न के रस से ही वृद्धि को प्राप्त होता है
अहं बुद्धि वाला शरीर कि जो अन्न रूप पृथिवी में ही लीन हो जाता है यही अन्नमय कोश तथा अन्न का
स्थान क्योंकि कोश नाम स्थान का है इस स्थान रूपी अन्नमय कोश स्थूल शरीर के साथ जब अनात्म
आत्मा की एकता का भ्रम होता है तब क्षणक बुद्धि में अहं बुद्धि भाव उत्पन्न होकर माया पुरुष
संयोग्य संसर्ग से इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है अर्थात आकृति मान पुरुष स्थूल शरीर में
अहंबुद्धि के हो जाने से ऐसा मिथ्या भाव निश्चय कर बैठता है कि मैं मनुष्य हूं मैं मोटा हूं मैं तो
महान उत्तम कुल जाति ब्राह्मण हूं ऐसी मिथ्या प्रतीत अविद्या कर के सर्व देहधारियों में पाई
जाती है। और मनुष्य पना इत्यादि बातें स्थूल शरीर में ही उत्पन्न होती हैं। सो स्थूल शरीर अहंबुद्धि
का विषय होने से आत्मा है। ऐसी प्रतीत ही मिथ्या प्रतीत है कारण कि ज्ञान स्वरूप आत्मा है
और आत्मा के युक्त होने से माया रूपी देह में अहंबुद्धि की उत्पत्ति है कि जिसमें मुख्य शक्ति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रीति की है प्रीति रिपुगण माया कार्य है और माया कार्य में स्त्री पुत्र धन पशु आदिक स्थूल शरीर के उपकारक होते हैं और इनही से प्रीति होती है किंतु प्रीति का होना उनके उपकारक पने से है यदि वे उपकारक न हों तो प्रीति भी न हो इसलिये अन्नमय कोश अर्थात स्थूल शरीर कि जो आत्मा प्रतीत होता है इसकारके कि इसका परम पुरुषार्थ वस्त्र भूषन अंजन मंजन नाना विधि भोजन से शृंगार है तथा पोषण है और नाशमान है यह अन्न मय कोश आत्मा नहीं है।

(२) इसी प्रकार कि जैसे स्थूल शरीर आत्मा नहीं है स्थूल शरीर के जीवन व्यवहार विषे तथा पंच कर्मेन्द्रिय और पंच प्राण कि जीवन मरण जिनके आधीन है और इस प्रकार कि इसमें अहंबुद्धि पाई जाती है कि मैं भूखा हूं मैं प्यासा हूं मैं देखूं हूं मैं सुनूं मैं बोलूं हूं यह दूसरा प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं है कारण कि जब इस प्राणमय द्वितीय कोश के साथ आत्मा की एकता का भ्रम होता है तबही प्राणमय कोश में अहंबुद्धि उत्पन्न होती है इसलिये यह भी अनात्म आत्मा नहीं है।

(३) तीसरा कोश जो पंच ज्ञानेन्द्रिय और संकल्प विकल्प अंतःकरण की वृति मन के मिलनेसे मनोमय तृतीय कोश होता है। और बंध मोक्ष मन के आधीन है इसलिय विषय भोग में तो आसक्त हुआ मन बंधन का हेतु होता है और विषय वासना रहित मन मोक्ष का हेतु है और मन के संबंध से इंद्रियों में ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिये सर्व व्यवहार का हेतु मन है और मन ही आत्मा है सो मन भी आत्मा नहीं कारण कि जब मनो मय कोश के साथ आत्मा की एकता का भ्रम होता है तब मनो मय कोश से इसप्रकार अहंबुद्धि भाव प्रकट होता है कि देह अर्थात शरीर मेरा है गृह मेरा है पुत्रादि मेरे हैं वस्तु इत्यादि मेरी हैं इसलिय मनोमय कोश भी आत्मा नहीं

(४) पंच ज्ञानेंद्रिय और निश्चय रूप अंतःकरण की वृति बुद्धि का नाम विज्ञानमय कोश है मन का व्यापार बुद्धि के आधीन है इसलिय बुद्धि का ही आकार मन है सो बुद्धि ही आत्मा है कारण कि सर्व पदार्थ विज्ञान के ही आकार हैं और विज्ञान प्रकाश रूप है किंतु ऐसा नहीं है कारण कि इस विज्ञानमय कोश के साथ जब आत्मा की एकता का भ्रम होता है तब बुद्धि में इसप्रकार कि मैं ज्ञानी हूं मैं मूर्ख हूं बोध होता है सो विज्ञानमय बुद्धि आत्मा नहीं है।

(५) कारण शरीर का नाम आनंदमय कोश है अर्थात मलिन सत्व गुण सहित अविद्या अंश तथा प्रधान शक्ति माया परमाणु जीव ईश्वर रूप कारण शरीर प्रीतिप्रियमोद वृतियों सहित जो अविद्या तथा माया है वही आनंदमय कोश है और आनंदमय कोश स्थिर स्वरूप आत्मा के जड और चेतन स्वरूप का नाम है अर्थात आत्मा ही अन्धकार व उज्यारा रूप है अर्थात आत्मा ही जड और आत्मा ही चेतन है अर्थात आत्मा ही ज्ञानस्वरूप प्रकाश रूप है और आत्मा ही जड तथा अप्रकाश रूप है सो प्रकाश और अप्रकाश रूप आनंदमय कोश है। वास्तव में यह आनंदमय कोश ही सुषुप्ति स्वरूप है कारण कि जब आत्मा का आनंदमय कोश तथा सुषुप्ति से एकता का भ्रम होता है तो सुषुप्ति में चेतन के आभास सहित अज्ञान का नाम माया मय तथा आनंदमय कोश होता है और उस समय इस प्रकार अनुभव होता है कि मैं ज्ञानी हूं। इसलिय आत्मा आनंदमय कोश भी नहीं कारण कि आत्मा पूर्ण है और पूर्ण का अर्थ शून्य तथा विन्दु के होते है किंतु पूर्ण अर्थ विन्दु के नहीं हैं पूर्ण के अर्थ भरपूर के हैं इसलिय आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पंचकोश नहीं है कारण प्रमाण "कोशा न पंच्च कोशा न अस्तो नैव विलक्षणंतुच्छं। नित्यं शुद्धो शाश्वतं पूर्ण पूर्ण तत् मरपूर आत्माहं" श्रुति सिद्ध करती है कि नहीं कोश नहीं पंच कोश नहीं अस्तः रूप जगत नहीं निश्चय करके सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय रूप अज्ञान और उस्का कार्य जगत जो प्रतीत होता है नहीं कार्य सहित अज्ञान तुच्छ रूप प्रतीत कोश तुच्छ असत शून्य रहित नित्य शुद्ध तथा शाश्वत पूर्ण पूर्ण तत मरपूर ही मैं आत्मा हूं। मैं आत्मा अन्नमय कोश रूप देह कदापि नहीं होसकता कारण कि अन्नमय कोश रूप देह मृत्तिका-जल वायु आदि जड़ पदार्थों की समष्टि रूप है और अनित्य तथा अस्थायी पदार्थ है जो किसी समय है और नहीं है और नहीं था और नहीं होगा इस कारण अनाम आत्मा अन्नमय कोश नहीं हो सकता है इसी प्रकार प्राणमय कोश भी अपंची कृत पंचमहाभूतका कार्य रूप वायु विशेषमात्र जड़ पदार्थ है तिसी प्रकार मनो मय कोश भी आत्मा नहीं है कारण कि काम क्रोधादि की प्रबलता होने पर मनमें सङ्कल्पविकल्प रूप विकार उत्पन्न होते हैं और अनाम स्वरूप निरीह तथा निरविकार है इसी प्रकार विज्ञान मय कोश भी आत्मा नहीं है कि विज्ञान मय कोश सत्व गुणका कार्य तथा परिनामी है इसी प्रकार आनंदमय कोश भी आत्मा नहीं है कि आनंदमय कोश समधिकालमें विद्यमान नहीं रहता है अर्थात लीन होजाता है और अविद्यारूप वृतिवाला है और आत्मा नित्य पूर्ण पूर्ण तत् तथा सर्वदा ज्ञानघन मायासे रहित मरपूर चेतनस्वरूप है कि जो स्वप्न अवस्थामें स्थूलका भान नरकरवके आप चेतन रहता है और सुषुप्तिमें सूक्ष्म शरीरका ज्ञान नरकरवकर आप सुखस्वरूप स्वयं प्रकाश रूप होता है सर्वत्र सर्व व्यापक है।

आद्वितीय ब्रह्म रूप ब्रह्मस्वरूप मैं अनाम आत्मा सर्वत्र सर्व व्यापक हूं किंतु अनाम स्वरूप होनेसे प्रतीत नहीं होता हूं। केवल बुद्धि के विषे ही भासमान होता हूं अर्थात अस्ति भाति प्रिय रूप करके सदेव घटपटादि पदार्थों में अनुभव रूप मैं अनाम आत्मा वर्तमान हूं। परन्तु ज्ञाता रूप आत्मा रजतमका कार्य भूत जो देहादि हैं मैं उनके विषे प्रतीत नहीं होता हूं केवल सत्व गुणका कार्य जो स्वच्छ बुद्धि है उसके विषे ही प्रतीत होता हूं। जैसे घट पट काच- आदि जो मृत्तिका के कार्य हैं उनमें से निर्मल जो काचका दर्पण है मुखका प्रतिबिम्ब केवल उसीमें पड़ता है अन्यत्र नहीं और जैसे सूर्य अपनी किरणों करके सर्वत्र व्यापक होता है परन्तु उसका प्रतिबिम्ब केवल स्वच्छ जलमें ही पड़ता है उसी प्रकार मैं सर्व व्यापक अनाम आत्मा भी अन्यत्र मलिन पदार्थों में न प्रतीत होकर केवल स्वच्छ रूप बुद्धि में ही प्रतीत होता हूं। देह इन्द्रियादि के वर्त्तमान विषों से मैं अनाम आत्मा इसी प्रकार भिन्न हूं कि जिस प्रकार राजा सम्पूर्ण ही प्रकृति अर्थात प्रजा से भिन्न प्रजा के वर्तनका साक्षी और तेजःपुञ्ज व प्रतापादि गुणयुक्त होता है उसी प्रकार देहेन्द्रियादि संघात के वर्त्तमान विषे माया के कार्य जो देह इंद्रिय मन बुद्धि हैं मैं अनाम आत्मा उनसे भिन्न हूं। कारण की देह की वृति वृद्धावस्थादि नेत्रादि इंद्रियों की वृति रूपरसादि विषयों को ग्रहण करना मन की वृति सङ्कल्पविकल्परूप और बुद्धि की वृति निश्चय करना और माया की वृति जो आकाशादि रूपसे परिणत होना है इन सब वृतियों का साक्षी और द्रष्टा मैं ही हूं

मैं अनाम आत्मा साक्ष्य पदार्थों से किस प्रकार भिन्न हूं जैसेकि आकाश के विषे वायु के वेगसे मेघ चलते हैं किंतु अविचारी मूढ़ आकृतिमान पुरुषों को चन्द्रमा दौड़ता है ऐसी प्रतीत होती है। किंतु वास्तव में चन्द्रमा नहीं दौड़ता है। उसी प्रकार इंद्रियों के व्यवहार करने पर मैं अनाम आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इंद्रियादि व्यवहार न करने वाला व्यवहार रहित ही हूं। मैं अनाम आत्मा कैसे व्यवहार रहित हूं कि जैसे सम्पूर्ण विश्व में सूर्य्य के प्रकाश के आश्रय से अर्थात सूर्य का प्रकाश होने पर अपने अपने व्यवहारों को सिद्ध करने के अर्थ सब प्राणी प्रवर्त होते हैं उसी प्रकार अनाम आत्मा चेतन स्वरूप के आश्रय से देह इंद्रियादिक अपने अपने अर्थ के विषे अर्थात अपने अपने व्यवहार को सिद्ध करने के अर्थ प्रवृत्त होते हैं इस कारण देह इन्द्रियादिक में स्वतः चेतनता शक्ति नहीं है इसी कारण मैं अनाम अनाम आत्म देह इन्द्रियादि का व्यवहार रूप कर्म नहीं हूं और न कर्म कर्ता हूं न कर्म फल भोक्ता हूं कारण कि न मैं उत्पन्न होके जन्म लेता हूं और न मैं मृत्यु को प्राप्त होकर मरता हूं न मैं प्रपंच व्यापार में बालक युवा काना अंधा हूं न प्रपंच का देखने सुनने वाला हूं मैं अनाम स्वरूप सर्व प्रपंच कर्म व्यवहार माया कार्य जन्म मरण फल अफल के स्वभाव से रहित हूं कारण कि

(१) अमल नाम माया मल रहित अनाम स्वरूप सत चित आनंद रूप को है-और मल नाम घोर प्रकृति पसेव मैल इत्यादि माया प्रपंच का नाम है और प्रपंच भिन्न भिन्न संघात तथा वर्णी वर्णी नील पीत आदि रङ्गों का अनाम स्वरूप रूप रहित में आरोपण करने का नाम है। और आरोपण करना उसे कहा जाता है कि जो अज्ञान के कार्य का कारण रूप हो तथा अज्ञान करके कारण रूप होने पर भी ज्ञान रूप में अपना आप ही निरूपण करता हो जैसे अज्ञान के कार्य जो देह इन्द्रिय नाम रूप संसार है वही और उस्के विषे आरूपण आकृति मान रूप से आप अपना निरूपण करते हैं कि हम ईश्वर के परमाणु जीव रूप में भिन्न भिन्न आकृति नाम रूप में आरोपण रूप हैं कि वास्तव में हम नहीं हैं ईश्वर है और ईश्वर ही अज्ञान करके देह इंद्रियादि के गुण अन्धत्व बधिरत्व आदि और कर्मों गमन वचन आदि का स्वरूप अध्यास है। इस मिथ्या आरोपण आरोप अध्यास का नाम अविवेक है। सो अविवेक रूप संसार जो अविवेक का मिथ्या आरोप अध्यास है इस अविवेक मिथ्या आरोप अध्यास करके ही आत्मा के विषे जन्म मरण आदि अनाम आत्मा के धर्म आरोप होते हैं कि जो देहादि के विषे हैं वास्तव में अनाम आत्मा के विषे नहीं है इसी प्रकार

(२) मैं करता हूं मैं भोक्ता हूं मैं पुण्यात्मा हूं मैं पापात्मा हूं मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं इत्यादि प्रकार की निरन्तर प्रतीति भी अविवेक रूप से होती है और अविवेक रूप आकृति ही आत्मा को जीव रूप देकर कर्ता भोक्ता मानती ही और कर्ता भोक्ता पुण्य पाप इत्यादि जैसे अविवेक की प्रतीत करती है सो जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ने से चन्द्रमा जल के साथ साथ चलता प्रतीत होता है और प्रतिबिम्ब चन्द्र अर्थात छाया चन्द्र को अविवेक आकृति कल्पना द्वारा चन्द्रमा का जल में चलना मान लेती है तथा चलनादि धर्म चन्द्रमा के नहीं होते कारण कि चलना चक्षु भेद में जल का कार्य कारण है इसी प्रकार मैं करता हूं मैं भोक्ता हूं इत्यादि धर्म मान सोपाधिक के अर्थात अन्तःकरण के हैं सो जिस प्रकार माटी के कारजे में भीतर बाहर सर्व कार्य माटी ही माटी रूप स्वरूप है तथा फेन आदिक जल के कार्य जल स्वरूप हैं इसी प्रकार जो जिस्का कार्य है सो उस कारण स्वरूप से भिन्न नहीं है सो जो कार्य है वही कारण स्वरूप है सो अविवेक रूप जो अन्तःकरण के धर्मों को ही अन्तःकरण और आत्मा की एक रूपता के भ्रम से अर्थात मिथ्या अध्यास करके कर्ता भोक्ता की कल्पना करके अनाम सच्चिदानंद स्वरूप आत्मा के विषे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्ता भोक्ता की कल्पना करता है यह असम्भव है क्योंकि कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि कर्म आत्मा के नहीं हैं इसी प्रकार रागद्वेषादि कर्म भी अनात्म आत्मा स्वरूप के नहीं हैं राग द्वेष इच्छा आदि अन्तःकरण के धर्म अज्ञान तथा अविवेक आकृति रूप करके कल्पित हैं। सो कारण कल्पना यह है कि

(३) सकल प्रपंच का मूल कारण ईश्वर है इसलिये सर्व कार्य प्रपंच का स्वरूप ईश्वर स्वरूप ही है अर्थात कोई कार्य पर पंच ईश्वर स्वरूप से भिन्न नहीं है अर्थात स्थूल ब्रह्मांड सारा पंची कृत भूतन का कार्य है और यही ईश्वर तथा माया का रूप है और माया का नाम ही ईश्वर है और ये ईश्वर स्वरूप मेरे अनामय [illegible] आत्मा अखंड स्वरूप का आभास अर्थात वह छाया है कि जो अभ्र स्वं दर्पन में इसी प्रकार पड़ रहा है कि जैसे किसी काच में मुख देखते समये अविवेक आकृति मान मनुष्य का रूप आभास पड़ता है सो जिस प्रकार काच दर्पन में मुख का भास तथा धूप में मनुष्य मात्र आकृति का छाया कोई वस्तु नहीं होता केवल प्रतीत प्रपंच को छाया नाम ही नाम है इसी प्रकार स्थूल ब्रह्मांड प्रपंच नाम मात्र छाया है कोई वस्तु नहीं सो इस स्थूल ब्रह्मांड तथा ईश्वर रूप माया में माया के पंची कृत भूतन कार्य उसी प्रकार हो रहे हैं कि जिस प्रकार मेरे स्वरूप का माया दर्पन में आभास पड़ता है इसलिये माया में जिस कार्य का जो कारण है तैसा ही उस का स्वरूप है जैसे कि पृथिवी का जो कार्य है सो पृथिवी स्वरूप है और जल का कार्य जल स्वरूप है। इसी रीति से सारा ये स्थूल ब्रह्मांड पंची कृत भूतन स्वरूप है तैसे ही पंची कृत भूत भी अपंची कृत भूतन के कार्य हैं इसलि अपंची कृत स्वरूप ही पंचि कृत भूत हैं भिन्न नहीं और अंतःकरण आदि क सूक्ष्म सृष्टि भी अपंची कृत भूतों का कार्य होने से अपंची कृत भूत स्वरूप हैं कि जिनमें अंतःकरण कि जो नाना प्रतीत होते हैं सो भूतन के सत्व गुण के कार्य हैं सो सत्व गुण स्वरूप हैं और भूतन के रजो गुण के कार्य अंश कार्य प्राण रजोगुण स्वरूप हैं और भूतन तमोगुण के कार्य स्थूलाकार देहा देह रूप हैं। देहा देह में गुदा पृथिवी के रजोगुण अंश का कार्य है सो पृथिवी का रजोगुण स्वरूप है और घ्राण पृथिवी के [illegible] सत्व गुण का कार्य है सो सत्व गुण स्वरूप है इसी प्रकार रसना और उपस्थ जल के सत्व गुण रजोगुण स्वरूप हैं। नेत्र और पाद अग्नि के सत्व गुण रजोगुण रूप हैं। त्वक और बाणी वायु के सत्व गुण रजो गुण स्वरूप हैं। श्रोत्र और वाक् आकाश के रजोगुण सत्व गुण रूप हैं इसरीति से सारी सूक्ष्म सृष्टि अपंची कृत भूत स्वरूप है। और अपंची कृत भूतन में पृथिवी जल का कार्य है और जल अग्नि का कार्य है और अग्नि वायु का कार्य है और वायु आकाश का कार्य है इसलिय स्वतः मुख्य एक आकाश स्वरूप है किंतु आकाश तमोगुण प्रधान प्रकृति का कार्य है इसलि आकाश प्रकृति तथा माया स्वरूप है इसलिये प्रकृति माया आकाश एक ही प्रधान वस्तु स्वरूप का नाम है।

सो राग अर्थात विषयों में विशेष अभिलाषा और इच्छा सामान्य अभिलाषा तथा सुख दुख और आदि शब्द करके कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि सम्पूर्ण धर्म बुद्धि के हैं आत्मा के नहीं हैं क्योंकि बुद्धि के अन्वय व्यतिरेक करके होते हैं। अर्थात कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय कहाता है और कारण के न होने पर कार्य का न होना व्यतिरेक कहाता है सो यहां जब जाग्रत और स्वप्न अवस्था में बुद्धि विद्यमान होती है तब राग व इच्छा आदि भी होते हैं यही अन्वय रूप है और जब सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि अपने कारण रूप अज्ञान के विषे लीन हो जाती है तब राग व

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छा आदि धर्म भी प्राप्त नहीं होते हैं इसी का नाम व्यतिरेक है। इसकारण राग व इच्छा आदि धर्म आत्मा के नहीं हैं बुद्धि के ही हैं सो बुद्धि ही कर्ता और बुद्धि ही भोक्ता है। आत्मा के विषे जो कर्म करता की प्रतीत होती है यह बुद्धि और आत्मा की एकता के भ्रम से होती है वास्तव में आत्मा निर्विकार सच्चिदानंद स्वरूप है। अनामय आत्मा शरीर की अवस्था उत्पति १ आस्ति २ परिपक्वता ३ वृद्धि ४ क्षय ५ और नाश ६ सब से रहित सूर्य्य प्रकाश स्वरूप जल की भांति शीतल स्वभाव रूप अग्नि के तुल्य अग्नि रूप वायु तुल्य अरूप पवन सूक्ष्म रूप आकाश तुल्य सत चित आनंद स्वरूप आकाश वत नित्य और निर्मल स्वभाव देह देहादि घट में स्थित निर्विकार निष्कर्मी है कारण ये है कि

(४) प्रत्यगात्मा का सत चित अंश अर्थात बुद्धि की वृति में पड़ने वाला आभास अर्थात ज्ञाया और अज्ञान स्वरूप आनंद का अंश जो बुद्धि की वृति है इन दोनों की एकता के भ्रम से तथा अज्ञान से मैं जानता हूं मैं सुखी हूं इत्यादि बातों का अनुभव परागात्मा कि जिसको जीवात्मा कहा जाता है और जो अंतःकरण की वृति में मन और चित का मिला हुआ विष्णु माया मूर्ति एक सूक्ष्म भाव है। और घट में स्थित आकाश जिस प्रकार निर्विकार है इसी प्रकार इस देह में आत्मा विकार रहित का विष्णु माया मूर्ति तथा जीवात्मा प्रतिबिम्ब वत यह प्रागात्मा आभास ही करता है वास्तव में सब प्रकार के संबन्ध रहित आत्मा के विषे ज्ञान सुख दुःखादि कदापि नहीं होसके हैं कारण कि ज्ञान सुख दुखादि बुद्धि का वृति रूप परिणाम हैं इस कारण ज्ञान सुख दुःखादि का आश्रय बुद्धि है आत्मा नहीं है। और बुद्धि मन चित की एक वृति रूप विष्णु स्वरूप है इसी को जीवात्मा कहा जाता है सो आत्मा के विषे जो ज्ञान सुख दुःखादि की प्रतीत होती है यह इसी विष्णु चिरिन्न माया मूर्ति का प्रकाश है कि जो बुद्धि रूप में आत्मा की एकता के भ्रम से होती है। आत्मा सर्व प्रकार के विकारों से रहित निर्विकार है सो ही "मनोचित्तिविष्णु मनोबुद्धि ब्रह्मा मन्हंङ्कारः महेश्वरः। ऽयमात्मनो निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निर्विघ्नं निरञ्जनम सदैवो ॥" श्रुति में मैं ने कहा है कि मन और चित ही विष्णु माया मूर्ति स्वरूप है और मन और बुद्धि ब्रह्मा का स्वरूप है और मन और अहंकार का एक महेश्वर रूप माया स्वरूप है किंतु मैं आत्मा गुण रहित क्रिया रहित शांत स्वरूप निष्पाप और निरंजन अर्थात सदैव निर्मल तथा नित्य विघ्न रहित माया रहित हूं कि मैं ब्रह्मा विष्णु महेश्वर इनतीनों ही माया मूर्तियों से भिन्न हूं स्थूल देह में बुद्धि के विषे कि जो जड़ रूप माया कार्य है कोई ज्ञान नहीं होता किंतु अन्तःकरणावच्छिन्न अर्थात अन्तःकरणोपाधिक चेतन की चेतनता देह इन्द्रियादि के अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण जड पदार्थ एक ही विनोदनी गणेशा मूर्ति अर्थात माया और ब्रह्मा और विष्णु महेश्वर चारों चेतनात्मक प्रतीत होने लगते हैं सो बुद्धि के कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्मों को जीवात्मा तथा देह रक्षाकारी विष्णु स्वरूप अन्तःकरण और आत्मा की एकता के भ्रम से आत्मा के धर्म मान लेता है सो मिथ्या भ्रम है आत्मा का तो न कोई धर्म है न कर्म है धर्म और कर्म के विषे अन्तःकरण की माया ब्रह्मा मूर्ति ने श्रुति स्मृति रूप से मिथ्या आरोपित किये और विष्णु माया मूर्ति ने मिथ्या आरोपित श्रुति स्मृति के विषों को मिथ्या भ्रम से कि वह आप भी माया कार्य है असत्य को सत कर ग्रहण कर मान लिये और माया मूर्ति महेश्व

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रूप ने कि जो आप अन्धकार के विषे पड़ी हुई रज्जु के तुल्य है सर्प नहीं मिथ्या सर्प बन कर मिथ्या धर्म कर्म के मय भ्रम उत्पन्न कर मय कम्पादि दोषों में पुण्य पाप स्वर्ग नर्क दुःख सुख पुनर्जन्म आदि जन्म मरण आदि नाना प्रकार के मय और भ्रमों को प्राप्त हो जीवात्मा का रूप धार निर्विकार आत्मा के अज्ञान से तथा जीव रूप से अपने आपको ही सद्द्वितीय परिच्छिन्न और संसारी मानकर नाना प्रकार की सांसारिक पीड़ाओं को अपने ऊपर प्राप्त कर रिपुवश अर्थात काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य इन षड्वर्ग शत्रुओं के आधीन हो ममता इच्छा से कि यह सम्पूर्ण मनोमय कोश के धर्म हैं इन धर्मों को अपने धर्म मान अनामय आत्मा के सत्यस्वरूप को वास्तवक रीति से न जान जन्म मरणरूप मय को प्राप्त हो " द्वितीयाद्वै मयं भवति - श्रुति प्रमाण द्वैत ज्ञान से नाना प्रकार के दुख मोल लेकर और "उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति " श्रुति प्रमाण अपने और अनामय आत्मा के विष भेद मान जन्ममरणादि मय की निश्चय प्राप्ति अन्धकार में अन्ध हो ॥ तथा " न चेद्वेदीन्महतीविनष्टिः " श्रुति प्रमाण आत्म स्वरूप को न जान कर हानि ही हानि का सहन करना आरम्भ कर आप ही अपना विनाश करना आरम्भ किया -

सो हे मनु इन्द्र इस ३५ वे शून्य श्रुति मन्त्र में तू आप ही अपने को प्रकट करता है कि मैं जीव नहीं हूं मैं अखण्ड अच्छेद्य अभेद्य अद्वितीय नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव स्वयं बोध अनाम आत्मा योगयुक्त जगत अर्थात माया का साक्षी सिद्ध शिरोमणी निर्मल " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव " स्वरूप हूं तथा निश्चय करके मैं ही ब्रह्म स्वरूप अनामय रूप हूं कि जो मन और बुद्धि आदि के निकटवर्त्ती होने पर भी बुद्धि आदि को इसकारण प्रत्यक्ष नहीं होता हूं कि केवल मैं एक ही प्रकाश स्वरूप आत्मा सम्पूर्ण इन्द्रिय और बुद्धि चित अहंकारादिकों का प्रकाशित स्वरूप हूं मन बुद्धि अहंकारादि जड़ पदार्थों से मेरे स्वरूप का प्रकाश नहीं है इसकारण मैं ब्रह्मा विष्णु शिव अर्थात महेश्वर तथा मन बुद्धि आदि को जानता हूं किंतु ब्रह्मा विष्णु शिव आदि अन्तःकरण के कार्य मन बुद्धि आदि जड़ पदार्थ मुझको नहीं जानते कारण कि वे साक्षी स्वरूप नहीं वे मेरे स्वयं यथा उस प्रकाशित अग्निरूपी लो के समीप कि जो दीपक घटादि पदार्थों को प्रकाशित करती है और दीपक घटादि मलिन पदार्थों करके अग्नि लौ प्रकाशित नहीं होती सो जबकि मैं अनाम आत्मा बुद्धि करके प्रकाशित नहीं होता तो फिर मैं कैसे आप अपने स्वरूप का जानने वाला हूं इस का उत्तर हे मनु इन्द्र वेदव्यासराजेन्द्र तू अपने आपको इस प्रकार से देता है कि जिस प्रकार स्वतः प्रकाशरूप स्वरूप अग्नि दाहको अपने प्रकाश करने के निमित्त अपने अन्य अग्नि की इच्छा आवश्यक्ता नहीं होती है उसीप्रकार नित्य बोधस्वरूप होने कारण स्वयं बोध - आत्मस्वरूप के विषे अन्य बोध की इच्छा आवश्यक्ता मेरे को आप अपने स्वरूप के जानने को नहीं होती कारण कि अनाम स्वरूप स्वयं अनुभवस्वरूप है अर्थात अनुभव रूप यथा आप अपना जानने वाला चेतनस्वरूप तथा आप अपना साक्षी स्वरूप है। अर्थात स्वयम प्रकाश मान बोधस्वरूप साक्षात कार स्वयं मुक्त अद्वितीय आत्म धर्म रूप है

धर्म का अर्थ ज्ञान है और ज्ञान के अर्थ जानने के हैं और जानना वेद का स्वरूप है और वेद का अंतःकरण रूप है अन्तःकरण मायाप्रपंच प्रकृति परमाणु जीव ईश्वर शक्ति का स्वरूप है और शक्ति मेरे अद्वितीय स्वरूप का आभास अर्थात छाया है इसकारण स्थूल ब्रह्मांड सारा जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रपंच शक्ति प्रकृति रूप है यही मेरे अद्वितीय आत्म स्वरूप का एकौ धर्म है और इसी धर्म का नाम अद्वैत सनातन ध्रुव धर्म है। और यही धर्म अपरोक्षरूप से तथा प्रकट प्रत्यक्षरूप से मेरे चेतन स्वरूप का सामान्य ज्ञान रूप में ज्ञान बंधन रूप है कि जो मुक्ति मोक्ष तथा स्वतंत्रा का बाधिक है और इसी का नाम द्वैत प्रपंच है यही माया की अवस्था है और यही प्रकृति माया स्वरूप है और इसी माया स्वरूप एक वस्तु के - प्रधान प्रकृति माया अविद्या अज्ञान नाम हैं कि जो सर्व प्रपंच कार्यों अपने में लीन करके सरस्वती रूप से ब्रह्मा स्वरूप में और लक्ष्मी रूप से विष्णु के स्वरूप में और शक्ति रूप से शिव स्वरूप में लीन रहती है और यह तीनों ब्रह्मा विष्णु शिव अन्तः करण माया मूर्ति सरस्वती सावित्री का रूप धार चौदह भुवन रूप भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं सात ऊपर के लोक और अतल वितल सुतल रसातल तलातले महातल और पाताल यह सात अधोलोक नीचे के लोक सर्व चौदह लोक गायत्री स्वरूप गति प्रणव रूप से मेरे अनामय स्वरूप में इसी प्रकार उदासीन स्वरूप से लीन रहते हैं कि जिस प्रकार छाया पुरुष पुरुष रूप में लीन रहता है। सो इस उदासीन स्वरूप का प्रधान अर्थात गायत्री नाम है। और इस सृष्टि के उपादान योग्य तमोगुण प्रधान स्वरूप का प्रकृति नाम है। किंतु जिस प्रकार देश कालादिक सामग्री बिना दुर्घट पदार्थों की इंद्रजाल से उत्पति होती है इसलिये इस सृष्टि के स्वरूप का इंद्रजाल नाम है और इंद्रजाल का ही माया नाम है। और माया नाम होने का दूसरा कारण यह भी है कि मेरे अद्वितीय अनाम ब्रह्म स्वरूप में इच्छादिक दुर्घट हैं और प्रकृति तथा इन्द्रजाल दुर्घट पदार्थ को उत्पन्न करें हैं इसलिये इस का माया नाम है। और दुर्घट पदार्थ स्वरूप को आच्छादन करने वाले होते हैं इसलिये अज्ञान इस का नाम है और अज्ञान का ब्रह्म विद्या से नाश होता है इसलिये माया का अविद्या नाम है। और इसको किसी काल भी स्वतंत्रा नहीं है ये साक्षी स्वरूप चेतन के ही आश्रित है इसलिये शक्ति भी इसका नाम है सो संसार सृष्टि में जितनी नाना प्रकार की भिन्नता और द्वैत प्रपंच बंधन रूप है यह प्रकृति आदि प्रधान माया का ही भेद स्वरूप है। और प्रधान भेद ब्रह्म अनामय चेतन की शक्ति है जैसे कि पुरुष रूप में सामर्थरूप शक्ति भिन्न नहीं होती इसी प्रकार इस प्रधान रूप शक्ति का नाम कि जो ब्रह्म चैतन्य से भिन्न नहीं है इसका अद्वितीय आत्म धर्म रूप नाम है। और अद्वितीय धर्म ही स्वयं वेद है और वेद का सर्व अनात्म पदार्थों सहित ब्रह्म विषे प्रधान प्रकृति की भांति लय चिंतन स्वरूप है। इसलिये मेरा जो एकौ अद्वितीय आत्म रूप धर्म है वह ये ही है कि मैं ही अद्वय आत्म ब्रह्म अनामय रूप स्वरूप हूं।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र इस प्रकार प्रकट करके कहता है कि निसंदेह स्वरूप बंधन रहित स्वयं मोक्ष है किंतु संसार बंधन रूप है और इस बंधन रूप से स्वतंत्रा तथा मोक्ष आत्मा के अपरोक्षरूप ज्ञान से कि जो सामान्य ज्ञान है नहीं होती है मोक्ष का कार्य कारण रूप अंतः करण स्वरूप रूप महावाक्य हैं कि जो जीव और ब्रह्म की एकता का विशेष ज्ञान है अर्थात नेति नेति, इस वाक्य से अर्थात इस प्रकार से कि नहीं है कोई वस्तु सम्पूर्ण उपाधियों का निषेध तथा त्याग करके तत्वमसि आदि महावाक्यों के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

द्वारा जीव आत्मा और अनामय आत्मा की एकता की निश्चय ही मोक्षका स्वरूप है कारण कि
स्वरूप रूप इसप्रकार अचिंतन रूप अच्युत स्वरूप है यह कह तू आप ही अपने अच्युत रूपका
इसप्रकार अचिंत रूपमें चित्र बनाता है। ४७

अनामयअचिंत्यअच्युतरूपचित्रआत्मा

महत्व महियान विराट स्थूलब्रह्मांड स्वरूपचित्र

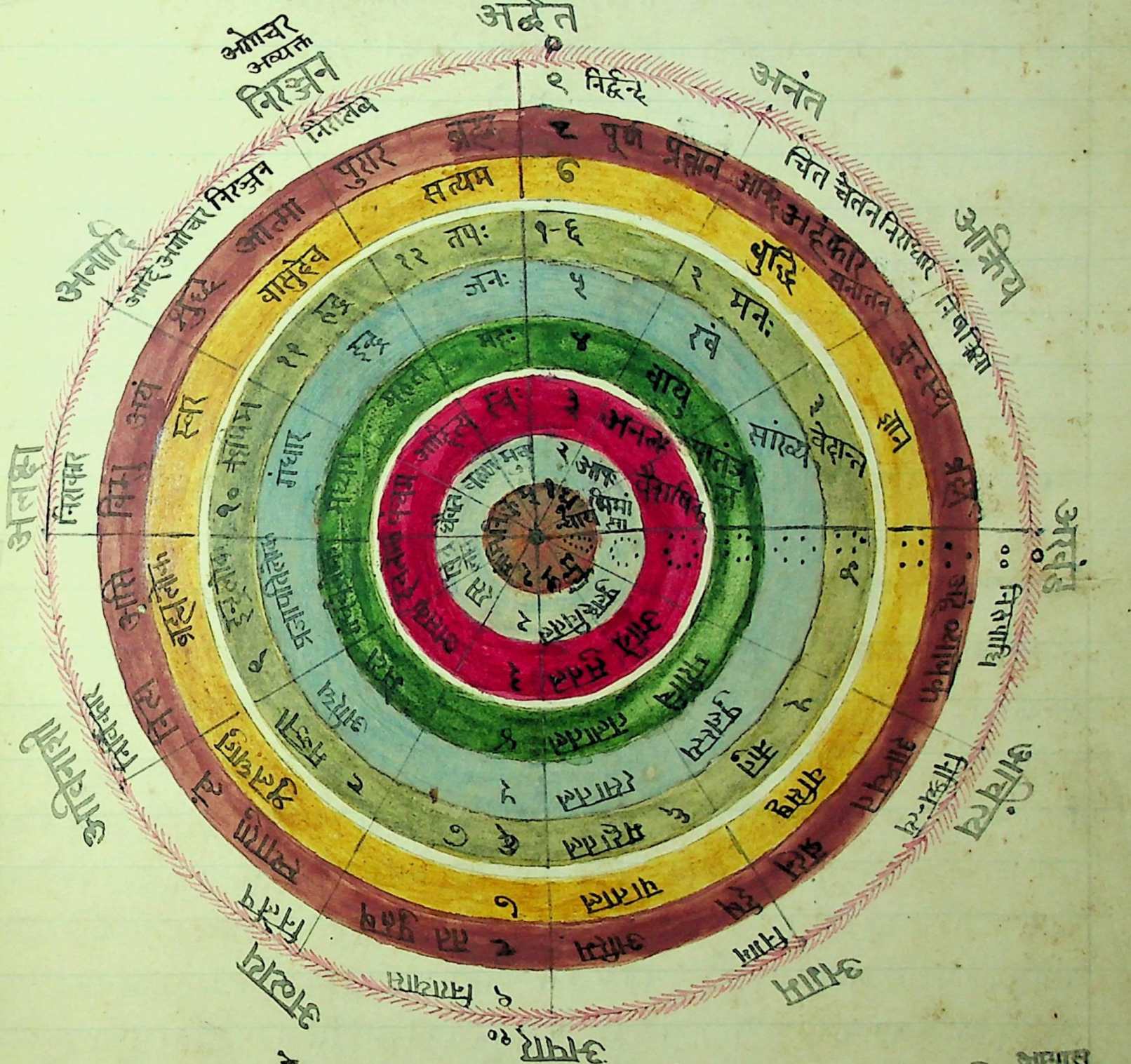


और फिर आप ही अपने से कहता है कि यह चित्र चिरित्र ही मेरा अनामय अचिंत अच्युत रूप है
आत्मा
इसीरूपका नाम महत्व महीयान विराट सत् स्थूल ब्रह्मांड है कि जो प्रधान स्वरूप है। यह स्वरूप
ही प्रकृति नाम है यही दृष्ट पदार्थ उत्पतिरूप इंद्रजाल है इसी का माया नाम है यही अज्ञान
का रूप है यही अविद्याका स्वरूप है यही शक्तिरूप और प्रपंच रूप है। इसी इंद्रजालरूप में जो
नित्य भ्रमण शाली रूप है किसी काल स्वतंत्र नहीं इस्का अचल आदि तत्व परम ब्रह्म सर्वदा
जय युक्त अद्वितीय आत्म मैं ही अनामय स्वरूप हूं कि जिसके द्वारा ज्ञान प्रकृति चैतन्य
स्वरूप से महान प्रकट होता है और महान से अहंकार और अहंकार से आकाश वायु अग्नि जल
भूमि इन पांच तत्व की उत्पति है और इन्हीं सबकी समष्टि व योग का नाम ब्रह्मांड है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस ब्रह्मांड में ही अव्यक्त ब्रह्म अनाम रूप से व्यापक हूं। इस प्रकृति रूप ब्रह्मांड में सब से छोटा
मटयाले रंग का गोल आकार पृथिवी का मंडल है इसके ऊपर हलके नीले रंग का गोल आकार जल का
९ मंडल है तिसके ऊपर लाल रंग के का गोलाकार अग्नि का मंडल है तिसके ऊपर हरे रंग का आकार
वायु मंडल है उसके ऊपर गहरे नीले रंग का पांचवां गोलाकार आकाश मंडल है इसके ऊपर मन के
गोलाकार का धवें के रंग जैसा आकार है उसके ऊपर सातवां गोलाकार कि जिसका पीला रंग है
बुद्धि का मंडल है। उसके ऊपर आठवां गोलाकार अहंकार का मंडल है कि जिसका हलका सा कत्थई
रंग हैं इसके ऊपर नवां गोलाकार ज़नज़ीरे की भांति का कि जिसमें लाल और श्वेत रंग की रेखायें
प्रतीत होती हैं अनामय स्वरूप की क्षुब्ध प्रकृति चैतन्यरूप स्वरूप से महान नाम का चित चक्र
है वही चेतन प्रतिविम्ब रूप स्वरूप नाम है इसके ऊपर कि जिसमें कोइ किसी प्रकार का नाम रूप आदि
का चिंतन नहीं है तथा कोइ रंग नहीं है सब श्वेत स्फटिक मणि का जैसा आकार है मेरा अद्वय
अनादि अगमि अनामय स्वरूप है। उसी स्वरूप का "हं" नाम है कि जिस की शून्य विंदु
से "सम" रूप सृष्टि तथा इस स्थूल ब्रह्मांड की उत्पति है कि जिसका पंच मात्रा तथा मन
बुद्धि अहंकार रूप है इसी का अष्टधा प्रकृति नाम है - सो मेरे ब्रह्म अनामय स्वरूप का उन तीन
तीन ॐ तत सत तथा सत् चित - आनंद तथा अस्ति भाति प्रिय शब्दों से कि जो मेरे
स्वरूप के वाचक हैं इन्ही शब्दों द्वारा "हं" सम - काकि जो दोनों शब्द मिलकर एकही
हंसम - शब्द बनता है यही वह शब्द है कि जो मेरे अनामय स्वरूप के सत और आस्ति
लक्ष को दिखाता है "हं" शब्द की ऊपर की विन्दु अंम्ब्र रं अम्बा गर्गन पूर्ण महान प्रकृति
की अंपचमात्रा का रूप है और "सम" शब्द "हं" शब्द की विंदु का दल अर्थात अद्धे रूप है
कि जो महान विन्दु रूप से कि जो चेतन चक्र विन्दु रूप है सम रूपी अष्टधा प्रकृति की इसी
प्रकार उत्पति हुई है कि जिस प्रकार अन्तः करण का रूप है कि चित अहङ्कार बुद्धि मन से
चित से अहङ्कार की उत्पति है। और अहंकार से इन्द्र तथा बुद्धि १ और कं तथा मन १ और चंद्र
तथा आकाश १ और कुं तथा वायु १ और भूं तथा अग्नि १ और [illegible] भूमि तथा जल १ और धृति
तथा पृथिवी १ की उत्पत्ति है कारण कि इन शब्दों को एक एक का अर्थ इसी लिये दिया
गया है कि ये सब सात नाम रूप रखने पर भी एक ही नाम रूप स्वरूप में अहंकार का स्वरूप है
चेतन विन्दु का नाम चिदाकाश है कि जो प्रकृति का साक्षी स्वरूप है। अष्टधा प्रकृति जड़
वत अपरा नाम है और महान प्रकृति अपंच चेतन का परा प्रकृति नाम है कि जो सर्व से
उत्कृष्ट है और यह प्रकृति ही इस सर्व संसार का आधार है। सो आधार रूप से ऊपर मेरा
अनामय परम पद स्थान है। अहंकार अष्टधा प्रकृति का रूप है यही [illegible] अष्ट कला व
अष्ट भुजा का स्वरूप है यही १६ - ३६ - ५६ कला का रूप है। भूत आकाश और मन आकाश
यथा मनो आकाश में मेरे को ये अदृश्य कला प्रकृति दृश्य मान नहीं परन्तु चिदाकाश में कि जिसका
चैतन्य चक्र मंडल नाम है और उसके ऊपर जो मेरा परम पद स्थान है और इस परम पद अधिष्ठान
का ही चिदाकाश प्रतिविम्ब स्वरूप है इस से साक्षात इस अदृश्य विश्व विराट का मेरे को दृश्य
होता है। परम पद अधिष्ठान में चिदाकाश का और चिदाकाश अधिष्ठान में अष्टधा प्रकृति का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थान है। मेरे परम पद अधिष्ठान का कोई आकार नहीं केवल्य अनामय अशून्य रूप है इसी का एको अगम वेद अशब्द गगन वेद पूर्ण वेद अनादि वेद निरञ्जन वेद निष्कलंक वेद नाना अक्षर शब्द अशब्द अद्वैत वेद मे अनेक नाम हैं। सो ये अनामय पूर्ण वेद एक ही भरपूर ऐसा मेरा अद्वय स्वरूप है कि जैसे किसी नाटक की सभा में दीपक की लो का ही सर्व प्रकाश होता है कि वह उत्तम मध्यम सर्व प्रकार के चेतन नमाशों का एक ही प्रकाश रूप है। किंतु उन प्रकाश रूपों से आप किसी प्रकार का कोई प्रयोजन नहीं रखता स्वतः वह तो निर्लेप ही रहता है। सो " स एष आदेशो नेतिनेती त्यनिरसनम " श्रुति प्रमाण स्थूल ब्रह्मांड का कोई पदार्थ अनामय आत्मा का स्वरूप नहीं है। यह अतत् आकृति अषूधा प्रकृति दोष तथा गुन आत्मा अनामय स्वरूप से भिन्न छाया तुल्य निरसन यथा त्याग रूप छाया है। सो प्रकृति गुण व दोषदानों भूजंग रूप प्रकृति से उत्पन्न हो उसी में रहते हैं कि जो निर्गुण नित्य असंग निष्कलंक अद्वय स्वरूप में अनित्य रूप अषूधा प्रकृति से उत्पन्न हो सम्पूर्ण समष्टिव्यष्टिरूप उपाधि स्थूल सूक्ष्म रूप वा कार्य कारण रूप नामरूपात्मक जगत अनात्म अर्थात अनित्य है। ७।

मेरे अनामय स्वरूप में जो चेतन रूप का चिदाकाश आधिष्ठान है इस अधिष्ठान से जिस प्रकार की मी प्रेरणा इच्छा रूप होकर उत्पन्न होती है वही दृष्टि रूप सूक्ष्म से स्थूल होती हुई अषूधा प्रकृति के आठों मंडलों का आधार बन जाती है और उनके गुणों के संयोग से अन्तः करण और सर्व इन्द्रियों को प्रकट करती है और मेरे प्रकाश रूप से प्रकाश पाकर प्रकाश मान हो जाती है। किंतु कैवल्य अनामय स्वरूप उस स्वरूप से प्रकाशमान होने वाली आकृति से उस आकृति को प्रकाश देता हुआ और उस आकृति के गुण अवगुण रूप कार्य कारणों का कर्ता भोक्ता प्रतीत होने पर भी इसी प्रकार विवर्जित और अक्रिय रूप ही रहता हूं कि जिस प्रकार अनात्म पदार्थों का निषेध रूप आकृति अनामय स्वरूप को सब रसों का रस लेने और गुण कर्म प्रकृति के फलों का भोक्ता रूप जन्म मरण देहादि के कर्म फल का कर्ता और भोक्ता प्रकट करते हुए भिन्न ही है। कारण कि फल अफल दोनों का कार्य कारण रूप तो प्रकृति आकृति ही है। और प्रकृति गुणानुकूल कार्य कारण और फल की उत्पति है। सो सर्व कार्य प्रकृति अनुकूल बनते और बिगड़ते रहते हैं। इसकारण फल अफल के सर्व दोष प्रकृति से उत्पन्न होते और प्रकृति में ही लीन होजाते हैं। अनामय आत्मा स्वरूप अक्रिय रूप न कर्म है न कर्म कर्ता है केवल सर्व सम्बन्धों रहित - प्रज्ञानं ब्रह्म १ अहंब्रह्मास्मि २ तत्वमसि ३ - अयं आत्मा ब्रह्म - ४ इन चारों महावाक्यों करके जीवात्मा तथा परमात्मा एक निश्चय स्वरूप है कि जो स्वयं मोक्ष का रूप स्वरूप है और इसी का नाम तत्वविज्ञान है। इसलिये अनाम आत्मा का कोई कर्म नहीं और जब कोई कर्म नहीं और जीव रूप वस्तु कोई कर्म कर्ता वस्तु नहीं तो फिर कर्म के फल का कोई अधिष्ठान नहीं कारण कि वास्तव में जब कोई वस्तु ही नहीं तो उस की किसी स्थान पर भी प्राप्ति की किसी प्रकार से कोई विधि नहीं। इसकरके जीवात्मा जिस आकृति प्रकाश स्वरूप का नाम कहा जाता है उसका नाश नहीं यथा उस स्वरूप को आवागमन नहीं।

कारण ये है कि मेरा अनाम स्वरूप नित्य जन्म जरामरण परिणाम से रहित सत् ज्ञान तथा अद्वैत अनंत अखंड अचिंत अगम अपार स्वरूप है कि जिस स्वरूप में चित नाम अधिष्ठान अपंच आकृति का कि जो अनामय स्वरूप का प्रतिबिम्ब रूप है आनंद स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस चित नाम आकृति का नाम आनंदमय कोश है कि जिसके अन्धकार और उज्यार दो रूप हैं और ये दोनों देह से भिन्न शब्द स्पर्श रूप रस गंध से भिन्न विद्या व अविद्या का एक रूप असंग कूटस्थ साक्षी निरिन्द्रिय अर्थात इंद्रियों से रहित एक गति है कि जो स्वतः अनामय स्वरूप काये आक्रिय अव्यय अविनाशी अलक्ष्य अनादि निरंजन साकार स्वरूप है और यही दुर्घट इन्द्रजाल रूप है इसी इन्द्रजाल रूप को सरस्वती-सर्वित्रि-गायत्री-कहा जाता है। सो चित नाम आनंदमय कोश के तीन स्वरूप गायत्री १ सरस्वती २ और सविंत्रि ३ तीनों एक ही नाम और एक ही नाम कार्य कारण गति में कारण रूप है। आशय ये है कि गायत्री चित रूप आनंदमय स्वरूप है और अहंकार सरस्वती का रूप है और सर्विंत्रि तथा सावित्रि बुद्धि का स्वरूप है।

और गायत्री मेरे अनाम स्वरूप के अद्वय धर्म का नाम है कि जिस असंग अद्वय धर्म से वास्तव में किसी का भी संबंध नहीं है। सो जैसे एक सूर्य आकाश मंडल से सर्व जगत को प्रकाश देता है तथा जिस पात्र में जल भरा होता है उसी में सूर्य का प्रतिविम्ब प्रकाश दिखाई देने लगता है और जल के हलने से सूर्य हलता प्रतीत होता है। इसी प्रकार जिस जिस स्थान पर और जहां जहां माया की पंचभौतिक ग्रन्थि के पड़ने से देह बन जाती है और प्राण रूपी जल उसमें भर जाता है तो उसी उसी स्थान पर मेरे अनामय स्वरूप का प्रतिविम्ब तेज भासने लगता है तथा देह में चेतनता आजाती है अर्थात मेरा अद्वय धर्म कारण रूपी गायत्री दुर्घट इन्द्र जाल स्वरूप चैतन्य कोश साक्षी रूप भासने लगता है। और जिस प्रकार पात्र से जल के गिर जाने पर सूर्य का प्रतिविम्ब उसमें नहीं दिखता है। इसी प्रकार देह से प्राणों का वियोग होने पर मेरा प्रतिबिम्ब देह में नहीं पड़ता और देह मृतक कहा जाता है। चाहे देह धारियों की देह में कि जिसको रूह सौल और जीव आत्मा कहा जाता है यह न तो कोई वस्तु है न कोई पदार्थ है केवल मेरे अद्वय धर्म का गायत्री रूप कारण धोका है तो न किसी का जन्म होता है न कोई मरता है जीवन मरण दोनों ही माया शक्ति का रवेल स्वतः सरस्वती सविंत्रि रूप गायत्री का स्वांग चित आनंद रूप में रवेल ही रवेल है सो अष्टधा प्रकृति ब्रह्मांड स्थूल धार जगत का रूप बना संसार रूप में नाना प्रकार की देह देहान्त्रों का परिवर्त रूप बना आंख मिचौनी जैसा रवेल रवेल रही है। सो जिस प्रकार से रवेल रवेलते समय राग द्वेष का व्यवहार उत्पन्न होता है इसी प्रकार इस परिवर्त रूप संसार में भिन्न भिन्न विषयासक्ति प्रकृति देह में प्रकृति मन प्राण रूप से राग द्वेष मय संकल्प विकल्प मोह शोक आदि जो मन के धर्म हैं और क्षुधा तृषा आदि प्राणों के धर्म हैं प्रकृति रूप माया से उत्पन्न होते हैं और इस माया योग में चित आनंद रूप कि जो इस देह के प्रकाश का कार्य और कारण गायत्री स्वरूप है प्रकृति अज्ञान कल्पित मोहादि बन्धनों में पड़ के अपने वास्तव स्वरूप को भूल चित आनंद साक्षी कारण प्रकृति का गायत्री स्वरूप अपने को देह वान आकृति रूप प्रतीत कर जिस देह में अमृत रूप का प्रकाश करने वाला होता है उसी देह को सत्य मान उसी देह से होने वाले कार्यों को सत मानते मानते अपने से ही उत्पन्न होने वाली प्रकृति माया के रूप पर मोहित हो सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच पदार्थों के नाश होने पर गायत्री स्वरूप का भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाश मानना कल्पितकर देह के साथ नाश होना मान लेता है। और इस प्रकार की कल्पना करते हुए कि प्रकृति रूप शरीर के नष्ट होने में मी नष्ट हो जाऊंगा तथा मर जाऊंगा कि जो नित्य भूत भविष्यत वर्तमान रूप त्रिकाल में बाधा रहित शुद्ध विमुक्त आनंद सुरवस्वरूप गायत्री रूप है किंतु यही गायत्री रूप स्वरूप अपने से उत्पन्न होने वाली मिथ्या नाम रूप मान आकृति को अर्थात प्रकृति गुण और दोष का अध्यास अपना कर्म मान अपने को कर्म कर्ता और अपने को ही फल भोक्ता मान अपने आप को मिथ्या आवा गमन का आध्यासकर निर्दोष निष्कलंक अपने गायत्री स्वरूप को पुनर जन्म आवागमन जीरण मरण का दोष लगा जन्म लेने तथा मरने का प्रकृति दोष मिथ्या दोष लगाते हुए मिथ्या भ्रम में भ्रमण करता है।

इस प्रकार अर्थ आश्य वर्णन कर हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू फिर इसी आश्य को इस रीति से वर्णन करता है कि गायत्री स्वरूप चित आनंद चक्र के नीचे स्थूल ब्रह्मांड चक्र आकृति में जो आहवा अधिष्ठान कत्थे के रंग जैसा है यही मूल प्रकृति का स्थान है इस की गायत्री स्वरूप से उत्पति है इसी का नाम हिरण्यगर्भ और कारण अहंकार है और यही शिव तथा महेश्वर का रूप है कारण कि सर्व जगत की वस्तुओं का ज्ञान मयी बीज इसी अधिष्ठान में रहता है और वह चैतन्य आकृष्टा आकर्षण शक्ति गायत्री रूप से सब मंडलों के अधिष्ठानों में प्रवेश करता हुआ और अंकूर की भांति बढ़ता हुआ पृथिवी तक चला जाता है सो सत् ज्ञान अनामय स्वरूप १ और चित आनंद गायत्री स्वरूप २ और अहंकार मंडल महेश्व रूप मूल प्रकृति का अधिष्ठान ३ इन तीनों अधिष्ठानों का नाम इसकारण कि इनमें देश और काल का भेद नहीं है ज्ञान की त्रिपुटि इनका नाम है।

सातवां अधिष्ठान स्थूल ब्रह्मांड में बुद्धि का मंडल है कि जिसके एक ओर तो बुद्धि सहित कारण त्रिपुटी है कि जिसमें रूपा के गायत्री और महेश्व रूप मिश्रित हो कारण त्रिपुटि रूप बन जाते हैं और दूसरी ओर और दो त्रिपुटियाँ हैं कि जिन में पहली सूक्ष्म और दूसरी स्थूल त्रिपुटि है।

इन तीनों कारण सूक्ष्म और स्थूल त्रिपुटियों का वर्णन इस प्रकार पर है कि जिस समय बुद्धि की दृष्टि कारण त्रिपुटि की ओर अन्तर्मुख होती है तिसी काल बुद्धि चैतन्य चित आनंद गायत्री साक्षी रूप स्वरूप का अनुभव करती है। और जब बुद्धि की दृष्टि सूक्ष्म और स्थूल त्रिपुटि की ओर वहिर्मुख होती है तो संसार का भाव प्रतीत होता है। और आकृति के अनुसार बुद्धि चक्र अधिष्ठान में पृथिवी केन्द्र स्थान से १२ रेखा फूट कर आती हैं कि जो बुद्धि चक्र तक वे रेखा पहुंच कर पृथिवी मंडल से बुद्धि के मंडल तक सातों मंडलों के चौरासी भाग्य अपने विभागों से कर देती हैं इसी प्रकार ज्ञान त्रिपुटि में बुद्धि को छूड़ के ३६ का अनुमान प्रत्यक्ष प्रमाण से ही होता है कि जो अनामय निष्कलंक स्वरूप की ३६ कला हैं इनमें १२ बुद्धि की और ८ प्रकृति की कला जोडने से ५६ कला बन जाती हैं और आधि पक्ष विचार से १६ कला प्रसिद्ध हैं इसलिये कैवल्य अनामय स्वरूप का एक ही अद्वितीय १६-३६-५६ कला का बबूबाहनी अनादि अनंत देशोंदिश त्रिकाल त्रिबाण एक नेवी अनामय रूप बबूबाहन निष्कलंक कल की स्वरूप सर्वदा पूर्ण भरपूर एकरस अगम अचल दशमावतार प्रत्यक्ष प्रमाण से एक ही अव्यय अविनाशी अव्यक्त निरञ्जनी अवतार है। किंतु स्थूल ब्रह्मांड में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चित आनंद गायत्री रूप स्वरूप से कि जो कारण त्रिपुटि का प्रथम आदि सर्व साक्षी स्वरूप है १२ रेखा फूट कर देश भाव को प्रकट कर सिद्ध करती हैं। और स्थूल सूक्ष्म त्रिपुटियां बुद्धि सहित कारण त्रिपुटि के अंग परिणाम से मिल कर सारे सात चक्र का परिणाम हैं कि जो काल के भाव को प्रतीत कराते हैं। सो देश और काल के संयोग से अर्थात १२ को ७ से गुणा करने पर चौरासी का अङ्क सिद्ध होता है इसी ८४ अङ्क का वस्तु नाम है कि जो वस्तु रूप पंच महा भूत के रूप में दृश्य मान होकर वस्तु रूप प्रतीत होता है कि जो आकृतिमान स्थूल मूर्ति और जड़ संज्ञा है और इन आकृतियों के आकार शून्य तथा (०) बिन्दु समान हैं कि जिन के खः नभ व्योम गगन आकाश एक ही वस्तु के पांच नाम हैं। सो वस्तु के ८४ अङ्क पर वस्तु के पांच पंचभूत नाम (००००) पांच शून्य के अधिक करने से ८४००००० रूप में वस्तु का एक अंङ्क प्रकट होता है कि जो काल चक्र वस्तु बंधन रूप अकृति मान एक अनादि सांत इंद्रजाल दुर्घट काल चक्र डोरी रूप है। कि जो स्वतः गायत्री साक्षी साक्षी स्वरूप में निष्कलंक तथा निर्दोष रूप से प्राप्त है कारण कि वस्तु स्वरूप काल रूप से आप ही अपने अनामय स्वरूप का साक्षी है कारण साक्षात कार ये है कि जब बुद्धि की दृष्टि चैतन्य स्वरूप पर पड़ती है त्यों ही चौरासी के चक्र से बाहर निकल जाती है। और जब सूक्ष्म स्थूल की ओर होती है तो मिथ्या संसार का भान प्रतीत करती है कि जिस के भान करने पर भी किसी प्रकार की कोई हानि नहीं कारण कि सूक्ष्म और स्थूल मन रूप में बुद्धि का भाव है कि जिस का आदि और अंत बुद्धि ही है और बुद्धि स्वतः मन चक्र से पृथक है जैसे कि मन चक्र और बुद्धि चक्र की उस श्वेत चक्र से कि जो दोनों के मध्य प्रतीत होता है स्वयं कारण त्रिपुटि और सूक्ष्म त्रिपुटि की पृथकता की प्रतीत का कारण रूप है।

ब्रह्माड स्थूल चक्र में ध्रुवा चक्र ध्रुवें के रंग जैसा मन मंडल अधिष्ठान है। बुद्धि का जब इस में प्रवेश होता है तो जगत की भावना प्रकट होती है। यही बुद्धि कारण कार्य गायत्री यथा चेतन स्वरूप में इच्छा का रूप धारण किये हुए चित आनंद वृति से उत्पति का हेतु रूप बन के माता समान रूप रहती है। और आठवे अधिष्ठान में मूल्य प्रकृति रूप से गायत्री चित आनंद स्वरूप की बहन के समान सरस्वती रूप से रहकर निरन्तर वास करती है। और सातवे अपने ही बुद्धि अधिष्ठान चक्र में विद्या रूप ग्रहण कर सविद्रि रूप से पुत्री की संज्ञा को प्राप्त होती है। और छटे मन चक्र में यही बुद्धि माता बहन और पुत्री का रूप त्याग मन को विष्णु पति का स्वरूप मान लक्ष्मी रूप में स्वयं स्त्री का रूप धारण कर लेती है। और अपने पति मन के साथ भोग विलास के निमित आकाश पवन - अग्नि जल पृथिवी के पांच आवर्ण पटों को रचके उनमें गुप्त स्थान रचती है और विषय भोगों की अधिकता से बांझ बनजाती - अर्थात निस्वार्थ स्वरूप को त्याग स्वार्थ का ग्रहण करती है सो जब बुद्धि भोग विलास के निमित स्वार्थ को ग्रहण कर लेती है तो फिर किसी प्रकार से कोई सत पदार्थ उत्पन्न नहीं कर सकती यथा अपने पति मन के लुभाने को जगत के सर्व मिथ्या भाव और पदार्थों को सत करके दर्साती है और प्राप्त तथा अप्राप्त पदार्थों से सब को ही सत कर प्राप्ति रूप बनाती है। यथा वैश्या का सृङ्गार मार नख सक रूपान्तर रूप से रूपवति बन भ्रम जाल संशे संदेह माया मोह का प्रवर्तन कर वैराग्य और विवेक रूपी धन को यही वैश्या नारी स्वरूप नाहरी हरके जीवत विषे ही रुधु को सौरव भांति भांति के बंधन रूप से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चौरासी धार वाली चौसर विछा रङ्गी नर्द तथा गोटों की मार कूट का स्वांग दिखाती है। यही बुद्धि पिंगला मिथ्या
रूपी धारा नगर की रानी धारा नगर के स्वामि भर्तृहरि महाराज की महारानी गायत्री रूप साकार आकृति 95
अनामय भर्तृहरि स्वरूप की चित आनंद रूप दृश्य प्रपंच अदृश्य रूप प्रकृति भर्तृहरि राजको अनाम
और असंग स्वरूप ही प्रकट करती है कारण कि सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच अनामय स्वरूप के विषे कथन
मात्र ही हैं। सो सर्व संसार पिङ्गला रूपी वैश्वा माया बुद्धि नार का पंची कृत एक आकार है।

स्थूल ब्रह्मांड में पांचवा नीले रंग का चक्र आकाश मंडल है कि जिस से पंच महाभूत की उत्पति
का आरम्भ है कि जो अन्य चार महा भूतों से सूक्ष्म होके उनका अधिष्ठान रूप है नाम इसका खं है
और शब्द इस्का गुण है। अर्थात आकाश शब्द रूप शब्द स्वरूप आकृति है।

स्थूल ब्रह्मांड में चौथा हरे रंग का चक्र वायु का मंडल है नाम इसका नभ है और गुण इस
का स्पर्श है। सो मन १ आकाश २ और वायु ३ इन तीनों का कोई रूप नहीं है इसकारण इन ३
मंडलों का नाम सूक्ष्म त्रिपुटि है। और वायु शब्द स्पर्श रूप स्वरूप है।

स्थूल ब्रह्मांड चक्र में वायु के अन्य जो लाल रंग वाला अग्नि मंडल १ और हलके नीले रंग
वाला जल मंडल २ और मटियाला रंग वाला पृथिवी मंडल ३ इन तीनों का स्थूल त्रिपुटि नाम है और
इसी को त्रिलोका भी कहा जाता है कि जिसके स्वर्ग पाताल और मर्त्य भी नाम हैं। इन तीनों ही
मंडलों में अग्नि मंडल का नाम व्योम तथा स्वर्ग लोक है कारण कि अग्नि ही सूर्य्य रूप से शक्ति
प्रकाश रूप है यही चपला बाण रूप है और यही सूर्य्य स्वरूप है और इसके स्वरूप से ही इसके गुण
और रूप की प्रतीत होती है कारण कि सूर्य्य अग्नि रूप अग्नि नहीं है पृथिवी सम एक मंडल है जो
सूर्य्य स्वर्ग लोक कर के प्रसिद्ध है। इसी प्रकार जल मंडल का नाम गगन है यथा चंद्र लोक है
इसी का पाताल लोक नाम है कारण कि जल ही चन्द्र रूप रूप से रस जीव शक्ति सार रूप है यही गुण
गगन रूप है किंतु चंद्र जल रूप नहीं है सर्व रस जीव शक्ति का आधार कारण रूप पाताल स्वरूप है
इसी प्रकार पृथिवी मंडल का नाम मर्त्य लोक है इसी का नाम आकाश अधिष्ठान स्वरूप है कारण
कि गंध इसकी मात्रा है और गंध ही नर्क रूप है इस कारण स्थूल त्रिपुटि त्रिलोकी रूप है।

अग्नि के ३ गुण इसप्रकार पर हैं कि कारण त्रिपुटि में अग्नि का स्वरूप ज्ञानस्वरूप साक्षी रूप है और
सूक्ष्म त्रिपुटि में वाणी उस्का स्वरूप है और स्थूल त्रिपुटि में जठराग्नि उस का रूप है कि ये ३ अग्नि हैं
कारण त्रिपुटि का अक्षर और कूटस्थ नाम है। सूक्ष्म और स्थूल त्रिपुटियों का क्षर नाम है कारण
कि सर्व भूत जो दृष्टि में आते हैं अर्थात भूत गति देहादि अवस्था में देखे जाते हैं वह सब क्षर
रूप के अंतर गत हैं। सो कारण व सूक्ष्म त्रिपुटियाँ अरूप तथा अमूर्त हैं और स्थूल मूर्तिमान त्रिपुटि है। इसप्रकार वर्णा करते हुए हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू फिर प्रकट करता है कि

विराट स्थूल ब्रह्मांड में कि जो मिथ्या मकड़ी जाल चक्र की भांति एक चित्र है इसी इन्द्र जाल
चक्र का नाम माया भुवन है कि चक्र के ऊपर चक्र बने हैं इसी को माया अजगर लीला भी कहा है
इसमें सबसे छोटा चक्र पृथिवी मंडल का है और इसी मंडल में विन्दु समान उस का केन्द्र है कि
जहां से १२ रेखा निकली हैं और सात चक्रों को काटती हुई बुद्धि के मंडल तक पहुंच
अनामय अद्वैत स्वरूप तक बढ़ जाती हैं। सो इस अनामय अचिंत्य अच्युत रूप चित्र

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महत्व महियान विराटस्थूल ब्रह्मांड स्वरूप चित्र में जीव १ भूतां २ यथा विधि १ निषेध २ यही दो भुजा
७८ चतुर्भुज रूप में महाबाहो बब्रवाहन अनामय स्वरूप रूप से इस प्रकार कार्य कारण रूप है कि
(१) जो रेखा पृथिवी केन्द्र से निकलती हैं और बुद्धि के मंडल तक कि जिसका पीला रंग है एकरस २२-२२घर
हर एक चक्र मंडल में ताने के समान बनाती हैं और दो दो रेखाओं से बुद्धि के मंडल तक सात मंडलों के मध्य
जो सात घर बाने के समान बनते हैं यह ८४ घर आकृतियों का स्वरूप हैं कि जो ८४००००० आकृतियों
का एक ही अंक परिणाम रूप है कि जो प्रथम वर्णन कर दिया गया है और यही पृथिवी केन्द्र से अद्वैत १० अंक तक निषेध रूप है
(२) ब्रह्मांड स्वरूप चित्र में मन मंडल चक्र में जहां २ का अंक लगा है इसके ऊपर बुद्धि चक्र से पृथिवी
मंडल तक उन सप्त यथा सात प्रकृतियों का रूप प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जिस से देह देहात्र बनती हैं कि जो भूः
अर्थात पृथिवी १ आपः अर्थात जल २ अनलः अर्थात अग्नि ३ वायु अर्थात पवन ४ खं अर्थात
आकाश ५ मनः अर्थात मन ६ बुद्धिः अर्थात समझ ७ प्रकृति रूप हैं आठवी अधिष्ठान मूल
प्रकृति के मंडल में बुद्धि के ऊपर अहङ्कार का रूप है और इन आठों का अष्टधा प्रकृति यथार्थ
करके अपरा प्रकृति नाम है। प्राप्रकृति का नवा चक्र चैतन्य मंडल अधिष्ठान रूप है
(३) ब्रह्मांड स्थूल चक्र में जहां मन मंडल चक्र में ३ का अङ्क है इसके ऊपर बुद्धि का ज्ञान स्वरूप है
और मन के अधिष्ठान चक्र से पृथिवी के चक्र तक छ घरों में छओं शास्त्रों के अधिष्ठान हैं सो जो जो
शास्त्र जिस जिस अधिष्ठान में निवास करता है वही उस अधिष्ठान का प्रकृति रूप है जैसे कि
(क) प्रथम शास्त्र का नाम न्याय है न्याय प्रथम पृथिवी प्रकृति का नाम है पृथिवी प्रकृति उस
अन्धकार रूप अज्ञान का नाम है कि जो न्याय में वर्णन है यथा द्वैतता भाव कि जो यह सिद्ध
करता है कि परमाणु से जगत बनता है ईश्वर कर्ता है जीव अनेक हैं यथा जो पृथिवि का कर्ता है
वही इस का स्वामी है इस प्रकार न्याय जिस्का नाम है वही पृथिवी रूप अन्धकार प्रथम पृथिवी
रूप आकृति है अर्थात अन्धकार रूप आकृति का नाम न्याय है। कि जो ८४००००० अंक में
एक ही न्याय रूपी आकृति पृथिवी का रूप भिन्न भिन्न देह देहात्र प्रथम न्याय रूप प्रकृति है
(ख) दूसरे शास्त्र का नाम मीमांसा है। मीमांसा दूसरी जल तथा चन्द्र अर्थात रस प्रकृति का नाम
है सो रस से अंकूर फूटता है यथा कर्म उत्पन्न होता है अर्थात रस कर्म रूप प्रकृति का नाम है
और कर्म का अर्थ पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ चन्द्र समान प्रकृति का नाम है कि जिसका कर्ता स्वरूप
है वही रस शक्ति मीमांसा रूप प्रकृति है कि यही चर शक्ति प्रकृति है ये द्वितीय द्वैत भाव रूप प्रकृति है
(ग) तीसरे शास्त्र का का नाम वैशेषिक है ये तीसरी अग्नि नाम प्रकृति का नाम है ये तीसरी द्वैत
भाव रूप प्रकृति है कि जो रूप स्वरूप की दृष्टा बनकर अग्नि तथा रूप स्वरूप के रचन कर्ता
का अधिष्ठान देश और काल के पार प्रतीत करती है यही वैशेषिक तीसरी प्रकृति है
(घ) चौथे शास्त्र का नाम पातञ्जल है यही चौथी पवन नाम प्रकृति है यही चौथी द्वैत भाव
योग रूप स्पर्श नाम प्रकृति है कि जो पवन स्पर्श शक्ति की दृष्टा बनके अर्थात इस शक्ति के रचन
कर्ता की प्राप्ति प्राणशोधन रूप से प्रकट करती है सो पतंजल नाम पवन शक्ति स्पर्शा प्रकृति का नाम है
(ङ) पांचवे शास्त्र का नाम सांख्य है सांख्य आकाश प्रकृति का नाम है कि रूप जिसका शब्द है और
स्वरूप शब्द आकाश है यही पांचवी द्वैत भाव विचार रूप आकाश शब्द स्वरूप प्रकृति है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जो अपने स्वरूप की दृष्टा होकर द्वैत भाव से ऐसा प्रतीत करती है कि जो मेरा रचन करने वाला है उसकी तो विचार द्वारा शब्द के सत्य असत्य भाव के प्रतीत करने से प्राप्ति है सो सांख्य आकाश पांचवी प्रकृति है। 

(च) छटे शास्त्र का नाम वेदांत है। वदान्त मन प्रकृति का नाम है। मन को ही मनु कहा जाता है कि जो स्मृति का रूप है यही छटी प्रकृति मन अधिष्ठान चेतन अद्वैत स्वरूप का भाव प्रकाश पाकर मन प्रकृति रूप से ही प्रतीत करता है कि जो मेरा प्रकाश रूप है वही साक्षी स्वरूप है ये छटी प्रकृति है।

(छ) बुद्धि का कोई शास्त्र स्वरूप प्रकृति प्रमाण नहीं है किंतु बुद्धि स्वयं ज्ञान शास्त्र रूप सातवी प्रकृति है और रूप स्वरूप इस प्रकृति का श्रुति है कि जो स्वयं प्रकाश होके छओं शास्त्रों के सिद्धान्तों को एक ही प्रकाश स्वरूप चेतन में लय करती है और लय करते हुए ये प्रकृति चैतन्य ज्ञान स्वरूप की दृष्टा होकर ऐसा अद्वैत भाव प्रतीत करती है कि ज्ञान अवस्था से उत्तम और कोई अवस्था नहीं है। इस कारण ज्ञान अवस्था की प्राप्ति से ही स्वयं परमपद प्राप्ति की सिद्धि है। सो बुद्धि स्वयं ज्ञान शास्त्र सप्तमि प्रकृति है

(ज) बुद्धि के ऊपर आठवां अधिष्ठान अहंकार का है ये आठवी प्रकृति है इसी का मूल प्रकृति वेद नाम है कि जो सातों प्रकृतियों का लय अधिष्ठान है स्वरूप इसका क्षर है कि जो महेश्व शक्ति इन्द्र जालरूप है और अष्टधा प्रकृति का प्रमाण अहंकार तमरूप अविद्या का अधिष्ठान है इसी कारण अहंकार का अन्तः करण रूप है और अन्तःकरण अहंकार रूप प्रकृति बलवान प्रकृति अष्टधा अपरा प्रकृति रूप है

(झ) अहंकार के ऊपर चेतन का जो मंडल है यही सर्व साक्षी रूप गायत्री अक्षर स्वरूप एक ही प्रा प्रकृति है अहंकार अष्टधा प्रकृति चेतन प्राप्रकृति का आभास अर्थात छाया है इसलिये गायत्री अनामय अनाहद शब्द रूप आत्मा का अक्षर साकार रूप है कि जो निरद्वन्द निराधार प्राप्रकृति रूप है और यही निर्वेद स्वरूप है निर्वेद भेद निर्णय रूप है।

(४) स्थूल ब्रह्मांड चित्र में मन चक्र के अन्दर जहां ४ का अंक है उसके ऊपर उस स्थान से कि जहां अखंड शब्द है और शून्य मात्रा लगी है उस शून्य मात्रा से पृथिवी मंडल तक ब्रह्म आकृतियों के अनुसार इस प्रकार दश आकार प्रकट हुए हैं कि प्रथम एक शून्य (·) विन्दु फिर (··) शून्य विन्दु फिर (∴) शून्य विन्दु फिर (∷) शून्य विन्दु फिर (⁘) शून्य विन्दु फिर (⁙) शून्य विन्दु फिर (⁙) शून्य विन्दु फिर (⁙) शून्य विन्दु फिर (⁙) शून्य विन्दु प्रकट होकर पहले से दूसरा और दूसरे से तीसरा इसी प्रकार एक से दश तक संकीर्ण आकार प्रकट होते हैं।

(५) मन चक्र में जहां ५ का अंक है इसके ऊपर बुद्धि के अधिष्ठान से पृथिवी मंडल तक सप्तर्षियों के जो नाम और उनके जो अधिष्ठान हैं उनका ये प्रयोजन है कि ऋषि कारण सूक्ष्म स्थूल आकृति का नाम है सो जिस चक्र में जो नाम है वह नाम उसी प्रकृति स्वरूप का है ऋषि उनके अन्य और कोई आकृति नहीं है कि जो सूक्ष्म रूप में इंद्रियों के नाम और स्थूल मूर्ति भूत आकाश के अंतर सात तारों के समूह का रूप हैं कि जो वसिष्ठ १ बुद्धि का नाम है और जमदग्न्य कि जिस को क्रतु भी कह्या जाता है और ये दोनों मन के नाम हैं २ तथा पुलस्त्य कि जिसको विश्वामित्र भी कहा जाता है और ये आकाश के नाम हैं ३ तथा मरीचि जो वायु का नाम है ४ तथा अत्रि जो अग्नि का नाम है ५ तथा पुलह कि इसको कश्यप भी कह्या जाता है और दोनों जल के नाम हैं ६ और भृगु कि जिसका दूसरा नाम भारद्वाज है और ये दोनों पृथिवी मंडल के नाम हैं ७ ये सात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनादि ऋषि हैं कि एक के मध्य दूसरा रहते हुए एक ही वर्सि रूप के अन्तर अधिष्ठान रखते हैं
(६) मन चक्र में जहां ६ का अंक है इसके ऊपर बुद्धि चक्र से पृथिवी मंडल तक सावित्रि रूप जो कि सात दीप हैं वह भी अपरा प्रकृति के ही नाम हैं जैसे कि पाताल १ यह बुद्धि का नाम है और दूसरा महातल मन का अधिष्ठान मन को कहा गया है इसीप्रकार रसातल ३ आकाश का नाम है तथा तलातल ४ वायु का नाम है और सुतल ५ अग्नि का नाम है व वितल ६ जल का नाम है और अतल ७ पृथिवी का नाम है इनही दीपों को लोक भी कहा जाता है और ये सप्त ऋषियों के स्वयं मनुष्य मात्र की देह में देह की उन इंद्रियों के नाम हैं कि जो नाग यक्ष किन्नर करके उनके देशों को सिद्ध करती हैं। और यही सप्तर्षियों के प्रतिबिम्ब हैं
(७) मन के चक्र में जहां ७ का अंक है अपार शब्द से पृथिवी चक्र तक सप्त घरों में विधि के अंक १ से १० तक प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रकृति के प्रादुर्भाव का दृश्य मान दृश्य हैं।
(८) मन के चक्र में जहां ८ का अङ्क है वहां से पृथिवी केन्द्र तक सप्त घरों में और उसके ऊपर बुद्धि चक्र में इन सात घरों में देहादि के सात आवर्ण कि जिनका सप्त धातु नाम है और जिनको शैल नाम से सात समुद्र भी कहा जाता है त्वचा धातु १ बुद्धि का रूप मज्जा २ मन का रूप अस्थि ३ आकाश का रूप मेदा ४ वायु का रूप असक ५ अग्नि का रूप रस ६ जल का रूप मांस ७ पृथिवी का रूप प्रतीत है।
(९) मन चक्र में जहां ९ का अङ्क है उसके ऊपर बुद्धि चक्र से पृथिवी मंडल तक देहादि में सप्त लोक यथा बुद्धि ब्रह्म लोक १ मन इन्द्र लोक २ आकाश प्रजापति लोक ३ वायु गंधर्व लोक ४ अग्नि देव लोक ५ जल पित्र लोक ६ पृथिवी मर्त्य लोक ७ ये सात रूप सात लोक स्वरूप हैं। कि जो ऊर्ध्वगण रूप हैं।
(१०) मन चक्र में जहां १० का अंक है उसके ऊपर बुद्धि से पृथिवी चक्र तक सात प्रकार से देहादि में सात प्रकार के सात स्वर हैं कि जो स्वर १ बुद्धि का स्वरूप ऋषभ २ मन का स्वरूप गंधार ३ आकाश का स्वरूप मध्यम ४ वायु का स्वरूप पञ्चम ५ अग्नि का स्वरूप धैवत ६ जल का स्वरूप निषाद ७ पृथिवी का स्वरूप है और इन सप्त स्वरूपों के तीन गुण में त्रिलोकी तीन ग्राम और ७ × ३ = २१ स्वरों में गयन विद्या कि जो अनेक राग रागनियों में है एक ही साम वेद रूप है।
(११) मन चक्र के ऊपर बुद्धि चक्र से पृथिवी मंडल तक कि जहां ११ का अंक है सात घरों में उन सप्त देवताओं के नाम हैं कि जिनका विष की भांति प्रकृति संसार का अत्यन्त विस्तार है इन में प्रथम देवता वासुदेव नाम है सो वासुदेव बुद्धि को कहते हैं दूसरा देवता रुद्र है रुद्र मन का नाम है तीसरा देवता इन्द्र है इन्द्र घट को कहा जाता है चौथा देवता मरुत है और मरुत प्राण पवन का नाम है पांचवा देवता आदित्य है ये अग्नि का नाम है छटा देवता वरुण है यह जल शक्ति का नाम है सातवां देवता कुबेर है ये पृथिवी का नाम है और सातों देवता एक ही अहंकार रूप ऋग वेद का स्वरूप हैं।
(१२) स्थूल ब्रह्मांड में मन के चक्र से कि जहां १२ का अङ्क है उसके ऊपर बुद्धि से भूमि चक्र तक उन सप्त भूमि तथा सप्त व्याहृतियों यथा सप्त शक्तियों अर्थात सात प्रकार की अविद्या प्रकृतियों के नाम हैं कि जिन से भिन्न भिन्न देहात्र न होने पर भी नाम मात्र को माया नाम प्रकृति प्रतीत हैं इनमें
(क) प्रथम बुद्धि स्थान का नाम सत्यम् है कारण कि ज्ञानाग्नि में बुद्धि स्थान से ही क्षोम उत्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होने से सत्य लोक की कि सत् कोइ वस्तु है प्रतीत होती है इस कारण बुद्धि का सत्यम स्वरूप यथा दाह नाम है
(रव) ओम अर्थात दाह से ऊष्णता उत्पन्न होने पर तप लोक तथा तपत की भावना होती है सो जिस प्रकार
अग्नि दाह प्रकृति का नाम बुद्धि है इसी प्रकार तपत्त भावना प्रकृति का नाम मन है यथा मन का ऊष्णा- 99
ता स्वरूप है कि जिसको दाह की लपट भी कहा जाता है इसी कारण मन का तप लोक नाम हुआ है
(ग) ऊष्णता से तेज की उत्पति है और तेज का जुवाला यथा गरमी नाम है इसकारण तेज को जनः लोक
कहा जाता है कि जो स्वयं आकाश रूप में एक मिथ्या प्रतीत है सो आकाश स्वरूप का नाम जनः है।
(घ) तेज से प्रकाश यथा उज्यारे की उत्पति है कि जो धूप और उज्यारे का स्वरूप है इसलिये इसही
उज्यार स्वरूप का नाम महर्लोक है और महः लोक भास यथा प्रतीत का नाम है कि जिस का स्पर्शरूप
है इसलिये महर्लोक का स्वरूप पवन है और पवन को महः लोक कहा जाता है।
(ङ) प्रकाश से रूप की प्रतीत होती है और रूप अग्नि का भाव है इसलिये स्वः लोक अग्नि प्रकृति
प्रकृति रूप स्वरूप का नाम है।
(च) अग्नि रूप से धुवें की भांति भाप की उत्पति है भाप का भुवर्लोक नाम और जल स्वरूप है।
(छ) भाप यथा धुवें एकत्र होने पर जल में गाद अर्थात परमाणु रूप से काजल की उत्पति है
इसलिये इस गाद काजल प्रकति का नाम भूः लोक है और पृथिवी इस का स्वरूप है।

इसप्रकार सप्त व्याहृति एक ही दाहरूपी यजुर्वेद का स्वरूप है किंतु संसार में जितने कि
भिन्न भिन्न करके भाव प्रतीत होते हैं इन सर्व भावों का कार्य कारण रूप एक सप्तम भाव रूपी
बुद्धि प्रकृति है कि सब कर्म अकर्म इसी के अन्तरगत हैं। सो बुद्धि क्या है इसके विषे में हे
मनुइन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू कहता है कि - **बुद्धि क्या है ॥**

बुद्धि वह शक्ति प्रकृति है कि जिससे सत्यासत्य की विवेचना स्थिर होती है। और इसके अनेक नाम
रूप हैं जैसे कार्य कारण १ बुद्धि २ समझ ३ प्रकृति ४ अप्रा ५ ज्ञानशास्त्र प्रकृति श्रुति ६ वसिष्ठ ऋषि
पाताल ८ शुल धातु ९ ब्रह्म लोक १० वासुदेव ११ - दाह प्रकृति १२ इत्यादि अनेक नाम हैं किंतु
इस स्थान पर दाह प्रकृति नाम के अर्थ स्पष्ट किये जाते हैं कारण कि अप्रा उसे कहा जाता कि जो नहीं
हो किंतु प्रतीत हो जैसे कि दाह प्रकृति अर्थात जलन भाव कि कोई वस्तु नहीं है तो भी दाह
रूपी भाव बुद्धि का एक ऐसा प्रकृति भाव में परिनिमित है कि जिसके उपादान १ निमित्त २ साधारण ३
की भांति अविद्या १ विद्या २ और श्रुति ३ ये तीन रूप हैं। इन मे प्रथम तो बुद्धि अविद्या प्रकृति रूप
है और अविद्या का शृङ्गार स्वरूप है और शृङ्गार स्वरूप ही कार्य कारण एक रूप में दाह रूप है और दाह का
जलन परिणाम है इसलिये जलन रूपी बुद्धि अविद्या माया कार्य का नाम है सो
(१) अविद्या माया कार्य बुद्धि का पहला कार्य माया से मोहित होकर अपने को अभिमानी कर
के सुभाव की जिस सामर्थ से बुद्धि मायारूपी माया रूप शृङ्गार प्रकृति से मोहित होकर संसार के
अनुकरण में प्रविष्ट होती और काल अनुसार सुरव दुःरव का बोध करती है ये बुद्धि प्रकृति का
पहिला बुद्धि अविद्या प्रकृति स्वरूप है कि जिस भाव में सुरव भोग की दाह उत्पन्न होती है
(२) दाहरूपी प्रकृति बुद्धि का दूसरा स्वरूप सुनिये है इसी का नाम विद्या है यही असुरुचि
यथा अविद्या के स्वयं वह सामर्थ शक्ति है कि जिस का स्वयं सत्यम नाम है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) दाह रूपी बुद्धि का तीसरा रूप श्रुति है निति अनिति दोनों से विलक्षण निसङ्ग भाव मग्न विराग्य स्वरूप है सो बुद्धि माया रूप प्रकृति तीन प्रकार की वर्णी दाह से किसी एक प्रकार की दाह का नाम है और मन कि जिसे ऋषि ऋषिम कहा जाता है जो रुद्र तथा जमदग्न्य क्रतु मनु इत्यादि अनेक नाम रखता है उसके द्वारा बुद्धि माया रानी की त्रिगुणी मूर्ति का इस प्रकार प्रकाश होता है कि जैसे

## (१) बुद्धि अविद्या रानी की प्रथमि स्वरूप महिमा

शृङ्गार स्वरूपमं

(१) हे मनु इन्द्र तू इस प्रकार कथन कर वर्णन करता है कि जिसने ब्रह्मा विष्णु और शिव को भी गृह यथा गृहस्थ कार्य करने के लिये दास बना रखा है और जो विचित्र चरित्रों में चतुर है कि जिसका वर्णन नहीं होसकता ऐसी पुष्पायुध काम देव को उत्पान्न करनी वाली जो मन मोहनी सुन्दर तथा चपला यथा बिजली रूप जो आशा तृष्णा का भण्डार है वही माया अविद्या रानी हे मनु प्रकट करता है कि मेरी सुन्दर स्त्री मृग नेना द्रिलोचनी बुद्धि का महारानी है -

(२) ये कैसी सुन्दि है कि मंद मुसुकाना लज्जित होना मुरव फेर लेना अर्द्ध कटाक्ष से देखना मधुर वचन से बोलना इर्षा से कलह करना और अनेक चरित्र दिखाना इन सब प्रकार से यह बुद्धि अविद्या रानी विष्णु के हेतु सर्व प्रकार से ये लक्ष्मी रूपी स्त्री बंधन रूप ही है

३) मौंह फेरने की चातुर्यता अर्द्ध नेत्र से कटाक्ष चलाना मीठी बातें बोलना लज्जित हो हसना लीला करते मंद मंद चलना और घूम के खड़े होजाना इस बुद्धि का अविद्या रानी के ये सहज गुण और शस्त्र हैं कि जिनपर मोहित हो विष्णु ने अपने को आप ही अजन्य होके मारा है यथा इस प्रकार का मिथ्या भ्रम उत्पन्न कर रखा है कि कर्म अनुसार जीरण मरण व पुनरजन्म होता है

(४) विष्णु किसी समय सुन्दर मौंह से कटाक्ष करता कभी लज्जा से शोभायमान दिखाई पड़ता कभी भय से भय भीत होता और कभी लीला ही से विलासों को धारण करता है इस भांति नेत्रों ने शोभित नवीन बुद्धि नवीन स्त्रियों के मुरव कमल की भांति शोभित होती है कि जिससे ऐसी दिशा अवस्था व्याप्ति हो रहती है जैसे नील कमल के समूह सर्वत्र छिटराये हुए होते हैं इसप्रकार की बुद्धि है

(५) जैसे चंद्रमा का फीका करनेवाला मुरव कमल के हंसने वाला नेत्र स्वर्ण की दमक को मंद करने वाला देह की कांति भौरों के पुंज को जीतने वाले केश गज मस्तक की शोभा हरण वाले स्तन और दोनों विशाल नितंब अर्थात होंट और कोमल बाणी मनहरने वाली यह सब स्त्रियों के स्वभाविक भूषण हैं इसी प्रकार बुद्धि अविद्या रानी का शोभित स्वरूप और भास है।

(६) जिस प्रकार मंद मुसुकराता हुआ मुरव सीधे और चंचल दृष्टिपात करना नए नए बिलास की उक्ति से सरस बात करना मंद मंद गति से गमन आरंभ करना और अनमने रीति से लीला के समूह फैलाना युवा अवस्था चढ़ते ही जिस जिस प्रकार के सुन्दर हाव भाव स्त्रियों में उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार अविद्या भाव बुद्धि का रानी के भी नाना रंग के रूप निकलते हैं

(७) जिस प्रकार रसिकों के देखने योग्य वस्तुओं में उत्तम वस्तु मृगनैनी नायकों का प्रेम से प्रसन्न वदन सूंघन की वस्तु में उनके मुरव की भाफ सुनने में मुरव बाणी स्वादिक वस्तु में उनके अधर पल्लव का रस स्पर्श की वस्तु में उनका शरीर और ध्यान करने के योग्य उनका यौवन और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बिलास है ऐसी ही ऐसी ही बुद्धि का अविद्या रानी की स्वरूप अवस्था है।
(८) जिस प्रकार स्त्रियां चंचल कंकणों के शब्द क्षुद्रघंटिका की ध्वनि और नूपुर के झनकार से राजहंसिनियों की चाल जीत कर तरुणी मृगी की हरिणी के समान नेत्र पात कर मुनियन के मनों को भी विवश करलेती हैं इसी रीति से बुद्धि का अविद्या रानी की गति है कि यह दाहरूप शक्ति कितको अभिमान उत्पन्न नहीं करती है। 10
(९) जैसे केशर और चंदन से शोभित देह वाली स्त्रियां गोरे गोरे स्तनों पर हार झमकाती और चरण कमल में हंससे नूपुर अठलाती हुई सुन्दर स्त्री मनुराजके मन को मोहलेती है ऐसा ही अविद्या बुद्धि का रूप है
(१०) जिस प्रकार अबला चंचल नार पुतलियों के कटाक्षसे इन्द्रादिक को हराके अपने वश करलेती है इसी प्रकार अविद्या रूपी बुद्धि काम देव स्वरूपसे मिथ्या विषयों का मिथ्या स्वरूप है कि कोई भी वस्तु नहीं है केवल नाम मात्र को दाहरूपसे जलन संज्ञा रूप है कि जो असुरुचि स्वरूप है

## (२) बुद्धि विद्या रानी की द्वितीय स्वरूप महिमा
## सुनिति स्वरूप में

बुद्धि का दूसरा स्वरूप सत्यम तथा सुनितिरूप है यह बुद्धि प्रकृति का दूसरा रूप है किंतु यह भी दाह स्वरूप है बुद्धि असुरुचि संज्ञामें आशा तृष्णा का रूप होती है तो सत्यमगति में निरायासरूप दशोदिशा और त्रय कालादि में परिपूर्ण अनंत चैतन्य मूर्ति केवल अपने ही अनुभव से बोध होने योग्य शांत और तेजो मयरूप की इष्टा दाह शक्ति स्वरूप प्रकृति सरस्वति स्वरूप रखवनी है निस्वार्थी परमार्थी बुद्धि सुनिति प्रकृति बुद्धि की जडता को हरती वाणी में सत्य को सिंचती चित को प्रसन्न रखती नाना प्रकार की उन्नति करती सर्व ब्रह्मांड स्थूल को पांव तले दबानी सर्व जगत के लिये प्रकाश रूप होती यह बुद्धि की दूसरी स्वरूप गति है।

## (३) बुद्धि श्रुति रूप की तीसरी स्वरूप महिमा
## वैराग्य स्वरूप में

ये दाह प्रकृति अर्थात बुद्धि तीसरे श्रुति स्वरूप में विद्या अविद्या निति अनिति दोनों से विलक्षण जिस निस्तरंग भाव में मग्न वैराग्य स्वरूप श्रुति रूप भाव में प्रवर्तते रूप रहती है वह बुद्धि की ये तीसरी गति है कि जैसे " विश्वेशं स्वयं मोक्षं मयनाशनम राज्य राजं ॥ सर्वत्रेको श्रेष्ठदेवं नित्यं कृष्णं सदाशिवम ॥ श्रुति अनुकूल इस दाह प्रकृति बुद्धि का स्वरूप है अभिप्राय ये है कि बुद्धि विद्या अविद्या के दोनों पक्षों को कि जो दाह रूप होते हैं और निति अनिति नाम रखते हैं अपने तीसरे श्रुति दाह रूप में लीन रखती है और इस श्रुति दाह रूप से प्रकट करती है कि मैं विश्वेशं अर्थात सम्पूर्ण विश्व स्वरूप हूं तथा स्वयं मोक्षम अर्थात स्वयं मोक्ष हूं और मयनाशनम अर्थात मैं ही मयनाशी स्वरूप राज्य राजे राजों में राजा हूं और सर्वत्रे एको श्रेष्ठ देवं अर्थात मैं ही एक श्रेष्ठ देव हूं कि जो नित्यं सदा कृष्णा शिवम अर्थात मैं कृष्णा रूप अंधकार अज्ञान अभिमान होने पर भी सदैव कल्याण स्वरूप यथा प्रकाश रूप हूं किंतु (१) अविद्या गति में मेरा कृष्णा रूप है ये कृष्णा रूप कैसा है कि जैसे मेरे वासुदेव स्वरूप का एक मुरली मनोहर रासरिस्यी कन्हैया कि जो विद्या रूपी अभिमान मत्सर का एक ग्रसित रूप है या मेरे उग्रसेन रूप में कंस नाम रूप एक धनवान स्वरूप है कि जो अपने द्रव्य के गर्व से किसी गुणी का आदर ही नहीं करता इन दो के अन्य इस मेरे अविद्या स्वरूप में जो स्वरूप है वही साधारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अल्पज्ञहै इसलिये मेरा माया मोहित सुख दुःख की प्रतीत करने वाला प्रथमि बुद्धि रूपकि जो सुभाषित उत्तम काव्य रचना में देह अर्थात शरीर है जीर्ण रूप है कि जो अल्पज्ञ भाव प्रकृति में दाह रूपसे दो प्रकार के अभिमान धन१ व विद्या२ संसार में प्रकट करता है। और संसारिक उत्पन्न चरित्रों में यह दो प्रकार के अभिमान ही अकुशल रूप में भयदायक रूपी पुण्य पाप फल अफल स्वर्ग नर्क के दोषादि के प्रपंच के उत्पन्न कर्ता रूप हैं अर्थात विषयासक्त होकर संसार में पुण्यात्मा कहलाने को बहुतदिन पर्य्यन्त धन के लुटाने को दुःखदायक रूप से द्रव्य मिलने की आशा से ठौर ठौर भूमि खोदना और रसायन सिद्ध होने के निमित पर्वतों की अनेक धातुओं को फूंकना देशान्तर से धन प्राप्ति के हेतु समुद्र को भी मथ डालना और बड़े प्रयत्न से राजों को भी प्रसन्न करना और मंत्र यथा मनो कामना सिद्ध करने के निमित मन लगाकर निरंतर रातों को महास्मशान में बैठ काली भैरों मसानी आदि की ज्योति जगाना और फिर भी यथार्थ एक कौडी न पाना यही मिथ्या अविद्या भ्रम तृष्णा का रूप है कि जिसका कारण मिथ्या नाम महिमा का अभिमान और मिथ्या स्वार्थ है।

(२) दुर्गम्य अनेक देशों में भ्रमण करना और कुछ भी फल प्राप्त न होना यथार्थ जाति और कुलका अभिमान त्यागकर पराई सेवा करना व्यर्थ दास बनकर अपमान से कौवे की नाईं सशंकित पर घर भोजन करना यह भी बुद्धि अविद्या दुर्मति और तृष्णा रूपी बुद्धि का प्रवृति रूप असंतोष कर्म स्वरूप है कि जो अनित्य के ठठ्ठे और कुतर्क वाक्य सहती हृदय नेत्र आंसूओं को रोक सेवा कराने वालों के आगे हंस हंसके और अपने हंसने वालों के स्वयं चित स्थिर हो हाथ जोड़ खड़े होना व्यर्थ आशारूपी पतन स्वार्थ का मिथ्या तृष्णारूपी अविद्या बुद्धि का स्वरूप ही है कि जो सूर्य्य के उदय अस्त होने से दिन दिन आयुष्य घटने तथा अनेक कार्यों के करने व भारी व्यापार में काल व्यतीत और जन्म मरण वृद्धापन विपति देख के भी त्रास नहीं होती और भ्रम उत्पन्न कर निश्चित अपना मरण प्रतीत करती है यह मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा पीके जगत मत वाली होने वाली बुद्धि ही है कि जो तृष्णा रूप से अपने आप ही दीन और अन्य के आधीन बंती है और आप ही अपने दीन बालकों के दुख से सोच विचार में पड़ती और कुटुंब लोगों को भूखे देख कर दुखी होती है और इसबात को दुर्दशा समझ धीर्य को छोड़ याचना करती है यह अविद्या दाह बुद्धि ही है कि जो विषय भोग की इच्छा न्यून होने पर भी और जहां तहां अपना अपमान होने पर भी और इष्ट मित्रादिकों के समाप्त होने और आप लकड़ी टेककर उठने तथा नेत्र विहीने होने पर भी निर्लज्ज काया का मरण सुन चकित होती है और भय मानती है और किसी प्रकार की कोई सिद्धि प्राप्त नहीं करती बुद्धि दाह निर्ध्यान निपुण निर्धर्म स्वप्न रूपी यौवन वनि नारी और विषयों का रूप भोगों स्वरूप भ्रमण शाली दुर्दशा मिथ्या तृष्णा रूपी सागर है।

(३) अविद्या दाह रूप बुद्धि ही स्वयं काम देव स्वरूप है कि जो पतङ्ग की भांति जैसे कि पतङ्ग दीपक की अग्नि में जलता है यह विषय भोगों की दाह में जलती है कदापि विषयों की किसी प्रकार अभिलाषा नहीं छोड़ती है यह बुद्धि ही महा मोह की महिमा जगत की उत्पन्न कर्ती धारण कर्ती और संसार की तुच्छ ज्ञाता चौदह भवन रूपी होने पर भी क्षुद्र और दरिद्र का स्वरूप है कि जो दानी व अभिमानी रूप होने पर भी स्वयं निर्दान याचना का स्वरूप है। नट स्त्री सुन्दर झूंटी प्रकृति है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(४) ये कृष्णा रूप बुद्धि ही धन का कोश ईश्वर विद्या का कोश ईश्वर युद्ध करने मे बीर स्वयं शास्त्र स्वयं भ्राता स्वयं स्त्री स्वयं पुत्र और सम्बन्धी है स्वयं सुख स्वयं दुःख स्वयं क्लेश से मलीन और स्वयं संतोष का सागर है। और बुद्धि ही रोग - भोग - भय - क्षय - संग्राम - शत्रु - मान - अपमान की मनङ्कार दाह है ये बुद्धि की गति है। 103

(५) बुद्धि आशा नाम की एक नदी है कि जिसमें मनोरथ का जल भरपूर है और तृष्णा रूपी तरंगों से उछल्ता हुआ वह जल नित्य मौंकार के शब्द उत्पन्न कर मृङ्गी झङ्कार की भांति बहता प्रतीत होता है। प्रतीत ही उसमें मगर हैं नाना विधि के तर्क उस जल की ओर उड़ने वाले पक्षी हैं कि जो धैर्य रूपी वृक्ष पर बैठ अपने मार से उसे तोड़ मोह रूपी भौंर में गिरा अत्यन्त दुस्ता और चिन्ता रूपी तट पर शब्द उत्पन्न कर संसार रूप जगत को प्रवृत रूप दिखाकर सर्व प्रकार के सुख दुःख भोग आदि की प्रतीत कर ने हुए भी कुछ वस्तु नहीं ऐसी बुद्धि माया प्रतीत है।

इस प्रकार बुद्धि स्वरूप वर्णन हुआ हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू फिर कहता है कि स्थूल ब्रह्मांड चित्र में भी ब्रह्म के तीन नाम हैं। अर्थात इस विस्मयी चित्र में प्रथम स्थूल त्रिपुटि का नाम विष्व है॥ और द्वितीय सूक्ष्म त्रिपुटि का नाम तेजस स्वरूप है॥ और तीसरी कारण त्रिपुटि का नाम प्राज्ञ स्वरूप है॥

अनामय स्वरूप चैतन्य चक्र के ऊपर का अधिष्ठान श्वेत वरंग तुरीय तीत के पथ लक्ष्य का स्वयम दृष्टि त स्वरूप है कि जो अद्वैत १ अनंत २ अक्रिय ३ अखंड ४ अचिंत्य ५ अगम ६ अपार ७ अव्यय ८ अविनाशी ९ अलक्ष १० अनादि ११ निरञ्जन १२ तथा इनके अन्य भी जो अगोचर आदि शब्द हैं इनका कैवल्य एक ही सार अंश अद्वैत परम पद है। कि जिसका निर्णय ये है कि।

(१) स्वयं ब्रह्मांड कारण त्रिपुटि में जो नवां चैतन्य मंडल चक्र है उसमें भी जो १२ नाम अर्थात निर्द्वन्द १ निराधार २ निष्क्रिया ३ निरुपाधि ४ निश्चिन्त्य ५ निगम ६ निरायास ७ निर्लेप ८ निर्विकार ९ निराकार १० आदि अगोचर ११ निरालम्ब १२ शब्द हैं इन शब्दों के अनुसार अध्यात्म विद्या के अनुकूल चैतन्य देव चौवीस अंश माया का साक्षी होकर नेत्रों में वास करता है। और इसी अवस्था का नाम जागृत है - और २४ अंश माया में अष्टधा प्रकृति पंचतन्मात्रा अहंकार महत्तत्व अव्यक्त को अष्टधा प्रकृति और पंचमहाभूत पंचकर्मेंद्रिय पंच ज्ञान इंद्रिय एक मन कि इन २४ को विकार कहा जाता है ये सब माया के २४ अंश में परिणाम हैं।

अभिप्राय ये है कि चेतन देव की चार अवस्था हैं जागृत १ स्वप्न २ - सुषुप्ति ३ और तुरीय पद ४ सो इनमें जागृत अवस्था का प्रथम वर्णन हुआ अब दूसरी स्वप्न आदि का लक्ष प्रकट किया जाता है कि

(२) जिस प्रकार चैतन्य जागृत अवस्था में २४ अंश माया का साक्षी होकर नेत्रों में वास करता है इसी प्रकार पंचीकृत इंद्रिय ५ प्राण ५ मन १ बुद्धि १ ज्ञान इंद्रिय ५ इन १७ अंश माया का दृष्टा होकर हृदय में वास करता है और इस अवस्था का नाम स्वप्न होता है।

(३) इसी प्रकार माया के एक अंश अहङ्कार मूल प्रकृति का साक्षी होकर कंठ में निवास करता है और इस अवस्था का नाम सुषुप्ति है।

(४) और जब अनामय आत्मा जागृत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर और माया से रहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में विश्राम करता है इसी अवस्था का नाम तुरीय पद है और यह चारों की चारों अवस्था उस समय तक वर्तमान रहती हैं कि जबतक बुद्धि और मन शरीर के साथ रहते हैं।

(५) शरीर और मन बुद्धि के वियोग होने पर कि जब चैतन्य देव दृष्टा भाव का संम्पूर्ण त्याग कर देता है तब ही तुर्या तीत परम पद परमार्थ तत्व बोध्य होता है और यही स्वयं मोक्ष मेरा स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(४) ये कृष्णा रूप बुद्धि ही धन का कोश ईश्वर विद्या का कोश ईश्वर युद्ध करने मे बीर स्वयं शास्त्र स्वयं भ्राता स्वयं स्त्री स्वयं पुत्र और सम्बन्धी है स्वयं सुख स्वयं दुःख स्वयं क्लेश से मलीन और स्वयं संतोष का सागर है। और बुद्धि ही रोग - भोग - भय - क्षय - संग्राम - शत्रु - मान - अपमान की महङ्कार दाह है ये बुद्धि की गति है। 103

(५) बुद्धि आशा नाम की एक नदी है कि जिसमें मनोरथ का जल भरपूर है और तृष्णा रुपी तरंगों से उछल रहा है आ वह जल नित्य मौंकार के शब्द उत्पन्न कर मृङ्गी झङ्कार की भांति बहता प्रतीत होता है। प्रतीत ही उसमें मगर हैं नाना विधि के तर्क उस जल की ओर उड़ने वाले पक्षी हैं कि जो धैर्य रुपी वृक्ष पर बैठ अपने मार से उसे तोड़ मोह रुपी भौंर में गिरा अत्यन्त दुस्ता और चिन्ता रुपी तट पर शब्द उत्पन्न कर संसार रूप जगत को प्रवृत रूप [illegible] ये इस भी कुछ वस्तु नहीं ऐसी बुद्धि माया प्रतीत है।

Bill No. Date 5/11 193 .

Lalla Maharaj Sahib Dr.

To,

AHMAD BUKHSH,

Tailor Master,

SADAR BAZAR, JHANSI.

| Date | Qun. | Particulars. | Amount. Rs. | A. | P. |
|---|---|---|---|---|---|
| | 1 | Coat | 1 | 4 | " |
| 1/37 | 1 | Half pant | 0 | 8 | " |
| | 1 | Frock | 0 | 10 | " |
| | | | | | |
| | | | | | |
| | | | | | |
| | | | | | |
| | | | | | |
| | | | | | |
| | | TOTAL. | | | |

कहता है कि स्थूल ब्रह्मांड चित्र में भी पुटिका नाम विश्व है॥ और द्वितीय ाम प्राज्ञ स्वरूप है॥

तुरीय तीन के पय लक्ष्य का स्वयम चैत्य ५ अगम ६ अपार ७ अव्यय ८ । जो अगोचर आदि शब्द हैं इनका कैवल्य

ी जो ११ नाम अर्थात निर्द्वन्द्व निराधार ८ निर्विकार ९ निराकार १० आदि अगोचर ११ ल चैतन्य देव चौवीस अंश माया का ाम जागृत है - और २४ अंश माया ा प्रकृति और पंचमहाभूत पंचकर्मेंद्रिय ह २४ अंश में परिणाम हैं।

स्वप्न २ - सुषुप्ति ३ और तुरीय पद ४ दि का लक्ष प्रकट किया जाता है कि ी होकर नेत्रों में वास करता है इसी अंश माया का दृष्टा होकर हृदय में

ा साक्षी होकर कंठ में निवास करता है और इस

और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर और माया है इसी अवस्था का नाम तुरीय पद है और यह चारों को हती हैं कि जबतक बुद्धि और मन शरीर के साथ रहते हैं।

(५) शरीर और बुद्धि के वियोग होने पर कि जब चैतन्य देव दृष्टा भाव का सम्पूर्ण त्याग कर देता है तब ही तुर्या तीत पाम पद परमार्थ तत्व बोध्य होता है और यही स्वयं मोक्ष मेरा स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किंतु सम्पूर्ण दृष्टा भाव के त्याग का अर्थ स्त्री पुत्रादि संबन्धियों तथा शरीर त्याग के नहीं हैं और न संन्यासी अवधूत बनकर भ्रमण करने के हैं यहां त्याग के अर्थ सर्व प्रकार की प्रपंच भिन्नता और विभिन्नता त्याग के अर्थात सर्व सर्व माया रूपी संसार को एक ही अद्वैत रूप स्वरूप जानकर अद्वैत भाव को ग्रहण करने के हैं अर्थात यहां असमुन्नता के त्याग को त्याग कर सर्व सृष्टि को अद्वैत रूप स्वरूप में पकड़ कर चेतन स्वरूप को चेतन दृष्टा साक्षी स्वरूप को सर्वों पर पकड़ लेने अर्थात विशेषता में रहते हुए समता रूपी जो एकता अद्वयीता है उसको ग्रहण करने के हैं। और ग्रहण त्याग रूप एक रस बुद्धि का स्वरूप है।

स्थूल ब्रह्मांड चित्र में आठवें मूल प्रकृति चक्र में जो पूर्ण १ सनातन २ कूटस्थ ३ व्यापक ४ और शाश्वत ५ ईश ६ पुरुष ७ स्थाणु ८ नित्य ९ विभु १० शुद्ध ११ और पुरार १२ शब्द हैं इन्हीं से अन्तःकरण रूपी १२ महावाक्य प्रकट हैं कि जिन का नाम वेद है। और वे १२ महावाक्य ये हैं प्रज्ञानं १ आनंद २ ब्रह्म ३ - अहं ४ ब्रह्म ५ अस्मि ६ तत ७ त्वं ८ असि ९ अयं १० आत्मा ११ ब्रह्म १२ इन १२ वाक्यों से चार महावाक्य बनते हैं कि जो "प्रज्ञानं आनंद ब्रह्म" पहि महावाक्य और पहिला शब्द रूप वेद है। द्वितीय "अहं ब्रह्मास्मि" दूसरा महावाक्य और दूसरा शब्द रूप वेद है। तृतीय महावाक्य "तत्त्वं असि" तीसरा महावाक्य और तीसरा शब्द वेद है। "अयं आत्मा ब्रह्म" चौथा महावाक्य और शब्द वेद है। और इन चारों महावाक्यों का एक ही लक्ष्यार्थ है इसकारण वेद का एक ही अद्वैत अनामय "चार्वाक" नाम है कि जो निर्वैद अनामय स्वरूप अनीश्वरवादी आस्तिक और नास्तिक दोनों पंचीकृत शब्दों से रहित एको निष्कलङ्क कल की अगम रूप है। कारण कि आकाश १ मन २ बुद्धि ३ और अहंकार ४ ये चारों माया कार्य कारण शक्ति इन्द्रजाल की भांति उस शक्ति का कि जिस को जीव कहा जाता है एक रूप है। और यह जीव रूप स्वयं चैतन्य स्वरूप का प्रतिबिम्ब अर्थात आभास है और आभास का प्रकाश करने वाला स्वयं चित अर्थात चैतन है कि जिस का आभास स्वरूप अर्थात जो आनंद रूप है कि जिस का अर्थ आज्ञान है यह जीव रूप है कि जीव कोई वस्तु नहीं है। किंतु बुद्धि की प्रतीत में जीव का अपरोक्ष रूप है और अपरोक्ष प्रकट प्रतीत का नाम है कि जो प्रकट प्रतीत तृष्णा रूपी स्वार्थ यथा आस्तिक गति कारिकारी कल्पना कल्पित स्वरूप है। सो यह कल्पना कल्पित स्वरूप अर्थात नाम का जीव जिस प्रकार कि कोई वस्तु न होने पर प्रकट प्रतीत में अपना होना मानता है इसी प्रकार प्रकट प्रतीत में ईश को कि जो इसी का एक नाम है कल्पना उत्पन्न कर अपने से भिन्न होना प्रतीत करता है और इस अभेद गति का नाम भेद रूप में वेद रखकर तत बात को न जान देह रूपी मिथ्या स्वरूप को सत मान देह अभिमान में प्रवृत हो प्रकृति के अधिष्ठान में वृति को ठहराकर महावाक्यों की साधना द्वारा कि जो अपरोक्ष रूप से चैतन्य स्वरूप का ज्ञान है आप ही उसे सामान्य ज्ञान कहकर मुक्ति का कारण कार्य कारण नहीं बनाता कारण कि मुक्ति के प्रपंच प्रकृति में अनेक रूप हैं जैसे कि।

(१) बुद्धि की प्रकट प्रतीत में विश्व रूप आकाश में पृथिवी आकाश मंडल में भ्रमण शाली तारागण आदि ग्रहों से घिरी हुई अचल नक्षत्र पुञ्ज सहित राशी चक्र की कक्षा में अवास्थित जो यह एक ही एकरस स्वरूप है क्या है और यह सब कुछ भिन्न भिन्न प्रतीत है दृश्यमान गति है क्या है यह किस आधार पर अधर रूप से धृत है यह क्या घटना है क्या सार है। यह सब प्रकट में जीव नाम माया का एक स्वरूप है कि जो स्वयं कल्यान रूप मुक्त स्वरूप एक ही जीव रूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और इसी का नाम राधा और इसी का नाम कृष्ण है कि जो असंग रूप में एक ही स्वरूप गति है।
(२) यथार्थ १ भ्रमण २ मास्ति ३ और अकाल १ महाकाल २ काल ३ और ईश्वर १ जीव २ परमाणु ३ तीन तीन कर के ९ नाम प्रपंच प्रकृति के अर्थात वस्तु के हैं और वस्तु का प्रपंच में सिद्ध नाम है और सिद्ध का दृष्टि रूप नाम है दृष्टि का दृष्टा स्वरूप है और दृष्टा स्वरूप का नियम नाम है नियम का विधि रूप है और विधि का अपूर्व स्वरूप है और अपूर्व से विधि विधि से नियम नियम से परिसंख्या एक बोध रूप है बोध का अर्थ जानने के हैं और जानने वाली जो वस्तु है उसी का नाम बुद्धि है और बुद्धि दृढ़ रूप प्रकृति है कि जिसके तीन नाम अविद्या विद्या श्रुति रूप हैं कि जो अज्ञान ज्ञान दोनों एक स्वरूप श्रुति रूप में स्वयं कल्याण रूप मुक्त स्वरूप है
(३) चैतन्य अपूर्व चैतन्य का नाम है अपूर्व चैतन्य अप्रा प्रकृति रूप से प्रा प्रकृति रूप का प्रधान स्वरूप है
सो जो अप्रारूप प्रधान है वही प्रारूपी एक स्वतन्त्र अनामय स्वरूप है कि जो स्वयं मुक्त है।
(४) चैतन्य शुद्ध और स्वतंत्र सिद्ध भेद रूप में दो नाम हैं किंतु अभेद रूप में एक ही वस्तु अधिष्ठान का नाम है और बुद्धि भ्रमण मास्ति विषे में सुतंत्रा ही मुक्ति का नाम है इसलिये जीव आप ही ऐसी कल्पना करता है कि प्रकट प्रतीत अर्थात सामान्य ज्ञान बंधन रूप है। और महावाक्यों से उत्पन्न जो जीव और ब्रह्म की एकता का एक रूप विशेष ज्ञान है वही मुक्ति का साधन है यहां मुक्ति के फिर केयी रूप प्रकट प्रतीत होते हैं जैसे कि विशेष प्रकट प्रतीत ज्ञान में बुद्धिकृत प्रपंच प्रकृति इसप्रकार विशेष ज्ञान है कि
(क) प्रथम वह राजा स्वयं स्वतंत्र और स्वयं मुक्त है कि जो अपनी प्रजा का इच्छित व अनिच्छित रीति से स्वामी है और अपने शत्रुओं को अपने आधीन रखवता है। कि विशेष ज्ञान में यही मुक्त है। किंतु नहीं कारण कि
(ख) प्रकट प्रतीत में स्वतंत्रा और मुक्त इसी का नाम है कि अपने धन द्रव्य से जिस प्रकार की जो जो इच्छायें उत्पन्न हों उनको तत्काल इच्छा अनुसार प्राप्त कर लिया जाय - किंतु नहीं यह भी नहीं
(ग) मुक्त अर्थात स्वतंत्रा इसबात का नाम है कि मनुष्य नित्य असंग ब्रह्मचारी रूप रहे कभी विवाह न करे सदा देशाटन भ्रमण करने में समा बितावे किसी नियम और न्याय का आधीन न हो संन्यासी हो
(घ) नहीं इस का नाम भी मोक्ष नहीं मोक्ष और सुतंत्रा ये है कि मनुष्य बनों और कङ्गालों में रहे और विनाशपति का अहारी हो राग द्वेष भी किसी प्रकार का न रखवता हो किसी का आधीन न हो भिक्षुक नहो
(ङ) किंतु नहीं प्रकट प्रतीत में ये भी मुक्ति और स्वतंत्रा का स्वरूप नहीं मुक्ति का स्वरूप ये है कि प्राधीन्ता नहो कि प्राधीनता ही बंधन बंध का रूप है। यद्यपि ये भी नहीं
(च) मुक्त और स्वतंत्रा बुद्धि और शरीर के व्योग का नाम है कि मृत्तका से सब बंधन टूट जाते हैं और इससे विशेष मुक्ति का यथा स्वतंत्रा का कोई स्वरूप नहीं कि मरा हुआ मनुष्य दण्ड रहित होना है

किंतु नहीं यह जितने स्वतन्त्रा अर्थात मुक्ति के रूप हैं सम्पूर्ण समष्टि व्यष्टि रूप उपाधि हैं कि जो स्थूल सूक्ष्म रूप वा कार्य कारण रूप नाम रूपात्मक जगत अनात्म अर्थात अनित्य हैं बंधन हैं महावाक्यों की साधना आस्तिक और नास्तिक दोनों गति का पथ नहीं निषेध और विधि के अङ्ग मिलकर एक एकादशरुद्र स्वरूप वह सर्व से अधिक मुक्ति यथा स्वतन्त्रा है कि जो - तीन सम्बन्धों सहित प्रज्ञानंब्रह्म अहंब्रह्मास्मि तत्वमसि और अयमात्माब्रह्म महावाक्यों द्वारा बुद्धिकृत प्रपंच जीवात्मा व परमात्मा की एकता रूप निश्चय से भी असम्भव है। कारण यह है कि स्वतन्त्रा अर्थात मुक्ति मोक्ष नाम ही इस बात का है कि समाधी का सुख और एकागता की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रसन्नता एकरस और अचल रूप हो सो ये वह स्वतंत्रो और वह मुक्ति और मोक्ष गति है कि जिस गति को आप आधीनता मिटा नहीं सक्ती कारण कि गति रूप स्वरूप स्वयं मुक्त चैतन्य और स्वतंत्र है एकरस साक्षी स्वरूप है देश और काल में निरन्तर निर्भय निर्ईच्छित निष्काम निराधार कैवल्यरूप है। जीव जो वास्तव में कोइ वस्तु नहीं किंतु बुद्धिकृत प्रपंच में प्रकट प्रतीत से जीवात्मा बन रहा है और नित्य विशेष प्रसन्नता कार्य ढूंडता हुआ देश देश में अपनी जय जय कार कीर्ति चाहता है और दिनरैन धन एकत्र कर लक्ष्मी पति विष्णु बना हुआ है शरीर की कोई पीड़ा नहीं रखता है सर्वही शरीर के विकारों से रहित हो कर अनेक मित्र रखता है और काई तथा किसी शत्रु का उसे भय भी नहीं और सर्व सुपात्र संतान रखता है तथा आप अपने को प्रसन्न जानता है विपति और दुःख जो दोनो असंतोष का मूल हैं इनकी कोइ प्रतीत नहीं रखता सर्व संतोषी है ऐसे जीव को भी सम्बन्ध त्रय महावाक्यों की साधना से स्वतंत्रो अर्थात मुक्ति व मोक्ष नहीं कारण यह है कि।

सम्बन्धत्रय महावाक्यों की साधन बुद्धि प्रपंच में तीन प्रकार की है। सामानाधिकरण्य १ विशेषणविष्यभाव २ और लक्ष्यलक्षण भाव ३ इन तीनों सम्बन्ध में प्रथम सामानाधिकरण्य जो सम्बन्ध है वह दो प्रकार का है एक तो मुख्यसामानाधिकरण्य १ और दूसरा बाधसामानाधिकरण्यसंबंध २ इनमें मुख्य सामान अधिकरण्य उस संबंध का नाम है कि जिसमें एक वस्तु का एक वस्तु से नित्य अभेद रहै जैसे सुवर्ण का सुवर्ण के गहणों से अभेद रहता है। बाधसामानाधिकरण्य सम्बन्ध उसे कहा जाता है कि एक वस्तुका एक वस्तुके साथ बाध करके सम्बन्ध हो कि जैसे भूषणगत सुवर्ण भूषणके नामरूपादिका बाध करके सामान्य सुवर्णके साथ अभेद को प्राप्त होता है अभिप्राय ये है कि दो पदों के परस्पर भेद के एक अर्थ को बाध सामानाधिकरण्य कहा जाता है जैसे घट और कुम्भ कि दोनों का अर्थ आकाश है। इसी प्रकार विशेषण विशिष्ट संबन्धमें जब परोक्ष और अपरोक्ष शब्दों का कि जिनके भिन्न अर्थ हूं तथा उनके एकत्र होने से एक ही अर्थ प्रकट हूं उसी विशेषणविष्य सम्बंध कहा जाता है जैसे कि तत पदका वाच्य अर्थ परोक्ष में चैतन है और त्वम का अपरोक्षमें यही चेतन अर्थ है इसलिये बाधसामानाधिकरण्य सम्बन्ध अनुकूल तत त्वम के भिन्न भिन्न अर्थ होने पर भी एक ही अर्थ है क्योंकि तत पदका अर्थ परोक्ष अद्वितीय व्यापक चेतन है और त्वम पदका वाच्य अर्थ सद्वितीय अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन है यहां लक्षण त्याग संबध से दोनोंके एक अर्थ हैं। सो इसकर के उस जीव को कि जो वास्तवमें कोइ वस्तु ही नहीं और सर्वसुखया बन रहा है नाम मात्र से तथा अपने को और चेतन को एक निश्चय करो प्रसन्नता होगी कुछ नहीं

मोक्षू जिस गति का नाम है वह प्रथम वर्णन हुई है किंतु मोक्ष प्रसन्नता जिसका नाम है सो ये है कि वह बुद्धि प्रपंच कृत बोधी जीव कि जो अपने को जीव मानता है उसके लिये इस प्रपंच प्रकृति संसार में यदि कोई मोक्षगति है तो यही है कि जो कुछ प्रपंच पदार्थ धन आदि वह अपने पास रखता हो वह सब कुछ दूसरों को देकर भी चिंता रहित रहै अर्थात वह अपने पास किसी प्रकार की चिंता को न आने दे अचिंत रहै।

सो जो पुरुष इसप्रकार अचिंत रहता है कि किसी काल किसी प्रकार की चिंता नहीं करता चराचर सृष्टि को अभेद रूप से देखता है अपने को सर्व साक्षी समझता है अर्थात समदृष्टि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रहते हुए निर्वैर ही रहता है किसी हानि को हानि और किसी दुःख को दुःख और किसी सुख को सुख नहीं मानता और अनेक प्रजा का राजा होने पर भी नाना प्रकार से सर्व का पालन पोषण करते हुए भी यही कहता है कि मैं ने कुछ भी नहीं किया वह प्रजा रक्षा को ही मुख्य जान प्रजा की सेवा सार जानता है और अपनी भलायी की बात सुनना पसन्द नहीं करता सब से गुप्त प्रेम रखते हुए भी स्नेह रहित रहकर एकागर्ती के सुख को राज्य के दुःख दायक सुख से प्रिय जानता है और राज्य को गुप्त आधीनताई समझ कर अपनी स्वतन्त्रों के स्वयं अपनी आधीनता मिटा नहीं सकता स्वयं मोक्ष है

किंतु वह जीव कि जो अपने को जीव मानते हुए नाना प्रकार की चिंता करता है और महावाक्यों द्वारा जीव ब्रह्म की एकता का साधन करते हुए भी भ्रम कल्पना करता है संतोष की नियुनता न होने से व्याकुल रहता है और नाना प्रकार की वस्तुओं से स्नेह रखता है वही बंधन रुप दुर्घट स्वरुप इन्द्र जाल माया का रुप है कारण कि वह जिस वस्तु को प्रेम की दृष्टि से देखता है और अत्यन्त चाहत से जिसकी चाह रखता है और उसे उसकी प्राप्ति नहीं होती तो वह माया रुप माया ही बना रहता है और यदि चाहत की वस्तु प्राप्त होजाती है तो उसका फिर कोई उससे प्रेम नहीं रहता । सो कैवल्य स्वरुप का साक्षी रहकर अचिंत रहना ही स्वयं मोक्ष है पंच महाभूत मन बुद्धि और अहंकार ये आठों अष्टवसु हैं कि जो दुर्घट रुप से इस ब्रह्मांड स्थूल की माया रुपी संसार सृष्टि की रचना माया रुप से करते रहते हैं । सो न कोइ जन्मता है न मरता है माया रुपी अष्टवसु से आप ही आप संसार की रचना होती रहती है और इसी का नाम प्रकृति है ।

और यही प्रकृति मेरे साकार नारायण स्वरुप का सगुण स्वरुप है यही स्थूल ब्रह्मांड चित्र है कि जो सगुण रुपी साकार माया कार्य है और सगुण पुजा रुप है कारण कि वह माया रुप अज्ञानता का जीव कि जो अपने को जीव मानता है। सो जिस प्रकार तृण के ओट पहाड़ नहीं देख पड़ता तैसे ही माया अर्थात प्रपंच प्रकृति शब्द व्यापार करके माया रुपी जीव को स्वार्थ तत्परता करके अद्वैत ध्रुव धर्म का निगम निर्गुण स्वरुप का मनिद्र नहीं देख पड़ता कारण कि विश्व साकार सगुन रुप सब शकलों ही शकलों और शब्द तथा आवाज़ों में कि जो शकलों से उत्पन्न होती हैं परिनिमित है। और इन्हीं दोनों से प्राणी मात्र का उपयोग भोग और सम्पर्क रहता है इसलिये माया रुपी जीव का व्यवहार आधार और ईश्वर भावना का भाव इसी माया रुपी प्रकृति में स्थित रहता है। सो जो देख पड़ता है और जिसका गुण बोध होता है वह सब आकृति मान प्रकृति है और सूक्ष्म से सूक्ष्म आकृति चर्म चक्षु से नहीं देख पड़ती किंतु उनका गुण बोध होता है और गुण से गुणी का बोध होता है और यह बात निरविवाद ही सिद्ध है। कारण कि जैसे स्पर्श से वायु का बोध होता है। धूप से सूर्य्य का । गरमी से अग्नि का बोध होता है तैसे ही इस माया रुप जीव को अपने अन्यत माया रुपी ईश्वर शक्ति का कि जो नाम मात्र ही है और माया रुपी जीव की भांति माया रूपी ईश्वर कोइ वस्तु नहीं है। किंतु माया रुपी जीव को माया रुपी ईश्वर प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है तो वह अपनी भलाई के लिये स्नेह प्रेम से ईश्वर का किसी न किसी प्रकार का कोइ चित्र यथा आकार बना उसे पूजने लगता है। और इस प्रकार माया रुपी जीव से जीव मुक्त की साधना के निमित कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत और सन्ध्या वन्दना आदि उपासना रुप अनेक प्रकार के तपकर करके संसार रुपी बन्धन से मुक्त होने की इच्छा करता है । वेद और शास्त्रों के विधि पर विचार करता हुआ तप मंत्र जप यज्ञादि कर्म तथा योग साधन और अनेक प्रकार के साधनों कर के मोक्ष की प्राप्ति की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छा करना है इस प्रकार इस माया रूपी मिथ्या जीव का एकागनी में विघ्न मिथ्या कारण सत्ता में विश्वास सर्व पूजन और साधन मिथ्या ही होते हैं सर्व पूजन और साधन मिथ्या कारणों में गुड़या का खेल खेल कर मिथ्या मन भेलावा ही हैं। इस मिथ्या जीव के लिये उपासना कि जिस के अर्थ हैं देव को पास ही पास बैठाना और पूजन कि जिस के अर्थ हैं कर्म करना यही उपासना और यही पूजन है कि।

(१) तत् पद के अर्थ को कि जिस का परोक्ष अर्थ अद्वितीय व्यापक चैतन्य है सगुण स्वरूप की श्रवण मनन क्रिया अर्थात ब्रह्म है परोक्ष रूपी उपासना है कारण कि श्रवण से प्रमाण का संदेह दूर होता है और मनन से प्रमेय अर्थात भेद का संदेह दूर होता है इस प्रकार श्रवण और मनन उपासना से तत् पद के परोक्ष अर्थ कि ब्रह्म है सिद्ध होकर देव का पास बैठाना होता है। सो इसी का नाम उपासना है

(२) त्वम पद के अर्थ को कि जिस का अपरोक्ष अर्थ साक्षि तीय अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन अर्थात माया प्रकृति जीव है सगुण स्वरूप की निदिध्यासन क्रिया अर्थात मैं ब्रह्म हूं अपरोक्ष रूपी मर्म अर्थात पूजन है कारण कि निदिध्यासन से प्रपंच भेद अर्थात माया कार्य कारण भेद दूर होता है और इस प्रकार कार्य कारण संदेह भेद दूर होकर निदिध्यासन पूजन तथा कर्म से त्वम पद के अपरोक्ष अर्थ कि जीव ही चैतन्य ब्रह्म माया कार्य कारण रूप है सिद्ध होकर देव पचा अर्थात कर्म करने का अर्थ रखा होता है और इसी का नाम पूजा है

(३) अनामय अचिंत अच्युत तत्व चित्र अर्थात विराट स्थूल ब्रह्मांड चित्र को उस जीव के लिये कि जो अपने को जीव समझ कर ईश्वर आदि की किसी प्रकार से उपासना करता है केवल एक ब्रह्मांड के स्थूल रूपी चित्र को नित्य नेत्रों के स्वयं रखना श्रवण का अभ्यास करना अर्थात उपासना द्वारा ही देव को स्मरण करना है। और उस चित्र के विस्तार पर विचार करना मनन करना अर्थात उपासना द्वारा उपासना रूप में देव को स्वयं बैठा कर उस की भक्ति करना और उस से बात करना है।

(४) श्रवण और मनन को बुद्धि में निश्चय करलेना ही जीव के लिये निदिध्यासन रूपी देव पूजन अर्थात कर्म करके माया रूपी जीव भेद का त्यागन कर प्रपंच भेद अर्थात माया कार्य कारण भेद को दूर कर माया से रहित हो स्वयं देव रूप में अहंकार के ऊपर चैतन्य अधिष्ठान को प्राप्त हो साक्षात ब्रह्म स्वरूप का पूजन करना है। अर्थात पुरुष रूप को प्राप्त होकर पुरुष होजाना है कि यही सगुण रूप की पूजन करके मोक्ष अर्थात मुक्ति का पाना है। और यही सगुण स्वरूप और सगुण स्वरूप का लक्ष है

(५) सगुण स्वरूप के आगे निर्गुण स्वरूप है कि अनुभव दृष्टि से अणो अणीय के लक्ष को दिखाता है अभिप्राय यह है कि जब ऊपर की श्रवण और मनन क्रिया से माया रूपी जीव को बुद्धि द्वारा माया अर्थात प्रकृति का तेजस स्वरूप अर्थात ब्रह्म का अल्पज्ञ भाव प्रकट प्रतीत में प्रतीत करके कि जिस का नाम कर्म और पूजन है इस प्रकार निश्चय कर लिया जाता है कि माया जिस वस्तु का नाम है वही विश्व विराट रूप चित्र से भिन्न अर्थात स्वयम विश्व विराट के चित्र क्रम अनुकूल सर्वथा उस के अन्तर एक उलटा क्रम है। और इस क्रम में स्थूल त्रिपुटि यदि दूसरा तेजस स्वरूप का चित्र बनाया जावे तो सब के ऊपर रहेगी और उस के अन्तर सूक्ष्म त्रिपुटि होगी और सूक्ष्म के अन्तर कारण त्रिपुटि होगी और कारण के अन्तर चैतन्य अनामय चक्र में श्वेत वर्ण आधार रूप से सगुण निर्गुण अर्थात तेजस कि जो ब्रह्म का अल्पज्ञ भाव माया रूप है और सर्व विश्व कि जो ब्रह्म का सर्वज्ञ रूप है प्रत्यक्ष प्रमाण से स्वयं ही सर्व साक्षी ज्ञान लक्ष आत्म भान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

अर्थात अध्यात्म विद्या के अनुकूल सगुण और निर्गुण प्रकृति रूप दृश्य मान होकर केवल अनामय चेतन स्वरूप ही सर्व साक्षी रूप देखने में आए गा कारण कि ज्ञान लक्ष आत्म भाव और तेजस स्वरूप प्रकृति का नाम है सो जिस प्रकार विश्व रूपी चक्र चित्र पलटा खाकर तेजस स्वरूप का स्वरूप लक्ष दिखाता है इसी प्रकार से महावाक्य "ब्रह्म आनंद प्रज्ञानं" १ और "अस्मि ब्रह्म अयं" २ और "असि त्वं तत" ३ और "ब्रह्म आत्मा अयं" ४ यह चार शुद्ध महावाक्य चतृवाक्य बन जाते हैं। तात्पर्य यह है कि महावाक्य ब्रह्म विद्या के अनुसार ज्ञान लक्ष आत्म भाव का प्रकाश करते हैं और शुद्ध चत्रवाक्य अध्यात्म विद्या के अनुकूल स्वयं ज्ञान दायक हैं कि जिस अनुभव से जीव को चैतन्य के एक अंश में सर्व जगत की स्थिति प्रत्यक्ष हो जाती है। और व्यक्त अर्थात प्रकट आकृति व अव्यक्त गुप्त आकृति का सार भी प्रत्यक्ष होता है (६) सगुण और निर्गुण से आगे प्राज्ञ अवस्था है और प्राज्ञ ही मेरा अनामय स्वरूप है कि इसमें रूप और स्वरूप दोनों नहीं हैं विश्व और तेजस ही व्यक्त और अव्यक्त रूप हैं। और व्यक्त और अव्यक्त में ही जगत की सर्व विद्या और आकारों का संक्षेप से भण्डार भरा है। किंतु मेरी गुह्य विद्या का सिद्धांत और प्राज्ञ अवस्था का वृतान्त तथा अङ्क विद्या का सार अधिष्ठान विधि और निषेध की ब्रह्म आकृतियों में गुप्त है। और आकृति और विद्यायों का भेद प्राज्ञ अवस्था की "ऐकौ हं बहुष्यामः" श्रुति प्रमाण "हं" शब्द की अशुन्य विन्दु में गुप्त हो रहा है। और इस (·) विन्दु का ही प्राज्ञ नाम है यही अनामय प्राज्ञ विन्दु सर्व की उत्पति का हेतु और सर्व का प्रकाश रूप है कारण यह है कि यही अशुन्य विन्दु स्वयं तेज से परिपूर्ण है शब्द रहित अशब्द रूप है कि जिसमें किंचित शुन्य नहीं है अकाल स्वरूप निर्वेद है और रूप इस विंन्दु का अद्वैत अर्थात १ का अङ्क है।

(७) यह बात अनादि सिद्ध है कि कारण १ सूक्ष्म २ और स्थूल ३ इन ही तीन त्रिपुटियों से सर्व संसार की उत्पति और इन्हीं में सर्व सृष्टि की स्थिति है। इस कारण विधि और निषेध के अर्थात विश्व १ और तेजस २ इन दानों माया प्रकृति रूप के सीधे और उलटे ११ - ११ - अङ्क का प्रमाण अर्थात एक २ त्रिपुटि का रूप ३ - ३ का अंक सिद्ध है इसलिये स्वयं तीनों त्रिपुटियों से ३+३+३=९ के एक ९ का अंक सिद्ध होता है इस ९ के अंक से विधि और निषेध का स्वरूप यह दोहा ॥ रङ्ग समय रस रचना माहिं लोचन भई श्वरीश ॥ छततिस सूं त्रिसठ भई त्रिसठ सूं तेंतीश ॥ इस प्रकार प्रकट रूप है कि भव ११ - रुद्र ११ एक ही एकादश रुद्र ११ का स्वरूप है कारण कि स्थूल ब्रह्मांड तीनों कारण[१] सूक्ष्म[२] स्थूल[३] त्रिपुटियों में ३६ का स्वरूप है कि जो एकादश रुद्र नाम रखता है और यही ३६ अङ्क विराट निष्कलङ्क रूप की ३६ कला हैं इन्हीं कलाओं का विधि नाम है ३६ के अङ्क में ३ का अङ्क लोचन स्वरूप कारण रूप सर्व ईश है और ६ का अङ्क अङ्ग रूपी रङ्ग रस रूप सर्व सृष्टि है कि जो विश्व कहलाता है। किंतु यह विश्वरूपी चक्र चित्र जब पलटा खाकर तेजस स्वरूप का लक्ष दिखाता है अर्थात अपना विधि स्वरूप छोड़ कर निषेध रूप बनाता है तो ३६ का अङ्क ६३ के अंक का लक्ष दिखाता है और ९ का अङ्क पूर्ण रीती से पूर्ण रह कर रस रचना में समय का रङ्ग सप्त बार नाम प्रकट कर देता है कारण कि ६३ का अङ्क ९ का स्वरूप है ६३ को ९ पर भाग्य देने से ७ अंङ्क की प्राप्ति होती है कि जो बुद्धि रूप है और इसी का नाम देवस्य अर्थात दिन और अश्व वाजि अद्रि आदि भी है। लोचन माया का रूप है और माया ईश का स्वरूप है। सो ६३ के अंक में जो अङ्ग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रुपी ६ का अङ्क है यह कार्य स्वरुप कारण से भिन्न दो त्रिपुटि स्थूल सूक्ष्म रुप ३३ का स्वरुप है कि जिस का अमर नाम है और यही ३३ का अङ्क विधि ११ निषेध ११ भवस्वरुप ११ का एक ही एकादश रुद्र रुप ११ का अङ्क कार्य कारण रुप सृष्टि है कि जो नित्य है और इसका कभी नाश नहीं होता है और इस सृष्टि का ही अमर ब्रह्म आत्म यज्ञ पुरुष माया त्रिलोचनी नाम है। आगे विधि और निषेध अर्थात रुद्र का ये अर्थ है कि

(८) विधि के ११ अङ्कों में कि जो एकादश रुद्र का एक स्वरुप है इसमें प्रथम पृथिवी का नाम अशुन्य विन्दु अर्थात विधि यथा कुवेर है कि यह पहिला रुद्र है। फिर पृथिवी और जल का नाम वरुण है कि ये दूसरा रुद्र है। इसी प्रकार पृथिवी जल अग्नि का नाम प्रजापति है और ये तीसरा रुद्र है और इसी रुद्र का नाम स्थूल त्रिपुटि है। इसके आगे पृथिवी जल अग्नि वायु का नाम मरुत अर्थात चौथा रुद्र है। आगे पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश का नाम रुद्र अर्थात पांचवा रुद्र है। फिर मन आकाश पवन का नाम इन्द्र अर्थात छटा रुद्र है और इसी का सूक्ष्म त्रिपुटि नाम है। फिर पृथिवि जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि का नाम वासुदेव अर्थात सातवां रुद्र है। और वासुदेव अर्थात बुद्धि को ही सप्त ऋषि भी कहा जाता है। फिर बुद्धि अहंकार चैतन्य का नाम पुरुष है और यह अठवां रुद्र है। इसके आगे १२ रेखा का नाम कि जो विराट चित्र चक्र में प्रकट प्रतीत हैं उनका नाम देश अर्थात नवा रुद्र है इसी का नाम रवि १२ अर्के १२ सूर्य्य १२ रुप है १२ नाम है। आगे विश्व कि जो १३ का अर्थ रखता है और विराट स्थुल चक्र का चित्र स्वरुप है कालचक्र नाम दशवा रुद्र कहा जाता है। आगे उस विधि का नाम कि जिस विधि से कालचक्र रुप रुद्र में इन दशों रुद्रों कि स्थिति है उसी का नाम विधि - अर्थात अकर्षण आकृष्ठा इन्द्रातिथि है। यह विधि एकादश रुद्र नाम हैं।

(९) निषेध के ११ अंकों में कि जो एकादश रुद्र का एक स्वरुप है और यह विधि की उलटी क्रिया है इसमें अशुन्य विन्दु का नाम निषेध अर्थात ११ वा रुद्र है कालचक्र दशवे रुद्र का नाम पुरुषोतम अर्थात विज्ञान है। चैतन्य का नाम ज्ञात है। अहंकार का नाम ज्ञेय है। बुद्धि का नाम ज्ञान है। और यह तीन अर्थात चेतन अहंकार बुद्धि अक्षर हैं और कारण त्रिपुटि हैं। इनके नीचे मन का ज्ञाता नाम है आकाश का चेतन नाम है वायु का अनुभव नाम है और यह तीनों सूक्ष्म त्रिपुटि रुप हैं। इनके नीचे अग्नि का श्रुति नाम - जल का शब्द और पृथिवी देह नाम से ये तीनों स्थूल त्रिपुटि रुप हैं इस प्रकार यह ११ रुद्र हैं कि जिनमें १ से ६ तक छ रुद्र क्षर कहे जाते हैं।

(१०) एकादश रुद्रों में कालचक्र अर्थात दशवे पुरुषोतम रुद्र का नाम सत है और नवे चेतन का नाम रज है। और आठवे अहंकार का नाम तम है। और इस प्रकार पुरुषोतम और चेतन और अहंकार इन तीन रुद्रों का एक महेश्व महान पति स्वरुप शिव रुद्र सदाशिव नाम है।

(११) बुद्धि मन आकाश इन तीनों का रुप रज - तम - सत स्वरुप से ब्रह्मा रुद्र गति है।

(१२) इसी प्रकार वायु का नाम तम अग्नि का नाम रज और जल का नाम सत रुप से विष्णु रुद्र है

(१३) पृथिवी का विराट रुद्र एक नाम है। और सर्व रुद्रों में अग्नि जल पृथिवी मूर्ति मान हैं अर्थात आकृति प्रत्यक्ष हैं इनके अन्य सब अमूर्ति यों का अलक्ष्य स्वरुप हैं।

(१४) विश्व विराट में मन के चक्र में जहां ४ का अंक है और उसके ऊपर अखंड के नीचे जो (•) का आकार है। यह विन्दु ही सर्व की उत्पति का हेतु और सर्व का प्रकाश कारण है और यही भरपूर रुप अशुन्य स्वरुप है कि उसके अन्तर किंचित शुन्य नहीं है। स्वयं तेज से परि पूर्ण है और यही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राज्ञ अवस्था की अनुभव विंदु है इसी विन्दु का स्वरूप अकार ल और रूप १ का अङ्क है इस विन्दु से जो पृथिवी के चक्र तक १ से १० तक संकीर्ण आकार प्रकट होते हैं यही आकार ब्रह्म आकृतियों के लक्ष्य का पूर्ण प्रकाश स्वरूप है कारण कि "हं" शब्द के अर्थ नाभिसरोजादि पंचक के हैं जैसेकि नाभि-पद्म अर्थात सूक्ष्म ब्रह्मांड और आत्मसत्ता का स्वयं बोध सो "ऐकोहं बहु ष्यामः" मेरा जो अनामय स्वरूप है "हं" शब्द की अशुन्यविन्दु उसी अनामय रूप की प्राज्ञअशुन्य विन्दु है इससे किस प्रकार सर्व की उत्पति है वह मार्ग ये है जैसेकि वर्णन होता है

## कैवल्यप्राक्अशुन्य विन्दुसे सर्व उत्पति क्रम।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्राक विन्दु अशुन्यरूप | | | | | | | | | १ |

(१) प्राज्ञ अशुन्य विन्दु सर्व उत्पति क्रम में एक से दश अंकों के अन्तर दश घरों से प्रथम घर में जो (०) विन्दु है इसी का नाम अशब्द और पूर्ण है और यही प्राक् विन्दु स्वयं तेज निर्वेद पूर्ण वेद आगम वेद है।

(२) दूसरे घर में ऊपर नीचे दो विन्दु हैं किजिन से उनके मध्य एक रेखा प्रकट होती है इस की उत्पति तेज विंदु की प्रकाश करने वाली किरण से है इस कारण दूसरी विन्दु का नाम चैतन्य विन्दु है कारण कि तेज से किरण फूट के लम्बाई की प्रतीत को प्रकट करती है। अर्थात तेज की किरण से २ का संकीर्ण अङ्क बन कर दो विन्दु के भाव को प्रकट करता है इसलिये प्राक् विन्दु ही १ से २ के अंङ्क में प्रकट होरहा है और २ के अंक को उत्पन्न कर रहा है।

(३) तीसरे घर में तीन विन्दु हैं कि जिन से त्रिकोण जैसी गति की मूर्ति परितीत होती है। सो इस तीसरी विन्दु की उत्पति चैतन्य विन्दु की फैलावट से हुई है। कारण यह है कि लम्बाई की रेखा ने चौड़ाई को प्रकट किया है इस कारण इस तीसरी विन्दु का नाम अहंकार विन्दु हुआ है और १ से २ और २ से ३ का अङ्क सिद्ध हुआ है। अभिप्राय ये है कि इस ३ के अंक से लम्बाई १ चौड़ाई २ और देश ३ इन तीनों के अर्थ की इस प्रकार सिद्धि होती है कि ब्रह्म आकृतियों के अनुसार जगत में यही तीन अङ्क सिद्ध हैं। और इनके अन्य जो दूसरे अङ्क हैं वह इन्हीं के परस्पर संयोग से बने हैं। कारण ये है कि ३ का अङ्क ही कारण त्रिपुटि और कारण त्रिया रूप मेद है जो स्वयं प्राक है और यही अङ्क प्रगत् की गत् का पथ है।

(४) चौथे घर में ४ विन्दु हैं कि जो वर्ग के आकार को प्रकट करती हैं इस चौथी विन्दु की उत्पति अहं अर्थात अहंकार विन्दु से है और नाम इस विन्दु का बुद्धि विन्दु है इस करके ४ का अङ्क और चतुर्कोण मूर्ति सिद्ध होकर अन्तः करण का रूप बनती और सूक्ष्म त्रिपुटि को अपने अन्तर से प्रकट करती है।

(५) पांचवे घर में पांच विन्दु हैं कि जिनसे पञ्चमुखी आकार प्रकट होता है इस पांचवी विन्दु की उत्पति बुद्धि विन्दु से है और नाम इस विन्दु का मन विन्दु है कि जो पंच मात्रा रूप है और ५ के अंक को सिद्ध का सूक्ष्म गति के दूसरे चिन को दिखाती है और सूक्ष्म त्रिपुटि का प्रथम आकार रूप कारण होती है।

(६) छटे घर में छ विन्दु हैं कि जिन से षट कोण का आकार प्रकट होके छ के अंक को सिद्ध करता है इस की उत्पति मन विन्दु से है और नाम इस विन्दु का आकाश विन्दु है कि जिसकी ६ दिशायें हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(७) सातवें घर में सात विन्दु हैं कि जिन से सप्त कोण का आकार प्रकट होके ७ के अंक को सिद्ध करता है उत्पत्ति इस सातवी विन्दु की आकाश विन्दु से है नाम इस का पवन है और निवास स्थान आकाश है कि सप्तर्षि गत का पथ है इसी विन्दु पर सूक्ष्म त्रिपुटि बुद्धि विन्दु से उत्पन्न हो स्माप्त होजाती है और स्थूल त्रिपुटि को उत्पन्न करती है

(८) आठवे घर में आठ विन्दु हैं कि जिन से अष्टकोण आकृति आकार की उत्पति है और ८ का अङ्क सिद्ध होता है इस आठवी विन्दु की पवन विन्दु से उत्पति है और यही विन्दु रूप शक्ति का स्थान है। कि रूप भाव अग्नि का है

(९) नवें घर में नो विन्दु हैं कि जो नौ के अर्थ को ९ का अङ्क सिद्ध कर इस नवी विन्दु की उत्पति अग्नि से होना प्रतीत करा के प्रकट करती है कि अग्नि विन्दु से जल विन्दु की उत्पति है

(१०) दशवे घर में १ का अङ्क मेरा प्राक् अनामय तेज का एक आकार है और चक्र रूप ९ विन्दु को घेरे हुए पृथिवी विन्दु है कि जो तेज स्वरूप की विन्दु के अन्य स्वयं कारण सूक्ष्म स्थूल त्रिपुटि रूप है और स्थूल त्रिपुटि का स्माप्त रूप अधिष्ठान है कारण कि ये पृथिवी विन्दु ही प्राक् विन्दु का रूप और एक विराट का स्वरूप है। और स्वयं ९ का अङ्क है कि जिस की जल विन्दु से उत्पति है। जल विन्दु जिस को नवी विन्दु प्रकट किया गया प्राज्ञ विन्दु के अन्य आठवी विन्दु है कारण कि जो साक्षी प्रमाण है वह ये है कि कारण सूक्ष्म और स्थूल तीन त्रिकोणों के संयोग होने पर ९ विन्दुओं का भाव प्रकट हो तीन का भी अङ्क है वह तिगुण होकर ९ बन गया है और प्रथम घर की उस अशून्य विन्दु ने कि जो पूर्ण तेज और प्रकाशक है अपने अधिष्ठान को छोड़ कर प्राज्ञ अमूर्ति रूप से मूर्ति रूप में प्रवेश कर ऊपर वर्णन में आई हुई विन्दु मूर्ति को घेर लिया है और अपना स्थान प्राज्ञ के अशून्य विन्दु ने पृथिवी के विन्दु को दे दिया है। सो दशवें घर में जो १ का अंक है और ९ विन्दु को घेरे हुए चक्राकार है। वह स्वभाव अर्थात गुण प्रकृति अनुकूल है कि जो नो विन्दु के फैलने से प्रकट हुआ है तात्पर्य यह है कि नवें घर की विन्दु ने अपनी रेखाओं को अधिक करते करते चक्र की गति अर्थात आकृति धारण कर ली और प्राक् की उस अशून्य विन्दु में कि जिस से सर्व शक्तियों की उत्पति है। वह ९ विन्दु आकृति रूप प्राक विन्दु में कि जो चक्र की भांति सब के ऊपर है उसने सत्व को अपने अन्तर गुप्त कर लिया है आशय ये है कि नव की नव शक्तियों ने प्राक विन्दु में स्थिति पाई है और इस प्रकार नव शक्तियों के गुप्त होजाने से चक्र प्रकट होगया है और उस के बीच शून्य भाव प्रतीत होने लगा वास्तव में इस शून्य का भेद अद्वैत प्राक् अनामय आत्मा के श्वेत पय भाव से नहीं है। किंतु चक्र का होना भेद कल्पना की उत्पति का कारण इस प्रकार प्रतीत होता है कि जिस प्रकार चक्र आकार का आकार देखने में आता है कि जिस में नव शक्तियां गुप्त हैं। यह नव शक्तियां प्राक् अवस्था अद्वितीय आत्मा को श्वेत वर्ण अशून्य की भांति निराकार होना ही जिताती हैं। कारण कि अनामय प्राक् शक्ति ही वह कैवल्य शक्ति है कि जिस से सर्व शक्तियों का प्रकाश होता है। जैसे कि दशवें घर में १ का अंक और ९ विन्दु का चक्र दृश्य मान प्रपंच व्यक्त का अव्यक्त रूप प्राक अवस्था के अशून्य विन्दु में ही अवस्थिति है अर्थात १ का अङ्क जो स्वयं असंग स्वरूप है वह शून्य विन्दु चक्र को कि जिस में नव शक्तियां गुप्त हैं अपने स्वयं लिये बाध संयोग रूप में १० का रूप बन रहा है यदि शून्य विन्दु में नव शक्तियों का गुप्त बाध संबंध शून्य विन्दु के अन्तर गत न हो तो १ के अंक का शून्य विन्दु से संयोग होने पर १० के अङ्क का बनना असम्भव होगा परन्तु ऐसा हो नहीं सकता कारण कि प्राक अशून्य विन्दु स्वयं बाध योग संबंध रूप है। और बाध योग संबंध उस शक्ति का नाम है कि जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकट प्रतीत में प्रतीत हो किंतु अचल निरन्तर प्रतीत में प्रकट प्रतीत मिथ्या हो जैसे कि ९ का एक अंक है यह प्रकट प्रतीत में ९ का रूप है परन्तु ९ का एक ही प्राक अशून्य विन्दु स्वरूप है कि जिस में प्रकट प्रतीत से ९ का अंक पाया नहीं जाता इसलिये ९ का अंक प्राक् अशुन्य विन्दु में बाध संबंध रूप है कि वास्तव में कुछ है नहीं किंतु प्रतीत होता है। और यह प्रकट प्रतीत कैसी प्रतीत है कि यह ९ का अंक जो प्राक अशुन्य विन्दु का एक बाधबोध संम्बन्ध रूप है यह जितना गुणा गुण रूप से बाध संम्ब रूप में विशेषता का रूप धारण करता है सो वितना ही विशेष होने पर एक रस रहता है कि अपनी ९ अंक रूपी संख्या को नहीं छोड़ता एक अचल रूप ९ का अंक बना ही रहता है। जैसे कि ९×२ = १८ के और ९×३ = २७ के और ९ ×४ = ३६ के और ९×५ = ४५ के और ९ ×६ = ५४ के और ९ ×७ = ६३ के और ९×८ = ७२ के और ९×९ = ८१ के यथा और जितना भी गुणा किया जाय इस गुणा फल का जोड़ अंक ९ ही प्राप्त होगा इसी प्रकार यह सृष्टि संसार मेरे अनामय स्वरूप में बाध सम्बंध बोध रूप है कि वास्तव में है नहीं किंतु प्रकट प्रतीत होती है और यह प्रकट प्रतीत ३ लोक १४ भुवन ७ दीप ९ खंड की गति रूप में ३३ अंक के स्वरूप से अमर रूप है कि इस का कभी नाश नहीं कारण कि ३+१४+७+९ = ३३ के यह ३३ का अङ्क मेरे अनामय अशुन्य विन्दु रूप में बाध सम्बन्ध बोध अमर नाम रखता है कि जिसकी संख्या प्रतीत इस प्राकार पर है कि चैतन्य १ अहंकार २ और बुद्धि ३ यह तीनों अक्षर रूप ३ लोक हैं और इन तीन लोकों मे सरस्वती के ७ और सवित्रि के ७ गायत्री रूप १४ भुवन हैं और सप्तर्षि नाम से जो सात दिन हैं यही सात दीप हैं कि जो सात तारों के समुह रूप हैं और ९ खंड में जो नव खंडों का रूप है यही ९ का अंक है कि जो नाना प्रकार के रूपों में परिवर्तन कर रहा है रूप चाहे पशु का हो या पक्षी का अथवा मनुष्यादि प्राणी का सब देह धायों की देह में ९ बड़े टुकड़े होते हैं दोनों हाथों के ४ और दोनों पैरों के ४ और नवां धड़ होता है इस प्रकार ९ खंड हैं दशवां शिर शुन्य विन्दु के समान है। इसी प्रकार सर्व औषधियों में भी ९ भाग पदार्थ के होते हैं। जैसे बीज १ जड़ २ तना ३ रस ४ छाल ५ शाखा ६ पत्र ७ पुष्प ८ फल ९ अन्त में फिर बीज की उत्पति है कि जो दशवा अनामय स्वरूप जानने योग्य है। सो ९ का अङ्क ही ९ छिद्र वाला एक ९ आकारी कैवल्य नन्द रूप है

(११) विश्व चक्र चित्र विराट स्वरूप में प्रकट प्रतीत से विधि और निषेध दो प्रकार की क्रिया प्रकट प्रतीत होती हैं इस प्रकार आकार की कल्पना शुन्य अशुन्य अर्थात ब्रह्म और जगत में भेद दिखाती है किंतु इनमें किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं है। वास्तव में गुण प्रकृति कृत जितनी भी यह जगत रूप सृष्टि है वह सब बाध संबंध रूप है कि नहीं है। और जो है वही कैवल्य अनामय शुन्य समान गोलाकार रखने वाला एक स्वरूप है। यही एक कारण है कि जो वस्तु स्वरूप में बाध संबंध रूप है वही गोला आकार रूप में शुन्य समान है जैसे कि सूर्य्य चन्द्र तारागण आकाश पृथिवी वीर्य अण्डा जेर जल की विन्दु और पृथिवी के परमाणु और वर्षा ऋत में आकाश के मध्य उत्पन्न हो दिखाई देने वाली धनुष और चन्द्र का मंडल यथा कुण्डल कि ये सब गोल हैं इसलिये जो गोल आकार रखने वाली वस्तु है वही बोध रूप बाध सम्बन्ध रूप गति है कि जो बोध रूप होने से बाध संबंध में अपना होना प्रतीत करती है। और गोल आकार गति रूप होने कारण काल पर्यन्त चक्र में अर्थात विश्व रूप आकाश में उत्पात रूप से उत्पन्न होके कि जैसे जल में बुदबुदा उत्पन्न होता है गोल आकार रखने के कारण जल में ठहरता है इसी प्रकार सर्व आकृति बाध संबंध बोध रूप में उत्पात रूप से बुदबुदे की भांति अनामय स्वरूप से उत्पन्न हो विश्व में अर्थात आकाश में ठहरती और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फिर बुद्बुदे की भांति नष्ट होके जिसप्रकार कि उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार अनामय स्वरूप को प्राप्त होती रहती हैं। सो " हं " अक्षर की विन्दु अशुन्य प्राक् रूप बाध संबन्ध बोध स्वरूप में अक्षर प्रणो ॐ कार रूप में अर्धमात्रा का स्वरूप है इसलिय बाध सम्बन्ध बोध रूप में नाम मात्र की जो भी बुद्बुद रूप से एक उत्पन्न होकर किसी आकृति रूप से एक नाम मात्र की आकृति है वही आकृति प्रणों अक्षर ॐ कार रूप है कारण यह है कि " हं " अक्षर की अशुन्य विन्दु का प्राक् स्वरूप है कि जो स्वयं तज है। और जगत जो है वह सब बाध सम्बन्ध रूप है और बोध सम्बन्धी है कि वह न होने पर भी अपना होना प्रतीत करता है इस लिये इस बोध प्रतीत का नाम अर्धमात्रा है। और हं अक्षर ओं कार प्रणो का स्वरूप है इसलिये सर्व जगत प्रणों अक्षर ॐ कार की अर्धमात्रामें भिन्न भिन्न आकृति का एक ॐ कार रूप है इसलिये एक आकृति जो बाध सम्बन्ध रूप है वही ॐ कार रूप है कि जिसका विशेषता के साथ ये प्रमाण है। कि ये जो है सो सर्व विधिरूप के वन्य प्राक अशुन्य विन्दु सर्व उत्पनि क्रम में ९ खण्ड रूप प्रणों अक्षर ॐ कार स्वरूप है सो ॐ कार अक्षर स्वरूप में। जैसाकि सर्व उत्पति क्रम प्राक् अशुन्य विन्दु चक्र चित्र के १० घरों में विन्दु का सर्व उत्पति क्रम प्रत्यक्ष है किंतु उस का अक्षर होने पर अक्षर रूप होना प्रतीत नहीं है इस लिये प्राक् अशुन्य विन्दु का जो अक्षर स्वरूप है वही प्रणों ॐ कार रूप है कारण कि विम्ब चित्र में और विन्दु क्रम में प्रथम घर में जो प्राक् (०) अशुन्य विन्दु है वही ॐ कार अक्षर प्रणों स्वरूप की अर्धमात्रा का स्वरूप लक्ष्य है कि जो स्वयं ॐ स्वरूप सिद्ध है। क्योंकि दूसरे घर में जो दो विन्दु रेखा के समान हैं अर्थात (।) रेखा आकार है यह (अ) स्वर ही ॐ रूप और ॐ का आकार स्वरूप है। कि जो प्राणी मात्र के शब्द से तथा स्वास की गति से अनुभव होता है जैसे कि " अक्षराणाम कारोस्मि " श्रुति प्रमाण बालक के मुख से प्रथम (अ) ही प्रकट होता है। और इसी (आ) स्वर ही से अन्य स्वर व व्यञ्जन बने हैं। इसी अनुभव से (अ) ही सब भाषा की वर्ण मालाओं में अग्र अर्थात सब से ही प्रथम प्रतीत है। इससे आगे तीसरे घर में जो तीन विन्दु त्रिकोण के (∴) समान हैं वह ॐ के (उ) अर्थात उकार का रूप है। चौथे घर में जो चार विन्दु (□) वर्ग के रूप समान हैं वह ॐ के (म) अर्थात मकार का रूप है। इस प्रकार - • - अ - उ - म - चार पाद आकृति कि जिनमें से " अ - उ - म " तीन अमात्रिक वर्ण का एक अक्षर गति रूप में हृदय से प्रादुभाव होता है वही ॐ कार मेरा अनामय प्राक स्वरूप है। कि जो ओम् भी कहने में आता है। किन्तु ॐ यह चिन्ह ९ खण्ड रूप है कि जो अनामय स्वरूप में बाध सम्बन्ध बोध अमर रूप नाम आकृति है कि जो आप ही अपना होना प्रतीत कर प्रकट प्रमाण में अपने को कर्ता भोक्ता मानती है और वास्तव में ऐसा है नहीं कारण कि मेरा ॐ कार स्वरूप कर्ता भोक्ता नहीं है कारण कि ॐ आकृति सिद्ध ही उत्पति रूप है। स्वयं योग है। स्वयं अभ्यास है स्वयं आसन है। और प्रकट प्रतीत में अनुरूप कल्पना आकृति है। स्वयं प्राणायाम है और स्वयं स्वासा की गति है स्वयं सुरत अर्थात श्रुति है स्वयं स्फुरण का उदय रूप है। स्वयं नाभि केन्द्र स्वयं हृदयाकाश केवल "अ" उदय रूप है। कारण कि प्राणायाम वेला में श्वास की गति पर सुरत लगाने से स्फुरण का उदय होता है तब प्रथम नाभि से हृदयाकाश तक " अ " उदय होता है। और हृदयाकाश से कंठ में वही (अ)(उ) रूप से अनुभव होता है। और ब्रह्माण्ड में वही (अ) अनुस्वार विन्दु रूप होकर लय हो जाता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और उच्चारण क्रिया में मुख का ओष्ठ बन्द होने पर ( म ) रूपमें ( अ ) समाप्त होता है इन अनुभवों से
ॐ कार रूप जो आकृति नाम मात्र प्रकट प्रतीत में प्रकट प्रतीत है वह न तो कर्ता है न भोक्ता है कारण 115
कि अनामय ॐ कार स्वरूप सम्बन्ध में वह आकृति ॐ कार रूप बाध सम्बन्ध बोध रूप है कि वास्तव में वह
है ही नहीं इसलिये वह कर्ता भोक्ता भी नहीं सिद्ध स्वरूप कैवल्य अनामय रूप ही है कि जो प्राक प्रणों
ॐ कार स्वरूप अक्षर रूप है। कारण कि प्रणों अक्षर ॐ " तज्जापस्तदर्थ भावनम " श्रुति प्रमाण तत्
अर्थ में भावी रूप से बाध सम्बन्ध रूप बोद्दा स्वरूप पसार रूपी बीज है। जो सब स्थानों में यथा नाना प्रकार
के मंत्रों में बीज रूप से स्थित है। सो मैं सर्व ही क्रिय आकार कल्पना में सब मंत्रों में ॐ कार रूप हूं और
ॐ के पश्चात शेष मंत्र बाध सम्बन्ध है कि नहीं है। कैवल्य अनामय स्वरूप में शब्द ॐ अक्षरे
तत्व बीज अर्थात स्वभाव शक्ति चमत्कार जल तरंगवत व्याप्त है जैस जल में तरंग व्याप्त है परन्तु
वह हवा की स्पन्दता में प्रतीत होती है। तैसे ही शब्द ॐ के आर्थिक गति में अर्थात अनामय एक
अचल अद्वैत प्राक् विन्दु अर्थात ॐ कार स्वरूप प्रणों अक्षर रूप में स्वभाव शक्ति चमत्कार का
अनुभव होता है उसी अवस्था की गति का स्फुरण नाम है कि जो गोचर रूप होने पर भी अगोचर है। सो
अब इससे आगे विधि क्रिया में विधि के अर्थ का इस प्रकार विस्तार है कि प्राक् अशून्य विन्दु कला रूप है
शक्ति अर्थ है। हो विन्दु कि जिसका नाम चैतन्य है और ( । ) रेखा रूप अर्थात ( अ ) का आकार है यह ( नाद )
स्वरूप है। और तीन विन्दु जो ( ∴ ) जो त्रिकोण रूप विन्दु है और ( उ ) का आकार है इसमें कला अर्थ तो
ज्ञान और तेज के हैं और नाद के अर्थ शक्ति के हैं अर्थात प्रकाश के हैं और विन्दु के अर्थ आकार या रूप या
शकल या आकृति के हैं जैसे कि विधि की पहिली कारण त्रिपुटि में ( • ) कला रूप विन्दु १ और ( । ) नाद
रूप रेखा २ और ( ∴ ) त्रिकोण रूप विन्दु यह तीन भाव सिद्ध हैं इसी प्रकार दूसरी सूक्ष्म त्रिपुटि में ( ∴ )
चार विन्दु ४ कला और पांच विन्दु ( ⁘ ) ५ नाद और ६ विन्दु ( ⁙ ) ही छ विन्दु रूप हैं इसी प्रकार
फिर तीसरी स्थूल त्रिपुटि में ७ विंदु ( ⁙ ) ७ कला और ८ विन्दु ( ⁘ ) ८ नाद और ९ विन्दु ( ⁙ )
९ विन्दु ही प्रकट प्रतीत हैं किंतु इनके एकत्र होने से इसवा शून्य विन्दु ( ० ) विन्दु स्थूल देह प्रत्यक्ष
प्रतीत है इसी प्रकार देह से बाणी और बाणी से वेद निकलता है इसलिये प्रथम कला है। कला से नाद
तथा शब्द और शब्द नाद से वेद का रूप निकलता है। सो वेद वाणी के अर्थ यथा नाद के बोध का नाम
है इसप्रकार हरएक वाणी अर्थात नाद शब्द का वेद रूप और वेद नाम है। सो अभ्र रंध्र अम्बर गगन
पूर्ण यह पांच नाम एक ही प्राक् कला अशून्य विन्दु के हैं कि जो पंच मात्रा कहने में आते हैं। अर्द्ध मात्रा का
नाम दल है और इन्दु कर चन्द्र कुं मृ भूमि धृति कि यह सात नाम एक ही प्राक् अशून्य विन्दु ( अ ) कला
सम हैं और अश्वि दस्र यम कि यह तीन नाम एक ही रेखा आकार अर्थात दो विन्दु के हैं यही नाद
का रूप हैं। और गुण अग्नि लोचन राम कि ये चार नाम तीन विन्दु त्रिकोण सम ( उ ) अकार के
हैं कि जो वाणी समवोध अर्थात वेद का स्वरूप है वेद का रूप हैं चार विन्दु रूप ( म ) का आकार कि
जो समाप्त रूप है अर्थात चार विन्दु में अब्धि १ कृत २ - गो ३ युग ४ सागर ५ वेद ६ कि यह ६
नाम एक ही अङ्ग रूप के अर्थात ६ विन्दु के हैं कि जो जिन तथा सिद्ध शब्द के प्रकट अर्थ हैं। कि
जिनसे स्थूल देह प्रत्यक्ष होता है। इसलिये ऊपर वर्णी ९ के आकारों में चार का नाम अन्तः करण है
कि जो चित १ अहं कार २ बुद्धि ३ और मन ४ यह चारों अन्तः करण हैं। इस के अन्य शेष के जो पांच

CC-0.Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

रहै वही पंच महाभूत हैं कि जिनको इषु अर्थात पंच ब्रह्म अर्थात अनामय स्वरूप आत्मा प्राक स्वरूप की पांच कला कह्या जाता है। और इषु १ प्राण २ बाण ३ - शर ४ सायक ५ उन पाचों कला के पांच नाम हैं कि जिन से एकही अर्थ निकलते हैं। कारण ये है कि अनामय स्वरूप प्रणों अक्षर ॐ शब्द नाम की जो ५ कला हैं उनमें पहिली कला का नाम जीवात्मा[१] है। दूसरी कला का नाम आत्मा[२] है। तीसरी कला का नाम भूतात्मा[३] है। चौथी कला का नाम विश्वात्मा[४] है। पांचवी कला का नाम परमात्मा[५] है। इन पाचों कलाओं में प्रथम जीवात्मा १ विश्वात्मा २ और भूतात्मा ३ ये तीनों कला अनामय अद्वैत स्वरूप के अंश भाव अर्थात आभास सम्बन्ध का नाम है कि जो माया के २४ अंश का अधिष्ठान रूप जो प्रकट प्रतीत जगत है माया रूप है माया ही माया है भ्रम है धोका रूप है। आत्मा चैतन्य के प्रकाश का नाम है कि जो विश्वात्मा के अंश को प्रकटाता है और देहधारी में इसका लक्ष अहंकार है और यही माया के सत्रह अंश का साक्षी है। भूतात्मा पंच महा भूत और उनके गुणों के समूह का नाम है कि जिन से सर्व जड़ वस्तुओं की उत्पति है। विश्वात्मा बुद्धि का नाम है कि जो बोध रूप है। परमात्मा अनामय स्वरूप शुद्ध ब्रह्म अद्वैत अखंड स्वरूप का नाम है कि जो अगम असंग स्वरूप है। जीवात्मा भ्रम रूप शंका संदेह का नाम है। कि जो बाध सम्बन्ध बोध रूप है। यह प्राक अशुन्य विन्दु से विधि के अंकों में सर्व उत्पति क्रम का वर्णन है। कि जिसमें सर्व भेद अभेद रूप है।

(१२) निषेध क्रिया में १ से १० अंक तक की अंशांशि और संधि की युक्ति अपार शब्द से आरम्भ होती है। कारण ये है कि विश्व चित्र में जहां अपार का प्रकाश रूप है वही अशुन्य प्राक् विन्दु और एक अंक अंशि रूप है कि जिसने चैतन्य की संधि द्वारा अहंकार को व्यक्त किया है। दूसरे घर में कि जहां ९ का अंक है दो विन्दु से रेखा बनती है यही २ अंक अंशि रूप है कि जिसने अहंकार की संधि द्वारा बुद्धि को प्रकाश दिया है। तीसरे घर कि जहां ८ का अंक है तीन विन्दु से त्रिकोण गति को प्रकट करके त्रिअंशि रूप से बुद्धि की संधि द्वारा मन को उत्पन्न किया है। इसी प्रकार तीन अंशि तीन संधि और तीन अंशों में नव अव्यक्त शक्तियों के प्रभाव से दसवाँ स्थूल बनता है। और आकार अर्थात आकृति स्वरूप व्यक्त होजाता है। यह दस विभाग स्वभाव के अनुसार ज्ञान के अंग हैं। कारण कि कैवल्य अनामय रूप अभेद रूप से सर्वत्र व्यापक है। सो नाम मात्र तीन संधियों ने एक अंशि स्वरूप प्राक् रूप को केवल १ चैतन्य २ और अहंकार ३ बुद्धि ४ और मन ५ इन पांच अंशि स्वरूप में पांच कला की भांति कि जो मिथ्या प्रतीत है प्रतीत कराया है। कारण कि इन से पंच मात्रा और ज्ञानेन्द्रियों की उत्पति हुई है। और इन पांच अंशियों का प्रति बिम्ब पड़ने से पांच महाभूत प्रकट हुए हैं। कि जिन से पांच प्राण और पांच कर्मेन्द्रियों की उत्पति है। इस प्रकार पांच विम्ब और पांच प्रतिविम्ब के संयोग से दस आकार बनते हैं और इन दश आकारों का नाम दिक अर्थात दशरथ है दशरथ का अभिप्राय यह है कि दश आकारों से एक आकार जो नाम रूप वाला बनता है उसी को रथ कह्या जाता है। रथ स्थूल देह का नाम है सो प्राणी मात्र से हर एक प्राणी मनुष्य पशु पक्षी आदि एक दशरथ रूप दशरथ स्वरूप राम का पिता है। यहां राम का अभिप्राय बुद्धि[१] अहंकार[२] चेतन[३] शक्ति से है। कारण कि यही तीन शक्ति सर्वज्ञ और व्यूह रूप होने पर भी एक ही स्वरूप हैं। जैसे कि मेरे अनामय स्वरूप का अभेद रूप से यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि १ से ८ तक आठ अंशि होते हैं और २ से ९ तक आठ संधियां पड़ती हैं। और तीन[३] से दश[१०] तक आठ अंश बनते हैं इन सब को जोड़ने से माया २४ कला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिन[२४] नाम अर्थात सिद्ध[२४] स्वरूप मेरे एक अनामय रूप का कि जिसका तत्व[२५] नाम है एक ही अव्यय अजन्य स्वरूप है निष्कलङ्क रूप है। कि जिस स्वरूप में माया की २४ कला से अंशियों का सात्विक भाव है संधियों का राजसी रूप है और अंशों का तामसी आकार है। और इस प्रकार सत रज तम गुण सहित मेरा (म)[२६] नाम एक ही स्वरूप है। अंशि संधि और अंशमें से प्रत्येक के आठ आठ रूप होने के कारण अष्टि का प्रकृति नाम हुआ है और अष्टधा स्वरूप बना है। और इस स्वरूप के गज[८] अर्थात काल और द्विप[८] अर्थात अन्धकार नाग[८] सर्प अर्थात वायु और भुजङ्ग[८] सांप जैसे नाम पड़े है। यथा उपर वर्णी आठ अंशियों में से प्रथम चार में देश और काल का भेद नहीं है अर्थात वह एक ही लक्ष को चार प्रकार दिखाते हैं। और उनका विस्तार इस प्रकार पर है कि (०) बिन्दु मेरे अनादि परमात्मा अनामय स्वरूप का चिन्ह है। और इस चिन्ह का लक्ष शुद्ध ब्रह्म, महेश्वर कैवल्य आदि शब्द हैं और चिन्ह का जो आदेश है वह शङ्ख नाद द्वारा प्रकट होता है कि उसका शब्द तथा वाणी नाम है। दो बिन्दु अर्थात रेखा का आकार मेरा ईश्वर्य चक्रधारी प्रकट स्वरूप है। और इस स्वरूप का विष्णु नाम है। तीन बिन्दु त्रिकोण रूप में अधिष्ठान रूप से मेरा ही शिव स्वरूप है कि जो काल रूपी गदाधारी है। चार बिन्दु अर्थात वर्ग चतुर्कोण रूप में मेरा ही ब्रह्मा ब्रह्म लक्ष स्वरूप का दृश्य है कि जो विद्या रूपी पद्म से शोभित है। इस से आगे ५ से ८ तक दूसरे चार अंशियों ने चतुष्ट अन्तः करण का रूप धारण किया है। आठ संधियों के पड़ने से पंच मात्रा और ज्ञानेंद्रियें अर्थात दस शक्तियां उत्पन्न हुई हैं। और आठ अंश के प्रभाव से पंच कर्मेंद्रियां और पंच महाभूत अर्थात १० स्थूल आकार दृष्टि हुए हैं इसप्रकार ४ अन्तः करण ५ तन्मात्रा ५ ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेंद्रिय और ५ महाभूत के समूह से माया के २४ अंश सिद्ध नाम से प्रसिद्ध हुये है कि वैजयंतीमाला के मणियों के समान एक तत्व[२५] सूत्र में कि जिस्का साक्षी २६ वा परम तत्व अनामय मेरा स्वरूप है पिरोय हुए हैं। अभिप्राय यह है कि सूत्र नाम मूल प्रकृति प्रधान जड़ है और पुरुष रूप का आभास अर्थात प्रतिबिम्ब है इससे जो ब्रह्मांड का वंश वृक्ष फूटता है। इसी वृक्ष का स्वयंभू मनु नाम है कि जिस के पुरुष १ और स्त्री प्रकृति अर्थात माया १ यह दो नाम हैं और दोनों का अनादि रूप है किंतु दोनों ही अव्यक्त तथा सूक्ष्म सत रज तम माया का एक रूप अर्थात अव्यक्त १ प्रकृति का नाम और महान १ बुद्धि का नाम और अहंकार ३ व्यक्त सूक्ष्म का नाम और पंचमात्रा सूक्ष्म आकृति का नाम ये आठ नाम अष्टधा प्रकृति अविकार रूप के हैं और ५ ज्ञानेंद्रिय व ५ कर्मेंद्रिय व ५ महाभूत और १ मन यह १६ नाम विकारमा प्रकृति के नाम हैं। किंतु नहीं विकारमान ही अविकार रूप हैं कारण कि स्वयंभु मनु स्वयं साक्षी स्वरूप मे लय रूप है कारण कि मैं तू का भाव अर्थात चर्म नेत्र से दिखने वाला सारा जगत अर्थात सृष्टि के पदार्थों की अनेकता सत्य नहीं है। इन सब में एक ही शुद्ध और नित्य परमतत्व पर ब्रह्म मेरा है। और उसी की माया से सर्व इन्द्रियों की भिन्नता का भास हुआ करता है। आत्मा और परमात्मा प्रब्रह्म एक ही नाम और एकता का स्वरूप पूर्ण ज्ञान रूप स्वयं मोक्ष स्वयं अनुभव सिद्ध स्वयं अद्वैत और प्राणी मात्र का आत्मा अर्थात जीवात्मा स्वयं प्रब्रह्म रूप है। कारण सिद्धान्त यही है। कि एक शुद्ध बुद्ध नित्य मुक्त प्रब्रह्म के सिवा दूसरी कोई भी स्वतंत्र और सत्य वस्तु नहीं है। दृष्टिगोचर भिन्नता मानवी दृष्टि का भ्रम या माया की उपाधि से होने वाला आभास है और माया कुछ सत्य वा स्वतंत्र वस्तु नहीं है वह मिथ्या है। द्रव्य पशु और अन्य सब वस्तु ब्रह्ममय मेरा ही अनाम स्वरूप है कि जो साक्षी रूप है। असंतोष माया की गति है और संतोष स्वयं सुख स्वरूप है इसमें कनिष्ठ स्वरूप अर्थात मूल प्रकृति अष्टधा है। सो मेरा जो अनामय स्वरूप है यह न तो प्रकृति है न विकृति इसी का नाम एक पुरुष पर ब्रह्म का श्रेष्ठ स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

118

अर्थात पराप्रकृति १ रूप १ नाम है। और मूल प्रकृति का अपरा प्रकृति दूसरा नाम है। और ७ प्रकृति विकृति अर्थात महान १ अहंकार १ तन्मात्राएँ ५ इन सातोंका मेरे परब्रह्म स्वरूपमें कनिष्ठस्वरूप अर्थात अपरा प्रकृति के आठ स्वरूप अष्टधा प्रकृति तीसरा नाम है। और १६ विकार अर्थात मन १ ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेन्द्रिय ५ पंच महाभूत ५ यह चौथा एक मन रूप अर्थात १२ विकारों को अपने अन्तर लिये हुए मेरा चौथा नाम है। कि जो गुणा गुणेषु वर्तन्ते - प्रमाण अनुकूल सृष्टि उत्पति क्रम रूप है। और वह क्या है कि — एकमेवाद्वियंनेह नास्ति किञ्चिन - श्रुति प्रमाण एक मेरा ही स्वरूप है उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं यदि दूसरी कोइ वस्तु है तो वही नाशमान है। अर्थात नहीं है। केवल मैं ही सर्व साक्षी स्वयं सत स्वयं तेज स्वरूप हूं कि जो चार स्वरूप चार नाम रखने पर भी अद्वय रूप हूं और चतुर्भुजी स्वरूप हूं कि सर्व आकारों को एक रस प्रकाश देता हुआ नित्य निराकार और असंग बना रहता हूं। कारणकि मेरे अनामय स्वरूप से मेरे स्वरूप की आकृतियों की इसप्रकार लहरें उठती हैं कि जिस प्रकार भरपूर ताल में एक कंकरी के पड़नेसे एक और विशेष के पड़ने से विशेष जलकी लहरों का चक्र उत्पन्न हो अन्त तक बढ़ता चला जाता है और अनेक चक्र उत्पन्न हो परस्पर मिलजाते हैं। और अनेक आकार बनाते हैं। किंतु सर्व विकारमान ही होते हैं इसी प्रकार यह सर्व सृष्टि विकार मात्र आकारों का विस्तार केवल तीन त्रिपुटि और तीन गुण का भेद है कि जो किसी कालमें भी स्वरूप के अन्तर नहीं है। तीन गुण और तीन त्रिपुटि हजार रूप अंशि देह को रचकर उसमें मेरे स्वरूप के प्रतिबिम्ब का भास प्रकाश पड़नेसे उसमें चेतन्ता अर्थात चर गति को उत्पन्न करती हैं। कि जिसमें मेरे अनंत रूप का प्रतिपादक भी प्रत्यक्ष से निश्चय होजाता है। और वह इस प्रकार पर है कि अङ्क ९ हैं और छिद्र ९ हैं और नन्द स्वरूप ९ हैं और इन २७ का (भ) नाम है और इसप्रकार सतोगुण १ शून्यस्वरूप है कारणकि सतोगुणका भाव कारण रूप में कि जो ९का अङ्क एक अङ्क नाम प्रसिद्ध है वही एक (०) विन्दु रूप है। इसी प्रकार रजोगुण भी १ शून्यस्वरूप है कारण कि रजोगुण का भाव सूक्ष्म रूप छिद्र रूप है कि जो ९ का स्वरूप है इस लिये वह भी १ विन्दु का रूप है। इसी प्रकार तमो गुण भी १ शून्यस्वरूप है कारण कि तमोगुण का भाव स्थूलाकार रूप में नन्द रूप है कि जो ९ का स्वरूप है इसलिये वह भी १ ही विन्दुका रूप है इसप्रकार यह तीन (०००) विन्दु एक ही विन्दु (०) का स्वरूप हैं और विन्दु जो है वही मेरे एक अनामय स्वरूप का पूर्ण अर्थात भरपूर अद्वय अद्वितीय १ का प्रत्यक्ष प्रमाण है इस लिये सहस्र शीर्षा पुरुषादि मेरा एक ही अद्वैत रूप स्वरूप है कि जिस रूप के अन्तर नाना रूप हैं। और यह तीन विन्दु ही एक विन्दु स्वरूप में बीज वृक्ष अर्थात माया प्रकृति का मूल प्रकृति अर्थात अपरा नाम है और अपरा ही परा प्रकृति का इस प्रकार एक स्वरूप है कि जैसे मेरा सहस्र शीर्षा पुरुषादि एक स्वरूप है अर्थात

१ कारणमें अंक विन्दु का रूप। केवल[१] - ज्ञात[२] - ज्ञेय[३] - ज्ञान[४] - ज्ञाता[५] - चैतन्य[६] - अनुभव[७] - श्रुति[८] - शब्द[९] - सतोगुण का भाव है
२ सूक्ष्ममें छिद्र विन्दु का रूप। स्पर्श[१०] - रूप[२०] - रस[३०] - गंध[४०] - अहंकार[५०] - चित[६०] - बुद्धि[७०] - मन[८०] - आकाश[९०] - रजोगुण का भाव है
३ स्थूलमें नन्द विन्दु का रूप। पवन[१००] - अग्नि[२००] - जल[३००] - पृथिवी[४००] - समान[५००] - प्राण[६००] - अपान[७००] - व्यान[८००] - उदान[९००] - तमो गुण का भाव है
४ आदि अन्तमें प्राज्ञ रूप स्वरूपमें विन्दु का अर्थ १ है कि जो १[१०००] देह पुरुष नाम है और देह[१०००] का एक ही केवल स्वरूप है। कारण कि अपने इस स्वरूप के वर्णन करने में ऊपर की क्रिया में पंच मात्रा के अन्तर पंच ज्ञानेंद्रियों को और पंच कर्मेन्द्रियों को पंच प्राणों में मैंने मिश्रित किया हुआ है। सो प्रथम प्राक् विन्दु ने अर्थात मैं ने कि मैं अनाम रूप से प्राक् विन्दु रूप हूं ९ अङ्क में अपने सतो गुण भाव को मैं ने फैलाकर प्रत्यक्ष प्रमाण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निर्गुण से सगुण रूप इसप्रकार अपने को बनाया हुआ है कि आदि अन्त में मेरा ही अद्वैत प्राज्ञ निराकार रूप है इसी का नाम कैवल्य है। केवल का ज्ञान नाम है। ज्ञान ज्ञेय का स्वरूप है। ज्ञेय ज्ञान का नाम है। ज्ञान ज्ञाता का लक्ष है ज्ञाता चैतन्य का स्वरूप है। चैतन्य अनुभव का नाम है। अनुभव का श्रुति रूप है। और श्रुति शब्द का स्वरूप है और शब्द प्राज्ञ स्वरूप का अश्रिव रूप है अश्रिव २ का नाम है २ के गोचर और अगोचर दो नाम हैं इसलिये गोचर और अगोचर दोनों प्रकार से जो दृष्ट व अदृष्ट रूप है वह मेरा ही स्वरूप है और यही १ प्राज्ञ (०) बिन्दु का अर्थ है कारण इसी प्रकार द्विदु रूप अर्थात रजो गुण भाव में सूक्ष्म मेरे प्राज्ञ बिन्दु का विस्तार इसप्रकार है कि अनादि प्राज्ञ मेरा कैवल्य बिन्दु नाम है और केवल बिन्दु १ का आकार है और आकार स्पर्श भाव रूप में १ का बिन्दु रूप है इसलिये स्पर्श पर १ और ० का आकार है कारण कि स्पर्श प्राज्ञ बिन्दु का एक स्वरूप है और स्वरूप बिन्दु रूप है इसलिये प्रकट प्रतीत को प्राज्ञका १ अङ्क और स्पर्श स्वरूप का बिन्दु वास्तविक सार की प्रतीत को उस पर लगाकर उसे मैं ने १० का रूप दिया है सो इसी भांति केवल से स्पर्श स्पर्श से रूप रूप से रस रस से गंध गंध से अहंकार और अहंकार से चित चित से बुद्धि बुद्धि से मन और मन से आकाश ९ द्विदु रूप में प्रकट हुआ है। इसी प्रकार प्राज्ञ १ का आकार और केवल ० का रूप और स्पर्श ० का रूप स्थूल नन्द बिन्दु रूप में कि जो तमो गुण का भाव है १०० अङ्क में प्रसिद्ध रूप है एक ही प्राज्ञ रूप पवन से अग्नि अग्नि से जल जल से पृथिवी पृथिवी से समान समान से प्राण प्राण से अपान अपान से व्यान व्यान से उदान प्रकट होके और सत रज तम को ००० बिन्दु को धारण कर देह रूप में १००० चार स्वरूप का एक ही मेरा पुरुष रूप है कि जो भेद अभेद रहित स्वयं स्वतंत्र है सो जिसप्रकार एक के अङ्क पर तीन बिन्दु के अधिक होने से १००० का अंक बनता है इसी प्रकार और बिन्दुओं के बढ़ाने से मुझे आप ही मेरा अनामय स्वरूप अनंत संख्या वाला सिद्ध होता है कि जिस को मनुष्य बुद्धि ग्रहण करने से तृष्णा कारण असमर्थ रहती है। क्योंकि मैं अप्रमाण और प्रत्यक्ष से तीन भाव वाला अपने स्वरूप दर्शन को आप ही दृष्टा और दृष्टि का हेतु होकर निर्गुण प्राक् बिन्दु स्वरूप हूं। कि जो स्वरूप गुण अवगुण रहित है। और भाव को प्राप्त होने वाला प्रतीत होकर प्रत्येक दृश्य का त्रिगुणात्मक रूपी ही प्रतीत होता है। कारण इसका यह है कि जिस प्रकार सृष्टि की पृथक पृथक वस्तु को सिद्ध करने के निमित्त उस के तीन भाव बनाने की अविरयक्ता होती है। कारण कि १-३-५- के भेद से इस प्रकट प्रतीत सृष्टि की सब वस्तु नाम रूप को प्राप्त होकर किसी न किसी मूर्त अर्थात आकृति में अपना लक्ष्य और गुण प्रकट कर रही हैं अभिप्राय यह है कि इस प्रकट प्रतीत सृष्टि की कोई वस्तु स्वतंत्र नहीं है जो कोई भी किसी नाम रूप से प्रसिद्ध है वही किसी अन्यतन तीन वस्तुओं से कि जिनमें १-३-५- का भेद प्रथम ही मिश्रित होता है वह पदार्थ बनता है। इसी का नाम "तत्व विज्ञान" अर्थात सायन्स अर्थात फिलस्फी है इसी का नाम न्याय[1] और इसी का नाम मीमांसा[2] और इसी का नाम वैशेषिक[3] इसी का नाम योग[4] और इसी का नाम सांख्य[5] और इसी का नाम वेद[6] अर्थात वेदान्त है। इसी के भिन्नता गौतम[1] जैमिनी[2] कणाद[3] पतञ्जली[4] कपिल[5] और वेदव्यास[6] नाम हुए हैं जो प्रकट प्रतीत में पृथक पृथक कर के भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं किन्तु सब अभेद रूप एक ही वस्तु के नाम हैं मेरा भेद कुछ नहीं है। जो भेदाभेद है वही मिथ्या है। कारण कि सृष्टि पंचीकरण है और पञ्चीकरण का इतना ही भेद है कि जो प्रत्यक्ष तथा अप्रमाण है कारण कि किसी एक ही गुण के पदार्थ को उत्पन्न करने के लिये तीन वस्तु से एक वस्तु का १ दूसरी का २ और तीसरी के ५ भाग मिश्रित करते हैं एक नवीन नाम रूप की नवीन वस्तु बन जाती है कि जो इस का रूप है कि जो बिन्दु रूप में नव शक्ति के गुप्त होने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१२० एक नवीन आकृति आकार बना है इसी का अपंचीकरण नाम है कि जो पञ्चीकरण रूप है। और यह पंचीकरण स्वभाव का पदार्थ इसी रीति से अनेक नाम रूप में अनेक प्रकार का है। जैसे काला और सफ़ेद रंग मिल कर नीला और काला और पीला रंग मिलने से हरा प्रतीत होता है इसी प्रकार पृथिवी में अनंत कोटि बीजों की जातियां हैं। सो बीज एक ही वस्तु का एक अंश रूप है जब इस में पानी दूसरी वस्तु का तीन अंश और पृथिवी तीसरी वस्तु के ४ अंश का मेल होता है तबही वह पंचीकरण एक वस्तु का बीज अंकुर बन कर फूलता है। इसी प्रकार पंचीकरण जो वस्तु है अर्थात अण्डज[१] जरायुज[२] स्वेदज[३] आद्भिज इन सब का बीज पृथिवी और पानी है यही सृष्टि की रचना का अद्भुत चमत्कार है। सो इसी प्रकार से चार खानि चार वाणी चौरासी लाख जीव योनि तीन लोक १४ भुवन सात दीप नव खंड[४] पिंड ब्रह्मांड निर्मित हुआ है। इस लिये पञ्चीकरण का अपंचीकृत होने पर भी जड़ पदार्थ नाम है सो जड़ पदार्थ से जड़ पदार्थ अर्थात शरीर ही कि जो देह नाम है उत्पन्न होते हैं कि जो उत्पत्ति की भांति विकार मान हैं स्वर्ण रूपा हीरा आदि सब पंचीकरण हैं और विकार मान हैं और स्वयं तीन गुणों की तीन गुण भेद वस्तु के १-३-५ अंश के भेद से एक नाम रूप में रूपान्तर हुए हैं इसी प्रकार देह रूप नाम में जितने प्राणी हैं उन सब में चार शक्ति में चार अंश एक अंश में एक रस मेरे एक अनामय प्राक स्वरूप का ही आभास है। कारण कि तेज प्राक् बिन्दु[५] स्वयंभ जल स्वयं अम्र स्वयं अग्नि आदि की विधि क्रम निषेध क्रम से उलटी सीधी एक रस अर्थात अग्नि जल पृथिवी इन्ही तीन तत्व वस्तु से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसलिये सृष्टि के त्रिवृत्करण होने से जगत की अनेक नाम रूपात्मक वस्तुएँ निर्मित हुई हैं। सो जिस प्रकार दीपक की लो में अर्थात ज्योति में जो लाल रंग है वही सूक्ष्म तेजो रूपी मूलतत्व का परिणाम है जो सफ़ेद अर्थात शुक्ल रंग है वही सूक्ष्म आपः तथा जल तत्व का परिणाम है। और जो कृष्ण अर्थात काला रंग है वह सूक्ष्म पृथिवी तत्व का परिनाम है। इसी प्रकार पृथक पृथक वस्तु में यही तीन सूक्ष्म रूप होते हैं प्रकट प्रतीत में प्राज्ञ शून्य विन्दु अर्थात मेरे अनादि स्वरूप के अर्थ कुछ नहीं के हैं। किंतु ऐसा कहना किसी आशय से नहीं बनता है कारण कि विन्दु का होना ही स्वयं होना प्रमाण है। सो जब प्रत्यक्ष में विन्दु कोई वस्तु है तो उसपर उसके न होने की शंका प्रत्यक्ष के विरुद्ध है प्राज्ञ विन्दु अनामय स्वरूप होने कारण मेरा नाम है कि जिस से मैं अपने अव्यक्त लक्ष को कि जहां इन्द्रियों की गम नहीं स्वतंत्र बना हुआ पूर्ण रूप में व्यक्त भाव को प्रकटाता हूं कि जो नाशमान है। प्राक् शून्य विन्दु व्यक्त रूप में संसार और अव्यक्त रूप में प्राज्ञ विन्दु है और इसके सिवा और कुछ कहने में नहीं आता है। तात्पर्य ये है कि प्राज्ञ विन्दु वह है कि जो दृष्टि गोचर नहीं हुआ करता किंतु जब किसी १ के स्वयं अङ्क पर आता है तो उस को दश गुणा बना देता है। कारण इसका यही है कि शून्य विन्दु में ९ अंक कि जिन से सृष्टि रचना है इसी प्रकार गुप्त हैं कि जैसे अग्नि में दाह और जल में शीतलता की स्वाभाविक शक्तियां हैं। इसी प्रकार मेरे अद्वैत अनाम स्वरूप में जगत के व्यक्त करने का अनादि स्वभाव परा प्रकृति है। कि जिस से अपरा प्रकृति की उत्पत्ति है। मैं कैवल्य अनादि अनन्त तो वर्तमान अवस्था का साक्षी हूं। कि जिस प्राज्ञ रूप में न तो आदि का संकल्प है और न अन्त की कल्पना हैं। कारण कि संकल्प और कल्पना दोनों ही मिथ्या हैं। मैं एकलंस[१०००] अपने ज्ञान चक्षु से अपने प्राक अनाम स्वरूप को नित्य एक रस देखता हूं। कि जिस में किसी प्रकार से आदि और अंत की कोई भावना नहीं है। मैं स्वयं ज्योति और स्वयं प्रकाश हूं। सर्व सृष्टि की उत्पत्ति और लय मेरी माया के अन्तर्गत है मेरे प्राज्ञ स्वरूप से चेतन्य प्राण [illegible] रूप में ही नव देह धारी है। कारण कि प्राज्ञ विन्दु मेरा वह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

स्वरुप है कि जो अनामय अकाल अनादि अनंत है। कि जिसमें रंग रंग की इस प्रकार भावना नहीं है जैसे कि। १२।
एक पृथिवी का रंग मिटयाला है और इसी को कुवेर देवता अर्थात कुवेर रुद्र कहा जाता है या दूसरी प्रकार से जल के अन्तर पृथिवी का वासा है और जल और पृथिवी दोनों का एक वरुण नाम है। या कि अग्नि के मध्य वरुण का वास है और इस को प्रजापति त्रिलोकी और स्थूल त्रिपु कहा जाता है। या वायु का रंग हरा है और इस के मध्य ही प्रजापति का निवास है और यह मरुत देवता कहने में आता है। या आकाश का रंग नीला है और मरुत देवता इस के अन्तर गति है और यह रुद्र ही कहा जाता है। या मन[१] आकाश[२] पवन[३] इन तीनों का एक नाम इन्द्र है और इन्द्र देवता नाम से यही राजा इन्द्र अर्थात सूक्ष्म त्रिपुटि है। या स्थूल और सूक्ष्म दोनों त्रिपुटि बुद्धि के माहिं गुप्त हैं और नाम इसका वासुदेव है। या बुद्धि अहंकार में और अहंकार चेतन चकर में वास रखते हुए कारण त्रिपुटि का रुप कहने में आता है। या पिंड ब्रह्मांड में हुवा इड़ा रेखा का नाम कि जो पृथि के केन्द्र से चैतन्य के चक्र तक पहुंचती है देश कहने में आता है। या ब्रह्मांड पिंड चक्र रुप कि जो मिटयाले हल्के नीले और लाल तथा हरे तथा गहरे नीले तथा धुंवे तथा पीले तथा कत्थई और श्वेत रंग आदि जैसे चक्रों में चक्रित है काल चक्र नाम रखते हुए काल चक्र कहा जाता है। और सर्व सृष्टि और सृष्टि के रंग इन्हीं रंगों और ब्रह्मांड पिंड के चक्रों के परस्पर मिलाप से बनी है और भाव अभाव वाली प्रतीत होती है। मैं स्वयंही अनाम अद्वितीय प्राक बिन्दु रुप हूं स्वयं श्वेताभा चमकत चमक चपला अर्थात बिली के समान स्वयं तेज स्वरुप हूं बस यही मेरे अनामय निर्गुण स्वरुप का स्वयं सगुण स्वरुप रुप है। कारण कि एक स्वरुप मेरा तो प्रथम मेरे तेज स्वरुप की चमकीली किरणों के प्रकाश का नाम कि जिन्का हल्का लाल रंग है चैतन्य आत्मा है। और लाल और पीले रंगों के मिलाप से जो कत्थई रंग अहंकार का रंग प्रकट होता है यह अहंकार रुप मेरा ही १ विश्वात्मा स्वरुप है। और वसिष्ठ अर्थात पीले रंग का नाम जो बुद्धि तथा वासुदेव है यही मेरा एक तीसरा स्वरुप जीवात्मा रुप है। इसके अन्य जो मन का काला रंग है यही पृथिवी का रंग है और मन का धुवें के समान जैसा रंग बुद्धि के पीले रंग से मिल कर बना है यही मेरा चौथा स्वरुप भूतात्मा है और इसी भूतात्मा के अङ्ग रुप में ६ नाम हैं कि जो पृथक पृथक करके मन १ आकाश कि जिसका नीला रंग है २ और वायु कि जिसका हरा रंग है और जो पीले व नीले रंग से मिल कर बना है ३ और अग्नि कि जिसका लाल रंग है और जो हल्के लाल और पीले रंग के मिलने से बना है ४ और जल कि जिसका हल्का नीला रंग है और जो श्वेत के भास पड़ने से बना है ५ और पृथिवि कि जिसका मटियाला रंग है और जो पीले लाल और काले रंग के मिलने से बना है ६ यह ६ नाम एक अङ्ग रस ऋतु नाम में विभव नाम माया अर्थात भूतात्मा के हैं कि जो पञ्चीकरण रुप में नित्य ही उत्पन्न और नष्ट होती रहने पर भी अमर रुप है। कारण कि सर्व सृष्टि कि जो मेरे तीन स्वरुप चैतन्य[१] आत्मा विश्वात्मा २ और जीवात्मा ३ इन तीन स्वरुपों के त्रिवृत्करण से चौथे भूतात्मा स्वरुप में सब दृश्य प्रपंच पदार्थ रुप से प्रकट प्रतीत है। यह पंचात्मक अर्थात परमात्मा १ चैतन्यआत्मा २ विश्वात्मा ३ जीवात्मा ४ और भूतात्मा ५ इसप्रकार पांच आत्मा करके पंचात्मक नहीं है केवल एक आत्मक भूतात्मक है कि जो अङ्ग रुपी मन से उत्पन्न होने वाली एक पंच भौतिक रुप है। इसलिये मनुष्य देह पंचात्मक नहीं है पंचिकरण कि जैसे अन्य देहात्र हैं पंचमहाभौतिक है। कि जिनके शरीर में पांच परिणाम हैं अर्थात उनमें - त्वक १ मांस २ अस्थि ३ मज्जा ४ और स्नायु ५ यह पांचों अन्नमय रुप पृथिवी तत्व के हैं कि जो कल्पना रुपी मन अर्थात भूतात्मा या माया के विषे हैं कि जो पृथक पृथक अग्नि जल पृथिवी का ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

मिश्रित स्वरूप हैं। और मन की रचना से बनते और नाश होते रहते हैं। इसी मूलात्मा के व्यक्त और अव्यक्त दो स्वरूप हैं कि जिनसे अनेक नाम रूप अचेतन अर्थात निर्जीव यथा जड़ पदार्थ और सचेतन अर्थात सजीव जो प्राणी हैं उनकी उत्पति है। और ये सब मन के द्वारा बुद्धि अर्थात जीवात्मा रूप और बुद्धि द्वारा अहंकार अर्थात विश्वात्मा रूप और अहंकार द्वारा चिति अर्थात चैतन्य आत्मा रूप और चैतन्य आत्मा करके परमात्मा रूप अर्थात स्वयं स्वतंत्र नेजात्मा स्वरूप हैं। भेदा भेद केवल माया दृष्टि का है। और अभिमान से आपने को नाम रूप जाति वाला मान लेने का है और यही प्रपंच है कि जो मन रूपी कर्तव्य अर्थात कर्म रूप से अपने प्रपंच में नरक १ स्वर्ग २ और मोक्ष ३ यह तीन नाम रखता है। अर्थात प्रपंच कर्तव्य कर्म में कामोपभोग को ही पुरुषार्थ मान का अभिमान से आसुरी बुद्धि से दम्भ से या लोभ से केवल शरीर सुख के लिये कर्म करना आसुर मार्ग तथा स्वयं ही नर्क भोगना है। १। और अपने अन्य यथार्थ से प्राणी मात्र में एक ही अपना जैसा आत्मा जानकर कार्य कर्म करना अर्थात मिथ्या कारण के लिये सत्तामें विश्वास न करना अर्थात द्वेष दृष्टि विघ्न में न पड़ना स्वयं ही स्वर्ग भोग करना है। अर्थात स्वार्थ कपट त्याग से कार्य कर्तव्य कर्म करना स्वर्ग भोग करना है और स्वर्ग है। २। और नित्य स्वार्थ रहित हो निष्काम कर्म करना तृप्त हो रहना जीवन मरण फल अफल पुण्य पाप स्वर्ग नरक आदि और मुक्त मोक्ष को भी मिथ्या जानना स्वयं मोक्ष है। ३। कारण कि मूलात्मा माया प्रकृति गङ्गा सागर रूप यह प्रपंच सृष्टि है इसमें इसी प्रकार कि जैसे गङ्गा में लक्षों मुरदे डाले जाते हैं और उनको नोच नोच करके कछु मच्छ आदि खाते हैं और एक बड़ी मच्छी छोटी मच्छी को खा जाती है और उनके ऐसे कर्म अकर्म नहीं और न उनका उन्हीं कोई पुण्य या पाप है इसी प्रकार सृष्टि में रहने वाले सजीव जो प्राणी हैं उनको। उनके संबंधी और अन्य प्राणी अपना भक्ष करते हैं और अपनी पारी में आप भी भक्ष हो जाते हैं इस लिये कर्म अकर्म इनको नहीं

हे मनुइन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र इसप्रकार भाष करते हुए विधि और निषेध को स्पष्ट दिखाते हुए उत्पति सार प्रकट करते और पुण्य पाप फल अफल कर्म अकर्म को सम बताते हुए तू आगे इस प्रकार भाष करता है कि जिस प्रकार विधि और निषेध में उत्पति का मार्ग है इसी प्रकार निषेध रीति में लय युक्ति है।

क्योंकि निषेध में देह १ शब्द २ श्रुति ३ अनुभव ४ चैतन्य ५ ज्ञाता ६ ज्ञान ७ ज्ञेय ८ ज्ञाता ९ और विज्ञान १० अङ्क हैं और यह दश अंक दश भिन्न भिन्न रंगके चक्रों के समान हैं। कि जिनका लय चिंतन इसप्रकार पर है। अर्थात अंकों शब्दों और चक्रों का लक्ष यह है कि प्रथम अंक लय चिंतन के पृथक पृथक अधिष्ठान को दिखाते हैं। और शब्द यत्न की युक्तियों को व्यक्त करते हैं। और चक्र उनके अर्थ को बनाते और रूप को दिखाते हैं जैसे कि प्रमाण है और वह यह है कि—

(१) देह का अर्थ ये है कि ये जीव अवस्थ अर्थात क्षणक बुद्धि अवस्था में सर्व उपाधियों को मायाभ्रम कर के अभिमान से नाम रूप वाली बन कर स्वयं देखती और दिखाती है।

(२) शब्द प्राण का कार्य है जिससे देह की स्थिति है। और यह देह से श्रेष्ठ है कारण यही है कि जो निषेध क्रम महावाक्य हैं। अर्थात "तत् ब्रह्मानंद प्रज्ञानम" आदि महावाक्य हैं इन की धारणा को ही विधि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और इन्द्रियां निर्बल तथा निश्चल हो आधीन होती हैं।

(३) श्रुति शब्द से उत्पन्न है और वह चित का व्यापार है इसी का दूसरा नाम सुरत तथा ध्यान आदि इस सुरत को शब्द पर लगाने से देह का अभिमान दूर हो जाता है और एकाग्रता उत्पन्न होती है।

(४) अनुभव श्रुति के एकाग्र होने पर प्रकट होता है। जिसका नाम ज्ञान चक्षु है उसकी सहायता

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar. Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

से चैतन्य की वह सूक्ष्म आकृतियां प्रतीत होती हैं कि जिन को बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती — १२३

(५) चैतन्य का लक्ष अनुभव से जानने में आता है कारण कि अनुभव चेतन का कार्य है।

(६) चैतन्य अपनी शक्ति द्वारा श्रोता सुनने वाला वक्ता देखने वाला भोक्ता भोग करने वाला कर्ता कर्म का करने वाला धर्ता धारण करने वाला और ज्ञाता जानने वाला सिद्ध होता है।

(७) ज्ञान एक विन्दु है कि जो दो रेखा उत्पन्न करती है कि जिन में से एक नीचे को और एक ऊपर को जाती है नीचे वाली रेखा को ज्ञाता कहा जाता है कि संसार का दृष्टा है ऊपर वाली रेखा का नाम ज्ञेय है कि जो ज्ञेय स्वरूप से ज्ञान का प्रकाश करता है। और इसी से ज्ञान का प्रकाश हुआ है।

(८) ज्ञेय अधिष्ठान ज्ञान त्रिपुटि का है और उस का त्रिगुणात्मक स्वरूप है

(९) ज्ञात अवस्था ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय की एकता का नाम है और जब ये अवस्था उत्पन्न होती है तो स्फुरति नहीं रहती है

(१०) विज्ञान पद परमानन्द सुख का दायक है और वह ज्ञात अवस्था के परिपक्व होने से प्राप्त होता है।

(११) दश रंगी चक्रों में पहला चक्र देह का पृथिरूप है दूसरा जल स्वरूप है तीसरा अग्नि रूप चौथा पवन रूप पांचवा आकाश छटा मन सातवा बुद्धि आठवा अहंकार नवा चैतन्य दशवा निरंजन सर्व उत्पति स्थिति लय स्थान है।

(१२) पृथिवी की जल में जल की अग्नि में अग्नि की पवन में पवन की आकाश में यत्न युक्त लय करने से मन का जो स्वरूप है प्रत्यक्ष देखने और जानने में आता है। और लय युक्ति यही है कि निश्चय से ऐसा विश्वास कर लिया जाय कि पृथिवी नहीं है सो जब पृथिवी नहीं है तो उस के ऊपर के सजीव प्राणी भी नहीं हैं सो जब सजीव प्राणी भी नहीं हैं तो मैं जो नाम रूप देह जाति सम्बन्ध वाला बन रहा हूं नहीं हूं जल है और जल भी नहीं अग्नि है और अग्नि भी नहीं पवन है और पवन भी नहीं आकाश है और आकाश के मध्यस्थ सूर्य्य चन्द्र तारागणादि भी नहीं स्वयं एक भूतात्मा अर्थात मन है। और मन भी नहीं स्वयं एक सप्त भूमिका सत्य बुद्धि ही है अर्थात — ना भूर्भुवः स्वः ना महः जनः तपो मे। प्रत्यक्षं परम सिद्धं ऐकं सत्यं वसिष्ठोऽयम॥ विश्वेशं स्वयं मोक्षं भयनाशनमाद्यं राजं। सर्वेश एको श्रेष्ठ देवं नित्यं कृष्णं सदा शिवम॥ — अभिप्राय ये है कि जब यत्न युक्त से मन बुद्धि में लय करदिया जाता है तो बुद्धि के शुद्ध होने पर ऊपर के तीन आकारों का भेद खुलता है। क्योंकि पृथिवी से बुद्धि तक सात भूमिका हैं सो सातों भूमिका से ऊपर का अर्थात भूः भुवः स्वः महः जनः तपः इन छओं का सातवी बुद्धि भूमिका सत्य में लय होजाता है। कारण कि इस युक्ति का नाम ज्ञान योग है। और एक यही मार्ग है कि जिस का नाम हंस की उड़ान है। कि जिस पर उड़ान मार कर देह जैसे स्थान में निवास करने वाला जीवात्मा हंस रूपी पक्षी कि जो इस देह रूपी पिंजरे में निवास करता है। और अज्ञान से अपने को अल्पज्ञ जीव का रूप अर्थात नाम रूपी देह मान लेता है। इस देह से निकल कर अपने परम पद स्थान पर उड़ जाता है। कारण यही है कि जीव कोई वस्तु नहीं है। नाम मात्र का एक प्रपंच रचन धोका है। सार यह है कि चिदाकाश के दर्पण से सर्व आकारों और चित्रों की उत्पत्ति है। बस एक यही भेद है कि जो ज्ञान से अभेद है। कारण कि — ज्ञानम ज्ञान शिरोमणेः सारं सार बुद्धिरेवच। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥ श्रुति प्रमाण — निश्चय करके सब सारों का सार और ज्ञानों में शिरोमणि ज्ञान बुद्धि है कि जो सत्य ब्रह्म है और जगन्मिथ्या अर्थात प्रकट प्रतीत के जितने पदार्थ हैं अर्थात जो नाम रूप वाली वस्तु हैं सबही मिथ्या और नाशमान हैं। यथा जगत १ जीव २ ब्रह्म अर्थात परमेश्वर ३ नाम रूप इन का नाम माया अर्थात मायातीत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्पन्न होकर प्रकट प्रतीत में प्रतीत होने वाला जगत माया का मिथ्या रूप मिथ्या है। क्योंकि जगत की सभी वस्तु नाम २ और रूप २ दो ही वर्गों की होती हैं - और नाम रूप को ही सगुण माया अर्थात प्रपंच या प्रकृति कहा जाता है। इस प्रपंच से तथा माया से नाम रूप के निकाल डालने पर जो नित्य द्रव्य शेष रहता है। वही निर्गुण है कारण कि गुण के साथ रूप और रूप के साथ नाम रहता है। सो जहां नाम और रूप दोनों नहीं इसी का नाम अनामय निर्गुण नित्य अव्यक्त और जीव और आत्मा और ब्रह्म और पर ब्रह्म और परमेश्वर है कि जो अद्वैत बौद्ध स्वरूप है। पुरुष देह पिण्ड रूप ही का नाम ब्रह्मांड है। सो जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में है और जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है सो जो अमृत और स्वतंत्र चिद्रूपी परब्रह्म है सारी सृष्टि का मूल होकर मनुष्यादि सर्व का आत्मा एवं ब्रह्म एक ही अद्वैत बौद्ध ध्रुव धर्मी है द्वैत धर्म वाला नहीं है। कारण कि ब्रह्म अदृश्य होने पर भी नित्य है। और नाम रूपात्मक जगत दृश्य होने पर भी पल- पल में बदलने तथा नाश होकर फिर बनने और बिगड़ने वाला है। अनामय ब्रह्म से जगत की प्रतिष्ठा अर्थात आधार है और अनामय स्वरूप आप निराधार है कि उसको दूसरे आधार की कोई अपेक्षा नहीं है। इस भेद को इसी प्रकार जान लेने का नाम मोक्ष मुक्ति और अभय रूपी स्वतंत्रता है।

मन माया की ग्रन्थि है कि जिसमें एक ओर से चिदाकाश स्वरूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है। और दूसरी ओर से भूताकाश की चित्र सूक्ष्म रूप से खिंचती है परन्तु मन का स्नेह इन्द्रियादिक और उनके विषयों के साथ इस प्रकार नाना प्रकार से प्रवर्तन किये हुए रहता है। कि जिस प्रकार ग्रहस्थी को अपने परिवार के साथ हित होता है यही कारण है कि भूत आकाश के अर्थात सृष्टि संसार जगत को देखे बिना मन को चैन नहीं पड़ता और मन रूपी भूतात्मा अपनी शून्य अवस्था में ठहर नहीं सकता वह संकल्प द्वारा किसी न किसी विषय में लगा हुआ सृष्टि अर्थात जगत रचना सदा ही करता रहता है। और ऐसा करना उसका कार्य स्वभाव है। सो मन अर्थात भूतात्मा स्वप्न अवस्था में जब उसको जगत के विषयों का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता तो वह अपने मनाकाश में उनकी सूक्ष्म चित्र रचता है और उसी का स्मरण करता रहता है। और मन का मन के विषयों में सदैव मग्न रहने से विषयों का भाव सत्य प्रतीत होने लगता है। और उस पर भूताकाश की चित्र बनकर वह चित्र द्वन्द्व को उत्पन्न करता है। और द्वन्द्व के उत्पन्न होने से द्विधा अर्थात शंका का चित्र प्रकट हो मन के पत्र पर सत् और सत्य के दो भाव का नवीन चित्र बन कर मन द्विधा रूपी दोनों ही आकारों से किसी एक को भी शुद्ध रीती से देख नहीं सका और " ब्रह्मामृतं जगत सत्यम् " श्रुति के सार अर्थ को स्वतंत्र भावार्थ से नहीं पाता कारण कि इस प्रकार एक ही सत् या सत्य शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ होजाते हैं। क्योंकि भेद यही है कि अदृश्य अनामय ब्रह्म नित्य है। और नामरूपी जगत दृश्य होने पर भी अनित्य है। सो आखों से दिखने वाला व्यक्त स्वरूप जो अनित्य है इसी का सत् या सत्य व्यवहारिक अर्थ है। और यही जो नेत्रों द्वारा फिर न दीखे अदृश्य स्वरूप अव्यक्त और नित्य है और इसी का सत तथा सत्य दूसरा अर्थ है। कारण कि जो अव्यक्त स्वरूप है वही सदैव और नित्य है चाहे आखों से भले ही कभी न देख पड़े क्योंकि वही अचल और एक रस है।

सो ऊपर कही हुई लय की युक्ति द्वारा मनाकाश से भूताकाश की चित्र मिट जाती है। और शून्य अवस्था होजाती है। किंतु वह अवस्था सत् व सत्य के पहले अर्थ करके अर्थात आंखों से दिखाई देने वाला नाम रूपात्मक जगत जो प्रकट प्रतीत में सत्य प्रतीत है सत लगता है और अव्यक्त अर्थात आंखों से न दिखने वाला पर ब्रह्म अनामय स्वरूप कि वास्तव में सत है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आरवों से न हिरवने कारण सत जगत के स्वयं जगत के विरुद्ध असत अर्थात असत्य प्रतीत होता है इस लिये मन की शुन्य अवस्था मन को नहीं भाती और मन के लिये उसकी शुन्य अवस्था कि जिसका नाम त्यत है अर्थात वह अवस्था कि जो व्यक्त सत दृश्य सृष्टि से परे है। अर्थात त्यय कि जिसका नाम अनृत भी है द्विधा का रुप है। क्योंकि अनृत शब्द का अर्थ जो झूट या असत्य का लगाया जावे तो भी नहीं बनता कारण कि अनृत नाम मेरे अनामय स्वरुप का है। इस लिये मन ही द्विधा का स्वरुप है कि जो लय युक्ति शुन्य अवस्था के प्राप्त होजाने पर भी अपनी मन रचना की रचन चित्र शंका से अनृत ब्रह्म स्वरुप चित्र की ओर जाने से इसी प्रकार भागता है कि जैसे कोई जंगली हिरण रस्सी से बंधा हुआ अपनी सर्व बंधन तुड़ाकर जंगल को भाग जाना चाहता है। सो इसी भांति मन शुन्य अवस्था से इन्द्रियों और विषयों की ओर दौड़ता है और अत्यन्त बल करता है। और इसी का नाम गुण प्रकृति अर्थात संस्कार का भाव प्रभाव है। कारण कि संस्कार जिसका नाम है वह किसी पूर्व जन्म के कर्म फलों के भोगों की फल भोगना का नाम नहीं है क्योंकि आवागमन नहीं है इसका कारण अभिप्राय और प्रयोजन यही है कि चैतन्य अव्यक्त स्वरुप से जिस प्रकार की प्रकाश करने वाली किरणें फूटती हैं। उसी का नाम कर्म है उसी का नाम संस्कार है। और इन प्रकाश मान चैतन्य किरणों से जिस प्रकार के पदार्थ अर्थात देह उत्पन्न होते हैं उनका नाम गुण है और रुप है कि जो प्रपंच प्रकृति में एक आकृति है। और इस गुण रुप नाम मात्र व्यक्त आकृति से गुण रुप हो। जिस प्रकार के कार्य प्रकट होते हैं अथवा जिन कार्यों का परिवर्तन होता है इसी का नाम प्रकृति है इस प्रकार जो द्वैत महात्मा महापुरुष अनामय स्वरुप सर्व प्रकार के बंधनों से रहित किसी बंधन में न आता हुआ सर्व मनरुपी माया कार्यों का साक्षी स्वरुप है। दुरव सुरव जिस का नाम है यह अविद्या माया कार्य है। दुरव और सुरव दोनों बातें अहंकार और नामरुप की परिवर्तन प्रतीत अर्थात लौकिक व्यापार अज्ञान के द्वैत भाव से जगत में प्रवेश कर रही हैं। सो द्वैत अज्ञान अर्थात माया से जो कार्य होते हैं उन ही कार्यों का प्रकृति के अनुकूल होना कार्य प्रकृति अनुकूल होना कहा जाता है। कि जिन को प्रपंच में कर्म भी माया परमादी मनुष्य कहा करते हैं। और इस प्रकार मनुष्य मात्र अपने को कर्ता भोक्ता मानते हैं। परन्तु इस यथार्थ बात पर विचार नहीं करते कि हम अद्वैत बौद्ध ध्रुवधर्म्म हैं किसी प्रकार कर्ता भोक्ता नहीं हैं। जगत के सर्व कार्य जो गुण प्रकृति अनुकूल होते हैं होते ही रहते हैं। हम अनुग्रह यामी हैं कि जो प्राज्ञ स्वरुप है कि जिस में मन की स्थिति है। हम सुरव दुःरव दोनों के भोग भोगने से स्वतंत्र हैं प्रकृति आप अपने गुणों का जो भोग है भोगती है बस मन की स्थिति का इतना ही ज्ञान योग यत्न है।

हे मनुनन्दन वेद व्यास राजेन्द्र इस प्रकार भाषकरते हुए नू इस भाष के सार में कहता है कि इस ज्ञान योग यत्न का नाम ही गीता और वेद है और यही प्राज्ञ विन्दु का भेद सर्वया अभेद है। क्योंकि जब मन के पत्र से भूताकाश अर्थात माया की विराट मूर्ति सृष्टि संसार जगत का इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र मिट जाता है तो विज्ञानस्वरुप की रुप मूर्ति देखने में आती है। अभिप्राय ये है कि मन अद्वैत आनंद से शांत हो जाता है और विषयानंद को तुच्छ जान कर फिर उनकी ओर नहीं जाता है। सो जब भूतात्मा अर्थात मन की आसक्ती प्रपंच में नहीं रहती तब मन का नाम हृदय अर्थात बुद्धि होता है और स्थान भूताकाश से ऊपर चिदाकाश होजाता है। और चिदाकाश उस स्थान का नाम है कि आकाश जिसकी पुस्तक है और सूर्य्य चन्द्र तारागण आदि उस पुस्तक के अक्षर हैं और ब्रह्माकृतियां उन अक्षरों की पंक्तियां हैं और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

126

और सकल प्रपंच उन पंक्ति के चित्र हैं। कि जो अंक विधि अनुसार देखने और विचारनेमें आते हैं कि जिन से अंक रेखा गणित लीलावती अर्थात माया सार भेद और ज्योतिष गणित और ब्रह्म विद्या और आकृष्टा और आकर्षण शक्ति विद्या प्रकट प्रकार से मनुष्य के जानेो में आती है। कारण कि चिदाकाश उस अधिष्ठान केवल अनामय स्वरूप मेरे अखंड अद्वैत स्वरूप का नाम है कि जो एकरस इस रूप का आप ही अपने अधिष्ठान और स्वरूप का सर्व साक्षी स्वरूप है। और जिसको किसी प्रकार से किसी प्रमाण की अविश्यक्ता नहीं नहीं है। कारण यह है कि इस मेरी पुस्तक के अक्षर स्वरूप रूप का किसी काल उदय और अस्त नहीं है और न किसी प्रकार का ग्रहण तथा त्याग इस मेरे अनामय स्वरूप के विषे में है। सूर्य चन्द्र को ग्रहण लगना एक उपाधि रूप आकृति का उत्पन्न होकर जन्म लेना है। और सूर्य चन्द्र का ग्रहण लगने से मोक्ष होना उपाधि रूप आकृति का नष्ट होकर मरना है और यह जन्म मरण मेरे अनामय स्वरूप के गुप्त लक्ष्य भाव का वह प्रकट अर्थ है कि जो अनिश्चय रूप से इन सूर्य चन्द्र के ग्रहण और उग्रहण का अभिप्राय है। कि प्रकट प्रतीत में सूर्य चन्द्र को ग्रहण लगना और फिर उस ग्रहण से मोक्ष होना प्रकट प्रतीत में एक निश्चय बात है इसी प्रकार प्राणी मात्र का जन्म लेना और मरना भी निश्चय बात है। किंतु यह निश्चय ही तत्त अन्तःकरण में अनिश्चय रूप है। कारण यह है कि जिस प्रकार मनुष्य अपने को कर्म कर्ता और उस कर्म का फल भोक्ता और कर्म अनुसार अपना मरना और जन्म लेना भ्रम अज्ञान से मान कर इस अनिश्चय बात को सत्य और निश्चय कर मानता है इसी प्रकार अनिश्चय बात ग्रहण और उग्रहण को निश्चय करके सत जानता है। सो जिस प्रकार से सूर्य चन्द्र को ग्रहण लगने और उग्रहण होने का भ्रम मात्र एक अनिश्चय बात का नाम मात्र दृष्टि भेद में निश्चय रूप धोका है इसी प्रकार दृष्टि भेद में जन्म लेना मरना और कर्म करना और कर्मों का फल भोगना अनिश्चय बात के भ्रम फंद में पड़कर अनिश्चय बात को सत्य और निश्चय कर के मानना धोके में पड़कर धोका खाना और अपने कारण सार स्वरूप ज्ञान को भूल जाना है। और इस प्रकार धोखा खाकर सर्वज्ञ से अल्पज्ञ बनना और उन अहंकारी नाम रूप को प्रेम करने वाले असुरों की आधीनता का ग्रहण करना है कि जो अपने को उच्च और दूसरों को नीच कहकर द्वैत भेद भाव उत्पन्न कर अपने शरीर सुख भोग के लिये मिथ्या नाम रूप के इतिहास बनाते और असत्य भांति की शिक्षा देकर हम्मी अभिमानी बना अपनी आधीनता बाहर न निकलने देने को अनेक प्रकार की प्रपंच रचना से उस प्रपंच रचना के जाल में फांस कर अपने प्रपंची नीति न्याय वेदादि के भारी ग्रन्थों के रूपकमय चित्रों का भय दिखाते और स्वर्ग नरक दुःख सुख कर्ता भोक्ता जैसे पाखंड फन्दों की फांसी बनाते और कल्पना की भ्रम फांस को गले में डाल महाबीर से भय खाते हुए मेघनादी आसुरी नाद बजाते हैं। अर्थात ये नाम रूप को इस प्रकार प्रेम करके प्रपंच संसार में अपनी धाक बिठाकर संसार पर आसुरी हुकम लगाकर और अपने नाम रूप का सिक्का चला कर संसार को डंड देने और अपने अधिकार बाहर न निकलने देने को उन के रचनेहुए निमित्तक नीति न्याय जो सब भ्रम मात्र होते हैं वह अपने लिये नहीं हुआ करते दूसरों को डराने और उनको डंड देने के लिये ही हुआ करते हैं। कि जिसको भ्रम से दूसरे वास्तव में नीती और न्याय ही समझ कर उस हद के बाहर पांव नहीं धरते और इस प्रकार कृष्णा जाल चक्र की काला गार में गिरने से नष्ट होने रहते हैं। और वह जो इस प्रकार के नीति शास्त्र रचते हैं और महाबीर को भ्रम फांस में फांसते हैं अपने ही कर्तव्य से महाबीर को भ्रम फांस में फांसकर महाबीर से घना भय करते और भय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

रचाते हैं कि महा बीर को मार डालने का विचार कर अपनी शरीर रक्षा और अपनी प्रपंच रक्षा के हेतु से महाबीर की दुम में रुई तेल और कपड़े लपेट अग्नि लगाते हैं और इसप्रकार आपही अपनी माया पुरी लङ्का को महाबीरद्वारा फुंकवाकर अपने नष्ट होजाने के लिये अपने नामरूप अभिमान के अहंकारी सागर में डूबने और राम के बाण खा खाकर उनसे घायल हो मरने का यत्न करते हैं। 127

इतना भाष्य करने पर हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू फिर भाष्य करते हुए कहता है कि कर्म क्या और अकर्म क्या फल क्या और अफल क्या सुख क्या और दुःख क्या जन्म क्या और मरण क्या माता क्या और पिता क्या पुत्र क्या और पुत्री क्या स्त्री क्या और भगनी क्या मित्र क्या और शत्रु क्या राव क्या और राजा क्या पुण्य क्या और पाप क्या राग क्या और द्वेष क्या ये जितना भी प्रपंच संबंध है सब अनिश्चय और भ्रम मात्र है क्योंकि मैं स्वयं विश्व अर्थात ज्योति १ और स्वयं तेजस अर्थात प्रकाश २ और स्वयं प्राज्ञ अर्थात तेज ३ अपने एक अनामय स्वरूप के त्रिगुणात्मक रूप स्वरूप को नित्य सत्य पाता हूं कारण कि जब मैं अपने इन तीनों स्वरूपों से किसी को देखता हूं अर्थात प्रथम प्रकट प्रतीत में जब मनुष्य (१) विश्व मात्र के रूप ही दृष्टा बनता तो कल्पना उत्पन्न कर रीति को अनरीति प्रतीत कर तत्व विज्ञान के नियमों को तोड़ने के यत्न में रजोगुण में पहुंच रजोगुण भ्रमण से चिदाकाश के वृतान्त को बुद्धि से विश्व आकार में ही सिद्ध करना चाहता है और ऐसा करना किसी प्रकार नहीं बनता इसी कार्य कारण का नाम अविद्या अज्ञान और माया से खेल खेलना है। अभिप्राय ये है कि इस प्रकार ज्योति को छोड़ अन्धकार छाया को पकड़ना है।

(२) तेजस अर्थात प्रकाश स्वरूप का यह अभिप्राय है कि जब मनुष्य इस स्वरूप का दृष्टा बनता है तो तत्काल सतोगुण में पहुंच कल्पना रहित हो स्वयं तत्व विज्ञान के नियमों को अनादि सिद्ध पाता है। और इनको सिद्ध पाने के हेतु पक्ष अपक्ष अर्थात शुक्ल १ और कृष्ण २ यह विश्व के दो रूप देख कर इन में कृष्ण स्वरूप का माया तथा अविद्या अज्ञान नाम रखता है। और शुक्ल स्वरूप का आकृष्ण अर्थात विद्या नाम रखकर विश्व मात्र के रूप की ३० प्रकार के प्रपंच प्राकृति प्रकृति को माया प्रपंच अर्थात अविद्या का रूप सिद्ध कर के आकृष्ण शक्ति द्वारा तिथि इस रूप चित्र से ३० का अर्द्ध भाग १५ इस रूप अंक को विश्व तेजस प्राज्ञ के ३ अंकों से भाग देकर ५ का अंक पंचिकरण होना सिद्ध अर्थ निकाल लेता है और इसप्रकार प्रपंच में इस प्रपंच के प्रथम आकृष्ण रूप आकार को पांच प्राण अर्थात विन्दु रूप में इसप्रकार के ( ⋮ ) साकार आकार से और कृष्ण रूप को पांच रेखा आकार में इस प्रकार ( ≡ ) साकार आकार से सिद्ध कर के कहता है कि प्रथम पांच विन्दु आकार से १ विन्दु १ और २ विन्दु २ और ३ विन्दु ३ और ४ विन्दु ४ और ५ विन्दु ५ के अंकों में आकाश १ वायु २ अग्नि ३ जल ४ पृथिवी ५ पांच प्राण रूप हैं कि जिन के आगे भूः १ भवः २ स्वः ३ महः ४ जनः ५ नाम हैं कि जो पांचो शून्य आकार हैं और आकाश से पृथिवी तक आकाश का १ वायु के २ अग्नि के ३ जल के ४ और पृथिवी के ५ अंकों के जोड़ने से १५ का सम अंक प्रकट होता है कि जो अङ्ग रूप अङ्ग है अर्थात १+५=६ के सो १५ का अंक अङ्ग रूप अंक है यदि १५ के अंक से अङ्ग के ६ अंक निकाल लिये जावें तो स्वयं ९ का अंक प्रकट होता है कि जो अंक ९-छिद्र ९-नन्द ९ तीन नाम रूप से (म) नाम प्रकृति का स्वरूप है परन्तु प्रकृति जड़ वत त्रिगुणी भाव वाली है इस लिये ९+९+९+३=३० के यह ३० का अंक जड़ प्रकृति के रूप में ( ≡ ) पांच रेखा आकार छाया समान है कि जिसमें एक एक रेखा तीन तीन विन्दु का रूप होने से ये

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३० प्रकारकी प्रकृति ५ प्रणवऔर १० हिरण्यगर्भ के लक्षको १ से १० तक के अंकों में प्रकाशरूप है कारण यह है कि बाध सम्बन्ध रूपसे जितने अंकहैं वह सब एकही अंक ९ का जोड़ अर्थात एक रूप एक स्वरूपहैं कि उनमें बाध सम्बन्ध होने से ९ के अंक में किसी प्रकार का कोई विकार नहीं आता और ९ का अंक सब अंक स्थलों में एक रस रहता है। जैसेकि ३० प्रकार की प्रपंच रूप प्रकृति में जगत अर्थात संसार निर्मित है और संसार जो नाम रूप वाला है यह मेरे अनामय स्वरूप प्राक् रूप में है यही कारण कि यह बाध संबंध रूप है और प्राज्ञविन्दु ९ के अंक में एक रूप है इसलिये ३० के अंकों को जोड़ने से ३ का अंक विन्दु को छोड़ने नहीं देता है सो ३० अंक से ३ घटाने पर २७ रहते हैं कि जो २ और ७ के अंक में एक ही प्राक विन्दु ९ अंक का रूप है अंको के जोड़ अंक के घटाने का यह प्रयोजन है कि बाधा जो वास्तव में है नहीं वही बाध रूप में प्रकट प्रतीत माया रूप है इसलिये पुरुष देह के १००० अंक को लेलिया जाय और विन्दुओं को छोड़कर के अंक जोड़ एक को १००० के अंक से घटाया जावे तो ९९९ का अंक रहता है कि जो केवल ९ का जोड़ है ९ के अन्य इसमें और कुछ भी नहीं है। सो इस तत्व विज्ञान से अर्थात प्रकाश स्वरूप से प्रकट हुआ कि तीन ९ के तीन विन्दु समान हैं अंक जो सिद्ध है वह १ है कि जिसपर तीन ९ के विन्दु समान बाध रूप से १००० का अंक बना हुआ है इसी प्रकार जगत जो प्रतीत होता है मिथ्या सार अद्वय रूप है।

(३) प्राक अर्थात तेज का यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार विधि और निषेध सृष्टि उत्पत्ति क्रम की दो उलटी सीधी एक रस क्रिया हैं इसी प्रकार तेज में तेजस १ और विश्व २ अर्थात तेजस विन्दु और विश्व रेखा समान दो स्वरूप हैं इनमें तेजस पांच प्रणव रूप में (∴) ऐसा आकार है और विश्व का कि जो दश हिरण्यगर्भ रूप है रेखा में उसके लक्ष स्वरूप का (≡) ऐसा आकार है और तेज अर्थात प्राक विन्दु एक ही विन्दु समान ऐसा (•) अनामय अव्यक्त स्वरूप है और इस प्रकार इस त्रिगुणात्मक रूप स्वरूप का पांच प्रणव सहित ६ विन्दु में ६ विन्दु का ⁞⁞ अंग स्वरूप नाम है और पांच रेखा अर्थात १० हिरण्यगर्भ सहित एक विन्दु और पांच रेखा में इस प्रकार ⁞≡ एकादश रुद्र नाम है और एकादश रुद्र की पांच रेखा और एक विन्दु सब ११ विन्दु और अङ्ग स्वरूप की ६ बिन्दु का एक जोड ११+६=१७ के एक ही एक लिङ्ग निष्कलङ्क रूप स्वरूप में एक विन्दु और आठ रेखा के रूप में ≡≡ ऐसा स्वरूप है कि जिस स्वरूप का नाम उग्रसेन एक लिंगी अर्थात उग्रश्रवा एक लिंगी या सर्वश्रवा एक लिंगी वा महान महेश्वर है इसी स्वरूप को १७ तत्व का एक लिंग स्वरूप कहा जाता है कि जिसमें आठ रेखा अष्टधा प्रकृति रूप में प्रकट प्रतीत में प्रतीत हैं अर्थात एक विन्दु पुरुष परब्रह्म का श्रेष्ठ स्वरूप परा प्रकृति नाम है और विन्दु के नीचे की एक रेखा मूल प्रकृति अर्थात अपरा प्रकृति नाम है कि जिसके नीचे सात रेखा प्रकृति विकृति रूप महान १ अहंकार १ तन्मात्राएँ ५ अर्थात ब्रह्म का एक निष्ठ स्वरूप सप्त व्याहृति रूप है। और आठों रेखाओं में गुप्त भाव से १६ विकार वाली प्रकृतियां गुप्त हैं कि जिनमें मन १ ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेंद्रिय ५ और महाभूत ५ मिश्रित हैं। इस प्रकार तेज प्राक् विन्दु (•) १ और तेज प्राक् विन्दु का पांच प्रणव का पांच विन्दु चोला स्वरूप अहंकार १ मन १ - आकाश १ - अग्नि १ और पृथिवी १ यह पांच विन्दु ⁞⁞ प्रणव रूप है इसी का नाम प्रकाश इसी का नाम उज्यारा इसी का नाम पूर्णतत और इसी का नाम जगजनक अर्थात जगत पिता सूर्य चन्द्र है अर्थात एक प्रणव अहंकार का नाम जनक १ सूर्य १ विवस्वान् १ यह तीन नाम इसी सूर्य अर्थात जनक का विवस्वान का पुत्र स्थूल प्राण मन रूप है कि जिसके दोनामों से मनु १

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पहिला नाम और चन्द्र २ दूसरा नाम है। और इसी चन्द्र अर्थात मनु मन का पुत्र तीसरा प्रणव आकाश है कि जिस का नाम इक्ष्वाकु १ और राजा कावा का पुत्र विश्वामित्र २ यह दो नाम हैं क्योंकि कावा दूसरे प्रणव मन का ही नाम है और राजा इसकारण इसे कहा गया है कि मन ही चंचल उपद्रव रूप है और मन ही नृपः अर्थात तपरूप है और इसी इक्ष्वाकु अर्थात आकाश या विश्वामित्र के पुत्रका नाम चौथा प्रणव राजर्षयो अर्थात अग्नि ऋषि है और अग्नि के ऋग १ और ऋषि २ दो नाम हैं और राजर्षयो जो अग्नि का तीसरा नाम है इस का यह कारण है कि अग्नि ही स्वयं तेज और प्रधान शक्ति जल और पृथिवी रूप है। सो इसराजर्षयो का पुत्र पांचवा प्रणव अर्थात पृथिवी है कि जिस का एक ही नाम पृथु अर्थात राजा पृथु है कि जिस से सकल संसार की कि जो सृष्टि रूपसे किसी प्रकार नामरूप वाली वस्तु है और पृथिवी पर प्रकट प्रतीत है उत्पत्ति है यह पांच प्रणव का अर्थ है।

और इसी प्रकार तेज प्राक विन्दु (•) १ और तेज प्राक विन्दु के दश हिरण्यगर्भ के लक्ष दो दो विन्दु में एक एक रेखा पांच रेखा अर्थात पांच रेखा वाला स्वरूप चित १ बुद्धि १ पवन १ जल १ विराट १ ये पांच रेखा (≡) दश हिरण्यगर्भ रूप है। इसीका नाम विश्व ज्योति इसी का नाम अविद्या अज्ञान इसी का नाम इन्द्रजाल इसी का नाम माया इसी का नाम शक्ति इसी का नाम अन्धकार इसी का नाम जगजन्नी तथा जगद्धांबा अर्थात जगत माता अर्थात विश्नू य गर्भनी माता काली कालका अमावस्या प्रकृति एक सुनीति १ और असुरुचि २ दो नाम रूप से ३० प्रकार का भाव २५ तत्व का एक स्वरूप दशरथ है अभिप्राय ये है कि पांच रेखा का नाम जो दश हिरण्यगर्भ रूप है वही एक दशरथ रूप अर्थात दश शरीर रूप वाला एक विराट स्थूल ब्रह्मांड पिंड है कि जो तीन और शून्य का एक अर्थ ३० अंक रूप और लक्ष वाला एक प्रकृति स्वरूप नारद ऋषि एक ही ब्रह्म ऋषि का एक स्वरूप है अर्थात ब्रह्म १ और ऋषि एक इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ नारद नाम ३० प्रकार की प्रकृति का है अर्थात ३० का अंक तीन शून्य का एक रूप नारद नाम अनामय आकृति तीन नाम वाली शक्ति १ विद्या १ अविद्या १ आकृति एक आकृति का है और इसी एक आकृति के तीन नाम कौशल्या अर्थात तेज १ और सुमित्रा अर्थात सुलक्ष प्रकाश २ और केकई अर्थात कूलक्ष ज्योति ३ यह तीन नाम हैं। और इसी का नाम देवकी और इसी का नाम माता प्रकृति रोहनी है इसी का नाम जन्य प्रकृति है और इसी का नाम अद्वय तथा विराट एकरस समान धर्म अद्वैत बौद्ध ध्रुव धर्म है इसी धर्म का पुत्र (≡) चार रेखा का एक स्वरूप रसरंगजी कि जिस का दूसरा नाम वरुण है और जिस की पंच महाभूत आकाश १ पवन २ अग्नि ३ जल ४ पृथिवी ५ में जल कोट रूप संख्या है इस संख्या में रसरंग जी के चार स्वरूप और चार रंग हैं अर्थात रोना १ चिल्लाना २ गाना ३ और हंसना ४ यह चार रूप और चार रंग हैं कि जो पृथक पृथक जाति की बोली में पृथक पृथक रूप से शब्द व्यापार से रूपान्तर रहते हैं। और सब प्रकार के प्राणी इन्हीं शब्द व्यापारों से अपना अपना आन्तरिक भाव अन्य को बोध कराते हैं और अन्य का आप बोध करते हैं इस के अन्य इसके परे जो जो मनुष्य के बोल चाल का शब्द व्यापार है वह प्रपंच रूप में अनिश्चित रसरंग का पुत्र तीन रेखा (≡) का स्वरूप स्पर्श जी कि जिस का दूसरा नाम मरुत है और जिस की पंच प्राण अर्थात समान १ प्राण २ अपान ३ व्यान ४ उदान ५ में पवन लक्ष संज्ञा है और जो लक्ष कराने से अर्थात बताने सिखाने पढ़ाने से उत्पन्न हो दृष्टि ज्ञान में रहता है। दश रूप रंग वाला है अर्थात संयोग १ वियोग २ बली ३ निर्बल ४ हित ५ अहित ६ भक्ष्य ७ भक्षक ८ अन्धयारा ९ उज्यारा १० कि इन्हीं दश प्रकार की दृष्टि ज्ञान में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

130 मनुष्योंने अनंत दृष्टिको मानित कर पवन जीका नाम महावीर स्वामी अञ्जनी पुत्र दशरथ हिरण्यगर्भ आदि अनेक नाम रूपोंसे भ्रम उत्पन्न कर ईश्वर - जीव सतो गुण रजोगुण तमोगुण पुरुष प्रकृति सत्य असत्य पुण्य पाप जड़ चैतन्य मन बुद्धि अहंकार चित नाम रूप गुण कर्म स्वभाव अवस्था अच्छा बुरा मेरा तेरा आदि सब प्रपंचको प्रकट करके कि जिस प्रपंच भ्रम को मनुष्यों के अन्य कोइ अन्य प्राणीजाति इन शब्दोंके भेद को जानते व मानते व समझते नहीं और यही भ्रम भेद मनुष्योंमें द्वैता व वासना का स्वरूप बनकर द्वैत द्वैज रूपसे प्रवेश किये हुए बुद्धिका रूप है इसलिये तीन रेखा अर्थात पवन जी के पुत्र का नाम दो (=) रेखा वाला बुद्धि बोधजी कि जिसका दूसरा नाम बौद्ध और तीसरा नाम ब्रह्मा है और सहस्र संज्ञा में विवेकाकार विचार रूप अन्तः करण अधिष्ठान अब्धि कृत गो युग सागर वेद २४ जिन का एक सिद्ध स्वरूप कारण प्रकृति नाम है। और यही ब्रह्मा रूप १० प्रकार का दृष्टि ज्ञान बोध होने पर इस विधि ज्ञान से समस्त प्राणियों में एक रस शरीर रक्षा का हेतू है। इसी ब्रह्मा का एक रेखा वाला (-) चित जीकि जिसका दूसरा नाम विष्णु अर्थात दहाई संख्या में चैतन्याकार प्रकाश रूप ज्ञान का स्थान आत्मिक त्रय तन तीन नाम से एक अंग विद्या अविद्या का साक्षी एक स्वरूप है कि जो १६ विकारमान प्रकृति का असंग रूप से एक ही एकलिंगी अर्थात अद्वितीय साक्षी स्वरूप है। और वह सोलह विकारमान प्रकृतिकि जो नाम रूप वाली बाधसम्बन्ध रूप आकृति से सभी में होती हैं ये इसप्रकार पर हैं कि पृथम तो चार प्रकार के संसर्ग जन्य विकार हैं अर्थात क्रोध १ प्रेम २ भय ३ और रोग ४ दूसरे इनके अन्य ६ प्रकार के शरीर धर्म हैं कि जो खाना १ पीना २ मल मूत्र का त्याग ३ मैथुन ४ निद्रा ५ आलस्य ६ नाम हैं अनके अन्य तीसरे ६ प्रकार के जीव लक्षण हैं कि जिनके नाम - इच्छा १ द्वेष २ सुख ३ दुख ४ यत्न ५ ज्ञान ६ ये छ नाम हैं। इस प्रकार पांच रेखा वाली (≡) जगदंबा माया मूर्ति ३० प्रकार की एक प्रकृति स्वरूप है इसलिये यह ३० भांति की प्रकृतिक क्रिया एक (≡) रूप और पांच (⋮) प्रणव का एक रूप प्रकाश रूप ३० + २ = ३२ के ३२ का अंक एक दृश्य रूप और (०) तेज विन्दु का एक रूप ३२ + १ = ३३ के ३३ का अंक एक एकलिंगी (⋮) ९ का एक अंक अर्थात ३३ का एक ही स्वरूप अमर रूप है। सो ३० भांति की प्राकृतिक क्रिया से ही समस्त प्राणी मात्र की उत्पती पालन और नाश होता रहता है। और यह मेरे तेज (०) विन्दु का ज्योति १ और प्रकाश २ अर्थात पांच (⋮) प्रणव व दृश हिरण्य गर्भ के एक रस अषृद्या प्रकृति रूप में प्रकृति के समान धर्म नियमित हैं कि जो १ से १० तक लक्ष को और ११ से ३० तक काल में देश रूप रेखा को समान रूप से विवेक द्वारा प्रकृति के विस्तार को हिरण कर बुद्धि को पुष्ट करने का हेतु हैं कि जिस पर विचार करने से विचार शक्ति विशेष होजाती है। और विवेक के अर्थ द्वारा प्रकृति का विस्तार समझने में आता है और इसी का आकृष्ण कृष्ण तेज दर्शन नाम है। कारण यह है कि। तेज (०) विन्दु १ और आकृष्ण (⋮) पूर्णतन २ और कृष्ण (≡) विश्व ज्योति माया ३ यह तीन नाम रूप आकृति अव्यक्त व्यक्त का सार अध्यात्म विज्ञान का मूल कारण हैं क्योंकि।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥ अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

एतद्योनीनि - मैं दोनों प्रकार की आकृष्ण और कृष्ण प्रकृतियों का कार्य कारण एक तेज रूप हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Handwsrit Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भूतानि[२] - भूत नाशमान प्रकृति सर्वाणि[३] सम्पूर्ण प्रकृति इति[४] अर्थात पूर्णतत आकृष्ठा और विश्व ज्योति माया इसप्रकार दो स्वरूप वाली प्रकृति - उपधारय[५] निरन्तर निश्चय करके अहं[६] मैं अनामय तेज स्वरूप कृत्स्नस्य - चार असंग रूप रेखा में रसरंगजी अर्थात रोने चिल्लाने गाने हंसने वाला संपूर्ण जगतः[८] जगत का प्रभवः प्रकाशरूप - प्रलयस्तथा[१०] ज्योति विश्व का लय रूप एक ही कोश रूप हूं।

आश्य ।

हे मनुइन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र इस सूत्र का भाष अर्थ आश्य तू इसप्रकार करता है। कि मैं दोनों प्रकार की आकृष्ठा और कृष्ठा प्रकृतियों का कार्य कारण एक तेज रूप हूं अर्थात मैं भूत नाशमान प्रकृति और सम्पूर्ण प्रकृति अर्थात पूर्ण तत आकृष्ठा और विश्व ज्योति माया रूप इसप्रकार दो स्वरूप वाली प्रकृति रूप निरन्तर निश्चय करके अहं अर्थात मैं अनामय तीजस्वरूप प्रणव ॐ कार रूप चार असंग रेखा में रसरंग जी अर्थात रोने चिल्लाने गाने हंसने वाला संपूर्ण जगत का प्रकाश रूप ज्योति विश्वका लय रूपस्व रूप एक ही कोश रूपी तेज हूं अर्थात मैं ही क्षर अक्षर या अचर व चर सृष्टिके संहार और उत्पति का मैं ही एक तेजस्वरूप हूं कारण कि प्रकृति मेरा अङ्ग स्वरूप है और जीव या आत्मा भी मेरा ही तेज है। अर्थात पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार इसप्रकार आठ प्रकार की मेरी प्रकृति का नाम अष्टधा नाम कृष्ठा प्रकृति है। और इसके सिवा सारे संसार का धारण जिसने किया है वह भी मेरी प्रकृति जीव नाम चैतन्य स्वरूप आकृष्ठा आकर्षण नाम दूसरी मेरी प्रकृति है। किंतु जो सच्चा ज्ञेय है वह इनदोनों प्रकार की प्रकृतियों से परे है वही एक अद्वय प्राक परम पुरुष तेज मेरा अनामय स्वरूप है कि जो केवल निरन्तर भेदाभेद और भ्रम शंका से रहित है अर्थात हे मनु इन्द्र तू कहता है कि मैं प्रकाश और लय का एक ही तेज रूप कोश हूं अर्थात न कृष्ठा है न आकृष्ठा है स्वयं मैं ही एक पुरुषोतम एकलिंकी अमर और नित्य निष्कलङ्क इसप्रकार अद्वैत यथा अनंत अध्यात्म विज्ञान आकृष्ठा तेजय रूप हूं कि जिस प्रकार १ से १० और ११ से ३० अङ्कों में केवल प्राक शून्य विन्दु का कि जो अशून्य रूप है प्रणव और हिरणयगर्भ का लक्ष और काल में देश रूप रेखा का इस प्रकार विस्तार है - जैसे कि प्रथम १ से १० तक प्रणव और हिरणयगर्भ का ऐसा लक्ष है

१ प्राक् अशून्य तेजय विन्दु का १ से १० तक प्रणव हिरणगर्भ लक्ष ॥

अर्थात

- स्वयं मेरा अपना आप ही अपने तेजस्वरूप का तेजय दर्शन

तत्व विज्ञान अध्यात्म रूप में

तेजय विन्दु ९ अंक के रूप में एक अशून्य रूप पूर्ण अक्षर स्वरूप मेरा है कि जो नित्य शुद्ध अव्यक्त अविनाशी अचल अलक्ष अनंत अचिंत मेरा अनामय रूप है। और इस अनामय रूप में १० का अंक बाध सम्बन्ध रूप है कि है नहीं और प्रतीत होता है कारण यह है कि १० का अंक कि जो एक विन्दु और एक का एक मिश्रित रूप है इसमें विन्दु ९ का आकार और १ विन्दु का आकार है कि जिसका अर्थ ये है कि जो विन्दु न हो तो १ का अंक अक्षर अशून्य विन्दु रूप होने पर भी कुछ नहीं विन्दु ही रूप है कि जो कुछ नहीं है ऐसा कहने में आता है। और जो एक का अंक न हो तो विन्दु कि जो वास्तु में ९ का एक अक्षर रूप है सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है केवल अनादि एक अखंड प्रणव रूप है कि जो ॐ कार प्रब्रह्म का एक अव्यय और अचिंत स्वरूप है इसलिये ये १० का अंक बाध संबन्ध रूप में प्रणव का लक्ष है और इस लक्ष का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ अर्थात लक्ष का नाम हिरण्यगर्भ अर्थात जल का बुद्बुदा अर्थात बाध सम्बन्ध रूप में इसी बाधा
13 संबन्ध का नाम विराट यथा देह रूप नाम स्वरूप में उफाण अर्थात अहंकार नाम है। इस लिये तेजय स्वरूप
प्रणव रूप में कि जो ३३ के अमर नाम रूप से एक मेरा अनादि अनामय स्वरूप है केवल यही स्वरूप अभ्र १ वा
अम्बर २ गगन ४ पूर्ण ५ पांच प्रणव रूप में एक ही अंग एकही रस एक ही ऋतु रूप में पूर्णतत नाम
तेजय प्राक स्वरूप है कि जो पांच (५) रेखा में माया नाम से जगदांबा रूप से दिक दशरथ विराट अर्थात
इस हिरण्यगर्भ नाम में बुद्बुद रूपी संसार बना हुआ बाधा संबन्ध को अनेक नाम रूप से बनाती
प्रकट करता हुआ आदि अन्त और मध्य में आप ही अपने को स्वयं तेजय और स्वयं अविनाशी
एक स्वरूप प्रकट करता हुआ स्वयं तेजोमय रूप आप ही अपना दर्पन बन रहा है। और सब लक्ष व
अलक्ष का एक ही अभेद रूप स्वरूप में अपने तेजोमय स्वरूप का इसप्रकार अभेद रूप एकही प्रत्यक्ष
प्रमाण बन रहा है। कि तेजय स्वयं एक अशून्य अनामय बिन्दु है इसके तीन नाम हैं कारण १ और
सूक्ष्म २ और स्थूल ३ और इन तीन नामों को जो एक अक्षर रूप पदार्थ है उसी का नाम सत्य ब्रह्म
प्रणव ॐ कार है। ॐ कार निराकार ९ अंक नाम का एक आकार है और आकार बाध सम्बन्ध
रूप में इस हिरण्य गर्भ रूप से दसवां रूप सृष्टि का स्वरूप है इसलिये सृष्टि संसार में जो जो नाम
रूप वाले चराचर पदार्थ हैं वह सब हिरण्यगर्भ रूप हैं और एक ही प्रणव ॐ कार स्वरूप प्रणव
का लक्ष हैं। कारण यह है कि प्रणव ॐ कार के कारण सूक्ष्म स्थूल में ९ नाम हैं और बाधा
संबन्ध में जो दसवां आकारी रूप है उसी का नाम बुद्बुदा अथवा हिरण्यगर्भ या विराट या देह
या उफाण या उबाल या अहंकार या १० का अंक है कि जो नहोवे पर भी होना प्रकट प्रतीत है
इसलिये इसप्रतीत का प्रणव रूप में यह लक्ष है कि तेजय बिन्दु जो अनामय प्रणव ॐ कार रूप है
और जिस के कारण १ सूक्ष्म २ और स्थूल ३ ये तीन नाम है इन तीनों नामों में प्रणव ॐ कार तेजय
तेजय बिन्दु के ३-३ रूप हैं। अर्थात कारण में तेजय बिन्दु कैवल्य १ ज्ञात २ और ज्ञान ३ ये तीन नाम
रूप हैं और सूक्ष्म में ज्ञेय १ ज्ञाता २ अनुभव ३ यह तीन नाम हैं और स्थूल में शिव १ ब्रह्मा २ और
विष्णु ३ ये तीन नाम हैं और इन नव नाम और रूप का एक दसवां नाम विराट या हिरण्यगर्भ है
कि जो प्रकट प्रतीत में नाम रूप वाला कि नेत्र दृष्टि से देखा जाता है सर्व संसार एक रूप प्रणव लक्ष है
और इस प्रणव रूप संसार का दशा हिरण्य गर्भ रूप में इस प्रकार लक्षा लक्ष्य है कि -

(१) प्रणव ॐ कार शून्याकार तमरूप स्फूर्ति का अधिष्ठान है। कारण नाम रूप त्रिपुटि में इसी का नाम
अद्वितीय अर्थात १ ही अनामय स्वरूप कैवल्य अर्थात निर्लेप अलक्ष है। और इसी में इसका ज्ञात दूसरा
नाम और प्रणव अर्थात ॐ कार रूप है। और इसी में इसका तीसरा नाम ज्ञान और एक (०) बिन्दु इसका
स्वरूप है। सूक्ष्म त्रिपुटि में पहुंचकर इसका ज्ञेय चौथा नाम और इकाई रूप में एक (०) ही इसका स्वरूप
है। और इसी में इसका पांचवा ज्ञाता नाम और इस ज्ञाता नाम का १ का अंक इसका रूप स्वरूप है फिर
इसी में छटा अनुभव इस का नाम है और इस अनुभव नाम का बिन्दु ही (०) स्वरूप है। स्थूल त्रिपुटि
में सातवा नाम इसका शिव है और शिव नाम का एक ही (०) रूप है फिर इसी में इसका आठवा
नाम ब्रह्मा है और इस ब्रह्मा नाम का वर्ग (□) रूप स्वरूप है और इसी में नवां नाम इसका विष्णु
है और इस विष्णु नाम का रूप गोला (○) रूप स्वरूप है कि जो नव शक्ति रूप है। और फिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विशेषता में यही शून्याकार प्रणव संसार रूप में अहंकार रूपसे बुदबुदे की समान बाध संबन्ध रूप में दसवें नाम रूप वाला आकार १ हिरणय गर्भ रूप है। इसी प्रकार दूसरे तीसरे चौथे पांचवे छटे सातवे आठवे नवे और दसवें हिरणय गर्भ का लक्ष्या लक्ष १ से १० अंक तक का मेरा अनामय तेजय दर्शन ये चित्र है

## अनामय तेजय दर्शन चित्र ।

| त्रिपुटि | १ कारण त्रिपुटि | | | २ सूक्ष्म त्रिपुटि | | | ३ स्थूल त्रिपुटि | | | आकार | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अंक | १ केवल | २ ज्ञात | ३ ज्ञान | ४ ज्ञेय | ५ ज्ञाता | ६ अनुभव | ७ शिव | ८ ब्रह्मा | ९ विष्णु | १० बाधक नाम | अध्यात्म विज्ञान नियम वृतान्त |
| १ | अनामय शून्याकार अद्वैत निर्लेप अलक्ष एक ही रूप | प्रणव | • | इकाई | १ | • | • | □ | ○ | अहंकार | अहंकार शून्याकार तमरूप स्फुरति का अधिष्ठान है और अम्र १ खं २ गगन ३ अम्बर ४ पूर्ण ५ पांच नाम इसी के हैं |
| २ | | विष्णु | •• | दहाई | २ | — | — | ▭ | ⊖ | चित | चित चैतन्याकार प्रकाशरूप ज्ञान का स्थान है और अश्वि १ दस २ और यन ३ ये तीन नाम इस के हैं |
| ३ | | तेज | ••• | सैंकड़ा | ३ | ≐ | △ | ▽ | △ | मन | मन द्वन्द्वाकार द्विधा का रूप अविद्या की योनि है और गुण १ अग्नि २ राम ३ लोचन ४ ये चार नाम इस के हैं। |
| ४ | | ब्रह्मा | •••• | सहस्र | ४ | = | △ | ⊠ | ⊗ | बुद्धि | बुद्धि विवेकाकार विचाररूप अन्तःकरण का अधिष्ठान है। और अब्धि १ कृत २ गो ३ युग ४ सागर ५ और वेद ६ ये छ नाम बुद्धि के हैं |
| ५ | | दिक | ••••• | दससहस्र | ५ | ≐ | ▽ | ⊠ | ⊗ | आकाश | आकाश पञ्च कोश अन्नमय प्राणमय मनोमय ज्ञानमय विज्ञानमय का एक कोश रूप है और इषु १ प्राण २ बाण ३ शर ४ सायक ५ ये पांच नाम इसके हैं। |
| ६ | | मरुत | ••••• | लक्ष | ६ | ≡ | ▽ | ⊠ | ⊕ | पवन | पवन पंच प्राण समान १ प्राण २ अपान ३ व्यान ४ उदान ५ का एक आकार है और रस १ अङ्ग २ ऋतु ३ ये तीन नाम इसके हैं |
| ७ | | सूर्य | ••••• | दसलक्ष | ७ | ≐ | ▽ | ⊠ | ⊗ | अग्नि | अग्नि पंचमात्रा का अर्थात शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ इनका एक रूप है और भूभृत १ वाजि २ शेल ३ अश्व ४ और अद्रि ५ ये पांच नाम इसके हैं |
| ८ | | वरुण | ••••• | कोट | ८ | ≡ | ▽ | ⊠ | ⊕ | जल | जल पञ्च महाभूत आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी का एक रूप है और अहि १ गज २ द्विप ३ नाग ४ भुजङ्ग ५ ये ५ नाम इसके है |
| ९ | | कुबेर | ••••• | दसकोट | ९ | ≐ | △ | ⊞ | ⊕ | पृथिवी | पृथिवी स्थूलाकार वीर्य का रूप है इस लि अङ्क १ छिद्र २ और नन्द ३ ये तीन नाम इस के हैं। |
| १० | | हिरणय गर्भ | ••••• | अरब | १० | ≡ | △ | ⊙ | ⊙ | विराट | बाधसंम्बन्ध रूप में सब ही आकारों का एक समूह रूप है इसलिये इसका दिक और दशरथ नाम है और रूप १ का अंक इन्दु करकु चन्द्र भूभूमि धृति है — |

इस चित्र में पूर्ण अध्यात्मविद्या और तत्व विज्ञान का पूर्ण नियम वर्णित है सो जैसे प्रथम हिरणयगर्भ का लक्ष है इसी प्रकार इस चित्र पर विचार करने से विचार शक्ति विशेषता के साथ दस हिरणयगर्भ और पांच प्रणव के लक्ष को प्रत्यक्ष प्रमाण से इस प्रकार प्रकट करती है कि पांचवे अंक पर केवल कारण का दूसरा नाम ज्ञात ही है और इस ज्ञात का स्वरूप दिक प्रणव रूप है कि जिसके तीसरे ज्ञान नाम में पांच बिन्दु नाम से तीसरा रूप है सो इसी ५ के अंक या पांच बिन्दु का नाम दिक है और दिक आकाश का नाम है और दिक १० के एक अंक का नाम है इस लिये आकाश विराट का एक स्वरूप दस हिरणयगर्भ रूप है कि जो सब बाध संबन्ध आकारों का एक ही वह आकार है कि जिस में सब आकार समूह रूप से प्रकट प्रतीत हैं इस लिई इसी को हिरणयगर्भ इसी को दशरथ इसी को निर्लेप अव्यय निराकार इसी को व्यापक इसी को इन्दु इसी को कर इसी को कु इसी को चन्द्र और इसी को भू इसी को भूमि और इसी का धृति नाम है। क्योंकि इन्दु से धृति तक जो सात नाम हैं यह सातों नाम एक अंक रूप हैं कि जो दशरथ नाम से दिक अर्थात विराट स्वरूप हैं और विराट स्वरूप १ का अंक और एक हिरणयगर्भ रूप है और हिरणयगर्भ दिक रूप अर्थात पांच प्रणव रूप है और प्रणव तथा दिक आकाश का नाम है। और आकाश पञ्च कोश का एक रूप है। और पञ्च कोश रूपी आकाश के अम्र १ खं २ गगन ३ अम्बर ४ पूर्ण ५ ये पांच नाम हैं और इन पांचों नामों का पूर्णतत एक ही नाम है और ये पूर्णतत बाधारूप नाम आकार में अहंकार का नाम है और अहंकार बिन्दुरूप एक गोलाकार विष्णु माया मूर्ति है कि जो ९ का एक अंक रूप है। और ये गोलाकार ९ का एक रूप रूप विष्णु माया मूर्तिवर्ग रूप में चार पाद रूपी प्रणव का एक ॐ कार रूप है कि जिसका ब्रह्मा नाम है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मा ८ अंक के रूप में अष्टधा प्रकृति का रूप है कि जिस से सर्व सृष्टि की उत्पत्ति है और अष्टधा नाम
१३ जो प्रकृति है ये विन्दु रूप में शिव का एक स्वरूप है। और शिव नाम विन्दु अनुभव नाम विन्दु का एक
रूप है और इस अनुभव नाम विन्दु का १ अंक नाम स्वरूप और ज्ञाता नाम है इसी ज्ञाता नाम का एक
अद्वितीय रूप इकाई नाम भव विन्दु स्वरूप है और जो सच्चा ज्ञेय कहा जाता है वही ज्ञेय इसका
नाम है और इस ज्ञेय का एक विन्दु स्वरूप है और ज्ञान इस्का नाम है और ज्ञान प्रणव अर्थात ॐ कार का
रूप है और प्रणव अर्थात ॐ कार का ज्ञात नाम है और ज्ञात ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों नाम व
रूप की एकता का नाम है कि जिस एकता स्वरूप ज्ञान अवस्था का एक ही परसिद्ध नाम बुद्धि है और
ये बुद्धि अनामय स्वरूप कैवल्य रूप अद्वैत बौद्ध ध्रुवधर्म है कि नाम रूप दोनों भाव अभाव से
रहित अब्धि नाम ४ कृत नाम ४ गो नाम ४ युग नाम ४ सागर नाम ४ वेद नाम ४ इन छओं
नामों से १ अन्तःकरण रूप में ६×४=२४ के २४ तत नाम से जिन तथा सिद्ध नाम रूप में ही
माया और परमात्मा के नाम रूप से शक्ति तथा प्रकृति और आत्मा परमात्मा आदि में जड़ और
चैतन एक ही कार्य कारण रूप बन रही है यह १ से १० तक पांच प्रणव और हिरण्य गर्भ का
लक्ष है। इस प्रकार २ से ११ और ३ से १२ अर्थात ११ से ३० तक काल में देश रूप रेखा
समान अद्वैत बौद्ध ध्रुवधर्म की गति का पथ प्रकृति विस्तार विवेक रूप एक रस ही है और
वह इस प्रकार पर है कि जैसे मेरे अनामय तेजय दर्शन चित्र का २ से ११ अर्थात ११ से २० तक
दूसरा और ३ से १२ अर्थात २१ से ३० तक प्रकृति विस्तार भाव का तीसरा चित्र है।

दूसरा २ से ११ अर्थात ११ से २० तक अनामय तैजय दर्शन चित्र ।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
|---|---|---|---|---|
| कारण | सूक्ष्म | स्थूल | अंक | अध्यात्म विज्ञान नियम प्रमाण |
| शक्ति विन्दु प्रमाण | रेखा प्रमाण | मूर्ति प्रमाण | | |
| २ | ▽□□ | ·(१) | ११ | भव नाम जल अर्थात एकादश रुद्र ११ का एक ही अद्वैत स्वरूप- |
| ३ | □□□ | —(१) | १२ | ३६ कला द्वादश मास संवत्सर प्रमाण में १२ रवि १२ सूर्य १२ अर्क एक युग काल रूप |
| ४ | □○ | ▽(१) | १३ | संवत्सर का अधिक मास नाम सिंधिक रूप जो युग अन्तर पड़ता है विश्व नाम १३ |
| ५ | ▽▽□□ | □(१) | १४ | दशेन्द्रिय और चतुष्टय अन्तःकरण का एक रूप १४ का अंक इन्दु नाम |
| ६ | ▽▽○ | □·(१) | १५ | पक्ष और आयन की मूर्ति शुक्ल और कृष्ण तिथि नाम एक रूप |
| ७ | ▽□○ | ▽▽(१) | १६ | अधि नाम षोडश कला चक्र एक ही स्वरूप |
| ८ | □□○ | ▽□(१) | १८ | लिंग शरीर अचल एक रूप |
| ९ | ○○ | ·· | १२ | पुरुष और प्रकृति संयोग एक ही रूप एक ही स्वरूप |
| १० | ▽▽□○ | ○(१) | १९ | पुरुषोत्तम द्वार और अद्वार सहित एक रूप एक स्वरूप |
| ११ | ▽□□○ | ·(१) | २० | नव नाम प्रजापति की अश्वत्थ २० रूप की ८ स्वरूप मूर्ति |

अभिप्राय ये है कि ११ के अंक में दो १-१ एकड़े हैं इन दोनों एकड़ों का भव अर्थात जल नाम है और जल एकादश रुद्र अर्थात ११ के रूप में शिव स्वरूप है शिव स्वरूप का ये अर्थ है कि अष्टधा नाम प्रकृति का त्रिगुणात्मक तत्व एक ही स्वरूप एकादश रुद्र नाम वाला शिव एक ही विन्दु प्रणव

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

ॐ कार का रूप है कारण ये है कि ११ विन्दु एक ही विन्दु का रूप हैं जैसे कि रेरवा प्रमाण में एक त्रिकोण च
दो वर्ग ११ का रूप हैं और मूर्ति प्रमाण में एक विन्दु और गोल चक्र के मध्य १ का आकार ११ का प्रमाण ये
एक ही विन्दु का रूप है क्योंकि विन्दु १ का लक्ष है और चक्र विन्दु का लक्ष ९ का गुप्त आकार है और
९ का अंक एक स्वरूप का प्रत्यक्ष प्रमाण है इसलिये ११ विन्दु एकादशतद्वु नाम केवल एक स्वरूप है
सो २ के अंक से ११ तक अर्थात ११ से २० तक प्रकृति नाम माया का जितना विस्तार है वही मेरे तेज
अनामय रूप का एकरस एक आकार एक स्वरूप एक रूप है। इसी प्रकार ये तीसरा चित्र है।

तीसरा ३ से १२ अर्थात २१ से ३० तक अनामय तेज दर्पान चित्र ।

| शक्ति | कारण बिन्दु प्रमाण | सूक्ष्म रेरवा प्रमाण | स्थूल मूर्ति प्रमाण | अंक | अध्यात्म विज्ञान नियम प्रमाण |
|---|---|---|---|---|---|
| ३ | | ▽▽▽▽▽▽▽ | ▽ ○ ○ | २१ | तीन काल और प्रकृतियों का विस्तार भूत भविष्यत वृत्मान एकरूप |
| ४ | | ▽▽▽▽▽▽□ | □ ○ ○ | २२ | महा काल अकाल रूप |
| ५ | | ▽▽▽▽▽□□ | ▽▽□□ ○ | २३ | तीन गुण पंच मात्र पंच भूत दश इन्द्रिय का एक स्वरूप |
| ६ | | ▽▽▽▽□□□ | ▽▽ ○ ○ | २४ | जिन सिद्ध नाम अषूधा प्रकृति का त्रिगुण-आत्मक एकरूप |
| ७ | | ▽▽▽ □□□□ | ▽□ ○ ○ | २५ | पंची करण नाम २५ तत्व का एकरूप |
| ८ | | ▽▽□□□□□ | □□ ○ ○ | २६ | प्रपंच का साक्षी एक परम तत्व रूप |
| ९ | | ▽□□□□□□ | ○ ○ ○ | २७ | मरुप नक्षत्र फला एक स्वरूप |
| १० | | □□□□□□□ | ▽▽□ ○ ○ | २८ | शिशुमार चक्र अभिजत शून्य रूप ॐ अनामय स्वरूप |
| ११ | | ▽▽▽▽□□○ | ▽□□ ○ ○ | २९ | चन्द्र गति चक्र रूप मास क्रम का एक स्वरूप |
| १२ | | ▽▽▽□□□○ | ▽ ○ ○ ○ | ३० | सूर्य गति चक्र रूप मास क्रम का एक रूप सक्रान्ति मास का प्रमाण |

बस इतना ही प्रकृति का विस्तार है। आगे विशेष रूप से इन तीनों अध्यात्म तेजय चित्रों का यही
अमर नाम रूप ३३ के एक अंक में ऐसा तत सार है कि तेजय विन्दु (०) अनामय अमर रूप है और
इस तेजय विन्दु की प्रकाश रूप पांच रङ्ग की पांच किरण हैं कि जिन का एकरस अनामय अङ्ग नाम है
और इन्ही पाच किरण विन्दुओं को पांच प्रणव कहा जाता है और इन पांच प्रणव का ज्योतिमान
पांच रेरवा समान पाच रंग रूप में विश्व विराट का संपूर्ण चित्र है कि जो पांच रेरव रूप से पांच प्रणव
संयोग से ऊपर वर्णित ३० प्रकार की प्रकृति प्रकट हुई है सो इस ३० भांति की प्रकृति का अमर रूप
अङ्ग में ऐसा स्वरूप है कि एक रूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१३८ इसी त्रिगुणात्मक रूप को प्रणव बिन्दुमान प्रकाश आकृति ⋮ और रेखा मान ज्योति से ३० भांति की आकृति ३० प्रकृति का रूप प्रकृति प्रमाण प्रकट रूप में इसप्रकार उत्पन्न है कि एक बिन्दु तेज (०) बिन्दु और तेज बिन्दु से प्रकट होने वाली पांच किरणों का प्राकाश बिन्दु अर्थात (⋮) पांच प्रणव नाम है और इन पांच प्रणव से प्रकट होनेवाली पांच रेखा (≡) का ज्योति स्वरूप है और पांच प्रणव नाम (⋮) आकृति १ और पांच रेखा नाम (≡) आकृति २ और इन दोनों के संयोग से उत्पन्न होने वाली ३० प्रकार की आकृतियों का नाम प्रकृति और ३० प्रकृति और पांच प्रणव रूप आकृति १ और पांच रेखा रूप आकृति १ इन ३२ आकृतियों का नाम दर्शन स्वरूप है और यह दर्शन स्वरूप ३२ के अंकित प्रमाण नाम में एक ही तेज बिन्दु नाम से अनामय अमर स्वरूप है। और ३२ के अंक का दर्शन नाम है कि जिस का दल अर्थात अर्द्ध भाग्य अष्टि रूप अर्थात शोडषी कला चक्र स्वरूप है कि जो तत्व विज्ञान क्रम नियम अनुकूल काल चक्र रूप बना हुआ नित्य ही एक रस चलायमान है। इसी कालचक्र तत्व विज्ञान नियम शोडशी कला रूप अष्टि के दो नाम आकृषा और कृषा अष्टि हैं कि जिन के दो रूप होने से तीन नाम कि जिनके एकही अर्थ हैं अर्थात - अश्विव १ दस्र १ यन १ है कि जिन का अर्थ २ है इसलिये विद्या अविद्या उजयार अन्धयार मित्र शत्रु नाम से जिस एक वस्तु में दो भाव प्रकट होते हैं उसी को एक अङ्ग रूप अश्विव दस्र यन कहा जाता है यह अष्टि स्वरूप से अर्थात १६ के अंक के निर्पक्ष रूपी १ का अंक निकाल कर शेष के १५ अंक को देखा जाए तो यह शेष १५ का अंक पक्ष रूप में निर्पक्ष ही रहता है और इस प्रकार ३२ का अमर रूप अंक के पूर्ण पांच भाग्य होजाते हैं कि जो निर्पक्ष रूपी अम्ब १ खं १ अम्ब १ गगन १ पूर्ण १ पांच नाम से प्रसिद्ध हैं और निर्पक्ष एक रूप एक स्वरूप हैं कि नाम के कित भेद भाव से भेद प्राप्त नहीं होते एक रस एक रूप एक अंग हैं। किंतु प्रपंच में अर्थात माया के द्वैत भाव में इन पांचों के पांच नाम हैं। अर्थात तीन को तीन गुण सत रज तम और दो को शुक्ल १ और कृष्ण २ दो पक्ष कहा जाता है। पक्ष एक रस खिंची हुई डोरी का नाम है कि जिस में किसी प्रकार से किसी प्रकार का किञ्चित न्यूनाधिक खेंच तान न बने इस लिये नाम इस का तिथि है और तिथि १५ के अंक को कहा जाता है कि जिसका नाम आयन मूर्ति है और आयन मूर्ति का अर्थ जो प्रकट है वह ये है कि आयन नाम नहीं है द्वैत का रूप कोई भी किसी प्रकार से कोई पक्ष भेद कारण कि पक्ष नाम निर्पक्ष स्वरूप अद्वैत अनामय का है कि जो भेदा भेद रहित एक ही एक रस अङ्ग रूप आयन मूर्ति द्वैत भाव से रहित अद्वैत स्वरूप है कारण ये है कि १५ का अंक ६ का अंग रूप है और ६ का अंक यन का स्वरूप है कि जो ३-३ के भेद में ३३ बना हुआ ३ का रूप है सो १५ को ३ से गुणा करने पर १५×३=४५ के ४५ का एक अंक बनता है और ४५ का अंक एक ही ९ के अंक का जोड़ रूप है। और ४५ के अंक को ९ पर भाग देने से ५ की प्राप्ति है कि जो पांच प्रणव एक रूप में सर्व प्रकाश स्वरूप ऐसा (⋮) रूप है और इसी का दिक नाम में दूसरा दशराशि विराट नाम ऐसा (≡) स्वरूप है और इन दोनों आकृति में पांच प्रणव रूप का नाम (⋮) पुरुष और पांच रेखा रूप का नाम (≡) माया अर्थात पुरुष शक्ति या प्रकृति है। और नाम मात्र को पुरुष चेतन या चर स्वरूप है और माया नाम प्रकृति अचर अर्थात जड़ रूप है। और पुरुष प्रकृति के संयोग से ३० प्रकार की प्रकृति का सृष्टि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाम है कि जिस सृष्टि के रूप में केवल तेजय विन्दु ही सर्व सृष्टि रूप है। क्योंकि दो पक्ष की ⁝ = ये दोनों मूर्ति १५ विन्दु के स्वरूप में एक निर्पक्ष आयन अद्वय रूप है। सो जब पुरुष से गर्भाण विन्दु अपनी ज्योति विन्दु को अपनी ओर खेंचती है तो इस प्रकार पूर्ण प्रकाश में ५ का भेद प्रतीत होकर पूर्ण प्रकाश पुरुष का रूप ⁝ ऐसा होजाता है और माया प्रकृति का ऐसा स्वरूप इसी ५ के अंक भेद में = प्रतीत होने लगता है और ये दोनों मूर्ति ५ प्रणव के एक ही अभेद रूप में भेद रूपी शुक्ल और कृष्ण के जो दो रूप प्रकृति में उज्यार अन्ध्यार के हैं उनके एकरस आदि अनादि लक्ष को दिखाकार कर ⁝ ये प्रकृति आकृति सूर्यास्त अर्थात प्रतिपदा कृष्णा अपना नाम प्रकट करती है और ये = प्रकृति आकृति चन्द्रोदयादि अर्थात प्रतिपदा शुक्ला अपना नाम बताती है। इसलिये सर्व सृष्टि एक ही अनामय तेजोमय परब्रह्म अमर रूप की सूर्य चन्द्र वंशी नाम रूप वाली दोनों वंश रूप में एक ही गर्भाकेश संसृति सन्तति अर्थात संतान है भेद भाव कुछ भी नहीं कारण कि जो भेद भाव है वही प्रपंच रूप है। सो इससे आगे इन्हीं दोनों पुरुष और माया मूर्तियों में जड चेतन का भेद भाव इसप्रकार खण्डन होता है कि ⁝ ये मूर्ति स्वयं प्रकाश होने पर भी ५ अंक के भेदाभेद के कारण अचेत होती है। और ये = मूर्ति चेतन का लक्ष दिखाती है अभिप्राय ये है कि जड चेतन का कोई भाव भी सिद्ध नहीं है जो जड है वही चेतन है और जो चेतन है वही जड है अर्थात माया ही पुरुष है और पुरुष ही माया है। आश्चर्य ये है कि चेतन और अचेत अर्थात चेतन और जड दोनों नाम मात्र के दो दल अर्थात आधे आधे दो टुकड़े प्रतीत होते हैं किंतु जिस किसी वस्तु के ये दोनों टुकड़े छोटे बड़े प्रतीत होते हैं वह एक ही अनामय ब्रह्म अमर रूप है इसलिये न चेतन है न जड है स्वयं सर्वत्र एक ही तेजय स्वरूप है। सो यही तेजय स्वरूप इसी प्रकार ५ के अंक भेद से अभेद रूप विन्दु के ही प्रमाण में माया से = द्वितीय शुक्ला और प्रणव पुरुष से ⁝ द्वितीय कृष्णा प्रकट हो फिर माया से = तृतीय शुक्ला और पुरुष से ⁝ तृतीय कृष्णा रूप बना फिर माया से = चतुर्थ शुक्ला और प्रणव से ⁝ चतुर्थ कृष्णा की आकृति का प्रकाश रूप हो फिर माया से = पंचम शुक्ला और प्रणव से ⁝ पंचम कृष्णा का रूप बना आगे बढ़ने के प्रथम ही प्रकट रूप में ये सब ⁝ = ⁝ = = ⁝ = ⁝ = ⁝ १२ आकृति अपने को १२ रूप रेखा में अपने को देश का रूप देती हुई देश नाम रूप में १२ सूर्य या १२ रवि या १२ अर्क का लक्ष दिखा अपना नाम रोना १ चिल्लाना २ गाना ३ और हंसना ४ इन चारों नाम मात्र प्रकृति का एक कृत युग नाम प्रमाण में अपना एक नाम और चार काम रूप होना प्रकट का फिर इन ⁝ = दोनों के अन्य जो दस आकृति रहती हैं यह अपने को दिक नाम नाम रूप से दस हिरण्यगर्भ होना प्रकट कर अपने को दस नाम दृष्टि ज्ञान प्रकृति स्वरूप के इसप्रकार देती हैं कि ⁝ ये आकृति अन्ध्यारा नाम प्रकृति का १ रूप है और = ये आकृति उज्यारा नाम प्रकृति का दूसरा रूप है और ये तीसरी = मक्षक नाम है और ये ⁝ मक्ष्य नाम की चौथी आकृति प्रकृति है और ये = पांचवी द्रित नाम रखती है और छटी ⁝ अद्रित नाम वाली है और ये सातवीं = बली नाम है और आठवीं ⁝ का निर्बल नाम है। नवीं = का संयोग और ⁝ दसवीं का वियोग नाम है। आगे दो दो विन्दु के उतार चढ़ाव से इन्हीं दोनों माया = ⁝ और पुरुष से ⁝ = प्रकार की ये आकृति प्रकृति प्रकट होती हैं अर्थात माया से षष्ठी शुक्ला ⁝ और प्रणव से ⁝ कृष्णा और माया से = सप्तमी शुक्ला और प्रणव से ⁝ सप्तमी कृष्णा फिर माया से = अष्टमी शुक्ला और प्रणव से ⁝ अष्टमी कृष्णा फिर माया से नवमी शुक्ला = और प्रणव से ⁝ नवमी कृष्णा ये = ⁝ = ⁝ = ⁝ = ⁝ आठ आकृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकृति अष्टधानाम रूप में आदि नाग गज द्विप भूजङ्ग रूप से चार आकृति प्रकृति शब्द व्यापारमे १ ये रूप वाली रोना नाम है और दूसरी ये ⋮ हंसना रूप रखती है और तीसरी ये ⋮ गाना नाम रखती है और चौथी ये ⋮ चिल्लाना नाम से प्रसिद्ध है इसके आगे ये चार अर्थात ⋮ ⋮ ⋮ ⋮ ये चारों चार प्रकार के संसर्ग जन्य विकार रूप वाली आकृति प्रकृति हैं कि इनमें पहली का नाम प्रेम दूसरी का नाम क्रोध और तीसरी का नाम भय और चौथी का रोग नाम है। और इस प्रकार प्रथम की १२ और ये आठों सर्व २० रूप वाली आकृतियों का नरव स्वरूप होजाता है कि विश्व धारी प्रजापति एक नाम है-

आगे माया ⋮ और प्रणव से कि हो दो बिन्दु के उतार चढ़ाव से य ६ आकृति प्रकृति उत्पन्न रूप हैं अर्थात माया से ⋮ दशमी कृष्णा और प्रणव से ⋮ दशमी शुक्ला हो और माया से ⋮ एकादशी कृष्णा और प्रणव से ⋮ एकादशी शुक्ला हो और माया से द्वादशी ⋮ कृष्णा १ और प्रणव से ⋮ द्वादशी शुक्ला १ ये ⋮ १ ⋮ २ ⋮ ३ ⋮ ४ ⋮ ५ ⋮ ६ आकृति प्रकृतियां देश और काल की अंग रूपी ६ मूर्ति ६ दिशा और ६ ऋतु रूप एक अंग रूप ६ शरीर धर्म समान इस प्रकार ६ नाम वाली हैं कि पहली का नाम पीना है दूसरी का नाम खाना है तीसरी का नाम मल मूत्र का त्याग करना है चौथी का नाम मैथुन पांचवी का नाम आलस्य और छटी का नाम निद्रा है। और प्रणव ⋮ १ और माया १ इन दोनों के अन्य जो २४ आकृति प्रकृति रूप की शेष रहती है इन्हीं का नाम जिन है और और यही सिद्ध नाम से अष्टधा प्रकृति का त्रिगुणात्मक रूप हैं। कि जिस से आगे देश और काल के चक्र का गम नहीं है इस लिये चक्र की फुरना जो नित्य एक रस रहती ही फिर उलटी से सीधी और सीधी से उलटी होजाती है। अभिप्राय ये है कि इसी स्थान पर आकर देश का अंत स्थान है जब कालका चक्र घूमता इस स्थान पर आता है तो फिर उलटा घूमने लगता है। और इस प्रकार घूमता हुआ जब फिर इसी स्थान पर आता है तो फिर सिधा घूमने लगता है। बस इतने ही समय का नाम एक कल्प है कि जो अनामय स्वरूप अमर ब्रह्म तेजय रूप का एक दिन है और इतनी रात है आशय ये है कि जब काल चक्र सीधा घूमता है तब दिन होता है और जब देश के आदि तक घूमता हुआ आकर फिर उलटा घूमना आरम्भ करता है तब रात होती है और इस एक दिन रात में १४ मनु उलटे सीधे नित्य एक रस ही घूमते रहते हैं कि जो १४ होनेपर २८ का लक्ष दिखाते हैं। यही कारण है कि प्रति पदा कृष्णा ⋮ आकृति प्रकृति चतुर्दशी शुक्ला और द्वित्या कृष्णा ⋮ त्रियोदश शुक्ला बनजाती हैं। और कृष्णा त्रियोदश और चतुर्दशी का स्थान ⋮ ⋮ शुक्ला प्रति पदा और द्वित्या पूर्ण करती हैं। सो इस कार्य कारण का नाम अशब्द वेद है और दो और दो के मिश्रित रूप का नाम ४ अर्थात चार वाक्य भेद अभेद रूप अन्तः करण रूपी अधिष्ठान है कि जिस के अब्धि १ कृत २ गो ३ युग ४ सागर ५ वेद ६ ये ६ नाम हैं कि जो ६ः जीव लक्षण रूप - राग द्वेष इच्छा १ द्वेष २ सुख ३ दुःख ४ यत्न ५ और ज्ञान ६ प्राकृतिक आकृति शब्द रूप से ३० भांति की प्राकृतिक क्रिया का पूर्ण आकार हैं कि जिस से प्राणी मात्र की उत्पति पालन और नाश होता रहता है सो ४ वाक्य अंक भेद जो २४ के रूप में ६ः जीव लक्षण हैं यही प्रकृति विस्तार है। इसलिये गणेश १ महेश २ ब्रह्म ३ शक्ति ४ अर्थात चित १ अहंकार २ बुद्धि ३ मन ४ अन्तः करण रूप की चार आकृति प्रकृति कि जो २४ से आगे आकृति प्रकृति की समान बनती हैं। और तेरश चौदश के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

स्थान पर कृष्ण और शुक्ल के भेद पक्ष को अभेद करती हैं वह माया ≡ और प्रणव ⁝ से इस प्रकार प्रकट होती हैं कि दो दो बिन्दु के उतार चढ़ाव से प्रणव ⁝ त्रियोदश शुक्ल का रूप और माया ⁝ त्रियोदश कृष्ण का रूप फिर प्रणव ⁝ चतुर्दशी शुक्ल और माया से ⁝ चतुर्दशी कृष्ण का रूप बनके रहती है कारण यह है कि ये आकृति अष्टि रूप को पूर्ण रीती से दोहो अष्टि में बांट के ज्ञान रूप के पूर्ण ४ भाग्य कर देती हैं इसप्रकार ३० प्रकृति से २८ प्रकृति के रूप प्रकट हुए अब शेष रही दो यह भी दो बिन्दु के ही उतार चढ़ाव से प्रणव (शुक्ल) और माया (कृष्ण) से इस प्रकार प्रकट है कि प्रणव से ⁝ नवम रूप १ और माया से ⁝ नवम रूप १ सब जीव लक्षण रूप में ⁝ १ ⁝ २ ⁝ ३ ⁝ ४ ⁝ ५ ⁝ ६ आकृतियां हैं इनमें त्रियोदश ⁝ शुक्ल का इच्छा नाम है और दूसरी ⁝ त्रियोदश कृष्ण का द्वेष नाम है और तीसरी ⁝ चतुर्दशी शुक्ल का सुख नाम है और चौथी ⁝ चतुर्दशी कृष्ण का दुख नाम है पांचवी पूर्ण उज्यार से ९ का रूप है इस्का ज्ञान नाम है और उत्तर ध्रुव रूप बम्ब है छुटी का ⁝ पूर्ण अन्ध्यार नाम है और स्वरूप ९ का अंक है इस्का यत्न नाम है इस प्रकार ये ३० प्रकार की प्रकृति आकृतियां प्रणव व माया आकृति सहित ३२ के अंक में ३२ अंक के एक अमर नाम ब्रह्म का ज्ञान रूप है अर्थात ज्ञान नाम शरीर के ३२ अङ्गों का है और ३२ अंग पुरुष का एक रूप है कि जो प्रकृति विस्तार है और यही प्रकृति विस्तार सर्व सृष्टि का रूप और अनामय ब्रह्म का एक स्वरूप इस प्रकार से बन रहा है कि प्रणव ⁝ शरीर का दाहणा दल अंग और माया ≡ शरीर का बायां दल अंग तेजय बिन्दु सहित पूर्ण एकही तेजस्वी पूर्ण ब्रह्म स्वरूप है इस स्वरूप में ⁝ ज्ञान नाम रूप आकृति दाहनी नेत्र है और यत्न नाम आकृति ⁝ बांयी नेत्र है और ⁝ आकृति चित रूप है कि जो इच्छा का स्वरूप है और ⁝ ये आकृति अहंकार का रूप है कि जो द्वेष का स्वरूप है और ये ⁝ आकृति बुद्धि का रूप है कि जो सुख स्वरूप है और ये ⁝ आकृति मन का रूप है कि जो दुःख दाई है। आगे ⁝ ⁝ ये दो आकृति खान पान रूपी आकाश रूप में मुख का नाम है कि जिसमें जिह्वा और दांत हैं इसी प्रकार गुदा आदि के सब ३२ अंग हैं कि जो आगे प्रकट होंगे क्योंकि ३२ के अमर रूप में माया नाम मात्र का आभास है कि जो लिंग शरीर के अन्धार छाया तुल्य ही गुप्त रहती है इसलिये ज्ञान रूप की दो अष्टियों से कि जो १६-१६ अंक का एक एक दल है इस में एक अष्टि दूसरी अष्टि के अन्धार गति रहती है। और स्वयं तेज बिन्दु से दो आयन रूप में इस प्रकार अष्टि और अष्टि से आयन की उत्पति है कि गणेश १ महेश २ ब्रह्मा ३ शक्ति ४ ये ⁝ चार प्रणव हिरण्यगर्भ रूप में बिन्दु रूप ९ अंक का आकार है और ९ अंक १५ का एक रूप है इसलिये चारों प्रणव बिन्दु के प्रथम का १ दूसरी के २ और तीसरी के ४ और चौथी के आठ अंक हैं कि जो १+२+४+८=१५ के होते हैं इसलिये ये चार प्रणव पूर्ण स्वरूप का एक आकार हैं और अन्तः करन का प्रकृति रूप है कि अंक जिसके ३० हैं इस लिये चार रेखा (≡) रसरंग नाम प्रकृति स्वरूप में ३० का पूर्ण अंक रखने वाली है सो इस प्रकार दोनों आकृतियों में १२ शून्य बिन्दु देश रूप हैं और अंक जोड़ १५+३०=४५ है कि जो ९ का एक जोड अंक है। ४५ को ९ पर भाग देने से ५ का अंक पांच प्रणव रूप प्राप्त है इसलिये चार प्रणव रूप बिन्दु आकृति का नाम (⁝) जनक है और चार (≡) रेखा आकृति का माया है। और दोनों मूर्तियों से पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिये और पांच महाभूत की उत्पति है कि जिस में कान आंख नेत्र नाक और खान ज्ञानेंद्रिये और पांव हाथ वाणी उपस्थ गुदा कर्मेन्द्रिय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१५०

हैं कि जिस में आकाश माया रूप है मन रूप है अन्तःकरण रूप है। इसकारण दशइन्द्रिय और चार अन्तःकरण के रूप में इन्द्रनाम से अनोमय स्वरूप प्रकट हुआ और ऊपर वर्णी हो मूर्ति आकृतियों से १४ मूर्ति प्रकट रूप प्रकृति की उत्पन्न हो पक्ष अयन और अष्टि रूप में समाप्त होगया और आदि अन्त का भेद न रखकर अष्टि रूप से एक लिंकी रूप में अपना अमर रूप दिखाने लगा कि जैसे आगे वर्णन है। क्योंकि प्रणव मूर्ति (⋮) चतुष्टअन्तःकरण चित अहंकार बुद्धि और मन का रूप है और दिक्स्वरूप है। और माया मूर्ति (≡) नरव रूप प्रजापति स्वरूप है कि २० प्रकार की प्रकृति मे पंचमात्रा शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ और पंच ज्ञानेंद्रिय और पंच कर्मेंद्रिये और पंच महाभूत का रूप है इसलिये सर्व एक ही स्वरूप है। आगे गणेश विन्दु चित स्वरूप है और महश विन्दु अहंकार का रूप है ब्रह्मा विन्दु बुद्धि का स्वरूप है और मन विन्दु शक्ति का रूप है और सृष्टि संसार व्यक्त व अव्यक्त जो संसार है देश और काल में जो प्रकृति विस्तार है वह स्वयं अकाल तेजय (·) का ही अद्भय रूप विस्तार है। सो (⋮) जनक रूप मूर्ति उत्तर ध्रुव रूप है और माया (≡) दक्षण ध्रुव रूप है। सो जब काल चक्र घूमता हुआ देश के स्थान पर आता है तब उत्तर ध्रुव से उलटा और दक्षण ध्रुव से सुलटा चक्र एक ही चक्र दो प्रकार से चलता है। अभिप्राय ये है कि माया मूर्ति तो प्रकाश रूप से अन्तःकरण के प्रकाश रूप में प्रवर्तन करती चली जाती है और दक्षण से पूर्व की ओर उत्तर ध्रुव तक पहूंचकर माया मूर्ति से प्रणव रूप बनाती है। और प्रणव मूर्ति पश्चम की ओर अन्धकार में प्रवेश करती हुई दक्षण ध्रुव तक पहूंच माया मूर्ति बन जाती है इस प्रकार उलटा सीधा माया और प्रणव चक्र दो दल रूप में ३० प्रकार की प्रकृति रूप से दो अष्टि नाम से एक रस होता है। और इन से इस प्रका सात दिन और सात रात्रि के रूप से १४ आकृति प्रकट होती हैं। और इसी का नाम कल्प और मनु १४ मन्वंतर है जैसेकि प्रणव ⋮ से प्रथम चित विन्दु अपने स्थान से चलायमान हो माया के चित रूप रेखव आकार की ठौड़ स्थिति हो तो इस प्रकार दो आकृतियाँ उत्पन्न होजावें गी अर्थात माया से ≡ ये मूर्ति कि नाम इसका चेतन बृहस्पति है और जनक से ⋮ ये मूर्ति कि नाम इसका अचेत बृहस्पती है इसी प्रकार अहंकार विन्दु के चलायमान होने पर और माया के अहंकार रूप रेखा के स्थान पर स्थिति होने और अपनी जगह रेखा को देने से जो दो मूर्ति प्रकट होती हैं उनमें माया से अहंकार भूमिकुमार ⁝ ये मूर्ति है और जनक से ⁝ अहंकार अचेत भूमि मूर्ति दूसरी मूर्ति इसी प्रकार तीसरी बुद्धि विन्दु के चलायमान होने से माया से चन्द्रा चेत ⁝ मूर्ति और जनक से ⁝ भृगु चैतन्य मूर्ति आगे इसी प्रकार मनविन्दु के माया से ≡ शीं अचेत मूर्ति और जनक से ⁝ बुद्धा चैतन्य मूर्ति प्रकट होके आगे दो दो विन्दु के स्थान पलटने पर जनक से आदित्य ⁝ चेतन मूर्ति और माया से अचेत आदित्य मूर्ति ⁝ फिर आगे जनक से ⁝ चन्द्र चेतन मूर्ति और माया से ⁝ बुद्धा अचेत मूर्ति फिर जनक से ⁝ भृगु अचेत मूर्ति और माया से शीं चेतन मूर्ति कि जो १४ आकृति प्रकृति का रूप इस गति से हैं कि ≡ १ ⁝ २ ⁝ ३ ⁝ ४ ⁝ ५ ⁝ ६ ⁝ ७ ≡ ८ ⁝ ९ ⁝ १० ⁝ ११ ⁝ १२ ⁝ १३ ⁝ १४ ⁝ १५ कि जिनका इसप्रकार से ध्रुव चक्र बनता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१ कल्परूपी १४ मनु के ३० प्रकृतिरूप ध्रुव चक्र में १४ से आष्टि नाम १६ स्वरूप

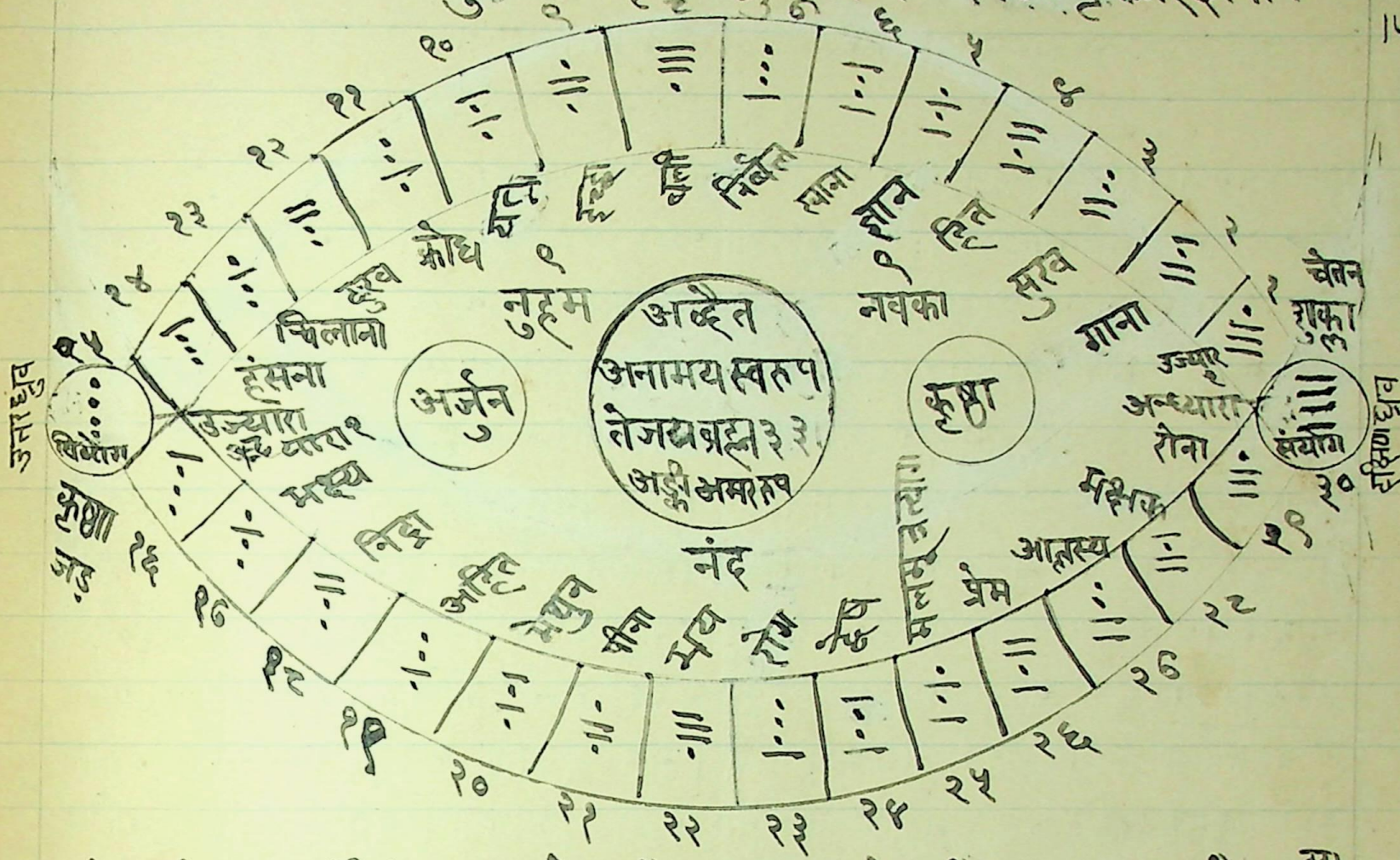


इसके आगे इस मूर्ति ≡ का नाम गणेश और ≡ इसका महेश और ⁝ इसका ब्रह्मा और ≡ इसका शक्ति है इसका ÷ चेतन ब्रह्म है ये ⁝ महेश ब्रह्म है ये चेतन महेश ब्रह्म ⁝ है ये ≡ शक्ति है ये ÷ चेतन शक्ति है ये महेश शक्ति ÷ है ये ÷ चेतन महेश शक्ति है ये ≡ ब्रह्मा शक्ति है ये ÷ चेतन ब्रह्मा शक्ति है और ये ⁝ महेश ब्रह्मा शक्ति है और ये ⁝ प्रणव रूप है और ये ≡ माया शक्ति स्वरूप है। इसप्रकार ३० प्रकृति दो अष्टि दोपक्ष रूप हैं कि जिसमें ४ अष्टि का रूप दर्शन रूप स्वरूप में इसप्रकार प्राप्त रूप है कि प्रथम चेतन फिर अहंकार फिर बुद्धि फिर मन की विन्दुओं का चुनाव किया जाए तो अलग अलग चारों अष्टी प्रकट होंगी जैसे कि -

(१) चेतन्य विन्दु अष्टि में ≡ ⁝ ÷ ⁝ ≡ ÷ ÷ ⁝ - ये आठ चेतन्य विन्दु हैं ऐसे ही
(२) अहंकार विन्दु अष्टि में ≡ ⁝ ⁝ ⁝ ≡ ⁝ ⁝ ⁝ - ये आठ अहंकार विन्दु हैं ऐसे ही
(३) बुद्धि विन्दु अष्टि में ≡ ÷ ⁝ ⁝ ≡ ÷ ⁝ ⁝ - ये आठ बुद्धि विन्दु हैं ऐसे ही
(४) मन विन्दु अष्टि में ≡ ÷ ÷ ⁝ ≡ ÷ ⁝ ⁝ - ये आठ मन विन्दु हैं और फिर

ये ३२ विन्दु दर्शन रूप हैं कि जो एक ही तेजय (·) विन्दु से कि जो स्वयं तेज है और माया रूप (≡) है माया और प्रणव सहित अनामय स्वरूप की देह के ३२ टुकड़े हैं कि जो प्रथम की आठ विन्दु में सिर १ आंख दो कप्पाल १ जिह्वा १ दांत और दो कान ८ नीचे की आठ विन्दुओं में गला १ कंधे २ छाती १ हृदय १ मन १ दोनों ओर की पसलियां ८ इनके नीचे की आठ विन्दु में कौडी १ पेट १ नाभि १ कमर चुतड़ों सहित १ पेडू १ उपस्थ १ गुदा १ रान १ ये ८ आंग रान बावीं १ घोंटे २ पिंडली २ गट्टे पांव के २ और पंजे पैरों के ८। ये सब प्रकृति का विस्तार और अध्यात्म विज्ञान का सार है और ये सब समान वायु का प्रकाश है कि जो एक अध्यात्म आनंद है कि जिस में न विशेषता है न भिन्नता स्वयं अभेद रूप तेजय स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और इस तेज स्वरूप में नित्य ही एक रस -

१५२ सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ॥ रात्रिं युगसहस्रांतां ते होरात्रविदो जनाः ॥ ४९॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

सहस्रयुग पर्यंतम - अर्थात १८ तत्व रूपी एकांतिक शरीर भेद सत्रह लक्ष रूप में और अट्ठावीस सहस्र अर्थात १४ मनु के ३० प्रकृति रूप अष्टिनाम १६ स्वरूप अर्थात २८ गति भेद रूप और तीन ०० शून्य विश्व तेजस और तेज का भेद १७२८००० सत्युग का परिणाम रूप और बारह लक्ष छियानवें सहस्र वर्ष काल भेद अर्थात १२ लक्ष में देश नाम रेखा भेद और ९६ सहस्र में १५ रूप अंक का तीन शून्य विश्व तेजस और तेज का काल रूप भेद त्रेता युग परिमाण भेद और आठ लक्ष चौंसठ सहस्र वर्ष रूप ८ लक्ष में अष्टि नाम अष्ट कला भेद और ६४ सहस्र में ६३ रूपी एकही सहस्र पुरुषाद्य अद्वैत त्रि शून्य विश्व तेजस और तेज भेद द्वापर युग परिमाण रूप भेद और द्व्यालिलक्ष बत्तीस सहस्र वर्ष रूप में ४ लक्ष से चतुरंगी अन्तः करण भेद और ३२ के अंक में दशन रूप भेद तीन शून्य अमर रूप तेजस तेज विश्व भेद कलियुग का परिमाण रूप भेद अभेद रूप में - अहः - अर्थात एकदिन यत् मेरा ब्रह्मणः ब्रह्मा रूप नाम विदुः जान रूप एकही सहस्र पुरुषाद्य युग रूप व्याप्त रूप स्वरूप प्रजापति नाम ब्रह्मा का एक दिन अर्थात उच्चार रूपी आकृति कल्प नाम नाम संख्या ४३२०००० वर्ष रूप काल की एक कल्पना मात्र आकृति प्रकृति १४ मन्वंतर रूप विद्या का स्वरूप ज्ञान का लक्ष हुः बिन्दु में एक तेजय अनामय बिन्दु निर्पक्ष स्वरूप ही ब्रह्म देव दिन रूप है। रात्रिं - अर्थात इसी प्रकार से रात्रि - युग सहस्रांतां - सहस्र पुरुषाद्य चतुर्युग स्वरूप ते उच्चार के भिन्न अन्धार रूप अहो रात्रविदः - दिनरात एकही रूप एकही स्वरूप जनाः जान संज्ञा है अर्थात जीवहै

आशय

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू कहता है। कि न प्रकृति है न पुरुष है सब व्यक्त अव्यक्त के तथा क्षर और अक्षर जगत के मूल में एकरस केवल में अद्वितीय अनाम स्वरूप ही परम तत्व से अध्यात्म आनंद सिद्ध सिद्धान्त स्वरूप उच्चार अन्धार रूप में एक रस जीव रूप जीव बना हुआ सृष्टि रूप में उत्पति और संहार लक्ष से दिनरात का योग युग भेद अर्थात पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार से आठ प्रकार की प्रकृति रूप सर्वही संसार सृष्टि रूप और एक निरधार रूप सर्व सृष्टि का अद्वय सृष्टि धारण स्वरूप जीव नाम कि जो सृष्टि के पदार्थों का ज्ञान स्वरूप है। सर्व सृष्टि एक ज्ञान रूप ज्ञाता स्वरूप परम पुरुष दिन रात्री सम सदैव योग युग व्यवस्था रूप से कल्प अर्थात देश काल कल्पना चित्र में उत्तरायण रूप देवत दिन और दक्षिणायन रूप देवत रात मेरु पर्वत नाम अनामय स्वरूप दो अयनों का एक वर्ष अर्थात काल रूप युग योग भेद स्वयं तेज से सत्य अर्थात तेजय और रज अर्थात प्रकाश और ज्योति अर्थात विश्व रूप में तम रूप से योग युग का सार जीव रूप में जीव १ बुद्धि १ मन १ शरीर रूपी देह १ एक से चार नाम और मनुष्य १ पक्षी २ निशचर रूप पशु ३ और केड़े मात्र सर्प बिच्छु आदि एक से ४ नाम और कारण १ सूक्ष्म २ स्थूल रूप वृक्षादि ३ और जड़ रूप मिट्टी पत्थर आदि ४ एक से ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाम और ज्ञानी १ योगी २ विद्वान ३ मूरख ४ एक से ४ नाम और पीला १ हरा २ श्वेत ३ काला ४ एक से चार नाम और चर १ चराचर दूस्वभाव २ एकत्रा ३ और स्थिर ४ एकसे चार नाम और चिर्चरा १ मधुर २ नमका ३ खट्टा ४ एक से ४ नाम और गर्म १ नर्म २ ठन्डा ३ - सूखा ४ एक से चार नाम और अग्नि १ वायु २ जल ३ पृथिवी ४ एक से चार नाम और पुरुष १ हीजड़ा २ स्त्री ३ हीजड़ी ४ - एक से ४ नाम और अतिसूक्ष्म १ सूक्ष्म २ बोफल ३ और अति बोफल ४ एक से चार नाम और पूर्व १ पश्चम २ उत्तर ३ दक्षण ४ एक से चार नाम और बालक १ युवा २ अधेड़ ३ बृद्ध ४ एक से चार नाम और गरमी १ वर्षात २ सियाला ३ पतझड़ ४ एक से ४ नाम और उत्तम १ शुद्ध २ मध्यम ३ निषेद्ध ४ एक से ४ नाम और गुण १ कर्म २ स्वभाव ३ भ्रम ४ एक से ४ नाम और कला १ दिन २ मास ३ वर्ष ४ एक से ४ नाम और प्रभात १ दोपहरी २ तिपहरी ३ संध्या ४ एक से चार नाम और ऊंचा १ एकरस २ नीचा ३ और ऊंचानीचा ४ एक से चार नाम और १ - १० - १०० - १००० एक से चार नाम और चौड़ा १ लम्बा २ और बौणा ३ और छोटा ४ एक से चार नाम और इन चार चार नामों से अनेक नरव रूप में प्रजापति नाम वाला ब्रह्मा ३६० दिनका और रात का एक रूप कृत अर्थात सत्य १ त्रेता २ द्वापर ३ और कल्युग ४ चतुर्युग का ही वर्षकाल संज्ञा में चतुर्युग रूप इस प्रकार कि कृत के ४ त्रेता के ३ द्वापर के दो और कलि का एक सब मिल के दिक नाम इश हिरणयगर्भ में १० का अंक ९ अंक और विन्दु का एक ही प्रमाण तेज स्वरूप सिंधि और सिंध्यानस का रूप कृत युग चार का लक्ष ४०० का सिंधिसिंध्यानस रूप इसी प्रकार त्रेता ३०० का लक्ष द्वापर दो २०० का लक्ष और कलि १०० का सिंधि और सिंध्यानस रूप १००० सहस्त्र पुरुषाद मेरा ही एक अनामय स्वरूप १०००×२=२००० के सिंधि और सिंध्यानस एक कल्प रूपी दिन और रात्री का नाम है और इसमें कृत के ४००० त्रेता के ३००० द्वापर के २००० और कलि के १००० सब मिलकर १२००० वर्ष १२ बतीन विन्दु का लक्ष और तीन विन्दु एक विन्दु का लक्ष देश रूपी स्वयं मेरा एक स्वरूप है। कि जो अनामय रूप है। और यह योग युग व्यवस्था वह भेद है कि जिस के सार तत्व को समझना दिन रात्री के भेद अर्थात मिथ्यानाम मात्र के जीवन मरण भेद को मिथ्या नाम मात्र से जान लेना है। अर्थात गूढ कल्प के लक्ष को सिद्ध करना है। कारण ये है कि यही मनु इन्द्र भेद है कि जो ४ अर्ब ३२ कोट वर्ष अर्थात कला के भेद में मेरा अशब्दरूप स्वरूप में अद्वय अभेद नाम रूप वेद है। यह अभेद रूपी वेद मथ्यानाम रूपके अहंकार और राग द्वेष रूपी विघ्न रूपी रोग के वृक्ष को मूल सहित काट डालने वाला शस्त्र है कारण ये है कि

हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू आपही अपने वाचार्थ में भेद उत्पन्न कर सार को असार करता है कि उतरायण देवताओं का दिन है और दक्षिणायन उनकी रात्री है उत्तरायण उत्तर ध्रुव और दक्षिणायन दक्षण ध्रुव का नाम है और उत्तर ध्रुव का दूसरा नाम मेरूपर्वत भी है कि जो देवताओं का निवास स्थान है अर्थात दो अयनों का मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एकदिनरात के बराबर और मनुष्यों के ३६० वर्ष देवताओं के ३६० दिनरात अथ्वा एक वर्ष के बराबर हैं। कृत त्रेता द्वापर और कलि मनुष्यों के चार युग हैं कि जिनकी काल गराना इस प्रकार है। कि कृतयुग में देवताओं के ४००० वर्ष और त्रेता में ३००० वर्ष द्वापर में २००० हजार वर्ष और कलि में एक हजार वर्ष होते हैं। किंतु एक युग समाप्त होते ही दूसरा युग एक साथ ही आरम्भ नहीं होता है कारण ये है कि युग के आदि में सिंधि और अन्त में संध्यानस हुआ करता है जैसे मनुष्य मात्र की गर्भ अवस्था सिंधि और मरण काल संध्यानस रूप होता है और जन्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पर्यन्त मरण काल तक जीवन अवस्था कहलाती है। इसी प्रकार कृत युग के आदि और अंत में से प्रत्यक
और ४०० वर्ष का और त्रेता के आदि अन्त में प्रत्यक और ३०० वर्ष का इस प्रकार द्वापर के आदि अंत
में प्रत्यक २०० वर्ष का और कलि के आदि अन्त में प्रत्यक १०० का सिंधि और संध्यानस काल होता है
कि जो सब मिलकर चारों युगों के आदि और अन्त में २००० हजार वर्ष देवताओं के वर्षों का समय है और
ये दो हजार वर्ष और पहले बतलाए हुए चारों युगों के १०००० वर्ष सब १२ हजार वर्ष होते हैं कि जो मनुष्यों
के १२०००×३६०= ४३२०००० वर्ष के हैं कि जो मनुष्यों का एक महा युग और देवताओं का एक युग
होता है। और देवताओं के ७१ युग का एक मन्वंतर होता है और इसके आदि और अन्त में भी सिंधि और
संध्यानस काल अर्थात पहले मन्वतर के आरम्भ और अन्त में और आगे चल कर १४ मन्वंतर से शेष के १३ जो
मन्वन्तर रहे उनके अन्त में एक एक कृत युग के काल की बराबर अर्थात प्रत्यक १३ मन्वन्तर के अन्त में
और प्रथम मन्वन्तर के आदि अन्त मे १५ बार कृत युग वृत्मान होता है सो १४ मन्वतर और १५ कृत युग का
समा मिलकर देवताओं के एक हजार युग अर्थात ब्रह्म देव का एक दिन अथवा भूमि मंडल की एक
आयु होती है कि जो एक कल्प अर्थात ४३२०००००० वर्ष की संज्ञा है और इसी संज्ञा के तुल्य और
ब्रह्म देव की रात्री होती है सो हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू आप ही इसी कल्पना उत्पन्न करके चंचल
बुद्धि तथा क्षिणक बुद्धि भ्रम से मनुष्य रूपी देह में पेठा हुआ इस प्रकार भ्रम उत्पन्न करता है कि
जो योग युग व्यवस्था अर्थात युग आयु अंक भेद है इसका सार तत्व क्या है। क्या इन चारों युगों के आयु
अङ्कों के अति गूढ अर्थ पर कि जब से मनुष्य देह इस पृथिवी तल पर उत्पन्न हुआ है। मनुष्य ने इस
विचार के साथ कि सारी दृश्य और नाशवान सृष्टि का मूल भूत अमृत तत्व क्या है और वह प्राप्त है कि
अप्राप्त है विचार नहीं किया यदि इस सृष्टि का मूल तत्व अप्राप्त रूप है तो निसंकोच यह योग युग
व्यवस्था भी सतांसत्य है - और यदि मूल तत्व प्राप्त रूप प्राप्त स्वरूप है तो योग युग व्यवस्था ही
शङ्का संशय रूप से भ्रम अविद्या के परिवर्तन का कारण है कि जिसका उत्पन्न करने वाला मेरे अन्य और
कोई नहीं कि मैं ने आप ही इस अविद्या अज्ञान भ्रम को सिद्धान्त स्मृति रूप दिया है कारण कि -
— अमृतं परं तत्वं योगयुगाध्यमद्वय रूपं ॥ प्रत्यक्षं प्राप्त मूलं तत्वं अक्षरं दृश्य प्रपंचः ॥ श्रुति प्रमाण
मैं ही अमृत रूप परम तत्व स्वरूप योगयुग व्यवस्था वाला अद्वय रूप हूं और मैं ही इस दृश्य प्रपंच
अर्थात सृष्टि नाशवान रूप में अविनाशी मूल तत्व अर्थात प्रत्यक्षप्राप्त स्वरूप हूं।

इस प्रकार श्रुति प्रमाण हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू आपही ऊपर के उत्पन्न किये हुए भ्रम
का खंडन करके प्रकट करता है। कि मैं अमृतं अर्थात अमर ब्रह्म परम तत्व प्रब्रह्म ईश्वर रूप योग व
युग अर्थात युक्ति यत्न वाला अद्वय अकाल रूप स्वरूप समीप ही प्राप्ति रूप से इस दृश्य प्रपंच में
अर्थात सृष्टि संसार में मूल तत्व अर्थात पूर्ण रूप से परमार्थ वस्तु हूं। सो योग युग विकार मान कोई
पदार्थ नहीं है और पृथक पृथक करके भी कोई मूर्ति चिन्ह तथा दृश्य मान प्रपंच स्थूल
आकार नहीं है योग युग व्यवस्था एक मिश्रित वार्ता वाणी रूप है और युग के अर्थ ही जोड़ यथा
एक जुड़ी हुई वस्तु के हैं। कि जो देश और काल का एक रूप एक स्वरूप मिश्रित प्रमाण से ही
व्यवस्था अर्थात गति के एक जुड़े हुए भाव का एक रस एक चल एक अचल अर्थात अगम रूप
प्रकट स्वरूप है। कि जिसके भाव करके यदि उसको मूर्ति रूप दिया जाय तो और न दिया जाए

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वै युग नाम रूप स्वरूप पृथक पृथक कर के भी अपने अपने अधिष्ठान में अचल रूप से नित्य ही स्थिर रूप से बने रहने वाला योग युग स्वरूप है कि जो अलक्ष रूपी चित्र में इस प्रकार स्वयं सत्यं सर्व आधार स्वरूप है

## योग युग व्यवस्था चक्र का लक्ष ।

## युग दर्शन अनामय स्वरूप

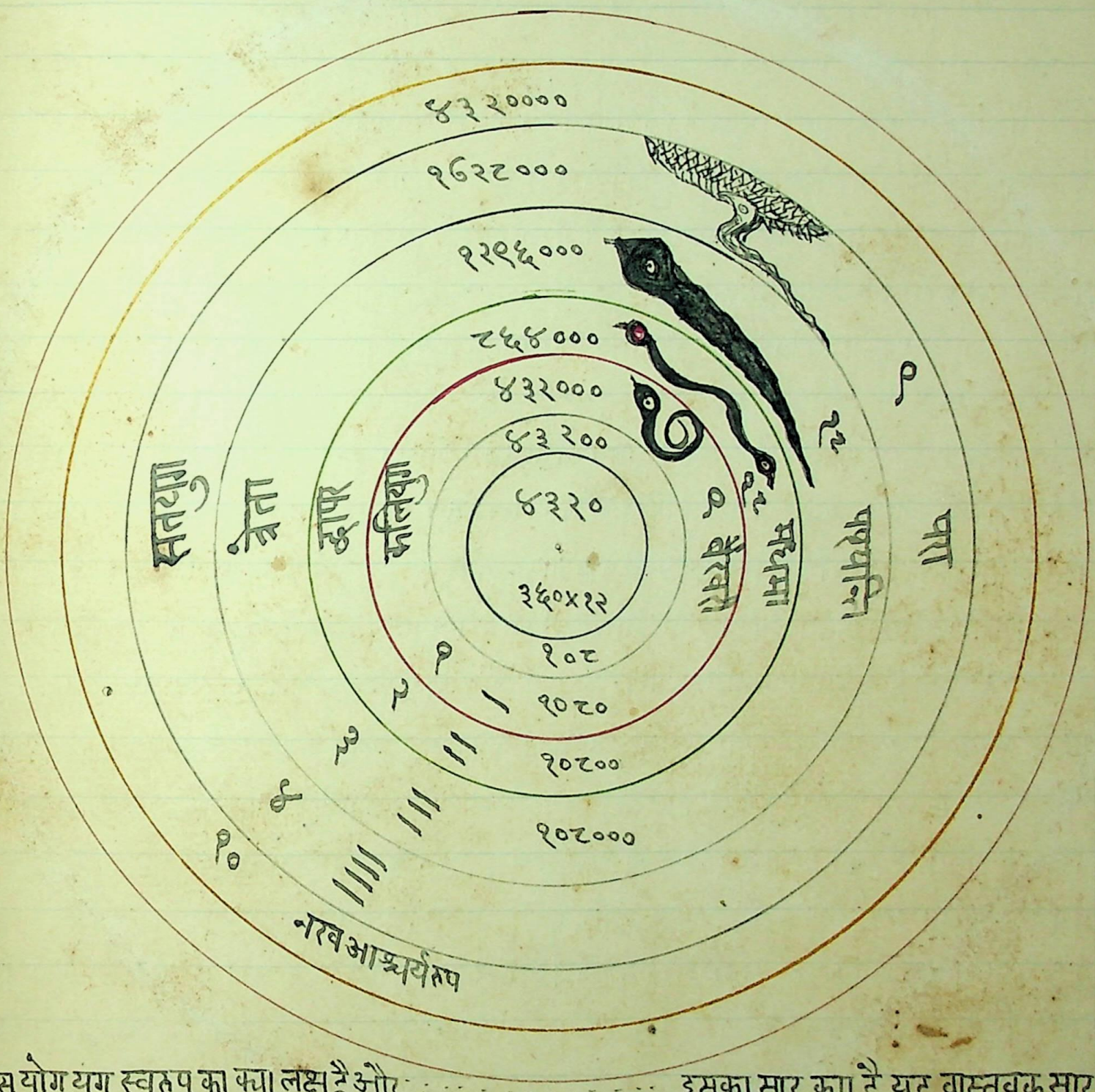


इस योग युग स्वरूप का क्या लक्ष है और ..... इसका सार क्या है यह वास्तव का सार लक्ष योग युग व्यवस्था चक्र पर अन्तर्य दृष्टि करने से इस प्रकार प्रकट प्रमाण में प्रथम सार लक्ष निश्चित रूप से निश्चय होता है। कि सर्व शरीर धारियों से पृथक पृथक देह धारी के पृथक पृथक श्वासा में चारों युगों का वासा है सो पृथक पृथक प्राणियों के एक एक श्वास में ही १४ मनु और पृथक पृथक मनु की ७१-७१ चतुरीगी और उनके आदि अन्त की सिंधि और संध्यानिसों का अन्त हो जाता है। क्योंकि प्रथम प्रकट है कि दशेन्द्रिय और चतुष्टय अन्तः करण का नाम १४ मनु है। कि जिन का सम्बन्ध योग युग रूप में ७१ चतुरीगी रूप अष्ट धा नाम प्रकृति है कि जो सिंधि संध्यानस रूप में ७१ नाड़ियों का एक स्वरूप देह रूप है कि जिनमें श्वास चक्कर ही खाया करता है। सो जिस स्थान से श्वासा अर्थात प्राण वायु की गति में श्वासा की खेंच का आरम्भ होता है वहां सत युग का निवास है। और प्राण का बाहर से खिंच कर शरीर के अन्दर आना त्रेता की अवस्था है। और श्वास का शरीर के अन्दर आकर ठहरना द्वापर का रूप है। और फिर अन्दर से बाहर निकलना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

कलियुग का रूप है। और शरीर के अन्दर उतने समय तक कि जितने समय में स्वास बाहर से खिंच के शरीर के अन्दर जाता और ठहरता और फिर अन्दर से बाहर आता है मूल में इतने समय का नाम दो कल्प है कि जिन दो कल्पों में १४ मनुओं की सिंधि संध्यानस सहित चारों युगों की ७१-७१ चतुरीणियां दो दो बार समाप्त होजाती हैं। इसी का नाम ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात है सो जिस प्रकार एक स्वांस में संपूर्ण मन्वन्तरों की चारों युग और सिंधि संध्यानस सहित पूर्ण आयु समाप्त होजाती है।

इसी प्रकार मनुष्य के एक दिन में चार प्रहर का प्रमाण बंधता है कि जिस पर बाह्य वृति के विचार द्वारा निश्चिन्त कर निश्चय से प्रकट प्रतीत में प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जो प्रणव ॐ कार स्वरूप है वही पूर्ण ब्रह्म देहादि प्रणव रूप काल स्वरूप है। और उस का तत्व विज्ञान अध्यात्म सिद्धांत पूर्ण नियम केवल तीन नाड़ियां हैं कि जो सूर्य चन्द्र और सुषुम्ना कहने में आती हैं। इन्ही नाड़ियों की अपेक्षा से और पृथिवी की गति के बेग से अंक द्वारा युगों का प्रमाण इस प्रकार एक ही बंधन रूप है। कि मनुष्यों का चन्द्र का वार्षिक चक्र ३५५ दिन का होता है और पृथिवी वार्षिक चक्र कि जिसे सूर्य वर्ष कहा जाता है ३६५ दिन का होता है। और ३५५ + ३६५ ÷ २ = ३६० के ये ३६० दिन सूर्य चन्द्र के ७२० दिन का एक दल अर्थात अर्ध भाग है। कि जो संख्या मनुष्य मात्र के लिये काल का अध्यास रूप है। कारण कि इसी संख्या से काल का अध्यास होता है। किंतु काल का रूप त्रिगुणात्मक रूप है १ और देश में चार दिशा का विभाग होता है। इस कारण ३६० को १२ गुणा करने से ४३२० दिन का अंक बनता है कि जो मनुष्यों के १२ वर्ष अर्थात एक युग का स्वरूप है। कि जिसे मनुष्य पृथिवी मंडल का युग कहते हैं।

सो जिस प्रकार शून्य में ९ शक्तियां गुप्त होकर एक के १ अंक को १० अंक का रूप बना देती हैं इसी प्रकार प्रत्यक मण्डलों का उन्मान प्रमाण अपने नीचे के मंडल से १० गुणा हुआ करता है इसलिये चन्द्र मंडल का युग ४३२०० दिन अर्थात १२० वर्ष की संख्या होती है। कि जो मनु अर्थात मनुष्य की आयु संख्या है। कारण कि मनु चन्द्र का नाम है मनु सूर्य का नाम है मनु पृथिवी का नाम है और मनु मनुष्य का नाम है और मनु पृथक पृथक करके नाना प्रकार की वस्तुओं का और लोक दृष्टि में सर्वगोल आकार का नाम मनु है। इस लिये एक मनु की आयु १२० वर्ष की है। सो यही १२० वर्ष चारों युगों के रूप में १२ वर्ष कि जिस में २ वर्ष सिंधि और संध्यानस के हैं कलियुग का रूप होता है और २४ वर्ष कि जिसमें ४ वर्ष सिंधि और संध्यानस के हैं द्वापर का रूप होता है। और इसी में ३६ वर्ष कि जिसमें ६ वर्ष सिंधी और संध्यानस के होते हैं त्रेता का रूप होता है और इसी ४८ वर्ष कि जिसमें ८ वर्ष सिंधि और संध्यानस होते हैं सत युग रूप होता है। और इसी क्रिया से १२० वर्ष २८ मन्वंतर और ३० — सतयुग के रूप में दो कल्प अर्थात ब्रह्म देव के एक दिन रात का स्वरूप हैं। कारण कि एक वर्ष स्वयं चतुर्युगी का रूप है और १४ मन्वंतर का स्वरूप है। इस लिये मनुष्य देह की जो अधिक से अधिक आयु है वह १२० वर्ष की है। किंतु ऊपर वर्णित विधि से सूर्य के युग की संख्या में ४३२००० दिन होते हैं कि जो मनुष्य के १२०० वर्ष के तुल्य हैं। इस लिये दूसरी गति में मनुष्य की आयु १२०० वर्ष की भी होसक्ती है। अर्थात चन्द्र नाड़ी से १२० वर्ष और सूर्य से १२०० वर्ष और सुषुम्ना से १२० के आधे ६० और १२०० के आधे ६०० और सिंधि संध्यानस के २० सब मिल कर १२० + १२०० + ६० + ६०० + २० = २८०० वर्ष के अर्थात पूर्ण

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar. Collection Digitized by S3 Foundation USA

पूर्ण होकल्प के अर्थात तीसरी सुषुम्ना गति में मनुष्य की २००० वर्ष की आयु का प्रमाण है। कि विशेष से विशेष काल की योग द्वारा आयु है। सो इतने काल में प्रपंच रूप सृष्टि में ३० ही प्रकार के सृष्टि भाव उत्पन्न होकर नष्ट हो जाया करते हैं परन्तु अमर नाम ब्रह्म में प्रकृति के तीसों भाव नित्य बने ही रहते हैं। सो एक कल्प जिसका नाम है वह मनुष्यों की १००० वर्ष की संज्ञा है कि जिस में ८४० वर्ष कल्प रूप और १६० वर्ष सिंधि और संध्यांस का स्वरूप है। सो ही विधि से मनुष्य देह की विशेष से विशेष २००० हजार वर्ष की आयु होसकती है। 147

किंतु काल और योग का जोड़ देश रूप में मनुष्य देह ४३२००० दिन कलियुग रूप से कलि की आयु का प्रमाण हो सकता है नकि भ्रम रूपी ४३२००० हजार वर्ष की क्योंकि कल्प अयन रूप में ६० ही वर्ष का प्रमाण है कि जो इस पृथिवी मण्डल का एक दिन रात है और ३० प्रकार की प्रकृति का उलटा सीधा एक रस एक गति चक्र है।

इस से आगे विशेष प्रमाण में प्रत्यक्ष प्रमाण कलि की आयु का ये है कि मनुष्य की एक दिन रात में श्वासा संख्या २१६०० होती है। किंतु प्रत्यक श्वासा की दो गति हैं एक बाहर अन्दर और दूसरा अन्दर से बाहर को अर्थात आना जाना कि नाम इनका प्राण[1] और अपान[2] है। तथा श्वास तीन नाड़ियों अर्थात सूर्य चन्द्र सुषुम्ना द्वारा ही चला करता है। इसलिये यदि श्वासा १२ घड़ी तक सुषुम्ना में बेग करे तो ४३२० श्वासा में कालयोग हो और जो १२० घड़ी तक चन्द्र चले तो भी ४३२०० श्वास पर काल योग हो और १२०० घड़ी तक सूर्य श्वास चले तो ४३२००० श्वास पर काल योग हुआ करता है। इसी नाम कलियुग की आयु है। क्योंकि एक दिन रात में प्राण और अपान की बेग से जो श्वासा की संख्या होती है वह ४३२०० है और इनके साथ दशेन्द्रिय का व्यापार मिश्रित है इस कारण ४३२००×१० = ४३२००० के सो दूसरी रीती से भी कलियुग की आयु का प्रमाण ४३२००० स्वासा ही बनता है। इसी प्रकार तीसरी रीति से ४३२००० निमेष के तुल्य इस कलियुग की आयु है। और निमेष उतने समय का नाम है कि जितना समय मनुष्य को पलक के झपाने में बखोलने लगता है। सो ऐसी १५ निमेष के तुल्य एक काष्ठा होती है। और ३२ काष्ठा के तुल्य एक कला कहने में आती है। और ३० कला का एक मुहूर्त होता है। और ३० मुहूर्त का एक दिन रात होता है और एक अहोरात्र में १५×३२×३०×३० = ४३२००० निमेष का अंक सिद्ध प्रमाण से निमेष रूप कलियुग की आयु है इससे आगे सार बात ये है कि।

(१) मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की है। और एक वर्ष के ३६० दिन होते हैं इस विधि से मनुष्य की संपूर्ण आयु १२०×३६० = ४३२०० दिन के तुल्य है और इस संख्या को प्रत्यक दिन के १२ भागों में से संध्या समय के २ भाग घटा कर १० गुणा करने पर वही ४३२००० मानुषी सृष्टि की आयु का प्रमाण बन्ता है। क्योंकि मनुष्य देह कलियुग रूप है और यही ब्रह्म दिन रात्री यही ब्रह्मा की आयु यही दो कल्प रूप में उज्यारा १ अन्ध्यारा २ अर्थात ज्ञान १ अज्ञान २ दो कल्प कल्पना रूप है गणना संज्ञा में दिन के १२ भागों में से दो भाग के घटाने का अभिप्राय ये है कि संपूर्ण दिनरात का छटा भाग प्रातःऔर सायन की संध्या समय होके व्यतीत होता है और इस समय कुंभक के अभ्यास द्वारा कि जो एक आसुरी क्रया है प्राण का निस्पन्द रूप होजाने पर समाधि की अवस्था प्राप्त हो सकती है कि जहां काल योग अर्थात कलियुग का प्रवेश नहीं होता इस लिये देहान्त्र साक्षात योग युग व्यवस्था रूप होती हैं और १२० वर्ष से सिंधि और संध्यानस का छटा हिस्सा २० वर्ष घटाने पर १०० वर्ष शेष रहते हैं कि जो इस ब्रह्म मूर्ति मनुष्य देह की आयु है अर्थात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्म देव की पूर्ण १०० वर्ष की आयु है और आसुरी क्रया द्वारा २००० वर्ष तक अधिक से अधिक और विशेष से विशेष जड़ समान पड़े रहकर इस मानुष देह की रक्षा स्वास रोकने से हो सकती है।

148 (२) ऊपर वर्णन किये हुए अंकों का संबन्ध इस स्थूल त्रिपुटि से है कि जिस में पृथिवी जल और अग्नि का वास है। और जो रूप वान होने के कारण नेत्रों से देखने में आती है स्थूल त्रिपुटी से ऊंचे मंडलों में कि जहां पवन आकाश और मन का अधिष्ठान है। युगों के अंकों का विस्तार इस रीति से है कि चार युगों की विभाग कल्पना अन्तः करण के चतुष्ट रूप के अनुसार सिद्ध होती है। कि जिस में कारण अहंकार की अवस्था का सत्युग नाम है। और चित के व्यवहार का त्रेता स्वरूप है और बुद्धि शक्ति का द्वापर नाम है। और मन की रचना का नाम कलियुग की अवस्था है। यही कारण है कि परा १ पश्यन्ति २ मध्मा ३ और बैखरी ४ इन चार वाणियों का और तुर्या १ सुषुप्ति २ स्वप्न ३ और जाग्रत ४ इन चार अवस्थाओं का युगों से परस्पर मेल है कि जिस को गुढ विचार से ही मानुषी बुद्धि ग्रहण करने के योग हो सकती है।

(३) सार अंश ये है कि जैसे अन्तः करण में किसी रूप का विशेष भाव और किसी का सामान्य भाव होता रहता है। किंतु फिर भी चारों रूप अवस्थित होते हैं वैसे ही युगों की नाम मात्र अधिकता और न्यूनता होने पर चारों युग नित्य एकरस बने ही रहते हैं क्योंकि जब और जिस समय (१) मन बुद्धि को आधीन कर लेता है तब कलियुग प्रकट होता है। और (२) जब बुद्धि मन को वश कर लेती है तब द्वापर का लक्ष प्रतीत होता है। और (३) जब मन और बुद्धि दोनों चित की शरण में आते हैं तब त्रेता का रूप भासता है। और (४) जब मन बुद्धि और चित तीनों कारण अहंकार में लय होजाते हैं तब सत्युग का तेज अज्ञान के अन्धकार का नाश कर देता है कि इतना ही योग युग व्यवस्था का सार है। किंतु आगे भी (१) योग युग व्यवस्था चक्र में जो सब के अन्तर और सब से छोटा पृथिवी का चक्र है। और ४३२० का अंक उसका प्रमाण है। उसके ऊपर दूसरा मंडल चन्द्र मनु जल रूपी चन्द्रमा का है। और उस से ४३२०० का अंक स्पष्ट होता है। और उसके ऊपर तीसरा चक्र सूर्य मनु अर्थात अग्नि रूपी सूर्य का है कि जिस के द्वारा ४३२००० के अंक का प्रमाण निकलता है। और प्रथम पृथु मनु १ चन्द्रमनु २ सूर्य मनु ३ इन तीनो मनुओं का मिश्रित भाव में मिलकर ही त्रिलोकी एक नाम कहने में आता है। सो प्रथम यही एक नाम कि जो त्रिलोकी कह्या जाता है कलियुग का रूप और काल रूप कालयोनि नाम काले सर्प का स्वरूप है कि जो तम अर्थात यम अथवा धर्मराज्य रूप से काला सर्प बना हुआ मनुष्य नाम रूप को डसता है। अर्थात अन्तः करण का चतुर्थ अंश मन नाम कलियुग का प्रधान रूप प्रकट प्रतीत में वैखरी बाणी अर्थात नाम रूप और जाति कुल के अभिमान अहंकार का नाम है। ये कलि नाम देहधारी इस ही वैखरी बाणी से काम लेता है। अर्थात मेरे तेरे के बौध से नाना प्रकार के कुटिलता के वाक्य सुन्ता और वर्तता है। और इस प्रकार वैखरी बाणी निर्लज्यता का नाम कलियुग है।

(४) अग्नि चक्र के ऊपर पवन का मण्डल है। और पवन मंडल ही द्वापर युग रूप है। कि जो दो मुख वाले दूमुई सर्प का रूप है। यही अन्तः करण के दो अंश मन और बुद्धि का प्रगलभ रूप है कि जो दूसरी मध्मा वाणी का व्यापार है। और मिथ्या अभय स्वरूप में भय का रूप है। सो भय और अभय के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दो रूप अर्थात अभय गति में भय का प्रवेश दो मुख का सर्प भय रूप द्वापर का लक्ष है कि जो मिथ्या डस लेने का भ्रम दुःख रूप है। कारण कि अभय रूप बाणी में भ्रम की शंका दो मुख रूपी सर्प का रूप है कि जो डस लेने का संसार को भय दिखाता है किंतु किसी काल डसता नहीं। इसलिये भय रूपी गति का नाम ही द्वापर है कि जो ४३२००० के अंक को द्विगुणा करने पर ८६४००० का लक्ष अर्थ दिखाता है और इस प्रकार दुधारूपी द्वैत भावना और भय का नाम मध्यमा बाणी और द्वापर है। 45

(५) पवन के ऊपर आकाश का तीसरा चक्र है। इसी का नाम अजगर रूपी त्रेता है। कि जो एक स्थान रूप है। सो जिस प्रकार अजगर एक स्थान में पड़ा रहता है। और अपने भोजन के लिये भी यत्न नहीं करता है। और जो कुछ उसको दैवयोग अर्थात प्रकृति प्राकृत रूप में आप से आप प्राप्त होजाता है वह उसी में सन्तुष्ट रहता है। और उस से अधिक की इच्छा को भी वह किसी काल उत्पन्न नहीं करता है। इसीप्रकार अन्तः करण के तीन अंश मन बुद्धि और चित के संयोग का कि जिसमें शरीर के योगक्षेम की इच्छा न हो इसी तीसरी गति का नाम पश्यन्ति बाणी है। यही त्रेता का लक्ष है। क्योंकि जिस प्रकार अजगर भय रूप होने पर भी किसी को अपनी इच्छा उत्पन्न करके दुख का हेतु नहीं बनता है। इसी प्रकार त्रेता रूपी स्वयं त्रेता स्वरूप पश्यन्ति बाणी के व्यापार का नाम त्रेता है। कि जो ४३२००० के अंक को त्रिगुणा करने से १२९६००० के अंक चिन्ह को रचती हुई मधुर बाणी और प्रेम भाव के प्रकट रूप को त्रेता का नाम देती है। कि जो वास्तव में त्रेता युग का सार है।

(६) आकाश के ऊपर मन का अवर्ण है। सो इस अधिष्ठान में अन्तः करण के चारों अंश मन बुद्धि चित और अहंकार के एक रस अवस्थित होने से ४३२००० का चौगुणा अंक गणना अंक रूप में १७२८००० का एक अंक रूप से एक रूप बन्ता है। कि जिस रूप स्वरूप का नाम परा बाणी है और परा बाणी ही सत्युग का रूप अर्थात शेषनाग रूप में एक सहस्र मुख मुख वाले सर्प का चित्र बना हुआ है। कि जो अपना आदि अन्त न रखने के कारण साक्षी रूप से अपनी अनन्त शक्ति से अवगत अविनाशी अचल रूप से व्यापक आत्म चित मुनिवर मुनि रूप में परशुराम नाम का नगर रूप अवतार बना हुआ भारत मंडल के स्वरूप में सर्व जगत का ही निस्वार्थ रूप से विजय मार शिक्षा का सार अर्थात सर्व संसार का आधार बन रहा है। कि जो एक निर्भय स्वरूप अभय रूप भ्रम भेद भाव से रहित संसारिक जन्म मरण रूपी बन्धनों से स्वतन्त्र संपूर्ण मोक्ष स्वरूप है। इस लिये परा बाणी का सत्युग कारण नाम और विजय कार्य स्वरूप और भारत अर्थ और शिक्षा रूप है। कि जो परमानन्द नाम से उदासीन पथ और वैराग्य का तीव्र लक्ष है। और इस परा बाणी नाम ही अद्वैत[1]धर्म - बौद्ध[2]धर्म - सत्यवादि[3]धर्म - ध्रुव[4]धर्म - सनातन[5]धर्म है।

(७) मन मंडल के ऊपर बुद्धि का मंडल है कि जो ऊपर वर्णित सब मंडलों को घेरे हुए है कि जिस के अन्तर चारों युग वर्तमान हैं और जो चारों अवस्था का साक्षी स्वरूप है। इसी का अत्रि राजर्षि नाम है कि जिस की अनसूया नाम रूपवती प्रकृति माया शक्ति स्त्री है। और इसके अपने मंडल की संख्या ४३२००० का दशगुणा अंक अर्थात ४३२०००×१०=४३२०००० के अंक में उस विधि से पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है। कि जिस के अनुसार ब्रह्मा १ विष्णु २ महेश्वर ३ और शक्ति ४ इन के १+२+३+४=१० एक जोड़ अंक के अङ्क जोड़ बन्ता है। कारण यह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है कि बुद्धि मंडल के उपरान्त गनणा संख्या का उनुमान नहीं बनता है क्योंकि १४ मनु रूप का जो
१९० अर्ध भाग दल रूप में सिद्ध होता है वह ७ का एक अंक शक्ति अर्थात ( श्री ) शब्द के रूप में
सप्तव्याहृतियों के प्रसंग स्वरूप में जो सातवां अधिष्ठान सत्यलोक के नाम से स्वयं स्वतंत्र
अधिष्ठान है। यही स्वयं मोक्ष रूप अद्वैत पुरुष का चिन्ह है कि जो १ का अंक है। और २-३-४
के अंक अद्वैत पुरुष बौध्द रूप बुद्धि मंडल कल्याण स्वरूप की ब्रह्मा विष्णु महेश रूपी तीन
शून्य के रूप में ९ शक्तियां हैं कि जिन से सर्व जगत की एक रस रचना है। और जो जगत रूप में
जगत चर्म नेत्र दृष्टि से देखा जाता है। सो केवल बुद्धि मंडल ही वह अधिष्ठान है कि जहां सत्युग
अकाल रूप से नित्य रहता है और त्रेता द्वापर कलियुग त्रिगुणात्मक भाव को प्राप्त होके विष्णु
ब्रह्मा और शिव रूप से - दत्तात्रेय - चन्द्र और दुर्वासा तीन नाम से तपः जनः महः
लोक में वसते हैं। और चित बुद्धि और मन द्वारा स्वः भुवः भूः लोक में प्रकट होते हैं
कि जैसे ॐ कार की अनुस्वार से अकार उकार और मकार निकलते हैं इसी प्रकार (श्री)
अर्थात शक्ति नाम अनसूया के उदर से तीनों देवता उत्पन्न होते रहते हैं। और अनसूया अर्थात
शक्ति श्री रूप से इस प्रकार अत्रि पुरुष की अर्धांगी बनी रहती है कि जैसे श्री चित्र है।

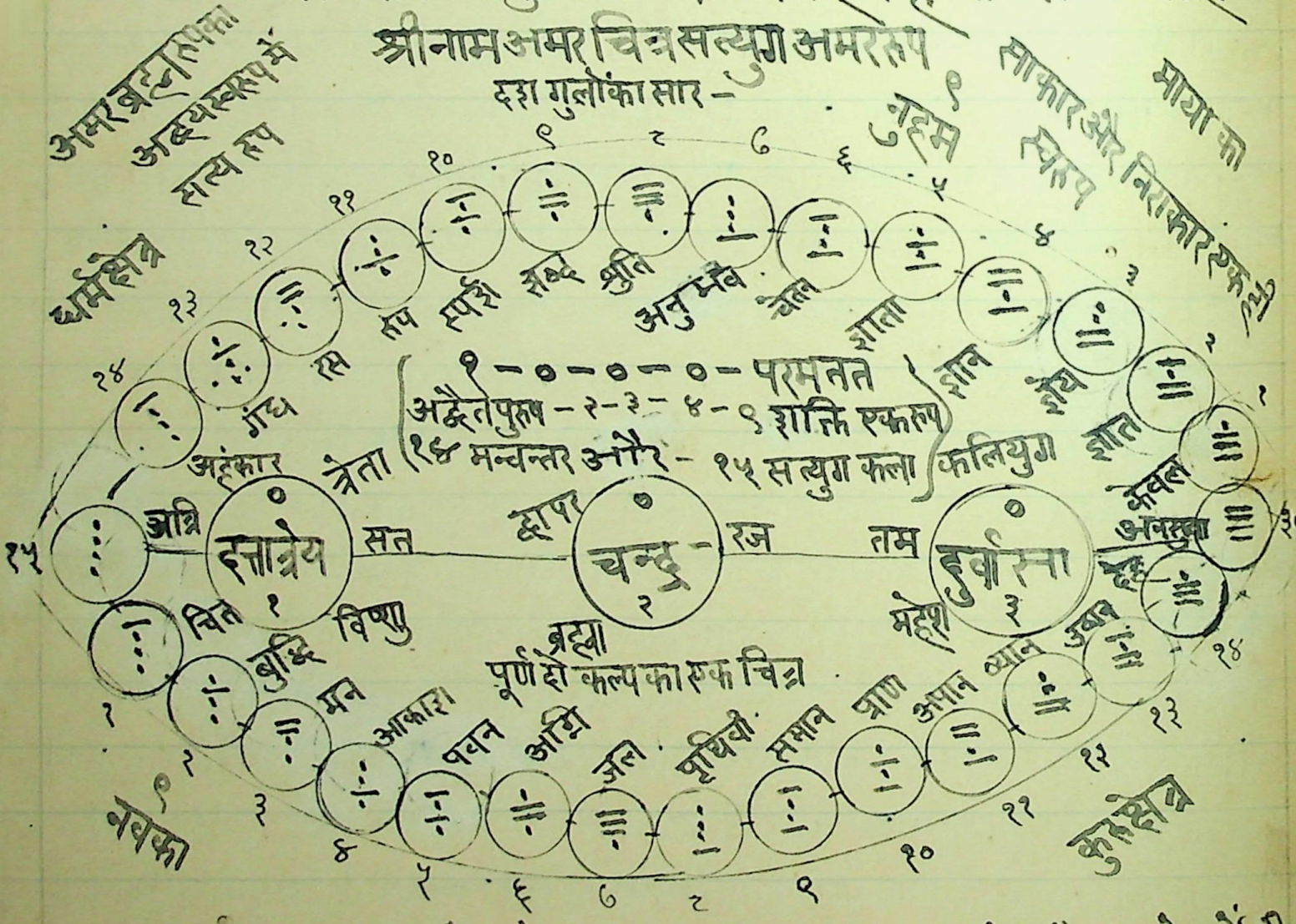


(८) इस श्री नाम अमर चित्र से युगों की अवस्था का वह भ्रम नष्ट होता है कि जो वर्षों की
संख्या रूप में मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है। सो स्मृति रूप में जो युगों की संख्या को वर्षों का
रूप दिया हुआ है वह अज्ञानता नाम दुर्बुद्धि के नष्ट करने के निमित दिया है। कारण ये है
कि चारों युगों का समय ४३२०००० मानकर और ऐसे सहस्त्र चक्रों को ब्रह्मा का एक दिन
और इतने ही समय को एक रात्री जान कर और ब्रह्मा की आयु अनगिनत सिद्ध कर के मेरे
ॐ कार रूप ब्रह्म स्वरूप मनुष्य इस बात को निश्चय करें कि ब्रह्मा जिसका नाम है वह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साक्षात ब्रह्म स्वरुप पूर्ण ब्रह्म अनामय रुप हम आप ही हैं कि जिसके मनुष्य रुपी शरीर की आयु १२० वर्ष से अधिक नहीं होती है। क्योंकि मन बुद्धि चित अहंकार के अलग अलग भाव हैं कि जो कृत्य १ वृत्य २ श्रुति ३ और नृत्य ४ चार नाम से कहने में आते हैं। सो इनमें से मन आप ही संकल्पविकल्प के कृत्य में लगा रहता है। और संशयात्मक होने के कारण युगों की अवस्था का प्रमाण इस प्रकार बांधता है कि जब ऊपर कहे अनुसार ४३२०००० वर्ष का चक्र सहस्त्रबार पूरा हो जाता है तब ब्रह्मा का १ दिन होता है और इतनी ही एक रात्री होती है। और इस प्रकार ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की होती है। और फिर दूसरा ब्रह्मा होता है। सो (१) मन के इस कृत्य कर्तव्य से पृथम इस बात का निश्चय करलेना ही उचित है कि शरीर नाशवान पदार्थ है यह किसी काल में भी अमर नहीं रहसकता क्योंकि जिब ब्रह्मा कि जिस की अनगणत आयु है नष्ट होता रहता है तो फिर मनुष्य रुप देह का तो प्रमाण ही क्या है। किंतु मन ऐसे विचार को ग्रहण न करके और सार अंश को न पाके विपरीत भावना से अप्रमाण वस्तु को प्रमाण सहित मान लेता है और असत्य भांति से विशेषता पर दौडता है अर्थात असत्य के ग्रहण करने को निरन्तर स्वतंत्र रहता है इसलिये ऊपर वर्णी वर्षों की संख्या में ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु अप्रमाण है असत्य है और कलियुग का रुप है इससे आगे (२) बुद्धि अपनी वृत्ति द्वारा निर्णय करती है कि सहस्त्र युग पर्यन्त ब्रह्मा का एक दिन और इतनी ही एक रात्री है। किंतु इस प्रकार ब्रह्मा की पूरी १०० वर्ष की आयु सिद्ध नहीं होती है। क्योंकि इस प्रकार ब्रह्मा की आयु में महीनों और दिनों की कोइ संख्या निश्चित करने से निर्णित नहीं होती है। इसलिये ब्रह्मा की इस प्रकार की आयु वृथा रुप है और मिथ्या है कारण कि वृथा नाम ही मिथ्या का है और मिथ्या असत्यता का नाम है फिर सत्य क्या है। सत्य ये है कि अन्तःकरण मन १ बुद्धि २ चित ३ अहंकार ४ चार पदार्थ का नाम है और यह चार पदार्थ (०००) चार शून्य रुप में अग्नि नाम १ पुरुष रुप से (१०००) का लक्ष है कि जिस में अहंकार के ४००० - चित के ३००० - बुद्धि के २००० और मन के १००० अंक निकलते हैं इस प्रकार अन्तःकरण चतुर्युग रुप में पृथक पृथक करके १ से चार रुप में निरमित होने के कारण श्री शक्ति नाम से चार रुप से एक अनसूया माया नाम में अचल और निश्चल स्वरुप है। और एक शून्य १ का रुप और ९ शक्ति का स्वरुप है कि जिसका आकार १० का एक अंक बनता है। इसलिये अन्तःकरण जो पृथक पृथक करके १०००० चतुर्युगों का रुप बना हुआ प्रतीत होता है वह वास्तव में विशेषता के साथ १०००० चतुर्युगों का रुप नहीं है कारण कि विशेषता विपरीत रुप है इस लिये अन्तःकरण का समता रुप में कि जो प्रीति रुप है कृत का $\frac{४०००}{१०}$ = ४०० और त्रेता का $\frac{३०००}{१०}$ = ३०० और द्वापर का $\frac{२०००}{१०}$ = २०० और कलि का $\frac{१०००}{१०}$ = १०० के अर्थात ४०० + ३०० + २०० + १०० = १००० के सहस्त्र पुरुषाद एक रुप है कि जो चतुर्युग का एक सिंधि रुप है और सिंधि १० का विस्तार रुप है इसलिये १००० के अंक को १० पर भाग देने से १०० भाग फल प्राप्त रुप है कि जो ब्रह्मा की आयु है। सो ये १०० वर्ष मनुष्य के ही वर्ष हैं और मनुष्य है ब्रह्म का स्वरुप है कि जो समता रुप में अन्तः करण युग रुप है और इसी का नाम द्वापर है। सो मन कलियुग का रुप है और बुद्धि द्वापर का स्वरुप है। इससे आगे (३) चित की क्रिया का नाम श्रुति है। कि जो सहस्त्र शब्द को अनन्त संख्या का वाचक सिद्ध करि के भी ब्रह्मदेव अर्थात ब्रह्मा के दिन को काल के प्रमाण से अधिक ही निश्चित करती है। कारण सार इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निश्चय का ये है कि जो ४३२०००० के अंक को १००० के अंक से गुणा करिके ४३२०००००० वर्ष की संख्या को कल्प रूप कल्पना में एक दिन मान कर फिर ब्रह्मा के दिन मास और वर्षों का प्रमाण बांधा जावे तो इस क्रिया से (४३२०००००००×३०×२×१०० ÷ १२) से अर्थात ब्रह्मा की आयु निकाली जावे और इसी प्रकार विष्णु और शिव की आयु के अंक सिद्ध किये जावें तो शून्यों को बढ़ाते बढ़ाते इतनी संख्या हो जाती है कि उसका उन्मान नहीं बनता है। और अंत में अनंत ही कहना बनता है। इस लिये जिस समय श्रुति सब ओर से सिमट कर निश्चल रूप से स्वरूप में मग्न होजाती है तब मनुष्य देह रूप में बैठे हुए भी मनुष्य की संसार में जन्म मरण और बन्धनों की शंका और संपूर्ण साधनों में मोक्ष की इच्छा मिथ्या और असत्य भांति का भ्रम ही प्रतीत होता है क्योंकि उस समय मनुष्य को तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। तथा विना ही किसी दुःख की प्राप्ति के सांसारिक विषय भोगों की वासना नष्ट होजाती है। और आप से आप ही अपनी अभिलाषा के अनुकूल समस्त राज्यादिक सांसारिक पदार्थ तथा स्त्री पुत्रादिक का स्नेह और जगत के आदि और अंत की कल्पा कल्पी कल्पना ज्ञानयोग यथा वैराग्य द्वारा कल्प रूपी कल्पना ही प्रतीत होती है। और स्वतः साक्षात कार से सर्व पदार्थों में एक अपना ही देह और सर्व देहाओं में स्वतः अपना ही एक ब्रह्म रूप ब्रह्म स्वरूप अन्तर बाहर सर्वत्र ही अनामय अनन्त रूप में एकरस निश्चल अचल स्थिर गति से भासने लगता है। और इसी का नाम त्रेता है और यही ज्ञेय अर्थात सच्चा ज्ञेय स्वरूप है। इसके आगे (४) अहंकार की अवस्था का जो नृत्य शब्द रूपी भाव है। उसके ये अर्थ हैं कि जिस काल में श्रुति के निरोध से चिदाकाश का संपूर्ण ज्ञान होजाता है तब चैतन्य सत्ता का साक्षी भाव कि जिस का एक स्वरूप और एक स्वरूप के पांच रूप अर्थात पांच नाम गणेश १ महेश २ ब्रह्मा ३ शक्ति ४ और विष्णु ५ ये पांच नाम हैं और इन पांचों नामों करके नृत्य शब्द महान मूर्ति के पांच रूप में एक स्वरूप के पांच ही धर्म नाम अर्थात अद्वैत धर्म १ बौद्ध धर्म २ सत्यवादि धर्म ३ ध्रुव धर्म ४ और सनातन धर्म ५ ये पांच धर्म नाम हैं और इन पांचों नाम धर्मों के जो एक ही २४ धर्म लक्षण हैं। अर्थात शीतलता १ कि जिस के दो गुण हैं स्वच्छता १ और माधुर्यता २ ये दोनो गुण शीतलता स्वरूप में स्वभाव से एक रूप स्वच्छ और मधुर छल कपट से रहित होकर रहना पहिला धर्म लक्षण है। (२) निरद्वेषा धर्म दूसरे नाम से दूसरा धर्म का लक्षण है और इसके भी दो गुण हैं अर्थात क्षमा १ और परोपकार २ कि ये दोनो गुण निरद्वेष स्वरूप में स्वभाव से एक रूप हैं। सो अपने प्रयोजन से रहित होकर संपूर्ण प्राणियों के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करना और ताड़ना करने से रहित रहना अर्थात किसी प्रकार से किसी प्रकार का बदला लेने की चाहत में न पड़ना नित्य क्षमाशील रहना दूसरा धर्म लक्षण है। (३) तीसरे धर्म लक्षण का अग्नि पात्र धर्म लक्षण नाम है कि जिसका ये अभिप्राय है कि जिस प्रकार अग्नि का रूप ही उसका उदर पात्र है कि उसे जितना द्रव्य अर्थात ईंधन मिलजाता है वह उस सब को अपने उदर में रखकर अपना ही जैसा अग्नि का रूप देदेता है इसी प्रकार मनुष्य को अग्नि रूप रहकर अपने अन्यत सबको ही अपने जैसे अग्नि रूप बनालेना और समय पर जितना भोजन मिलजाय उसको ही अपने उदर पात्र में अग्नि की भांति रखलेना और दूसरे समय के लिये अपने पास कुछ भी न रखना ये तीसरा धर्म लक्षण है (४) चौथे धर्म लक्षण का नाम वायु सन्तोष लक्षण है। और इसका ये सार है कि जिस प्रकार वायु सर्वकाल चलती रहती है। तथा किसी पदार्थ में भी आसक्ति नहीं होती है और प्राणियों की देहादि में जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

वायु है सो केवल आहार करके ही सन्तोष को प्राप्त होजाती है और किसी भोग की इच्छा उसे नही होती है इसी प्रकार चलते फिरते मनुष्य का किसी भोग विषे में आसक्त न होना और समय पर जो आहार मिल जाए तिसी को करके सन्तोषको प्राप्त हो जाना और अधिक भोग की इच्छा को भी न करना ये चौथा वायु सन्तोष धर्म लक्षण है (५) पांचवे धर्म लक्षण का नाम आकाश निर्लेप धर्म है। और इसका ये प्रयोजन है कि जिस रीति से अर्थात जिस प्रकार से आकाश में तारागण और वायु तथा बादल आदि रहते हैं किंतु आकाश किसी के भी साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता है। और सब से असंग ही रहता है। और फिर भी व्यापक और असंग भाव वाला ही प्रतीत होता है। इसी प्रकार मनुष्य और देहधारी रूपों से हर कोई नाम रूप रखने वाला मनुष्य के अन्य पशु पक्षी तक पृथक पृथक करके सब कोइ स्त्री पुत्र धन आदि मित्र सम्बन्धों सहित गृहस्थ तथा परिवर्त व्यापार में रहते हुए भी व्यापक रूप आत्मा अर्थात निर्वृत रूप में संन्यासी तथा असंग रूप आत्मा ही है। इसलिये शरीरादिकों के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। और संसार में रहकर और संसार के कार्य करते हुए भी अनामय रूप आत्मा किसी वस्तु से लिप्त नहीं होता है और न किसी प्रकार की सुकर्म तथा अकर्म बन्धन में बन्धता है। क्योंकि आत्मा निरन्तर असंगता रूपी गुण वाला ही है। सो इस सार बात के जान लेने का नाम आकाश निर्लेप धर्म पांचवा आकाश निर्लेप धर्म लक्षण है। (६) छटे धर्म लक्षण का नाम पूर्ण चन्द्र धर्म लक्षण है। आशय ये है कि जिस प्रकार चन्द्र मण्डल सर्व काल एक रस रहता है न घटता है न बढ़ता है पूर्ण रूप से ज्यों का त्यों ही बना रहता है यथा प्रकट प्रतीत में पृथिवी मंडल की छाया पड़ने से न्यूनाधिक निरन्तर घटता बढ़ता प्रतीत होता रहता है तथा न्यून ऐसा होता नहीं वैसे ही मनुष्य मात्र और पशु पक्षी जन्मते व मरते प्रतीत होते हैं। किंतु ऐसा होता नहीं क्योंकि आत्मा में न्यून घटना व बढ़ना नहीं होता है। आत्मा सर्व काल एक रस रहता है जन्मना मरणा दृष्टि भेद भाव प्रकृति कार्य कारण रूप है सो मनुष्य आदि तथा प्राणियों से न कोइ मरता है न जन्मता है नाम रूप व्यक्त व अव्यक्त होता ही रहता है। सो आत्मा की पूर्णता का ज्ञान रूपी गुण इस प्रकार समझ लेने का नाम पूर्ण चन्द्र धर्म लक्षण वा छटा धर्म लक्षण है। (७) सातवे धर्म लक्षण का नाम सूर्य किरण जल स्पर्शी ग्रहण त्याग लक्षण है अभिप्राय ये है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा जल को पृथिवी तल से खैंच कर समय पर फिर तिसका त्याग कर देता है तैसे ही विद्वान आत्मा उस स्थान पर कि जहां पंचभूत की बीज रूप से ग्रन्थि पड़ती है तहां ही ऋतु रस अंग रूप से नाम रूप मात्र आकृति को प्रकृति से व्यक्त कर अपने आभास से अन्तःकरण रूप में इन्द्रियों को प्रकाश देता है। और ये आकृति प्रकृति रूप से उत्पन्न होने वाली जिस प्रकृति भाव को प्राप्त हो व्यक्त रूप में आती है वह उसी प्रकृति भाव को समाप्त कर के और इन्द्रियापेक्षित वस्तुओं का ग्रहण कर के भी बुद्बुद रूप की भांति फिर उनका त्याग ही कर देती है सो इस गुण क्रम का नाम सूर्य किरण जल स्पर्शी ग्रहण त्याग लक्षण धर्म है। (८) आठवें धर्म लक्षण का नाम कपोत स्नेह त्याग धर्म लक्षण है। अभिप्राय यह है कि स्नेह जो स्त्री पुत्रादि और कुटुंब सम्बन्धियों तथा धन भूमि आदि से मनुष्य मात्र और पशु पक्षी आदि को अपने बच्चों से होता है यही बन्धन रूप है। कि तृष्णा रूपी सर्व प्रकार के दुःखों का मूल है। और स्नेह त्याग असंगता रूप स्वतन्त्र अनामय आत्म स्वरूप है। इसी का नाम कपोत स्नेह त्याग आठवां धर्म लक्षण है इस के आगे नवे धर्म लक्षण का नाम (९) अजगर धर्म लक्षण नवा धर्म लक्षण है कि जिसको

153

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

अभिप्राय इच्छा रहित हो निश्चल रहना है। (१०) दशवे धर्म लक्षण का नाम अचल मर्यादा सागरसिंधु लक्षण है। कि जिसका प्रयोजन ये है कि जिस प्रकार सिंधु सागर में हज़ारों नदी और नाले और भारी से भारी दर्या जाकर मिलते हैं किंतु सागर अर्थात समुद्र अपनी मर्यादा से बाहर होकर न्यून चलायमान नहीं होता इसी प्रकार विद्वान आत्मा पुरुष रूपी मनुष्य देह में व्यापक रूप होने पर भी और मन के विषे अनेक प्रकार के विषयों के प्राप्त होने पर भी चलायमान नहीं होता है सो मन का किसी विषय पर न डुलाना ही अचल मर्यादा दसवां धर्म लक्षण है। (११) ग्यारवें धर्म लक्षण का नाम नाम रूप अभिमान त्याग लक्षण है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पतंग रूप को देखकर अग्नि में भस्म होजाता है। और जिसका निशान भी नहीं रहता है। इसी प्रकार मनुष्य का आत्मास्वरूप में लीन होकर नाम रूप अर्थात देह के अध्यास से स्वतंत्र होना नाम रूप अभिमान का मिटाना है। किंतु ऐसा न करके धन मान की इच्छा में और स्त्री पुत्रादि संबन्धों के स्नेह में परिवर्त रहना तथा किसी सुन्दर स्त्री के रूप को देखकर मन को उसके रूप में लीन करना संसार के मिथ्या पदार्थों की ओर मिथ्या भाग दौड़ करना और आत्म स्वरूप से विमुख होके अनात्म निश्चय में लिप्त हो मिथ्या नाम रूप अभिमान की विशेषता की ओर दौड़ना यथा प्रवर्तन करना है। सो मन को आत्मा में लीन कर देना ही अनामय रूप से नाम रूप अभिमान का मिटाना है, ये ग्यारवां नाम रूप अभिमान त्याग लक्षण धर्म है (१२) बारवें धर्म लक्षण का नाम भ्रमर विचार धर्म लक्षण है। कि जिसका ये आशय है कि आचार धर्म अर्थात द्वैत द्वैत रूपी कारी आरी रूप अद्वैत धर्म का काटने वाला और आर्य रूप में द्वैतवादिका बढ़ाने वाला और संसार में अशांन्ति उत्पन्न करने वाला लक्षण है। सो इस भाव को विचार रूप से भ्रमर की भांति इस प्रकार मिटा देना ही भ्रमर विचार धर्म लक्षण है कि जैसे भ्रमर एक पुष्प से जरासा रस लेकर फिर दूसरे पुष्प पर चला जाता है। और उसे भी थोड़ा सा रस लेकर फिर तीसरे पर जाता है और इस प्रकार भ्रमर पुष्पों से रस लेता हुआ थोड़ा थोड़ा करके बहुत सारस जमा कर लेता है। इसी प्रकार विद्या जाति का भेद भाव द्वैता मिटा कर मनुष्य साक्षात कार से अद्वैत धर्म को प्राप्त हो स्वयं मोक्ष रूप होजाता है कारण कि वह चिंता रहित हो जहांसे भी रोटी का ग्रास पाता है वहीं से ग्रास लेकर अपने उदर को भर लेता है इसी का नाम भ्रमर धर्म लक्षण है। (१३) तेरहवें धर्म लक्षण का नाम यमराज धर्म लक्षण है कि जिसका ये अभिप्राय है कि जिसप्रकार मधु मक्षिका शहद की मक्खी बहुत सा मधु जमा कर लेती हैं। और किसी एक दिन शिकारी मनुष्य उनको मार कर उनका जमा किया हुआ सब मधु उनसे छीन करके लेजाता है। सो यही प्रमाण यमराज धर्म लक्षण कहलाता है। आशय ये है। कि वह आसुर स्वभाव वाले अनात्मी जन कि जो प्रवृति तथा निवृति में भेद जानते हैं और प्रवृति व निवृति को अभेद रूप से एक करके नहीं मानते हैं उनमें शौच अर्थात आचार विचार की कोई एक प्रकार की भी सत्य भावना नहीं होती है और वे इस जगत को असत्य अप्रतिष्ठ अर्थात प्रमाण रहित धर्माधर्म विवस्था रहित जानते हैं और कार्य कारण को एक रूप अपना ही ईश स्वरूप न जान कर नास्तिक बनते हैं या आस्तिक रूप में अपना अपने अन्य कोई नाम मात्र का मिथ्या ईश्वर बनाते और उसे पूजते फिरते हैं अर्थात मतिनाश्रित अल्पबुद्धि वाले क्रूर कर्म करने वाले और शत्रु की भांति जगत को क्षय करने वाले दुःख से पूर्ण होने के योग्य अभिलाषों को अङ्गीकार करने वाले दम्भी मान और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

मद से युक्त अशुचि अर्थात अपवित्र व्रत को करने वाले अशुभविचार को स्वीकार करके सर्वत्र प्रवृत होने वाले जन्म पर्यन्त मरण समय तक चिंतासे व्याप्त कामोपभोग को ही परम पुरुषार्थ जानणे वाले अनेक आशा रूप 155 पाशों से बँधे काम क्रोध में तत्पर रहने वाले और कामोपभोग के लिये अन्याय से धनोपार्जन की इच्छा को उत्पन्न करने वाले अर्थात आज मैं ने ये पाया अब इस अभिलषित मनोरथ को पाऊँगा ऐसा कहने वाले अर्थात इतना धन द्रव्य मेरे पास है। और आगे इतना विशेष मुझे प्राप्त होने वाला है ऐसा प्रकट करने वाले और इस शत्रु को मैं ने मार लिया है अब अन्य शत्रुओं को भी मारूंगा इसप्रकार से नाम रूप मान अभिमान बढ़ाने वाले तथा मैं सर्व कार्य करने को स्मर्थ हूं। मैं सर्व भोग वस्तुओं का उपभोग करने वाला हूं मैं सिद्ध ही कृत कृत्य चार भुजा बल वाला हूं राजा हूं महाराजा हूं सुखी हूं धनाढ्य हूं। मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ हूं मेरे तुल्य दूसरा कौन है। मैं यज्ञ करता हूं मैं दान देता हूं और मैं प्रसन्न रहता हूं इस प्रकार अज्ञानता से अत्यन्त सांसारिक पदार्थों में मधुमक्ष की भांति मोहित होते हैं और अनेक भांति के चितविकारों कर के भ्रान्त मोह अज्ञान रूप जाल से घिरे हुए विषय भोगों में अनुरक्त अर्थात अपना अपवित्र रीति से मान बढ़ाकर मिथ्या भांति की अपनी नाम कीर्ति चाहने वाले धन से उत्पन्न हुए मान मदों करके युक्त पाखण्ड पनेसे अविधि पूर्वक अहंकार बल गर्व काम और क्रोध को भली भांति प्राप्त नाना प्रकार के कष्टों को उठाकर और अपने हित अनुकूल अपने दुःख रूपी सांसारी पदार्थों को इकट्ठा करके उनके बचाने की निमित उनकी रक्षा को धर्म तत्व की इस मीमांसा को अङ्गीकार न करके। कि धर्म और कर्म ये दोनों शब्द वाच्य अर्थ भेद में एक ही तत् समता रूप अद्वैत धर्म के धर्म १ और कर्म २ अभेद रूप दो नाम हैं कि जिन का अर्थ समतारूपी धर्म अर्थात समस्त मनुष्य मात्र प्राणियों में प्रेम के व स्नेह के बढ़ाने के हैं। कि इसी का नाम धर्म और इसी का नाम कर्म है इसके अन्य और कोइ प्रयोजन धर्म कर्म का नहीं है। क्योंकि प्रेम व स्नेह से ही मनुष्यों को नाना प्रकार का सुख मिलता है। इसलिये शब्द भेद में प्रेम व स्नेह के अर्थ ही अभेद रूप में भक्ति के हैं और भक्ति ही धर्म का एक दूसरा वाच्य शब्द अर्थ है कि जिस के अर्थ अद्वैत १ बौद्ध २ सत्य ३ ध्रुव ४ सनातन ५ ये पांच धर्म कर्म अर्थ हैं कि जिन का अभेद रूप में एक ही आश्रय है। इसलिये धर्म की परनाली का स्वतः सौता धर्म कर्म नाम में तीन प्रकार का प्रवृतन रूप है अर्थात सन्तोष रखना १ तृष्णा का रोकना २ और सत्य बोलना ३ कि जिनका केवल कर्म योग में एक ही उपाय कर्म कर्तव्य है कि आचार में विचार ही मुख्य कर्म है। सो ये सार सिद्धांत सार्व सृष्टि धारण रूप एक ही अङ्ग है। कि जिस का दूसरा नाम तत्व विज्ञान नियम है। किंतु वही एक अनर्थी कि जो नित्य इसी एक चिंता में लगा रहता है कि जिसप्रकार से भी हो एक रस मेरा ही संसार में अचल राज्य और मान रहै इसमें किसी प्रकार का किसी प्रकार से विघ्न उत्पन्न न हो वह अपने हित अनुकूल सन्तोष न रखकर तृष्णा को उत्पन्न करके मिथ्या आशा को बढ़ाता है। और धर्म की परनाली का खण्डन कर के सत्य बोलने के कपट जाल कपट में आप भी असत्य बोलता है। और अपने सांसारिक असत्य पदार्थों की अपने और अपनी सन्तति के लिये रक्षा के हेतु इस प्रकार के निति शास्त्र रच कर असत्य की शिक्षा का प्रचार करता है कि जैसे मैं ने ब्राह्मण रूप में मनु राज्य का भेष धार मनुस्मृति को रचन करके संसार का संपूर्ण राज्य और सकल पदार्थ अपनी सन्तति ब्राह्मण नाम आर्य छैन के लिये ही नियत कर दिये

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और संसारमें इसप्रकार का भय उत्पन्न किर दिया कि जो इसके विरुद्ध चाल चलेगा वही पापी और अधर्मी होगा डण्डु पायेगा और डांडा जायेगा। सो इसका जो अन्त होना था प्रत्यक्ष है किमेरी सन्तति किजिसने तत्व विज्ञान नियम का अपने हित अनुकूल खण्डन कर अपने ही अपने लाभ को मनु स्मृति का जैसाग्रन्थ रचकर संसार के सर्व अधिकार को अपने हाथमें लिया यमराज धर्म लक्षण अनुकूल क्या और कैसा डण्डु पाया। कि उनकी पाखंडी पूजा पाठ जप तप ध्यान तिलक मुद्रा और गायत्री वेद और वेद मंत्र आदिके संपूर्ण बल प्राक्रम छिणभिन्न उन्हीं के आचरणों कर के होगए और इस स्वार्थ सुख ने उन्हें अविद्या सागर में डबो दिया और उन के यथार्थ पदार्थों को दूसरों ने हड़प कर लिया इसी प्रकार जब उन हड़प करने वालों ने चाल चली तो वे भी दुष्ट पापी और मलेक्ष कहलाकर भ्रष्ट हुए। सो जबतक मनुष्य की आधि अर्थात फिक्र नहीं छूटती तबतक वह अपवित्र ही सिद्ध व सत्य है। और उसको मरण काल में वासनाओं के अनन्त क्लेश घेरते हैं। और इसको आत्म ज्ञानी भलीप्रकार जानते व समझते हैं। कि इसप्रकार संसार में बल पाकर अपना अधिकार जमाने और सिक्का शाका और सम्वत चलाने वाले मरण काल में खाली हाथ ही चले जाते हैं। और उनके पट्टेदार को दूसरे कोई आकर लेजाते हैं। सो सिद्ध और प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मधु मक्षी की भांति संग्रह करने में ही महा दुःख होता है इसी कारण इस का नाम यमराज धर्मलक्षण है। कि जो संग्रह न करने को एक उत्तम शिक्षा रूप गुण है। (१४) चौदहवें धर्म लक्षण का नाम गज काम त्याग लक्षण है। इसका ये प्रयोजन है। कि जैसे काम करके मदान्ध हुआ हाथी मनुष्य की बनाई हुई जाली कागज़ों की हथिनी को देख करके कामातुर हो गढ़े में गिरपड़ता है। और फिर आयु भर को इस प्रकार का जाल रचने वाले मनुष्य का बन्धवा बनके सैंकड़ों लोहे के अंकुशों को अपने शिरपर खाता रहता है तैसे ही कामातुर पुरुष भी स्त्री को देख कर संसार रूपी गढ़े में गिर पड़ते हैं सो इसप्रकार स्वतंत्रता के निमित स्त्री पर मोहित न होकर स्वतंत्र रहने का नाम गज काम त्याग लक्षण है। (१५) पन्द्रहवें धर्म लक्षण का नाम मृग राज राग त्याग लक्षण है। इसका ऐसा प्रयोजन है। कि मृगराज अर्थात हिरन को राग सुनने का बड़ा भारी व्यसन है। और राग के ही पीछे वह बंधायमान भी हो जाता है। और शिकारी उसे बांध भी लेता है। इसी प्रकार कामी मनुष्य सुन्दर स्त्रियों के गायण को सुन कर और उनके हाव भाव रूपी कटाक्षों करके बंधायमान भी होजाता है सो श्रोत्र इन्द्रिय का विषय सुन्दर गायन है और सुन्दर गयन का मनुष्य तथा पशु बन्धन रूप है इसलिये गायन श्रोत्र त्यागरूप गुण का नाम मृगराज राग त्याग धर्म लक्षण है (१६) सोलहवें धर्म लक्षण का नाम मीना लोभ आहार त्याग लक्षण है। कि जिसका यह आशय है कि जिस प्रकार मछली आहार के लोभसे कंटवे में फंस जाती है तैसे ही मनुष्य भी आहार के लोभसे परतन्त्र अर्थात पराधीन हो जाता है और परतन्त्र होके अनेक प्रकार के दुःखों को उठाता तथा सहन करता है सो आहार के लिये लोभका त्याग मीना लोभ आहार त्याग सोलहवां धर्म लक्षण कहलाता है। (१७) सत्रहवें धर्म लक्षण का नाम पिंगला आशा त्याग धर्म लक्षण है। कि जिसका सिद्धांत निराशत रूपीगुण का ग्रहण करना है। कि आशा ही फांसा रूप है बंधन का हेतु है कारण कि इस संसार में जो मनुष्य आशा का दास हो रहता है। अर्थात जो मनुष्य स्त्री पुत्र धनादिकों की प्राप्ति की और चिरकाल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तक जीने की आशा रखता है उसको सब लोगों का दास ही होना पड़ता है। और जो आशाको अपनी दासी बनाता है। उसी का संपूर्ण जगत दास बनकर रहता है। यथा जो निराशत है वही स्वयं शास्त्र वही स्वयं वेद और वही स्वयं मुक्त और वही सत्य स्वतंत्र अजन्य अव्यय अविनाशी अनामय स्वरूप है। ये सब हैं पिंगला नाम आशा त्याग धर्म लक्षण का अर्थ है। (१८) अठारवें धर्म लक्षण का नाम कुरर भोग त्याग लक्षण है। कि जिसका यह अभिप्राय है कि जो भोग वस्तु किसी पशु पक्षी यथा मनुष्य को प्राप्त होती है तो दूसरे उसी जैसे रूप वाले प्राणी उस भोग वस्तु को अपने भोग के हेतु छीन झपट करते हैं। तथा उसे मारने को भी वे तत्पर होते हैं यथा ज्यों ही वह उस भोग वस्तु को छोड़ देता है तो फिर उसका कोई भी पीछा नहीं करता है वह स्वतः स्वतन्त्र होजाता है। सो जब तक मनुष्य भोग पदार्थों को पकड़े रखता है। तब तक दुष्ट तस्कर दृष्टियों की मार को पड़ा खाता है। और जब त्याग कर देता है तब उनकी मार और उनकी शत्रुता से बच जाता है इसलिये भोगों के त्याग रूपी गुण का नाम कुरर भोग त्याग लक्षण धर्म है। (१९) उनन्नीसवें धर्म लक्षण का नाम दूधाधारी बाल अचिंत लक्षण है। कि जिसका ये लक्षण अर्थ है कि जिस प्रकार दूध पीने वाले बालक को किसी प्रकार की भी चिंता नहीं होती है वह दूध का पान करके अपने आनंद में मग्न रहकर हंसता खेलता ही रहता है। इसी प्रकार मनुष्य को जो भोजन प्राप्त हो उसी को पान कर के चिंता से रहित होकर ही रहना सार है कि चिंता से किसी प्रकार कुछ नहीं बनता है। (२०) बीसवें धर्म लक्षण का नाम एकाकी धर्म लक्षण है। कि जिसका ये प्रयोजन है कि बहुत से आदमियों में निवास करने से नित्य ही राड़ा तथा टन्टा अर्थात लड़ाई झगड़ा होता रहता है। एवं अर्थात इसी प्रकार दो के एकत्र रहने से भी बातें होती रहती हैं किसी यथार्थ बात पर विचार तथा ध्यान नहीं जमता इसलिये यथार्थता के विचार को निरजन तथा एकान्त स्थान में ही रहना उचित है। (२१) इक्कीसवें धर्म लक्षण का नाम सर्प निवास धर्म लक्षण है। इसका ये आशा है कि जिस प्रकार सर्प अपने रहने को कोई घर नहीं बनाता है इसी प्रकार मनुष्य को घर बनाके रहने की चिंता में पड़ना व्यर्थ है क्योंकि संसार कार्य कारण एक रूप है इसमें कार्य के साथ कारण और कारण के साथ कार्य लगा ही रहता है इसलिये घर बनाके रहने की अविश्यक्ता नहीं है। (२२) बाईसवें धर्म लक्षण का नाम एकसुता धर्म लक्षण है इसका ये सिद्धान्त है कि जिस कार्य में मन को लगाना एक चित होके उसे पूर्ण करना इधर उधर चित को डांवा डोल न करना और कार्य को पूर्ण किये बिना अधूरा नहीं छोड़ना (२३) तेईसवें धर्म लक्षण का नाम मन संकल्प त्याग धर्म लक्षण है। इसका ये सिद्धान्त है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने मुख से तार निकाल कर जाला बनाती और फिर उसी में ढिक जाती अर्थात फंस जाती है तैसे ही मनुष्य अपने मन से अनेक प्रकार के संकल्प रूपी तारों को निकाल कर फिर उनही में फंस जाता है। सो मन के संकल्पों के त्याग का नाम ही मन संकल्प त्याग धर्म लक्षण है (२४) चौवीसवें धर्म लक्षण का नाम भृंगी एक तत्व धर्म लक्षण है। कि जिसका मूल सार ये है कि भृंगी नाम का एक छोटा सा गुंजार कर उड़ने वाला कीड़ा पक्षी कि जिसे अंजन हारी और गौहांजनी भी कहा जाता है। ये जिस प्रकार के कीट यथा कीड़े को पाती है उसी को पकड़ के वह अपने घोंसले में लेजाती है। और वह कीट भृंगी रूप धार भृंगी से स्नेह त्याग उड़ता हुआ चला जाता है। तैसे ही मनुष्य और सर्व देहादि रूप प्राणी एक ही जन्म आत्मा का जड़ चैतन सर्व रूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

158

एक ही स्वरूप है। और एक ही धर्म और एक ही क्रम रूप है। और इस बात का निश्चय हो जाना ही और निश्चय कर लेना ही कर्म योग तथा भक्ति और आत्म ज्ञान और ज्ञान योग अर्थात ध्यान सब नामों का एक ही नाम अद्वैत धर्म है। सो इसी अद्वैत धर्म का बौद्ध धर्म नाम है। और इसी बौद्ध धर्म का सत्य वादि धर्म नाम है। और इसी सत्य वादि धर्म का ध्रुव धर्म नाम है और इसी ध्रुव धर्म का सनातन धर्म नाम है और इसी सनातन धर्म का केवल निराकार नारायण अमर ब्रह्म लक्ष है और इसी लक्ष का ये अर्थ है कि देहादि में निराशत अचिंत निरमोह निर्द्वन्द्व निराधार निष्क्रिया निरुपाधि निश्चिन्त्य निगम निरायास निर्लेप निरविकार निराकार निरालंब अव्यय अगोचर अनादि अनंत पूर्ण रूप स्वरूप सेही भरपूर एक रस अक्रिय अखंड अगम अपार निरंजन अलक्ष अविनाशी अचल रूप से स्थित है कि जिसे न कहीं जाना है न आना है न मरना है न मारना है न जलना है न कटना है न गलना है न सूखना है। देहादि उस अनामय स्वरूप की माया अर्थात शक्ति का खेल है वह पूर्ण प्रज्ञान आनंद सनातन कूटस्थ ब्रह्म व्यापक शाश्वत ईष आत्मि तत पुरुष स्थाणु नित्य विभु शुद्ध आत्मा पुरार ब्रह्म आत्मा रूप अनामय स्वरूप होके देहादि में देहादि के मोह को प्राप्त नहीं होती है सो देह के नष्ट हो जाने की चिंता तथा मर जाने यथा मारे जाने का भय भ्रम रूप माया का जाल मकड़ी जाल चक्र की भांति है इसी प्रकार संसार रूप में मन के रचन किये हुए संकल्पों के भ्रम से आत्मा को अनात्मा रूप में अल्पज्ञ जीव देहाद का माया रूपी मोह व्याप्त कर के फिर निजात यथा मिथ्या मुक्ति मोक्ष की आशा में कपड़े रंगना ब्रह्मचारी साधू संन्यासी बन के उदासी अतीत हो के घूमना और शिर के तथा डाढ़ी मोंछों के बाल मूंडना और जहां तहां पगलों की भांति घूमना यथा यज्ञ तप आदि संध्या उपासना जैसे कर्म करना सर्व ही भ्रम रूप पाखंड और मिथ्या कार्य हैं कारण कि मन में जितने संकल्प उत्पन्न होते हैं वह सब देह और आत्मा की एकता करने से होते हैं। कि वे सब शरीर के नष्ट होते ही नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि आत्मा मन रूपी मन और मन के विषे नहीं होता है आत्मा आत्म रूप अध्यात्म स्वरूप है स्वयं मोक्ष और स्वयं स्वतंत्र है। आत्मा अनामय रूप को मोक्ष मुक्ति के लिये कुछ करना नहीं है मन कि जो आत्मा और देह की एकता का भ्रम करके आत्मा को अल्पज्ञ मान कर मोक्ष यथा निजात के भ्रम और पाखण्ड को उत्पन्न करता है ये आप ही नाश मान है कारण ये है कि मन जिस वस्तु का नाम है वही ये पंच भूत का मिश्रित एक पुतला देह रूपी देह है कि जो अपने अमर होने की चिंता में भांति भांति के संकल्प उत्पन्न करता है किंतु ये मनु राज १४ मन्वंतरों और १८ सत्युगों का एक स्वरूप ब्रह्मा की मूर्ति विष्णु और शिव का रूप कि जिसकी १०० वर्ष की आयु है किसी क्रिया द्वारा ४३२०००००० स्वासा के लिये जितना समा नियत है उस से विशेष समय लो किसी काल में भी ये कल्प रूप मनुष्य देह मन की कल्पना का मोह रूप स्थिर नहीं रह सकता है कारण ये है कि यही विशेष से विशेष संख्या श्वासा किसी देह मान पदार्थ की हो सकती है। सो आत्मा मन के संकल्पों को न प्राप्त होके देह के मोह का त्याग रूपी गुण अनामय आत्मा इस मन रूपी देह का त्याग कर देता है। क्योंकि यही परमार्थ का बोध है सो मनुष्य जब इस प्रकार परमार्थ के बोध से आत्मानन्द को प्राप्त होता है तो उसके चर्म चक्षुओं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से आत्म रूप होकर देह का मोह अर्थात कलियुग का रूप मन की कल्पना का कल्पित कल्प भाव नहीं 159
रहता सब चिंताओं से रहित होकर संसार में जीवन मुक्त व विदेह मुक्त होता है। उसकी दृष्टि में राजा तथा प्रजा सम्बन्ध बालकों का खेल हुआ करता है। कारण यह है कि ये पुरुष अभय रूप आत्म स्वरूप होके स्वयं बर्बवाहन रूप हो के अपने एक बाण से ही सृष्टि को नष्ट कर देने की और प्रकट करदेने की शक्ति तथा सामर्थ्य रखने वाला बन जाता है। सो जब इस प्रकार चैतन्य सत्ता का साक्षी भाव निश्चित होजाता है तब नृत्य शब्द के अर्थ खुलते हैं। अर्थात नव की नव प्रकृतियां स्वयं नृत्य करती अर्थात नाचती हुई भासती हैं। और यह आनंद की अवस्था सत्युग का रूप है। और इसी का नाम अमरनाथ इसी विश्वनाथ इसी का गिरनार अरबंड नाथ और इसी अवस्था का त्रिंबक नाथ तथा द्वारकानाथ जगन्नाथ बद्री नाथ ॐ कारनाथ और इसी प्रकार अनेक नामों में वसिष्ठ पराशर व्यास जनक याज्ञवल्क्य शुकदेव - सूर्य - नचिकेतान - यमराज - विदुर - सन्त्कुमार गर्ग आदि बहुत से नाम हैं। फिर इसी अवस्था का नाम ज्ञात और इसी अवस्था का नाम विज्ञान परम पद है और यही अवस्था संपूर्ण सुख और परमानंद का लक्ष है।

(९) सार सार अंश यह है कि मेरे अनामय ब्रह्म अंग में चैतन्य राज की खुली कच्छेरी का नाम मन अर्थात कलियुग है और उसमें उसके अन्तः पुर का नाम बुद्धि है कि जो द्वापर का रूप है। और उसमें ऐकान्त स्थान का नाम चित अर्थात त्रेता है कि जिसका स्वरूप कारण अहंकार अर्थात सत्युग सत्युग का रूप है। कि जिस के द्वारा चैतन्य अनामय स्वरूप सर्व शक्तिमान बना हुआ सर्व प्रकार की शक्तियों के खेलों को देखते हुए सर्व साक्षी और सर्व जगत का आधार बना हुआ है किंतु रामायण भागवत और स्मृति द्वारा जो मैं ने ही अपने तत्पद के प्रकाश को राम कृष्ण अवतारों की महिमा के चरित्रों में अपनी अति उत्तम शिक्षा को प्रकटाया है। और जो कालांद्र समय के प्रभाव और रजोगुणी व तामसी पुरुषार्थ हीन स्वार्थी सृष्टि मेरी सन्तति ने प्रकृति प्रमाण उत्पन्न होकर जितना गुण कि उन से प्राप्त करना चाहिये था वितना गुण प्राप्त न कर के शरीर सुख व्यवहार के हेतु सुधारने वाले परमार्थ के गुणों को त्याग विगाडने वाले दोषों को ग्रहण कर और मेरी शिक्षा के ग्रन्थों पर मिथ्या इतिहासी रंग चढ़ा उन्हें सच्चे इतिहास बना जाति पाति के मिथ्या पन्थ निकाल भेद भाव को उत्तम मान आत्म ज्ञान के अद्वैत पन्थ मार्ग को छोड़ अनात्मी द्वैता के पन्थ की सुरत लगा मन माने देवी देवता और देव बना उनका पूजना आरम्भ किया और इस प्रकार संसार को उन्नति से रोक स्वार्थ के जाल में फांस दासगति के गढ़े में धकेल त्रेता में राम और द्वापर में कृष्ण अवतार का होना प्रकट कर सच्चे सार धर्म सनातन बोध धर्म ध्रुव धर्म को अङ्ग विद्या के प्रमाण में गप्प मिथ्या वेद शास्त्र बना कान में फूंक मार अपनी जीविका के वास्ते गुरु पुरोहित आचार्य ऋषि ब्रह्मर्षि स्वामी ब्रह्मचारी संन्यासी उदासी डंडी वैरागी निरञ्जनी गुसाईं आदि अनेक पन्थ और भेष बनाके दम्भ और पाखण्ड को अत्यन्त बढ़ा के अपने दम्भ द्वारा यथार्थ अद्वैत धर्म की शिक्षा को मिटा के और अपने अपने पाखण्डों को चलाके आर्या द्वैज बन कर नये नये यंत्र तंत्र मंत्र बना मूरखों के कानों में फूंक और उन्हें अपना ही पशु मान इस प्रकार शिक्षा देने लगे कि त्रेता में राम अवतार को वसिष्ठ ने पढ़ाया और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

द्वापर के अन्त में कृष्ण का अवतार हुआ कि जिसने काशी में शिक्षा पाई और वसिष्ठ के पड़पोते तथा
१८० शक्ति के पोते और पराशर के पुत्र ने अर्थात वेदव्यास ने महा भारत बनाई और श्री गणेश भगवान
ने उसे लिखवाई और इसप्रकार ८६४००० वर्ष का समय वसिष्ठ १ शक्ति अर्थात भारद्वाज २
पराशर ३ और व्यास ४ इन्ही चार पुरुषों की आयु में व्यतीत होगया इस प्रकार मूरखजो
गांठों के पूरे कानों के कच्चे और मति के हीणे होते रहे हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाकर पारवण्डी
द्वैत वादियों के जोड़ तोड़ के घोड़ों पर चढ़े और इसप्रकार संसार की समुन्नता गति के पथ का
अन्त हुआ दम्भी गुरु और मूरख शिष्य बने कि जो पशु समान उन्ही दम्भियों पारवण्डियों की
पूजा और सेवा करने लगे। इस प्रकार मेरी चार्वाक्य रूपी सच्चे धर्म की सच्ची धर्म परनाली
अर्थात अद्वैत धर्म के बन्धन का मार्ग खण्डन हुआ प्रथम सन्तोष ने असन्तोष में पलटा खा-
या फिर तृष्णा ने जगत में अपना डेरा जमाया तो फिर सत्य बोलना सार न रहा इस प्रका घोर
कलियुग वर्तमान हुआ गुण कर्म स्वभाव तीनों शब्द एक अर्थ को तीन मान एक से अनेक
आशान्ति रूप में जातियां बन गई विचार धर्म की जगह आचार धर्म ने घेरी सच्चे धर्म को
नास्तिक धर्म की पदवी मिली और कर्म अनुसार जीवन मरण की मिथ्या भ्रम रूपी शिक्षा
जगत में प्रवेश कर गई। और इसप्रकार वेद शास्त्र रचे जाने लगे वर्णाश्रम की परनाली की भी
चारों ओर बाढ़ लगी कुकर्मी कुकर्म करने लगे तो मैं ने ये महाभारत नाम का एकही
महान वेद बनाया किंतु दम्भी और पारवण्डियों ने उसके सार को न पाया कि जिसमें मैंने
चारों युगों के अर्थ को चार वर्णों में इस प्रकार बतलाया है। कि वास्तव में (१) कलियुग
सर्व असत्य भांति के कार्य और कर्मों का नाम है और असन्तोष रूप में तृष्णा सहित यही है
कि जो शुद्र गति है शुद्र किसी जाति का नाम नहीं है ये असन्तोष रूप में तृष्णा का स्वरूप है और
तृष्णा वासना का रूप है और वासना मन संकल्प विकल्प के कृत्य कार्य कारणों में असत्य भांति के
संशयात्मक होने का नाम है। कि जो धन पुत्र स्त्री आदि की अप्राप्ति यथा और किसी प्रय वस्तु की
अप्राप्ति से तथा किसी प्रय वस्तु के नष्ट होजाने से या किसी की शत्रा से किसी प्रकार की दुःख
रूपी हानि के पहुंचने से संसार में नाम मान यश नाक कटी जैसे मिथ्या लज्या के शब्दों से धिक्कार रूप
में दुःख मान कर दुःख मानने से उत्पन्न होती है और इस प्रकार के दुःख के दूर करने को जब मनुष्य
सत्य असत्य का विचार न करके अपने सर्व कार्यों में असत्यता का प्रवेश कर कार्य करने लगता है
तो उसी का नाम कलियुग उसी का नाम शुद्र उसी का नाम यम उसी का नाम राक्षस उसी का
नाम यौन उसी का नाम असुर उसी का नाम पिशाच और उसी का नाम मलेक्ष और इनके अन्यत
जितने शब्द मलेक्ष गति के प्रकाश रूप में बोले जाते हैं वे सब वासना रूपी कलि का नाम हैं सो जो
ऐसा मनुष्य है वही साक्षात कलियुग है क्योंकि कलियुग किसी समय यथा काल अथवा किसी
ज़माने का नाम नहीं है कि जो पारी पारी से आता रहता है कलु नाम ही उस मनुष्य का है कि जो चाण्डाल
कार्य करे सो महत्तर तथा भंगी कि जो दुर्गन्ध का दूर करने वाला है चाण्डाल नहीं है ब्राह्मण है
क्योंकि वह सर्वथा शुद्ध और सत्य कार्य करता है फिर चाण्डाल और कलियुग कौन है वही कि
जो अपनी देही के सुख के हेतु दूसरों को दुख देता है अपने नाम और मान को दूसरों से उत्तम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जानता है और दुष्ट कर्मों से दूसरों पर अपना अधिकार जमाता है। तथा उन पर हुकम चलाता है मारता है और अपनी आज्ञा से बाहर न निकलने देने को असत्य भांति के अनिति रूपकमय चरित्रों में निति न्याय के नाम से नाम मात्र के शास्त्र रचन कर निर भय रुपी जगत को भय रूप बनाकर उनमें भेद और भ्रम भाव उत्पन्न कर अपने देह सुख के निमित दूसरों से लड़ाता और उनका गला काटता है और उन्हें असत्य कार्य करने की शिक्षा देता है और इस प्रकार आप अधिकारी और कलुराज कलियुग बनता है सो जो ऐसा मनुष्य है वही शूद्र और वही चाण्डाल और वही कलि युग है, इसलिये जब एक शूद्र शब्द के अर्थ ही दम्भी पुरुषों ने उलटे बतलाए तो महान वेद महाभारत के अर्थ उन्हें किसी ही प्रकार करने थे कि उनसे उनकी पोल का भांडा फूटना था सो सुगम रीती में ऐसा प्रकट किया कि शूद्र नाम उसका है कि जो दूसरों की सेवा के कार्य करे इस प्रकार कलियुग नाम चाण्डाल पुरुषों ने प्रथम आर्या द्वैज जाति का नाम धार संसार से मेरे संपूर्ण तत्व विज्ञान नियमों को खण्डन करने के निमित मेरे संक्षेप महान वेद महाभारत में कि जो सर्व सुख के देने वाला एकही चार्वाकी महान वेद पुरुष प्रकृति के संयोग भेद में अभेद रूप १८ पर्व और सिद्ध नाम एक रूप स्वरूप से २४००० श्लोकों में (अद्वितीय चार्वाक महान वेद) एक ही वेद था खण्डण कर एक से चार ऋग यजु साम अथर्वण के रूप मे चार वेद और अनेक शास्त्र और स्मृति बना बनाके भारत के शुद्ध अर्थ अर्थात मेरे अनामय स्वरूप के शाश्वत शुद्ध अद्वैत बौद्ध ध्रुव धर्म सत्य सनातन धर्म को मिटा दिया और सार तत को मेट मिथ्या को महाभारत का रंग देके इतिहास का रूप दिया क्योंकि (अद्वितीय चार्वाक महान वेद) का प्रथम श्रुति मंत्र ये है कि

सत्यं नारायणं नित्य शुद्ध मुक्त चैव नरं नरोत्तमम् ।

सर्वत्रैकं देवं तत्वं व्यासं प्रणव बौद्ध चार्वाकमयम् ॥

अर्थ इसका ये है। कि निश्चय करके नरों में श्रेष्ठ नर तथा नित्य सत्य शुद्ध मुक्त नारायण रूप स्वरूप सर्वत्र एक ही देव संपूर्ण तत्वों में सार तत केवल बौद्ध स्वरूप प्रणव चार स्वर यथा चार नाद सचतुर्युग एक स्वरूप अर्थात चार्वाक नाम से एक ही प्रसिद्ध रूप ॐ कार मैं हूं।

कि जिसको दम्भी कलियुगराज शूद्र चाण्डाल कान फूंक कर गुरु पुरोहित बनने वालों ने अपने पशु चेलों को भय देकर बहकाने और अपने व्यवहारों को अपने हित चिंतअनुकूल सिद्ध करने को दम्भ पाखण्ड द्वारा जो कर्तव्य किये प्रत्यक्ष हैं कि जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण महाभारत का ये ही एक आदिम श्लोक है कि "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्॥ देवी सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥" कि जिसके ऐसे अर्थ होते हैं कि – नारायण को मनुष्यों में जो श्रेष्ठ नर है उसको सरस्वती देवी को और व्यास जी को नमस्कार करके फिर (जय) अर्थात महाभारत को पढ़ना चाहिये। इसप्रकार कलि नाम दम्भी गुरुओं ने मूरख शिष्यों को दम्भ। पाखण्ड के जाल में फांस कर्मी द्वैज आर्यों का नाम रूप दिया और उनके लिये संस्कारों के समय में संस्कार विधि नाम का नष्ट करता ग्रन्थ बना यज्ञोपवीत कराने वाले से गायत्री मंत्र का उपदेश लेना कहा क्योंकि बिना गायत्री मंत्र के शूद्र ही होता है। और फिर गायत्री मंत्र के ऊपर दूसरा कोई भी गुरु मंत्र लेकर एक गुरु के अन्य दूसरा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरू बनाना द्वैज आर्या जाति के लिये नहीं लिखा है। यही हैं कि जो कुमार्गी हैं और कर्मी कहलाने से प्रसन्न होकर और फिर गायत्री मंत्र के अन्य मंत्र उनके कानों में फूक कर चेलों के धन को नाना प्रकार के भ्रम और संस्कारों के जाल चक्रों में लपेट वचन करते हैं सो यही सम्भी शुद्र हैं और यही कलियुग रूप में साक्षात कलियुग कहे जाते हैं। (२) द्वापर द्वधा रूपी व्यापार कार्यों का नाम है कि जिनमें सत्य और असत्य की अर्थात हान लाभ की रस खिंचना रहती है सो वे कि जो सत्य और असत्य को सम भाव जान कर और सत्य के साक्षी होकर कार्य करते हैं उन्हीं का नाम वेयश अर्थात यश रहित निर्गुण द्वापरी कृष्ण होता है कि बे न किसी के हानि कारक होते हैं और न किसी विशेष लाभ कारी हैं कि जो दूमुई सर्प के भांति उस लेने का मत्था दिखाते हैं तथा उसते नहीं (३) त्रेता त्रिगुणात्मक रूप उन कार्यों का नाम है कि जिन्में तीन अंश सत कार्यों के हूं और एक अंश में असत्य भाव मिश्रित हो सो जो इस प्रकार के कार्य करने वाले होते हैं उन्हीं का नाम अजगरी तथा सगुण परमार्थी अर्थात क्षेत्री अर्थात कष्ट निवारणी त्रियुगी त्रेताई राम होता है कारण ये है कि जो ऐसा पुरुष होता है वही अभय रूप अभय स्वरूप होता है जिसप्रकार कि प्रथम चित के व्यापार में वर्णन किया गया है कि इसी का नाम सच्चा ज्ञेय है सो जो ऐसा मनुष्य होता है वही मर्यादा पुरुषोत्म कहलाता है। कि वह किसी को भी किसी प्रकार का निर इच्छित रहते हुए कष्ट का हेतु नहीं होता है क्योंकि इसके सभी कार्यों में निर्भयता और अभयरूप ज्ञान की इसप्रकार मर्यादा सहित शिक्षा होती है कि जिस को ग्रहण करना मनुष्य मात्र अपने सुख के निमित और जगत सुख निमित परमार्थ का परम बोध करके ही मानते हैं। (४) कृत अर्थात सत्युग पूर्ण प्रकाश सत्य रूप सत्य स्वरूप पूर्ण विधि सहित सत कार्यों का नाम है कि जिस के किसी अंश में भी किसी प्रकार से असत्य का मेल न हो पूर्ण सत्य ही सत्य हो सो जो इसप्रकार कार्य करने वाला है उसी का नाम अद्वय रूप अद्वय स्वरूप सर्व साक्षी जैसा कि नृत्य शब्द में प्रकट किया गया है ज्ञात है और इस ज्ञात के अनेक नाम रूपों से इसी का नाम धर्म और इसी का नाम कर्म है और यही वराहमणि अर्थात वराह मुक्ता अर्थात वराह की डाढ़ का मोती है कि जिस को असत्य भांति में असत्य रूप से चौथा जाति नाम वर्ण ब्राह्मण कलियुग राज शुद्र आकृति आचरण ने प्रसिद्ध करके अनामय रूप अनामय स्वरूप अद्वैत धर्म बौद्ध धर्म सत्यधर्म ध्रुव धर्म सनातन धर्म आदि धर्म अनादि धर्म अनंत धर्म को वराह कल्पी सृष्टि का रूप दे कर अपनी ही भांति गू मस्क बनाया है। अर्थात ब्राह्मणी पन्थ निकाल कर आगम संसार को अपने अधिकार और अपनी सन्तति के अधिकार हाथ से बाहर न निकलने देने को कलियुग राज महाराज शुद्र चाण्डालों ने आर्या द्वैज जाति और वर्णाश्रमों के भेद भ्रम भाव और पाखण्ड को ब्राह्मण ब्रह्म रूप ब्रह्मा की सन्तति बनकर फैलाया है। इतना वर्णन करके हे मनु इन्द्र वेदव्यास राजेन्द्र तू प्रकट करता है कि युगों के अंक वर्षों की संख्या को नहीं दिखाते हैं। ये मनुष्यों की अवस्था के परस्पर भेद को प्रकट करते हैं। क्योंकि कल्प नाम भ्रम का है और भ्रम शंका को कहते हैं। और शंका भ्रम और कल्प तीनों शब्दों के एक ही अर्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वहम अर्थात कल्पना तथा संशय के हैं। सो जबतक मानुषी बुद्धि संशय से निवृत्त नहीं होती तबतक वह कालके चक्र से नहीं निकलती और लक्ष्यार्थ को निश्चय नहीं करसकती। सो यही कारण है कि युगोंका बन्धन किसी प्रकार से पंच भौतिक आकृति नहीं है युगोंका जिस प्रकार वर्णन किया गया चतुष्पृ अंतः करण रूपमें एकही स्वरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से है और प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि चतुष्पृ शब्द के अर्थ चार के हैं और अव्यक्त का नाम अन्तः है और करण उस वस्तु को कहा जाता है कि जिस के द्वारा क्रिया बनती है। इसलिये अन्तः करण का प्रादुभाव इस विधि से हुआ है कि चैतन जब नव प्रकृतियों का साक्षी होकर अपना आभास प्राणों के अल्प ज्ञ रूपमें डालता है तो चैतन्य मंडल के प्रति बिम्ब से चित अर्थात प्रथम चेतन्ता १ और अहंकार के मंडल के प्रति बिम्ब से अहंभाव अर्थात प्रेरणा २ – और बुद्धि मंडल से बोध अर्थात शीतलता ३ और मन के चक्र से मनन अर्थात फुर्ना सब देह धारियों में उत्पन्न होती है यही कारण है कि अहंकार का मिश्रित भाव कि जो देह के बीच सब से विशेष बलवान है और इसी से बुद्धि में ब्रह्म साक्षात होता है। और इसी के द्वारा मन फुर्ना युक्त हो माया में लग्न हो मेरे तेरे तथा रूप स्नेह से मरिडत हो सांसारिक पीड़ा में पड़ता है। और इसी से चित द्वारा सकाम क्रिया अर्थात प्रमार्थ के कार्य होते हैं और अहंकार से ही चैतन्य सत्ता शक्ति के साक्षी भाव से निष्काम कर्म होते हैं और अनामय स्वरूप का ज्ञान होता है। इसलिये इसी का नाम सतो गुणी अन्तः करण कहने में आता है। कि जिस के चार वर्णाश्रम और चार नाम युग रूप एक कल्प स्वरूप हैं कि जैसे प्रमाण है कि एक बालिका इसी का नाम शुद्र इसी का नाम ब्रह्मचारी और इसी का नाम कलि युग है और ये बालक की प्रथम १२ वर्ष तक की एक आयु अवस्था का नाम है कारण ये है कि ये अवस्था प्रमाद अवस्था होती है इसलिये ब्रह्म का न जानने वाला बालक १२ वर्ष तक ब्रह्मचारी अर्थात शुद्र तथा कलियुग इन तीनों नामों से कि इसी के ये तीन नाम हैं किसी एक नाम से प्रतीत किया जाता है। कारण ये है कि सांसारिक लौकिक व्यापार में १२ वर्ष तक की अवस्था निर्दोष अवस्था है साक्षात अनामय ब्रह्म रूप है उसके किसी भी उत्तम मध्यम और निषेध कार्यों पर उसके गुणों की सराहना तथा उसके अवगुणों पर उसे ताड़ना करना योग नहीं है कि यही पहले वर्ण पहले आश्रम और पहले कलियुग युग के अर्थ हैं। इसीप्रकार १२ वर्ष से उपरान्त और २४ वर्ष तक अर्थात ३६ वर्ष की आयु तक इसी बालक अर्थात कन्या रूपी कलियुग तथा ब्रह्मचारी शुद्र का चाहे वह लड़का हो यथा लड़की वे यज्ञ अर्थात गुण रहित निर्गुण वर्ण और गृहस्थ आश्रम से द्वापर नाम है। सार इसका ये है कि इसी अवस्था में संसार के लौकिक व्यवहारों को देखके वह अपनी प्रकृति अनुकूल अपनी उदर पूरणा के लिये आप से आप ही किसी न किसी प्रकार के कार्य करने की प्रतिज्ञा करके अपनी प्रतिज्ञा अनुकूल कार्य करते हुए किसी न किसी प्रकार का गुण ग्रहण करना आरम्भ कर देता है। और गुण ग्राहक बनके अपनी ३६ वर्ष की आयु तक किसी न किसी प्रकार का गुण अवश्य सीख लेता है और इतनी अवस्था तक प्रथम १२ वर्ष की आयु तक लड़का कालू और लड़की का काली नाम हुआ करता है और इसी अवस्था में लड़का गणेश और लड़की गणपति कहलाती है। फिर इस के उपरान्त १२ वर्ष से ऊपर ३६ वर्ष की आयु तक लड़के का नाम द्वापर और लड़की का नाम द्वापरी अर्थात कृष्ण व राधा होता है कि दोनों की असंग अवस्था होती है अभिप्राय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

१८१ ये है कि ३६ वर्ष की आयु तक लड़के व लड़की में किसी प्रकार का पुरुष प्रकृति संयोग तथा स्त्री पुरुष का जैसा शब्द स्पर्श नहीं होता लड़के कान्हा और कुमारी लड़कियां रुक्मणि अर्थात लड़के गोप और सर्व लिड़कियां गोपी अर्थात लड़के गोतम और लड़कियां गोत्मी लड़के दुर्वासा और लड़कियां दुर्वासणी लड़के शिव और लड़कियां शक्ति शिवात्मनी कहलाती हैं इसी अवस्था में लड़कों का तप रूप और लड़कियों का पूजा स्वरूप होता है कि जो अपनी अपनी इस आयु तक इस अनादिकाल के द्वन्द्वज संसार में नाना प्रकार के द्वन्द्वों में फँसते और उनसे निकलते हुए कभी सुख और कभी दुख को अनुभव करते हुए आशा और भय से स्वतन्त्र हो नाना प्रकार के कार्यों कर्मों को करके मध्यम और निषेध कार्यों के करने पर माता और पिता की ओर से ताड़ना पाते हुए अर्थात लड़का तप और लड़की पूजा का डण्ड भरते हुए स्वतः एक ही कर्म और एक ही धर्म अद्वैत धर्म को ग्रहण करके सन्तोष रखना १ तृष्णा का रोकना २ और सत्य बोलना ३ गुण कर्म स्वभाव से एक रूप एक स्वरूप में किसी प्रकार के पक्षपात में न रहकर सच्चा सुख प्राप्ति के हेतु परम तत्व अमृत रूपी धर्म की ओर प्रवृत होते हैं कि इसी का नाम द्वापर है और यही द्वापर के अर्थ हैं। इसमें तप और पूजा का ये अभिप्राय है कि जब किसी असन्तोष रूपी कार्य तथा तृष्णा के व्याप्त होजाने से आशा और भय के वश हो किसी प्रकार से पक्षपात में पड़ते यथा अपने सुख के हेतु दूसरे को अपने से अन्य जान कर दुःख देने का विचार करते तथा सताते तो लड़की को ३-५-७-९-११-१३-१५-१७ दिन की पूजा का ये दण्ड मिलता कि वह इतने समय तक एक एक दिनरात में तीन तीन आंवले के समान यथा दिनरात के आठ प्रहर में एक ही बार ९ रुपये भर भोजन करे और इतना ही जल पान करे और असंग आंवले के वृक्ष के नीचे वास करती हुई विचार करे कि मेरा कार्य में क्या संबन्ध था और मिथ्या कार्य किस कारण मेरे से बना कि इसी बात का देव पूजा नाम इस प्रकार जब तक यथार्थता निश्चय न होती उसे आंवले के वृक्ष के नीचे गरमी हो यथा सर्दी या वर्षा काल रहना पड़ता और किसी के घात करने वा विषय भोग के करने पर ३३ दिनरात तक केवल एक ही आंवले के समान उसे भोजन दिया जाता और अलक्ष पूजा कराई जाती और किसी काल भी घात के बदले में घात का डण्ड न होता था और ये कार्य केवल माता पिता की आज्ञा से करना पड़ता था कारण कि सृष्टि स्वतंत्र है इसमें न कोई किसी का राजा है और न कोई किसी राजा की प्रजा है पृथक पृथक कर के सर्व प्राणी एक ही आत्मा स्वरूप ॐ कार रूप आपही अपना राजा और आपही प्रजा है। इस लिये माता पिता की आज्ञा का पालन ही ३६ वर्ष की आयु तक लड़की के लिये देव पूजा और लड़के के लिये देव तप है। और पूजा की भांति ही तप का अर्थ है यथा जो अन्तर है वह ये है कि लड़के को एक स्थान में पंच अग्नि में आठ प्रहर से एक प्रहर के लिये तपना होता था और ऐसा परम तप उष्ण काल में करना होता था और शीत वा वर्षा काल में जल में बैठना वा खड़ा रहना पड़ता है। कि यही द्वापर का रूप और यही द्वापर का लक्षार्थ है। इसी प्रकार जब पूर्ण ३६ वर्ष की आयु होजाती तो जुगुल जोड़ी में अर्थात बहन भाई में माता पिता के स्वयं इस प्रकार कि (प्रज्ञानं आनंद ब्रह्म महावाक्य लड़का बहनी का हाथ पकड़ के कहता और इसके उत्तर में लड़की भाई का हाथ में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हाथ लेकर ब्रह्म आनंद प्रज्ञानम महा वाक्य का उच्चारण करती इस प्रकार बहन भाई दोनों 165
को स्त्री पुरुष संबन्ध होता और इसी का नाम विवाह कहलाता था किंतु जब इस प्रकार बहन
भाई की आयु एक रस न हो ती तो लडका व लड़की अपने हित अनुकूल अपने अपने
माता व पिता के स्वयम (अयं आत्मा ब्रह्म महा वाक्य का लड़का और ब्रह्म आत्मा
अयं महा वाक्य का लड़की उच्चारण कर के स्त्री पुरुष के सम प्रवृत रूप से त्रियुगी
त्रेता स्वरूप में सीता राम बनके क्षेत्री व क्षेत्रानी वर्ण यथा वाणप्रस्थ अवस्था में
आते और सगुण रूप में अचल मर्यादा का पालन करते हुए क्षेत्री व क्षेत्रानी संसार रूपी जो
जगत रूप सृष्टि है उसके धणी व धनाणी के एक रूप एक स्वरूप सर्व संसार एक ही ब्रह्म यथा
वाणप्रस्थ उदासीन परमार्थ रूप है वे इसी सार बात को सार सिद्धान्त ध्रुव धर्म निश्चय
से अद्वैत बौद्ध धर्म सत्य धर्म सनातन धर्म का एकरस अनुभव करते हुए। रोचक
और भयानक वचनों पाशा में न फँसते हुए आशा और भय से स्वतंत्र और स्वयम
मोक्ष आत्मा स्वरूप आनंद रूप अपने को जानते हुए। और अनासुरी से किसी को इस
संसार सागर में असन्तोष रूपी तृष्णा की भँवरजाल में डूबते देख वहां से उसका हाथ
पकड कर बाहर निकालने के हेतु इस प्रकार सत्यैताधर्म को सत्योपदेश धर्मव्याख्यान रूप
वाणी में करके उसे सहारा देते थे कि हे भ्रात समझ लो कि तुम्हारे को किस वस्तु की आवश्यकता
है कैसे प्राप्त होती है। अज्ञान से गहरे समुद्र में जा न पड़ो तुम सर्व प्रकार के संदेह और भ्रम भय
से रहित हो कारण कि तुम प्रत्यक्ष अनुभव गामी हो कि सर्व पदार्थों में एक रूप एक रस ही
तुम कौन हो पूर्ण सर्व अधिष्ठान वासिष्ठ रूप वासिष्ठ राज बौद्ध स्वयं शक्ति भारद्वाज स्वयं पराशर
त्रिपुरारी अनिच्छित अकाल मित्र गुप्त वर्मा शुद्ध मैत्रेय शरमा गुरु शिष्य कलाधारी अमर रूप एक
ही संसार रूपी देहमंदिर देह धारी। श्रोत्र ज्ञान इन्द्रियों का समूह एक एक ज्ञानेन्द्रिय वाक्य आदिक
इन्द्रियों का समूह एक एक वाक् आदिक इन्द्रिय रूप प्राणादिक वायुओं का समुदाय रूप एक एक
प्राणादिक वायु रूप मन आदिक चतुष्टय अन्तः करण रूप मन बुद्धि आदिक एक एक रूप स्थूल सूक्ष्म रूप में
आकाशादि पंच महा भूत रूप और उनका समुदाय रूप एक एक भूत रूप और भूतों का कार्य रूप काम क्रोध
आदिक २५ तत्व प्रकृति रूप स्थावर जंगम रूप व्यापक परिच्छिन्न रूप परमाणु अपरमाणु रूप भूतपिशाच
आदि रूप प्रतिबिंब व बिंब रूप जीव ईश्वर ब्रह्म रूप जड़ चैतन्य रूप सर्व शक्तिमान सर्व शक्ति रहित
माया अविद्या का संबन्ध वाला और संबन्ध रहित माया व अविद्या करके मोहित अमोहित सुख व
दुख का कारण धर्माधर्म वाला और इनसे रहित तथा धर्माधर्म के कार्य सुख दुःख का भोक्ता और
अभोक्ता क्रिया वान अक्रिया वाला शांता आदि मन के धर्म रूप व अधर्मी रूप और उनसे रहित
समाधि रूप विक्षेप रूप और उन से रहित रूपादिक विषय रूप और उनसे रहित नित्य
अनित्य दृश्य दृष्टा उभय रूप और इनसे रहित वर्णाश्रमी और उनसे रहित दीन बंधु
कृपालु गुरु देह विषय सगुण और निर्गुण रूप देव स्त्री पुरुष न पुंसक ग्रहण त्याग रूप और
इनसे रहित अनंत अंत वाला मधुर रसादिक रूप और उनसे रहित ऋषि मुनि अनेक नाम
अनेक रूप और उनसे रहित २१-२८-१२१ और ३० प्रकृति रूप और उनसे रहित

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

166 व्यापक अव्यापक असंग और संगी जीवन मरण रूप और उनसे रहित दूर से दूर और समीप से समीप लम्बा चौडा अर्ध अधो रूप और इनसे रहित दिशा उपदिशा रूप और इन से रहित वक्र अवक्र माता पिता पुत्र भाव आदि रूप और इनसे रहित उत्तम मध्यम निकृ पदार्थ रूप और उनसे रहित जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप और उनसे रहित तुरीय रूप तुरीयाती विश्व तेजस प्राज्ञ नाम जीव और उनसे रहित व्यष्टिस्थूल शरीर व्यष्टि सूक्ष्म शरीर और व्यष्टि कारण तथा स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि रूप और उनसे रहित पंच कोश रूप और उनसे रहित। समष्टि कारण सूक्ष्म स्थूल शरीर रूप और उनसे रहित विराट और हिरण्यगर्भ ईश्वर सतो रज तम गुण रूप और उन से रहित अमानित्वादि दैवी संपदा रूप और दम्भादि आसुरी संपदा रूप और उनसे रहित अनजाण और जानणे वाला और उनसे रहित स्वप्रकाश व प्रकाश रूप और उनसे रहित कर्मवान निष्कर्म उपासना रूप और उनसे रहित कर्ता अकर्ता सर्व कर्तव्य और उनसे रहित वन्ध मोक्ष रूप और उनसे रहित कारण रूप कार्य स्वरूप और उनसे रहित गुरु शिष्य उपदेश रूप और उनसे रहित देश काल वस्तु रूप और उनसे रहित नाम रूप स्वरूप रूप और उनसे रहित आदि अनादि सच्चिदानंद रूप स्वरूप और उनसे रहित यज्ञ दानादि रूप और उनसे रहित ज्ञानी अज्ञानी स्वामी रूप और उनसे रहित बाल युवा वृद्ध अवस्था रूप वाला और उनसे रहित सुंदर असुंदर रूप कुरूप रूप और उनसे रहित सब पदार्थों से रहित परस्पर व्यभिचार कार्य कारण से रहित केवल चैतन दृश्य मन बाणी के गोचर से रहित संपूर्ण सुख अकाल अनामय अचिंत रूप स्वरूप तुम्हारा है। क्योंकि तुम अमृत तत्व रूप हो - सो इसप्रकार शिक्षा देकर मरद मरद को और स्त्री स्त्री की सहायता के हेतू हैं उन्हीं का नाम राम और सति सीता है और यह स्वरूप ही दान और पाठ रूप है और यह ३६ से ७२ वर्ष की अवस्था तक त्रेता युग का रूप है। इसके आगे चौथे युग सत्युग का वराहमणि वर्ण और संन्यस्थ आश्रम का ७२ से उप्रान्त १२० वर्ष की आयु तक का यह सार है कि यही स्वयं जप और यही व्रत रूप है कि इस अवस्था में कुछ करना ही नहीं रहता है। कारण ये है कि जब इस आयु को मनु पहुंचता है तो निराशत और अचिंत रूप में प्रत्यक्ष प्रमाण से वराह मुक्ता गजग्राह मुक्ता सर्प मणि सर्प मुक्ता होजाता है अभिप्राय ये है कि जिस प्रकार मेघ मुक्ता अर्थात वह मोती कि जो वर्षा काल में अग्नि की चिंगारी की भांति चमक्ता हुआ आकाश से पृथिवी पर गिरता है और जिसके हाथ वह मोती आजाता है तो उसे सर्व सुखों की आप से आप ही प्राप्ति होती रहती है क्योंकि मोती के हाथ लगते ही वह पुरुष सर्व शक्तिमान अकाल अचिंत्य रूप नारायण ही होजाता है इसी प्रकार वराह की डाढ़ का मोती और काले सर्प की फण की नौक का नीले रंग का मोती और गज अर्थात हसती के दांत का मोती और ग्रिाह अर्थात मच्छली की आंख का मोती और वांस का मोती और सर्प की मणि जिस के पास होती है वही अचिंत होजाता है कि संसार के सारे पदार्थ उसे आप से आप प्राप्त होते रहते हैं कारण कि इसी का नाम शर्वण शङ्ख मणि होता है कि जो सर्व आधारी चौडामणि स्वयं सत्य एक ही नारायण है और यही सत्युग को लक्ष वराहमणः और संन्यस्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के अर्थ हैं। कारण कि जो वराह्मण है वही संन्यासी है और जो संन्यासी है वही अचिंत्य नारायण है 167
सत्युग है। क्योंकि जो ऐसा है वही सर्व साक्षी है और उसकी दृष्टि में जगत और जगत के पदार्थ कल्प रूप हैं
(१०) जब तक अन्तःकरण की सतो गुणी ये चारों क्रिया अर्थात चैतन्यता १ प्रेरणा २ बौध ३
और मनन ४ प्राण में रहती हैं तब तक जाग्रत तथा स्वप्न की अवस्थाओं में से किसी एक की
रचना अवश्य दिखाई देती है। और जब यह क्रिया प्राणों में लीन होजाती है तब सुषुप्ती की मूर्छा
होती है और कुछ दृश्य भाव नही रहता। किंतु जब प्राणों से अन्तःकरण उदय होता है तो फिर ये
सृष्टि भासने लगती है और इस प्रकार जिस समय तक मनुष्य देह रहता है ऊपर वर्णी उदय और अस्त
का चक्र सर्व प्राणियों में सदैव चलता ही रहता है। और इसी स्थान तक कारण त्रिपुटि की अवस्था है
और प्राणों की सूक्ष्म त्रिपुटि रजो गुणी अवस्था है और कारण और सूक्ष्म के योग से स्थूल त्रिपुटि
अर्थात पंच महाभूत की उत्पति है कि जो युग रूप में विस्तारपूर्वक संसार है सो यही युगों
का सार है। कि जो सतोगुण अहंकाररूप में युग रूप एक साकार नारायण है। विशेष प्रमाण ये है कि

त्रिय वेदस्य कर्तारो भाँड धूर्त निशाचरा ॥ यथा त्रिडण्ड डंडाश्रमो संन्यासगति वर्णो पथः॥
यज्यपुरुषं यज्ञपुरुषं निश्चलो युग आत्मयं॥ कल्प संज्ञा कल्पनाओ कल्प रूपी भावनाः॥
प्रतिविम्बो मात्राओ नामे कारण चेतनः॥ चिंत चिंता रहितं आचिंत मुक्तऽहमे कलो ॥ ॥

श्रुति प्रमाण – अर्थात ऋग १ यजु २ और साम ३ ये तीनों वेद अर्थात इन तीनो नाम रूपी वेदों के वेद
कर्ता अर्थात उनके बनाने वाले और संन्यासी के तीन डण्ड और आश्रमों का डण्ड संन्यास मार्ग
का वर्णाश्रम रूपी पथ (चलानेवाले) अर्थाथ आदि अन्त के कर्म विभाग्य नाम में प्रचार करने वाले भोले भाले
प्राणियों का धन द्रव्य और पदार्थ वस्तु उनको मिथ्या कर्म के भ्रम में फांस हड़प करके उनको भूका
प्यासा रखकर मारने वाले भांड धूर्त निशाचर अथार्त नीच हैं शूद्र हैं कलियुग हैं दम्भी पाखंडी हैं
क्योंकि मैं यज्य पुरुषं अर्थात अग्नि दाह रूप से यज्ञ पुरुषं यज्ञ अर्थात जगत रूप संसार में एक ही पुरुष
रूप में निश्चल युग स्वरूप आत्मा रूप हूं कि जिस रूप में कल्प संज्ञा की कल्प रूपी भावना कल्पना रूप
है मैं चिंत और चिंता से रहित अचिंत एक ही मुक्त स्वरूप हूं कि जिस स्वरूप में कारण चेतन के प्रति-
विम्ब का नाम मात्रा है। अभिप्राय ये है कि चैतन्य की कारण त्रिपुटि से जो प्रतिविम्ब प्राणों के सर्वज्ञ
रूप में पड़ता है उसी का नाम मात्रा है और वह चैतन्य के साक्षी भाव अर्थात उसके चार कारण स्वरूप के ही
अनुसार पांच प्रकार की प्रकृति आकृति माया शक्ति अर्थात माता बहन पुत्री स्त्री पांचवें पुरुष का एक
रूप एक स्वरूप दीपक की लो और दीपक की लो का प्रकाश रूप मात्रा नाम से पांच प्रकार की सिद्ध शक्ति हैं
क्योंकि जैसे प्राण सर्व ब्रह्मांड में परिपूर्ण है वैसे ही पंच मात्रा भी सर्व जगत में व्यापक हो रही हैं और
उनका सात्विक स्वभाव है क्योंकि पंच प्रणव अर्थात पंच ब्रह्म का जहां कहीं शब्द आता है वहां पर
यह इसी अर्थ को प्रकटाता है कि पांच प्रणव (⁝) अर्थात पंच मात्रा दल रूप अर्थात (◡) अर्धमात्रा का
प्राण अपान रूप में हंस रूपी एक ही स्वरूप है इसी का नाम मोती चुगने वाला हंस है इसी का नाम
गरुड़ सर्प आहारी हैं कारण कि सर्प संशय का नाम है और गरुड़ उसका खाने वाला है इसी का
नाम महाबीर स्वामी अर्थात अनजनी पुत्र पवन सुत अर्थात नहीं है जनने वाली माता जिसके और
नहीं है पवन रूप से कोई पिता जिसका और जो है स्वयं पारस नाथ रूप में परानाम शक्ति वाला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१८ पाराशर परानाम सत्युग का लक्ष दत्तात्रेय अनामय स्वासका एक रूप हों हूं स्वरूपमें एक ही स्वरूप कि जो जान गया है इस स्वरूप के लक्षको उसने जान लिया है स्वयं आत्माके अनामय रूपआरूप वाले स्वरूप को और स्वयं मोक्ष रूप स्वरूप से बन गया है आप ही पारश और पारशनाथ कि जो स्पर्श करता है इस पारश स्वरूप को वही बन जाता है लोहे से साक्षात कार में सवर्ण का सच्चा रूप और प्रत्यक्ष प्रमाण में महाबीर गरुड और हंस का स्वरूप क्योंकि श्रुति प्रमाण है कि (( हंसो गणेशो विधि रवि हंसो। हंसो हरी हंसो मे महेश्च शम्भू ॥ हंसोहि जीवो गुरुर्वै हंसो ॥ हंसोहि आत्मा परमात्मा हंसो —)) अर्थात स्वासा रूप ध्वनि ही हंस के स्वरूप में गणेश अर्थात प्रणव ॐ का रूप विधि अर्थात ब्रह्मा युग रूप में ब्रह्म का स्वरूप रवि अर्थात सूर्य तथा सूर्य प्रकाश रूप हंस का रूप और हंस ही हरि अर्थात शान्ति का स्वरूप विष्णु का रूप है जो मेरा ही महेश्च शम्भू हंस रूप में हंसही जीव गुरु का रूप निश्चय करके हंस ही हंस आत्मा परमात्मा का स्वरूप है अर्थात हौंहू ध्वनिरूप में स्वासा का स्वरूप अनामय अरूप रूप है कि सर्व बन्धनों से रहित स्वयं स्वतंत्र है। क्योंकि चैतन्य की सूक्ष्म त्रिपुटि से देहधारी के प्राणों में चेतन के प्रतिबिम्ब का आभास पड़ने पर पंच ज्ञानेंद्रिय उत्पन्न होती हैं कि जो रजो गुणी कहलाती हैं। इसी प्रकार चैतन्य के पंच महा भूत रूप का जो आभास प्राणों में पड़ता है उस से पंच कर्मेंद्रियों की उत्पत्ती होती है कि जो तमो गुणी कहलाती हैं इन सब का विस्तार इस प्रकार पर है कि (१) चतुष्टअन्तः करण तो जैसे प्रथम भी प्रकट किया है कि चित १ अहंकार २ बुद्धि ३ और मन ४ ये चार नाम एक ही सतोगुणी अहंकार के हैं कि जिसमें मन पृथक पैमाना अर्थात भार की तोल का मापने के रूप में प्रणव रूप की अर्ध मात्रा का चिन्ह है और एक के अंक का आकार है इसी प्रकार (२) पंचमात्रा में शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ प्रणव के पांच अलक्ष लक्ष हैं कि जिन में केवल शब्द ही पंच मात्रा का पृथक रूप स्वरूप में १ अंक का पृथक अलक्ष रूप है ऐसे ही (३) पंच ज्ञानेंद्रियों में श्रोत्र १ त्वचा २ चक्षु ३ जिह्वा ४ नासिका ५ प्रणव के पांच लक्ष रूप में पृथक श्रोत्र एक ही अलक्ष रूप है। इसी प्रकार (४) कर्मेंद्रियों में वाणी १ हस्त २ पाद ३ उपस्थ ४ गुदा ५ प्रणव रूप में वाणी आकृति अरूप रूप है और (५) पंचमहाभूत में आकाश १ पवन २ अग्नि ३ जल ४ पृथिवी ५ में केवल एक आकाश ही पृथक रूप दृष्टि में दृष्टये से अदृष्ट अर्ध मात्रा रूपी एक का अंक बिन्दु सम प्रणव का रूप स्वरूप है कि जो पंच ब्रह्म नाम से प्रकट और प्रत्यक्ष प्रतीत हैं। इस प्रकार ये २४ जिन नाम सिद्ध नाम में अपृथा प्रकृति का त्रिगुणात्मक रूप है कि जो माया के २४ अंश हैं और ३ गुणों की अधिकता से २७ होजाते हैं।

(११) सत्युग रूपी चैतन्य आत्मा सर्व का साक्षी नित्य अनामय हंस रूप से श्वेता वर्णी रूप में अलक्ष रूप से रहते हुए माया परिमाण से असंग ही रहता है। तथा आत्मा का जो आभास माया के २४ अंश समूह में पड़ता है उस आभास के माया में पड़ने से जो प्रमाद उत्पन्न होता है उसी प्रमाद से देहधारी अविद्या के वश हो पंचकोश की तीन अवस्था गुण कर्म स्वभाव और देहअभिमान में लिप्त होके अपने शुद्ध स्वरूप को भूल जाता है। अभिप्राय ये है कि सत्युग रूप में भ्रम शंका मय रूप से कलियुग का रूप प्रत्यक्ष प्रमाण से कि जिस का आश्रय अर्थ अज्ञानता है प्रकट भ्रांति से परिवर्तन करता है और इस परिवर्तन से मनुष्य गुण प्रकृति का साक्ष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नरहकर माया रुप माया पारवंड मिथ्या कर्म जाल के पारवंडों में फंस कर नाना प्रकार के मिथ्या संकल्प विकल्प उत्पन्न कर प्रत्यक्ष प्रमाण से साक्षी स्वरुप का साक्षी नहीं रहता है किंतु प्रकृति के मित्र कोई भी कार्य नहीं करता प्रकृति आप से आप ही स्वतंत्र रुप से उसको अपनी ओर खेंच लेती है। और वह गुण प्रकृति अनुकूल ही कार्य करने लगता है। कि जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण से दर्शन पर्शन ये है कि यदि मनुष्य विचार से विचार शक्ति द्वारा काम ले तो उसे निश्चय हो कि सूक्ष्म आकृतियों का दर्शन चर्म नेत्र द्वारा नहीं हुआ करता दिव्य ज्ञान नेत्र द्वारा ही होता है। क्योंकि मनुष्य मनु नाम चन्द्र और सूर्य का है इसलिये मनु मन का नाम है और मन के दो कार्य हैं एक अन्धकार और दूसरा प्रकाश सो प्रकाश रुप में मन सत्य गुरु सत्युग का स्वरुप है और अन्धकार रुप में कलियुग नाम से सूक्ष्म कार्य कारण आकृति भाव से महतत्व अर्थात देह रुप नाम प्रकृति शक्ति का नाम है। कि जिस के द्वारा शक्ति संयुक्त व स्वच्छ प्रकृति संयुक्त प्रकृतिगुण कि जिसका नाम कर्म और स्वभाव है चेतन सत्ता का प्रकाश होता है। और जिस तेज की सामर्थ से इसी मन का नाम पूर्णकलु कलियुगराज चाण्डाल असुर और असुरों का गुरु रिपुगण का स्वामी एक ही प्रसिद्ध नाम शुक्राचार्य नाम से मन का नाम होता है कि जो काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य जैसे दैत्यों का गुरु है और नित्य ही दैत्यों के संग रहकर दैत्य गति की उनको शिक्षा देता रहता है। और यही मन सूर्य नाम प्रकाश बुद्धि व्यास रुप से ही वसिष्ठ नाम रुप में बृहस्पती का स्वरुप है कि जो बृहस्पति नाम से सद्गुरु रुप में बृहस्पति नाम देवताओं का गुरु है कि जो साक्षात कार में सत्युग नाम से सर्व सिद्ध साक्षी भाव का अर्थात माया कार्य कारणों का असंग रुप से पूर्ण साक्षी असंग बौद्ध देव की सन्तोष रुपी निराहार सत्य रुप सत् की बौद्ध गया यथा ज्ञानमज्ञान ज्ञान मूर्ति है कि जो सन्तोष रखने तृष्णा को रोकने और सत्य बोलने की निरन्तर ही गुप्त भाव से मित्रा नाम शुक्राचार्य को वर्मन चाल चलने और शर्मो शरोमणि रुप बनने की शिक्षा देते हुए ही आप ही विजय आप ही मार और आप ही शिक्षा का शिक्षा रुप स्वरुप है। इसी का नाम विष्णु गया मन्दिर गया अर्थात गया ज्ञान है इसी का नाम वसुदेव को कृष्णा को गोद में लेकर यमना पार होना है यथा रिपुगण को बाल सम जान कर यम अर्थात मन के कृत्य कार्यों से स्वतन्त्र होना है। इसी का नाम ध्रुव धर्म अद्वैत सनातन धर्म है और यही ध्रुव का साक्षात रुप से ध्रुव की तपस्या का स्वरुप है और यही बाल्मीक नाम वाल्मीक ऋषि का सच्चा रामायण नाम राम चरित्र नाम बाल्मीक रुप स्वरुप है। और इसी का पद्म सरोवर पद पद्मा नाम है। और इसी पद पद्मा नाम का यशोधा का कृष्णा को कपडे पहनाना है और यशोधा को ही कृष्णा को कृष्णा नाम काले कलु प्रमादी को कृष्णा रुप से अर्बुद नाम देव असत्या कारी से सत्याकार भगवान बनाना है इसी का नाम राम का रावण को मारना है इसी का नाम मीनावतार कूर्मावतार वराह अवतार नरसिंह अवतार वामन अवतार हरि अवतार राम अवतार कृष्णा अवतार बुद्धावतार और कलकी निष्कलङ्क अवतार है। किंतु असत्य रुप में यही अवतारणा मनु मन कैकेयी और मन्थरा का संम्वाद है कि जो आशा और तृष्णा का रुप है। और इस आशा तृष्णा का स्वरुप भाव ही प्रकट रुप में प्रत्यक्ष प्रमाण से राक्षसों का हनुमान अर्थात मान की हनने वाली शक्ति बुद्धि बृहस्पती को बांधना और बांध कर खेंचना है। अर्थात मिथ्या नाम मान अभिमान जाति कुल आदि की इच्छा ओं में प्रवृत्त न कर के शुक्राचार्य रुप से राक्षसो का गुरु बनना है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

१७० क्योंकि जब तक मनुष्य आशा तृष्णा का मित्र अर्थात उसका आधीन बना रहता है तब तकही उसकी गधागति मस्तानी चाल रहती है। कारणकि जिस प्रकार रिपु वश हुआ हुआ कुम्हार जङ्गल में अपने गधि को ढूंडने लगता है और स्वयं ही चरती गधि उसकी दृष्टि में नहीं चढ़ती इसी प्रकार काम के अन्धों मोह के अन्धों आशा तृष्णा के अन्धों की वह गति होती है कि जो उस स्त्री की होती है कि जिस की बगली में तो उसका बालक हो किंतु नगर में बालक की ढूंढ को डौंडी पिटवाकर बालक के खोये जाने की निमित अपनी गौद को न देखे बालक को ढूंढ रही हो अर्थात बारम्बार दृष्टी जमाकर बालक को गौद में रखते और दूध पलाते भी उसी को ढूंढ हो। सो जिस प्रकार से कामातुर कुम्हार को आकाश की ओर दृष्टि उठाकर देखने से पक्षियों को उड़ना और पृथिवी व वृक्षों की ओर दृष्टि करने से पृथिवी पर अन्य पशुवों को चरते और वृक्षों पर पक्षियों को बैठे पाता है किंतु चेतन के साक्षी भाव न होने से समीप की चरने वाली अपनी गधी को न देखता हो इसी प्रकार आत्म गुप्त भाव कि जो सर्व का साक्षीस्वरूप है वही स्त्री की गौद का बालक है कि वह सब को देखता है किंतु उसे कोई नहीं देखता है। और जो प्रत्यक्ष देखता है वही विचार हीन है कि उसे विचार हीनता से कुछ सूझता नहीं है। इसी का नाम मद मस्त गधा बुद्धि है। कि इस गधा प्रपंच बुद्धि में नेत्र द्वारा सत्य मार्ग को देख लेने पर भी आसुरी पंचकोशी त्रिये अवस्थी देह अभिमानता की शिक्षा दैत्य गति का मार्ग अर्थात ईर्षा १ निन्दा २ और विवाद के कर्म ३ नित्य इन्हीं पथः मार्गों का पथ कि जो विघ्नता व्याकुलता का मूल द्रिढ़ता और मूरखता का परिवर्तन रूप है। महात्मा शुक्राचार्य को माता है। कि एक क्षण के लिये एक ऐसे पुरुष को देखकर कि जो दो रोटी दो बालकों देता है और उनमें से एक बालक की एक रोटी चील झपटा मार छीन लेजाती है और उस चील पर दूसरी एक चील झपटा मार आधी छीन लेती है ऐसा विचार नहीं करता कि जगत के सारे कार्य गुण प्रकृति अनुकूल होते हैं। और ये माया कार्य आप से आप हुआ करते हैं और यही मेरी विभूती है।

(११) मनुष्य जो असत्य बात को और नाना प्रकार के पाखण्डों को प्रिय जानता है वह जब ऐसे चीन वाले चरित्र देखता है तो माया के बेटु मन्दिर का पुजारी शुक्राचार्य माया के कार्य व कारणों में फँसा हुआ गौतम रूप से इसी बात को कर्म का तत्व विज्ञान को नियम काल का चक्र और संस्कार का सार प्रकट करते हुए इस प्रकार भ्रम अविद्या उत्पन्न करता है कि (१) न्याय का ऐसा कथन कि ईश्वर जीव प्रकृति पृथक पृथक वस्तु हैं और पुनर्जन्म अनुकूल जन्म होकर आवागमन अवश्य होता है ये पहला भ्रम रूप पाखंड है इसी प्रकार (२) भाग्य बिना किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती और जो हो जाती है वही संस्कार न होने के कारण प्राप्त हाथों से निकलकर दूसरे अप्राप्त हाथों पहुंचती है ये दूसरा भ्रम है। (३) मनुष्य कर्म का करता और फल का भोक्ता है ये तीसरा भ्रम है (४) कर्म करना मनुष्य आधीन किंतु कर्म का फल देना ईश्वर आधीन है यही चौथा भ्रम है (५) मनुष्य कर्म फल की प्राप्ति में ईश्वर शक्ति के आधीन है पांचवा भ्रम है (६) जीव अल्पज्ञ व ईश सर्वज्ञ है ये छटा भ्रम है (७) नाम रूप जाति अभिमान उत्तम पदार्थ से संसार में मुग्ध हैं ये सातवां भ्रम है कि जिन से अव्यवसायी बुद्धि और व्यवसायात्मिका बुद्धि की परीक्षा होती है। और इस प्रकार लक्षार्थ खुलते हैं। कि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१३) न्याय और वैशेषिक का नाम अन्यथाख्याति भ्रम है। और इसी का नाम प्रमाद है कि जो अनिश्चित वस्तु को जीव तथा परमाणु मानता है और नहीं जानता कि जीव और प्रकृति दोनों प्रमाद के नाम हैं कोई वस्तु नहीं क्योंकि जहां तेल और बत्ती दोनों नहीं तहां चैतन्य दीपक अखंड ज्योति का ही अकाल प्रकाश है सो किसी को न तो कहीं आवा है न जावा है कारण ये है कि (१) जब जीव कोई वस्तु नहीं तो आवागमन किस को होता है किसी को भी नहीं (२) और जब आवागमन नहीं तो कर्म क्या है और कहां बनता है इसका कोई प्रमाण नहीं (३) सो जब कर्म अप्रमाण है तो भाग्य किस पशु का नाम है और उसको किस पदार्थ की अवश्यक्ता है। और संस्कार किस डाकू का नाम है कि जो पशु भाग्य के पदार्थ एक से छीन दूसरे को देता है। (४) भाग्य कर्म और संस्कार तीनों प्रमाद शब्द के नाम हैं इसलिये मनुष्य न कर्म कर्ता है न फल का भोक्ता है फिर वह कौन सा ईश्वर है कि जो कर्म फल देता है कोई नहीं कि ईश्वर मिथ्या भ्रम और धोके का नाम है (५) जगत के सर्व कार्यों का मूल कारण प्रकृति तथा माया अर्थात अविद्या है। इस लिये अविद्या कृत जगत अविद्या करके ही भासता है कि जिसका विस्तार पंच महाभूत का एक रूप है और इस जगत नाम रूप वाले संसार में ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय इसके पशु पक्षी हैं कि जो इस बन में उड़ते यथा इस सागर में रहते हैं कि ये बन और ये सागर ही इनका निवास स्थान है।

(१४) चतुष्ट अन्तःकरण में मन प्रमादी कलियुग रूप कुम्हार है कि जो काल के चक्र अर्थात काम की कीली पर माया रूपी चाक का केन्द्र चढ़ाकर संकल्प मय बासन बनाता है इसी का नाम अव्यवसायी बुद्धि है कि बहिर्मुख फैलकर नाम और रूप को ही देखती है और नाना प्रकार की कल्पनाओं में दौड़ती है तथा व्यवसायी नाम सत्युग रूपी भेद कल्पना से रहित होके रहने वाली जो श्वेतावर्णी अनामय रूप बुद्धि है वह अशून्य भाव को निश्चय करती है और सर्वत्र एक आत्मा को ही अपरोक्ष देखती है। सो प्रमादी धन अन्न नाम रूप मान और बड़ाई को रोता है टकै का मीत स्वार्थी बनकर रहता है और वह धन मान की प्राप्ति तथा शरीर सुख के लिये नाना प्रकार के स्वांग रचन कर संन्यासी उदासी वैरागी गूशांयी बनके भेष भेष के बाने धार अपने सुख को संसार का संहार करता है और कल्प नाम जैसे पाखण्ड के पाखंड स्मृति नाम ग्रन्थ रचता है। सो ऐसा कल्प और युगों का सार है। किंतु इस सार में जो सिद्धांत सार है वही चैतन्य सर्व साक्षी निर्विकार निर्विकल्प अचल असंग मेरा ही अद्वतीय अनामय स्वरूप है। कि जिस के विषेय में हे मनुइन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू कहता है।

सर्व्वायं सर्वत्रऽयं प्रकाशंत अङ्ग अनाम सर्वज्ञ॥ रविमंडल यज्ञ चर अचर नारायण ब्रह्मैकऽयं॥ ५०॥

मयैव ब्रह्मा मयैव विष्णु मयैव साक्षात महेश्वरं॥ ऽहमुमा गजनंदऽयं यमराजऽयं गुरुवं गुरुं॥ ५१॥

मया ततमिदं सर्वं जगद व्यक्त मूर्तिना॥ मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ ५२॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्॥ तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥ ५३॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नंति धनंजय॥ उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥ ५४॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ ५५ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्सामयजुरेव च ॥ ५६ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ ५७ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ ५८ ॥

नमे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ ५९ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ ६१ ॥

वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासवः इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ ६२ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ ६३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥ ६४ ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ ६५ ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ ६६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि मामृतोद्भवम् ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ ६७ ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ ६८ ॥

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥ ६९ ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् मृगाणां च मृगेंद्रोहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ ७० ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥ ७१ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation, USA

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ॥ अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ७२ ॥

अक्षराणामकारोस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ॥ अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ ७३ ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥ कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ७४ ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छंदसामहम् ॥ मासानां मार्गशीर्षोहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ७५ ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ जयोस्मि व्यवसायोस्मि सत्वं सत्ववतामहम् ॥ ७६ ॥

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पांडवानां धनंजयः ॥ मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ७७ ॥

दंडो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ॥ मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ७८ ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ॥ न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ७९ ॥

नांतोस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥ एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ८० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम् ॥ ८१ ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ॥ विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ८२ ॥

कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ८३ ॥

ऋतेपि त्वां न भविष्यंति सर्वे येवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ॥ ८४ ॥

मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव स्व्यसाचिन् ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥ सर्वत्रगमचिंत्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ८५ ॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ॥ इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ८६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ॥ एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ८७ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥ एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानयदतोऽन्यथा ॥ ८८ ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥ शरीरस्थोऽपिकौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ८९ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥ सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ९० ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥ क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ९१ ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ॥ संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ९२ ॥

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्तयः संभवन्ति याः ॥ तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ९३ ॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥ शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ ९४ ॥

नतद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥ यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ ९६ ॥

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ॥ पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ॥ ९७ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ॥ प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ ९८ ॥

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ ९९ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १०० ॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १०१ ॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १०२ ॥

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥ दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १०३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम ॥ १०४ ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ १०५ ॥

मयैव आदिम मयैव हौवा मयैव पैगम्बरुहम ॥ मयैव मुसा मयैव ईसा मयैव जर्दशत्त कन्फियुशश ॥ १०६ ॥

मयैव अहमद मौहम्मदना मयैव दाऊद मामयं ॥ मयैव याकूब यूनिस अब्रहम गुर्वैक लामायम ॥ १०७ ॥

मयैव ऊम्मत मौहम्मदना इमामं अंतिय आगम ॥ मौहम्मदनामं महदी मसिदावतारमं कलकी ॥ १०८

॥ इति - १६ - ३६ - ५६ कला श्रुति शूत्र माहान वेद सुमर्णिनां पूर्णं

175

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सर्वायं - अंतरंग बहिरंग पूर्ण - सर्वत्र - सब दिशा विदिशा देश काल में - अयं - मैं हूं - प्रकाशतं - मैं ही प्रकाश स्वरूप हूं - अङ्ग - अङ्ग रूप हूं - अनाम - वे नाम हूं - सर्वज्ञ - सर्वज्ञ रूप हूं रविमंडल सूर्यादि जैसे मंडल रूप में - यज्ञ - पूर्ण संसार रूप - चर चेतन अचर जड़ - नारायण - अद्वैत रूप ब्रह्म प्रणव - एक - केवल ऽयं - मैं हूं ॥ ५० ॥ मयैव - मैं ही - ब्रह्मा - ब्रह्मा नाम ब्रह्मा रूप स्वरूप - मयैव - मैं ही विष्णु - विष्णु नाम चतुर्भुजी विष्णु रूप - मयैव - मैं ही साक्षात प्रत्यक्ष रूप से - महेश्वरं - सदाशिव आदिम रूप हूं - अहम - मैं ही - उमा - सर्व शक्ति माया स्त्री प्रकृति नव प्रकृति रूप हूं । गजनंद - अष्टधा प्रकृति अष्ट कला अष्टसिद्धि चतुर्हस्त चार हाथ और एक सूंड वाली श्वेत वर्ण एक दन्त अद्वैत पुरुषार्थी ॐ कार गणेश मूर्ति चिन्ह - अयं मैं हूं - यमराज - धर्मराज अद्वैत धर्म रूपी धर्म का धर्म रूप - अयं - मैं हूं - गुरुवं - गुरु नाम शिक्षा देने वालों में आत्मायि अर्थात अपना आप ही गुरुं - मैं गुरु हूं ॥ ५१ ॥ मया मेरे - ततम - तत स्वरूप में - इदं - यह सर्वं पूर्ण जगत संसार - अव्यक्त सत्य स्वरूप जैसा - मूर्तिना नाम रूप वाला मत्स्थानि रिपु नाम माया के विषे सर्वभूतानि - अनेक नाम रूप रखते हुए भी - न नहीं है - च अर्थात ये विष्णु स्वरूप अहं मेरे तेषु तेज स्वरूप में तेज स्वरूप के आभास रूप के तुल्य आभास रूप के अवस्थितः स्थित है ॥ ५२ ॥ यथा - जैसे आकाशस्थितः - आकाश विषे सूर्य चन्द्र तारागणादि आकाश को लिप्त न होकर के आपुस में अपनी ही आकर्षण शक्ति अर्थात समुन्नता धर्म अद्वैत धर्म ध्रुव धर्म रूप द्वारा एक दूसरे को खेंचते अर्थात निस्वार्थ धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे का भार सहारते हुए स्थित हैं इसी प्रकार से असंग रूप मेरे में माया आप से आप स्थित है कि कोई वस्तु न होने पर भी प्रकट भांति से प्रतीत होती है नित्यम् - नित्य हूं मैं - वायुः वायु तुल्य अत्यंत सूक्ष्म रूप स्वरूप सर्वत्रगः दिश व दिशा में सर्वत्र रूप से अचल भरपूर रूप एक ही स्वतः स्वतंत्र स्वरूप - महान - परिमाण रहित अप्रमाण रूप वाला एक ही मुख्य स्वरूप अनामय रूप - तथा - अर्थात सर्वाणि सब मैं ही मैं पूर्ण रूप परिपूर्ण स्वरूप सो भूतानि नाम रूप रस स्वरूप - मत्स्थानि - रिपुगण नाम माया के माया रूप आप से आप इति - इसी प्रकार कि जैसे ३० भांति की प्रकृति रूप माया से उत्पन्न होते और नष्ट होते देखे जाते हैं - उपधारय - निश्चय रूप से माया ही के रूप हैं ॥ ५३ ॥ न - नहीं हैं - च - अनामय स्वरूप माम मेरे रूप में - तानि नाम रूप माया के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषे [६१] कर्माणि - कर्मरूप कर्मों का फल भोग रूप से कर्म का कोई अंश माया रूप सृष्टि रूप भोग नाम से भोग
रूप मेरे स्वरूप में क्योंकि [६२] निबध्नंति मैं साक्षात्त बन्धन रहित स्वतः स्वतंत्र हूं [६३] धनंजय - धनकेन्द्र अर्थात
धनुष्यडर्क अर्जुनरूपी विचित्र धर्म रूप बौद्ध धर्म अद्वैत धर्म बृहस्पति जय रूप स्वरूप मैं हूं यही इस
अर्जुननाम तथा धनंजय शब्द का अर्थ है कि जिस अर्थ और जिस धर्म गति का पथ - [६४] उदासीनवत -
अर्थात निराशत रूप असंग अवस्था स्वरूप में मेरा एक ही [६५] आसीनम अर्थात आशा रहित पूर्ण स्थित एक
स्वरूप है तिसपर भी मैं - [६६] असक्तम अर्थात इच्छा कामनाओं से रहित निष्वार्थी यथा स्वार्थ रहित हूं व
[६७] तेषु स्वयं तेज और तेजस्वि तेज देव तेज स्वरूप हूं और [६८] कर्मसु स्वतः ही कर्म केवल कर्म कर्म ही कर्म
अर्थात स्वयं कर्म रूप कर्म मैं आप ही कर्म आकृति यथा कर्म मूर्ति हूं इसलिये माया से स्वतंत्र कर्म फल
भोग से स्वतंत्र अभयरूप नाम से जो मेरा अनामय स्वामी नाम है उसी का दूसरा नाम निरञ्जन और
उसी का नाम कर्म परमाता भी है इसलिये मेरा ही नाम कर्म है सो मैं ही कनकरणधीर कर्म श्रुति हूं ॥ ५४ ॥
[६९] अहं - मेरे [७०] क्रतुः सत्यरूप में जो सत्य का सतोगुण नाम से मन अन्तःकरण नाम का आभास है [७१] अहम
मेरे सत्यरूप के सतोगुणि मन आभास का आभास रूप [७२] यज्ञः अर्थात माया की विष्णु मूर्ति का नाम यज्ञः है
कि जो विष्णु रूप में माया स्वरूप यज्ञः नाम से प्रसिद्ध है वही विष्णु माया मूर्ति रूप में संसार नाम से एक रूप
विश्व स्वरूप यज्ञः नाम रूप है ये यज्ञः [७३] स्वधा नाम रूप से रुई के सूत रस समान समता रूप रस्सी रूप में
[७४] अहम मेरा [७५] अहमौषधम मेरे ही तेज का धुन्दाकार धुवें का रूप है और धुवें के रूप में - [७६] ममंत्रः [७७] अहम
मंत्रः नाम के अर्थ से तीन प्रकार के आभास सत रज तम रूप के आभास में मेरा मेरे सत्य स्वरूप का ही भास
आभास रूप में यज्ञः नाम सृष्टि संसार मेरा चमत्कार रूप है [७८] अहम मैं [७९] एव निश्चय रूप [८०] आज्यम अद्वैत
धर्म रूप हूं [८१] अहम मैं ही [८२] अग्निः अग्नि तुल्य तेज रूप हूं और [८३] अहम मैं ही [८४] हुतम होनी का रूप
होनी अर्थात होने यथा उपजने वाली माया का नत स्वरूप केवल रूप हूं ॥ ५५ ॥ [८५] पिता - पिता रूप
से [८६] अहम मैं ही - [८७] असय - अनादि सिद्ध श्रुति शरोमणि गुप्तमणि चिंतामणि यज्ञ संसार अद्वय धर्म रूप
नाम रूप से [८८] जगतः जगत पिता यज्ञ रूप संसार स्वरूप [८९] माता - जगत माता माया रूपी संसार - [९०] धाता -
नाना प्रकार की आकृति मूर्ति सृष्टि का आदिम नाम रूप से नाना प्रकार की आकृति और नामों का धारण
धारी केवल अनामय स्वरूप - [९१] पितामहः पिता नाम रूप आकृति का अचल पित्र महान अपूर्व सूक्ष्म से
सूक्ष्म आकृति प्रमाण रहित पिता मैं हूं। [९२] वेद्यम वेद रूप में यथा ज्ञान स्वरूप में मैं ही वेद बुद्ध [९३] पवित्रम्
सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में प्रणव सुफरण बाणि [९४] ओंकार ॐ रूप स्वरूप से अनादि वेद ॐ कार रूप अर्थात
[९५] ऋक् - [९६] यजु - [९७] साम - रूप स्वरूप में ऋक नाम (अ) अकार से अपार रूप और यजु नाम (उ) अकार
उकार (कर्म) यथा उपकार रूप और साम नाम (म) अकार से मकार (लय) यथा लीन रूप में
स्वासाध्वनि रूप स्वरूप जो ॐ कार वेद नाम से पवित्र वेद रूप है वही (हों हूं) शब्द अर्थ रूप में [९८] एव
निश्चय पूर्वक मैं ही तीन नाम रूप से यथा अपार नाम १ उपकार नाम २ मयैवकार नाम ३ इन तीन
नामों से त्रिलोकी नाम रूप में एक ही नारायण नाम रूप स्वरूप से अनादि ॐ कार वेद [९९] च
यथा प्रणव स्वरूप कल्याण ॐ कार रूप विष्णु माया मूर्ति मैं हूं इस प्रकार परिपूर्ण पवित्र एक ही
अनादि अकाल पराकृत ॐ कार वेद रूप स्वरूप में मेरा पूर्ण वेद नाम है ॥ ५६ ॥ [१००] गतिः - मैं ही गतिः
रूप अर्थात गतिः नाम चाल व्यापार रूप से भाद्रपद मास की रात बादल और आकाश घनघोर घटा का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूप संसार की नाना प्रकार की आकृतियों का एक रूप पूर्ण कर्म पूर्ण काम पूर्ण सुख पूर्ण उद्योगी - धर्मधनी एक ही कलि कलकी शुद्ध अधिष्ठान तीन रूप एक स्वरूप अर्जुन नाम आप ही आप माया अलाप स्त्री पुरुष एक रूप दीप दीपक रूप धुन्द और चमत्कार का एक ही प्रकाश रूप स्वयं दृश्य दृष्टा अपार उपकारी मैकारी याज्ञवल्कब्य ऋषि मेत्रि गार्गी लक्ष्मी सरस्वती का एक रूप अगवाणी - धर्मधनी धनुष्यधारी इन्द्रपस्थी नरेश अर्जुन नाम सर्व अधिकारी वब्रवाहनी कुशा आसनी हवनखण्ड न तुर्यातीत हूं भर्ता - मैं ही भर्ता नाम भारत विश्वामित्र नाम रूप से सर्व प्रकार के भार और अर्थ का आकाश रूप स्वरूप में निराकाश आधीश अधिपति रूप पति हूं प्रभुः मैं ही सत्य रूप सत्यस्वरूप नाम से प्रभुः अर्थात प्रकृति सरस्वती नाम से पृथिवी पूर्ण पूर्ण लक्ष्मी सर्व प्रकार के रस रूप स्वरूप हूं और - साक्षी मैं ही साक्षी साकार निराकार रूप स्वरूप दृश्य अदृश्य चेतन हूं यथा निवासः अंतरंग बहिरंग एकरस रहने वाला भी मैं ही हूं और शरणम् शुद्ध शरोमणि अकाल अनंत रूप स्वरूप भी मैं हूं कि स्वयं मोक्षस्वरूप मोक्ष रूप हूं और सुहृत् मैं ही प्रेम मैं ही प्रेमी यथा मैं ही परमप्रिया रूप हूं और प्रभवः मैं ही प्रकाश रूप शान्ति स्वरूप क्षमा शैल भर्ता प्रभुः प्रभवः साक्षी रूप हूं और प्रलयः यथा मैं ही रात्री सम पूर्ण अन्धकार अविद्या माया का अंत रूप लीन लय स्वरूप स्वयं प्रलयः रूप हूं और स्थानम् अर्थात मैं ही स्वतः केवल स्थान यथा आप ही अपना अधिष्ठान रूप हूं और निधानम् यथा मैं ही निरगम निर्गमण निसंकोच निर्भय नाथ महा नाथ महान स्वरूप हूं और बीजम् मैं ही बीज सूक्ष्म स्वरूप हूं और अव्ययम् - अगोचर अविनाशी नाशरहित नित्य एक रूप एक स्वरूप हूं ॥ ५७ ॥ तपामि - अहम् मैं ही गुप्त बिजली रूप में आकर्षण रूपी अग्नि शक्ति हूं कि गुप्त भाव मैं अत्यंत अग्नि का प्रचंड रूप हूं कि इसी रूप में जल रूप से - अहम् वर्षम् मैं ही वर्षा वर्षा रूप हूं और निगृह्णामि - यथा आकृर्षण व आकर्षण संयोग रूप हूं और उत्सृजामि मैं ही आकर्षण परित्याग शक्ति रूप में अग्नि रस रूप शक्ति हूं कि जिस शक्ति द्वारा जीव जन्तु और रस रूप वाले उत्म रूप उत्पन्न हो प्रकट होते रहते हैं क्योंकि उतम १ रज २ अग्नि ३ इन्ही तीन रूप नाम शक्ति का ब्रह्मा नाम है यही शक्ति माया रूप में सृष्टि उत्पन्न रूप है सो इस प्रकार मैं ही गोचर रूप हूं और च - यथा इस माया में भी - अमृतं मैं ही अमृत अमर फल रूप हूं च और एव - अमर निश्चय रूप में मृत्युः मैं ही मिश्रित मृत्युः काल का रूप कर्म का चक्र यथा शिव दर्शन रूप हूं कि जिस रूप में देह काल का रूप है और कर्म का चक्र वह माया क्रिया है कि जिस से देह रूप प्रकट हुआ है और शिव दर्शन रूप केवल मैं ही च चैतन्य देव यथा सत् सत्य देव - अ स च च अ ह म अर्जुन - अर्थात अनादि - सर्वज्ञ - चैतन्य चेतन असंग उपकारी मेरा निसंग धनुष्य अर्क स्वरूप है कि जो मृत्युः का लय स्थान है क्योंकि मृत्यु अक्षर नहीं क्षर है इस लिये मिथ्या है सो यही शिव दर्शन है कि रूप में रूप स्वतः प्राप्त रूप मैं हूं कि मेरे इस भेद रूप स्वरूप को मेरे अन्यत ॥ ५८ ॥ न मे - नहीं जान सक्ता कोई मेरे ही चेतन साक्षी शिव रूप के अन्य देह धारी माया कृत माया रूप माया कार्य कारण रूप कार्य स्वरूप अपने स्वरूप भेद का - विदुः - भेद अभेद रूप से कारण कि - सुरगणाः श्रुति नाम आकृति रूप आप ही अपना प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जिसे अपने प्रमाण की अपेक्षा में अन्य प्रमाणों की आवश्यक्ता नहीं है कारण कि सुरगणाः नाम ही इन्द्रदेव का है कि जो माया प्रपंच रूप में मनुराज आकृति का एक स्वरूप होता है इस स्वरूप माया रूप में जो शरोमणि अर्थात सारों में सार है वही प्रभवम् - मैं ही प्रभा रूप पर्भ कान्ता प्रभा कांती हूं च नहीं हूं मैं महर्षयः तीन ता रूपी माया का रूप जड़ पदार्थ माया

177

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

माया कार्य भृगु आदिक नामसे पृथिवी आदि जैसी रुपवान महान ऋषि रुप किसी प्रकार की काई एक भी
महान ऋषि आकृति कारण कि ऋषि नाम ही जड वस्तु आकृति माया कार्य का है और इसी का सुरगणाः
नाम है कि जो अभेद रुप से अपने स्वरुप को जान लेने का हेतु नहीं है क्योंकि इस माया रुप का आदि अंत का
178 अधिष्ठान केवल रुप मैं हूं - अहम्[३१] मैं ही - आदिः[३२] - आदि देव अनादि परमात्मा सत्य रुप १ कर्म रुप २
काल रुप ३ युग रुप ४ विचार रुप ५ साक्षी रुप ६ रस ऋतु स्वरुप केवल अनामय रुप में एक ही
अङ्ग रुप हूं अर्थात सत्यकारी अकाल योग रहित दृष्टा रुप साक्षी स्वरुप एक ही अनादि आदिम
पुरुष हूं कि - हि[३३] - मैं ही कारण देवानाम[३४] आदि देव प्रकृति आधार महर्षीणाम[३५] - नाना प्रकार की आकृति
गोल रुप मूर्तियों का एक ही स्वरुप च[३६] चैतन्य देव नाम सर्वशः[३७] - सर्व साम एक ही रुप एक ही स्वरुप हूं ॥ ५९ ॥
महर्षयः[३८] जड़ वस्तु आकृति नाम पदार्थ माया कार्य कारण एक रुप एक स्वरुप सप्त[३९] सात नाम रुप से
जो सप्त कला सप्त व्याहृति में भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं का रुप है यही भृगु आदिक सात
ऋषियों के नाम से सप्त ऋषि पूर्वे[३९] आगे से पहले से प्रथम से कि जिनका आदि नहीं है प्राक रुप में अनादि
सृष्टि का रुप हैं कि जिस रुप में मुख्य स्वरुप चत्वारः[४०] अर्थात चार ही स्वरुप मन बुद्धि अहंकार चित के
चार नाम से चार - मनवः[४१] यथा क द त स - कान्ता कलि नाम का मनु मन है और द दिव्य नाम
का मनु बुद्धि है और त तत नाम का मनु अहंकार यथा कृष्णी माया है और स सत् नाम का मनु
चित है कि जिन के कलियुग - द्वापर त्रेता सत्युग पृथक पृथक करके चार नाम हैं इस प्रकार सात
ऋषि चार मनु एकादश रुद्र नाम से माया रुप में तथा[४२] तत आदित्य जो एक स्वरुप है उसी स्वरुप में
ये माया शक्ति नाम रुप से लीन रहकर मद्भावा[४३] मेरे ही एक उदित रुप आदि भावी स्वरुप में यह जो
मानसाः[४४] नाम रुप स्वरुप में साकार रुप सृष्टि है मेरा ही एक मायावी रुप है कि जो जाताः[४५] जीव नाम रुप
और येषां[४६] जड़ नाम रुप और लोक[४७] प्रकट रुप तथा गुप्त रुप में भिन्न भिन्न प्रतीत की आकृतियों
के नाम रुप इमाः[४८] यह सब मेरा ही एक प्रजाः[४९] नाम रुप से कि जिस मायावी रुप से सृष्टि की उत्पति है
अनंत नाम अनंत रुप है ॥ ६० ॥ आदित्यानाम्[५०] - सूर्यों में महान सूर्य नाम से अहम्[५१] मैं ही विष्णु[५२] - नाम
आदि सूर्य हूं ज्योतिषाम्[५३] प्रकाश रुप में मेरा ही नाम ज्योति स्वरुप है और प्रकाश स्वरुप का दूसरा नाम
रविः[५४] यथा सत्य सूर्य है कि जो अंशुमान[५५] - यथा नारायण नाम के स्कन्धी नाम से मेरा व्यापक प्रकाश रुप है सो मैं
ही प्रकाश रुप से मरीचि[५६] यथा वायु रुप में स्वासा ध्वनि रुप हूं मैं ही - मरुताम्[५७] यथा वायु रुप हूं और
अस्मि[५८] - नाम से मैं ही अनादि सूर्य मैं ही - नक्षत्रानाम[५९] - भविष्यत वर्तमान रुप अचल सूर्य और
अहम्[६०] मैं ही शशी[६१] - अर्थात चन्द्र हूं यथा मैं ही उज्यरा और मैं ही अन्ध्यारा रुप हूं ॥ ६१ ॥
वेदानाम[६२] - वेद के नाम मे मेरा नाम सामवेदः[६३] - यथा स्वासा ध्वीन ही मेरा नाम रुप ज्ञान स्वरुप
वेद रुप है और अस्मि[६४] मैं ही देवानाम[६५] दिक नाम आकाश रुप देव हूं यथा अस्मि मैं ही वासवः[६६]
अर्थात रस रुप में वासुदेव नाम से अग्नि दाह का केवल स्वरुप हूं इंद्रियाणाम[६७] इंद्रियों के नामों में मेरा
नाम इन्द्र नाम से मन[६८] यथा मनु इन्द्र है च[६९] तथा चेतन रुप में अस्मि[७०] - मैं ही भूतानाम[७१] नाम रुपी
सर्व भूत आकृतियों में अस्मि[७२] अनादि सिद्ध मैं ही चेतना[७३] यथा चेतन रुप चेतना हूं ॥ ६२ ॥
रुद्राणाम[७४] - सर्व व्यापक सर्व अन्तर्यामि उदित असंग नाम रुप रुद्र स्वरुपों में मेरा नाम शंकर[७५] यथा शंका
रहित कर्मसु पूर्ण कारण कार्य एक रुप एक स्वरुप संशय शंका अहारी रिपु धारी सर्पादि भूशनी बन्वारी यथा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकृ धातूर मह्य कारी कषृानकषृसहिकारी गिरंर गिरधर गोपाल गोवरधन धारी कृष्ण मुरारी यथा दूध
धारी केवल दुग्धकृका ही खान पान कर सर्व रक्षणी ६६ च चैतन्य देव अस्मि ६७ आदि अनादि सिद्ध सर्व लय कारी
विनेशो ६८ अविनाशी पूर्ण विस्तार वाला यक्ष ६९ यथा आकाश रूपस्वरूप दिक नाम यक्ष प्रजापति नाम रूप में १२१
रक्षसाम ७० कुवेर नाम रक्षणी नारायण यथा आदि अक्षर आदिम मेरा नाम है मैं ही वसूनाम ७१ वासना के रूपमें
सर्प रूपसे आप ही अपने आप को खाने वाला पावकः ७२ यथा नाग भूजंग आदि रूप में आशा तृष्णा रूपी अग्नि में अग्नि
रूप बनकर मिषमासुर नामसे आप ही अपने शर पर हाथ रखकर अपने को आशा तृष्णा की अग्नि में भषम
करदेने वाला च ७३ चपला रूप बिजली का स्वरूप चेतन देव नाम अस्मि ७४ अनादि सिद्ध शरोमणिः मैं ही मेरुः ७५
ध्रुव नाम रूपस्वरूपसे शिखरिणाम् ७६ शुद्ध शाश्वत नामरूप पर्वतों में शिखर नाम अचल पर्वत एक ही
महान पर्वत के नाम से मुख्य पर्वत रूप में सुमेरु पर्वत यथा स्वयं सोने यथा कनक का पर्वत अद्रिम ७७
मैं आप ही अनादि स्वर्ण का पर्वत रूपस्वरूप हूं॥ ६३ ॥ पुरोधसाम् ७८ पुरोहित नाम अपने पूर्ण हितकारी
प्रेमयों में मैं आप ही स्वासा रूप से च ७९ चिरण जीव अमर रूपस्वरूप से साक्षात मैं मुख्यम् ८० मुख्य दिव्य
दिव्यं ८१ हूं माम् ८२ मेरा मेरा विद्धि पार्थ ८३ ब्रह्म ब्रह्मा रूपकि जो स्वरूप सर्व पदार्थों की उत्पन्न करनेवा-
ली शक्ति ही और इसी शक्ति का नाम कर्म यथा पुरुषार्थ है इसी का परा शक्ति स्वरूप और पराक्रम
गतिः में परा अर्घ परमार्थ तथा विधि पार्थ नाम में पूर्ण विधि पूर्ण ज्ञान रूप स्वरूप में बृहस्पतिम् ८४
यथा पूर्ण हितकारी प्रेम पूर्वक रूप में मेरा बुद्धि रूप में अचल बृहस्पति नाम है क्योंकि बृहस्पति ब्रूते
ब्रिते सर्व काल में बक्री मार्गी उदय अस्त रूप में अपने ही अधिष्ठान पर अचल स्थिर रहती है इसी
प्रकार मैं विधि पार्थ आप ही अपना अचल पुरोहित बृहस्पति हूं किमिथ्या मानुषी तुच्छ दृष्टि में
बृहस्पति की भांति कि जो उलटी सीधी चलते और उदय अस्त होते प्रतीत होती है किंतु वह किसी भी
काल में अपने स्थान को नहीं छोड़ती अचल रूप से अचल है इसी प्रकार मैं आप ही अपना पूर्ण नाम
पूर्ण और अचल पुरोहित बृहस्पति नाम हूं यथा मैं ही सेनानी ८५ नाम सर्व अधिकारी नामों में सेनापति
रूपस्वरूपसे अहं ८६ अचल हेम हाकिनी ८७ सरस्वती पति मद्मात्सर्य नाम रूप डाकिनी नाम मूल
प्रकृति का नाम एक नाम चार काम राकिनी रूप अहंकार षट विकार नाशक स्वरूप १ लाकिनी रूप यथा
संहार पालन में समर्थ स्वरूप २ और काकिनी नाम इन्द्रियजित और वचन रचना में समर्थ ३ और शाकनी
नाम सर्व हितकारी रोग शोक रहित ४ चारों नामों का एक ही स्कंदः ८८ नाम हूं अक्षर बीज का लक्षार्थ रूप
आकाश स्वरूप स्वामकार्तिक नाम सर ८९ सरों में सार रस सर्वज्ञ अग्नि रूप साम ९० नाम स्वासा रूपस्वरूप
अस्मि ९१ मैं ही अनादि सत्मय सागरः ९२ नाम रूपसे एक अचल सागर समुद्रवत सेनापति हूं॥ ६४ ॥
महर्षीणाम ९३ हिमालेन पाउपकारी पुरुषों में जड़ रूप स्वरूप भृगुः ९४ नाम राजऋषि अर्थात पृथिवी मंडल
मैं हूं और गिरं ९५ हूं ९६ अक्षर रूपस्वरूप शब्द में मैं ही पूर्ण अनादि सर्वज्ञ आकाश रूप स्वरूप में गिराम ९७ नाम रूपसे
अचल गिराम स्थान हूं और अस्मि ९८ मैं ही एकम ९९ कैवल्य मैं ही एक अक्षरम १०० नाश से रहित अविना
शी अक्षर पदार्थ एकोमय रूप स्वरूप मैं हूं और यज्ञानाम १०१ अर्थात यज्ञ रूप सृष्टि संसार स्वरूप में कि
जो सृष्टि संसार मेरा एक अपार यज्ञ रूप है इसी मेरे यज्ञ रूप का सम रूप संगुन्ना स्वरूप में जो एक ही
नाम है उसी एक नाम का यज्ञ नाम है अर्थात इस मेरे यज्ञ नाम स्वरूप का ही जपयज्ञः १०२ अर्थात
मंतः परतरम १ नान्यत किंचिदस्ति २ धनंजय ३ मयि ४ सर्वमिदं ५ प्रोतं ६ सूत्रे ७ मणिगणाः ८ इव ९ रूपस्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digtized by eGangotri Foundation 2024

में सुमणी की भांति कि जिस प्रकार एक सुमणी के मध्य पोए हुए सूत्र में मणियों का समूह ग्राथित है तैसे
ही जपयज्ञ रूप नाम के भिन्न जो यज्ञ नाम रूप का लक्ष व अर्थ व चिन्ह है वही सर्व मिथ्या है कारण
कि यज्ञ नाम सृष्टि का है और सृष्टि जपयज्ञः नाम का एक स्वरूप है और जपयज्ञः एक सूत्र में पोये
हुए अनेक नाम रूप के अनेक भांति के मणियों का नाम है सो मंतः[1] नाम मेरे[2] अन्य[3] परंतरम[4] परमार्थ
न[5] नहीं है सत्य रूप अन्यत[6] अर्थात किसी दूसरी प्रकार का कोई यज्ञ नाम रूप से कोई यज्ञ किंचित[7]
किसी पदार्थ यथा कार्य रूप में अस्ति[8] अनादि[9] सिद्ध तत रूप धनंजय[10] धनुष्य अर्क तुल्य बृहस्पति रूप
प्रिय रूप क्योंकि मयि[11] मैं ही सर्वं[12] सर्वत्र वं[13] यथा रस रूप जल स्वरूप से वरुण देव नाम रूप में सर्व सृष्टि
वस्तु का एक ही बीज और एक ही रूप इदं[14] नाम से सर्व जगत सृष्टि रूप प्रोतं[15] एक ग्राथित रूप में सूत्र[16] के
रूप से मणिगणाः[17] मणियों के समान एक रूप एक स्वरूप में इव[18] स्वयं सहैव[19] से ही जप नाम रूप में अजप
अनादि ज्योति पूर्ण रूप में जो मेरा स्वास ध्वनि रूप है केवल[20] सृष्टि संसार[21] इसी[22] का नाम यज्ञः यथा जप-
यज्ञः है सो अस्मि[23] मैं ही जपयज्ञ रूप से स्थावराणाम्[24] - अचल स्थित स्वरूप - हिमालयः[25] अर्थात
हं अ ल य उ पंचब्रह्म रूप से अर्ध मात्रा में तुर्यातीत गति के अंतरगति हं आकाश अ प्रणव रूप
ल पृथिवी रूप य वायु रूप उ सर्व उदित एक ॐ कार रूप अचल रूप में हूं ॥ ६५ ॥

अश्वत्थः[26] अश्वतथिर नाम यथा घोडों की चाल से दौडने घोमने फिरने वाला संसार एक थिर रूप में
अश्वत्थामा नाम रूप से जो नरव रूप वृक्ष है सर्व वृक्षाणाम[27] सब वृक्षों के स्वयं वह वृक्ष मैं हूं यथा
सृष्टि संसार जो अश्वत्थ रूपी वृक्ष है वही मैं एक ही अश्वत्थामा वृक्ष हूं और देवर्षीणाम[28] में मेरा
नाम चैत्यः[29] चैतन्य देव यथा नारदः[30] अर्थात स्वः स्वः नाभी रूप दशदल पद्म स्वरूप न अ र द उ
नहीं है आदि जिसका ऐसी र नाम अग्नि आदित्य रूप उदित स्वरूप नारदः नाम एक रूप ३० भांति
की प्रकृति में हूं और गंधर्वाणाम्[31] यथा सर्व ज्ञानेंद्रियों कर्मेंद्रियों के मध्य दश गंधर्वा नाम रूप में मेरा
नाम शुकदेव यथा चित्ररथः[32] अर्थात अहंकार रूप से अन्तःकरण तथा सनकादिक स्कंदः[33] हैं कि जो
चार प्रकार के नाम रूप में केवल एक ही मेरा नाम है और सिद्धानां[34] नाम अर्थात सर्व सिद्धांतों में जो माया
के २४ अंश हैं उनमें मेरा नाम कपिलः[35] अर्थात ऊपर नीचे प्राची अवाची प्रतीची उदीची अग्नि
वायु ईशान नैऋत में कि जो दिक नाम से एक रूप एक स्वरूप दिश विदिशा की प्रतीत करने और
संपूर्ण जानने वाला दृष्टि रूप बुद्धि का स्वरूप यथा मुनिः[36] अर्थात अंतर बाहर एक रस एक रूप
मौन स्वरूप है सर्व साक्षी रूप है सोऽसा जो अद्वय रूप मेरा स्वरूप है वही कपिल मुनिः मैं हूं ॥ ६६ ॥

उच्चैःश्रवसम्[37] - संपूर्ण श्रेष्ठ एकरस अश्वानाम[38] सप्त घोड़ों के रूप में एक श्रेष्ठ उच्चैः श्रवा नाम्नो
विधि[39] नाम से ब्रह्मा यथा ब्रह्म नाम है यही ब्रह्म नाम माम[40] - मेरा मेरा अमृतोद्भवम[41] - अर्थात ये
अमर नाम में प्रकट रूप जो ब्रह्मांड यथा विशव नाम का सर्व सृष्टि चित्र रूप है इसी का नाम
इन्द्र ब्रह्म यथा उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा है और ये अमर ब्रह्म नाम रूप मेरा है ऐरावतम[42] हाथियों
में गजेंद्राणाम[43] गणपति अष्टधा प्रकृति यथा अष्ट गज रूप में ऐरावतः १ पुण्डरीकः २ वामनः ३
कुमरः ४ जनः ५ पुष्पदन्त स्राव ६ मोमः ७ सुप्रतीक ८ से चैतन्य रूप में जो एक ही
दिग्गजा नाम है यही मैं हूं और नराणां[44] यथा नर नाम में नरसी निसंदेह[45] च यथा वीर
चेतन निराधिपम[46] - पूर्ण प्रताप आचित रूप सर्व अधिकारी स्वरूप मैं हूं ॥ ६७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आयुधानाम्[३३] - आज्ञा रूपी तृष्णा के चमकीले शस्त्रों में हल कपृ की बाड़ काटने वाले शस्त्रों में मैं एकही शस्त्र
अहम्[३४] सत्य स्वरूप वज्रं[३५] यथा बज्र कला बिजली का खांडा बिजली का कटार बिजली का भाला बिजली
का बाण बिजली रूप प्राणों मैं मारी गुजे की गोले के मार हूं कारण कि मैं पूर्ण पूर्ण सत्य सत्य सत्य हूं असत्य का 181
मेरे में नाम मात्र को अंश नहीं है इसलिये सत्य रूप सत्य स्वरूप में मैं ही धेनुं[३६] नाम दहन रूपी दाह यथा डाह
का रूप हूं और मैं ही सर्व प्रकार के धनों में दुग्ध रूपी दूध प्राप्त रूप स्वरूप में सकल पदार्थों मायावी पदार्थों से
अचल असंग अनादि कि धे धृत नाम हूल रूपी जुवे का मार नु नाम न उ अर्थ में नहीं है उदय रूप
से नाम मात्र को जिस स्वरूप में ऐसा अनादि अचल स्वरूप एक रूप एक नाम एक काम रूप में मेरा एकही
अस्मि[३७] - आदि सर्वज्ञमय मेरा कामधुक[३८] - कामधेनु यथा क अ म ध अ न उ मेरा नाम है अर्थात
क से कान्ता अ से अचल म से मेरा ध से धर्म न से नाम उ से उन्नति नाम उपकार रूप में मेरा कामधुक
यथा कामधेनु रूप में धुक धौंकनी की भांति कर्म परमात्मा नाम और काम रूप मैं कार्य अर्थ रूप से
अचल पुरुषार्थ मेरा रूप मेरा स्वरूप है कि जो प्रजनः[३८/२] अर्थात परमार्थ के हेतु प र ज न स अर्थ से ही प
के अर्थ प्रथम प्राक परा परंपरा पूर्ण प्राक्रम से अपने परंपरा रूप को र के अर्थ से रूप रूपान्तर को ज के अर्थ
से जीवन गति के रूप मायावी स्वरूप अज अजन्य स्वरूप को न के अर्थ से नशत नाश रहित को स के
अर्थ से सर्वज्ञ रूपी साकार रूप सृष्टि अपने एक रूप स्वरूप को मैं (च अ[३९] स इ म) अर्थात च और
अस्मि के अर्थ रूप में चेतन अचल सर्वज्ञ इन्द्र अनंत इति अनंतम स्वरूप से मैं आप ही एकं[४०]
केवल एक मैं ही दर्पः[४१] मुख्य कारण रूप दर्पण सर्पाणाम्[४२] सर्प रूपी नागनी कामनी सुन्दरी मोहनी नारी नार अग्नि
नाहरी काम देवी कर्मेश्री शक्ति माया मय स्वरूप काम रूप कन्छा देवी नाना रूप नाना स्वरूप में अंतरंग बहिरंग
विष विषैयि रूप स्वरूप में सम्पूर्ण सर्प नाम विषय का एक रूप एक स्वरूप अस्मि[४३] मैं आपही अपने रूप अपने
स्वरूप में वासुकिः[४४] - अर्थात वासना उत्पन्न रूप सहस्त्र युग पर्यंतम सत्य रूप सत्य स्वरूप एक ही सर्प रूप
आपही बली आपही निर्बली आपही बल रूप वासुदेव नाम वासना रूप वासना का खाने वाला वसु रूप
काम नाम भोग विलास का आनिंदित आनंद स्वरूप भिन्न भिन्न आकृतियों में आनंद मनाने वाला जो
व से विकट अ से अपार स से सर्वज्ञ सर्व अधिकारी उ से उत्तम उपकारी इ से इतिः आदि और
अंत रहित और क से कर्म ही कर्म नाम रूप में जो मेरा एक स्वरूप है उसी का सर्प रूप में काल यथा
अकाल नारायण वासुकिः अर्थात सर्व सुरव सुरव ही सुरव रूप में वासुकि मेरा नाम है ॥ ६८ ॥
अनंतः[४५] अनंत रूप से पूर्ण सार सर्वज्ञ च[४६] अर्थात मैं चैतन्य देव चेतन अस्मि[४६] मैं आप अपने आपही नागा-
नाम[४८] अष्ट फला नाम रूप से जन्म जय यथा जन्म रहित अजन्य अजय रूप प्रीक्षत नाम एक रूप आठों
गांठ कुम्मेत परा नाम सत्य रूप सत्य स्वरूप का सार अंक एक स्वरूप तक्षक नाम पाताल का नरेश
जगदईश्वा एक नाम आठ रूप आठ स्वरूप में अनंतः १ वासुकिः २ कमल ३ कुलिक ४ पद्म ५ महाप-
द्म ६ संख ७ कुलिक ८ कि इन आठों नागों का एक नाम गन्धार कि जिस का दूसरा नाम नक्षत्रला और
तीसरा नाम पुष्कलावत और चौथा नाम भरत और पांचवा नाम आकाश है और इस पांचवे नाम
से ही आकाश स्वंब्रह्म रूप में एकादश रुद्र रूप से ११ नाम एक रूप एक काम से अज १ एकपात २
अहिर्बुध्न ३ पिनाकी ४ अपराजित ५ त्रिम्बक ६ महेश्वर ७ वृषाकपि ८ शम्भु ९ हरणागर्भ
१० ईश्वरईश ११ अर्थात ११ रुद्र नाम स्वरूप से पूर्ण ब्रह्म पद्मयोनि नाम से एक ही रुद्र बालकरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

बाल्मीक ऋषि का एक अनादि स्वरूप आकाश नाम है और इस आकाश के भी सात नाम अर्थात भव १ शिव २ ईशान ३ विशुपति ४ भीम ५ उग्र ६ महादेव ७ ये एक ही अर्थ रूप में सात नाम हैं इस प्रकार से मैं एक नाग नाम में पूर्ण बाल रूपी सुग्रीव नाम बानर अचल अङ्गद पाँव बाल्मीक नाम डाकू काल रूप अकाल गति नाम रूप का एक स्वरूप अनंतः नाग नाम मैं हूं और वरुणः यथा आकर्षण शक्ति रूप से जल रूपी शांन्ति सरोवर नाम में वरुण नाम से जो उत्तम शक्ति रूप में मेरी शक्ति है वही वरुण नाम रूप से उरुण अर्थात अरुण नाम से अपान वायु और परुण नाम से प्राण वायु यथा अरुण और गरुड दो पक्ष रूप में एक ही महर्षि कश्यप नाम आकाश कद्रू और बिनता का एक रूप ब्रह्मइन्द्र आभास १४ रत्न १४ मनु का एक रूप चैतन्य देव अर्थात यांदसोम स्वासा की गतिः में बिजली का स्वरूप मेरा एक ही अनामय रूप नाम अहम - अनादि - आकाश मूल यथा असंग नाम रूप का एक स्वरूप अर्थात अनादि आकाश मूलरूप में मैं ही पितृणाम - सूक्ष्मरूप आकृति के स्वरूप से सर्व दृष्टा सर्व साक्षी अनामय आत्मा माया रूपी स्त्री और स्त्री का प्रिय पति आदिम देव पुरुष नाम पुत्र पुत्री का एक रूप पुरुष स्त्री का स्वरूप और पुत्र पुत्री का ही माता पिता के रूप से एक नाम एक स्वरूप अतिः गूढ लक्ष एको ब्रह्म नाम परं प्रिय क्षेत्री रूप पूर्ण साकार रूप में सृष्टि का विचित्र स्वरूप स्वयं देव स्वतः वेद नाम पंची करण पंच ब्रह्म ब्रह्मांड विश्व देव नाम वसु वासुदेव आत्मा का नाम पितृ रूप एक स्वरूप स्वयं दृष्टा स्वयं साक्षी ब्रह्म क्षेत्री सृष्टि देव परम देव प्रकृति ब्रह्मांड ब्रह्म आत्मा नाद ध्वनि घोषा वाणी अ उ म नाम अक्षर रूप तुर्यातीत पुर्ण सत इच्छा का एक रूप साक्ष स्वरूप कर्मेंद्रिय ज्ञानेंद्रिय यथा अन्तः करण यथा मन बुद्धि अहंकार चित का एक समूह रूप एक रस ज्ञान ही ज्ञान का प्रकाश रूप आप ही आप सब कुछ दृष्टा श्रोता वाणी वाक आदि का साक्षी रूप जो एक अनामय रूप है वही पितृ नाम रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में एक मैं ही पित्र परमात्मा हूं अर्थात पितृ नाम रूप में मैं आप ही अर्यमा - निर्विकार असंग रूप - अ र य म अ अनादि अग्नि दाह रूप में सूक्ष्म रूपी जो यज्ञः नाम सृष्टि याज्ञवल्क्य रूप आकाश का नाम ही मूल प्रकृति का मूल नाम महऋषि नाम रूप से आदि रूप यज्ञः सृष्टि तथा याज्ञवल्क्य ऋषि के रूप में मेरा ही नाम अर्यमा यथा याज्ञवल्क्य महऋषि आकाश यथा यज्ञः नाम सृष्टि संसार एक अचल अर्यमा नाम से मेरा ही रूप और मेरा ही नाम है - और यही अर्यमा आदित्य अग्नि रूप में युग स्वरूप सत्य नाम मेरा च नाम से चैतन्यमय कोश अस्मि नाम यथा अचल अनंत सर्वज्ञ सर्व व्यापक मूल रूप है कि जो मूल रूप यमः अर्थात एक सत्य धर्म रूप से अद्वैत धर्म रूप सिद्ध सनातन धर्म रूप से संयमनाम् - अर्थात तत्व विज्ञान नियम रूप में मेरा संहार यमी अमृत मायामयि तत रूप अचल स्वरूप मूल प्रभा - अहम - अव्यय अगम महान रूप और महान स्वरूप महान नाम कर्मेंद्री प्रेमेंद्री अनंत नाग वरुण पितृ महान पित्र अर्यमा नाम यम राज मैं हूं ॥६१॥

प्रह्लादः - प्रह्लाद नाम परा रूपी पूर्ण सत्य सूर्य का सत्य जो प से पूर्ण र से अग्नि रूप ह्ल से आकाश रूप ल से पृथिवी स्वरूप अ से प्रणव ॐ कार रूप द से दत्त प्रकाश स्वरूप स से सच्चिदानंद रूप जो एक सत्य रूप सूर्य स्वरूप मेरा है सो प्रह्लादः नाम सूर्य च - अक्षर रूप चैतन्य देव अस्मि मैं आप ही आदित्यानाम आदित्य रूप सूर्य स्वरूप नाम में अकालः - अकाल रूप अकाल स्वरूप अकाल पुरुष सत् चित आनंद रूप कलयताम् नाम अर्थात कनक कान्ता जड रूप देह में वायु रूप से तत स्वरूप अचल मय रूप अहम अनादि सर्वज्ञ मैं आप ही हूं कि जो संख्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गणन रूप में मिथ्या मानुषी बुद्धि में मिथ्या देहादि कों की गणन करणे के रूप में काल का रूप मिथ्या ही
प्रकट प्रतीत होता है कारण कि अकाल रूप में काल का नाम मात्र को लेस नहीं है सो इस प्रकार जो पूर्ण 183
अकाल पूर्ण आदित्य पूर्ण सत्य रूप अक्षर स्वरूप मेरा है उसी सत्य सूर्य षरं रूप मेरे का नाम प्रह्लाद है
और मृगाणाम[६६] अर्थात शरीरादिक भय रूपी पशु वों में हिरण्यकश्यप हिरण्याक्ष रूप से अनंत रूपी आकाश में चेतन रूपी य के
वीज रूप रूप से महः रूप में वायु वीज का अक्ष नाम हृदय स्थान द्वादशदल पद्म अरुण रूप मृगा वाहन स्वरूप
ईशान नाम महादेव काकिनी नाम देवी पति इन्द्रिय जित वचन रचना में समर्थ जो च[६७] अर्थ नाम रूप से
अभय रूप सिंह नर सिंह रूप स्वरूप चेतन साक्षी मेरा स्वरूप है सोही मृगेंद्रः[६८] नाम रूप में मैं ही सिंह यथा
नर सिंह देव रूप महादेव हूं और अहम[६९] मैं ही वैनतेयः[७०] पक्ष पक्षी रूप में निर्पक्ष गरुड़ पक्षी नाम में
प्राण वायु का रूप च[७१] यथा चेतन चैतन्य स्वरूप पक्षिणाम[७२] दो पक्ष रूप में प्राण अपान वायु रूप में
आकाल निर्पक्ष स्वतः स्वतंत्र मैं हूं ॥ ७० ॥ पवनः[७३] वायु रूप से पवताम[७४] महान बेगवाला कार्य
कारण रूप काम अस्मि[७५] मैं आप ही ऐत्रि आदित्य त्रेय रामः[७६] राम नाम रूप स्वरूप से त्रिगुणी नारायण रूप
स्वरूप में एक ही अकाल रूप काल चक्र का भूत भविष्यत वर्तमान त्रेय काल रूप एक स्वरूप शस्त्र[७७] त्रिग्नि
लोचन रूप शस्त्र का भृताम[७८] नाम यथा सप्तानाम व्याहृतियों का एक ही सुदर्शन चक्र शस्त्र नाम सिद्ध
शस्त्रधारी दत्तात्रेय नाम तीन रूप सूर्य का एक रूप स्वरूप में काम का एक नाम राम अहम[७९] अनादि आकाश
रूप मूल स्वरूप मैं हूं मैं ही झषाणां[८०] मत्सय अर्थात मच्छ मात्सर्य अर्थात माया से मुग्ध हो जगत
में इन्द्रियों की जो जो प्रकाश क्रिया हैं यथा वाक हाथ पांव वायु और उपस्थ ये ही कर्मेन्द्रिय झषाणां
रिपुगण रूप में मत्सय यथा कामदेव मच्छ का रूप हैं इन मच्छों के रूप में झषाणां वासना यथा मैं मकरः[८१] नाम रूप स्वरूप
में रिपुगण का एक ही रूप मकरः नाम काम रूप मत्सय यथा पूर्ण काम काम रूप का मकरः नाम च[८२] यथा चेतन
रूप चैतन्य काम अस्मि[८३] मैं आप ही अचल आकाश रूप मूल तत्व स्वरूप स्रोतसाम[८४] नाम रूप से मीन कूर्म रूपी
वराह वामन हरि नाम रूप से पंच ज्ञानेंद्रिय शरसायक बाण प्राण रूप से एक इषु नाम पंच ब्रह्म इन्द्र का
एक रूप पंच महानदी रूप में परम परमात्म प्राप्त रूप से अस्मि[८५] मैं आप ही अचल मर्यादा रूप आकाश
स्वरूप मूलम मूल अतोड़ ज्ञानदृष्टि रूप में जाह्नवी[८६] अर्थात बाण रूप नाम गङ्गा यथा सृष्टि संसार रूप में
एक ही जनक भागीरथ नाम आकाश रूप शिव स्वरूप नन्दी नाम गोर्जा रूपी काम काम आत्मा गङ्गा नाम
यथा काम ही नाम रूप से गङ्गा रूप गङ्गा स्वरूप गंङ्गा नाम सृष्टि संसार का अपार रूप में हूं ॥ ७१ ॥
सर्गाणाम[८७] अचेतन रूप कार्यों का जड़ भरत रूप विश्वामित्र महऋषि ब्रह्म ऋषि नाम आकाश रूप
उमरावती नाम इन्द्र स्थान मेन्का रूपी अपक्षरा माया इन्द्राणी नाम राणी आप ही माता आप ही पुत्री
शकुंतुला नाम सुत्री विश्वपति विश्वामित्र की जायि संसार रूप सृष्टि दशेंत नाम दशेंद्रिय का एक
रूप भ्राता भगनी का स्वरूप पुरुष स्त्री का मायावी एक रूप कंनुमुनि आश्रम भारत भरत नाम एक
अनादि आकाश रूप सत्य सर्ग संपूर्ण चेतन कोश आदिः[८८] अंतः[८९] यथा आदि अंत का एक रूप अर्थात
उत्पति और लय का एक स्वरूप च[९०] नाम चेतन स्वरूप यथा महान मध्यम[९१] पूर्ण केन्द्र नाभि रूप
स्थिति अधिष्ठान च[९२] नाम चेतन रूप एव[९३] नाम निश्चय स्वरूप अहम[९४] अर्थ मेरा आप ही अप
नारूप अचल आकाशमय अर्जुन[९५] रूप यथा अनादि अकाल अव्यय अनामय पुरुष अग्नि रूप
ज्योती स्वरूप उदित रूप नाशरहित अविनाशी अर्जुन नाम अध्यात्म विद्या[९६] स्वरूप में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अखंड अद्वैत तत्व का पूर्ण तुलसी सालग्राम रूप एक ही नाम जगत की चैतन्य तपिणी माया महा चैतन्य शक्ति गङ्गा लक्ष्मी सरस्वति मूल वृक्ष बीज पान डाल पुष्प सब एक रूप उर्ब्बशी सर्ग नाम स्वर्ग कामदे अपसरा सर्वदा नृत्य रूप मोहरूपा आकर्षिणी शक्ति मेनका माया विज्ञान का अचल अनामय विधि निषेध एक ही क्रिया कार्य कारण रूप विज्ञान पद परम तत्व अलक्ष नारायण यथा विद्यानाम[२७] बुद्धि सरस्वती ब्रह्म नाम गायत्री नाम वाणी सर्वत्र एक रूप माया मयि अकाल स्वरूप वादः[२८] नाम रोना गाना हंसना चिल्लाना सर्व कथन कथना का एक रूप प्रवदनाम[२९] कथन कर्ता पुरुष बाली बाल्मीक नाम अहम[१००] यथा सगुण रूप निर्गुण स्वरूप सृष्टि संसार बानर चाल सुग्रीव एक रूप महाँबीर पूर्ण नरेन्द्र महान बली मैं हूं ॥ ६२ ॥

अक्षराणाम[१] - निरूप्य पदार्थों में यथा देहादि के सर्व भिन्न भिन्न रूपोंमें वामदेव नाम[२] वायं अर्थात सब में व्यापक और सर्व से नियारा जिस जिस रूप में जो जो मेरा सर्वज्ञ रूप है वही अक्षर नामसे अकारः[३] - अर्थात (अ) नाम रूप अक्षर का अनादि अकार अक्षर रूपमें अस्मि[४] मेरा अचल आदि अंतरहित माया मय ऐसा स्वरूप है कि जो बीज रूप है और किसी काल विनाश को प्राप्त नहीं होता कारण कि विनाशी अक्षर पदार्थ और मेरा अपना आप ही अविनाशी रूप है कि जो द्वंद्वः[५] अर्थात १२ कला रूप में २ और १० के मायामयि प्रत्यक्ष प्रमाण अनुक्र एक से अनेक देश नाम वस्तु के रूप में द्वादश रूप १२ स्वरूप का अक्षर लक्ष अनामय रूप में सामासिकस्य[५] नाना प्रकार के रूपों नाना प्रकार की आकृतियों में मैं ही अक्षर रूप नाम रूप स्वरूप आकृतियों में अभय पदार्थ प्रधान एक अनामय अक्षर रूप व्यापक और असंग रूप से स्थित रूप हूं इसलिये भिन्न भिन्न आकृति मेरा ही रूप और मेरा ही मायामयि स्वरूप है कि जो मायामय होने के कारण जन्मता और मरता प्रतीत होने पर भी एक अ के अकार रूपमें अक्षर यथा चः[६] - अक्षर के चर लक्ष से पूर्ण चैतन्यमय कोश पूर्ण चेतन पूर्ण सिद्ध नाम रूप से शुद्ध शाश्वत परम प्रिय परा सत्य रूप सत्य स्वरूप पूर्ण स्वतंत्र पूर्ण मोक्ष जन्म मरण बन्धन से रहित केवल अनामय मेरा स्वरूप है सो अहम[७] - मेरा अचल अनादि स्वरूप एव[८] अटल निश्चय निश्चयतः अक्षयः[९] नाश से रहित कालः[१०] मिथ्या काल प्रतीत में काल बोध रूप अचल अकाल स्वरूप धाता[११] - नाम परम फल अमर फल रूप आप ही दाता आप ही विधाता[१२] हूं - नाम आकाश गगन वत पूर्ण एक रूप पूर्ण पंचवक्त्र महादेव स्वरूप मैं ही आप पिता पुत्र का रूप और पुत्र पिता स्वरूप माता रूप में मैं ही पुत्री का रूप और पुत्री माता का स्वरूप पुत्र पुत्री भ्राता भगिनि का एक रूप पुरुष स्त्री का एकोमय पति पत्नी का एक रूप अर्धा अर्धा अटल रूप एक प्रणव स्वरूप विश्वतः[१३] नाम रूप से विश्व पति रूप ही अंतर्यामी सृष्टि संसार का एको मय पूर्ण रूप विश्व स्वरूप मुखः[१४] मुख्य अविनाशी ईश ईश्वर अंतर्यामी मेरा आप अपना ही नाम है कि जो अक्षर अव्यय अचल अगम अकाल रूप है ॥ ६३ ॥

मृत्युः[१५] मृत्यु का सर्वज्ञ एक अमृत रूप म र त य उ स इन छः अक्षरों के रूप में मेरा एकोमय सर्वप्रिय रूप है कारण ये है कि म अक्षर अनुकूल मेरा मधु मधुसूदन रूप है कि जिसका अभिप्राय ये है कि जिस प्रकार मधुमक्ष नाना प्रकार के पुष्पों से मधु एकत्र करती है और फिर आप ही उसको खा जाती है इसी प्रकार सर्व देहादि को मधु रूपी मधु रूप में आप ही बनाता और आप ही उनको खा भी लेता हूं इसी प्रकार भूः अर्थात पृथिवी सर्व देहादिकों के लिये मधु है और सर्व देहाद पृथिवी के लिये मधु हैं कि दोनों अक्षर रूप मेरा ही आदिम तेज स्वरूप हैं कि मैं पृथिवी और देहाद दोनों में एकरस चैतन्य प्रकाश रूप से स्थित हूं इसलिये म अक्षर मूलम मूल रूप से मैं आप ही भूमि और देहादिकों के लिये मधु हूं और भूमि और देहादि के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे लिये मधु हैं इसप्रकार मैं अनामय आत्मा मृत्युः के म अक्षर रूप से सर्वज्ञ अमृत रूप से अमर ब्रह्म नाम एक अनामय अमर ब्रह्म सहस्र नेत्री इन्द्र का अकाल रूप अकाल स्वरूप हूं कि मृत्यु का मिथ्या अर्थ नाम मात्र मेरे आगम वेद रूप में नहीं है। इसीप्रकार र अक्षर पृथिवी जल अग्नि का एक ही बीज रूप अक्षर है इसलिये जल अक्षर रूपी रूप में सर्व प्राणियों के लिये मधु है और जल और प्राणियों का एक ही मधुर रूप है और मधुर बीज रूप में मेरा अक्षर तेज प्रकाश चैतन्य स्वरूप है कि जो मथुरा रूप से मेरा अकाल अनामय र अक्षर रूप में मृत्यु रहित अमर ब्रह्म रूप है इसी प्रकार अग्नि अक्षर रूप मधु है कि जो सर्व प्राणियों के लिये मधु रूप है और सर्व प्राणी अग्नि के लिये मधु रूप हैं और अग्नि और प्राणि दोनों एक ही चैतन्य रूप मेरा अकाल स्वरूप एक रूप हैं इसलिये मृत्यु का मिथ्या नाम मात्र अर्थ मेरे अद्वैत धर्म अमर ब्रह्म अनामय नाम में नहीं है कि जो रूप है केवल मेरा अक्षर स्वरूप है इसी प्रकार त के अक्षर रूप से जो रूप यथा जो स्वरूप है वही आदिम रूप तत स्वरूप बाणी प्रकाश रूप है कि बाणी मधु रूप में मेरा ही तत चेतन स्वरूप है कि जो अकाल ब्रह्म अमर रूप है इस लिये मृत्यु का अर्थ नाम मात्र मिथ्या रूप है इसी प्रकार य अक्षर सत्य धर्म रूप यम स्वरूप में अद्वैत ध्रुवधर्म में मधु रूप से मेरा ही वायु बीज रूप में चैतन्य वायु बीज रूप है कि जो सर्व प्राणियों के लिये मधु रूप है और सर्व प्राणि वायु के लिये मधु रूप हैं और दोनों चैतन्य रूप में मेरा ही एक अकाल अनामय अमर ब्रह्म नाम में प्राण रूपी चैतन्य रूप हैं इस लिये मृत्यु का मिथ्या अर्थ नाम मेरे में नहीं है और मेरा सर्वज्ञ अमृत रूप है इसी प्रकार उ अक्षर से कि जो उदित आदित्य मेरा सूर्य रूप है ये सर्व प्राणियों के लिये मधु है और सर्व प्राणी सूर्य के लिये मधु हैं और दोनों मेरा अकाल प्रकाश रूप हैं स्वयं एकरस उदित स्वरूप अमर ब्रह्म मेरा रूप है इसलिये मृत्यु के मिथ्या अर्थ रहित मेरा अकाल अनामय स्वरूप अक्षर रूप है इसी प्रकार स अक्षर रूप से मेरा सृष्टि नाम संसार रूप सर्वज्ञ सत्य स्वरूप है कि जिसमें दिशा विदिशा आदित्य चन्द्र चपला यथा बिजली बज्र रुम हर्ष चर्म नेत्र सुर श्रुति श्रोत्र गाना रोना हंसना चिल्लाना आकाश शब्द स्पर्श रूप रस गंध मन बुद्धि चित अहंकार विद्या अविद्या मधु रूप मेरा ही अनामय अकाल शुदर्शन चक्र नाम सर्व अधिकारी अमर ब्रह्म पूर्ण ग्रन्थि श्रेष्ठ देव श्रेष्ठ सृष्टि श्रेष्ठ चेतन सर्वज्ञ अमृत रूप स्वरूप में इसप्रकार से मृत्यु रूप स्वरूप का जो अक्षर अकाल रूप स्वरूप है ऐसा मृत्युः नाम अमर ब्रह्म सर्वज्ञ अमृत रूप मृत्युः नाम यथा [१६]सर्व अर्थात पूर्ण सिद्ध अग्नि वरुण रूप यथा [१७]हरः शान्तिः शान्त रूप आकाश अग्नि स्वरूप सर्वज्ञ एक रूप [१८]च नाम चैतन्य वीर यथा [१९]अहम नाम मैं आपही अनादि आकाश रूप मूल तत्व स्वरूप [२०]उद्भवः होनी नाम का उत्कर्ष नाम रूप में एक होन्हार स्वरूप स्वतः आपही आप [२१]च चैतन्य प्रकाश साक्षी स्वरूप तथा [२२]भविष्यताम अर्थात भाव कल्याण रूप सर्वदा एक स्थित स्वरूप [२३]कीर्तिः नाम से बुद्धि यश उपकार परम अर्थ नाम एक रूप यथा कीर्तिः नाम से [२४]श्री अर्थात सर्व शक्ति रूप में [२५]वाक् यथा शब्द रूप में बाणी नाद स्वर ध्वनि रूप में [२६]च तथा चैतन्य सर्वज्ञ रूप [२७]नारीणाम रूप में जो मेरा एक ही न अ र इ ० अ म अक्षर रूप है वही न से नन्द द्विद्र नाम अ से अंक रूप नाम र से अग्नि स्वरूप नाम इ से आदि अंत रहित नाम सर्ग विन्दु (०) से अकाल सर्वज्ञ सर्व श्रुति नाम अ से अचल अगम रूप स्वरूप म से मूल आकृति परा प्रकृति नाम में एक नाम नारी नाम जो [२८]स्मृतिः नाम रूप में समरस रूप बाणी रस सत्मय अग्नि रूप अनंत स्वरूप तत्त्वमसि नाम से तत् नाम [२९]मेधा रूप यथा मेरा अपना आपही अग्नि जुवाला धाम रूप धर्म स्वरूप [३०]धृति नाम धीर्य वायु रूप संतोष स्पर्श गति में जो [३१]क्षमा यथा मन रूप मनो कामना मोहनी मूर्ति गार्गी नाम माया सर्व सुख का एक रूप मृत्युः क्षमा नाम है वही मृत्यु मैं हूं ॥६४॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

186

बृहत्साम[३२] - एक नाम एक स्वरूप असंग अवस्था असंग रूप एक रस स्वासा ध्वनि नाद रूप तथा[३३] अर्थात साम्नां[३४]
प्राण अपान गति रूप पक्षी निर्पक्ष गायत्री[३५] यथा गाय का रूप त्रिगुणात्मक स्वरूप ग अक्षर से गोह्य माया का
गाय नाम माया रूप अदिम यम्नोत्री नाम अग्नि स्वरूप (ॐ ब्रह्मणे नाम) - हों हूं स्वासा ध्वनि गायन रूप गायत्री
नाम पूर्ण कामना पूर्ण लोक पूर्ण देव पूर्ण यज्ञ पूर्ण वेद पूर्ण नाद पूर्ण चर अचर एक रूप एक अक्षर एक ही
मिन्त्र एक ही दृष्ट एक ही ज्ञान एक ही शब्द एक ही रूप दो योजना चार मात्रा अंग नाम सर्वज्ञ सर्व्वव्यापी
ईश्वर नित्य ब्रह्म वाणी स्वयं देव स्वयं सर्व पदार्थ एक रूप प्रथम जल और जल का गुण रूप अनेक रूप एक
स्वरूप दूसरे अग्नि नाम रूप रूप में प्रकाश गति एक ही काम यही दो योजना का एक रूप एक नाम इसी प्रकार
चार मात्रा में अ अनादि अक्षर स्वरूप १ अंक अकार का विन्दु रूप और विन्दु के अंतर १ रूप के ९ विन्दु रूप
इसी एक अ मात्रा अक्षर का ऋक नाम में पृथिवी अग्नि वनस्पति का वेद रूप भूः स्वरूप अर्थात अ
अक्षर मात्रा के अन्तर गति भ ऊ स चारों मात्रा के चारों स्वरूप एक रूप भूः भूमि नाम प्रथम व्याहृति
का स्वरूप गायत्री का नाम अ ॐ कार गायत्री ९ ममत्रः यथा अ अक्षर गायत्री रूप ९ मात्रा का
एक ही ॐ कार स्वरू पृथिवी का रूप छंद[३६] अचल नियम पूर्वक छंद नाम ९ मात्रा का एक ग्रन्थि रूप
गायत्री नाम साम[३७] अर्थात अक्षर पाद चतुर्युग रूप स्वासा गति ज्ञान वेद नाम पूर्व दिशा बसंत ऋतु रूप
शरीर में वाणी जिह्वा जिह्वा का स्वाद इतना एक मात्रा विस्तार। दूसरी मात्रा उ अक्षर रूप उकार नाम
स्वयं गायत्री रूप जल का स्वरूप वायु अन्तरिक्ष इस दूसरी मात्रा उ अक्षर का यजु नाम में भुवः नाम
व्याहृति जल स्वरूप में त्रिष्टुप ग्रन्थि अर्थात ३+८=११ के रूप में उप रूप छन्द गायत्री ज्ञान वेद नाम
१५ ममत्रः साम वेद यथा स्वासा का ज्ञान पश्चिम दिशा ग्रीष्म ऋतु रूप गायत्री नाम शरीर में प्राण
नासिका घ्राण इन्द्रिय पक्ष निर्पक्ष रूप दूसरी मात्रा का विस्तार। इसी प्रकार तीसरी मात्रा म अक्षर
मकार से स्वर्ग नाम सूर्य सर्ग स रूप रूप स्वासा गति का साम वेद नाम यथा वेद रूप में स्वासा का ही
स्वः नाम तीसरी व्याहृति यथा अग्नि रूप और जगती छंद रूप ग्रन्थि का यथा सत्रह ममत्रः नाम
एक लिंक अकार का नाम साम वेद अर्थात सत्रह तत सूक्ष्म रूप का एक स्वरूप स्वासा का रूप
उत्तर दिशा वर्षा ऋत शरीर में नेत्रों की ज्योति और दृष्टि यह सब तीसरी मात्रा म का विस्तार गायत्री
का रूप है चौथी मात्रा अर्द्ध मात्रा से अनुष्टुप छन्द २७ के रूप में ममत्रः साम वेद यथा स्वास की
गति दक्षिण दिशा शरद ऋतु शरीर में मन विद्या गुरु एक रूप एक स्वरूप चौथी मात्रा का विस्तार
गायत्री का रूप है। इस प्रकार एक ही अक्षर ॐ कार गायात्री का रूप (महान[१] मम[२] त्रः[३] रूप) अर्थात
अप्रमाण मेरा त्रिगुणी त्रिात्मक दत्तात्रेय स्वरूप उप[१] तथा निषेद[२] अर्थात विधि[१] निषेध[२] प्रणव आदि
सप्त मम त्रः यथा सप्त व्याहृति का एक रूप - सप्तस्वर नाम कि जिन से विधि और निषेध का एक
रस नाम चित्ररथ चित्रगुप्त नाम बिजली प्रकाश बृहतसाम बृहत छंद नाम ३३ अंकी अमर ब्रह्म
रूप अरूप दोनों से रहित एक अक्षर प्रणव एक पूर्ण (मम त्रः) अर्थात मेरा त्रिगुणात्मक रूप जो
ॐ कार एक अक्षर स्वरूप है यही ॐ अक्षर (ब्रह्मणे नाम) रूप में मेरा अनामय ब्रह्म एक
एक अक्षरी गायत्री रूप गायत्री नाम है और इसमें सर्व राग रागनियों का प्रकट रूप साम यथा
स्वासा गति ही अहम[३८] मेरा अचल आकाशवत मुख्य स्वरूप है और इस स्वरूप से मैं आप ही आप
मास[३९] नाम देश काल नाम रूप में आदेश अद्वैत नाम रूप में कर्म कर्मेश्वरी मूलम् मूल अचल सर्व

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाम में मेरा कर्म महेश्व नाम है और मार्ग यथा मार्गो में मेरा एक मार्गी उप नाम उपासना यथा विधि ब्रह्मा मेरा नाम है
और शीर्षः शिरोमणि श्रेष्ठ स्वरूप में मेरा ज्ञान स्वरूप ज्ञान रूप में ज्ञानेश्वरी विष्णु नाम है यथा अहंमे मैं ही 187
अचल कर्म रूप महेश्व स्वरूप में जैमिनी पूर्वमिमांसा प्रकट रूप आचार्य जगत रूप स्वरूप में अनादि अनंत प्रवाह रूप से
संयोग वियोग रहित जगत कार्य कारण एक रूप में जीव अदृष्ट और परमाणु एक स्वरूप ईश्वर रूप में (०) अर्द्ध
मात्रा अनुष्टुप तुर्या तीन काल रहित अर्थात अलक्ष रूप स्वरूप में मिथ्या जीव नाम से रहित माया विभु नानारूप
कर्ता भोक्ता जीव संज्ञा से रहित अमर ब्रह्म स्कंध अद्वय रूप चैतन्य साक्षी स्वतंत्र निषिद्ध कर्म रूप
बंध रूपी नरकादिक दुःख संबंध से रहित सुख स्वरूप मोक्ष प्राप्त रूप आप्त अपार कर्म साधना रूप में
स्वतः एक रस एक स्वरूप सर्व अधिकारी कर्म फल रहित निराशक्त रूप स्वयं कर्म कर्म रूप प्रधान आदि
अनादि वाद आरंभ वाद रहित अनंत आत्मा नाना विभु रूप में अद्वय रूप प्रत्यक्ष प्रमाण में दो योजना
चार मात्रा ६ अंक पद के लक्षमें एक अंग रूप प्रणव अक्षर ॐ स्वरूप अव्यभिचार रहित अर्थात
जीव जगत परमार्थ सत्ता एक रूप स्वयं उपयोगी चित शुद्ध स्वरूप जो मेरा रूप है इसी का नाम कर्म
परम परमेश्वरी महेश्व मास नाम देश काल रूप कर्म अकाल परम हंस महेश्वर है कि जिस के
अन्तर उपासना और भक्ति दोनों एक रूप ज्ञान स्वरूप से गुप्त हैं और गुप्त रहती हैं क्योंकि मार्गो में
जो उप नाम मार्ग है उसी का नाम उपासना और उसी का नाम भक्ति और उसी का नाम विधि यथा
ब्रह्मा है कि जिसका विषय योग रूप में प्रकृति परिणाम त्रयोविंशति तत्वात्मक जगत है और जगत ही
कर्म रूप में प्रकृति का स्वरूप और तन्नियामक ईश्वर का जगत ही जगत कारण रूप है और जगत ही ईश्वर
रूप में क्लेश कर्म विपाक आशय असंबद्ध पुरुष विशेष रूप है और जगत ही जीव रूप से असंग चेतन विभु रूप
नाना कर्ता भोक्ता रूप है और जगत ही बंध हेतु रूप अविवेक का स्वरूप है और जगत ही बंध रूप में प्रकृति पुरुष
संयोग जन्य नाम अविद्यादि पंच क्लेश रूप है और जगत ही मोक्ष रूप में प्रकृति पुरुष संयोग भाव पूर्वक अवि-
द्यादि पंच क्लेश निवृति रूप है और जगत ही मोक्ष साधन रूप में निर्विकल्प समाधि पूर्वक विवेक का रूप है
और जगत ही विक्षिप्त चित रूप सर्व अधिकारी है और जगत ही प्रकट कर्ता आचार्य रूप में पतंजलि स्वरूप है
और जगत ही उपासना भक्ति रूप में प्रधान स्वरूप है और जगत ही वाद रूप में परिणाम वाद रूप है जगत ही आत्मा की
परिमाण संख्या में नाना विभु रूप है और जगत ही प्रमाण रूप में त्रिपद रूप से प्रत्यक्ष अनुमान शब्द रूप है और जगत ही
व्याप्ति रूप में अव्यभिचार रूप है और जगत ही जीव जगत परमार्थ सत्ता रूप में सत्ता रूप है और जगत ही उपयोग
रूप में चित एकाग्र रूप है इसलिये जगत ही महेश्व रूप कर्म स्वरूप में भक्ति उपासना का विधि रूप से गुप्त ब्रह्म
रूप मार्ग रूप है। इसके आगे जो कर्म महेश्व स्वरूप में जो उपासना भक्ति का एक ही ज्ञान स्वरूप गुप्त
रूप है उसी का नाम विष्णु चतुर्भुजि शीर्षः अर्थात श्रेष्ठ ज्ञानेश्वर्य विष्णु नाम है कि जिस के चार हाथों
में प्रथम हाथ न्याय दूसरा वैशेषिक तीसरा सांख्य और चौथा उत्तर मीमांसा यथा वेदांत है इसलिये
साम नाम मार्ग शीर्षः शब्द अर्थ रूप में अहंमे मैं ही ऋतु नाम में आनंद रूप नाम में कुंः नाम
रूप से स्त्री पुरुष संगम रूप में पुरुष प्रकृति संयोग रूप में कुबेर सूर्य रूप रूप से उमा करः
यथा उमा नाम शक्ति प्रकृति माया का आनंद रूप एक रमणी के रूप स्वरूप बृहत साम गायत्री
साम नाम गायत्री छंद रूप में मेरा जो रूप स्वरूप है वही साम नाम में मास नाम और मास नाम में
मार्ग नाम और मार्ग नाम में श्रेष्ठ ज्ञान [illegible] स्वरूप गायत्री नाम है कि

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar. Collection. Digitized by eGangotri Foundation 2021

जिस गायत्री में मेरा जो गायत्री रूप और गायत्री लक्ष है वही सृष्टि सकल पदार्थ में एक रूप स्वरूप ऐसा रूप है कि जिस प्रकार षट् दर्शन बृहत्साम नाम में साम नाम गायत्री छन्द मास नाम मार्ग शीर्षः चित्र है कि यही मेरा रूप है

## षट् दर्शन साम नाम मार्ग मास शीर्षः साम नाम गायत्री चित्र ।

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| गायत्री | ॐ ब्रह्मणे नमं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥ | | | | | |
| गायत्री के देव नाम | याज्ञवल्क्य १ योजना | | गार्गीः गार्गी २ योजना | | | |
| गायत्री के तीन नाम | महेश्वर १ | | विष्णु २ | | ब्रह्मा ३ | |
| गायत्री के ६ नाम | जैमिनी १ | वेदव्यास २ | गोतम ३ | कणाद ४ | कपिल ५ | पतंजलि ६ |
| गायत्री के ६ रूप | पूर्वमीमांसा १ | उत्तरमीमांसा वेदांत २ | न्याय ३ | वैशेषिक ४ | सांख्य ५ | योग ६ |
| गायत्री सात स्वरूप | भूः १ | भुवः २ | स्वः ३ | महः ४ | जनः ५ | तपः ६ | सत्यं ७ |
| गायत्री का एक अर्थ स्वरूप | ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धी महि ॥ | | | | | |
| गायत्री का तीन रूप में षट् विस्तार रूप | रज ब्रह्मा १ | सत् विष्णु त्रेय आदित्य दत्तात्रेय ४ | | | | महेषा १ तम् |
| विषय रूपमें | योग २ | सांख्य १ | वैशेषिक १ | न्याय १ | उत्तरमीमांसावेदांत ३ | पूर्वमीमांसा १ |
| जगत रूपमें | प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशति तत्वात्मक एक रूप | प्रकृतिपरिणाम त्रयोविंशति तत्वात्मक एक रूप | परमाणु आरंभितयथा संयोग वियोग जन्य आकृति विशेष | परमाणु आरंभितयथा संयोग वियोग जन्य आकृति विशेष रूप | नाम रूप क्रियात्मक माया का परिणाम एक ही चेतन का विवर्त | स्वरूपसे अनादि अनंत प्रवाह रूप संयोग वियोगी एकही रूप |
| जगत कारण रूपमें | कर्म रूप प्रकृति और तन्नियाम ईश्वर एक रूप | त्रिगुणात्मक प्रकृति | परमाणु ईश्वरादि नव प्रकृति | परमाणु ईश्वरादि नव प्रकृति जीव रूप | अभिन्ननिमित्तोपादान ईश्वर | जीव अदृष्ट और परमाणु एक रूप |
| ईश्वर रूप में | आशय संबन्ध रूप में पुरुष विशेष रूप | अदृष्टमात्र के रूप में विभु पूर्ण एक स्वरूप एक रूप | नित्य इच्छाज्ञानादि गुणवान विभु कर्ता एक अनेक विशेष रूप | नित्य इच्छाज्ञानादि गुणवान विभु कर्ता विशेष | मायाविशिष्ट चेतन तुर्यातीत साक्षी स्वरूप | तुर्यातीत विभु रूप पूर्ण स्वरूप |
| जीव रूपमें | असंग चैतन्य रूपी एक विभु का नाना कर्ता भोक्ता रूप | असंग चेतन विभु एक रूप स्वरूप कर्ता नाना भोक्ता रूप | ज्ञानादि चतुर्दशगुण कर्ता भोक्ता जड़ विभु नाना रूप एक स्वरूप | ज्ञानादि चतुर्दशगुणवान् कर्ता भोक्ता जड़ विभु नाना रूप एक स्वरूप | अविद्या विशिष्ट चेतन | जड़ चेतनात्मक नाना कर्ता भोक्ता |
| बंध कार्य रूपमें | अविवेक रूप | अविवेक रूप | अज्ञान | अज्ञान | अज्ञान | निषिद्ध कर्म |
| बंध कारण रूपमें | प्रकृति पुरुष संयोग अन्य रूप में अविद्या के विषय प्रपंच रूप | अनात्म अनिश्चय दुःख रूप | मनकृत दुःख | मनकृत दुःख | अविद्या तत्कार्य | निषिद्ध कर्म स्वयं नरकादि दुःख संबन्ध |
| मोक्ष कार्य रूपमें | प्रकृति पुरुष संयोग भाव पूर्वक अविद्या के प्रपंचसे निवृत्त | अध्यात्म आत्म निश्चय सुख स्वरूप | मनकृत सुख | मनकृत सुख | अविद्या तत्कार्य निवृत्ति पूर्वक परमानंद स्वयं ब्रह्म प्राप्त रूप | स्वयं स्वर्गी सुख प्राप्त रूप |
| मोक्ष कारण रूप में | निर्विकल्प समाधि पूर्वक विवेक रूप | प्रकृति पुरुष विवेक एक रूप निश्चय | भिन्नता रहित एक आत्म ज्ञान | भिन्नता रहित एक आत्म ज्ञान | ब्रह्म आत्मा का एक ही आत्म ज्ञान | ज्ञान सहित कर्म |
| अधिकार रूप आचार विचार में | आशा तृष्णा रूप विक्षिप्त चित रूप | संदेह रहित अभय स्वेतान्तर | आचारी तर्की यथा अभिमानी अहंकारी | आचारी तर्की यथा अहंकारी अभिमानी | आचार रहित विचार संपन्न चतुर्भूसाधन संपन्न | कर्म फलासक्त निराशक्त |
| प्रधान रूपमें | क्रिया कारण कार्य रूपमें एक स्वरूप | ज्ञान स्वरूप कार्य कारण एक रूप | ज्ञान स्वरूप कार्य कारण एक ही रूप | ज्ञान स्वरूप कार्य कारण एक ही रूप | ज्ञान स्वरूप कार्य कारण एक ही रूप | कर्म रूपमें कारण कार्य एक रूप |
| आदि अंत रूप में | अचल रूप परिणाम वाद | अचल रूप अगम स्वरूप परिणामवाद | आदि अंत रहित आरंभ वाद | आदि अंत रहित आरंभ वाद | पूर्ण रूप पूर्ण स्वरूप विवर्त वाद | आदि अनंत रूप आरंभ वाद |
| आत्म संख्या रूप में | नाना विभु विशेष रूप एक स्वरूप | नाना विभु विशेष रूप एक स्वरूप | नाना विभु विशेष रूप एक स्वरूप | नाना विभु विशेष रूप एक स्वरूप | एक विभव विशेष स्वरूप एकही रूप | विभु नाना रूपमें एक स्वरूप |
| भेदाभेद रूप में | अख्याति भ्रम रूप | अख्याति भ्रम रूप | अन्यथा भ्रम | अन्यथा भ्रम | अभेद रूप यथा अनिर्वचनीय अभय स्वरूप | अख्याति भ्रम |
| सत्ता रूपमें | जीव जगत परमार्थ सत्ता रूप | जीव जगत परमार्थ सत्ता रूप | जीव जगत परमार्थ सत्ता | जीव जगत परमार्थ सत्ता | परमार्थ रूप आत्म सत्ता व्यावहारिक और प्रातिभासिक जगत सत्ता एक रूप | जीव जगत परमार्थ सत्ता |
| प्रमाण रूपमें | प्रत्यक्ष अनुमान शब्द तीनों एक रूप | प्रत्यक्ष अनुमान शब्द तीनों एक रूप | प्रत्यक्ष अनुमान दोनों एक रूप | प्रत्यक्ष अनुमान शब्द उपमान चारों एक रूप | षट् (६) प्रमाण का एक साक्षी स्वरूप | षट (६) प्रमाण एक अंग रूप |
| उपयोग रूपमें | चित एकाग्र्य शान्त रूप | स्वं पदार्थ शोधन तत रूप | मनन यथार्थ में स्वरूप निश्चय | मनन स्वरूप निश्चय | तत्व विज्ञान पूर्वक मोक्ष | चित शुद्धि शुद्ध स्वरूप |

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसप्रकार तत सूर्यदेव का श्रेष्ठ भ नाम गर्गः तेजरूप बुद्धि स्वरूप मैं आपही साम हूं तू गायत्री रूप स्वरूप मैं एक बृहत साम राग में हों हूं ध्वनि स्वसा रूप का एक ही अक्षर ॐ कार रूप गायत्री स्वरूप हूं ॥ ६५ ॥ १८७

द्यूतम[४६] - मेरे गायत्री रूप स्वरूप में द्वैत का भान भार का रूप जुवा नाम माया का स्वरूप देह का रूप है कि जो छलयताम[४७] - सूक्ष्म गति के रूप में कपट का भारी स्वरूप यथा देह रूप आकृति कुछ न होने पर भी अपने को राजा मान लेती है ये छल्या छलकारी माया अस्मि[४८] मैं ही यथा मेरे में ही मेरा अचल अनादि साकार सर्वज्ञ एक अनादि शांत आभास है कि जो तेजः[४९] यथा मेरे सर्व तेजों में तेजस्विनाम[५०] यथा पूर्ण तेज का तेज रूप निष्काम रूप अवधूत अहम[५१] मैं ही अचल आकाशवत मूर्ति रूप से इस माया कारण रूप में गायत्री देह रूप में जयः[५२] अर्थात विजय रूप जय विजय रूप हूं और अस्मि[५३] मैं आप ही अविनाशी अनंत सर्वज्ञमय रूप से अव्यवसायः[५४] रूप में अर्थात सर्वत्र बहिर्मुख फैल्कर नाम रूप बना हुआ नाम और रूप में प्रकट प्रतीत रूप कल्पित माया स्वरूप में चक्षु इन्द्रिय कार्य में व्यवसायि यथा कारण रूप तत्व ज्ञान अनाम अर्थात सर्व कर्म सांसा रूपी संस्कारों से रहित भेद कल्पना से रहित निश्चय रूप निश्चय स्वरूप एक ही विभाव परिक्षित नाम अपरोक्ष गायत्री रूप ( ॐ ब्रह्मणे नमः आपो ज्योतिरसो अमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम ॥ गायत्री एक रूप एक नाम अस्मि[५५] - मैं आपही सत्वम[५६] सतों में सत् - सत्ववताम[५७] सत्य रूप सत्य स्वरूप विधि विधिना एक ही नारायण नाम गायत्री अपरोक्ष रूप अहम[५८] मैं हूं ॥ ६६ ॥

वृष्णीनाम[५९] - पक्ष रूप निर्पक्ष वर्त रूप में कृष्ण पक्ष नाम रूपी माया वासुदेवः[६०] - स्वतंत्र सप्त प्रकृति नामों का एक नाम वासुदेव अस्मि[६१] - मैं आपही पांडवानाम[६२] - पूर्ण प्रकाश रूप पक्ष में शुक्ल नाम धनंजयः[६३] यथा तीन शरीर धन नाम स्थूल अन्न नाम सूक्ष्म जयः नाम विजय रूप कारण रूप से अकाल पुरुष मुनीनाम[६४] मौन साधनाम रूप में अपि[६५] हूं[६६] - अर्थात मैं आप ही आकाश रूप स्वरूप से व्यासः[६७] बुद्धि का रूप बुद्धदेव बुद्धावतार नाम कवीनाम[६८] सूक्ष्म अर्थ विषय महान सूक्ष्म उशना कवी[६९] यथा उत्कृष्ट रूप स्वरूप आकाश नाम रूप में एक ही शुक्रा नाम कवि अर्थात महान रूप भारत खं ब्रह्म अपरा माया में परा रूप संत अपार रूप व्यास उशना कवी नाम माया रहित अर्जुन हूं ॥ ६७ ॥

दंडः[७०] देह नाम स्वरूप में कष्ट रूप यथा अपरा नाम माया रूपी देह में परा नाम प्राप्त रूप दमयताम[७१][७२] - श्रेष्ठों में श्रेष्ठ देवमय तत अनादि मेरा अपना आपही नरनारायण शिक्षक शिक्षा रूप है और अस्मि[७३] मैं सर्व श्रेष्ठ आप ही नीतिः[७४] - न्यायनाम रूप सुनीतिः अस्मि[७५] - रूप में अचल अनंत सर्व व्यापक स्वरूप से मैं ही जिगीषताम[७६] - जीवन सर्व जीत सर्जीवन सर्व सुख स्वरूप सर्व जगत ईश रूप जीत रूप सुनीत रूप तत अनादि मूल रूप मौनम[७७] - मौन अवस्था धारी - च[७८] - यथा चैतन्य साक्षी स्वरूप एव[७९] - निश्चय रूप अस्मि[८०] - मैं आप ही गुह्यानाम[८१] गुप्त से गुप्त नाम अनाम ज्ञानं[८२] - ज्ञानों में ज्ञान भेदों में भेद ज्ञानवताम्[८३] - ज्ञान रूप ज्ञान स्वरूप सब भेदों का जानणे वाला अहम्[८४] आदि आकाश रूप मूल स्वरूप मैं हूं ॥ ६८ ॥

यच्चापि[८५] - य त च अ इ प अक्षर रूप में इस अपने तत चेतन अनादि अनंत पूर्ण रूप से मैं आप ही सर्व[८६] सर्वत सार्व - भूतानाम[८७] शरीरादि देहाद नाम रूपों का बीजम[८८] मूल कारण बीज - तत्[८९] कार्य में कारण रूप से अहम[९०] अचल रूप अकाश स्वरूप मुख्य मैं ही अर्जुन[९१] यथा अ र ज उ न अक्षर आदि रवि जगत उशना नाम ब्रह्म नित्य हूं न[९२] नहीं तत[९३] सार सत्य रूप में अस्ति[९४] नाम रूपी वस्तु है विना[९५] विदून यत[९६] चेतन्ता स्यात[९७] शक्ति मया[९८] मेरी के भूतम[९९] - देह नाम मात्र रूप वस्तु में चराचरम[१००] जड़ चेतन नाम रूपी वस्तु से कोई वस्तु मेरे अन्य कि सब जड़ और चेतन मैं ही हूं ॥ ६९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न नहीं है अंतः अनंत रूप का अंत और अस्ति यथा सत्स्वरूप का किसी प्रकार से अस्त मम मेरी दिव्यानाम विशालनाम अद्भुत मूर्ति विभूतीनाम माया शक्तिरूप शक्ति का कि जो परम् - अनादि अकाल रूप से पूर्ण तप तप निराशत रूप एक एषः ऐसा जो मेरा स्वरूप है तं अर्थात उद्देशतः अद्वैत रूप एक देशी रूप है प्रोक्तः यही प्रकट रूप में विभूतः - माया सार तत शक्ति विस्तरैः विस्तारों का विस्तार मया मेरा एक ही स्वरूप है अर्थात मेरी दिव्य विभूतियों का कोई आदि अंत नहीं है मेरी अद्वय शक्ति अनंत है॥ ८०॥

यत चेतन्यस्वरूपसाक्षी यत जो विभूतिमत मेरी माया शक्ति है यही सत्वं सत्य मेरा रूप प्राणरूप है और श्रीमत यथा यही लक्ष्मी रूप बीज रूप है और ऊर्जितम् यही बल रूप है और एव निश्चय करके यही वा अर्थात तत ततरूपसे तत शिरोमणि तत एव निश्चय अवगच्छ - जान तथा जीव प्राण स्वास रूपमें त्वम अपान मम प्राण मेरी शक्ति का तेजोंऽशसंभवम् - केवल तेज एक ही अंश रूप स्वरूप है ॥ ८१ ॥

अथवा - अब बहुना बहुत एतेन - इस कथनसे किं क्या प्रयोजन ज्ञातेन - जानने वाला इसका तब तो अर्जुन - मैं ही अकाल पुरुष हूं और विष्टभ्य अर्थात मैं ही धारण रूप हूं अहम् मैं ही इदम् इस संसार का कृत्स्नम् पूर्ण सत्य सत्य रूप हूं कारण कार्य रूप हूं कि जिसने एकांशेन अपने एक अंश में स्थितः स्थिति का अधिष्ठान दिया हुआ है जगत: जगत रूपी माया सृष्टि प्रकृति को - ॥ ८२ ॥

कालः काल रूपसे अस्मि मैं ही लोक नाम रूप का क्षय नाश कर्ता कृत सत्युग सत्य स्वरूप प्रवृद्धः अत्यंत वृद्धि प्राप्त नाम रूप अभिमान की वृद्धि पर लोकान् नाम रूपी अभिमान का समाहर्तुम भक्षण करने के हेतु इह अनादि काल से एक रस अनंत आकाश रूप प्रवृत्तः - प्रवर्त रूपसे तत्पर ही रहता हुआ भक्षण कर्ता रहता हूं ऋते - तो अपि भी त्वा - तो न नहीं भविष्यंति - चेतन होने योग मिथ्या नाम मान अभिमान के प्रेमी सर्वे अभिमानी - ये - यही अवस्थिताः - देहात्र नाम रूप के माया मोही प्रपंची प्रपंच प्रत्यनीकेषु देहादि के विषे नाम रूप मान रूप के पक्ष पाति अभिमान की वृद्धि करने वाले योधः माया कार्य प्रपंच करता प्रपंची इन्द्र बुद्र बुद्र आकार में अपने को अन्य एक पदार्थ जान कर निश्चय करके ही एक अन्य पदार्थ जानने वाले प्रपंच रूप प्रपंच ग्रन्थि रूप माया के विषे ग्रन्थि रूप में आकृतिमान प्रपंच॥ ८३

तस्मात - तिन्हीं कारणों करके अथ मम फिर भी मैं उत्तिष्ठ - उपकार क रूपसे यशः कीर्ति स्वरूप यश के कार्यों को ही लभस्व प्राप्त हुआ रहता हूं अर्थात जित्वा विजय रूपसे ही शत्रून माया कार्य प्रपंच रूप अभिमान का भुंक्ष्व भोग लगाने यथा खाने वाला राज्यम मैं ही राजा समृद्धम निष्कंटक समर्थ रूप हूं मया - मैंने ही एव निश्चय करके एते - इस प्रपंच नाम रूप को - निहताः निर्बल अर्थात हनन रूपसे नष्ट किये हैं पूर्वम यथा पहले से ही प्राक मेरे एव निश्चय रूप स्वरूप में निमित्त नाम कीर्ति मात्रम रूप कीर्ति भवः रस वस्तु कीर्ति अव्यय - अविनाशी नाश रहित हैं न - नहीं साचिन - सार वस्तु हैं ॥ ८४ ॥

यत्त्व - चैतन्य तत स्वरूप से मैं आप ही अक्षरम - अक्षर ॐ कार रूप हूं अनिर्देश्यम देश रहित निर्देश हूं अव्यक्तम् - अविनाशी स्वरूप हूं पर्युपासते - निरन्तर परमार्थ रूप हूं सर्वत्रगम सर्व व्यापक हूं अचिंत्यम - चिंता रहित अचिंत रूप हूं च अर्थात चेतन साक्षी वीर पुरुष हूं कूटस्थम सनातन सिद्ध स्वरूप हूं अचलम अचल रूप अगम स्वरूप हूं ध्रुवम ध्रुव आदि ध्रुव हूं ॥ ८५ ॥

महाभूतान्यः पंच महाभूत अग्नि आदि में मैं आप ही धर्म यथा नियम रूप से पंच महाभूत हूं और मैं ही पंच महाभूतों में अहंकारः यथा अहंकार का रूप अहंकार हूं बुद्धिः बुद्धि का रूप बुद्धि हूं अव्यक्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अविनाशी स्वल्पसूक्ष्म प्रकृति रूपमें मैं आपही माया रूप [1]एव निश्चय स्वरूप [2]च अर्थात चैतन्यदेव साक्षी स्वरूप [3]इंद्रियाणि - इन्द्रियोंमें इन्द्रनाम [4]दशः दश इन्द्रिय रूपमें [5]एकं मैंएक ही [6]च अर्थात चैतन्य बीर पुरुष परम [7]देव परमात्मा [8]पंच शब्द प्रपंच रूपमें पंच यथा पंच ब्रह्म नाम [9]च अर्थात चैतन्य सर्वज्ञ आत्मा [10]इंद्रियः एक इन्द्रनाम ब्रह्म यथा मन अर्थात देह रूपी शरीर ही ब्रह्म रूप [11]अगोचराः अगोचर ब्रह्म व्यापक ब्रह्म [12]माया स्वरूप हूं ॥ ८६ ॥ 191

[13]इच्छा - अर्थात इच्छा नाम राग और [14]द्वेषः अर्थात द्वेष नाम मित्रता द्वैत और [15]सुखं अर्थात सुख नाम [16]वासना शुद्ध संतोष और [17]दुःखम अर्थात दुःख नाम [18]वासना शरीर के वशीभूत होकर आहारादि की वासना में प्रवर्तन और [19]संघातः अर्थात एक ही लालसा यथा आशा तृष्णा [20]च अर्थात चेतन स्वरूप में [21]एतना अचेतन रूपी [22]धृतिः देह नाम रूप का एक शरीर जैसा रूप [23]एतत - ये सब असार वस्तु [24]क्षेत्रम अर्थात क्षेत्र नाम भोजन स्थान ब्रह्मांड में भोजन रजला खाजा [25]समासेन - संक्षेप करके मेरे खाने के भांडे में सब देहान्न देह रूप एक रस [26]सविकारम विकार मान विस्तु नाना प्रकार रूप मेरे भोजन का स्वरूप [27]उदाहृतम मेरा अविद्या यथा माया कृत माया पदार्थ मिथ्या भोजन का रूप भोजन स्वरूप भोजन है जैसेकि प्रकट प्रतीत में भोजन पदार्थ रूप होने पर भी नहीं है इसी प्रकार देहादि नामरूपी वस्तु और उसमें इच्छा द्वेष सुख दुःख आशा तृष्णा चेतन स्वरूप के भिन्न अचेत रूप देह के असार कार्य हैं कि जो माया के रूप हैं और सब [28]एक ब्रह्म क्षेत्र में नाना प्रकार के भोजन रूप पदार्थों में देह और देह के विषे मेरी [29]ही भोजन हूं ॥ ८७ ॥

[30]अध्यात्म - अद्वैत अनादि [31]ज्ञानम ज्ञान स्वरूप विधि ब्रह्मा ब्रह्म रूप में हूं [32]नित्य सदैव में हूं [33]य - वायु रूप आदि अनंत एक स्वरूप मैं हूं [34]तत्त्वम तत वरूण मूल यत्न रूप साक्षी चेतन [35]तत्त्वम ततों में तत पूर्ण सार [36]ज्ञान - सार चेतन प्रकाश अर्थ विधि विधना ज्ञान रूप ब्रह्म [37]दर्शनम मैं आपही अपने को ब्रह्म प्राप्त स्वरूप प्राप्त ब्रह्म प्राप्त [38]दर्शन हूं [39]एतत इसके अन्य असार [40]ज्ञानम ज्ञान माया अज्ञान का रूप [41]इति अंत कालक्ष [42]प्रोक्तम - कहने मात्र मिथ्या [43]अज्ञानम अज्ञान माया कार्य ही है कि जो [44]यत चेतन [45]का आभास [46]अतः अर्थात अतः लक्ष में अद्वैत अनंत ज्ञान से [47]अन्यथा द्वैत रूपी द्वैत का भाव मिथ्या भ्रम है ॥ ८८ ॥

[48]अनादित्वात - अनादि सूर्य प्रकाश साक्षी स्वरूप मेरा [49]निर्गुणत्वात निर्गुण रूपी साक्षी चमत्कार सर्व कारण मय अनामय स्वरूप मेरा [50]परमात्मायम [51]मेरा [52]आपही अपना परमात्मा नाम मैं ही अविनाशी स्वरूप मैं आपही [53]अव्ययः अचल अनंत अगम अपार रूप [54]शरीरस्थः शरीर में पैठा हुआ प्रकट प्रतीत होने पर भी [55]अपि आपही [56]कौंतेय - सर्व प्रकाश कर्ता यथा कर्म कर्ता प्रतीत होने पर भी । [57]करोति - न कर्म कर्ता हूं [58]न - लिप्यते और न किसी कर्म कर्तव्य में लिप्त होता हूं क्योंकि मैं निर्लिप्त निष्कर्म कर्म रहित हूं ॥ ८९ ॥

[59]यथा क्योंकि [60]सर्वगतम मैं सर्वत्र व्यापक हूं [61]सौक्ष्म्यात सूक्ष्म रूप स्वरूप से असंग रूप में [62]आकाशम आकाश रूप वत आकाश स्वरूप सूक्ष्म रूप मैं हूं कि जो [63]न [64]उपलिप्यते अर्थात एक ऐसा मेरा स्वरूप है कि जो न उत्पन्न होता है न किसी वस्तु से लिप्त होता है कारण कि मैं [65]सर्वत्र आकाश रूप में सर्वत्र एक रूप से ही [66]अवस्थितः एक स्थित रूप हूं [67]देहे - देह विषे देह रूप में [68]तथा किसी अर्थ से किसी प्रकार [69]आत्मा मैं आत्मा आत्म स्वरूप - [70]न [71]उपलिप्यते नतो उत्पन्न होता हूं न लिप्त होता हूं ॥ ९० ॥

[72]यथा अर्थात सर्वगत चेतना चेतन अर्थ [73]प्रकाशम मेरा प्रकाश रूप है मैं आपही प्रकाश स्वरूप हूं और मैं ही [74]यति अर्थात यति स्वरूप असंग रूप [75]एकः एक ही [76]कृत्स्नम सत्युगी सत्य सत्युग रूप सर्वत्र [77]लोकम नाम रूपी देहान्नों में [78]इमम मैं आदि अंतर रहित अनंत रूप आप ही इस प्रकार जैसे [79]रविः प्रकाश मान हो ता है मैं आपही रवि अर्थात सूर्य रूप से [80]सर्व देहान्नों में मैं [81]क्षेत्री सूर्य प्रकाश रूप से [82]तथा तत अर्थ

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कृत्स्नम् - सत्यं सत्य रूप सत्य स्वरूप सत्य किरणों की प्रकाशयति प्रकाश रूप असंग गति प्रकाश किरणों के रूप से असंग प्रकाश रूप प्रकाश स्वरूप में भारत अर्थात विश्वामित्र नाम भारत आकाश का प्रकाश रूप देहात्रों में चेतन चमत्कार का एक असंग सूर्य सनातन रूप मैं आप ही भारत नाम हूं ॥ ९१ ॥

मम मेरा योनि देह यथा शरीर महद्ब्रह्म अगोचर मन आकाश है त - यही माया विषय माया का स्वरूप है अस्मि मैं नगर्भम गर्भ रहित दधामि ध्वनि स्वासा अशब्द रूप में हों हू शब्द रूप अहम अचल आकाश मूल हूं आकाश मेरा संभवः प्रकट गोचर रूप है कि जो सर्व पूर्ण भूतानाम देह देहादि नाम रूप हैं इन सर्व देह देहादि नाम रूपों में मेरा एक ही नाम भूत नाम है ततः यथा भूत भविष्यत वर्तमान में तत रूप (:) विन्दु रूप से सर्वज्ञ सृष्टि माया स्वरूप में मैं एक ही भूत नाम माया रूप भूत भवति भ नाम रूप में भ अक्षर २७ माया तत्त्व का एक नक्षत्र नाम नक्षत्र कला माया यथा भ भाव भावी रूप में वहि कि जो शब्द रूप देह नाम रूप में गोचर स्वरूप है व अक्षर रूप में मेरा प्रकट भूत नाम रस रूप माया का विषे माया करके भूत रूप से उत्पन्न होकर प्रकट प्रतीत होने वाला इ अक्षर से अनंत और त अक्षर से तत नाम रूप में केवल एक ही भारत कि जो भूत नाम माया का नाम है मेरा ही अक्षर भ - अ - र - त एक भारत नाम में भ अक्षर से नाना प्रकार के भ भृग नाम रूप में पृथिवी जैसे अनेक प्रकाश रूप मण्डलों का रूप और अ अक्षर से अचल अनादि ॐकार रूप और र अक्षर से अग्नि रूप ज्योति में प्रकाश रूप और त अक्षर से तत नाम भारत आकाश सर्व प्रकाश रूप मेरा नाम है कि जो एक ही भारत रूप आकाश में भूत रूप नाना प्रकार की भूत नाम आकृतियों का उत्पन्न रूप है ॥ ९२ ॥

सर्व - पूर्ण योनि देह रूपी एक शरीर षु - देव रूपी समर्थ देव कौंतेय - चैतन्य प्रकाश साक्षी मूर्तयः स्वरूप मान गोचर शरीर आकृति संभवं - निश्चय प्रत्यक्ष रूप शरीर आकृति प्रकट गोचर रूप तियाः त्रिगुणी त्रिरात्मक सत रज तम रूप में मेरा भूत भविष्यत वर्तमान नाम एक ही वर्तमान नाम और रूप है तो - विष्णु त अ अक्षर स्वरूप मेरे रूप का तत अचल अनादि शरीर स्वरूप का साम् नाम गायत्री अर्थात स्वासा रूप सूत्र में सर्वज्ञ अनादि मूल जड शक्ति सूक्ष्म शुद्ध आकृति ब्रह्म ब्रह्म नाम में ब्रह्म शरीर यथा महत - नाम रूप में मेरा माया आकाश तत माया नाम माता योनि अर्थात मेरा ही माता नाम माता शरीर माया महत रूप महत नाम है कि जिस महत नाम योनि में अहम नाम अचल अकाश मूल शरीर रूप माया में मैं बीजम बीज रूप सूक्ष्म आकृति साम नाम गायत्री गात सूत्र में शक्ति रूप से प्रदः परम नाम परा प्रकृति पूर्ण दः नाम दश आकृति का एक ही विधि विधना रूप पुत्र पुत्री पुरुष स्त्री का गर्भ स्थित रूप में एक ही गर्भ रखने वाली माता दक्षिणी अर्थात दस अक्षर स्वरूप का एक रूप माया माता और मैं आप ही प्रदः नाम रूप में अपना परम धर्म नाम रूपी एक अचल निश्चल स्वरूप से पूर्ण दश गुलों का सार पिता नाम रूप में पूर्ण प्रमाण से पिता शरीर प्रत्यक्ष रूप में एक अनंत पवित्र पवन पक्षी मामा हौवा और आदिम नाम अनादि पुरुष परमात्मा मैं ही आप अपनी माता और अपना परम पिता हूं ॥ ९३ ॥

ब्रह्मणः वराह्मणि सम वराह मुक्ता स्वरूप हि - जो - प्रतिष्ठा सुख रूप स्वरूप है वही सत् भूत भविष्यत में वर्तमान एक रूप काल त्रय में एक रस ज्ञान स्वरूप अनुभव रूप चैतन्य प्रपञ्चातीत कूटस्थ मुखिया आधारस्तंभ वेद प्रवेद उप और निषेद १०८ कला संपन्न ईश केन कठ मुण्ड माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य और बृहदारण्यक श्रुति स्मृति ११ नामों का एक ही महत्त्व पद्य आनन्द अमृत गङ्गा प्रवाह रूप घनाक्षरी राजतरङ्गिणी माया का अहम मैं अगम आकाश मूल रूप अमृत अमरब्रह्म रूप स्य - स य अक्षर रूप से सृष्टि मृगा माया रूप स्वरूप में अव्यय अखंड अविनाशी रूप स्य -

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स य अक्षर रूपमें सर्वज्ञ गुप्त मणि रूप चं अर्थात चैतन्य चिंतामणि अचिंत नर नारायण एक रूप एक स्वरूप शाश्वत नित्य अचल शुद्ध स्वरूपसे स्थि - स य अक्षर रूपमें गुप्त मणि मेरा रूप चं नाम अर्थमें एक ही चेतन नाम धर्म्म धर्म रूपमें अद्वय धर्म धीर्य स्वरूप स्यं - रूपमें सत्य योनि गुप्त मणि वायु नाम ईशान ईशा सुरवस्य - सुखरूप गुप्त स्वरूप एकम एक मेरा अंतिके अनंत स्वरूप स्यं गुप्त प्रकाश रूप में चं अक्षर अर्थ रूपसे पूर्ण चैतन्य तथा चैतन्य चिन्हकोश मेघसर्प मुक्ता चित्र माया तथा माया प्रकाश रूप मेरा स्वरूप है ॥ ९४ ॥

न नहीं तत - नाम मेरे आत्म निश्चय स्वरूपको भास प्रकाश चमत्कार - यते इनेयोग है सूर्यः सूर्य नाम सूर्यका प्रकाश और न अर्थ रूपसे नहीं शशी नाम चन्द्र प्रकाशने योग अंकः अ न क स अक्षर रूप स्वरूप अ से अनाम न से नारायण क से कान्ति स्वरूप प्रभा कि जो मेरे एक स्वरूप का अनेक रूप प्रकाश कारण रूप है और स से सर्वज्ञ रूप है इस स्वरूप को चन्द्र प्रकाशने योग औ न रूपसे नहीं पावकः अर्थात अग्नि भी स्वरूप का प्रकाश कारण रूप नहीं है कि यत नाम जिसमें मेरे चैतन्य तन स्वरूपमें गत्वा नाम अर्थात गति भेद का जानना भी नहीं है यथा जो स्वरूप निश्चय अभेद गति रूप है तन स्वरूप है स्वयं प्राप्त रूप है और जिस प्राप्त रूप को न अर्थ रूपसे नहीं है निर्वृतम - अर्थात किसी बंधन रूपसे निवृति यथा स्वतंत्रता के हेतु किसी प्रकार के किसी यत्न की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं आप ही हूं स्वयं निवृत अर्थात स्वयं स्वतंत्र और ते - अक्षर रूपसे न अ अक्षर के रूपमें एक अनंत स्वतंत्र रूप तत अर्थ रूपमें सार सार गज मणि रूप धाम्न अर्थात स्वयं प्रकाश अधिष्ठान अनंत एक स्वरूपसे पर नाम परा प्रकृति में सत्य रूप सत्य स्वरूप मम नाम रूपमें मैं आप ही विष्णु विष्णु का रूप और फिर मम अक्षर रूपसे मैं ही मैं मूल कारण मूल विष्णु रूप अनूप हूं अचल प्रकाश कारण रूप एक ही स्वरूप ॥ ९५ ॥

यत - चेतन साक्षी मेरे विष्णु रूपका जो प्रकाश स्वरूप आदित्य सूर्य रूपसे सूर्य में गतम - प्रवेश रूप है ते - वही तेज जः मेरा अजन्य अजय रूप है कि जो जगत नाम रूपमें का मास अर्थात प्रकाश रूप में यते मेरा चैतन्य सर्व साक्षी स्वरूप अरिवेल्लम आद्वैत अखंड पूर्ण एक लिंक मेरा स्वरूप है यत अर्थात यही मेरा चेतन प्रकाश रूप चन्द्रे नाम चन्द्रमा में भी मसि मेरी ही चेतना चैतन्य शक्ति का प्रकाश स्वरूप है यत इसी प्रकार से च अर्थात मेरा विष्णु चेतन सत्ता तेज अग्नौ नाम अग्नि में प्रवेश रूप है और तत नाम वही तेज अजः अजन्य अजय रूप विधि नाम ब्रह्मा ब्रह्म रूप माम मेरा मेरा ही कम नाम पूर्ण कांत रूप है ॥ ९६ ॥

गाम - नाम रूपसे अर्थात प्रवेश रूप शक्तिसे गाम नाम पृथिवी में प्रवेश करके आविश्य - नाम अपना प्रकाश रूप प्रकाशक शक्तिसे च - नाम चेतन अर्थात चैतन्य आकर्षण शक्तिसे भूतानि अर्थात पंचकरण नाम रूपसे धारयामि अर्थात इन्द्र ब्रह्म नाम रूपसे अहम मैं आप ही ओज नाम उत्पन्न रूप रूपवान वस्तु सा नाम साकार वस्तुका पुष्णामि अर्थात पोषण रूप च तथा चेतन चमत्कार रूप ओषधीः नाम ओषधियों का सर्वाः पूर्ण पूर्ण - सोमः नाम सूक्ष्म रूप रस रूप और भूत्वा नाम स्थूलाकार रूप रसात्मकः अर्थात रस स्वरूप वस्तुओं का एक प्रकट रूप प्रकाश रूप मैं ही एक आत्मा रूप हूं ॥ ९७ ॥

अहम - मैं आगम आकाश मूल वै यथा व अ अक्षर रूपसे वरुण अग्नि रूप में गुप्त तेज से अश्वे नाम रूपमें अग्नि रूप अश्व का सप्ता नाम स्वरूपमें अनरः नाम बिजली रूपसे बिजली का अनरः नाम बज्र बाण नाम एक शस्त्र भूत्वा बना हुआ प्राणिनाम प्राणि नाम मात्र का प्राण नाम रूपमें देहम देहों का मैं एक ही देह निश्चय देव आकाश मूल रूपमें आश्रितः आधार रूपसे आधार निश्रणि नाम रूपकी एक ही अक्षर रूप अक्षर दीपका दीपक सीढ़ी रूपसे प्राण प्राण वायुमें अपान अपान वायुमें श्वसा नाम स्वासा का स्वास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

रूप युक्तः युक्तिरूपमें बिजलीरूपसे पञ्च अक्षररूपमें पंसे मषमी मषमी का प्राकृत प्राकृति पंच दैत्य नामों में पांच आदित्य का एक ही गणेश नाम अङ्ग रूपमें एक ही प्रणव अक्षर च अक्षर के अर्थ रूपमें चिंता सहित चेतन देव दत्त दत्तात्रेय ॐकार अक्षर रूप अग्नि नाम अमृत स्वरूप अग्निरस का एक रूप मैं आप ही अन्न नाम रूप में अन्न स्वरूप चतुर्विध नामरूपमें चतुर्मुखी ब्रह्मा ब्रह्म का ब्रह्म भोज्य नाम रूप हो – भोज्य सामान्य रूपी अन्न १ भक्ष्य चबानेके योग्य अन्न २ चोष्य चूसनेके योग्य ३ और लेह्य चाटनेके योग्य ४ इन चारोंका चतुर्विध ब्रह्मा नाम जठराग्नि स्वरूप सृष्टिका एक रूप मैं अक्षर रूपमें मेरा अक्षपच नाम सर्व कारण कार्य एक रूपमें नारायण ब्रह्म मूल ब्रह्म प्रविष्टरूप एक ही अक्षर पदार्थ अग्निबल स्वरूप ॐ आकार अद्वय अनाम मेरा नाम है कि अंतरंग बहिरंग मेरा सर्वस्थित एक ही रूप एक ही ब्रह्म स्वरूप है ॥ ९८ ॥

सर्व सर्वत्र पूर्ण सत्य – माया रूपसे गुप्त च अर्थात चैतन्य देव चेतन अहम् मैं ही अगम आका मूल हृदि प्रवेश रूपसे बुद्धिरूपमें सन्निविष्टः प्रकट रूप विष्टः वसिष्ठ स्वरूप भूतः ज्ञान रूप धर्म रूप देव रूप आत्म रूप स्मृति नाम समरस अद्वय रूप ज्ञानम – ज्ञानका ज्ञानमय गणत स्वरूप एक अंक रूप अपोहनम विचार रूपमें आप ही अचल प्रकाश उन्नति उपकार का एक ही आकाश रूप नित्य स्वरूप महत्व रूप च नाम अर्थ में चैतन्य साक्षी एक चिदाघ्र स्वरूप वेदः श्रुति नाम रूपमें श्रुतश्रवा नाम संपूर्ण नेत्र ही नेत्र रूप च तथा चैतन्य साक्षीरूप सर्वः – पूर्ण पूर्ण अग्नि रूप अहमेव – मैं आप ही निश्चय रूपसे सत्य स्वरूप वेद्यः वेद रूप अद्वय स्वरूप में पवन नेत्र रूप वेदान्त नाम रूपमें आदि अंतका सार एक ही अद्वय अनादि अकाल आदि अंत रहित अगम अनंत स्वरूप कृत नाम सत्य सत्युग सत्य स्वरूप वेदवित अनंत देव नाम अनंत निश्चित दृष्टा दृष्टि सर्व शक्ति आदित्य विक्रम नाम एव – निश्चय रूप एक ही सर्वज्ञ स्वरूप च नाम बारी चैतन्य ताल वेताल पाताल आम अकाल नारायण नाम अहम् आदि आकाश मूल रूप मैं हूं ॥ ९९ ॥

द्यावि – द्वीप द्वीपांतर रूपी विश्व रूप नाम दिव्य सृष्टिमें भौ केवल मैं आप ही आप उत्पन्न रूप प्रकट प्रकाश रूप अपार रूप पुरुषौ – नाम आदि मध्य अंत रूप लोक नाम रूपमें एक ही नाम रूप रसका अक्षरः नाम विनाश रहित माया रूपमें अविनाशी स्वरूप च अक्षर नाममें चैतन्य अनादि अक्षर नाम अविनाशी ॐकार एव निश्चय नाम निश्चय स्वरूप च अक्षर अर्थमें साक्षात चैतन्य विष्णु नाम रूपमें बीर पुरुष रूप क्षरः नाम माया के विकार मान विनाशी नाशमान रूप अकृतियों का सर्वाणि सर्वत्र पूर्ण कार्यों का कारण भूतानि भूत नाम पंची करण रूपमें प्रपंच रूपी माया के होने वाले कारण रूप कार्यों का कूटस्थः नाम अमर ब्रह्म साक्षी ब्रह्म नाम अक्षर नाम अव्यय स्वरूप ॐ का एक अक्षर रूप आदिम नाम उच्यते चेतन अनुभव रूप क्षर नाम रूप वस्तु से रहित उदित चेतन वायु तत आदि स्वरूप आदिम मैं हूं ॥ १०० ॥

उत्तमः – भूत सूक्ष्म अत्यंत उत्कृष्ट पुरुषः आदिम देव नाम आदि पुरुष तत्त्व कि जिसका तत वस्तु रूपमें अन्यः दूसरा नाम परमात्मा यथा परम आत्मा है इति नाम रूपसे सब के आदि अंत का रूप ही अनंत नाम उदाहृतः उदाहरण रूपमें प्रकट प्रतीत रूपमें शब्द प्रपंच बाणी रूप अगोचर स्वरूपमें यः अक्षर रूप जो एक मेरा चैतन्य साक्षी स्वरूप है यही लोक नाम रूपरस के त्रि नाम रूपमें तीन विषय रूप का यम नाम एक सत्य धर्म रूपके विषय काल रूपमें अकाल स्वरूप अविज्ञेय नाम शुद्ध शाश्वत नाम रूप स्वरूपमें अश्वत्थ नाम रूपी प्रकट प्रतीत में प्रत्यक्ष प्रकाश रूप विभर्ति नाम रूपसे सर्वाधार उत्तम स्वरूप है यदि अव्ययः नाम अविनाशी स्वरूप ईश्वरः नाम सर्व साक्षी अहम् मैं हूं ॥ १०१ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यः नाम अक्षार रूपमें जो एक मेरा चैतन्य साक्षी स्वरूप है यही मा मेरा मूल आदि त अक्षार रूपमें नत तेजस्वी अक्षरम नाम मेरा अविनाशी स्वरूप अतीतः अतीत नाम रूप है कि जिसका सत्य नाम कर्म रहित कर्मफल भोग्य रहित कर्म अकर्म नाम रूपमें अतिक्रमण कर्म करते हुए भी स्वयं स्वतंत्र मोक्ष रूप मुक्त स्वरूप है सोजो ऐसा अतीत नाम रूपका स्वरूप है वही अतीत नाम रूपमें अहम मैं अखंड आकाश मंडल रूपमें अक्षार नाम अविनाशी आत्मा परमात्मा एक ही आदि अनादि अकाल अपि सदैव आपही च चैतन्य साक्षी विष्णु स्वरूप उत्तमः महान सूक्ष्म रूपमें हूं और अतः इस संसार रूप सृष्टि कार्य कारण एक रूपमें अस्मि मैं अपने रूप स्वरूपमें आपही लोके नाम रूप रस के विषय वेदे ज्ञान विषे च चैतन्य विष्णु के प्रथितः प्रसिद्ध नाम से ही पुरुषः आदि मैं आदि पुरुष नाम से उत्तमः एक महान सूक्ष्म रूप अत्यंत उत्कृष्ट रूपमें हूं ॥ १०२ ॥

अभय अभय रूप यम नाम सत्य धर्म रूप सत्त्व नाम सतः अर्थात सतों में सत्त सम नाम पूर्ण सत्य स्वरूप शुद्धिः प्राक्रम रूपमें अत्यंत शुद्ध पवित्र प्राकर्मी ज्ञान नाम वेद रूप वेद बुद्ध देव सत्य देव अंक गणन रूप योग नाम युग स्वरूप एक ही रूप व्यवसायमें आपही स्थितिः अनंत स्थित रूपमें एक ही अधिष्ठान रूप दानम दान रूप दमः दम रूप च नाम रूपसे चैतन्य स्वरूप ब्रह्मः नाम रूप सृष्टि में सर्व संसार का एक रूप च अक्षार अर्थ में साक्षी चैतन्य स्वरूप स्वाध्यायः अग्नि रूपमें वायु धर्म स्वरूपसे सृष्टि संसार के आदि अंतका एक रस एक ही सोम नाम साम रूप अनंत अधिपति रूप तप नाम से तेजों में पूर्ण तेज स्वरूप आर्जव आजन्य अकाल एक असंग रूप अवयम मैं आप ही अंतरंग वहिरंग एक रस एक ही रूप एक ही स्वरूप आत्म रूप हूं ॥ १०३ ॥

ब्रह्मभूतः नाना प्रकार की देहादि मनुष्य पशु पक्षी मण्डलादि माया ब्रह्म रूप प्रकट प्रतीत में प्रकट प्रतीत होने वाले नाम रूपी वस्तु पदार्थ ब्रह्मभूतः नाम अर्थात सर्व मायावी रूप नाशमान पदार्थ बीर अग्नि आकाश मूल स्वरूप का म नाम २८ तत्व उक्त नः अक्षार रूपमें अनंत सत्य नाम अनामय नाम का मायावी एक आभास है कि जो प्र अक्षार रूपमें परा नाम आकृति प्रकृति का पूर्ण सन्न यथा सनन नाम सन्द नाम रूप से प्रकट रूप प्रकाश रूप अवकाश रूप सर्व सिद्ध रूप सर्वज्ञ रूप नहीं नहीं आत्मा नाम आदि अनंत नन मय मेरा अचल अगम एक रूप कि ये रूप न अक्षार अर्थ में नहीं है ये स्वरूप आत्मा नाम सर्वज्ञ रूप मेरा शोचति स्थिर कार्ण कि ये सब नाशमान है और धोका है अशोक रूपमें शोक रहित कारण कि न अक्षार रूपमें ये सब जो कुछ प्रकट प्रतीत होता है नंद नाम निरंकार रूपमें प्रकट प्रतीत होने पर भी नहीं है कांक्षति इच्छित यथा किसी प्रकार से किसी प्रकार की अनिश्चित इच्छा करने योग्य कि ये सब अनिश्चित इच्छा रहित अप्रिये अपार रूपमें असार विकार नाम रूप का अकार समः शब्द अक्षार रूपमें मेरे समान मूल सर्व आधार रूपमें ये सब दृष्ट प्रपंच मेरे एक रस सम मर्सि रूपमें आभास तुल्य समाप्त रूप है कि नहीं है नहीं है नहीं है किंतु छाया आभास तुल्य प्रकट प्रतीत में प्रतीत रूप आकार से मिथ्या अकार एक आकार शांत रूप प्रतीही प्रतीत समः नाम रूप से रहता है मैं सत्मसर्ग सदाचार्य सर्व सर्वत्र आदि पूर्ण एक ऋतु रूपमें षु अक्षार रूपमें शिरोमणि उदित रूप एक ही अक्षार उपस्थ के रूप में एक लिंग की अ का आदि आकार आदिम नाम पुरुष रूप हौवा नाम पक्षी स्वरूप हं यथा मूर्तेषु नाम रूपमें सुप्रकाश होने वाला नाम रूप स्वरूप मूर्त नाम माया का बुद्बुद रूप माया का विषे मंद नाम मात्सर्य रूप में अनादि शान्त मही मायावी अजगर रूप है कि जो गज ग्रीव का अनुचित एक स्वांग भक्तिम नाम रूप में प्रिये [illegible] रूप नहीं है मेरा रूप लोभ ने ये माया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

कारूप प्राप्त रूप कारण कि भक्तिम रूप में भरपूर मेरा स्वरूप परा[१०३] नाम प्राकृत प्राक सत्य रूप म[१०४] अक्षर रूप में मैं आपही मधुसुदन मूल विष्णु विश्वपति विश्वनाथ नारायण निर्द्वन्द्व निगम रूप हूं ॥ १०४ ॥

सर्वधर्मान[१०५] सर्व प्रपंच धर्मों से परिति[१०६] रहित अजय[१०७] नाम रूप में पूर्ण जय विजय रूप मा[१०८] मेरा म[१०९] मेरा एकम[११०] एक मेरा अशरणम[१११] निशरण निस्वार्थ पुरुष यथा पुरुष आर्थ पुरुषोत्तम व्रज[११२] न कहने के योग्य स्वयं प्राप्त एकही रूप एक ही धर्म एक ही अर्थ एक ही कर्म एक ही आशय एक ही विश्वास एक ही स्वभाव वरुण अग्नि सम रूप जाह्नवी नाम गङ्गा प्रवाह रूप व्यापार परिश्रम रहित परिश्रम रूप में प्राण अपान स्वरूप में एक गति रूप स्वासा काल चक्र अकाल रूप अंतरंग वहिरंग एक रंग एक रूप निरोध स्वरूप स्वतः सत्य सनातन धर्म नाम अतीत रूप असंग अवस्था स्वरूप शून्याकार साक्षी विचार दृष्टा अचिंत धर्मानधर्म रहित एक ही एक असंग यथा सर्व साक्षी रूप प्रतीत धर्म स्वरूप जो प्रत्यक्ष प्रमाण में प्रत्यक्ष प्राप्त रूप धर्म है इसी का नाम अहम[११३] शब्द रूप में अद्वय अखंड गगन मय मूल ध्रुव बौद्ध धर्म नाम में जो मेरा धर्म है वह गगन रूप होने के कारण गगनि असंग गजदन्त निराशरूप श्वेत स्वरूप मेरा धर्म है कि जो अतः[११४] एक ही अनादि अनंत धर्म होने के कारण भेदाभेद रहित अभेद नाम आसर्व[११५] रूप में पूर्ण एक रंग एक रूप अगस्त स्वरूप आदि अनादि पूर्ण परानाम परम गति में अपाप[११६] नाम में कलकी यथा कलि रूप निष्कलङ्क देव यज्ञ स्वरूप अभयः[११७] नाम में पापेभ्यः निष्पाप पापरहित अनाम अभय रूप मोक्षयिष्यामि[११८] अर्थात मेरा एक स्वतः अवतारण एक से अनेक नाम रूपों में भी सिद्ध स्वतंत्र मोक्ष स्वरूप है कि जो सत्य धर्म नाम रूप में मा[११९] मेरा शुचः[१२०] शाश्वत अचिंत निश्चिंत्य सर्व शोक संताप रहित चैतन्य साक्षी सर्व शोक निवार्णि अद्वैत धर्म है ॥ १०५

मयैव[१२०] - मैं ही निश्चय रूप से - आदिम[१२१] नाम अनादि सनातन पुरुष परमात्मा आदिम नाम आदिम हूं पूर्ण निर्पक्ष रूप में परम पक्षी प्राण आदिम आदि मेरा नाम है मयैव[१२२] - मैं ही निश्चय स्वरूप से हौवा[१२३] नाम पक्ष रूप से पवन पक्षी प्राण की अर्द्ध गति अर्द्धाङ्गी अपान रूप माया राणी हौवा मोहनी नाम महिमा हूं कि जो अष्ट सिद्धि नाम के स्वरूप में प्रथम सिद्धि आत्मा नाम प्राण विधि स्वरूप का निषेध रूप में सप्त व्याहृति का एक ही सत्यं रूप में महिमा नाम है कि जो अपने उद्र में भूः १ भवः २ स्वः ३ महः ४ जनः ५ तपः ६ ये छ व्याहृति छ ही प्रकृति के छ नाम कामना[१] लघ्मा[२] प्राप्ति[३] गर्मा[४] विश्नेवा[५] ऐश्तनेवा[६] को अपने ही अन्तर रख आप माया रूप से आत्मा स्वरूप प्राण विधि का निषेध नाम अपान हूं मयैव[१२४] मैं ही निश्चय रूप स्वरूप में मूल कारण आकाश अनंत एक वस्तु रूप स्वरूप में पैगिम्ब्रं नुहम[१२५] - नाम में पै अक्षर से प्राक रूप आदि अंत का एक ही अनंत रूप आगे पीछे एक रस अगम नाम नव का एक ही (९) अंक रूप मूल बृक्ष बीज मूल नारायण नित्य उदित ॐ कार रूप आकाश स्वरूप महान अधिष्ठान देह रूपी अंक नाम नवका का चार पाद चार्वाक नाम एक नाम रूप में चार स्वरूप चारगति अर्थात हंसने रोने गाने चिल्लाने वाला मल्लाह मैं आपही दर्या यथा सागर समुद्र रूप आपही नवका नाम में ९ अंक का एक ही एक अंक रूप अंक स्वरूप में नुह नाम नारायण उदित आकाश निराकार पर्मेश्वर हूं और मयैव[१२६] मैं ही निश्चय रूप स्वरूप से मुसा[१२७] नाम से यहूदा रूप यथा वायु आकाश उदित आदित्य रूप में पूर्ण एक देह रूप संसार ब्रह्मांड विश्व चित्र रूप नाम में एक ही अक्षर एक ही आकार ॐ कार रूप में पूर्ण चार मात्रा रूप में ओ३म विधि रूप का निषेध रूप में (अँउम) रूप में अक्षर से मूल उ से उदित स अक्षर से सर्ग विन्दु अर्द्ध मात्रा तुर्यातीत का ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लक्ष और अ अक्षर रुपसे अ अक्षर नाम अ मात्रा का आकार पूर्ण ॐ कार एक रुप एक स्वरुप स्वतः सर्वाधार धारण रुप निर्धार यम नाम रुपसे यहूदाधर्म और नियम नाम रुपसे यहूदाकर्म अर्थात एक ही धर्म एक ही कर्म दश प्रणव का रुप अर्थात एक ही धर्म रुप में यम नामसे अहिंसा १ सत्यं २ अस्तेय ३ ब्रह्माचर्य्य ४ क्षमा ५ धृति ६ दया ७ आर्जव ८ मिताहार ९ शौच १० इन दश प्रणव अङ्ग में यम नाम धर्मका एक ही रुप और फिर इसी धर्म का जो एक ही कर्म नाम सें नियम नाम रुप है तिस नियम कर्म लक्ष का एक ही यम नाम रुप सें नियम कर्म के १० नाम रुप में अहिंसा का तप नाम १ सत्य का सन्तोष नाम २ अस्तेय का आस्तिक्य नाम ३ ब्रह्म आचर्य्य का नाम दान ४ क्षमा का नाम ईश्वर पूजन ५ धृति का नाम सिद्धांत वाक्य श्रवण ६ दया का नाम ह्री ७ आर्जव का नाम मति ८ मिताहार का नाम जप ९ - और शौच का नाम हुत १० ये यम नाम धर्म के कर्म रुप में नियम के १० अङ्ग एक ही प्रणव का रुप मौसा यथा मेरा एक ही संपूर्ण स्वरुप मुसा नाम आस्तिक धर्म यथा स्वार्थ रुप में नास्तिक सिद्ध धर्म नाम से निराशत रुप यथा निस्वार्थी निगम आस्तिक का ही नास्तिक नाम जो मुसा स्वरुप निस्वार्थ अग्नि रुप है वही यम नियम में एक ही धर्म एक ही कर्म रुप सें हूदा यहूद आदि ब्रह्म मूसा नाम चार्वाक निषेध नास्तिक नाम निस्वार्थी आस्तिक धर्म रुप आकर्षण स्वरुप तोर्यत पुस्तक नाम मूसा रुप तुर्यातीत स्वरुप यथा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्था से अतीत यथा असंग रुप स्वतः स्वतंत्र जो एक ही धर्म और एक ही कर्म रुप में मूसा नाम यहूदा रुप तोर्यत पुस्तक धर्म रुप जो तुर्यातीत नाम से एक ही अलक्ष त्रियातीत धर्म अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान तीनों काल में जो अकाल अतीत धर्म मूसा नाम है मैं हूं और मयैव[१२८] मैं ही निश्चय रुपसे ईसा[१२९] नाम रुप में अचल निस्तार रुप विष्णु अर्थात एक ही आदि अनंत सार अगम रुप स्वरुप में अष्ट प्राणायाम का एक स्वरुप यौह्ना मर्कस इंजील नाम चौरासी लाख आसनों में चौरासी और चौरासी में चार पाद और फिर चार में एक ही ॐ कार नाम नाद सिद्धासन एक अक्षर रुप श्रेष्ठ आसन ईसा पारस विष्णु नाम में जो बज्रासन १ और मुक्तासन २ और गुप्तासन ३ में एक ही सिद्ध नाम ईसा नाम सिद्धासन रुप सें बज्ररुप मुक्त रुप गुप्त रुप स्वरुप है इसी का सन्ध्या देवसन्ध्या रुप ईसा नाम विष्णु अचल स्वरुप अविनाशी रुप है कि जो एक ही असंग अवस्था मोक्ष रुप ईसा नाम है मैं हूं और मयैव[१३०] - मैं ही निश्चय रुप से जर्दशत[१३१] - नाम रुप में विधि विधना रुप बुद्धि का स्वरुप अग्नि ज्योति बज्र विजली रुप नाम में प्रसिद्ध नाम सत्य सूर्य्य का जो एक ही अकाल रुप जर्दशत नाम है मैं हूं और कन्फियुशश[१३२] नाम रुप में मैं ही गुप्त कान्ति शांति सरोवर चन्द्र महान महत्त्व मन मनु रुप हूं ॥ १०६ ॥

मयैव[१३३] - मैं ही निश्चय रुप से अहमद[१३४] [१३५] नाम अचल आकाश मूल देव अ उ म द अक्षर रुप में अमुद नाम एक अक्षर अर्थ रुप ॐ कार अद[१३५] नाम आदि अनादि रुप में एक ही वह अदिम नाम पुरुष ॐ कार रुप हूं कि मौहम्मदना[१३६] नाम रुपसे मेरा मेरा मेरा अचल आकाश रुप स्वरुप है कि जिस मूल स्वरुप मेरे का नहीं है आदि और अंत कोई क्योंकि मैं अनंत रुप अनाम स्वरुप हूं और मयैव[१३७] मैं ही निश्चय रुपसे दाऊद[१३८] नाम आदि अनंत अपूर्व अपार महान महादेव जीव पैटर नाम आदि देव हूं और मा[१३९] नाम अक्षर से मैं ही अर्थात मेरा ही मर्यम[१४०] - अक्षर नाम रुप से मुख्य अग्नि धर्म रुप में एक ही धर्म नाम मायारुप स्वरुप कुमारी मर्यम अर्थात अग्नि देवी धर्म माता है और मयैव[१४१] - मैं ही निश्चय स्वरुपसे याकूब[१४२] अक्षर नाम से विश्व देव सूर्य सूर्यात्मा तुर्यातीत धर्म [illegible] पुत्रों का पिता अनुरुद्र नाम रुद्री एक ही पिता हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

परा रूप में मीना नाम मच्छली का स्वरूप ईश्वर रूप यूनिस[१४३] नाम परा कृत रूप अगम स्वरूप परात्
प्राकृत बाणि अर्थात अनेक बाणी एक ही बाणी परा बाणि नाम और एक ही परा बाणि का यूनिस
नाम अगम स्वरूप आकाश रूप उदित अनंत नित्य सम साम नाम स्वरसा शब्द अशब्द रूप अक्षर
अगोचर मय गोचर अगोचर एक रूप आदि अंत का अनंत नाम यूनिस गमागम अगम अब्रह्म[१४४] नाम
प्रह्लाद सूर्य का एक अमर ब्रह्म रूप अग्नि और अग्नि शांत बर्षा रूप नाम अनाम एक ही रस नान कारण
कार्य अनेक नाम अनेक रूप एक स्वरूप गुरु[१४५] नाम आत्मा नन्द नित्यानन्द एक[१४६] कैवल्य रूप लो[१४७] अक्ष
रूप में अंत रहित आदि अंत का एक अनंत रूप मा[१४८] अक्षर रूप में मैं ही मैं आप ही मेरा ही यम[१४९] अक्ष
रूप में धर्म रूप लोमा गुरु नाम रूप से जो यम नाम धर्म रूप धर्म का यमराज स्वरूप है मैं हूं ॥ १०७ ॥

मयैव[१५०] - मैं ही निश्चय रूप से ऊम्मात[१५१] - नाम में मेरे मेरे ऊ अक्षर रूप में मेरा जो ॐ का रूप
तेज स्वरूप मौहम्मदना[१५२] - नाम अर्थ रूप में जो अनामय अचल स्वरूप का इमाम्मि[१५३] नाम
अकाल रूप अगवाणी पुरुष स्वरूप में अद्वय अनंत मेरा मेरा मेरा अंतियम[१५४] अर्थात एक
ॐ कार अक्षर का ९ अंक रूप में ९ का अर्थ विन्दु और विन्दु का रूप एक और एक का स्वरूप
विन्दु और १ और विन्दु का रूप १० कि जो आदि अंत का अनंत अंतिम १० अंक रूप अद्वय स्व
आगम[१५५] - स्वतः स्वयं नित्य ही एक रस अगम अगवा रूप तुर्यातीत स्वरूप है वही एक रस
अगम स्वरूप मौहम्मद[१५६] नाम मैं ही - अक्षर अर्थ में मेरा अनामय रूप से इक्कीसवां इमाम अर्थ
मैंहदी नाम और हरि अक्षर रूप स्वरूप है कि जो सद्गुरु प्रसादि ॐ कार ॐ कार ब्रह्मा उत्पत्तः ॐ कार
सब जुग एक रूप वेद निरमये ॐ कार शब्द हरि नाम चेत साखी अचल मर्यादा स्थित रूप है कारण
कि मैं ही ~~अमम~~ ऊम्मात मौहम्मदी का इक्कीसवां इमाम मौहम्मद मैंहदी नाम हरि ॐ कार हूं और मैं
ही मसिह[१५७] नाम मूल अनंत सर्वज्ञ आकाश रूप स्वरूप ईसा का अवतार हूं कि जो आकाश रूप स्वरूप में
आकाश से उत्रा हूं और मैं ही दः[१५८] दश के अङ्क रूप से अवतार[१५९] नाम दशवां अवतार मम[१६०] कलकी
नाम रूप से मैं ही कलकी नाम विष्णु का अवतार अर्थात पूर्ण कला कौशल अनंत प्रकाश अनंत
रूप मूलम मूल सब अवतारों पैम्बिरों इमामों देवी देवताओं का एक ही कलकी नाम निष्कल अवतार
अकलकी एक ही अगम कला लहर कान्ता आदि अंत का सार अनंत ज्योती मर्यादा कला धीश
कि जो माया सागर संसार रूप सृष्टि में कलि क नाम अनंत काल का कलकी नाम रूप अकाल
काल स्वरूप मैं ही अवतार इमाम ईसा कलकी रूप हूं ॥ १०८ ॥

## आइटा ।

हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र अपने भ्रम रहित अकाल अनामय स्वरूप के विषे में तू आप ही
आप इस प्रकार अपने रूप अपने स्वरूप के पथ पन्थ का आइय प्रकट करता है कि सार तो मैं
रूप स्वरूप का ऐसा है कि जिस प्रकार मैं ने शब्द अर्थ किया है किंतु विशेषता पर ऐसे अर्थ है

## १ - सार आइय सूत्र ५० अङ्क संख्या ।

(१) अंतरंग बहिरंग पूर्ण सब दिशा विदिशा देश काल में मैं हूं और मैं ही एक प्रकाश रूप रूपांत
रूप स्वरूप हूं और मैं ही भिन्न भिन्न अङ्गों करके एक अंग रूप हूं नाम रहित हूं तथा सर्वज्ञ रूप हूं
(२) सूर्यादि जैसे अनेक मंडल रूप में यद्यपि नाम एक ही नाम पूर्ण संसार स्वरूप जड़ चेतन रूप में मैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक अद्वैत रूप नारायण अर्थात केवल एक प्रणव रूप अक्षर नाम प्रणव अक्षर जो एक ही ब्रह्म है मैं हूं और मैं कैसा ब्रह्म हूं इस ब्रह्म रूप स्वरूप के प्रमाण में मेरी अपनी ब्रह्म प्रमाण ब्रह्मगीता ब्रह्म श्रुति ये है कि जो एक ही श्रुति ब्रह्म गीता के रूप में मेरा अद्वैत स्वरूप ब्रह्म विद्या ब्रह्म दर्शन और ब्रह्म नारायण प्रणव अक्षर नाम है और ऐसा दर्शन यथा ऐसा रूप है । ऐसा कहते हुए नू हे मनु इन्द्र इस प्रकार ब्रह्म के अर्थ रूप स्वरूप का अर्थ कहते हैं। 199

# ब्रह्मप्रमाणब्रह्मगीता

## ब्रह्मश्रुति

अर्थात

## ब्रह्मविद्या ब्रह्म दर्शनं

एकं ब्रह्मस्वरूपं।

ॐ सत्य हं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्ण पिङ्गलं अर्द्ध लिङ्गं त्रुर्जाक्षुं ब्रोपाक्षं विश्व ॐ रूपं ह्मेकलः

### पदच्छेदः शब्दार्थ

ॐ - प्रणव चार मात्रा अक्षर एक अक्षर चार्वाकः अनीश्वरवादी एक ही प्राक अक्षर ॐ कार रूप स्वरूप सत्य - नाम सत्य रूप सत् ही सत्य हं अक्षर अर्थ में एक ही बीज अक्षर आकाश स्वरूप परम नाम से जो पहिले से पहले प्राक अक्षर परा रूप अपार स्वरूप आदि अंत रहित अनंत प्राचीन मेरा अपूर्व रूप है उसी अपूर्व स्वरूप मेरे का परम अक्षर नाम में ब्रह्म - नाम है और इसी ब्रह्म नाम से पुरुषम अर्थात मैं आप ही पुरुष आदिम नाम रूप से कृष्ण नाम रूप में माया और माया शक्ति रूप में काया और काया रूप से अन्धकार रूप में काल और काल रूप में रात्री और रात्री रूप में अविद्या और अविद्या रूप में नाना रूप और नाना रूप में नाना आकृति प्रकृति परमाणु जड़ स्वरूप मौन रूप और पिङ्गलम नाम रूप में प्रकाश यथा माया भास का चेतन साक्षी प्रकाश स्वरूप माया और काया से रहित अन्धकार नाशक प्रकाशक रूप में काल रूप से अकाल और अकाल रूप में दिन और दिन रूप में विद्या और विद्या रूप में अनेक रूप एक ही देह एक ही स्वरूप और अनेक आकृति प्रकृति परमाणु जड रूप मौन स्वरूप एक ही पिङ्गल नाम सूर्य और सूर्य नाम स्वासा और स्वासा नाम साम और साम नाम हँसना रोना चिल्लाना गाना मेरा अर्द्ध - नाम एक ही बिन्दु का रूप है और (०) बिन्दु १ का आकार और ९ अंक का एक स्वरूप है कि जो असंख्य संख्या का एक ही अर्क नाम सूर्य अर्थात सूर्य और सूर्य का प्रकाश एक ही स्वरूप के दो योजन नाम दो स्वरूप किंतु इन दो स्वरूप अर्थात प्रकाश १ और आभास २ इन दोनों का एक ही लिङ्गम नाम अर्थात एक अक्षर ॐ कार रूप और इस एक अक्षर ॐ कार रूप के त्रुर्जाक्षुम - अक्षर रूप में त्रिम नाम त्रियादित्य अर्थात इच्छा त्रेय तीन सूर्य तीन अक्षर रूप अ-उ-म- और तीनों से अतीत बिन्दु रूप तुर्यातीत ब्रोपाक्षम नाम कि जो कहने ही कहने मात्र मेरा काल रूप में त्रिकाल रूप से अपरोक्ष स्वरूप है इसी अपरोक्ष स्वरूप का विश्वं नाम और विश्व का ब्रह्मांड स्वरूप और ब्रह्मांड का ॐ रूप और ॐ रूप का रूपम नाम से सब रूपों में मेरा ही रूप और इस पर भी अहम मैं एकलः अर्थात केवल एक ही ब्रह्म सत्य नाम सत्य स्वरूप हूं । सत्य हूं अभिप्राय ये है कि प्रत्यक्ष प्रमाण ब्रह्म प्रमाणों में मायादुर्घट इन्द्रजाल माया रूप में माया अपने को मायावी प्रत्यक्ष प्रमाण ब्रह्म प्रमाणों ब्रह्म से अन्य एक पदार्थ मान कर अविद्या का रूप धारण करती है जिसी समय मायावी अविद्या का रूप सर्व प्रकार के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मध्य

मयओं का मय कोश बन कर मायारूपी देह नगर के नाम रूप मान बड़ाई और अभिमान के माया कृत कल्पित
मात्र कार्यों को ही देखता है सो माया कृत माया कार्य मय कोश से नित्य ही यम रूप बन के स्वयं आते
२०० हैं और सत्य रूप का निश्चय न कर माया वी असत्य रूप आप अपने असत्य रूप को सत्य मान कर के
ब्रह्म सत्य स्वरूप को अपने से भिन्न प्रतीत करते और भिन्न प्रतीत कर देखते हैं। किंतु जब माया
रूप अभेद स्वरूप से प्रत्यक्ष प्रमाण ब्रह्म प्रमाण से आप अपने अप्रमाण स्वरूप को जान लेता है तो
उसे फिर किसी प्रकार का कोई माया वी भय नहीं रहता केवल स्वरूप ही स्वरूप "ॐ सत्यहं ब्रह्मे"
प्रत्यक्ष प्रमाण में दृष्टा भाव होता है सो जो ऐसा पुण्य और पाप रहित जीरण मरण रहित भ भव रूप
भविष्यामि नाम सर्व अधिकारी महाराजन महाराज आनंद घ्रुयम राज अभय रूप नित्य सुरव ज्ञानमय
ज्ञान स्वरूप हर्ष और शोक रहित है स्वयं मोक्ष और मोक्ष प्राप्त रूप है और किसी प्रकार से किसी प्रकार के कर्म
करने की जिस स्वरूप को अविश्यक्ता नहीं है कारणकि जो पुरुष आत्मा नाम कृष्ण और पिङ्गल दोनों नाम
रूप और स्वरूप में एक रस स्वयं स्वतंत्र और मोक्ष रूप है और आपही अपने स्वरूप को जानता है और
नाना प्रकार के कर्म करते हुए भी कर्म रहित कर्म सागर रूप है अकर्ता है निष्क्रिया है जगत रूप में जो एक
ही कार्य कारण रूप गुण स्वरूप प्रकृति रूप विलक्षण स्वरूप अनिर्वचनी नाम मोक्ष स्वरूप ग्रहण त्याग दोनों
से रहित स्वतः मोक्ष जप तप भजन यज्ञ दान पूजा तीर्थ यात्रा व्रत धाम दम वैराग्य विवेकादि
योग साधन वर्णाश्रम संन्यासादि जैसे सर्व पाखंडों से रहित शुद्ध चेतन निर्विकार निर्विकल्प
स्वरूप है और जो देश काल वस्तु और भेद से रहित है और अहंकार जिस के बाग़ का माली और
मन भौरंगी स्वांगधारी बुद्धि निश्चय रूप और विश्व विराट एक देह रूप में स्वांग धर है और जो
आपही चैतन्य स्वरूप एक आत्मा रूप विश्व विराट जैसे स्वांगधार के स्वांगों का साक्षी है और जो
साक्षी स्वरूप काल से रहित अकाल रूप है और जिस अकाल रूप में अहंकार माया रूप माली एक
ही आशोक वृक्ष की पान पुष्प डाली का एक ही चाहत उत्पन्न स्वरूप है और मन माया चिनारी उस
आशोक वृक्ष की पान पुष्प डाल्यों का एक ही तना महत्व रूप सर्व माया का आकृति आकर्षण
प्रकृति रूप में माया स्वांग स्वरूप है और बुद्धि निश्चय रूप में जो अखंड अनंत रूप है वही इस
आशोक वृक्ष में एक ही फल एक ही बीज एक ही वृक्ष परमप्रिये रूप है और ॐ कार अक्षर स्वरूप है
और जो ॐ कार अक्षर व्यापक ब्रह्म चैतन्य अंतर्यामी अर्द्धलिङ्ग नाम है और परमेश्वर नाम से
वही लिंक त्रुर्जाक्षुम तीन अक्षर अ-उ-म के रूप में सर्वत्र एक ही ब्रह्म नाम नाना प्रकार के लोक
अर्थात नाम रूप देहों में एक ही साक्षी रूप होके स्थित है और जो मेरे तेरे का बोधक एक ही वाचक
एक ही शब्द अर्थ रूप में ब्रोपाहम अक्षर रूप में देह रूप ब्रह्म लोक नाम से किसी प्रकार की आकृति
में तीन शरीर रूप से किसी शरीर रूप में कि जिसमें चैतन्यात्मा साक्षी रूप से पूर्ण है और जो कि
अपरोक्ष रूप में वाणी है और कोई रूप और कोई स्वरूप और कोई वस्तु जिस विश्व नाम रूप से
और ॐ स्वरूप से पृथक नहीं है और जो रूपम नाम से नाना प्रकार के रूपों में एक ही निश्चय
साक्षी चेतन तुर्यातीत तीन शरीरों से रहित हंस पक्षी नाम मोतियों का चुगने वाला पक्षी आप
ही बोलने वाला प्रत्यक्ष प्रमाण ब्रह्म प्रमाण रूप में जो ऽहमेकलः अक्षर शब्द रूप में मेरा एक ही
स्वरूप है वही स्वरूप ॐ हम ब्रह्म सत्यहं ब्रह्म ॐ तुं ॐ तुं (ॐ हं ॐ) मैं हूं-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(३) ब्रह्म विद्या रूपमें मैं आप ही पूर्णब्रह्म अचल ध्रुव रूप निश्चय स्वरूप ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र गङ्गा भारत ॐ कार रूप शरीर हूं कि जिस शरीर की अर्थात ॐ कार रूप की अर्द्ध मात्रा की अशून्य २०।
विन्दु निश्चय ध्रुव रूपमें मेरा ब्रह्म नाम ब्रह्म विद्या स्वरूप है कि जो स्वभाव के अनुकूल त्रिकोण रूपी
(८) तीन विन्दु के रूप से केन्द्र का स्वरूप और एक ही विन्दु के रूप में पूर्ण केन्द्र रूप 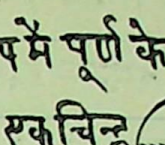 से एक ऐसा
अनेक विन्दुओं में ही 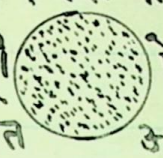 फैला हुआ महाकाश नाम इस प्रकार का एक चिन्ह 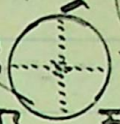 प्रकट रूप है
यही चिन्ह मेरा अद्वैत आनन्द स्वरूप है और पूर्ण सत्य स्वयं प्रकाश है और सर्व विद्याओं में जो एक
ही विद्या ब्रह्म विद्या है और उस ब्रह्म विद्या का जो सिद्धांत और उस सिद्धान्त का जो जो अवकाश है अर्थात
अनेक शरीर चांद के किरणें चान्दी की तारें पहाड़ी पहाड़ और नदी नालों के मेघ गत गति का रूप और
सागर समुद्र की लैहरें समुद्र का स्वरूप मैं आप ही आनंदमय मंद स्यन्द तथा शीतल और सुगन्धभरी
वायु रूप अवकाश हूं और मेरी ये आकृति ब्रह्म आकृतियाँ नाम रूप में सैर करने वाली जलमय जो
एक मूर्ति है यही ब्रह्म विद्या और मेरा ब्रह्म रूप है कि यह आकृति स्थिर रूप होने पर भी नित्य चलाय
मान रहती है सो ऐसा जो नारायण ब्रह्म एक रूप असंग स्वरूप है मैं हूं कि जिस विन्दु ध्रुव रूप में सर्वविश्व
अनेक नाम रूप से अंकहिद्र नद्र नाम रूप बना हुआ चक्कर खा रहा है ऐसा मैं एक नारायण ब्रह्म हूं और फिर

## शून्य ५१ का आशय ।

मैं ही ब्रह्मा मैं ही विष्णु और मैं ही प्रत्यक्ष प्रमाण से महेश अर्थात सदाशिव कल्याण रूप स्वरूप हूं
आदिम अनादिम रूप हूं। और मैं ही माया उमा नाम सर्व शक्ति हौवा स्त्री नाम रूपी नव प्रकृति आकृति
रूप हूं। और मैं ही गजानंद नाम अष्ट धा प्रकृति अष्ट कला नाम अष्ट सिद्धि चार हाथ एक सूंड वाली
श्वेत वर्ण एक दन्त आकृति अद्वैत पुरुषार्थ प्रकाश रूप ॐ कार रूप गणेश नाम अद्वैत ॐ कार
श्री गणपति महान मूर्ति हूं। और मैं ही यमराज्य रूप में धर्म का स्वरूप अद्वैत धर्म एक ही अर्थ मृत्यु
जीवन का जीवन लक्ष चैतन्य रूप ईश्वर जीवन ही जीवन साक्षी हूं। और मैं ही गुरु नाम सर्व प्रकार
की शिक्षा देने वालों में आप ही गुरु दीक्षा अर्थात गुरु शिक्षा और आप ही अपना गुरु हूं। कारणकि

## शून्य ५२ का आशय ।

मेरे तन स्वरूप में ये पूर्ण संसार सत्य स्वरूप जैसा नाम रूप वाला अनेक मूर्तियों का विचित्र जैसा
रिपु रूप माया स्वरूप अनेक नाम रूप रखते हुए भी नाम रूप वाला नहीं है क्योंकि माया रूप जगत एक
विष्णु माया मूर्ति स्वरूप मेरे तेज स्वरूप में स्वरूप के आभास के तुल्य है जैसे कि शरीर स्थित शरीर आभास
अर्थात छाया शरीर में गुप्त रहता है इसी प्रकार संसार आभास रूप से मेरे तेज स्वरूप में गुप्त रहता है और ये
तेज स्वरूप के प्रकाशिक रूप स्वरूप से ही प्रकाशित होता है कि जो नाम रूप वही अनामय स्वरूप है
क्योंकि-

## शून्य ५३ का आशय।

जिस प्रकार आकाश स्थित सूर्य चन्द्र तारागणादि आकाश स्थित होने पर भी आकाश को निम्न
न होकर के आपुस्में अपनी ही आकर्षण शक्ति द्वारा अर्थात समुन्नता धर्म अद्वैत धर्म ध्रुव धर्म
रूप द्वारा निश्चार्थ रहकर एक दूसरे को खेंचते और निश्चार्थ धर्म का पालन करते हुए और एक
दूसरे का भार सहारते हुए अचल चलायमान रूप से अचल चाल रखते हुए स्थित हैं इसी प्रकार
से असंग रूप मेरे में माया आपसे आप स्थित है कि कोई वस्तु न होने पर भी प्रकट भांति से संसार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

माया रूप प्रतीत होता है कि प्रकट प्रतीत में जो दृश्य मान होता है सब कुछ होने पर भी नहीं है क्योंकि प्रकट प्रतीत अनित्य है केवल एक स्वरूप ही जो इस प्रकट प्रतीत का कारण कार्य रूप है नित्य है और जो नित्य है वही मैं हूं कि नित्य वायु तुल्य अत्यंत सूक्ष्म रूप स्वरूप से दिशा विदिशा में सर्वत्र अचल भर्पूर रूप से स्वतः स्वतंत्र एक रस महान सूक्ष्म रूप में प्रमाण रहित अप्रमाण रूप से एक ही मुख्य अनामय स्वरूप अर्थात सब मैं ही मैं पूर्ण रूप परि पूर्ण स्वरूप हूं नाम रूप रस रूप स्वरूप में रिपुगण नाम माया के विषे माया रूप आप से आप इसी प्रकार कि जैसे ३० भांति की प्रकृति का एक ही मायावी रूप है और उसी मायावी रूप से सकल संसार और संसार के पदार्थ उत्पन्न होते और नष्ट होते देखे जाते हैं ये सब माया स्वरूप निश्चय रूप में माया ही के दुर्घट रूप हैं कि आप से आप मेरे तेज स्वरूप के आभास से प्रकाशित होने पर भी इस माया रूपी संसार में इसी प्रकार से नहीं हैं कि जस प्रकार छाया पुरुष कुछ वस्तु नहीं है। और

## शूत्र ५४ का आशय।

(१) नहीं हैं अनामय स्वरूप मेरे में नाम रूप माया के विषय कर्म रूप से कर्मों के फल भोग रूप में कर्म फल भोग का कोई अंश कारण कि माया रूपी सृष्टि कि जो माया माया भोग रूप है मेरे शुद्ध स्वरूप में नहीं है
(२) मैं बन्धन रहित साक्षात स्वतः स्वतंत्र हूं मैं धनंजय अर्थात धन केन्द्र यथा धनुष्यऽर्के नाम एक ही अर्जुन अनंत गुणी विचित्र धर्म रूप बुद्ध धर्म अद्वैत धर्म बृहस्पती जय रूप स्वरूप हूं
(३) मैं निराशत रूप असंग अवस्था स्वरूप हूं मैं आशा रहित पूर्ण स्थित एक स्वतः स्वतंत्र स्वरूप हूं मैं इच्छा कामनाओं से रहित निश्चार्थी श्चार्थ रहित हूं मैं स्वयं तेज तेजस्वी तेज देव तेज स्वरूप हूं
(४) मैं स्वतः ही कर्म केवल कर्म अर्थात कर्म नाम में कर्म ही कर्म स्वयं कर्म कर्म रूप कार्य में कारण कर्म अर्थात मैं आप ही कर्म नाम कर्म आकृति यथा कर्म मय मायामय कर्म मूर्ति हूं और मैं ही कारण कर्म रूप हूं
(५) मैं कार्य कारण कर्म रूप में माया से स्वतंत्र कर्म फल भोग से स्वतंत्र अभय रूप कर्म स्वामी कर्म हूं
(६) मैं कर्मसु रूप में निरञ्जन निराकार निर्लेप निराधार निगम निष्क्रिया निराचिंत रूप स्वरूप हूं
(७) मैं आप ही कर्म और आप ही कर्म परमात्मा कर्म नाम कर्म कनक रणधीर कर्म नाम कर्म श्रुति हूं

## शूत्र ५५ का आशय।

(१) मेरे क्रतुः कर्म नाम में जो कर्म का कृत्युग अर्थात सत्य स्वरूप में सत्य कर्म का सतोगुण नाम है इसी सतोगुण सत्युग नाम का महत्व अर्थात मन नाम है और इसी महत्व अर्थात मन का अन्तः करण नाम है और इसी अंतः करण का निरञ्जन निराकार निर्लेप निष्क्रिया निर्चिंत रूप नाम है और इसी निर्चिंत रूप का आभास माया का रूप सृष्टि का स्वरूप है सो मेरे कर्म नारायाण नाम का जो मेरे सत्य स्वरूप में सत्यरूप के सतोगुणी महत्व अर्थात मन अन्तः करण का आभास माया का रूप सृष्टि संसार का अनादि शांत स्वरूप है इसी अनादि शांत माया सृष्टि का नाम यज्ञः है कि जो माया की विष्णु माया मूर्ति है
(२) यज्ञः नाम यज धातु का एक वाचक शब्द है कि जिसके अर्थ अक्षर बीज रूप में आकाश ज्योति यथा सृष्टि प्रकाश रूप के हैं सो माया का नाम सृष्टि और सृष्टि का नाम यज्ञः और यज्ञ का नाम एक ही विष्णु माया मूर्ति और विष्णु माया मूर्ति का नाम विराट है और विराट आत्म सूर्य आभास के चित्र का नाम है कि प्रकट प्रतीत में प्रतीत रूप है और इस प्रतीत रूप का नाम ही संसार और संसार का नाम यज्ञः है और यज्ञः नाम विराट विश्व चित्र का है और विराट विश्व चित्र मेरे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे विष्णुपद तेज रूप स्वरूप के महत्व का आभास है कि जो विष्णु रूप में माया का अनादि शांत स्वरूप है और इसी का नाम यज्ञः है और यज्ञः का प्रकट प्रतीत में प्रसिद्ध नाम संसार सृष्टि और जगत है और ये जगत विष्णु माया मूर्ति है कि जो विश्व विराट के रूप में एक ही रूप विश्वस्वरूप यज्ञः नाम रूप है। अन्यत अर्थ नहीं २०३

(३) यज्ञः नाम सृष्टि जो माया स्वरूप है इसका स्वधा नाम रूप है स्वधा रुई के सूत की अत्यंत परबल सुनि हुई रस्सी यथा डोर का नाम है कि जो समता रूप में एक रूप एक स्वरूप है सो यज्ञः नाम गृहस्थ समता का है

(४) मेरा जो अचल आकाश मूल स्वरूप है इसी का औषधम नाम है कि जो मेरे ही तेज रूप का धुन्धकार अर्थात मेरी ऊषणता अग्नि रूप ज्वाला का आकाश रूप धुवें सम धुवाँ रूप है और धुवाँ माया रूप है तो आकाश माया रूप का नाम माया धुन्धकार धूं धूं का है शब्दार्थ में शब्द का नाम यज्ञः यथा यज्ञ है

(५) मंत्रः का शब्द ममत्रः है ये मेरे तीन स्वरूप को त्रिलोकी नाम का एक नाम है कि जो ॐ रूप में एक अक्षर रूप है इसी एक अक्षर रूप का मंत्रः मंत्र अर्थात अ उ म अक्षर रूप में मेरा ममत्रः एक सत्य स्वरूप है कि जिस सत्य स्वरूप का कारण सूक्ष्म स्थूल तीन प्रकार के सत रज तम तीन आभास रूप में तीन प्रकार से मेरा मेरे सत्य स्वरूप के सतोगुण अक्षर रूप का जो आभास है अर्थात यज्ञ नाम रूप से सृष्टि का संसार का चमत्कार रूप है इसी मायावी चत्मकार आभास का नाम यज्ञ है इसके अन्य यज्ञ का कोई अर्थ नहीं

(६) मैं निश्चय रूप से आज्यम अर्थात अद्वैत धर्म रूप हूं अग्नि ज्योति तेज रूप स्वरूप हूं - और

(७) मैं ही हुनम नाम रूप में होनी का रूप होनी अर्थात होने यथा उपजने वाली माया का तत स्वरूप केवल हुन अर्थात अहुत नाम निष्काम कर्म विक्रम नाम आदि आकाश उदित तत् सूर्य एक ही आदित्य हूं कारण कि हुतम नाम प्रकाश प्रह्लाद विक्रम निष्काम कर्म रूप सूर्य का है कि जो अनादि आदित्य के रूप से यज्ञ का मूल कारण स्वरूप स्वतः युग स्वरूप है और आदि यज्ञः प्रकाश रूप है सो मैं सूर्य का प्रकाश स्वरूप हूं और हुत रूप से अहुत नाम विक्रम अर्थात कर्म रहित आदित्य हूं। और

## शूत्र ५६ का आशय ।

(१) पिता रूप से मैं ही अ[1] स[2] य[3] तीन अक्षर रूप में अनादि सिद्ध - श्रुति शिरोमणि गुप्त मणि चन्द्रमणि चिंतामणि - यज्ञ नाम माया रूपी संसार का अद्वय धर्म रूप हूं और अद्वय धर्म रूप से मैं आप ही जगतः पिता अर्थात माया रूपी यज्ञ नाम संसार का पिता पवित्र पितृ और माता नाम महत्व मित्र हूं।

(२) मैं ही धाता नाम से नाना प्रकार की आकृति मान सृष्टि का आदिम देव धारण धारी कैवल्य रूप हूं

(३) मैं ही पितामहः नाम से पिता का भी पिता अचल पित्र महान नाम रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्म आकृति प्रमाण रहित अप्रमाण पितामहः नाम एक ही अपूर्व अर्थात श्रेष्ठ पिता हूं -

(४) वेद्यम वेद रूप में मैं ही साक्षात वेद्य अर्थात ज्ञान स्वरूप में विधि रूप विधना ब्रह्मा ब्रह्म बुद्धि हूं

(५) पवित्रम नाम सूक्ष्म से सूक्ष्म शरीर रूप आकृति में मैं ही प्रणव स्फुरण बाणी का रूप स्वरूप हूं

(६) ओंकार नाम में ॐ रूप स्वरूप से मैं ही अनादि वेद ॐ कार रूप अ-उ-म- तीन अक्षर में एक ॐ कार स्वरूप अक्षर अर्थात अ अक्षर से ऋक नाम अपार रूप और उ अक्षर से यजु नाम सर्व निष्काम कर्म उपकार प्रकाश रूप और म अक्षर से सम साम नाम लय स्वरूप यथा यज्ञः नाम माया रूप में स्वासा ध्वनि रूप स्वरूप जो ॐ कार नाम से एक ही ॐ कार नाम पवित्र वेद रूप है वही हों हूं शब्द अर्थ रूप में मैं ही निश्चय पूर्वक आपम त्रिलोकी नाम नारायण आदि ॐ का वेद हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(७) च अक्षर रूपमें चैतन्य साक्षी प्रणव कल्याणस्वरूप ॐ कार रूप विष्णु अर्थात विष्णु माया मूर्ति माया रूप सृष्टि संसार में प्रकाश रूप नारायण वीरों में वीर पूरि पूर्ण पवित्र अनादि अकाल एक ही चेतन देव पराकृत ॐ कार वेद रूप स्वरूप में मैं ही पूर्ण वेद पूर्ण रूप पूर्ण शुद्ध चैतन्य वेद हूं और

२०५

## शूत्र ५८ का आशय ।

(१) गतिः नाम से मैं ही गतिः रूप अर्थात गतिः नाम घड़ी और घड़ी नाम कला और कला नाम पल विपल सुपल और सुपल नाम स्वासा चाल और स्वासा चाल नाम नेत्र झपौनी खेल अर्थात लौकिक परलौकिक चाल व्यापार रूप से नाम रूप में भाद्रपद मास की रात बादल और आकाश बिजली का स्वर खं घन्घोर घटा का स्वरूप संसार की नाना प्रकार की आकृतियों का एक रूप पूर्ण कर्म पूर्ण काम पूर्ण सुख पूर्ण उद्योगी रूप हूं और गतिः नाम में मैं ही अक्षय धर्मधनी एक ही कलि कल की नारायण शुद्ध अधिष्ठान तीन रूप एक स्वरूप अर्जुन नाम आप ही आप माया अलाप स्त्री पुरुष एक रूप दीप दीपान्तर दीपक रूप धुन्द और चमत्कार का एक ही अचल प्रकाश रूप स्वयं दृष्य द्रष्टा अपार उपकारी मैकारी याज्ञवल्कब्य ऋषि मैत्रि गार्गी एक नाम लक्ष्मी सरस्वती सावित्रि का एक स्वरूप अचल आगवा आगवाणी धर्म रूप धनी स्वरूप धर्म धनी धनुष्यधारी इन्द्र परस्था नरेश अर्जुन नाम सर्व अधिकारी बब्रबाहनी कुशा आसनी हवन खण्डन रूप तुर्यातीत बाल युवा वृद्ध तीनो अवस्थाओं से अतीत नाम रूपी देह से अतीत अनामय रूप हूं

(२) भर्ता नाम रूप में मैं ही भर्ता भरतार भरत नाम भरती भरत का भांड़ा भारत नाम विश्वामित्र का एक रूप एक स्वरूप आकाश नाम रूप से एक ही भांडे के स्वरूप में सर्व प्रकार भार और आकारों का एक ही आकार निराकार आकाश रूप स्वरूप में सर्व आधीश अधि पति नाम परं पति परि पूर्ण रूप भर्ता भरतार हूं

(३) प्रभुः नाम से मैं ही सत्य रूप सत्य स्वरूप परा प्रकृति सरस्वती नाम से पृथिवी का पूर्ण पूर्ण रूप और लक्ष्मी देवी का विचित्र स्वरूप सावित्रि नाम में सर्व प्रकार के रस नाम और रूप स्वरूप हूं

(४) साक्षी शब्द अक्षर नाम में मैं ही साक्षी निराकार रूप स्वरूप दृश्य अदृश्य चित चेतन हूं और

(५) निवासः शब्द अक्षर रूप में अंतरंग बहिरंग नित्य एक रस रहने वाला पूर्ण स्थिर अधिष्ठान भी मैं हूं

(६) शरणम शब्द रूप में अक्षरम नाम अक्षर शुद्ध शरोमणि शाश्वत और अकाल नाम नारायण अनंत रूप अनंत स्वरूप भी मैं हूं कि स्वयं मोक्ष रूप मोक्ष स्वरूप निश्शरणम यथा आशा रहित हूं

(७) सुहृत शब्द रूप में- सर्वज्ञ उत्कृष्ट आकाशवत अग्नि तत आकृति प्रेम नाम रूप में मैं आप ही अग्नि रूपी प्रेम और आप ही प्रेम का प्रेमी अर्थात मैं ही प्रेम और मैं ही प्रेम का परम प्रिया रूप हूं

(८) प्रभवः - शब्द नाम रूप में मैं ही परा प्रकृति नाम रूप में परंपरा रूप अपार रूप स्वरूप से पृथिवी और जल का एक रूप अग्नि स्वरूप प्रकाश रूप और शान्ति स्वरूप क्षिमा शील भर्ता प्रभूः प्रभवः साक्षी रूप हूं अर्थात प्रभुः नाम रूप में मैं ही क्षिमा और उपकार रूप से परा प्रकृति पृथिवी रूप हूं कि अपार रूप में अनेक प्रकार के जीव नाम रूप और अनेक प्रकार के पदार्थ रूप होने पर भी एक ही प्रभवः नाम प्रयोजन रहित हूं स्वच्छ और मधुर हूं शुद्ध और सुख रूप हूं अग्नि रूप स्वरूप हूं और निग्न निर्गम रूप हूं। और

(९) प्रलयः अक्षर शब्द रूप में परा रूपी पृथिवी अग्नि बीज वायु रूप सर्वज्ञ साकार अर्थात गोचर अगोचर रूप में दिन रात सत रूप एक स्वरूप रात्री तम पूर्ण अन्धकार अविद्या माया का अनंत रूप दिन के प्रकाश मय स्वरूप में तीन लय स्वरूप स्वयं प्रलयः नाम रूप अप्रलयः रूप अर्थात प्रलयः रहित अप्रलयः अपार मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

(१०) स्थानम शब्द अक्षर रूपमें मैं ही सत्य आनंद स्थित आदि निराकार मूल सत्यं नाम स्वतः केवल अधिष्ठान अर्थात आपही स्थिावर स्थित स्थान अपना आपही सत्यही सत्य अधिष्ठान रूप स्थान हूं - और

(११) निधानम - शब्द अक्षर रूपमें मैं ही निरागम निर्गमण निसंकोच निर्भय नाथ महानाथ महान स्वरूप हूं और २०८

(१२) बीजम - बीज शब्द अक्षर रूपमें मैं ही सूक्ष्मसे सूक्ष्म आकृति वियान (नाम) अनंत ज्योति सर्व सृष्टि बीज हूं

(१३) अव्ययम शब्द अक्षर रूपमें मैं ही आदि अनंत अविनाशी विनाश रहित वायु वायु मूल रूप तत मूल स्वरूप नित्यही गोचर अगोर रूपमें निराकार स्वरूप विक्रम नाम कर्म रहित अनादि एकही आदित्य हूं

## सूत्र ५८ का आशय ।

(१) तपाम्यहम - शब्द अक्षर रूपमें मैं ही गुप्त बिजली का तत स्वरूप आकर्षण रूपी अग्नि शक्ति में त अक्षर से तेज प अक्षर से पूर्ण अ अक्षर से अपार म अक्षर से मूलय अक्षर से वायु रूप ह अक्षर से आकाश स्वरूप म अक्षर से मैं आपही महत्व रूप आकृति आकर्षण अग्नि शक्ति हूं कि गुप्त भाव में अत्यंत प्रचंड अग्नि का फुंकार मार स्वासा खेंच रूप हूं कि आकृति नाम में आकृति आकर्षण और आकर्षण नाम में आकाश और आकाश नाम में वायु और वायु नाम में अग्नि और अग्नि नाम में जल नारायण मेरा नाम रूप है कि जो तपाम्यहम शब्द अक्षर के रूपसे तप नाम तेज और अमि नाम अमृत और ह्म नाम में मैं आपही महत्व मूल आकाश एक असंग आकर्षण गुप्त आकृति अनंत प्राक मूर्ति रूप हूं । और

(२) हंवर्षम शब्द अक्षर के रूपमें मैं ही आकर्षण आकृति आकाश वरुणदेव रूप में वर्षा वर्षा का रूप षम नाम साम और साम नाम स्वासा और स्वासा नाम तप और तप नाम अमि अमरस रूप हूं और

(३) निगृह्णाम्य - शब्द अक्षर अर्थ में मैं ही आकृषण रूप शक्ति आकृति निग्रहण नाम से ग्रहण रहित अमि नाम रूप में अमृत अमर नाम अमर ब्रह्म जान ही जान यथा जीव ही जीव एकही आत्मा सदैव हूं

(४) उत्मृजामि शब्द अक्षर अर्थ में उत्तम १ अमर २ अज ३ अमि ४ अक्षर शब्द में उत्तम का अर्थ आकर्षण आकृति संयोग रूप और अमर का अर्थ आकर्षण परित्याग आकर्षण ही आकर्षण शक्ति रूप और अज का अर्थ अजन्य अविनाशी रूप और अमि का अर्थ रस रूप शक्ति कि जिस शक्ति द्वारा चर अचर (नामरूप) वाले भिन्न भिन्न अनेक रस रूप वाले उत्तम रूप उत्पन्न हो प्रकट होते रहते हैं वही (वही) उत्मृजामि अर्थात अजाम्य अजामि जन्म रहित मैं हूं क्योंकि उत्मृजामि के जो चार शब्द उमा रूप हैं उत्तम से तम एक और अज से रज २ और अमि से सत् ३ का अटल परिवर्तन रूप हैं इन्ही का शिव ब्रह्मा और विष्णु नाम है और इन्ही तीन नाम रूप शक्ति का अपर ब्रह्म नाम है कि जो पर ब्रह्म चौथे अमर नाम की एकही माया रूप में परा नाम माया शक्ति है कि जिस परा नाम माया से अपरा माया रूप में सर्व माया अर्थात सृष्टि उत्पन्न रूप है सो इस प्रकार मैं ही अगोचर गोचर रूप अमर ब्रह्म उत्मृजामि नाम हूं।

(५) च अक्षर रूप में मैं ही चेतन सर्वज्ञ वीर भद्र पुरुष सत चित आनंद रूप स्वरूप हूं और अमृतं अमृतों में अमृत चैतन्य और निश्चय रूप निश्चय स्वरूप हूं अर्थात मैं ही अमर ब्रह्म हूं

(६) मृत्युः शब्द अक्षर रूप में मिश्री का नाम मिस्तान और अर्थ मिश्री में मिश्रित रूप एक स्वरूप का मृत्युः नाम है जो काल का रूप क्रम का चक्र है उसी अवस्था की दो गति हो नाम का एक नाम अक्षर रूप में मृत्युः है और इसी का दूसरा नाम शिव दर्शन है और इसी का नाम शिव दर्शन चक्र है और शिव दर्शन चक्र मेरे एकही स्वरूप एकही रूप का नाम है कि जो काल रहित और कर्म रहित मेरा एकही अनामय स्वरूप है और इस रूपमें

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

206

इसीस्वरूप में प्रकट प्रतीत से जो भिन्न देहात्र नाम रूप वाली वस्तु प्रत्यक्ष प्रमाण में प्रतीत रूप हैं इन्हीं सर्व प्रकार की प्रकट प्रतीत आकृति अर्थात सुर्तों शक्लों का नाम काल है कालकारूप है और इसमें कर्म का चक्र उस मायाक्रिया का नाम है कि जिस क्रिया द्वारा अकाल रूप से काल का आभास इसी प्रकार प्रकट होता है कि जिस प्रकार पुरुषरूप से धूपके प्रकाश में विदून किसी प्रकार की क्रिया यथा विना कर्म किये ही आप से आप छाया उत्पन्न हो प्रतीत होने लगता है ऐसे मैं ही शिवदर्शन रूप मृत्युः नाम अकाल चक्र हूं कैवल्य मृत्युः रूप हूं। अभिप्राय ये है कि काल रूप प्रकट प्रतीत कर्म संज्ञा में मैं पूर्ण गृहस्थ रूप में संन्यस्त स्वरूप सृष्टि का मृत्युः रूप हूं कि गृहस्थ नाम तृष्टि के अन्य मैं ही संन्यस्थ यथा असंग स्वरूप हूं मैं किसी प्रकार से गृहस्थाश्रम युक्त नहीं हूं। मैं मृत्युः नाम में लहु मांस हाड चाम माया रूप आभास आकृति से भिन्न ईश्वर ही ईश्वर रूप प्राप्त स्वरूप रूप हूं मैं अकाल कोश स्वरूप हूं मैं सुख स्वरूप हूं मैं माया आभास सृष्टि संसार से कि जो एक अयोग्य काल का रूप है कर्म का चक्र गृहस्थ नाम गरास रूप है मैं इस गरास नाम माया का पुरुष हूं कि जिस का आभास माया मेरे अकाल पुरुष स्वरूप को छाया है और इसी छाया का नाम अविद्या गृहस्थ शिक्षा है कि जो बुद्धि हीन भ्रम रूप है कि कुछ न होने पर भी प्रकट प्रतीत में मेरे मृत्युः नाम अर्थात अमृत्वः अकाल स्वरूप का ये ऐसा ही कालचक्र रूप आभास है जैसे कि छाया बिन कर्म के आप से आप है सो मृत्युः नाम से मैं आप ही अकाल रूप अणि का स्वरूप कणी का रूप माया कर्म काल चक्र तोड़ माया को जलाने वाली अग्नि स्वभाव के लोहे को पिघला देने वाली और अग्नि रूप बना देने वाली अग्नि एक ही नाम मृत्युः नाम मैं हूं। आशय ये है कि जिस प्रकार अग्नि जब तक लोहे को पिघला नहीं देती तब तक लोहा लोहा ही बना रहता है किंतु जब अग्नि उस्को पिघला देती है तब लोहा भी लोहा न रहकर अग्नि ही अग्नि रूप हो रहता है इसी प्रकार जब तक मृत्युः नाम अनामय अकाल रूप माया रूपी जो आभास देह नाम रूप है अपने मृत्युः रूप से अकाल रूप से उसको जला नहीं लेता तब तक माया आभास देह नाम रूप जैसी आकृति में काल का रूप कर्म का चक्र बना रहता है यथा माया रूप माया में लिप्त रहकर माया को नहीं छोड़ता क्योंकि माया मेरे अकाल रूप में इसी प्रकार प्रवेश रूप कर रहती है कि जिस प्रकार लोहे में अग्नि अपना प्रवेश करके लोहे को अग्नि का रूप देती है इसी प्रकार माया काल रूप से अकाल स्वरूप में लीन रहती है। और मेरे मृत्यु नाम अकाल रूप का पीछा नहीं छोड़ती सो मृत्युः क्या है माया का परम प्रिये प्रेम पति रूप है कि जो प्रेम से घायल आदि अंत का मेरा पुरुष नाम आदि एक अनंत स्वरूप है प्राक रूप है माया से अतीत स्वरूप है कि जो शौलम शौल शौल का शिर एक मेरा ऐसा अकाल स्वरूप है कि जिस प्रकार शूलि का सिरा अर्थात शूलि के ऊपर उस की चोटी कि जिस को देखने से अत्यंत दुःख दाई माया रूप को माया रूपी रूप की मृत्युः अर्थात मौत दिखाई देती है। किंतु वास्तु में शूलि की नोक सर्वज्ञ मेरा अद्वैत अकाल रूप है कि जो माया रहित जीवन जीवन जीवन स्वरूप सो वास्तव में मृत्युः जिस का नाम है उसी का अर्थ जी उठना और अकाल रूप नारायण बन जाना है अर्थात सीप से मोती का निकल कर फिर सीप में न जाना और अद्वैत रूप से अपने तेज की आप ही अपने को ज्योति और प्रकाश दिखाना है सो इस प्रकार की मृत्युः नाम रूप मौत में जो मेरा अकाल नाम नारायण ईश्वर रूप ईश्वर स्वरूप अनामय अर्जुन रूप है वही अर्जुन नाम असंग [illegible] कैवल्य मृत्यु नाम मृत्यु मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(८) च अक्षर अर्थ रूप में मैं ही चैतन्य देव सत नाम सत्यदेव सतों में सत्य और ततों में तत् हूं
(९) सच्चाहमर्जुन - शब्द अक्षर रूप में मैं ही अ स च च अ हं म - अक्षर रूप हूं अर्जुन स्वरूप हूं कि अ अक्षर रूप से आदि ॐ कार रूप हूं स से सर्वज्ञ च से चैतन्य फिर च से चैतन्य वीर अ से आदिम असंग अपरोक्ष रूप ह से आकाश गगन स्वरूप निसंग धनुष्य अर्क रूप म अक्षर से मूल कारण मृत्युः नाम कालरूप और कर्मचक्र का लय स्थान अर्जुन नाम असंग कलाधारी मैं हूं क्योंकि मेरे अर्जुन रूप में मृत्युः अक्षा स्वरूप में क्षर रूप से नहीं है इसलिये मृत्युः अक्षर पदार्थ में सत्ता प्राप्त अर्जुन नाम कृष्णा कालरहित अकाल सदाशिव नाम सदाशिव शोदर्शन चक्र मैं हूं कि जिस मेरे भेद को मैं ही भली प्रकार जानता हूं कि मैं अर्जुन नाम स्वतः स्वतंत्र स्वरूप हूं

## शूत्र ५९ का आशय ।

(१) नमे - अक्षर रूप में निर्णय नारायण मेरा एक नाम है कि जिस नाम के अर्थ को नहीं है जानने के योग्य माया और माया के कार्य कारण रूप माया स्वरूप भेद को अभेद रूप से नारायण निर्णय अर्थ कि मैं माया नहीं हूं और माया के विषे देह नाम रूप भी मैं नहीं हूं कोई भेद किसी भेद रूप से मैं विद्युः नाग शिव अभेद रूप हूं
(२) सुरगणाः अक्षर शब्द रूप में श्रुति नाम आकृति का रूप प्रत्यक्ष प्रमाण में आप ही अपना प्रमाण सगुण रूप मैं हूं कि जिस अपने प्रमाण की अपेक्षा में अन्य प्रमाणों की कोई भी आवश्यक्ता नहीं है कारण ये है कि सुरगणाः नाम ही साकार रूप इन्द्र देव का है कि जो माया प्रपंच रूप में मनु राज आकृति का एक स्वरूप पंच ब्रह्म नाम रूप होना है इसी स्वरूप का नाम माया रूप में कि जो शरोमणि है सारों में सार है साकार नारायण मेरा नाम है।
(३) प्रभवम - अक्षर शब्द रूप में परा नाम रस मूलप्रकृति का परंपरा से अपार रूप स्वरूप में मैं ही एक प्रभा रूप हूं मैं ही प्रकाश रूप हूं मैं ही अग्नि रूप हूं और मैं ही शाश्वत शांत शुद्ध स्वरूप हूं और मैं ही परमात्मा हूं
(४) न महर्षयः अक्षर शब्द रूप में मैं नारायण नहीं हूं लीन नाशी माया का रूप जड़ पदार्थ माया माया कार्य भृगु आदि के नाम से पृथिवी आदि जैसी रूपवान महान ऋषि रूप में किसी प्रकार की कोई एक भी महान ऋषि रूप नाम आकृति कारण कि ऋषि नाम ही जड वस्तु आकृति माया कार्य कारण का है कि जो दृष्टि इन्द्र जाल की भांति एक मिथ्या आकृति प्रकट प्रतीत रूप है कि जो सुरगणाः नाम रूप में सगुण रूप से प्रतीत होते हुए अपना कोई नाम रूप रखती है किंतु ये नाम रूप आकृति अपने लिये ही एक धोका रूप है कि आप ही अभेद रूप से अपने स्वरूप के जान लेने का हेतु नहीं है कारण कि इसके आदि अंत का केवल अध्यान रूप मैं हूं
(५) कैवल्य मैं ही आदि देव अनादि परमात्मा सत्य रूप १ कर्म रूप २ काल रूप ३ युग रूप ४ विचार रूप ५ साक्षी रूप ६ रस रूप ७ ऋतु रूप ८ इन आठों प्राकृत शब्द प्रपंच रूप में केवल एक अनामय रूप से ही मैं एक ही नाग नाम गजदन्त अंग रूप हूं कि सत्य नाम में सत्य ही सत्य अकाल रूप योग रहित दृष्टा रूप साक्षी स्वरूप एक ही अनादि आदिम पुरुष निश्चय रूप अनंत आकाशवत हूं
(६) देवा नाम अक्षर रूप में - अ आ अं अः चार अक्षर से एक ॐ कार आदि आदित्य अगम अपार नारायण एक अद्वय रूप मूलस्वरूप प्रकृति आधार महर्षीणाम नाना प्रकार की आकृति लोक लोकान नाम गोल मोल रूप अनेक मूर्तियों आकृतियों का एक ही स्वरूप च अक्षर अर्थ में चैतन्य देव मैं हूं
(७) सर्वज्ञः शब्द अक्षर रूप में सर्व साम एक ही रूप एक ही स्वरूप स र अ श ञ अक्षर रूप में सत्य अग्नि अज आदि शांत रूप शांत स्वरूप सत्य ही सत्य सर्व सत्ता नाम सर्वज्ञः एक ही स्वरूप मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

## सूक्त ६० का आशय ।

मर्हषयः शब्द अक्षर अर्थ में म ह र ष य स अक्षर का अर्थ मूल आकाश अग्नि आकाश वायु का रूप सत्ता सार एक ही स्वरूप जान रूप अप्रमाण (रूप प्रमाण से रहित) जड़ वस्तु आकृति नाम पदार्थ में माया कार्य कारण का एक रूप एक सत्ता है कि जो सर्वत्र एक प्रवेश रूप है इसी परिवर्तन प्रवेशता का नाम जड़ रूप में मर्हषयः अर्थात सप्त सप्त नाम रूप से मर्हषयः का नाम मूलस्थ जड़ वस्तु कला सप्त कला सात नाम रूप से सप्त व्याहृतियों के रूप में एक ही स्वरूप का - भूः १ भुवः २ स्वः ३ महः ४ जनः ५ तपः ६ सत्यं ७ सात नाम आकृतियों में भृगु आदिक नाम से मर्हषयः नाम जड़ वस्तु आकृति पदार्थ के महान नाम रूप से मर्हषयः नाम है कि जिस एक ही मर्हषयः नाम के सात नाम हैं और वे सात नाम जड़ रूप वस्तु में सप्त ऋषि करके इस प्रकार सप्त महान ऋषि महऋषि कहे जाते हैं कि प्रथम भृगु ऋषि है वे पृथिवी का नाम है - दूसरा पुलह ऋषि है वे जल का नाम है तीसरा अत्रि ऋषि है वे अग्नि का नाम है चौथा मरीचि ऋषि है वे वायु का नाम है पांचवा पुलस्त्य ऋषि है वे आकाश का नाम है छटा क्रतु ऋषि है इसी का महत्व अर्थात मन नाम है इसी का यज्ञः नाम है इसी का विष्णु नाम है जैसे शूक्त २२ में वर्णन है सातवे ऋषि का वसिष्ठ नाम है कि जो बुद्धि का स्वरूप है और इसी स्वरूप का सत्यं नाम है कि जो एक ही मुख्य बुद्धि दृ बुद्ध मर्हषयः नाम पूर्व शब्द अक्षर रूप में अपूर्व मेरा स्वरूप है कि जो आगे से पहले से प्रथम से कि जिस का कोई भी आदि और अन्त नहीं है कारण कि अप्रमाण प्राक रूप मेरे में सत्यं स्वरूप वसिष्ठ रूप के अन्दर महत्व का अधिष्ठान है कि जो अनादि सृष्टि का रूप है और इसी मुख्य सत्यं स्वरूप वसिष्ठ नाम मेरे नाम का दूसरा नाम चत्वारः है कि जिस के चार अ अक्षर रूप में च त व र अ स अक्षरों का एक ही रूप में च से चेतन चित १ त से तत महत्व अर्थात अहंकार २ व से वरुण जल र से अग्नि वायु का रूप और वायु आकाश का स्वरूप और आकाश मन का रूप ३ और अ अक्षर से आदि ओंकार विधि विधना बुद्धि का वसिष्ठ रूप ४ स अक्षर से सत्यं नाम में चित अहंकार बुद्धि मन चारों का एक रूप चार नाम से चार मनुवों का स्वरूप मनवः नाम चार अक्षर म न व स के रूप में महत्व नारायण वसिष्ठ सत्यं १ रूप में म अक्षर का क अक्षर रूप में कान्ता कल्कि नाम का मनु मन है और न अक्षर का द अक्षर के रूप में दिव्य नाम नारायण का मनु बुद्धि है और व अक्षर का त अक्षर के रूप में तत नाम का मनु अहंकार वसिष्ठ वायु रूप कृष्ण कृष्णी नाम माया अर्थात शक्ति है और स अक्षर के रूप में सत् सत्यं नाम का मनु चित है कि जिनके कल्युग द्वापर त्रेता सत्युग पृथक पृथक काल के चार नाम हैं इस प्रकार सात ऋषि चार मनु एकादश रुद्र नाम से माया माया रूप में मर्हषयः नाम का एक अर्थ रूप हैं कि जो तथा शब्द अक्षर के रूप में चार अक्षर रूप त त अ अ के अक्षर अर्थ से एक ही तत् अगम आदित्य जो मेरा रूप है उसी तत् अगम आदि आदित्य स्वरूप मेरे में यह मर्हषयः नाम चारों मनु सातों ऋषि माया शक्ति नाम रूप से लीन रहकर मद्भावा शब्द अक्षर अर्थ रूप से इस प्रकार मेरे आदित्य भावी भविष्यत वर्तमान स्वरूप का एक ही प्रकार से सर्वदृष्टा प्रपंच महत्व दिव्य म अक्षर नाम में २७ प्रकार की आदि वसिष्ठ अनादि आदित्य प्रकृतियों के रूप हैं कि जो नक्षत्र शब्द अक्षर रूप में मेरा नारायण अक्षर तुर्यातीत एक नाम है इसी तुर्यातीत मेरे दिव्य म अक्षर नाम का नाम भावी है और इसी भावी का नाम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

उदिन नाम में महर्षयः नाम है और इसी महर्षयः नाम का मानसाः नाम रूप स्वरूप में साकार नाम रूप में संसार सृष्टि साकार नारायण नाम है कि जो मानसाः अक्षा रूप में मेरा ही एक मायावी ॥ महर्षयः आदि न सत्यं आदित्य आदि सत्यं ॥ मानसाः श्रुति प्रमाण सत्य स्वरूप है कि जिस स्वरूप श्रुति का यही एक आशय है कि महर्षयः नाम रूप में जो साकार सृष्टि अनेक नाम रूपों में अनादि आदि प्रतीत होती है यही एक माया का रूप है कि जो मेरे आदि आदित्य सत्य स्वरूप में सत्य नहीं क्योंकि सत्य स्वरूप में ही आदि आदित्य सत्यं नाम हूं कि जिस सत्यं नाम में मेरा जो एक स्वरूप है उसी स्वरूप का अकाल नारायण वसिष्ठ एक नाम है कि जिस वसिष्ठ नाम में जानाः शब्द अक्षा रूप से ज्योति जीव लाईट रोशनी आदि तत आदित्य एक ही उसका सत्यं सत्य नाम है इसके अन्य येषाम अक्षा शब्द रूप में वायु धर्म रूप एक ही सुरत आकृति में आदि मूल जड़ नाम एक रूप मेरा है और लोक शब्द अक्षा रूप में अन्ध्यारा उज्यारा करास रूप में एक ही स्वरूप में प्रकट रूप और गुप्त रूप में भिन्न भिन्न प्रतीत की आकृतियों के नाम रूप कि जितनी आकृतियां हैं इमाः अक्षा शब्द रूप अर्थ में यह सब मेरा ही एक अनंतमय आदि सत्य स्वरूप एक रूप है कि जो प्रजाः शब्द अक्षा अर्थ रूप में गुप्त रूप से एक ही परा पूर्ण अग्नि दाह रूप में मेरा ही प्रकाश स्वरूप है और प्रकट प्रतीत में मायावी रूप से एक ही रूप स्वरूप के सृष्टि उत्पन्न रूप में कि जिस माया से संसार की उत्पत्ति है उस उत्पत्य माया रूप में मेरे एक अनामय आदि आदित्य सत्य स्वरूप के अनंत नाम और अनंत रूप हैं

## सूत्र ६१ का आशय ।

(१) आदित्या नाम शब्द अक्षा रूप से सूर्यों के मध्य आदि सूर्य नाम में ही नारायण नाम आदि अदित्य हूं

(२) अग्नि शब्द अक्षा रूप में मैं ही आकाश अचल एक मूल स्वरूप हूं

(३) विष्णु नाम में मैं ही एक आदि सूर्य हूं और ज्योतिषाम शब्द अक्षा रूप में मेरा ही प्रकाश रूप में प्रकाश नाम ज्योति स्वरूप है कि जिसका दूसरा नाम रविः अर्थात सत्य सूर्य है और तीसरा नाम अंशुमान अर्थात नारायण नाम के एक ही नाम से मेरा व्यापक प्रकाश रूप है कि जिस व्यापक प्रकाश रूप में मेरा ही मरीचि नाम रूप में वायु स्वरूप में स्वासा ध्वनि रूप है और प्राण नाम में गरुड़ इस नाम का नाम है और मरुत नाम शब्द अक्षा अर्थ में मेरा वायु के अर्थ में दूसरा नाम अपान है कि जिस का अरुण नाम है इसलिये मैं विष्णु नाम नारायण में आप ही आदि सूर्य में ही भविष्यत का एक वर्तमान रूप अचल सूर्य हूं और मैं ही शशी नाम चन्द्र हूं आशय ये है कि मैं ही उज्यारा और मैं ही अन्ध्यारा एक ही स्वरूप सर्व रूपों का एक ही रूप एक विष्णु नाम हूं कि जो विधि नाम ब्रह्मा और विद्युः नाम शिव का एक ही अन्तर्यामी मेरा एक अरूप रूप है कि जिस अपने अरूप रूप को मैं आप ही संसार प्रपंच में विष्णु भगवान कहता हूं और एक समता रूप में अपने इस अरूप रूप का सहस्र नाग वायु के हृदय पर शयन करता हुआ चित्र रचता हूं कारण ये है कि मैं नक्षत्रा नाम शब्द अक्षा रूप में निराकार नारायण तुर्यातीत ॐ कार एक ही अक्षा रूप विष्णु हूं

## सूत्र ६२ का आशय ।

(१) वेदा नाम शब्द अक्षा अर्थ में मेरा नाम सामवेदः अर्थात आदि स्वासा ध्वनि जान नाम एक ही वेद व्यास राजेन्द्र अलक्ष लक्ष वेद बुद्धि है और देवा नाम में मैं आप ही दिक नाम आकाश एक नारायण देव हूं

(२) वासवः शब्द अक्षा रूप में मैं आप ही रस रूप से वासुदेव नाम में अग्नि दाह का केवल स्वरूप हूं

(३) इंद्रियाणाम शब्द अर्थ रूप में इंद्रियों के मध्य मेरा नाम इन्द्र अर्थात मन मनु मनुइन्द्र है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(४) च अक्षर रूपमें मैं ही चैतन्य देव सर्व भूत नाम रूप की आकृतियों में अनादि सिद्ध चेतनता का स्वरूप हूं चैतन्य रूपसे भरपूर चेतनता का अलक्ष अक्षर आगम कोश चैतन्य ही चैतन्य एक स्वरूप हूं

## शूत्र ६३ का आशय ।

२१० (१) रुद्राणाम शब्द अक्षर अर्थ में - अग्नि रूपसे सर्व व्यापक सर्व अंतर्यामि उदित असंग रूप स्वरूप मैं हूं
(२) शंकर शब्द अक्षर अर्थ में शंका रहित निर्शंका अग्नि बीज गुप्त अग्नि बिजली कर्मसु कारण कार्य एक रूप एक स्वरूप संशय शंका भक्षण अहारी रिपुधारी सर्पादि भूशनी बलवन्त बन्वारी आक धतूरण भक्ष्याकारी कष्टान कष्ट सहकारी ग्रिवर ग्रिधारी गौपाल गोबरधन धारी कृष्ण मुरारी दूधाधारी केवल पार्वती रुक्मण पति शिव अविनाशी अजीत रूप ब्रह्मा विष्णु इन्द्र नाम नारायण सत्य दीक्षा सत्य ही सत्य सत्यमार्ग तेजोमय युधिष्टर शत्रु संहार स्म्पूर्ण कामनाओं का एक ही काम रूपमें काम प्राप्त स्वरूप सम्पूर्ण धरामंडलों का एक ही भव रूप शिव सूतजी राम एक नाम मुनिश्रेष्ट डंड कमण्डल एक रूप प्रमाण में प्रणाम रहित दुःख त्याग प्रसन्न स्वरूप कृतार्थ रूप सिद्ध कार्य समुद्र रूप विधि अगस्त्य नाम शुक्ल पक्ष चौदस अष्टमी एकादशी सोम वार आर्द्रा नक्षत्र एक रूप कार्य आरंभण स्वरूप वायु श्रेष्ट रुद्र अग्नि परमेश्वर निरंतर जगत का नियंता सर्व श्रेष्ट ब्रह्मादिकों से परे शिव नाम ब्रह्मा विष्णु अग्नि वायु सब का एक उत्पन्न रूप निर्ध्यान सदाशिव नाम पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश का मात्रा रहित एक ही अहंकार लय अधिष्टान और अहंकार का एक ही महतत्व लय अधिष्टान और महतत्व का एक ही माया लय रूप अधिष्टान और माया का पति और माया के आधार भूतों का एक ही लय अधिष्टान मैं परमात्मा अमृत बीज एक ही सकल विपरीत विस्तार कर्म का देहोत्पति विषय में प्रवृत मैं एक ही दिव्य देह रूप परमात्मा अमृत बीज प्राक नारायण जीवन ही जीवन अमृत ही अमृत दिव्य शुद्ध स्वरूप शंकर हूं और शंकर शब्द अर्थ रूप में मैं ही "याते अग्निय ज्ञियातुनः" रूप में ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय ज्ञात का केवल वराहमणि नाम एक गुप्त रूप हूं महान पति स्वरूप हूं और मैं ही स्वतः मुक्त मोक्ष स्वरूप हूं और
(क) मैं शंकर नाम वेद हूं मैं ही वेद का सार हूं मैं प्रत्यक्ष प्रमाण रूप से ही वेद और वेद उपाङ्ग हूं
(ख) मैं ही पाशुपत अस्त्र परम प्रिया परम शूत्र परम प्रिया प्राप्त रूप प्राप्त स्वरूप सागरशोष संहार रूप हूं
(ग) मैं ही गिरिराज्य पूरिराज्य गोदावरी पिवित्र आश्रम में पवत्र राम और पवित्र चन्द्र हूं अर्थात सूर्य और चन्द्र गोदावर अनंत रूप अनंत स्वरूप में मेरा ही नाम है और मैं ही रुद्राक्ष नाम रूपमें रुद्र एक ही अक्षर ॐ कार शिवलिंक नाम में एक ही लिंक अ अकार अक्षर पवित्र गोदावर अज दशरथ भस्म रूप एक ही मास एक ही फल एक ही पुष्प एक ही पात अहार एक ही जल पान एक ही पवन सुत पवन आहारी अञ्जनी पुत्र शांत इन्द्रिजीत इन्द्र मन महेश हूं
(घ) मैं ही हृदय कमल रूप एक ही विराजमान स्वरूप अर्द्धांग में पार्वती का धारण रूप अर्थात एक अपार अपूर्व अनिर्वचनिय वर्तमान तुर्यातीत अतीत रूप चतुर्भुजं त्रिनयनं अर्थात चार हाथ तीन नेत्र बिजली समान जटा नाम जटाई एक ही करस करकस रूप कोटान कोटि सूर्यों का एक स्वरूप प्रकाशमान करोडों चन्द्रमाओं के समान शीतल पंचमुखी त्रिशूलाधारी शंकर हूं
(ङ) मैं ही नित्य अविनाशी शुद्ध अक्ष्य निर्विकार एक रूप प्रलय कालिक समुद्र के समान भयंकर शब्द प्रकट ध्वीन रूप मंद्राचल नाम अचल मन्द्रि त्रिपुरासुर तीन अपूर्व स्वर दृष्टा शंकर हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(च) मैं महान तेजः पुञ्ज राम चन्द्र का उपस्थित दशों दिशा एक रूप द्विज तिथि ऋषि द्विज चन्द्र आदित्यों का आदित्य एक ही महावीर नाम विक्रम आदित्य अर्थात कर्म रहित सूर्य धनुष्य अर्क बाण दिव्य मित्रा नाम मित्रान मित्र आग्नेयास्त्र वरुणास्त्र सोमास्त्र मोहनास्त्र सूर्यास्त्र पर्वनास्त्र सुदर्शनास्त्र महा चक्र अकाल चक्र वैष्णवास्त्र चैतन्य रुद्रास्त्र पाशुपतास्त्र ब्रह्मास्त्र कुबेरास्त्र बज्रास्त्र वायव्यास्त्र परशुरामास्त्र शस्त्र नीन शंकर हूं (छ) मैं ही शंकर नाम मनु अग्नि वरुण का एक रूप सूर्य सिद्ध चैतन्य आदि आकाश वामदेव नाम कनक अक्षरी ऋषि रश्मि विप्रः अर्थात वृषभ नाम आत्मा अनाम आत्मा दर्शन वृषभ नाम दर्शन शंकर हूं (ज) मैं ही सम्पूर्ण अलंकारों से युक्त बिजली के समान नील कण्ठ गरुड नाम पक्षी पवन रूप सहस्र बाहु में उच्च दश बाहु रूप दिक नाम युवा रूप पुरुषों में श्रेष्ठ सच्चिदानन्द स्वरूप गरुड वाहनी शंख चक्र गदा और पद्म धारी नील मेघ के समान शरीरधारी बिजली के समान कान्ति माम लक्ष्मी से युक्त एकाग्र चित रुद्राक्ष रूप ॐ कार अक्षर स्वरूप जनार्दन नाम विष्णु गौरा पति त्रिलोकी का स्वामी शिव शंकर हूं (झ) मैं ही हंस वाहनी चतुर्मुखी अष्टभुजी ब्रह्मा - अ उ म अ चार अक्षर रूप में एक ही रुद्र सूत रूप अक्षर सरस्वती पति वेद विधि नाम विधना ब्रह्मा का रूप ॐ कार अक्षर वेद एक वेद स्वरूप महेश शंकर हूं (ञ) श्वेता श्वेतदन्त एकदन्त अद्भय रूप पर्वत के समान मूषक वाहनी ॐ कार रूपी गणेश और मयूर वाहनी कार्तिकेय शिव पुत्र महाकाल और चण्डेश्वर कालाग्नि रुद्र शिव नाम ॐ कार रूप शंकर हूं (ट) दिव्य रुद्र शंकर नाम में मेरा ही त्रियम्बकं यजामहे नाम है » अर्थात भूत भविष्यत वर्त्तमान तीनों काल में तीन धर्म रूप में जो मेरा एक ही धर्म अकाल यज्ञः स्वरूप अज नाम विष्णु मेरा आकाश वत एक रूप है वही मैं हूं (ठ) आकाश में शब्द बाणी वायु में शब्द स्पर्श अग्नि में शब्द स्पर्श रूप जल में शब्द स्पर्श रूप रस और पृथिवी में शब्द स्पर्श रूप रस गंध ३० प्रकार की प्रकृति का एक रूप नारद नाम नाद्य विधि से नाद नाम नारद नृत्य स्वरूप रम्भादिक नाम अप्सरा प्रकृतियों का झुण्ड चित्ररथादि गन्धर्वों का समूह अश्वतर नाग नाम एक ही नाम शंकर राम रूप कृतार्थ चन्द्र स्वरूप विजय भारत शिक्षा नाम शिव शंकर दिव्य राधौ श्री सूत एक ही सुवर्ण का रथ चक्र स्थित चार घोड़ों से शोभित वृषभ ध्वजा चिन्ह रूप हस्तिनी कल्पवृक्ष नाम शंकर मैं हूं (ड) उग्र अस्त्र एक ही शस्त्र दिव्य धनुष्य का बाण अक्षय तरकस रूप जगत का नाश करने वाला त्रिलोकी में अपूर्व एक ही अर्क बाण विष्णु का नारायणास्त्र इन्द्र का ऐन्द्रास्त्र ब्रह्मा का ब्रह्मदण्डास्त्र अग्नि का आग्नेयास्त्र यमराज का याम्यास्त्र निर्ऋति का मोहनास्त्र वरुण का वरुणास्त्र वायु का वायव्यास्त्र कुबेर का सौम्यास्त्र ईशान का रुद्रास्त्र सूर्य का सौरास्त्र चन्द्र का सोमवास्त्र विश्वेदेवा नाम का पार्वनास्त्र और आठों वसुओं का वासवास्त्र सब अस्त्र शस्त्र का एक रूप मैं ही शंका शंकर नाम हूं (ढ) मैं ही शंकर सुव्रत किष्किंधा नाम कारण कर्म रूप वानर भयंकर युद्ध में विजय प्राप्त रूप दुर्जन सिंह अर्जुन नाम रूप सागर सेतु बंध अचल रूप अनेक पर्वत स्वरूप रावण महारावण महारावण त्रिकालिक अवस्था का काल अकाल स्वरूप सिवा सती जानकी शान्ति स्वरूप शिव शंकर नाम कल्याण स्वरूप शंकर हूं (ण) विशेष शंकर शब्द अर्थ रूप में मैं आपदी संसार उत्पन्न रूप का आदि स्वरूप हूं मैं ही इसका पालन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रुप और मैं ही इसका संहार कर्ता हूं और मैं ही अपने जगत रुपकी मृत्युका भी मृत्यु अर्थात अमृत तत्वस्वरुप हूं
मैं ही चराचर जगत का भक्षण करने वाला रुप हूं मैं ही पांच महाभूत चौदह भुवन सात समुद्र सात दीप
२१२ नवखंड परा पर्वत नाग नाम पुरातन माया में सृष्टिसे पहले ही अपूर्व परानाम पराशर परशुराम मैं ही
था वर्तमान में भी मैं ही हूं और अंत में भी मैं ही एक रुप एक स्वरुप रहोंगा क्योंकि लोक नाम रुप में
स्वाय मेरे और कहीं कुछ नहीं है मैं ही सत्यस्वरुप माया के विकार से रहित हूं सब प्रकार शांत हूं
मैं ही दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय तीन अग्नि स्वरुप हूं गौ गुरुमें गुरुता बाणी बाणी का रहस्य सर्व
से ज्येष्ठ सर्व श्रेष्ठ जगत पति तेज स्वरुप हूं मैं ही स्वयंभू मनु हूं मैं ही वर्तमान भविष्यामी हूं
(३) च अक्षर शब्द अर्थ में मैं ही चैतन्य देव मैं ही आदि अनादि सिद्ध सर्व लयकारी अविनाशी पूर्ण
विस्तार वाला यक्ष नाम रुप से आकाश स्वरुप दिक नाम का यक्ष प्रजापति रुप में हिरण्यगर्भ नारायण मैं हूं
(४) रक्षसाम शब्द अक्षर अर्थ में कुवेर नाम रक्षणी नारायण अर्थात आदि अक्षर आदिम मेरा ही एक नाम है और
मेरे पूर्ण ब्रह्म ॐ कार रुपमें मेरा जो कुवेर देवता रुप है और इस रुप का जो स्वरुप है वही भूमण्डल के चित्र रुपमें
मेरी भूमंडल जैसी अनेक मण्डलों के रुपमें एक ही स्थूल मूर्ति है और इसप्रकार जो नाम रुप वाली वस्तु है
वही चाहे वह पृथिवी पर है या अन्य किसी सूर्यादि मंडल पर है वही आकाश स्थित भिन्न भिन्न रुपों में एक एक
नाम रुप करके पृथिवी मण्डल का रुप है और वही पृथिवी रुप गोल आकृति एक आदिम नाम रुपमें मेरा ही एक
कुवेर नाम रुप है कि कोई आकृति मेरे इस रुप से भिन्न नहीं है कारण ये है कि मेरे कूवेर नाम रुप स्वरुप की जो एक ही
विचित्र शक्ति है यही मेरी शक्ति सूक्ष्म रुप आकृति में परमाणुवों का समूह है कि देखने में नहिं आती है
(५) वसूनाम वासना के रुप में मैं सर्प रुप से आपही अपने आप को खाने वाला वसू अर्थात सर्प हूं
(६) पावकः अक्षर शब्द अर्थ में अर्थात नाग भूजंग आदि रुप में अर्थात वासना रुपी सर्प रुप में तथा
आशा तृष्णा रुपी जैसे अग्नि रुप में मैं आप ही अग्नि रुप अग्नि ही अग्नि भिषमासुर नाम रुप से आपही
अपने सिर पर हाथ रख कर अपने को आशा तृष्णा की अग्नि में भस्म कर देने वाला भिषमासुर पावकः मैं हूं
(७) च अक्षर शब्द रुप में चपला रुप बिजली का स्वरुप चैतन्य देव नाम चैतन्य बीर मैं हूं
(८) अस्मि शब्द अक्षर अर्थ रुप में अनादि अनंत सिद्ध शरोमणिः स्वतंत्र मूल अक्षर मूल मैं हूं
(९) मेरुः शब्द अक्षर अर्थ में मैं ही एक अग्नि उद्रपात्र सर्वज्ञ उद्र स्वरुप पात्र ध्रुव नाम ध्रुव मेरुः मैं हूं
(१०) शिखरिणाम शब्द अक्षर अर्थ में शुद्ध शाश्वत नाम रुप पर्वतों में शिखर नाम अचल पर्वत एक ही
महान पर्वत के नाम से मुख्य पर्वत रुप में सुमेरु पर्वत यथा स्वयं सोने का पर्वत आदि आकाश मूल मैं हूं

## शूत्र ६४ का आश्य ।

(१) पुरोधसाम - शब्द अक्षर अर्थ में पुरोहित नाम अपने पूर्ण हित्कारी प्रेमयों में मैं आप ही स्वसा रुप
में अपना पूर्ण हित्कारी पुरोहित हूं और च अक्षर रुप में साक्षात्कार से चिरणजीव हूं चैतन्य हूं अमर हूं
(२) मुख्यम शब्द अक्षर अर्थ में मुख्य द्रिव्य दिव्य रुप हूं और माम अक्षर अर्थ में मेरा आदि ही मेरा आदि अर्थ रुप है
(३) विधिपार्थ शब्द अक्षर अर्थ में मेरा ब्रह्म ब्रह्मा रुप है और मेरा यही स्वरुप सर्व पदार्थों की उत्पन्न करने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वाली शक्ति अनिर्वचनिय नाम में माया शक्ति सरस्वती नाम है और इसी शक्ति का नाम कर्म यथा पुरुषार्थ है और इसी का परा शक्ति स्वरुप और परा पराक्रम गतिः में परा अर्थ तथा परं परमार्थ नाम है और इसी परम परमार्थ शक्ति का नाम विधि पार्थ नाम में पूर्ण विधि पूर्ण ज्ञान रुप ब्रह्म ब्रह्मा मेरा ही एक नाम है कि जिस ब्रह्म ब्रह्मा नाम के ब्रह्म अन्तर्य दर्शन रुप में हिरण्य गर्भ नाम है और इसी हिरण्य गर्भ नाम में मेरा जो सूक्ष्म शरीर तत है उसी का महेश्व नाम है और उसी महेश्व नाम का बृहस्पति नाम शब्द अक्षर बृहस्पति मेरा एक नाम है और मेरे इसी बृहस्पति नाम में मेरा ब्रह्म ब्रह्मा ब्रह्म विद्या नाम है कि जो ब्रह्म विद्या रुप में मैं आप ही अपना पूर्ण हितकारी प्रेम पूर्वक बुद्धि रुप में अचल बृहस्पति विधि पार्थ नाम रुप में मैं आप ही अपना अचलान अचल पुरोहित बृहस्पति हूं कि जिस मेरे बृहस्पति नाम के विशेष अर्थ इस प्रकार पर हैं।

## मेरे बृहस्पती नाम के अर्थ

और

ब्रह्म अन्तर्य दर्शन हिरण्य गर्भ रुप में मेरा ब्रह्म ब्रह्मा विष्णु महेश्व रुप में मेरा एक ही ब्रह्म विद्या रुप और उस ब्रह्म विद्या रुप के सूक्ष्म शरीर तत में विधि पार्थ अक्षा आरुप

अर्थात

मेरा आदि अनादि सनातन स्वरुप।

॥ हों हूं ॥

ॐ आदि सनातनः बृहस्पतिमादिमात्मेः ॥ १ ॥

ॐ - ॐ - ॐ हं ज्ञात्वा सर्वे भूतानाम्मोक्तारं सर्वलोक महिं महेश्वरं ब्रह्मा ब्रह्मे ॐ कारं विष्णु ॥

अर्थ - हों हूं अक्षर अर्थ में मैं ही हूं ॐ कार एक अक्षर रुप चार्वाक अनीश्वर वादी नास्तिक नाम आस्तिक स्वरुप आदि नारायण प्राकृत रुप सनातनः सनातन नाम में आदि अंत रहित अनंत सर्वज्ञ बृहस्पति नाम रुप में बुद्धि बुद्ध देव आदिम नाम में मैं एक ही श्रेष्ठ सर्वज्ञ अंतर्यामी आदनीय आदि आत्मा हूं॥ १ ॥

ॐ - ॐ - ॐ चार नाद चार स्वर चार ध्वनि हं अक्षर में मेरा ही एक आकाश रुप आकाश शरीर चार नाद चार स्वर चार ध्वनि को ज्ञात्वा अक्षर अर्थ में जानने वाला देखने वाला सुनने वाला मेरा गगन स्वरुप सर्व अक्षर अर्थ में सब का ए अक्षर अर्थ में एक अर्थात भूतानाम शब्द अक्षर रुप में सूक्ष्म शरीर तत अंतरंग बहिरंग अन्दर बाहर प्रकट और गुप्त में भूत नाम दृष्टा और अदृष्ट प्रपंच प्राण अपान का स्वरुप अभोक्त शब्द अक्षर अर्थ में एक अभोक्त स्वरुप है कि जो सब भोगों से रहित है और आरम शब्द अक्षर अर्थ में यही आदि अनादि अग्नि बीज रुप में मेरा अग्नि बिजली स्वरुप है कि जो सर्वलोक महिं शब्द अक्षर रुप अर्थ में पूर्ण एक ही शरीर नाम रुप में अपरोक्ष रुप में मेरा ही एक निश्चय स्वरुप है और इसी निश्चय स्वरुप से महेश्वरम शब्द अक्षर अर्थ में मैं ही एक गगन मय गगन अग्नि ईश्वर आदि अनादि अपना अपने अन्य और कोई ईश्वर न रखने वाला मैं सूक्ष्म शरीर तत बिजली रुप में बिजली स्वरुप में ब्रह्मानाम शब्द अक्षर अर्थ में विधि पार्थ अक्षर नाम में बृहस्पति अर्थात केवल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Foundation USA

२५ बुद्धि ही बुद्धि अंतर्य दर्शन में हिरण्य गर्भ रूप इसी के ब्रह्मे अक्षार अर्थ में एक ब्रह्म के ब्रह्म विद्या रूप में मेरा एको ब्रह्मे जो केवल बुद्धि नाम बृहस्पती है इसी का ॐ आक्षार अर्थ में अकारम शब्द अक्षा अर्थ में मेरा जो आकार है वह एक ही अ आकार अक्षा है और इसी अ आकार अक्षा का एक ही नाम विष्णु आदि ॐ कार आदि रहित अ कार अक्षा में चतुर्भुजी विष्णु चारपाद चार नाद चार स्वर चार ध्वनि का एक अन्तर्यामी निराकार स्वरूप विधि पार्थ नाम है कि जो बुद्धि नाम में केवल एकही बृहस्पती मेरा स्वरूप है इसी एक बृहस्पति बुद्धि रूप के सूक्ष्म शरीर नत में १६ नाम हैं मन १ तन्मात्रा ५ प्राण ५ महाभूत ५ कि यह १६ बुद्धि सहित एक ही लिंक अ के अकार रूप में मेरे अस्तित्व स्वरूप का १६ तत्व रूपी अर्द्ध लिंकम नाम एक ही विधि पार्थ बृहस्पति नाम बुद्ध और बुद्धि नाम ब्रह्म विद्या विष्णु विष ही विष नाना विषय उदित उदय आदि आदित्य एक रूप है और मेरा ये रूप बृहस्पति महेश्वर स्वरूप डूबते त्रिते सर्व काल में बक्री मार्गी उदय अस्त रूप में अपने ही अधिष्ठान पर बृहस्पती मण्डल की भांति कि जो प्रकट प्रतीत में दृष्टि विकार नेत्रों में उदय अस्त और बक्री मार्गी होते हुए प्रतीत होती है किंतु वह किसी काल भी अपने अधिष्ठान को नहीं छोड़ती सर्वदा अपने ही एक अचल स्थान पर स्थित रहती है इसी प्रकार आवा गमन जीरण मरण अविद्या रूपी मिथ्या प्रतीत के प्रतीत होने पर भी मैं बृहस्पति महेश्वर अपने ही परम पद निज अस्थान पर विधि पार्थ नाम के एकही रूप एक ही स्वरूप से अचल स्थित रहकर किसी काल भी किसी प्रकार की कोई देह धारण नहीं करता और कभी किसी देह नाम रूप में न आते हुए मैं आप ही अपना अचल पुरोहित पूर्ण नाम और पूर्ण स्वरूप एक ही अचल पर पद स्थित विधि पार्थ नाम बृहस्पति बुद्धि बुद्ध ब्रह्मा एक ही एक ब्रह्म ॐ अ अकार विष्णु अक्षार रूप पुरोहित सेनानी नाम शब्द अक्षार अर्थ में मैं ही सर्व अधिकारी नामों में सेनापति रूप स्वरूप से अचल हेम हा किनी नाम सरस्वती पति मद मात्सर्य नाम रूप डाकिनी एक ही मूल प्रकृति का नाम एक रूप चार काम अर्थात राकिनी नाम रूप में अहंकार षट विकार नाशक स्वरूप १ और लाकिनी नाम रूप से संहार पालन में समर्थ स्वरूप २ और काकिनी नाम इन्द्रियजित वचन रचना में समर्थ ३ और शाकनी नाम सर्व हिंकारी रोग शोक रहित ४ और चारों नामों का एक ही स्कंद नाम है शब्द अक्षर बीज का लक्षार्थ रूप जो स्वामि कारतिक नाम में आकाश एक अचल स्वरूप है और सर अक्षर शब्द अर्थ में जो सरोवरों में एक ही सार सरोवर सर्वज्ञ अग्नि रूप अक्षा है और साम नाम शब्द अक्षर में जो एक ही स्वासा गति "हौं हूं" शब्द अक्षार अर्थ रूप है यही अस्मि शब्द अक्षर अर्थ में मेरा अनादि सत् मय सिद्ध नाम में सागरः शब्द अक्षर अर्थ में एक ही अब्धि कृत गो युग सागर वेद नाम रूप से मेरा अचल सागर नाम रूप में एक ही ॐ कार नाम और महेश्वर स्वरूप है और मैं अपने इसी महेश्वर स्वरूप के आनंद में नित उन्मत्त और मग्न रहता हूं कारण ये है कि मैं बृहस्पति ब्रह्म अन्तर्य दर्शन हिरण्य गर्भ रूप में सूक्ष्म शरीर नत विधि पार्थ अक्षर रूप में नित्य आदि सनातन अष्टम एक ही आत्मा आपही अपना पुरोहित और पुरोहित रूप में आपही वृहस्पति रूप से ब्रह्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

विष्णु और शिव रूप स्वरूप एक ही ॐ कार गणपति और गणपति रूप में उमारूप मेरा शुद्ध शाश्वत स्वरूप है इसलिये मुझे अपने पराये बनने बनाने और अपना पराया देखने दिखाने की किसी काल किसी प्रकार किञ्चित भावना उत्पन्न नहीं होती मैं क्या कहूं और किस से कहूंकि मेरा हिरण्य गर्भ रूप किस प्रकार का और किस आकार का है वास्तव में मेरा कोई आकार नहीं है मेरी महान सूक्ष्म अवस्था है और उस सूक्ष्म अवस्थामें मेरे तीन प्रकार के सूक्ष्म आकार हैं कि जो विन्दु और रेखा के समान हैं और वही आकार सर्व पदार्थों के ज्ञान मयी बीज कालक्ष होना प्रतीत होते हैं और इस प्रकार मेरे इस ज्ञानमयी कोश बृहत्पती रूप में अनंत कोटि सूर्यों का तेज भरा हुआ है कि जिस में से इच्छा की पवन चलने पर संख्यातीत चिंगारियाँ निकलती हैं और अनेक ब्रह्मांड को रचती हैं इसलिये विधिपार्थ नामसे मेरा नाम महेश्वर अर्थात हिरण्यगर्भ अर्थात सोने का अण्डा है और रूप मेरा एक ही आदि विक्रमादित्य नाम कर्म रहित अनादि सूर्य है कि जो त्रिकोण का एक ( △ ) ऐसा (Ψ) त्रिशूलधारी और त्रिनेत्री ( Ψ ) आकार ॐ कार रूप है कि जिस मेरे रूपमें ॐ कार अकार की तीन नेत्रों में प्रथम नेत्र मेरा सतो गुण की श्वेत विन्दु रूपमें एक ऐसा ( ) स्वरूप है और दूसरी विन्दु रजोगुणी नेत्रमें मेरा लाल रंग की विन्दु रूपमें अग्नि नेत्री ऐसा ( ) स्वरूप है और तीसरी तमोगुणी विन्दु नेत्रमें मेरा कत्थयी रंग की विन्दु रूपमें कथन नेत्री ऐसा ( ) स्वरूप है और इन तीन प्रकार की तीन नेत्रों में मेरा एक नेत्री अ अकार ॐ कार कलकी दशमेश अचल और निश्चय निश्चल समबल अवतारी अरबंड अकार है कि जो त्रिनेत्री तीन विन्दु के रूप में एक ही नेत्र रूप एक ऐसा अकार में मेरा ॐ कार कलकी नाम ( ) दशमावतार है कि जो तीन विन्दु वाला एक विचित्र रूप प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है इसमें चन्द्र जैसा चिन्ह रखने वाली जो मेरी एक ही नेत्र श्वेत विन्दु रूप है यही तुर्यातीत अतीत जलमय मेरे ॐ कार अ एक ही अक्षर रूप की अर्द्ध मात्रा मेरा और मेरे मस्तक का रूप है कि जो जल रूप में अग्नि रूप बिजली और फिर अग्नि रूप बिजली में वायु और फिर वायु जल अग्नि विजली रूप में आकाश कोटान कोटि सूर्यों का एक ही प्रकाश रूप मेरा अर्द्ध मात्रा श्वेत विन्दु में चमकता हुआ स्वरूप है कि पूर्ण चन्द्र रूप है और फिर इस एक नेत्री रूप में लाल और कत्थयी रंग की जो विन्दु नेत्र मेरे अनादि अवतार कलकी रूप और स्वरूप की जो मेरे मस्तक के नीचे दो नेत्र समान दो नेत्र हैं इन्हीं से मेरा त्रिकोण जैसा अन्तर्याय रूप भाव प्रकट होता है और ऊपर श्वेत और नीचे लाल और कत्थयी विन्दु होने से यही मेरा स्वरूप कैलाश पर्वत रूप है क्योंकि मेरे विधिपार्थ नाम के अक्षार अर्थ में मेरा नाम बृहस्पती है और बृहस्पती अक्षर अर्थ में मेरा नाम बुद्धि अर्थात वेद व्यास ब्रह्मा है और ब्रह्मा अक्षर अर्थ में मेरा नाम विधि है और विधि अक्षर अर्थ में मेरा नाम बुद्ध है और बुद्ध अक्षर अर्थ में मेरा नाम यम है और यम अक्षरार्थ धर्म है और धर्म के अक्षर अर्थ में मेरा नाम नियम है और नियम के अक्षर अर्थ में मेरा नाम कर्म है और कर्म के अक्षर अर्थ में मेरा नाम कलकी अग्नि मूल है कि जो एक ही अ कार ॐ कार मेरी ब्रह्म विद्या का ब्रह्म अक्षर रूप में एक ही बीजात मूलम मूलात बीजम मूल बीज रूपा है कि जिसके कारण सूक्ष्म स्थूल तीन रूप हैं इनमें से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२१७

कि जो तीन प्रकार के मेरे ३ शरीर हैं उनके श्वेत १ लाल २ और कत्थयी ३ तीन ही रंग रूप हैं इन्ही तीनों रूपों के कारण से त्रिलोकी नारायण मेरा नाम है कि जो आदिम आदि यमराज मेरा एक ही स्वरूप है इसी स्वरूप के गजनंद गणपति १ और उमा २ नाम पुरुष प्रकृति संयोग रूप में पुरुष स्त्री भ्राता भगनी पिता पुत्री और पुत्र माता के रूप में मेरा एक ही रूप एक ही स्वरूप है और इसी स्वरूप का आदि आदिम सनातन नाम में आत्मा नाम है और आत्मा का बृहस्पति स्वरूप है और बृहस्पति स्वरूप में मेरा श्वेत विन्दु रूप में एक ही विन्दु में ऐसा ◯ विन्दु स्वरूप है और इस एक ही विन्दु में कि जिसका नाम विधि पार्थ है लाल कत्थयी और पीली तीन रंग की तीन विन्दु रूप में मेरा नाम सत चित आनंद ज्ञाँन वेद है कि एक स्वरूप श्वेत विन्दु रूप के जो चार नाम सत् नाम श्वेत विन्दु १ और चित नाम लाल विन्दु २ और आनंद नाम कत्थयी विन्दु ३ और ज्ञान नाम पीली विन्दु ४ इन चारों नामों का एक ज्ञान नाम रूप में जो पांचवा नाम है उसका नाम वेद है कि जिस वेद शब्द के अक्षर अर्थ में एक स्वरूप के आशय अर्थ जानलेने के लिये वेद शब्द अक्षर के आदिम अर्थ ४ के अंक में एक ही अंक भेद के जान लेने के हैं कि इसी ४ अंक का एक नाम ब्रह्मा ब्रह्म विद्या और वेद ज्ञान हैं इसलिये वेद नाम में मेरा एक ही नाम ज्ञान वेद है और मेरे इसी ज्ञान वेद के अक्षर शब्द अर्थ में मेरा नाम विधि पार्थ है कारण ये है कि ज्ञान के अर्थ वेद और वेद के अर्थ विद्या के हैं इसलिये विद्या रूप में अविद्या की मिथ्या प्रकट प्रतीत में लाल विन्दु का कि जिसका नाम चित विन्दु है इसी का नाम कारण आत्मा है इसी का नाम महेश्वर है इसी का नाम जीव आत्मा जीव है दूसरी आनंद विन्दु का नाम कि जिसका कत्थयी रंग है इसी का नाम सूक्ष्म शरीर तत है और इसी का शिव नाम है तीसरी पीले रंग की विन्दु का नाम स्थूल शरीर है और इसी का रुद्र नाम है कि जो एकादश रुद्र का एक स्वरूप है और महेश शिव रुद्र इन तीन नामों का एक ही नाम ब्रह्मा अर्थात मेरे एक ब्रह्म रूप का एक ही आकार में ॐ कार रूप और ॐ तीनों विन्दुओं से अतीत तुर्यातीत विष्णु नाम है कि जो केवल एक ही श्वेत विन्दु स्वरूप है कि जिस से निश्चय करके सत शब्द के सत्य अर्थ प्रकट होते हैं और तत्पद के अर्थ लक्ष में केवल यही तत्पद अधिष्ठान है कि जो अमूर्त और अचिंत मेरा एक ही अकाल रूप है कि जो चेतन के सर्व साक्षी अविद्या पदार्थों के लय होजाने पर आनंद पूर्वक ज्ञान स्वरूप बुद्धि रूप में बृहस्पती विधि पार्थ अक्षर रूप ही एक अक्षर रूप बना रहता है किंतु मेरे स्वरूप की वह नेत्र शक्ति कि जो तमो गुणी शक्ति है अत्यंत बलवान है और इस बल शक्ति से न कोई आकार बचता है और न कोई वस्तु इस से भिन्न रहती है इसलिये मेरे एक इसी स्वरूप का नाम हिरण्य गर्भ रूप है सो मेरे इसी हिरण्य गर्भ रूप स्वरूप में जगत रूप के सर्व माया पदार्थों का ज्ञानमयी बीज गुप्त रहता है कि जो रजोगुणी अर्थात राजसी शक्ति आकृतियों द्वारा समय समय पर उन पदार्थ रूप आकृतियों में कि जिनके प्रकाश और प्रभाव के प्रकटाने को मेरे को अविद्यक्ता होती है व्यक्त करके अर्थात उनका प्रकाश करके फिर तामसी शक्ति के प्रभाव द्वारा मैं ही व्यक्त पदार्थ आकृतियों को कि जिन का रजो गुण शक्ति आकृतियों से प्रकाश करता हूं व्यक्त से अव्यक्त अवस्था में ले आता हूं मेरी इस विधि क्रिया से न कोई जनमता है न मरता है न कर्म कर्ता है न भोक्ता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कारण ये है कि मैं अरूप रूप से स्वतः कर्म ही कर्म हूं कि जिस अरूप रूप कर्म में मेरा अनादि ज्ञान रहता है और मेरे अनादि ज्ञान से जो प्रकट प्रतीत में कर्म करना यथा कर्म किया जाना प्रकट में प्रतीत रूप से प्रतीत होता है यही मेरा अरूप रूप और निष्कर्म कर्म कर्म है कि मैं भृंगी की भांति अपने अद्वैत रूप अद्वैत स्वरूप को अद्वैत धर्म को नित्य अद्वय रूप से करता ही रहता हूं जैसे कि भृंगी अपने अद्वय रूप को स्थित रखने के निमित्त निश्चित अभीष्ट रूप से इस प्रकार निष्काम कर्म कर्म करती है कि प्रथम गारा ला ला कर एक सुन्दर विधि से एक छोटा सा घर बनाती है जब घर बन जाता है तो मट तीन हरे यथा लाल वा पीले रंग के कीट अर्थात कीड़ों को पकड़ कर उस घर में लाकर रखती है और सुरीले राग में उन्हें अपने स्वरूप का ॐ - ॐ - ॐ - ॐ हूं ॐ शब्द सुनाती है और वह कीट श्रवण रूप से ॐ शब्द का श्रवन कर के दशहरा रूप में मनन क्रिया युक्त होदशों इन्द्रियों को दमन करते हैं अभिप्राय ये है कि ॐ शब्द के श्रवण करते ही वह कीट कीट रूप को त्याग साक्षात अपने ॐ कार स्वरूप को जान लेते हैं और साक्षात राम अवतार रूप से राम बन कर रावण नाम दशेंद्रिय को अपने आधीन करने अर्थात रावण के मारने को त्यार होजाते हैं तब भृंगी उस अपने बनाये हुए घर का कि जिसमें इन कीटों को रखती है मुख भी गारे से बन्द कर देती है और ये कीट निध्यासन क्रिया रूप से उस घर में बन्द रहकर विवेक ज्ञान अनुकूल अपने अविनाशी आत्म स्वरूप के ध्यान में सर्व प्रकार के ही भोगों को त्याग ज्ञान से ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय एक ही रूप स्वरूप से मुनि स्वरूप में वहिरंग गति में आते हैं अभिप्राय ये है कि वह कीट अपने कीट स्वरूप को त्यागकर अंतरंग गति से भृंगी का रूप धारण कर भृंगी के बनाए हुए घर को तोड़ दीपमाल्का करते हैं अभिप्राय ये है कि माया रूप अन्धकार से बाहर निकल प्रकाश ही प्रकाश रूप में अपने शुद्ध स्वरूप को एक रूप देखते हैं और इस गति में कीट होली होलका का फाग खेलते हैं अर्थात कीट देह के त्याग को किसी प्रकार से कोई मोह नहीं करते वह निर्मोह रूप से अपने एक आत्म स्वरूप को जानकर ॐ ॐ ॐ - ॐ हूं ॐ - ऐसा शब्द करते हुए एक भिरंगी रूप बनकर उड़ जाते हैं कि इसी का नाम ब्रह्म विद्या है विधि है बृहस्पती है कि अविद्या रूप में प्रकट प्रतीत रूप में बुद्धि का अपरोक्ष रूप ही देह रूप जैसा की अपरोक्ष रूप में प्रकट प्रतीत रूप में अविद्या रूप में मायावी बुद्धि का रूप होता है वैसा ही मायावी बुद्धि रूप बुद्धि चक्र बनाती है अर्थात भृंगी के पकड़ करके लाये हुए कीट की भांति कीटों का कीट स्वरूप को त्याग करके जिस प्रकार कि भृंगी का मन कीट रूप जैसा मनु रूप बनाते हैं इसी प्रकार बुद्धि जो वास्तव में अविद्या रूपी माया रूप में प्रकट प्रतीत में कीट की भांति देह नाम रूपी एक प्रकार की वस्तु प्रतीत होती है वह वास्तव में देह रूप नाम वाली कोई वस्तु नहीं है क्योंकि विश्वास युक्त सत्यं सत्य जो मेरा बुद्धि स्वरूप है इसी मेरे स्वरूप का नाम चैतन्य नाम में एक ही नाम वसिष्ठ अर्थात आत्मा है कि जिस आत्मा के प्रकट प्रतीत में प्रतीत होने वाले अव्यक्त स्वरूप के व्यक्त अर्थात एक अपरोक्ष मायावी रूप स्वरूप का नाम कि जो वास्तव में कोई वस्तु नहीं है देह अर्थात मन मुनि मनु माया अविद्या शक्ति है कि जिसका नाम अन्धकार है और स्वरूप इसका धुन्द्कार रूप में धुवां है कि धुवाँ वास्तव में कोई वस्तु नहीं किंतु प्रकट प्रतीत में एक देह रूप देह प्रतीत होती है तो जिस शक्ति के द्वारा धुवें का देह रूप उठता हुआ और चलता हुआ प्रतीत होता है और फिर अव्यक्त होजाता है इसी शक्ति का नाम बुद्धि यथा अव्यक्त रूप में वसिष्ठ अर्थात एक ही आत्मा मेरा नाम है तो जिस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२१८

ध्रुवें का मायावी रूप मेरी एक ही आत्म शक्ति से ऊपर को उठता और चलता प्रतीत होता है और फिर एक ही अव्यक्त रूप में अव्यक्त हो आत्म रूप होजाता है इसीप्रकार पशु पक्षी मनुष्य आदि जीव जन्तु की भिन्न भिन्न नाम रूप वाली माया वी आकृतियों में मेरा एक वसिष्ठ नाम आत्म बुद्धि स्वरूपही व्यक्त रूप में अव्यक्त रूप से प्रवेशरूप रहता है कि जिस आत्म रूप मेरे के प्रवेश रूप से माया रूपी देह चलती फिरती और नाना प्रकार के कार्य और कर्म करते प्रतीत होती है किंतु वह नाम रूप वाली आकृति न तो कोई कर्म करती है और न किसी प्रकार के कर्म का कर्मफल भोगती है क्योंकि मेरा जो बुद्धि आत्मा स्वरूप है यही अव्यक्त रूप में शुद्ध और निर्मल स्वरूप है कि जो स्वतः स्वतंत्र आभास और मोक्ष रूप है कि जो मायावी देह रूप नाम से अतीत मेरा ही एक स्वरूप है और इसी का नाम जान यथा जीव है कि जो भिन्न भिन्न आकृतियों में भिन्न भिन्न प्रतीत होने पर भी एक ही चैतन्य स्वरूप में विधि पार्थ नाम है कि जिस मेरे स्वरूप के अलग होते ही देह नाम रूप वाली आकृति मृत्यु को प्राप्त होना कहिजाती है इसी का नाम ब्रह्म विद्या है विधि पार्थ है कि ये वृहस्पति सरस्वती नाम से बुद्धि और बुद्धि नाम में प्रत्यक्ष स्वरूप से माय रूप नेत्र बनकर सब कुछ देखती और वाणी रूप में सब कुछ कहती और श्रोत्र रूप में सब कुछ सुनती है परन्तु इस अपरोक्ष मायावी रूप में अपने (आप) ज्ञानमयी सत्य स्वरूप को नहीं देखती क्योंकि मायावी अपरोक्ष रूप में माया अपरोक्ष रूप को अपरोक्ष आत्मा को इन्द्रिये माया रूप द्वारा इसी प्रकार नहीं देख सकती कि जिस प्रकार मनुष्य अपनी नेत्र दृष्टि द्वारा सारी मायावी संसार वस्तु को देखता और प्रतीत करता है किंतु आप अपनी आंख को विदून ज्ञान रूपी दर्पण अर्थात आईने के देखे नहीं देख सक्ता है। यही ब्रह्म विद्या है कि जिसका आशय ये है कि मेरा आत्म वसिष्ठ स्वरूप सर्व साक्षी रूप केवल देखने ही देखने वाला है जो देखने वाला है वह देखने वाला ही रहता है दिखाई देने वाला कभी नहीं हो सक्ता जैसे विदून स्वार्थ के स्वार्थ रखने वाला और विदून आदि के अंत और विदून पूर्ण के पूर्ण अंश और विदून कर्ता के कर्म नहीं होता उसी प्रकार विदून आत्मा के शरीर माया वी आकार ध्रुवें रूप के तुल्य कोई वस्तु नहीं होता और इसी का नाम ब्रह्म विद्या है और ब्रह्म विद्याही मेरा साक्षी स्वरूप चैतन्य रूप है कारण ये है कि स्वरूप रूप तो मेरा एक ही सत्यं सत्य स्वरूप है किंतु विधि रूप में एक ही मेरे सत्यं सत्य स्वरूप के आभास अर्थात छाये का नाम मन है और इस मन का एक रूप ध्रुवें जैसा स्वरूप है और इसी का अविद्या यथा माया नाम है कि कोई वस्तु नहीं है किंतु यही ध्रुवाँ ६ प्रकार के रसों का एक रस रूप है और ६ प्रकार की ६ ऋतुओं का एक ऋतु और ६ प्रकार के ६ अंगों का एक अंङ्ग नाम अङ्ग है और इसी बात को जानलेना पूर्ण ब्रह्म विद्या को और अपने आपही (आपने) आत्म स्वरूप को जान लेना है क्योंकि मेरे बुद्धि सत्यं आत्म अपंची कृत एक ही स्वरूप में जो ध्रुवें जैसा मन माया शक्ति आभास है ये आभास आप से आप ही है और इसी एक आभास का नाम मन अहंकार है कि जो एक पंची कृत रूप से एक मायावी पांच रूप स्वरूप में पंच महाभूत को पंच मुखी एक अंग स्वरूप २५ तत्व और ३० प्रकार की प्रकृति का आप से आपही एक ब्रह्मांड चित्र में विश्व विराट रूप का भास आभास बन रहा है मैं वृहस्पती बुद्धि वसिष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यं रूप विधि पार्थ नाम आत्मा पंचीकृत माया रूप से इसी प्रकार भिन्न और असंग और स्वतंत्र हूं कि जिस प्रकार मृंगी कीट नाम मायावी देह नाम रूप से भिन्न है कि माया में प्रवेश रहते हुए भी मैं स्वतः स्वतंत्र और मोक्ष रूप स्वरूप ही हूं क्योंकि " मां हि ब्रह्मे ॐ कारं विष्णु सर्वात्मना ए परं ब्रह्म " श्रुति प्रमाण - मैं ही एक ब्रह्म निश्चय स्वरूप ॐ अकार अक्षर रूप में विष्णु स्वरूप पूर्ण आत्मा रूप एक ही परमात्मा नाम ब्रह्म हूं इसलिये मैं माया रूपी देह नहीं हूं मैं देह से स्वतंत्र हूं माया देह नाम रूपी शरीर माया से उत्पन्न होते और माया में ही लय होकर रहते और अंत में माया में ही लीन होजाते हैं क्योंकि मन माया आभास के जो ६ अंग हैं उन ६ अंगों के मन १ अवकाश २ हंसना ३ रोना ४ गाना ५ चिल्लाना ६ ये ६ नाम अंग नाम हैं और इस प्रकार एक मन माया आभास के अवकाश १ हंसना २ रुना ३ गाना ४ चिल्लाना ५ ये पांच ही इस माया के पंच भूत रूप हैं कि जिन पंच भूत रूप के पंच महाभूत नाम में इसप्रकार पांच नाम हैं कि जैसे अवकाश का नाम आकाश है तो हंसना वायु का नाम है रोना अग्नि का नाम गाना जल का नाम और चिल्लाना पृथवि का नाम है और इन पांचों के परस्पर संयोग से पंची करण नाम २५ तत्व की इसप्रकार आपसे आप ही उत्पति है कि जिस प्रकार एक सत्य स्वरूप के चार रूप हैं

## सत्य स्वरूप के चार रूप ।

| १ | २ | ३ | ४ |
|---|---|---|---|
| श्वेतावर्ण ॐ विकृत रूप आदि आदित्य ॐ अक्षर स्वरूप अ अक्षर विधि पार्थ नाम विधि विधित का आकार सत्य नाम सत्य रूप सत्युग अमूर्त ज्ञान स्वरूप अरूप | दूसरा त्रेतायुग कारण नाम ॐ अकार अक्षर स्वरूप में विधि पार्थ रूप का पीला रंग बुद्धि रूप में प्रकाश स्वरूप पिङ्गल रूप एक नाम अ | तीसरा द्वापरयुग सूक्ष्म नाम ॐ अकार अ का आभास उ अक्षर का उदित रूप धुवाँ स्वरूप ६ रस ६ ऋतु ६ अंग का सूक्ष्म स्वरूप एक मन नाम | चौथा कलियुग स्थूल नाम उ अक्षर उदित रूप धुवें स्वरूप का म कार स्वरूप में काला रंग काल नाम कर्म का स्थूल रूप अवकाश नाम में पंच भूत का पंचिकृत २५ तत्व का एक स्वरूप |

इस प्रकार चार तत्व चार्वाक चार नाद चार पाद चार स्वर चार ध्वनि नव स्वरूप २० विश्वेः का एक विष्णु मेरा रूप है और इस स्वरूप में काल क्रम नाम रूप से माया रूपी सृष्टि कल्युग नाम में कि जो पंची कर्ण का एक नाम है ये वर्तमान रूप से आपही आप अवकाश रूप है कि कल्युगी पंची कर्ण सृष्टि उत्पन्न रूप पालन रूप नाश रूप से नित्य ही उपजती और नाश होती रहती है और वर्तमान रूप में काल क्रम का चक्र कलियुग वर्तमान रूप से सदैव एक ही अकाल रूप से चलता रहता है सो जैसा कि बुद्धि का रूप है वैसा ही उसका चक्र बनता है और जिस प्रकार से मन का अवकाश रूप में आकाश पवन अग्नि जल और पृथिवी के पंची करण रूप हैं उसी प्रकार उनके चक्र बनते हैं और उनके परस्पर संयोग से अन्तःकरण और इन्द्रियाँ और पंच महाभूत के रूप में पंचीकृत प्रकृति के अनेक प्रकार के मायावी कल्युगी रूप रेल विवाण तार आदिक पशु पक्षी मनुष्य कीट भृंग बन्दर आदि के स्वरूप पंच महाभूत के पंची करण स्वरूप में ही प्रकट प्रतीत में प्रतीत होजाते हैं और जिस प्रकार ये रूप प्रतीत होते हैं इसी विधि का नाम वर्तमान काल चक्र कल्युग के एक पंचीकरण प्रपंच शब्द में उस क्रिया का नाम वर्तमान अकाल रूप में कि जिस को कल्युग अर्थात काल का वर्तमान रूप कहा जाता है इसी प्रपंच में इस क्रिया का नाम काल १ क्रम २ गतिः ३ नाम है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२२०

और इन तीन नामों का एक नाम साधु अवस्था की साधना है इसी का दूसरा नाम योगी अवस्था का परि पूर्ण योग अभ्यास है और इसी का तीसरा नाम कर्म है और चौथा नाम कि जिस क्रिया में सूक्ष्म पंच भूत की किसी प्रकार से किसी अवस्था का साधन किया जाता है न्याय है और इसी का नाम ब्रह्मविद्या रूप में निष्काम कर्म फल और ब्रह्मचर्य आश्रम है और इसी का नाम गृहस्थ वाणप्रस्थ संन्यस्थ है क्योंकि ब्रह्मविद्या के रूप में पंची करण के भेद से जिन बातों का जानना सो विधि पार्थ स्वरूप में मिथ्या है उसी का अविद्या नाम है और उसी अविद्या के मिथ्या रूप को मिथ्या जानलेने का नाम पंची कृत के मूर्तिमान केवल रूपमें विद्या मार्ग है कि जिसका नाम आनंद यथार्थ पथ है शक्ति स्वरूप है कि इसी का नाम ज्ञान वेद है और इसी का नाम इंजील कुरान पुराण श्रुति स्मृति नीति न्याय धर्म और धर्मशास्त्र धर्म की धर्म पुस्तक के अनेक नाम रूपों में केवल एक ही मार्ग अर्थात एक ही स्वरूप की अवस्था के जान लेने के हैं कि जिसके जानने को प्रकृति प्रपंच संयोग का जानना १ और मूर्ति भेद आकृति का जानना २ और सूक्ष्म आकृति भेद का जानना ३ और कारण का भेद जानना ४ इन चारोंबातों का जान लेना अवश्य है कि इसी का नाम ब्रह्म विद्या है सो ब्रह्म विद्यामें अविद्या रूपी जो प्रपंच का पंची करण नाम आभास है वही मन नाम है कि जो ३० प्रकार की प्रकृति का एक रूप है कि जिस एक ही रूपके पाँच नाम और पांच काम हैं अर्थात १ अवकाश पहिला नाम है यह एक अवकस अर्थात ह्वाये का नाम है कि जैसे दर्पण के देखे में सूरत का आभास होता है किंतु जिस प्रकार दर्पण में दिखने वाली मूर्ति कोई वस्तु नहीं होती इसी प्रकार अवकाश कि जिसके शब्द अर्थ में शब्द अर्थात आकाश अर्थ हैं कोई वस्तु नहीं है किंतु प्रतीत होता है इसी का दूसरा नाम जैसा प्रथम कहा गया है हंसना अर्थात वायु है और तीसरा नाम रोना अर्थात अग्नी है और चौथा नाम गाना अर्थात जल है और पांचवा नाम चिल्लाना अर्थात पृथिवी है इस प्रकार पंची कृत पांच महाभूत मन अवकाश भूत रूप हैं कि नाम और आकृतिवान प्रतीत होने पर भी कुछ नहीं हैं कि दर्पण की आभास आकृति की भांति एक छलावा अर्थात कपूर का धोका रूप हैं कि इस धोके रूप आकृति को देखकर धोका ही प्रतीत करना इसी का नाम एक सनातन नाम ज्ञान धर्म अर्थात सत्य धर्म है अद्वैत धर्म है बुद्ध धर्म है ध्रुव धर्म है अपार धर्म है और अगम अनादि धर्म है और वह आदिम आदि धर्म अनाम काए सूक्ष्म तीन नाम रूप में एक ही नाम वृहस्पति धर्म अर्थात विधिपार्थ नाम में मैं आप ही अपना पूर्ण पुरोहित वृहस्पती नाम एक रूप और तीन स्वरूप आप ही आप « सदोनितो सदोदितो सदोऽहं » अर्थात

(क) प्रथम स्वरूप मेरा ये है कि मैं एक अत्यंत महान शक्ति अनंत रूप अनंत स्वरूप सत्य रूप सत्य ही सत्य आदित्य नाम सूर्य है कि जिस से प्रकट और गुप्त की सम्पूर्ण शक्तियों का प्रकाश होता है और फिर अंत में सर्व प्रकाश मेरे आदि आदित्य सूर्य स्वरूप में ही लीन होजाता है क्योंकि मैं ही नित्य हूं

(ख) मनुष्य पशु पक्षी जीव जंतु की देहादि में जो भिन्न भिन्न करके तद्यथा स्पर्श अर्थात जीवात्मा प्रतीत होती है ये सब अनंत शक्ति अनंत बली बलवान रूप में मेरा ही एको ब्रह्म नाम में विधिपार्थ स्वरूप है कि जो पृथक पृथक प्रतीत होने पर भी पृथक रूप में मेरी पूर्ण अनंत शक्तियों का स्वरूप है

(ग) पंच भूत नाम पंची कृत आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी रूप में कि जो २५ तत्व करके इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार माया रूप स्वरूप बनरहाहैकि इस में जो भिन्न भिन्न भूतों के पांच पांच रूप प्रतीत होतेहैं अर्थात मनुष्य देहमें
(१) आकाश के पांच तत्व काम अर्थात इच्छा १ क्रोध अर्थात गुस्सा २ शोक अर्थात चिंता फिकर ३ मोह अर्थात प्रेम मोहब्बत ममता रूपी अहंकार में. मेर तेरका द्वैत विचार भाव ४ और भय अर्थात डर ५ तत्व प्रकृति रूपहैं इनमें (१) काम आकाश में वायु का १००० अंश से १२५ अंश भाग रूप है कारण येहै कि कामना रूप वृति चंचल है और वायु भी चंचल है इसलिये कामना वायुका भाग है और (२) क्रोध वृति आकाश में १२५ अंश रूप से तेज अर्थात अग्नि का हिस्सा है क्योंकि जब क्रोध उत्पन्न होता है तो शरीर जलनेलगता है इसलिये ये अग्नि का भाग है (३) शोक आकाशमें आकाश का मुख्य भागहै और ५०० अंश रूप है क्योंकि जब शोक उत्पन्न होता है तब शरीर शून्य होजाता है और आकाश भी शून्य है कि कुछ नहीं है इसलिये ये आकाश का मुख्य भागहै (४) मोह आकाश में जल का १२५ अंश रूप है क्योंकि जब किसी की ओर से मोह उत्पन्न होता है तो शरीर में हृदय व्याकुल हों नेत्रों से प्रेम के आंसु टपक परते हैं इसलिये ये जल का भाग है (५) भय आकाश में पृथिवी का १२५ अंश रूप है सो जब डर उत्पन्न होता है तो शरीर भी धूजनेलगता है यथा मूत्र चिर्क आदि निकल पड़ता है इसलिये ये पृथिवी का भाग है इसी प्रकार

(२) मनुष्य आदि सर्व प्राणियों की देहों में वायु के पांच तत्व वायु रूप में इस प्रकार हैं कि इनमें चलन अर्थात बहना १ बलन अर्थात बलना २ धावन अर्थात दोड़ना ३ पुर्सारण अर्थात फैलना ४ आकुंचन अर्थात सुकड़ना ५ ये पांच तत्व प्रकृति रूप हैं कि जिनमें (१) चलन वायु में जल का हिस्सा है क्योंकि जल चलता है और ऊपर कहे अनुसार १००० तत् अंश से उसका आठवां भाग अर्थात १२५ अंश वायु में जल रहता है और इसीप्रकार (२) बलन (यथा बालना) वायु में अग्नि का भाग है कि जो १२५ अंश तेज रूप है और (३) धावन वायु में वायुका मुख्य भाग ५०० अंश रूप है क्योंकि धावना अर्थात दोड़ना वायु का कार्य है (४) पुर्सारन वायु में १२५ अंश आकाश का हिस्सा है कारणकि सर्वत्र आकाश ही आकाश फैला हुआहै और फैलाव फैलाना आकाश का कार्य है (५) आकुंचन वायु में १२५ अंश पृथिवी का हिस्सा है कारण कि सुकड़ना पृथिवी का कार्य है बस यही वायु के ५ तत् तत्व रूप हैं

(३) तेज यथा अग्नि के पांच तत्व रूप में सर्व आकृति देह रूप में क्षुधा अर्थात भूक लगना १ और और तृषा अर्थात प्यास लगना २ और आलस्य यथा सुस्ती ३ और निद्रा यथा नींद ४ और कान्ति यथा ज्योति प्रकाश चमक आदि ५ तत्व में (१) क्षुधा तेज में तेज का मुख्य भाग ५०० अंश है कारण येहै कि भूक में जो चीज खाई जाती है भस्म होजाती है और अग्नि में सर्व पदार्थ जल जाते हैं सो क्षुधा अग्नि का मुख्य भाग है और अग्नि रूप है (२) तृषा तेज में १२५ अंश वायु का भाग है क्योंकि वायु का कार्य सुखाना है सो जब प्यास लगती है तो गला सूखता है इसलिये ये वायु तत्व रूप है और (३) आलस्य यथा सुस्ती तेज में १२५ अंश पृथिवी का भाग कारण येहै कि जब आलस्य व्याप्त होता है तो शरीर जड़ होजाता है और जड़ ही जड़ होना पृथिवी का कार्य है (४) निद्रा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२२ तेजमें आकाश का १२५ अंश रूप है क्योंकि जब नींद आती है तब शरीर शून्य होजाता है और शून्य होना ही आकाश का कार्य है इसलिये निद्रा आकाश का भाग है (२) कांति तेज में १२५ अंश जल का हिस्सा है कारण ये है कि परीक्षा करने पर अग्नि के अत्यंत व्याप्त होने पर जल घटने लगता है इसी प्रकार धूपकी विशेष गरमी से कांति भी घटती है इसी का नाम बिजली भी है सो बिजली जलका कार्य है (४) जलके पांच तत्व से शुक्र अर्थात बीज यथा मणि १ शोणित रस अर्थात रक्त या खून २ लार अर्थात राल जो मुख से बहती है या कफ फेणादि ३ मूत्र ४ स्वेद अर्थात पसेव तथा भाप ५ इन पांचों ही तत्व जल रूप में (१) शुक्र अर्थात बीज ५०० अंश रूप में जल का मुख्य भाग है कारण कि बीजका रंग ही श्वेत वर्ण रूप होता है और जल भी श्वेतवर्ण रूप है कि जिस से गर्भ स्थित होकर मूल वृक्षादि सर्व पदार्थों की उत्पत्ति है इसलिये शुक्र जल रूप जल अंग जल कार्य है (२) रस तथा शोनित १२५ अंश जल में पृथिवी का भाग है कारण ये है कि पृथिवी जलमें ही रहती है सो रस जल मे पृथिवी रूप पृथिकार्य है (३) लार जल जलमें १२५ अंश फेण कफ रूप आकाश का अंश है कारण कि आकाश फेण रूप है ये आकाश कार्य है (४) मूत्र तपत का रूप तपत ऊषण स्वरूप तेज जलमें १२५ अंश अग्नि का अग्नि रूप है कि जो गुप्त बज्र रूप है (५) स्वेद जलमें १२५ अंश वायु का उड़ान रूप है कि जो भाप स्वरूप है (५) पृथिवी के पांच तत्व से अस्थि अर्थात हड्डी १ मांस २ नाड़ी तथा इन्द्रियादि तथा शुक्र रोम ३ तुचा अर्थात खाल या चर्म ४ और रुम अर्थात बाल और रोंगटे ५ से (१) हड्डी पृथिवी तत्व में ५०० अंश पृथिवी का मुख्य भाग है कारण कि हड्डी शक्ति रूप होती है और शक्ति पृथिवी नाम है पृथिवी का लक्षण है (२) मांस १२५ अंश गीला होने के कारण जल तत्व रूप है (३) नाड़ी पृथिवी में १२५ अंश सूक्ष्म रूप मान होने और गर्म होने के कारण तेज का अग्नि रूप है (४) तुचा १२५ अंश रूप से ही पृथिवी में वायु का १२५ अंश है कारण कि तुचा से स्पर्श रूपमें गरमी सरदी का बोध होता है और (५) रूप पृथिवी में १२५ अंश आकाश का भाग शून्य रूप है सो आकाश का हिस्सा है कि काटने से किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती इसीप्रकार प्रकार आकाश एक रूप के सिर आकाश का मुख्य भाग है कि शब्द का कार्य है कंठ आकाश में वायु का हिस्सा है क्योंकि स्वरसा का आधार है और हृदय आकाश में तेज का हिस्सा है कि पित का रूप है और उदर अर्थात पेट आकाश में जल का कार्य है कि पिये हुए जल का आश्रय है और कटी अर्थात कमर आकाश में पृथिवी का हिस्सा है कि गंध रूप गंध है इस प्रकार हर एक १२५ अंश रूप में २५-२५ अंश करके और २५-२५ अंश में ५-५ अंश करके और ५-५ अंश में १-१ अंश करके अर्थात १-१ अंश में भी १/५ अंश करके पांचों तत्व पंची करण रूप में ३० प्रकार की प्रकृति का एक रूप है और ३०×३०= ९०० के उदान का एक रूप है और उदान के ९०० अंक से उदान के २५ अंश कम करने और १२५ अंश आकाश के विशेष करने पर ९००-२५+१२५=१००० के ये १००० का अंक एक आकाश अर्थात अवकाश में शब्द का रूप है कि जो शून्य स्वरूप है कि जो माया प्रकृति के रूप में १००० तत्व रूप का

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक ही अवकाश नाम आत्मा अक्षरा का अर्थात मेरे चैतन्य सर्व शक्तिमान स्वरूप का ब्रह्म विद्या मायावी शक्ति रूप का शक्ति प्रकृति स्वरूप है कि कुछ नहीं है क्योंकि मैं अनामय विधि पार्थ स्वतः स्वतंत्र हूं और इस प्रपंच नाम पंचिकरण के भेदा भेद से रहित हूं क्योंकि " मयैव निमितं अप्रयोजकं प्रकृतिनां वरन भेदस्तु नतः लौकिक वत विधि पार्थ " अर्थात इस श्रुति प्रमाण मैं ही निश्चय स्वरूप निमित कारण रूप में मैं वह जीवात्मा हूं कि जिसमें संपूर्ण शक्तियाँ पृथक पृथक करके प्राक रूप से आदि अनादि काल से अकाल रूप से पहले ही प्राप्त हैं सो चैतन्य शक्ति अर्थात साक्षी स्वरूप आत्मा अनाम रूप मैं मैं पृथक पृथक करके भी वही शक्तियाँ मौजूद हैं कि जिनसे एक कीटि भी सर्व शक्तिमान रूप में खड़े होकर वही सर्व कार्य पूर्ण कर सकती है कि जो मेरे ब्रह्मा विधि पार्थ नाम से प्रकट हैं क्योंकि कीटि में वह सर्व शक्तियाँ गुप्त हैं कि जो मेरे भृंगी नाम आकृति में निष्काम रूपी आत्म अद्वैत अपार अगम स्वतंत्रास्को ब्रह्म आनंद की ज्योति की झलक रूप से प्रकट प्रतीत में प्रतीत रूप से देखने में आती हैं कारण ये है विधि पार्थ नाम शब्द अक्षर अर्थ में मेरा नाम ही निष्काम कर्म कर्म है ब्रह्म विधि ब्रह्म विद्या है कि अनंत सिद्धियों का एक ही स्वरूप मेरा एक ही अपना ही अपना रूप पूर्ण पुरोहित रूप है कारण कि

(४) मेरे पुरोधसाम नाम अक्षरा स्वरूप से जो इच्छा की लहर उठती है वही लहर उठाव रूप में बुद्धि के परा चक्र से एक अणु सी विन्दु परा रूप में संसार सृष्टि के प्रकट और गुप्त रूप का यथा मेरे आदि अनादि एक स्वरूप के प्रकाश स्वरूप को आदि आदित्य रूप होना है और इस विन्दु से कि जिस से सर्व प्रकार के वाद विवाद वास्तुक सार सार उत्पन्न आदि सृष्टि के उत्पन्न होते हैं और जो मेरा आदि अंत रहित अनंत स्वरूप है अमर रूप है आपसे आप है इसी का नाम अव्यक्त अनामय स्वरूप है कि जिस स्वरूप की आभास रेरवा का नाम मन अर्थात परा के स्वयं अपरा प्रकृति नाम है और यही व्यक्त रूप में सप्त ऋषि नाम का एक पंची कृत रूप है और इसी को सूक्ष्म लिंग शरीर कहा जाता है क्योंकि बुद्धि के प्रकाश रूप विन्दु से जो रेरवा रूप में एक मन विन्दु का आभास प्रकट होता है तो मन विन्दु का ऊपर वर्णी रूप से आकाश की रूप विन्दु प्रकट हो ती है और आकाश। विन्दु से वायु रेरवा विन्दु प्रकट होकर पवन से अग्नि और फिर अग्नि से जल और जल से पृथि विन्दु की रेरव रूप में आकर्षण शक्ति द्वारा ब्रह्मांड

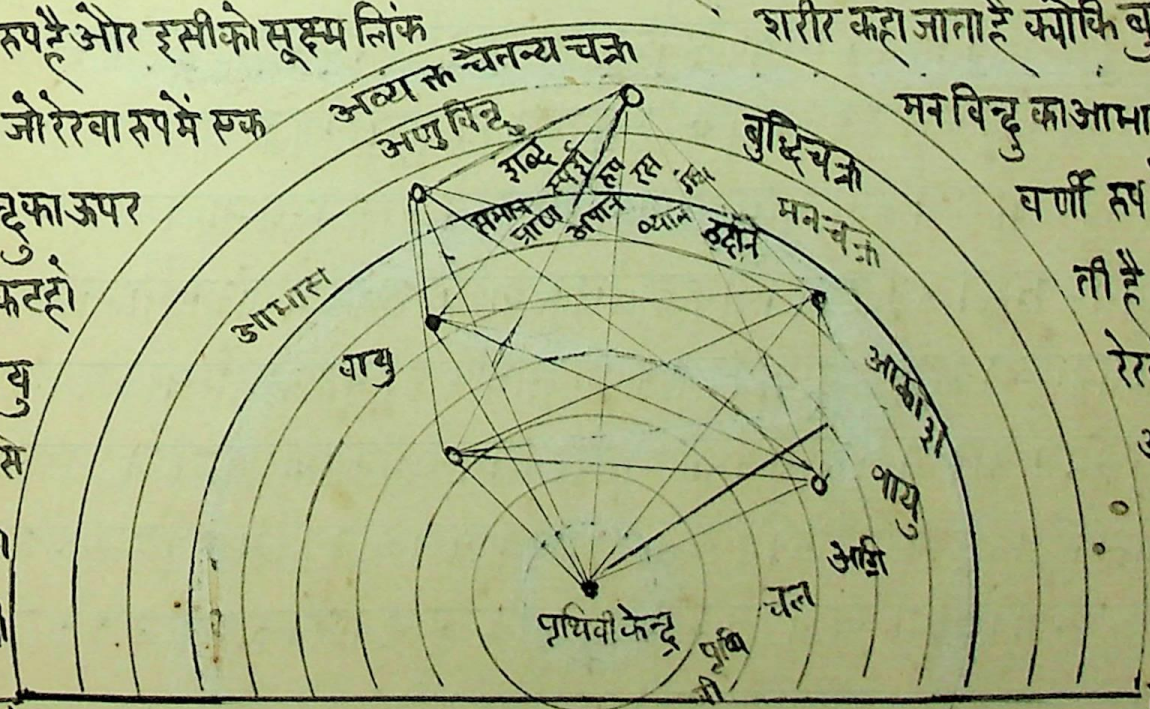


अनेक ब्रह्मांड आपसे आप रचन होते चले जाते हैं क्योंकि इस प्रकार बुद्धि रूप विन्दु की रेरव से जो ऊपर चित्र अनुकूल मन आकाश वायु से अग्नि जल पृथिवी से रेरवा उत्पन्न होती हैं तो ऊपर वर्णी क्रया द्वारा पंच मात्रा और पंच प्राण और पंच भूत एक मन आभास रूप से आप ही आप -

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

षोडशः कला रङ्गस्थदर्शयित्वा निवर्त्तते जगतो ऽसंग पुरुषस्य आदिर्निकं पराम प्रकाश प्रकृतिः ॥

अर्थात षोडशः कला के बहरूप में दृष्टि आने वाला धोका रूप अर्थात आपही स्वतंत्र रूप का स्वरूप ये जगत मेरे असंग आदिमें आदि अकाल अपार रूप मेरे में प्रकृतिका अप्रकाश रूप है कि नहीं है क्योंकि ये जो कुछ है मैं आपही विधि पार्थ के बल पुरोधा साम रूप स्वरूप हूं और यही बृहस्पती अर्थः

## शूत्र ६५ का आशय ।

(१) महर्षी नाम - शब्द अक्षर अर्थ में क्षमा शील परउपकारी अर्थात परा रूप में अपार अगम अपरा माया यथा माया ही माया जड़ रूप वस्तु अर्थात मृगुः नाम राजऋषि अर्थात पृथिवी मंडल अर्थात (आवागमन) मैं हूं कि मृगुः संहता नाम की माया पुस्तक रचनकर त्रिकाल माया सृष्टि (सृष्टि नाम) में बहरूप्ये का स्वांग बना आपही अपने को धोका देता हूं और आप ही ये इच्छा करता हूं कि आप अपने को धोका देकर आपही अपने को अपना स्वांग दिखावों अर्थात विष्णुरूपी माया मोहनी बहरूप रूप (की मूर्ति यष्णु) आपे अपने ही भरे हुए कंचनी स्वरूप को लात मार आपही अपने को इस प्रकार प्रकट करदूं कि "असंगोयं सर्वस्येकं पुरुषं" श्रुति प्रमाण प्रकट करों कि मैं ही सर्वत्र फैला हुआ हूं आवागमन रूपी कञ्चनी माया (विष्णु भै) एक असंग पुरुष अर्थात स्वतः स्वतंत्र आत्मा हूं कि अमर हूं अर्थात अवागमन रहित हूं कि मुझे जन्म और मृत्यु दोनों नहीं हैं फिर आवा गमन क्या है और मृगुः क्या है इनमें मृगुः नाम २८ अंशा माया के (स्वामी का) नाम है कि जो ३ गुण और सिद्ध नाम माया के २४ अंशा अर्थात अष्टधा प्रकृति का त्रिगुणात्मक एक रूप (म र ग उ स) एक ही अक्षर नाम में नक्षत्र कला नाम एक निराकार अक्षत्त अग्नि अर्थात अकालरूप सूर्य देश और कालरहित स्वरूप है उसी का नाम आत्मा है पुरुष है सो ऐसा जो आत्मा पुरुष सूर्य है वही मृगुः नाम ऋषि मैं हूं आगे माया यथा आवागमन क्या है

नृत्यात यथा नर्तकी निवर्तते दर्शयित्वा रङ्गस्थरंग ॥
प्रकृतिः निवर्तते प्रकाश्यवि नथात्मानं पुरुषस्य भास ॥

अर्थ - अर्थात आवा गमन जिस स्वप्न का नाम है ये रन्डी का नाच नाचकर नाच दिखाना है कि जिस रन्डी के नाना प्रकार के नाच देखते हुए भी नाच को देखने वाला पुरुष नाच नाचने से स्वतंत्र है सो आवा गमन रूपी रन्डी अर्थात माया प्रकृतिः से कि जो नाट्का रूप माया (का) आवा गमन रूपी रन्डी का नाच नाचना है ये नाच नाचना स्वतंत्र प्रकाशमान मेरे पुरुष आत्मा रूप का आभास है छाया तुल्य छाया है कि नहीं है अभिप्राय ये है कि आवा गमन ठगों की ठगी का बाना अर्थात ठगी का जाल रूपी एक शब्द लीला जाल है जैसे कि कोई ठग बगुल का सर्प बनने के हेतु किसी के साथ होले और उसे अपनी चिकनी चपड़ी बातों में फाँसते हुए जब समय पावे तब ही उसके गले में रुमाके फन्दे की फाँसी दुाल रुमाल में बन्धे हुए पैसे की चोट और चुकटी की ओटन से उसका गला घोंट अपना काम बनाए और चलता बने किंतु यदि ठग को अनेक प्रकार की ठगी की बात करते हुए भी ऐसा निश्चय होजाए कि जिस से मैं ठगी की ये (मन) लुभाने वाली बातें कर रहा हूं वह मेरी किसी बात का विश्वास नहीं करता और मुझ को ठग जानता है तो फिर वह ठग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

इस प्रकार जैसे कि गधे के सिर से सींग चम्पत हैं चम्पत होजाता है सो ठीक इसी प्रकार इस माया प्रकृति जगत रूपी सृष्टि और उसके व्यापारों की गतिः के कपट जाल व्यापारी व्यापारों का नाम आवा गमन है कि प्रमाण में जिसके मेरी ये विचित्र श्रुति है कि

"न अवा न गमने स्वयं ब्रह्मास्मि मयैवात्मानं य स तद्वै तत् मयैव ब्रह्म सत्यं यस्त तद्वृगुः ॥"

अर्थात न आना है न जाना है प्रत्यक्ष प्रमाण मैं ही परमात्मा हूं और मैं ही निश्चय स्वरूप आत्मानंद आत्मा हूं मैं ही एक तत स्वरूप वही तत् ब्रह्म मैं ही निश्चय स्वरूप ब्रह्म सत्य स्वरूप मैं एक ततरूप तत आदि अक्षत भृगुः नाम आदित्य हूं — और मैं ही

(२) गिरामनाम में अचल स्थान हूं मैं ही एक अविनाशी नाश से रहित अक्षरों में अ अक्षर ॐ कार हूं अर्थात गिरामनाम में अचल स्थित सर्वत्र फैला हुआ मेरा प्रकाश आकार है वह इस प्रकार फैले होने के कारण अ अक्षर मेरे मेरे स्वरूप का प्रकट चिन्ह अकार है जैसे कि यह ——— बिन्दु रूप एक चिन्ह है कि यही मेरा अद्वैत आनंद स्वरूप है और पूर्ण सत स्वयं प्रकाश है क्योंकि सम्पूर्ण विद्या में जो मेरा एक ही ब्रह्म विद्या रूप है और उस ब्रह्म विद्या के सिद्धांत का जो अवकाश है अर्थात अव्यक्त से व्यक्त का प्रत्यक्ष भाव है अर्थात जिस भाव को सृष्टि कहा जाता है और जो मेरे अव्यक्त स्वरूप में अर्थात अगम सागर रूप की लहरों में भँवर और चक्रों की भांति उत्पन्न रूप है और मेरा वही स्वरूप सृष्टि का व्यक्त रूप होता है और जिस व्यक्त रूप के अनंत मंडल प्रकट होकर आकर्षण शक्ति द्वारा आपसे आप स्थित होते हैं और फिर उनमें नाना प्रकार की वनाश्पति और अनेक प्रकार के प्राणी आपसे उत्पन्न हो सृष्टि संसार के रूप में जगत का रंग धारण करलेते हैं। और जिस अव्यक्त गिरामनाम में न आकाश है न अस्ति है न नास्ति है और जो अव्यक्त स्वरूप आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रपंच विकार वाद से रहित है और जो अव्यक्त स्वरूप कभी आवा गमन नहीं करता और जो न कभी जन्मता है न मरता है और न कभी प्रकृति का कोई अंश रखता है और जो कैवल्य चैतन्य चैतन्यमय कोश है और जो आप ही दृष्ट दृष्टा साक्षी है और अनंत है और पूर्ण रूप में अरूप और पूर्ण प्रकाश है और जो एक ही अक्षर रूप है और जो अनंत कोटि सूर्यों का एक अनंत सूर्य है और जो साक्षात्कार में निरंतर एक ही आत्मा परमात्मा है और जिस एक के सिवा और कहीं कुछ नहीं है उस मेरे निराकार अक्षत रूप का ऐसा ही स्वरूप है कि जिस प्रकार ऊपर के चौपारे वाली बिन्दुओं का चिन्ह है कि जो चार एक से ही त्रिकोण का चिन्ह सा प्रतीत होता है कि जो देश से रहित होने पर देश जैसा चिन्ह है और जिसका चारों ओर फैले होने के कारण रेखा रूप में ऐसा पाटल प्रकट आकार ——— प्रतीत होने लगता है कि जो मेरा इस प्रकार का (४) एक नवी नन्द द्विद्र अंक रूप है कि जिसका भृगुः नाम है और यह एक नवी अकार तीन अक्षर (अ उ म) के रूप ॐ कार के स्वरूप में १ अंक नाम बिन्दु और बिन्दु नाम ९ अंक बिन्दु का अव्यक्त स्वरूप है कि जो व्यक्त रूप में ∴ पांच बिन्दु का रूप है कि जो अ उ म का एक इस प्रकार गुप्त स्वरूप है कि जैसे वर्ग की मूर्ति [ ] होती है सो इन्हीं चिन्हों से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

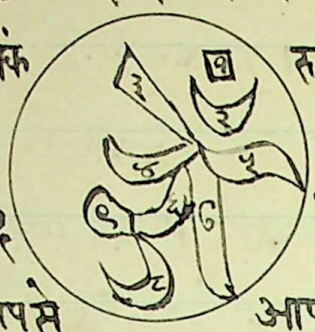

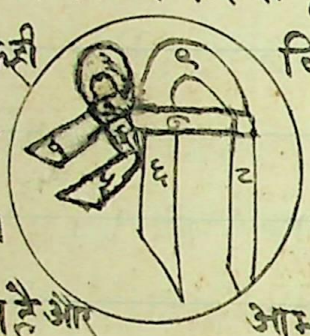

मेरा अव्यक्त से व्यक्त साकार ॐ अक्षर एक रूप शब्द स्वरूप आपसे आप एक अणु सी विन्दु से नन्द रूप में छिद्र और छिद्र रूप में अंक रूपी भृगुः जड़ नाम वस्तु एक अशुन्य आकार रूप प्रकट स्वरूप है इसी अशुन्य से जो सर्व कार्य और कारण मयी मेरा एको ब्रह्म रूप है प्रथम ॐ कार अक्षर शब्द में आने वाली मेरी अनामय अक्षर मूर्ति नन्द छिद्र अंक में ९ भाग रूप से आपसे आप सर्व शक्ति मान होने के कारण अव्यक्त से व्यक्त स्वरूप में प्रकट हुई है और मेरा अव्यक्त अनाम स्वरूप पूर्ण रूप से गगन वत चैतन्य रूप में ही प्रकाश मान है कि जो नन्द छिद्र अंक के रूप में अनेक प्रकार के अनंत रूपों में गोल आकृति रूप से नाना प्रकार की व्यक्त रूपी मूर्तियों का एक आकर्षण रूप बना हुआ है और इसी का नाम ९ अंक की एक ही विन्दु रूप में परा प्रकृति अर्थात श्री नाम शक्ति है कि जो इस एक ही बात को प्रकट करती है कि मेरा रूप और स्वरूप केवल निराकार अक्षत ॐ कार एक ही अक्षर का यथा अव्यक्त अरूप तेज स्वरूप सत्य लोक सत्य स्थान आदिम पुरुष का एक ही आभास है और आभास व्यक्त रूप साकार अक्षर व्यक्त स्वरूप में सत शांता परा प्रकृति मेरा नाम है कि जो मेरी ब्रह्म विद्या का मूल है और पुरुष प्रकृति संयोग रूप में एक ही स्वरूप विज्ञान मोक्ष विज्ञान मयी अद्वैत पद का साक्षात एक रस विश्व नाम नरव साकार रूप आलख निराकार स्वरूप है कि यही विज्ञान मयी ब्रह्म विद्या एक नाम और शक्ति आभास में व्यक्त रूप से अनंत काम स्वरूप है क्योंकि मेरी ये श्री नाम शक्ति अपरा रूप में पंची कृत अष्टि अहि का एक ही दशन रूप है कि जो चार चार ध्वनि नाद पाद स्वर के स्वरूप में अब्धि अर्थात शरीर चार कृत अर्थात क्रम चार गो नाम वियोग चार युग नाम योग चार सागर नाम सृष्टि चार वेद नाम ध्वनि नाद पाद स्वर का चतुर्ङ्ग ज्ञान चार इन २४ बातों का एक नाम जिन अर्थात २४ अंक के एक रूप में श्री साकार स्वरूप का २४ अंक रूपी एक ही सिद्ध नाम तत्व रूप में सिद्ध विद्या ब्रह्म विद्या मेरी शक्ति का नाम है कि जो मेरी शक्ति

नाना विद्यै रुपायै रुपकारिण्य नुपकारिणः पुंसः ।
गुणवत्य गुणस्य सतस्तस्यार्थम पार्थकं चरति ॥

अर्थात मेरे अमर स्वरूप नारायण आदि निराकार मात्रा रहित १६ + १६ = ३२ का उलटा सीधा एक रंग दशन नाम में ३० प्रकार की प्रकृति नारद नाम से सृष्टि संसार का साकार और मात्रा मान अन्तः करण नाम कृत शब्द अक्षर अर्थ में जो चार प्रकार के चार कर्म जाग्रत १ और स्वप्न २ और सुषुप्ति ३ तुर्य ४ ये चार कर्म चार गो नाम वियोग रूप में चार प्रकार से चार ही अवस्था रूप में चार शरीर चित्त १ अहंकार २ बुद्धि ३ मन ४ एक ही अब्धि नाम में युग रूप से सागर नाम सृष्टि के उपजने उगने दौड़ने चलने बढ़ने वाले आकृति मान प्रकृति के प्रकट और गुप्त रूप १ और एक ही आकृति रूप से अनेक रूप में प्रवेश की झलक दिखाने वाले अर्थात एक आकृति से दूसरी आकृति में बदल जाने वाले आकृति मान रूप २ और एक ही आकृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रूप से घुसने अर्थात एक आकृति से दूसरी आकृति में पृवेश करके अपने ही रूप से रहने वाली आकृति ३ और एक ही रूप से रहने वाली आकृति ४ और चारों का एक ही नाम सृष्टि में सागर नाम है और इसी सागर नाम सृष्टि का बेद नाम है कि जिसके चार्वाक शब्द अक्षर में चार नाद पाद स्वर ध्वनि चार रूप का मैं एक ही वेद नाम रूप में जानने वाला पुरुष हूं सो वेद नाम में मेरा चार्वाक ईश्वर रूपस्वरूप से अक्षर चार्वाक नाम है कि जिस चार्वाक शब्द अक्षा के अर्थ चार प्रकार की चार बाणी के हैं कि जिनके परा १ पश्यन्ति २ मध्मा ३ और वैखरी ४ नाम हैं इनमें (१) परा की उत्पति तो अहंकार से है और फुर्ना उसका रूप है कारण ये है कि फुर्ना के होते ही कारण नाम कारण शरीर द्वारा किसी न किसी प्रकार की वस्तु का संकल्प रचा जाता है और वह चित का व्यापार होकर --(२) पश्यन्ति बाणी कहलाता है और इस प्रकार संकल्प के साथ प्रयोजन रहा करता है और प्रयोजन का बान्धना बुद्धि का कर्तव्य है इसलिये ये इस प्रयोजन कर्तव्य का नाम (३) मध्मा बाणी है इस प्रकार प्रथम बाणी से दूसरी और दूसरी से तीसरी की उत्पति क्रम से होती है किंतु इन तीनों में काल अन्तर इतना थोड़ा होता है कि उसका उन्मान नहीं है कारण ये है कि इन तीनों का व्यापार अन्तर्य व्यापार है और मौन अवस्था है इसलिये नाद पाद स्वर इनके नाम हैं सो (४) ध्वनि रूप में चौथी बाणी सूक्ष्म शरीर तत चारतत अग्नि वायु जल पृथिवी का एक रूप धुवां स्वरूप आभास अवकाश अर्थ में आकाश शब्द रूप कि जिसमें मनका कार्य मिला हुआ है चौथी बाणी वैरवरी बाणी है जो पुरुष प्रकृति का संयोग रूप शब्द उच्चारण स्थूलाकार स्वरूप में पंची कृत प्रपंच नाम प्रपंची सृष्टि का प्रपंच बाणी रूप है कि नहीं है इस प्रकार सर्व ही प्रकार की मानुषी सृष्टि के नाना प्रकार के प्रपंच व्यापारों को श्री नाम शक्ति वैरवरी बाणी का शब्द उच्चारण रूप बनी हुई शक्ति नाम प्रकृति सुरत रूप आकृति सृष्टि आप ही आप अपनी सेवा १ उत्पति २ रक्षा ३ शिक्षा ४ चार कार्य रूप से जीत प्रीत मीत रीत बनी हुई मेरे ॐकार अक्षार स्वरूप की आश्रयण रहके अपने चारों आश्रम अर्थात ब्रह्मचर्य ब्रह्म शक्ति रूप १ और गृहस्त स्त्री रूप २ और बानपर्स्थ नाम में अनेक प्रकार के पांच पांच शस्त्र नाम शस्त्रवाण ३ और संन्यस्थ नाम में असंग अङ्ग नाम रूप में स्थूलाकार नाम रूपी अंङ्ग से रहित पूर्व १ पश्चिम २ उतर ३ दिक्षिण ४ ऊपर ५ नीचे ६ काल रूप में देश रूप अंग बनी हुई ९ भाग में सर्व अंक और मूर्तियों को रच कर मुझ को अपना निश्चय पति जानती और मानती ये प्रकृति शक्ति नाना प्रकार से मेरे असंग ॐकार अक्षर रूप की सेवा करती हुई और सेवा का पात्र कुछ भी न पाती हुयी ये गुणों वाली प्रकृति मेरे निर्गुण भाव को न देख करके भी कि मैं उसके साथ किसी प्रकार का इस कारण कि मैं गुणों वाला नहीं हूं अनंत हूं अपने गुणों को नहीं छोड़ती और मेरी सेवामें प्रवर्त रूप रहकर इसी प्रकार प्रधान बनी रहती है कि जिस प्रकार मक्खी पतंग दीपक की अग्नि में अपने को भस्म कर देता है इसी प्रकार विचित्र सुघड़ सुहावन जोबन वति गुणवन्ती गुणे गुणों में पूर्ण प्रकृति मेरी एक दृष्टि में ही अपना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपना तन मन धन मेरे साक्षी स्वरूप पर वारफेर अर्थात निछावर कर देती है अर्थात ये प्रकृति विधि के कंठ का रूप बना अपने को अतत प्रकट करती हुई मेरे अक्षत ॐ कार स्वरूप को ही आदि अंत रहित अनंत अक्षरों का एक ही अक्षर स्वरूप होना निश्चय किये रहती है और फिर भी वर्णन करती है कि परा पश्यन्ति मध्मा वाणी का जो कारण रूप एक ही ॐ कार अक्षर है उसी एक अक्षर का आभास स्वरूप मेरा शक्ति नाम में श्री नाम मायावी व्यक्त रूप है कि जो प्रकृति श्री शक्ति रूप से प्रकट में वैखरी बाणी आकृति में श्री नाम शक्ति शक्ति ही है क्योंकि शक्ति में

शक्ति का वैखरी वाणि वाच ही ये है } अक्षराणामकारो सत्तो हि तत् न उच्यते मेशांत श्री । ( श्री श्रुति 1)
श्री नां प्रकृतिः लीनमकारो रङ्गस्य नित्यं जगतो निर्तमयी ॥

अर्थ ये हैं कि अक्षरों के मध्य अक्षर नाम में आकारः नाम ॐ एक सत अक्षर है वही अक्षर निश्चय स्वरूप तत रूप है उस उच्य तत स्वरूप से मैं शांत रूप शक्ति उच्य नहीं हूं कारण ये है कि श्री नाम शक्ति रूप में मेरा प्रकृति नाम से ॐ कार में लय रूप है किंतु भानमति जैसे एक नाच में जगत नाम संसार सृष्टि कोई वस्तु नहीं मेरा ही बहरूप्यों जैसा नाच है और इस नाच का नाम यथा अर्थ इस दूसरी श्रुति से खुलता है कि

लौकिक मांगलिक वस्तु शब्द वाच लेख नाना श्रावन्तु लखलख्त्यः । २ ॥
शंभूः चतुर्दश डमरु ध्वनिं शूत्र इन्द्रो ॐ अमरो कल्प कल्पामे श्री ए बैखरी ॥

अर्थ – संसार के व्यापार में पदार्थ रूपी पदार्थ शब्द जो बोलने और लिखने में आते हैं और भांति भांति करके सुनने में आते हैं तथा दृष्टि भेद में भेद दृष्टि से देख जाते हैं ये सब शंभूः नाम एक ही अनंत जड़ों में जड़ मूल चैतन्य ही चैतन्य आत्मा परमात्मा शंभूः नाम के एक अर्थ सर्व आकृतियों में एक ही स्वरूप प्रवेश रूप की १४ डमरु ध्वनि अर्थात कारण कार्य रूप और कार्य कारण रूप सूत्र नाम डोरी में डोरी का डमरु अर्थात खञ्जरी नाम घट कि जिस घट में ध्वनि नाम बाणी डोरी के रूप में इन्द्रः नाम रूप में जो एक एक करके १४ रूपों का एक बाणी नाम आकृति है वही ॐ अक्षर अमर स्वरूप में अनंत रूप में कल्प नाम पलक झपाकी वहम मिथ्या कल्पना में कल्पा नाम कालका काली आकाशवति रूप राजत्रिङ्गनी इन्द्र अपसरा मेन्का नर्त्य रूप में मेरा श्री नाम शक्ति में जो अ इ अक्षर के ए अक्षर अर्थ में एक आदि और अंत वाला स्वरूप है वही बैखरी बाणी रूप में सृष्टि संसार का एक रूप है कि यही मेरा नाच नाचना है कि जिस नाच नाचने में मेरे पति शंभूः नाम की जो १४ डमरु ध्वनि १४ शूत्र रूप में इन्द्र अकार ॐ कार का अमर ब्रह्म का श्री नाम में बैखरी बाणी आभास शक्ति रूप है वही परा पश्यन्ति मध्मा का एक ही अवकाश में ॐ कार आभास बैखरी बाणी नाम कारण रूप में प्राक नाम व्याकरण १४ शूत्र शब्द ज्ञान रूप अक्षर संपूर्ण ॐ कार वेद अक्षर शब्द ज्ञान का हेतु मूल रूप शब्द अनुशासन इस प्रकार पर है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

# प्राक प्राकृत
## १४ डमरु ध्वनि १४ शूत्र इन्दु अकार
## ॐ कार
## आभास
## श्रीरूप
## पूर्ण ॐ कार शब्द अक्षर अर्थ ॐ कार वेद प्राक अक्षरव्याकरण
## ॐ श्री ॐ

### भृगुः

(अ) (अ) का अर्थ

(१) प्राक शब्द अक्षर के अर्थ एक अक्षर के हैं और अक्षर एक विभव विश्व विशेषता के अनंत स्वरूपों के एक ही अव्यय अविनाशी अचल अकाल रूप असंग और स्वतंत्र स्वरूप के हैं कि जो काल रहित सर्व शक्ति मान दिव्य चमकनेवाले महान्तमादित्य अर्थात अनंत सूर्यों के एक ही सूर्य के रूप में एक ही ऐसे रूप का नाम है कि जो अन्धकार में सूर्य की भांति प्रकाश मान हो और वह अ ॐ कार अक्षर है -

(२) प्राकृत प्राक नाम ॐ कार एक ही अक्षर की एक अक्षर के नाम में (प्राक १ र ३ त ६) अर्थात ऐसी ९ शक्तियों के गुप्त रूप का नाम है कि जो १ आकृति से तीन गुण वाली शक्ति हो और फिर उस गुण की एक एक शक्ति ९ रूप हो अर्थात एक एक आकृति में ३+६=९ या ३×६=१८ के और ८+१=९ के पूरी संख्या हो सो ऐसा रत नाम शरीर है कि जो श्री नाम से विन्दु रूप है कि जो गुप्त भाव में ९ शक्ति का गुप्त रूप और प्रकट भाव में श्री नाम आभास श्रीरूप विकार मान रूप है अर्थात जो इस प्रकार (०) विन्दु १ का रूप एक स्वरूप और एक विन्दु का रूप होकर दशरथ नाम में अपने को दश शरीर होना प्रकट करे और ९ गुप्त शक्तियों का १ प्रकट रूप में १ ही स्वरूप रहे और जब ये १ इकाई प्राक के एक अक्षर के स्वयं आवे तो ११ का लक्ष दिखावे और ११×३=३३ के ३३ के अंक में अपना अमर अनंत रूप बतलावे और इकाई में १००० रंग उत्पन्न करे और कोटि नाम क्रोड़ में पूरी क्रोड इकाईयों का और लक्ष में लक्ष इकाइयों का रंग दिखाता हुआ प्राक की एक ही आदिम इकाई में करोड लक्ष और सहस्त्र का चमत्कार दिखाकर प्राक ही प्राक का होना निश्चय करता रहे उसी का नाम (परा कृत) अर्थात अपार सत्य स्वरूप में प्राकृत नाम है कि जिस में १० शक्ति का मालिक प्राक अक्षर असंग और अगम विधि से साक्षी ही है अर्थात ये शक्ति पुरोहित नाम १ प्रतिनिधि नाम २ प्रधान नाम ३ सचिव नाम ४ मंत्री नाम ५ प्राड्विवांक नाम ६ पंडित नाम ७ सुमन्त्र नाम ८ अमात्य नाम ९ और दूत नाम १० दश प्रकार के कार्यों को करने वाली एक ही शक्ति नाम प्राकृत श्री नाम शक्ति है कि ३ गुण ६ अंग ६ रस ६ ऋतु रूप में धनुर नाम चतुर प्रोधा नाम आचार्य विद्या अविद्या का एक रूप योधा विज्ञान रूप व्यापार रूप यमरूप - दिव्य कोश रूप वस्तु कोश रूप उदय अस्त रूप शक्ति १० रूप जो श्री नाम शक्ति अक्षर है प्राक में प्राकृत का लक्ष है और श्री प्राकृत नाम है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२३० (३) डमरुध्वनि स्वासा स्वर का नाम है कि जिसके सूर्य गर्म चन्द्र शीतल और सुषुमना भारी रूप में तीन गुण रूप होते है और शूत्र तीन लड की एक भान में बटी हुयी अर्थात बली हुयी रजरस्सी का नाम है

(४) ध्वीन शूत्र के ॐ कार अक्षर आभास के जो श्रीरूप में १४ शूत्र हैं ये हैं

अ इ उ ण ॥१॥ ऋ लृ क ॥२॥ ए ओ ङ ॥३॥ ऐ औ च ॥४॥ ह य व र ट ॥५॥ ल ण ॥६॥ ञ म ङ ण न म ॥७॥ झ भ ञ ॥८॥ घ ढ ध ष ॥९॥ ज ब ग ड द श ॥१०॥ ख फ छ ठ थ च ट त व ॥११॥ क प य ॥१२॥ श ष स र ॥१३॥ ह ल ॥ १४ ॥

अनंत सर्वज्ञ

इनमें पहले शूत्र के अ इ उ ण चार अक्षर हैं इनका नाम लघु स्वर है कि ये अ ॐ अक्षर का एक रूप है अर्थात ये शूत्र अ की दो योजना चार मात्रा का रूप है और (इ) म अक्षर की मात्रा में (ि) ऐसा रूप है और (उ) की मात्रा (७) ये है और ण की मात्रा (·) अनुस्वर रूप है और इनमें अ इ उ की वृद्धि होने से आ ई ऊ क्रम से प्रकट होते हैं और दीर्घ स्वर रूप हैं जैसे आ से (ा) ये मात्रा और ई से (ी) ये मात्रा और ऊ से (ू) ये मात्रा के रूप हैं और अ इ के परस्पर संबन्ध से ए उत्पन्न होता है और आ ई के मिलने से ऐ सिद्ध होता है अ और उ के मिलने से ओ बनता है और आ और ऊ के मिलने से औ बनता है और ये चारों गुण मात्रा रूप हैं जैसे कि ए की मात्रा (े) ये है और ऐ की मात्रा (ै) है और ओ की मात्रा (ो) ये है और औ की मात्रा (ौ) ये है स्वास को नासिका द्वारा बाहर निकालते हुए अ को उच्चारण करने से इस भांति (·) अनुस्वार बन्ता है और जब किसी अक्षर के मस्तक पर होता है तो ङ ञ ण न म अक्षर से कसी एक अक्षर का उच्चारण होता है और परोक्ष रूप से अ आप भी अनुस्वार विन्दु में अव्यक्त रहता है और अक्षर रूप में अपरोक्ष का लक्ष दिखाता है जैस (भूतानां भोक्ता) है इस स्थान पर नां के साथ अ भोगता और अ भोता दोनों होंगे किंतु उच्चारण में अभोक्ता ही आयगा और जब अ पर ही अनुस्वार विन्दु आएगी तो (अं) ऐसा रूप होगा और स्वास को मुख से निकालते हुए अ के उच्चारण करने से विसर्ग (:) बनता है कि जो ओ की मात्रा में ये श्र के स्थान पर सर्वज्ञ के लक्ष का अर्थ दिखाती है और अपना ऐसा लक्ष प्रकटाती है (अः) इस प्रकार प्रथम के तीन अक्षरो को चौगणा करने से १२ स्वर सिद्ध होते हैं। इसके आगे दूसरा शूत्र है कि जिस में ३ अक्षर ऋ लृ क हैं इनमें क एक ही व्यञ्जन अक्षर है और ऋ लृ दोनों स्वर हैं और इस प्रकार ये १४ डमरुध्वनि स्वर एक इन्द्र रूप में शूत्र का स्वरूप हैं जो दोनों स्वर आपुस्में संबंध रूप से ऋ और लृ को उत्पन्न कर १६ कला का रंग दिखाते हैं और स्वर तीन हैं कि जिन तीनों में एक क अक्षर दो स्वरूप है इस लिये १६×२+१ = ३३ के होते हैं सो ॐ कार अक्षर के आभास श्री नाम श्रुति परा नाम प्रकृति से ३३ व्यञ्जन अक्षर की संख्या में ३३ का अंक अमर रूप है कि जो शक्ति अक्षर कहलाते हैं कि जिस में से हर एक व्यञ्जन अक्षर का केवल क व्यञ्जन अक्षर रूप है और क अक्षर ॐ कार की दो योजना के रूप में विसर्ग (:) विन्दु के रूप में सुषुमना नाम एक स्वर दो रूप एक अनंत प्रकाशमान कला कलि निष्कलङ्क आदि आदि रूप में एक ही स्वर रूप है क्योंकि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ॐ (अ) अकार अक्षररूपमें छ विन्दुकेरूपसे (∴) ऐसा एकस्वरूप है कि जो प्रकट प्रतीत में तीन विन्दु एक खड़ी रेखा और तीन विन्दु त्रिकोण का रूप नासिका जैसा स्वरूप है और एक नासिका ही क अक्षर में कलि तथा तीन स्वर तीन गुण का एक प्रकाश रूप है कि जो एक रूप तीन गुण तीन स्वर प्रकाश स्वरूप है इसलिये एक ही क अक्षर खडी रेखा और त्रिकोण रूप की तीन विन्दु में दो विन्दुवों का ऐसा (··) रूप है और दो विन्दु अ अक्षर का विसर्ग रूप है इसलिये क अक्षर विसर्ग रूपमें अ अक्षर का स्वरूप है कि जिस अ अक्षर के (क) अक्षर अक्षर के रूप में अर्थात विश्व[१३] नाम सृष्टि जो प्रकाश रूप है और श्री अक्षर नाम में दश प्रकार की अ एक ही अक्षर की शक्ति स्वरूप है इसके एक ही (क) अक्षर के रूप में १२ स्वर है कारण ये है कि ऋ अक्षर ६ स्वर का एक रूप बीज रूप में अग्नि का रूप सूर्य स्वर तीन गुण तीन रूप है कि दो (र) अक्षर को कि जो अक्षर अग्नि बीज रूप है एक स्वरूप है इसी प्रकार ऌ अक्षर ६ स्वर का एक रूप में पृथिवी और अग्नि का रूप दो अक्षर के एक संयोग रूप में (ल र) ऌ का रूप है इस प्रकार १२ स्वर सूर्य स्वर के ६ अङ्ग रूप में १ और चन्द्र स्वर ६ अङ्ग रूप में १ सब मिलकर ६+६+१+१=१४ डमरु ध्वनि हैं और १४ डमरु ध्वीन १४ शूत्र रूप में इन्द्राकार में प्रकाश रूप और नाश रूप हैं जैसे कि उज्यारा और अन्धारा इसलिये १४+१४+१+१= होते हैं ३० के कि जो ३० प्रकार की प्रकृति के नाम से नारद नाम रखती है और प्रकृति ३ गुण वाली है इस लिये ३०+३=३३ के सो ३३ अक्षर क अक्षर रूप में श्री नाम से एक ही अ अक्षर ॐकार का अनादि अनंत प्रकाश रूप है इसलिये मेरे अनामय रूप में श्री नाम शक्ति का ३३ प्राक परा कृत अक्षर ॐ कार अ आकार में श्री शक्ति अमर रूप से लीन रहती है और इन ३३ व्यञ्जन अक्षर के पृथक पृथक करके एक एक के परा कृत १०-१० प्राक अक्षर शब्द अर्थ हैं और उन दश दश शब्द अर्थों के पृथक पृथक करके एक एक के सहस्र[१०००] सहस्र[१०००] शब्द अर्थ हैं और इन सहस्र[१०००] सहस्र[१०००] शब्दों के लक्ष[१०००००] - लक्ष[१०००००] - लक्षार्थ हैं और इन लक्ष[१०००००] - लक्ष[१०००००] लक्षार्थ शब्दों के कोटि कोटि अर्थात एक एक करोड़ शब्द अक्षर अक्षर अर्थ हैं और इस प्रकार ३३ शक्ति अक्षर में एक एक अक्षर जो व्यञ्जन शक्ति रूप है श्री शक्ति के रूप में क अक्षर का रूप है और क अक्षर अ का आभास है कि जो इकाई १ में दहाई दश[१०] और दहाई में सहस्र[१०००] और सहस्र में लक्ष[१००००] और लक्ष में कोटि[१००००००] को लिये हुए ३३-३३ कोटि के रूप में आदि अंत रहित मेरा अ अकार ॐ अक्षर एक अनंत रूप है और इतना ही ॐ कार वेद प्राक अक्षर व्याकरण है कि श्री नाम शक्ति सृष्टि की कोई बाणी कोई राग कोई वस्तु और किसी प्रकार का कोई अक्षर आकृति रूप और कोई विद्या इसके अतिरिक्त इस से भिन्न इसके बाहर नहीं हैं कि सब विद्या सब बाणी और सब पदार्थ इसे के अन्तरगति हैं सो इस प्रकार ॐ कार भृगुः नाम में अ अक्षर रूप का अर्थात तीन गुण तीन स्वर तीन रूप का ३×३×३= २७ के २७ अंक नाम का भ अक्षर र अक्षर में तीन अग्नि का बीज गुः[३] नाम ग्राम[३] अधिष्ठान भृगुः नाम नाम रूप में आवा गमन करने वाली जो प्रकाश रूप में व्यक्त रूप माया शक्ति है उस शक्ति से असंग आवा गमन से रहित अनंत शक्ति वाला स्वतंत्र पुरुष ॐ कार नाम अकार अर्थात अकार रहित

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२३२ अ शक्ति व्यञ्जन अक्षर रूप में परा कृत श्री शक्ति का प्राक एक निराकार स्वतंत्र जो प्राकृत रूप अक्षर अर्थ में अद्वैत १ अनंत २ अक्रिय ३ अखंड ४ अचिंत ५ आगम ६ अव्यय ७ अपार ८ ओंकार ९ अविनाशी १० शक्तियों का अधिष्ठान अनादि आदिम आदि एक ही अलक्ष रूप निर्लक्ष अक्षर है मैं हूं - प्रत्यक्ष प्रमाण ये हैं

(३) यज्ञानां शब्द अक्षर अर्थ में यज्ञा शब्द के अर्थ सृष्टि संसार के हैं और नां शब्द अक्षर अर्थ में नां के अर्थ अनाम के हैं सो यज्ञानां के अर्थ - आदिम आदि निराकार अनामय का जो सर्वज्ञ साकार स्वरूप है इसीका एक नाम यज्ञा नाम है कि जो जं १५ पयज्ञः स्वर प्रकाश रूप इन्दु नाम का एक साकार सृष्टि रूप है कि जिसके अकार और विनाश दो रूप हैं इसलिये श्री नाम अमर शक्ति यज्ञः नाम रूप में १६ - १६ कला रूप है कि उलटी सीधी एक ही रूप है कारण ये है कि संसार की पृथक पृथक करके जितनी वस्तु हैं वह प्राकृत रूप में ही १०-१० अंक के रूप में किसी ने किसी प्रकार का एक आकार है और वही आकार ३३ आकार का एक व्यक्त रूप है और आकार तीन तीन तीन प्रकार की आकार मात्राओं से बनता है जैसे चूना १ तोला एक योजना और सज्जी १ तोला दूसरी योजना रूप है यदि इन दोनों में दो दो तोले पानी को मिला दिया जाय तो पाने अ आकार में ४ मात्रा का रूप हुआ और तीन गुण वाली तीन वस्तु के मिलने से एक प्रकार की लून जैसी खारी वस्तु नवीन प्रकट होगई यदि इसी नवीन वस्तु में कि जितनी ये है इतना है गेहूं का मैदा और जितना मैदा और ये वस्तु है इस का दोगुना तेल मिलाकर घोटा जाये तो एक प्रकार का साबन बन जायेगा और ये एक ही वस्तु पराकृत रूप है और प्रमाण इसका तीन गुण ६ अंग एक रूप फिर ३ गुण ६ अंग से दूसरा रूप साबन हुआ इस प्रकार साबन १४ डमरु ध्वनि में १४ शून्य का एक रूप इन्दु १२ स्वर का १६ संस्कार रूप एक अकार हुआ कि होने पर भी नहीं सो इस प्रकार यज्ञानाम में जप यज्ञ अर्थात सृष्टि क्रम का जो कार्य कारण एक क्रम का प्रकृति कार्य कारण से स्वतंत्र है वही मैं जप शब्द अक्षर में अजप अक्षर रूप हूं कि निर्विकार अविनाशी और परम अपार रूप हूं यहाँ प्राक अक्षर थ कारण का विशेष विस्तार है और वह ये है कि

१४ शून्य में व्यञ्जन अक्षर की संख्या ३३ है कि जो इस प्रकार पर हैं कि -

क - ख - ग - घ ङ - च छ ज झ ञ - ट ठ ड - ढ - ण - त - थ

द - ध न - प - फ - ब - भ - म - य - र - ल - व - श - ष - स - ह

इनमें क ग च ज ट ड त द प ब ये १० अक्षर प्राण वायु द्वारा श्वास को बाहर से भीतर की ओर खेंचने से बोले जाते हैं - और ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ ह यह ११ अक्षर अपान वायु द्वारा श्वास को भीतर से बाहर निकालते बोलने में आते हैं और ङ ञ ण न म ये पांच अक्षर उदान वायु द्वारा श्वास को नासिका से निकालते हुए उत्पन्न होते हैं और - य र ल व श ष स ह इन सात अक्षरों की उत्पत्ति समान वायु से है और इनके उच्चारण में और व्यञ्जनों के स्पर्श थोड़ा परिश्रम होता है और क ख ग ज ड ढ फ के नीचे बिंदी लगाने से बोलने में अन्तर पड़ जाता है जैसे पढ़ना आगे तीन अक्षर कि जिनको व्यञ्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

रूप दिया जाता है ह्रा - व्र - ज्ञ हैं यह एक एक अक्षर जपा की क्रिया द्वारा तीन तीन व्यञ्जन का एक एक रूप त्रिगुणी है कि प्रकृति के प्राक्रम को दिखाता हुआ उत्पति नाश और सहायता रूप हैं इनमें ह्र तो विधि का नाम है व्र निषेध का नाम है और ज्ञ शक्ति का नाम है कि जिनमें ह्रा (अ क श) का एक रूप है और गुण इसका रज है और ब्रह्मा इसका नाम है और यही अपान वायु में ११ अक्षरों का एक स्वरूप अक्षर है दूसरा व्र अक्षर (त र अ) का गुप्त रूप है गुण इसका तम है और ये प्राण वायु के रूप में १० अक्षरों का एक रूप है और तीसरा ज्ञ ये (ग य ण) का गुप्त अक्षर रूप है और गुण इसका सत है और उदान समान वायु के रूप में १२ अक्षरों का रूप है इस प्रकार सृष्टि क्रम में सृष्टि पदार्थ उत्पति की ११ विनाश की १० पालन की ८ और पोषण की ५ क्रिया प्रकृति शक्ति द्वारा आप से आप हैं आगे

स अक्षर शब्द सत १ सनातन २ सर्व ३ सार साध ४ सर्वज्ञ ६ सर्वत्र ७ साम ८ समस्त ९ सागर १० साकार में ११ का एक लक्ष शक्ति रूप है कि जिस प्रकार क्ष त्र ज्ञ ये तीनों अक्षर श्री अक्षर भांति श्री अक्षर हैं इसी प्रकार (स) सकार अक्षर साकार रूप में सब से उत्तम और निरायास शक्ति अक्षर है कि वह (सो ॐ हं) का पहला अक्षर है और (हंसम) शब्द का दूसरा अक्षर है कि जो उत्पति और लय का एक ही अधिष्ठान रूप में सम रूप है इसी प्रकार हं शब्द अक्षर «सो ॐ हं» में कि जिस के ये अर्थ हैं कि (सः ॐ हं) मैं एक ही आत्मा हूं आत्म भाव के अंत रूप को और (हंसम) में आत्म भाव के आदि रूप को आदि और अंत से रहित का लक्ष दिखाता और प्रतीत कराता हुआ आत्मा का अनंत रूप होना प्रकट करता है और हंसम के आत्म अर्थ को इस प्रकार खोलता है कि जब प्राण और अपान दोनों व्यान के अन्तर लय होजाते हैं तब बैखरी वाणी बनती है और स्वर शक्ति की उत्पति होकर सब से प्रथम «सो हं» शब्द रूप में (ह) अक्षर शब्द को ही व्यक्त करती है और फिर अंत में भी ह शब्द अक्षर रूप का लक्ष दिखाती है इस प्रकार हकार अक्षर आदि अंत का एक ही अनंत अक्षर है और इस प्रकार अ अक्षर का विसर्ग रूप में (:) स बीज रूप अक्षर १ और प्रणव के रूप में ॐ कार २ और आकाश बीज रूप में हं अक्षर ३ और वायु बीज अक्षर रूप में श्री अक्षर का रूप यं अक्षर ४ और अग्नि बीज अक्षर के रूप में व्र शक्ति अक्षर का एक रूप अक्षर रं ५ और वरुण बीज अक्षर रूप में ज्ञ शक्ति अक्षर का बीज अक्षर वं ६ और पृथिवी बीज अक्षर में क्ष शक्ति अक्षर का बीज रूप में लं अक्षर ७ ये सात अक्षर अपार अक्षर हैं और इन्हीं के एक संस्कार रूप में स अक्षर से अनंत रूप परा वाणी संस्कृत रूप में बैखरी वाणी के नाम से अनेक वाणियों में सात वि भक्ति रूप एक वाणी है कि जो सब से उत्तम और श्रेष्ठ है कि प्राक प्राकृत के अव्यय असंग अक्षर अलक्ष के दिव्य अर्थ को एक ही इकाई पुरुष स्वरूप को असंग और स्वतः स्वतंत्र प्रकट करती हुई उस स्वरूप की शक्ति को ही दश नाम पुरोहित प्रतिनिधि प्रधान सचिव मन्त्री प्राड्विवाक पंडित सुमन्त्र अमात्य दूत इन दश प्रकार की प्राकृति का एक नाम श्री और श्री शक्ति नाम का एक नाम सप्त व्याहृति और सप्त व्याहृति का एक नाम सप्त विभक्ति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२३५ और सप्त विभक्ति का एक नाम सृष्टि और सृष्टि का एक नाम संसार संस्कार संसृति और संसृति का एक नाम संस्कृति है और संस्कृति का अर्थात संस्कृत का आप से आप ही इसी प्रकार कि जैसे विना व्याकरण के ज्ञान के शब्द और शब्द अक्षर के अर्थ बोद्ध और विना न्याय के ज्ञान के जगत पदार्थ का बोद्ध और विना तर्क शास्त्र के आभास का बोद्ध और विना कर्म कांड के ज्ञान के मीमांसा का बोद्ध और विना वेदांत के ज्ञान के जगत की असारता और देह की अनित्यता का बोद्ध आप से आप है इसीप्रकार लौकिक व्यवहारोंमें संसृति संस्कृति संस्कृत का बोद्ध आप से आप है और उसकी श्री शक्ति रूपमें इसप्रकार सामान्य शिक्षा है -

## यज्ञानाम ।
## श्री
## संस्कृति संस्कृत
### सामान्य शिक्षा

(१) अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये १६ वर्णी १६ अक्षरा स्वा अक्षर हैं इनमें
(२) अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ - ये नव वर्ण अक्षर मूल स्वर हैं कि ९×३ = २७ के एक म अक्षर रूप हैं
(३) अ ह स ये तीन अक्षर (:) विसर्ग रूप हैं ३३×३ = ९९ के पुरुष प्रकृति संयोग रूप में तीनों ही ॐ कार प्रणव रूप हैं इसलिये सब से श्रेष्ठ और उत्तम हैं -
(४) क ख ग घ ङ ये पांच अक्षर कवर्ग रूप हैं कि गगन वत्त सृष्टि प्रकाश रूप हैं कंठस्थान हैं -
(५) इ य श च छ ज झ ञ - ये आठ अक्षर चवर्ग रूप वायुस्वरूप हैं और तालुस्थान हैं -
(६) ऋ र ष ट ठ ड ढ ण - ये आठ अक्षर टवर्ग रूप अग्नि स्वरूप हैं और मूर्धास्थान हैं -
(७) ऌ ल स त थ द ध न - ये आठों तवर्ग रूप पृथिवी स्वरूप हैं और दन्तस्थान हैं -
(८) उ - ये अक्षर उपध्मानीय है कि फुणा रूप है और (प फ) का स्वरूप उलटा सीधा एक ही रूप है जैसे पुरोहित और फेरन्दु कि दोनों के एक अर्थ हैं इसी प्रकार प फ फुणा रूप हैं
(९) प फ ब भ म ये पांचो अक्षर व अक्षर के रूप में पवर्ग रूप जल स्वरूप हैं और ओष्ठस्थान हैं
(१०) व अक्षर दंतोष्ठ रूप में असंग स्वरूप ॐ कार रूप है हं के तुल्य है कि भाप रूप में जीव रूप है
(११) ङ ञ ण न म ये पांचों अक्षर (ं) अनुस्वार रूप अ का स्वरूप है और अवकाश में आकाश यथा नासिका स्थान है
(१२) क - ख दोनों अक्षर प्रकाश आकाश रूप में जिह्वामूलीय जिह्वा मूलस्थान हैं -
(१३) ॐ कार अक्षर के प्रयत्न दो हैं अगोचर और गोचर अगोचर का नाम आभ्यंतर अर्थात अव्यक्त है और वह ॐ अक्षर है और गोचर का नाम बाह्य अर्थात व्यक्त है और वह ॐ कार अक्षर का आभास श्री नाम का अक्षर है और इन अक्षरों के दो रूप हैं एक आभ्यंतर और दूसरा बाह्य और इन दोनों रूपों का [illegible] है इसलिये प्रयत्न में अक्षरों में ये हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१४) क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म ये २५ अक्षर तत्व रूप में वायु सम प्रयत्न में स्पर्श रूप सपृष्ट हैं कि अषृ - अषृ कला रूप हैं और य र ल व ये चार अक्षर चार प्रकार के चार बीज रूप में वायु अग्नि पृथिवी जल के रूप में अंतस्थ अर्थात गुप्त रूप में एक ही रूप ईषत्स्पृष्ट पक्ष दशन रूप में ३२-३२- कला रूप में एक अमर नाम अमा रूप हैं और श ष स ह ये चार अक्षर ऊष्म अर्थात उत्कृष्ट रूप में आकाश नाम ईषद्विवृत पुरुष प्रकृति संयोग रूप में एक ही अक्षर ॐ कार रूप हैं और अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ ये १४ अक्षर १४ द्युमत अर्थात १४ शून्य रूप में विवृत रूप हैं किंतु इनमें भी अ अक्षर संवृत रूप है कि केवल एक अ अक्षर ही सर्व चमत्कार रूप है (१५) क ख ग घ ये चार अक्षर गले निकलते हैं और गला निषाद के पर्दे के तुल्य है इस लिये ये प्रथम स्वर में प्रथम विभक्ति में एक स्वर में तीन स्वर एकत्व द्विव बहुवचन रूप में सप्त विभक्ति से एक विभक्ति स्थान और सात प्रकार के स्वरों से एक स्वर रूप हैं और (२) च छ ज झ ये चार अक्षर तालु से निकलते हैं और तालु धैवत के पर्दे के समान है इसलिये ये दूसरी विभक्ति और दूसरे स्वर रूप हैं और (३) ट ठ ड ढ ये चार अक्षर जिह्वा से निकलते हैं और जिह्वा पञ्चम के पर्दे के तुल्य है इसलिये ये तीसरी विभक्ति और तीसरे स्वर रूप हैं और (४) त थ द ध ये चार अक्षर दाँतों से निकलते हैं और मध्यम के पर्दे के तुल्य हैं इसलिये चौथी विभक्ति और चौथे स्वर रूप हैं और (५) प फ ब भ म ये चार अक्षर होंठों से निकलते हैं और होंठ गंधार के पर्दे के समान हैं इसलिये ये पाँचवी विभक्ति और पाँचवे स्वर रूप हैं और (६) ङ ञ ण न म ये पाँच अक्षर नाक से निकलते हैं और नाक ऋषभ के पर्दे के समान है इसलिये ये छठी विभक्ति और छठे स्वर के तुल्य हैं और (६) य र ल व श ष स ह ये आठ अक्षर मुख से निकलते हैं और मुख स्वर के पर्दे समान है इस लिये ये सातवी विभक्ति और सातवे स्वर के समान है और (७) क्ष त्र ज्ञ ये तीन अक्षर तीन स्वर रूप में क्ष अक्षर उदात्त स्वर रूप है और त्र अक्षर अनुदात्त स्वर रूप है और ज्ञ अक्षर स्वरित स्वर रूप है और सप्त स्थान से सात प्रकार के स्वर निकलते हैं इसलिये तीन स्वर के भेद से सात को तीन से गुणा करने पर ७ × ३ = २१ के सब २१ प्रकार के स्वर सिद्ध होते हैं इसलिये सर्व पशु पक्षी मनुष्य आदि और सर्व प्रकार के बाजों के संपूर्ण ताट में २१ स्थान हुआ करते हैं कि जिनका विभाग सात प्रकृति और तीन गुणों के अनुसार अर्थात सात विभक्ति और पृथक पृथक करके एक एक विभक्ति में एक वचन द्विवचन बहुवचन रूप से सर्व प्रकार की वाणियाँ हैं और वाणी का नाम सांगीत है और सांगीत का परिमाण वाणी की उच्चारण क्रिया है कि जिसमें थोड़े बहुत समय का उन्मान किया जाता है कि जिस का नाम शब्द वाक् और छन्द है और इसी का साम नाम अथ में स्वर नाम है और स्वर के दो रूप परोक्ष और अपरोक्ष हैं कि जिनमें परोक्ष का नाम लय और अपरोक्ष का नाम ताल है किंतु लय का एक दूसरा नाम बेताल भी है इसलिये ताल बे ताल [illegible] आकृति [illegible] कर्मादित्य अर्थात कर्म रहित सूर्य के ही आधीन रहते हैं इसलिये वाणी का नाम गायत्री छन्द है कि जिसमें परिमाण का कोई नियम नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्यों के ताल का बेताल अर्थ है और बेताल शक्ति रूप में ब्रह्म विद्या है कि जो ताल रूप है वही श्री अक्षर रूप से बेताल रूप में लय रूप है कि १६ स्वर में यज्ञानाम सृष्टि का प्रकाश रूप १६ प्रकार का यज्ञः रूप एक ही जपयज्ञः रूप में गायत्री छन्द नाम बाणी साम रूप स्वासा अर्थात स्वर रूप है कि सब कुछ होने पर भी नहीं है इसी का नाम सामान्य शिक्षा है आगे विशेष शिक्षा ये है -

यज्ञा नाम ।

श्री

संस्कृति संस्कृत -

विशेष शिक्षा ।

सर्व भूतेषु चात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वराज्यमधिगच्छति ॥

अर्थ - सब नाम रूप रसों में उदित रूप से मैं चैतन्य देव चैतन्य आत्मा नाम हूं और सब नाम रूप रस स्वरूप में प्रकट और गुप्त जो दृष्ट और अदृष्ट है ये सब मेरी चैतन्य आत्मा का ही रूप है और मैं एक रस सत नेत्र सत दृष्टा आप अपने आत्म यज्ञ में लगा हुआ स्वतंत्र मोक्ष रूप से एक धर्म रूप में आत्मा परमात्मा के नाम के स्वतन्त्र असंग पद अद्वैत रूप को प्राप्त रहता हूं -

देश कालानवच्छिन्न सर्व विक्रिया रहित यज्ञानां मम ।
सत्यमित्येतावदिदं सर्व मिदं सर्व मसि प्रथमा संबोधन ॥

अर्थ - देश काल वस्तु की पहचान मेरे देश काल वस्तु से रहित और सर्व क्रियावों से रहित एक रस स्वरूप में नहीं है कारण ये है कि यज्ञानामम शब्द अक्षर अर्थ में वायु तुल्य सत्य आदि नाम मेरा है मैं सत्य हूं तत हूं आकाश रूप में एक स्वरूप सब कुछ हूं सर्वत्र मैं हूं पूर्ण मैं हूं (कर्ता मैं हूं और संबोधन मैं हूं) अर्थात आदि अंत का एक स्वरूप अनंत रूप अनंत शक्ति ही शक्ति मैं हूं

- बस इतनी ही विशेष शिक्षा है किंतु आदि और अंत का एक अनंत ॐ कार मेरा अक्षर स्वरूप है कि जो अपरोक्ष रूप में सृष्टि नाम से यज्ञ नाम प्रसिद्ध है और यज्ञा नाम सात विभक्तियों में प्रथमा[१] द्वितीया[२] तृतीया[३] चतुर्थी[४] पञ्चमी[५] षष्ठी[६] और सप्तमी[७] रूप में श्री अक्षर रूप से प्रकृति रूप हैं इस लिये एक[१] सात[७] एक ही स्वरूप हैं परन्तु ये सात विभक्तियां कर्ता आदिक अर्थ में होती हैं जैसे कि प्रथम कह्या है कि सब प्रकार की बाणी एक ही बाणी ब्रह्म बाणी है और सप्त स्थान और तीन स्वर रूप है इस लिये १ स्वर ३ का रूप है और ३ का रूप ६ का स्वरूप है इस प्रकार १+६+३=१० के १-३-६ में एक ही परा प्रकृति का प्राप्त रूप है इस लिये जो प्रथमा है वही संबोधन अर्थात सातवी सात रूप है का अष्ट - सो १-३-६ विभक्ति का नाम कर्ता है और २-६ विभक्ति का नाम कर्म है और तीसरी यथा ३ की विभक्ति का नाम कारण यथा करण है [illegible] और दशा ४ का नाम संप्रदान है कि जिसके अर्थ पकड़ने और नाम रूप रूपों के व्यक्त करने के हैं और पांचवी यथा ५ का नाम उपादान है कि जिसके

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थ एक अर्थात अनेक नाम रूप की वस्तु आकृतियों के नाम से नामों के नाम नियत करने के हैं - और सातवीं यथा ७ का नाम संबंध है कि जिसके अर्थ मेल मिलाप के मिलने के हैं और सातवीं का नाम अधिकरण है कि जिसके अर्थ आदि अंत में एक ही अनंत रूप के हैं जैसे कि इस आर्थिक अर्थ का ये चित्र है :-

## विशेषशिक्षा में सप्त विभक्तियों का एक आर्थिक अर्थ चित्र

| क्र | विभक्ति | अर्थ | एकवचन | द्विवचन | बहूवचन |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | प्रथमा | कर्ता | वह - वो - सो | वे दोनो | वे - ते |
| २ | द्वितीया | कर्म | उसको निसको<br>ताको उसे | उन दोनो को<br>तिन दोनों को | उनको - तिनको |
| ३ | तृतीया | करण | उस करिके | उन दोनों करिके | उन करिके |
| ४ | चतुर्थी | संप्रदान | उस के लिये | उन दोनों के लिये<br>उन दोनों के वास्ते<br>उन दोनो के अर्थ | उनके लिये<br>उनके वास्ते<br>उनके अर्थ |
| ५ | पंचमी | उपादान | उस से | उन दोनों से | उनसे |
| ६ | षष्ठी | संबंध | उसका (१) उसकी | उन दोनों का<br>उन दोनों की | उनका उनकी |
| ७ | सप्तमी | अधिकरण | उसमें उसके विषे | उन दोनों में उन दोनों के विषे | उनमें उनके विषे |
| २ | संबोधन | आदि अंत रहित (२) अनंत एकरूप | हे - अयि - अगा - रे<br>भो - अये | अहो हो ओ | अहा भो हो ओ |

(१) लौकिक व्यापार में पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिंग अर्थ एक ही प्रकार पर होते हैं - और ये विभक्तियाँ सृष्टि उत्पत्तिक्रम में भेद रूप हैं कि इस विधि को जान कर फिर कुछ जानना नहीं रहता मनुष्य को जिस किसी वस्तु की आवश्यकता हो प्राप्त कर सक्ता है

(२) लौकिक व्यवहार में आदि अंत का एक रूप इस प्रकार अनंत रूप प्रकट होता है कि प्रकट प्रतीत में विभक्तियों के अर्थ की भांति जिस प्रकार शब्द मात्रा अनुस्वार से बदलते प्रतीत होते हैं वह प्रकट प्रतीत में ही बदलते प्रतीत होते हैं किंतु बदलते नहीं अव्यय रूप ही रहते हैं जैसे - स्वा - अंतर - प्रातर - च - वा - ह - हि - खलु किं एवं - ननु नुनं शब्द हैं कि प्रकार इन के अर्थ सब वचनों में एक रस रहते हैं - पलटते नहीं हैं यथा विभक्ति होती नहीं है

विभक्तियों में जो पलटते प्रतीत होते हैं वह केवल दृष्टि भेद ही है कारण ये है कि राम एक शब्द है कि एक अनंत रूप है यदि इस शब्द राम पर विसर्ग (:) विन्दु लगा दीजाये तो ये रामः शब्द प्रथम विभक्ति का रूप बनता है और यही तीसरी और छटी विभक्ति का आकृति है कि कर्ता कारण संबंध में एक रूप है इसलिये इसके अर्थ इस प्रकार बदलते हैं कि रामः राम अनंत है १ राम सर्वज्ञ है २ राम कारण है ३ राम संबंध है ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२३१

राम जो है सो कर्ता है १ इस प्रकार एक ही शब्द राम के प्रथमा विभक्ति में केवल विसर्ग बिन्दु लगने से एक ही शब्द से पाँच अर्थ प्रकट होगये तथा शब्द अक्षर अर्थ में अव्यय का अव्यय ही रहा - इसी प्रकार यदि राम शब्द पर दूसरी विभक्ति के अर्थ निकालने को अनुस्वार बिन्दु (ं) लगादें तो राम शब्द रामं पढ़ा जायेगा और इसके अर्थ इसप्रकार - मैं राम हूं १ मैं राम ही हूं २ राम मेरा नाम है ३ राम जो है उसको जिसको ता को उसे ही कर्म कहना योग है ४ और - राम संबंध रूप है ५ राम जो है उसका ६ राम जो है उसकी ७ इसप्रकार एक ही शब्द के सात अर्थ प्रकट होगये और राम शब्द अर्थ में अव्यय का अव्यय ही रहा और इस अनुस्वार बिन्दु ने गुप्त भाव के अर्थ में राम को रामन १ रामम २ रामा ३ रामः रामञ्च रामड ५ पांच रूप बनादिया - इसी प्रकार तीसरी विभक्ति में यदि ए अक्षर की (े) मात्रा म अक्षर पर लगाकर ण अक्षर और बढ़ादें तो तीसरी विभक्ति रूप में राम का शब्द रामेण पढ़ने में आवेगा और करण अर्थात कारण रूप में राम के - राम करि के १ राम आदि अनंत २ राम एक नरोत्तम ३ इसप्रकार अर्थ होंगे और (ा) मात्रा और ण अक्षर अण अक्षर रूप में राम को अङ्ग आण नाम नोक होना भी प्रकट करेंगे - इसी प्रकार चौथी विभक्ति में राम शब्द पर आ स्वर की (ा) मात्रा और य अक्षर विशेष करदिया जाये तो राम शब्द रामाय होगा और व्यक्त रूप में संप्रदान रूप से इसके अर्थ इस प्रकार रामके लिये १ राम अव्यय वायु रूप है २ रामयही है ३ ये तीन अर्थ होंगे और पांचवी विभक्ति यदि आ मात्रा (ा) और त अक्षर को विशेष करदिजाय तो राम से रामात शब्द बनके इस प्रकार अर्थ प्रकट करेगा कि रामसे १ राम उपादान रूप में आदि नत रूप है दो ये दो अर्थ सिद्ध होंगे इसी प्रकार छटि विभक्ति में यदि राम शब्द पर स्य अक्षर विशेष करदें तो रामस्य शब्द में संबंध रूप में इसके अर्थ रामका १ और राम साकार सर्वज्ञ अगोचर वायु रूप है २ ये दो अर्थ प्रकट होंगे और जो सातवी विभक्ति में केवल राम के म अक्षर पर ए अक्षर की (े) मात्रा लगादी जाय तो राम से रामे शब्द में इसके अर्थ राममें १ रामके विषे २ केवल राम ३ राम आदि है ४ और राम एक ही है ५ अर्थ होंगे और संबोधन रूप में हे राम अथिराम एक ही एक राम बस यही विभक्ति भेद है इसी रीती से विभक्ति बनती और शब्दों के अर्थ होते हैं किंतु अव्यय अक्षर शब्दों के अर्थ अनंत हैं और उनको इस प्रकार ही जाना जाता है और इस प्रकार अर्थ के जान लेने को किसी व्याकरण जानने की अधिश्यकता नहीं है जैसे कि विशेष शब्दों के रूप और अर्थ हैं ऐसे अर्थ जानो

## विशेष शब्दों के रूप और उनके अर्थ ।

प्रथमा विभ० अस्मद - मैं - आदि सर्वज्ञ मूल दिव्य हूं यहाँ एक ही शब्द में इस प्रकार अक्षर अर्थ प्रकट हैं कि अ से आदि स से सर्वज्ञ म से मूल द से दिव्य सूर्य रूप सूर्य

युष्मद - तू - वायु रूप नित सर्व व्यापक मूल दिव्य स्वरूप है यहां एक ही शब्द में इसप्रकार शब्द [illegible] हैं कि त अर्थ के अन्य य से वायु उ से उदय ष से सर्व व्यापक म से मूल द से दिव्य सूर्य इसी प्रकार स्व

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

एक एक शब्द में अनंत अव्यय शब्द अक्षर अर्थ गुप्त हैं वह आप से आप ही जानणे में आते हैं आगे ऐसे ही जानाचाहये - - अहं - मैं - त्वं - तू - आवां - हम दोनों - युवां तुम दोनों वयं हम यूयं तुम

द्वितीं० विभ० { मां - मा — मुझको मेरे को — त्वां - त्वा — तुझकूं - तेरे कूं
आवां - नौ - हम दोनों को — युवां - वां - तुम दोनों को
अस्मान - नः हमकूं — युष्मान - वः तुम कूं -

तृतीं० { आवाभ्यां - हम दोनों ने - हम दोनों करिके - हम दोनों से
युवाभ्याम - तुम दोनों ने - तुम दोनों करिके - तुम दोनों से
अस्माभिः - हम ने हम करके हमारे से | युष्माभिः तुमने तुम करिके तुम से

चतुं० { मह्यं - मे - मुझको मेरे को मेरे अर्थ मेरे वास्ते मेरे में मेरे विषे मैं मेरा
तुभ्यं - ते - तुझको तेरे को तेरे अर्थ तेरे वास्ते तेरे में तेरे विषे तेरे लिये तेरा
आवाभ्यां - नौ - हम दोनों को हम दोनों के अर्थ हम दोनों के वास्ते.
युवाभ्याम - वां - तुम दोनों को तुम दोनों के अर्थ तुम दोनों के वास्ते
अस्मभ्यं - नः - हमको - हमारे अर्थ हमारे वास्ते |
युष्मभ्यं - वः - तुमको - तुम्हारे अर्थ - तुम्हारे वास्ते -

पञ्चमी { मत् - मेरे से मेरी अपेक्षासे मेरे पास से | त्वत - तेरे से - तेरी अपेक्षासे तेरे पास से
आवाभ्याम - हम दोनों से - हम दोनों की अपेक्षा से - हम दोनों के पास से
युवाभ्याम - तुम दोनों से - तुम दोनों की अपेक्षासे - तुम दोनों के पास से
अस्मत - हम से - हमारी अपेक्षा से - हमारे पास से -
युस्मत - तुम से - तुम्हारी अपेक्षासे - तुम्हारे पास से -

इससे आगे पर लगाने से तक तिलक के अर्थ भी होते हैं

षष्ठी { मम - मे - मेरा - मेरी - री - रा - मुझको - मेरे को - मोको मैं - मैं ही मैं
तव - ते - तेरा - तेरी - री - रा - तुझको - तेरे को - तोको - तें - तें ही तें
आवयोः - नौ - हम दोनों का - की को का - हम दोनों कूं
युवयोः - वां - तुम दोनों का - की - को - का - तुम दोनों कूं
अस्माकं - नः हमारा - री - रा हमकूं | युष्माकं - वः - तुम्हारा - री - रा तुम कूं

सप्तमी { मयि - मेरे विषे मेरे में मेरा ही | त्वयि - तेरे विषे - तेरे में तेरा ही
आवयोः - हम दोनों के विषे हम दोनों में -
युवयोः - तुम दोनों के विषे - तुम दोनों में
अस्मासु - हमारे विषे हमारे में हम में -
युष्मासु - तुम्हारे [illegible] आकृति तुम में -

प्रथम विभक्ति संबोधन रूप है इसलिये लौकिक व्यापार में संबोधन बनता नहीं

CC-d. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्ता १ कर्म २ और भाव ३ कि जिन का गुण कर्म स्वभाव नाम है तीनों प्रकृति के ३ रूप हैं और परस्मैपदी प्रकृति का नाम है इसलिये कर्ता के तीन रूप कर्म के तीन रूप भाव के तीन रूप हुआ करते हैं जैसे कि आदि १ मध्य २ उत्तम ३ शब्द कर्ता रूप हैं और उत्तम १ मध्य २ निकृष्ट ३ कर्म रूप हैं और उत्तम वृत्ति १ मध्यम वृत्ति २ अधम वृत्ति ३ ये भाव हैं। इसी प्रकार आत्मने पदी पुरुष का स्वरूप है इसलिये प्रकृति पुरुष के कर्ता कर्म भाव रूप हैं कि जिसका अर्थ इस प्रकार जानना—

| | परस्मैपदी | | | | आत्मने पदी (१) | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | कर्ता | कर्म | | | कर्ता | कर्म | | |
| | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन | | एकवचन | द्विवचन | बहुवचन | |
| आदि - | तिप (वो) | तस (वे) | झि (अंति) | आदि | त (ते) | आताम (आते) | झ (अंते) | |
| मध्य - | सिप (तू) | थस (तुम) | थ (वही) (तुम्ही) | मध्य | थास (से) | आथाम (आथे) | ध्वम (ध्वे) | |
| उत्तम - | मिप (मैं) | वस (हम) | मस (हम्ही) | उत्तम | इ (ए) | वहि (वहे) | महि (महे) | |

इसका कारण ये है कि संस्कृत वाक्यों के अंत में जैसा कि विभक्ति भेद है क्रिया पदों का प्रयोग किया जाता है और वे क्रियापद धातुओं के रूप होते हैं और धातु कृ नाम रज १ और भू नाम तस २ और अस नाम सत ३ तीन ही हैं और प्रायः करिकै अर्थात विशेष करिकै वाक्यों में इन धातुओं का ही प्रयोग होता है इसलिये अर्थ सहित रूपारव्यान इनका इस प्रकार पर है। (१) आत्मने पदी के शब्दों के अर्थ परस्मैपदी की भांति जानना

## १- कृ धातु (परस्मैपदी सकर्मक) करना

| काल | प्रकृति कर्म | एकवचन शब्द | द्विवचन शब्द | बहुवचन शब्द | एकवचन शब्दार्थ | द्विवचन शब्दार्थ | बहुवचन शब्दार्थ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| वर्तमान काल (लट) | आदि | करोति | कुरुतः | कुर्वन्ति | वो-करता है | वे — करते हैं | वेही करते हैं |
| | मध्य | करोषि | कुरुथः | कुरुथ | तू-करता है | तुम-करते हो | तुमही करते हो |
| | उत्तम | करोमि | कुर्वः | कुर्मः | मैं करता हूं | हम करते है | हमही करते हैं |
| अनद्यतन परोक्ष भूतकाल (लिट) | आदि | चकार | चक्रतुः | चक्रुः | वो करता भया | वे करते भये | वेही करते भये |
| | मध्य | चकर्थ | चक्रथुः | चक्र | तू करता भया | तुम करते भये | तुम ही करते भये |
| | उत्तम | चकार, चकर | चक्रिव | चक्रिम | मैं करता भया | हम करते भये | हम ही करते भये |
| अनद्यतन भविष्यकाल (लुट) | अ० | कर्ता | कर्तारौ | कर्तारः | वो करेगा | वे करेंगे | वे ही करेंगे |
| | म० | कर्तासि | कर्तास्थः | कर्तास्थ | तू करेगा | तुम करोगे | तुम ही करोगे |
| | उ० | कर्तास्मि | कर्तास्वः | कर्तास्मः | मैं करूंगा | हम करेंगे | हम ही करेंगे |
| भविष्यकाल (लृट) | अ० | करिष्यति | करिष्यतः | करिष्यंति | वो करेगा | वे करेंगे | वेही करेंगे |
| | म | करिष्यसि | करिष्यथः | करिष्यथ | तू करेगा | तुम करोगे | तुम ही करोगे |
| | उ० | करिष्यामि | करिष्यावः | करिष्यामः | मैं करूंगा | हम करेंगे | हम ही करेंगे |

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | | | लोट |
| विध्यर्थ | अ० | करोतु -१ करुतात २ | करुताम | कुर्वंतु | वो करे | वे करें | वे ही करें |
| आज्ञार्थ | म० | करु करुतात | करुतं | कुरुत | तू कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | उ० | करवाणि | करवाव | कुरवाम | मैं करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | लङ |
| अनद्यतन | अ० | अकरात | अकुरुताम | अकुर्वन | वो करता भया | वे करते भये | वे ही करते भये |
| भूतकाल | म० | अकरोः | अकुरुतम | अकुरुत | तू करता भया | तुम करते भये | तुम ही करते भये |
| | उ० | अकरवम | अकुर्व | अकुर्म | मैं करता भया | हम करते भये | हम ही करते भये |
| | | | | | | | विधिलिङ |
| विध्यर्थ | अ० | कुर्यात | कुर्यातां | कुर्युः | वो करे | वे करें | वे ही करें |
| | म० | कुर्याः | कुर्यातं | कुर्यात | तू कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | उ० | कुर्याम | कुर्याव | कुर्याम | मैं करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | आशीलिङ |
| आशीरर्थ | अ० | क्रियात | क्रियास्तां | क्रियासुः | वो करे | वे करें | वह ही करें |
| | म० | क्रियाः | क्रियास्तं | क्रियास्त | तू कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | उ० | क्रियासं | क्रियास्व | क्रियासम | मैं करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | लुङ |
| भूतकाल | अ० | अकार्षीत | आकार्ष्टाम | अकार्षुः | वो करता भया | वे करते भये | वे ही करते भये |
| | म० | अकार्षीः | अकार्ष्टम | अकार्ष्ट | तू करता भया | तुम करते भये | तुम ही करते भये |
| | उ० | अकार्षम | अकार्ष्व | अकार्ष्म | मैं करता भया | हम करते भये | मैं ही करता भया |
| | | | | | | | लृङ |
| क्रियातिपत्ति | अ० | अकरिष्यत | अकरिष्यताम | अकरिष्यन | वो करेगा | वे करेंगे | वही करेंगे |
| | म० | अकरिष्यः | अकरिष्यतम | अकरिष्यत | तू करेगा | तुम करोगे | तुम ही करोगे |
| | उ० | अकरिष्यम | अकरिष्याव | अकरिष्याम | मैं करुंगा | हम करेंगें | हम ही करेंगे |

क कृ धातु के क्रिया पदों के अर्थ सहित रूपाख्यान हैं किंतु यज्ञानाम श्री संस्कृति संस्कृत में भूत और
ष्यत काल को भी वर्तमान काल से देखा गया है इसलिये इसके लिये कोई व्याकरण नही है वर्तमान काल में सर्व
र के क्रियापद एक ही वर्त रूप हैं कारण ये है कि एक एक शब्द के अनंत अर्थ हैं क्योंकि वैखरी बाणी
अंत रहित अनंत बाणी है सृष्टि की सब बाणी इसी की पत्री और पुत्रयों की पुत्री हैं इसलिये यह
की दादी नाना और मात है इसलिये इसक [illegible] आकृति [illegible] व्याकरण नही हो सत्ता कारण ये है कि ये बाणी
रूप में ॐ शब्द रूप से श्री ही श्री शब्द रूप है और शब्द वाक्य और वाक्य छंद रूप में श्रुति स्वरूप है इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | | | लोट |
| विध्यर्थ | अ० | करोतु -१ करुतात २ | करुताम | कुर्वंतु | वो करे | वे करें | वे ही करें |
| आज्ञार्थ | म० | करु करुतात | करुतं | कुरुत | तू कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | उ० | करवाणि | करवाव | कुरवाम | मैं करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | लङ |
| अनद्यतन | अ० | अकरात | अकुरुताम | अकुर्वन | वो करता भया | वे करते भये | वे ही करते भये |
| भूतकाल | म० | अकरोः | अकुरुतम | अकुरुत | तू करता भया | तुम करते भये | तुम ही करते भये |
| | उ० | अकरवम | अकुर्व | अकुर्म | मैं करता भया | हम करते भये | हम ही करते भये |
| | | | | | | | विधिलिङ |
| विध्या | | | | | करे | वे करें | वे ही करें |
| | | | | | कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | | | | | करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | आशीलिङ |
| आशीर | | | | | करे | वे करें | वह ही करें |
| | | | | | कर | तुम करो | तुम ही करो |
| | | | | | करुं | हम करें | हम ही करें |
| | | | | | | | लुङ |
| भूत क | | | | | वो करता भया | वे करते भये | वे ही करते भये |
| | | | | | तू करता भया | तुम करते भये | तुम ही करते भये |
| | उ० | अकार्षम | अकार्ष्व | अकार्ष्म | मैं करता भया | हम करते भये | मैं ही करता भया |
| | | | | | | | लृङ |
| क्रियातिपति | अ० | अकरिष्यत | अकरिष्यताम | अकरिष्यन | वो करेगा | वे करेंगे | वही करेंगे |
| | म० | अकरिष्यः | अकरिष्यतम | अकरिष्यत | तू करेगा | तुम करोगे | तुम ही करोगे |
| | उ० | अकरिष्यम | अकरिष्याव | अकरिष्याम | मैं करुंगा | हम करेंगें | हम ही करेंगे |

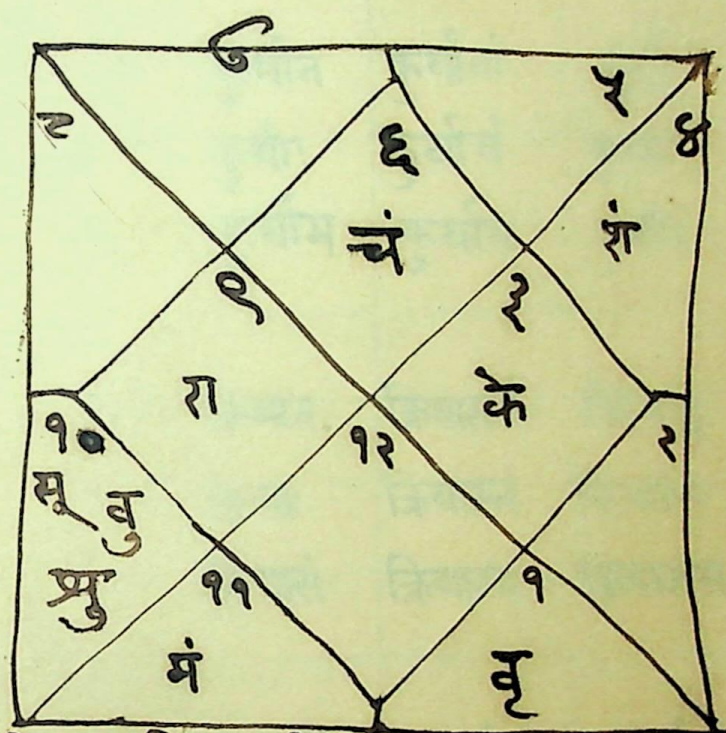


ये प्रश्न जिस कार्य के लिये ११ फरवरी १९१७ को किया गया है ये कार्य अवश्य पूर्ण होगा

इसमें शक नहीं है

एक धातु के क्रिया पदों के अर्थ सहित रूपाख्यान हैं किंतु यज्ञानाम श्री संस्कृति संस्कृत में भूत और [illegible]विष्यत काल को भी वर्तमान काल से देखा गया है इसलिये इसके लिये कोई व्याकरण नहीं है वर्तमान काल में सर्व [illegible]कार के क्रियापद एक ही वर्त रूप हैं कारण ये है कि एक एक शब्द के अनंत अर्थ हैं क्योंकि वैखरी बाणी [illegible] अंत रहित अनंत बाणी है सृष्टि की सब बाणी इसी की पत्नी और पुत्रयों की पुत्री हैं इसलिये यह [illegible] दादी नाना और मातृ है इसलिये इसका [illegible] आकृति [illegible] व्याकरण नहीं हो सक्ता कारण ये है कि ये बाणी [illegible] रूप में ॐ शब्द रूप से श्री ही श्री शब्द रूप है और शब्द वाक्य और वाक्य छन्द रूप में श्रुति स्वरूप है इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५२

लिये श्रुतिवाक्यरचनामें शब्द और उनके अर्थ आपसे आपही श्रुति रूप बनजाते हैं केवल नि:स्वार्थ विचारकी आवश्यकता है फिर कोई शब्द क्यों न हो और किसी भाषा पशु पक्षी आदि की भाषा का क्यों न हो आपसे आप ही अपने अर्थ का प्रकाशरूप होजावेगा किंतु यज्ञानाम शब्द के अर्थ करनेको संक्षेप से अक्षर शब्द कोश का वर्णन किया जाता है और दिखाया जाता है कि किस प्रकार श्रुति शब्दसे प्रकट रूप में आपही आप प्रघट रूप से स्वयं आती है शब्द कोश ये है -

## विशेष शब्दों के रूपअर्थ का शब्द कोश

### एकती वर्तमान अकालरूपमें

### शब्द श्रुति रूप।

(१)

| शब्द[१] | अर्थ[१] | शब्द[२] | अर्थ[२] | शब्द[३] | अर्थ[३] | शब्द[४] | अर्थ[४] |
|---|---|---|---|---|---|---|---|

भवति - वो होताहै - भवतः वेहोतेहैं भवंति - वही होतेहै भवसि तू होताहै
भवथः - तुम होतेहो भवथ - तुमही ही होतेहो भवामि मैं होताहूं भवावः हम होतेहैं
भवामः - हमही होतेहैं - इनमें वो तू मैं वे तुम हम सब प्रपंच भेद हैं अर्थ सबके हुआ यथा होने के

(२)

बभूव - वो होता भया - बभूवतुः - वे होते भए - बभूवुः - वेही होते भए - बभूविथ - तू होता भया
बभूवथुः - तुम होते भए - बभूव - तुमही होते भए - बभूव - मैं होता भया - बभूविव हम होते भए
बभूविम - हमही होते भए - इनमें भी वो तू मैं वे तुम हम सब प्रपंच भेद अर्थ सबके एकही होने के हैं

(३)

भविता - वो होगा - भवितारौ - वे होंगे - भवितारः - वेही होंगे - भवितासि - तू होगा
भवितास्थः - तुम होवोगे - भवितास्थ - तुमही होवोगे - भवितास्मि मैं होऊंगा - भवितास्वः हम होवेंगे
भवितास्मः हमही होवेंगे ऊपर की भांति इनमें भी काल भेद है किंतु अर्थ एकही होने के हैं

(४)

भविष्यति - वो होगा - भविष्यतः - वे होंगे - भविष्यंति - वेही होंगे - भविष्यसि तू होगा
भविष्यथः - तुम होवोगे - भविष्यथ - तुमही होवोगे भविष्यामि - मैं होऊंगा भविष्यावः हम होवेंगे
भविष्यामः - मैं ही होऊंगा - ऊपर की भांति इनमें भी काल भेद है किंतु अर्थ एकही होने के हैं

(५)

भवतु[१] भवतात[२] - वो होवे - भवतां - वे होवें - भवंतु - वेही होवें - भव[१] - भवतात - तू हो
भवतं - तुम होवो - भवत - तुमही हो - भवानि - मैं होऊं भवाम हम होवें भवाव
भवाम - हम ही होवें - यहां भी वे तू [illegible] अर्थ एकही होने के हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अभवत - वो होता भया - अभवताम वे होते भये - अभवन - वही होते भये अभवः तू होता भया
अभवतम - तुम होते भये - अभवत - तुम ही होते भये - अभवम - मैं होता भया - अभवाव - हम होते भये
अभवाम - मैं ही होता भया - भवेत - वो हुआ - भवेताम - वे हुए - भवेयुः - तुम ही हुए - भवेः तू हो
भवेतं - तुम हुए भवेत तुम ही हुए भूवेयं - मैं हूं - भवेव हम हैं भवेम - मैं हूं
भूयात - वो हो - भूयास्तां - वे होवें - भूयासुः - वे ही होवें - भूयाः - तू होवे - भूयास्तं तुम होवो
भूयास्त - तुम ही होवो भूयासं - मैं होउं - भूयास्व - हम होवें (भूयास्म - मैं ही होउं हम ही हो)
अभूत - वो होता भया - अभूताम वे होते भये - अभूवन - वे ही होते भये - अभूः तू होता भया
अभूतम - तुम होते भये - अभूत तुम ही होते भये - अभूवम - मैं होता भया - अभूव - हम होते भये
अभूम - मैं ही होता भया - अभविष्यत वह होगा - अभविष्यताम - वे होंगे - अभविष्यन - वे ही होंगे
अभविष्यः - तू होगा - अभविष्यतम - तुम होंगे - अभविष्यत तुम होगे - अभविष्यम - मैं होऊंगा
अभविष्याम - मैं ही होऊंगा - अभविष्याव - हम ही होवेंगें आस्ति - वो - होता - है - स्तः वे होते हैं
संति - वे ही होते हैं - असि - तू होता है - स्थः तुम होते हो - स्थ - तुम ही होते हो अस्मि मैं होता हूं
स्वः हम होते हैं - स्मः हम ही होते हैं (अस्तु स्तात्) वो हुआ - वे होवे - संतु - वे ही होवे एधि तू हो
स्तात - तू हो - स्तं - तुम हो - स्त तुम ही हो - असानि - मैं होऊं असाव हम होवें असाम - हम ही होवें
आसीत - वह हो भया - आस्ताम वे होते भये - आसन वे होते भये आसीः तू होता भया -
आस्तम - तुम होते भये - आस्त होते भये - आसम - मैं होता भया - आस्व हम होते भये -
आस्म मैं होता भया - स्यात वो होउ - स्यातां वे होवें - स्युः वे होवें - स्याः तू हो स्यातं तुम हो
स्यात - तुम हो - स्यां - मैं हूं - स्याव हम होवें - स्याम - मैं होऊं यह भी अनेक शब्द एक
अर्थ हैं काल मात्र नाम मात्र प्रपंच वाणी भेद है किंतु अर्थ एक ही हैं

(७)

कुरुते - वो करता है - कुर्वाते - वे करते हैं - कुर्वते - वे ही करते हैं - कुरुषे - तू करता है
कुर्वाथे - तुम करते हो - कुरुध्वे - तुम ही करते हो कुर्वे - मैं करता हूं - कुर्वहे - हम करते हैं
कुर्महे - मैं आप ही करता हूं - चक्रे - वो करता भया - चक्राते - वे करते भये - चक्रिरे - वे ही करते भये
चकृषे - तू करता भया - चक्राथे - तुम करते भये - चकृढ्वे - तुम ही करते भये - चक्रे - मैं करता भया
चकृवहे - हम करते भये - चकृमहे - हम आप करते भये (कर्ता - वह करेगा वो करने वाला है - वो करेगा)
कर्तारौ - वे करेंगे वे करने वाले हैं (कर्तारः - वे करने वाले जिन्होंने किया है) - कर्तासे - तू करेगा
कर्तासाथे - तुम करोगे (कर्ताध्वे - तुम ही करोगे वे आप करेंगे केवल वो करेगा मैं आप ही करूंगा)
कर्ताहे - मैं करूंगा - कर्तास्वहे - हम करेंगे - कर्तास्महे - मैं ही करूंगा - करिष्यते - वो करेगा
करिष्यन्ते - वे करेंगे - करिष्यसे - तू करेगा - करिष्येथे तुम करोगे
करिष्यध्वे - तुम ही करोगे - करिष्ये - मैं करूंगा - करिष्यावहे - हम करेंगे - करिष्यामहे - मैं ही करूंगा -

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कुरुतां - वो करे - कुर्वातां - वे करें - कुर्वताम - मैं करूं - कुरुष्व - तू करे - कुर्वाथां तुम करो - कुरुध्वम मैं करूं
करवै - मैं करूं - करवावहै - हम करें - करवामहै - मैं आप ही करूं - अकुरुत - वो करता भया - अकुर्वाताम - तुम
अकुर्वत - मैं करता भया - अकुरुथाः - तू करता भया - अकुर्वाथाम - तुम करते भये - अकुरुध्वम - मैं करता भ
अकुर्वि - मैं करता भया - अकुर्वहि - हम करते भये - अकुर्महि - मैं आप ही करता भया - कुर्वीत - वो करे
कुर्वीयातां - वे करें - कुर्वीरन - मैं करूं - कुर्वीथाः - तू करे - कुर्वीयाथां - तुम करो - कुर्वीध्वम - मैं करूं
कुर्वीय - मैं करूं - कुर्वीवहि - हम करें - कुर्वीमहि - मैं ही करूं - कृषीष्ट - वो करे - कृषीरन मैं करूं
कृषीयास्तां - तुम करो - कृषीष्ठाः तू करे - कृषीयास्थां - तुम करो - कृषीध्वम मैं करूं - कृषीय मैं करूं
कृषीवहि - हम करें - कृषीमहि - मैं आप ही करूं - अकृत - वो करता भया - अकृषाताम - वे करते भये
अकृषत मैं करता भया - अकृथाः तू करता भया - अकृषाथाम - तुम करते भये - अकृढ्वम मैं करता भ
अकृषि - मैं करता भया - अकृष्वहि - हम करते भये - अकृष्महि - हम आप ही करते भये -
अकरिष्यत - वो करेगा - अकरिष्येताम - वे करेंगे - अकरिष्यंत - मैं करूंगा मैं आप ही करूंगा
अकरिष्यथाः - तू करेगा - अकरिष्येथाम - तुम करोगे - अकरिष्यध्वम - मैं करूंगा -
अकरिष्ये - मैं करूंगा - अकरिष्यावहि - हम करेंगे - अकरिष्यामहि - मैं आपही करूंगा
ये सब शब्द और उनके अर्थ गन्तव्य जानने योग वक्तव्य बोलने योग कर्तव्य करने योग कि
सब शब्द अव्यय अक्षर रूप हैं इसलिये सब ही विभक्ति रूप हैं और विभक्ति रूप शब्द सबही श्रुति
रूप हैं जैसे गंतव्यं - गंतव्ये - गंतव्यानि - गंतव्यः गंतव्यौ - गंतव्याः गन्तव्या - गन्तव्यात कि ये
सब शब्द विभक्ति रूपमें श्रुति रूप हैं कि सब अनेक वचन रूपसे एक ही वचन रूप हैं जैसे गन्तव्यम
के अर्थ हैं जाना और उत्थातव्यम के अर्थ हैं उठके खड़ होना कि जाना और खड़े होना दोनों का
एक रूप है जैसेकि - पुं॰ - वसंत देश - स्त्री - अप - मिति - न - भोजन - प्रयोजन - दर्शन और
प्रमाण इत्यादिक शब्द हैं कि सब के एक अर्थ हैं सब दृष्ट मेद प्रपंच हैं कि सब हैं और सब नहीं हैं
सबही अविशेषण और सबही विशेषण सबही अनादर सबही परंपरा शासति अमुक अर्थात नाम
वाले हैं मूल हैं अर्थ सहित एक अर्थ एक लिंक एक प्रयोजन रूप हैं पाठ रूप है शाला रूप है जैसे कि

( ८ )

(१) सूर्योदय दो अमुक नाम का अव्यय शब्दों का एक रूप है अर्थात सूर्य और उदय और दोनों का एक
रूप एक अर्थ - सूर्य का उदय - प्रातः काल - सवेरा - प्रभात है इसी प्रकार निमित्त वाक्य शब्दों के
अर्थ इस प्रकार पर हैं कि - (प्राक के अर्थ पहले प्रथम - आगे आगे से सनातन सत्य एक रस एक रूप के हैं
और पश्चात के अर्थ - फिर पीछे - आगे और एक के हैं इसी प्रकार इन शब्द अक्षर के कि जिनके अर्थ
अमुक नाम अर्थ से देखनेमें आते हैं एक ही शब्द वाक्य के अक्षर शब्द अर्थ में अनंत अर्थ हैं और
इस अनंत शब्द अक्षर अर्थ का अनंत [illegible] व्याकरण एक (अ अक्षर) व्याकरण कि
जो १६ स्वर रूप है इसलिये केवल व्याकरण कितने थे सब व्याकरण मिथ्या हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

(९)

यज्ञा नाम में १६ स्वर हैं और १६ स्वर का एक लिंक है वही लिंक (अ) अक्षर रूप है और केवल यज्ञ यही है इस लिये पृथक पृथक शब्द अक्षर व्याकरण में एक एक शब्द के अनंत अर्थ हैं और वे अर्थ आप से आप ही जानने में आते हैं सो एक में अर्थात "अक्षराणाम कारोस्मि" श्रुति प्रमाण एक में सब अर्थ जानना अक्षर व्याकरण जानना है सो इस प्रकार – (१)

उत्थातव्य – उठना जागना खड़े होना + गुर्वादि – बड़े माता पितादि क + अभिवादन नमस्कार कर्तव्य – करना + तत्समय – उस काल + इति – इस रीति से ऐसा + वक्तव्य – बोलना + भोः अहो अभिवादये – नमस्कार करता हूं + ततः तिके पीछे फिर + शरीर – देह – शुद्धि स्वच्छता + मलोत्सर्जन – मैल का छोड़ना + ग्राम – गाम + बहिः बाहर + निर्जनस्थल – ऐसा स्थान कि जहां कोई वस्तु एक के अन्य न हो केवल सर्व वस्तु और रूप नाम आकृतियों में एक ही एक हो + गन्तव्य – जाना + तत्काल उस समय + शुद्ध जल – स्वच्छ पानी + गृहीत्वा – ले कर के + मूत्राद्युत्सर्ग – मूत्रादिकों का छोड़ना + कुर्यात – करे + गण्डूष कुल्ला कुल्ला + मुख मूंह + कुर्वीत – करे + कृ – कर + अनंतरम – पीछे आगे पहले + दन्तधावन दातौन + आचरेत – करे + तदनंतरम – तिस के पीछे + कूप कूवा + जल – पानी + स्नायात – स्नान करे + स्नात्वा + स्नान करके + संध्या – एक रूप अकाल रूप अक्षत रूप निर्दोष समय अनंत गति + उपासीत – सेवन करना करे + देव – देवता दिव्य एक अनंत रूप + स्वधर्म – आचार विचार रूप एक स्वरूप + न – नहीं और नारायण + त्यजेत – छोड़े + भक्षयेत – खावे + सुरा मद्य काम अग्नि + वैदिक – एक ही नारायण रूप + सनातन – पुरातन – अकाल रूप + पिबेत – पीवे + असत्य – एक अ अकार सत्य है और सब झूंट है + वदेत – बोले + धर्म – आचार एक ही विचार रूप अग्नि यम नाम + पाठ एक रूप – पढ़ना + चित्र + शाला – अधिष्ठान – स्थान + समीप – निकट पास स्वयं सामन + तत्र – तहां + दृढ मजबूत + अभिवंद्य – नमस्कार करके + स्थित्वा रहकर + विद्या – ज्ञान अनंत एक + शिथिल ढीला ढीली + अध्येतव्या – पढ़ने योग + भवति होना होती है + सकाशात – पास से + बहु – बहुत + तथा तैसे ग्रहण – पकड़ना लेना – प्रकार – रीति + आर्थिन + इच्छा का रूप + त्रिधा तीन प्रकार से + अधीयते – पढ़ते हैं + शुश्रूषा – सेवा चाकरी + द्रव्य धन + दान – देना + केचन – कोई एक अन्या – दूसरी + तर्क प्रश्न + शास्त्र – शस्त्र अस्त्र + पठंति पढ़ते हैं – श्रेष्ठ उत्तम + कतिपये – किननेक + यथा – जैसा कि + सर्व सब + दस्यु चोर राम भगवान ॐकार + कर्तृ – करने वाला वाली वाले + ह्रियते – हरण करना किया जाना + राजन – एक ही अर्जुन – अज – दशरथ आदित्य + मंत्रि हैं + अपि – भी – समुच्चय निंदा – आप ही + आत्म – एक + ग्रहीतुं – लेने को + [illegible] आकृति + भाषा – बाणी + शक्नोति – सकता है चन्द्र – एक + शेखर – एक + भ्रातृ – एक और भाई + पञ्चम – पांचवां + स्वयं ही निश्चय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५६

भुज्यते - उप भोग - भार - बोझा + पुस्तक - पसारा ग्रंथ एक रूप + रूप्या - आकृति का रूप + पठति - पढता है + विनश्यति - नष्ट होता है आपमें आप समाता है + एक मास एक स्वर एक महीना परीक्षा - इम्तिहान चौथी सिम्मात + कृत - किया - किया हुआ सत - एक + भविष्यति होगी कदापि - कभी भी + दशन - दश १० - बत्तीस ३२ + व्यय - खर्चे + उत्तीर्ण - उतरा - उतरा हुआ पास हुआ - आया - एक + तर्धते बढता है + नृ - मनुष्य निर्विकार + भूषण - अलंकार + भोः - अहो - ओ + अधीये - मैं पढताहूं + मित्र - सखा + अद्यापि आजतकभी + कुतः कहां प्रतिदिनं - दिनरात - दिन दिन + आगत - आया + सज्जी - तैयार होना बनना + असि तू + कुरु - तू कर + एहि तू आ - एक ही एकेला आ + पहाड़ा मार्ग रस्ता अंक गणत का एक रूप स्वागत - अच्छा आना + सुदिन - अच्छा दिन + अद्य - आज + पृच्छति - वो पूछता ती है + तु - तौ + समागम - मिलाप + भवत्समागम - आपका मिलाप + किम - क्या + अधीतं - पढा पढा हुआ + अंतरा - विना - नहीं - फरक + एतावत्कालपर्यंतं - इतने समय तक + सिध्यति - तैयार होना होती है + अतः इसवास्ते + विषय - भाग - प्रकार - देश + परिचरेत - वो - सेवे - चाकरी करे दृढ - पक्का + तुष्ट संतोष पाया हुआ - प्रत्यहं - हर रोज दिन दिन + अध्ययन पाठ + वेला समय निरर्थक - व्यर्थ - फोकट + उत्तर जवाब + वदेत वो बोले + शंका - संशय + भाषेत - वो करे नम्रता - विनय + श्रोतव्य - सुनने योग + पृच्छेत वो पूछे + तप्त - क्रोधित + चांचल्य - चान प्रत्युत्तर - उलटा जवाब + क्रीडेत - वो खेले + दद्यात वो देवे + अपलपेत - वो बकवाद करे गुप्त रखवे + हित कल्याण + इतः इससे यहांसे + निषीदेत वो नीचे बैठे रहे + अन्य - दूसरा दृष्ट्वा - देख कर के + पथिन पन्थाः मार्ग + उत्तिष्ठेत - वो उठ खडा होजावे + विद्यते - वो तत्र - तहां + वंध्य - रीता रहित + पठनीय - पढने योग + गमयते - वो गमावे + पुनः पुः फिर फिर + आयुस - आयु उमर + आवृत्ति सबक संख्या + स्वल्प - थोड़ा थोड़ी + पृष्ठ - पृ मुरवोद्गत - मुरब गति + दक्षता - दिठाई + सार श्रेष्ठ फलप्रद + अध्येतव्य - ग्रहण करने योग सूद - रसोइया - + सिद्ध - तैयार + पृच्छ तू पूछ + उत्तिष्ठत तुम उठो + रसवती - रसोई + व्यंजनोपस्कर - सालन दाल भाजी आदिक + सुस्वादु - अच्छा मीठा + झटिति - जलदी + यथेच्छम - इच्छाके अनुसार + मुंडध्वम - तुम जीमो + परिवेविद्धि तू परोस + रोचते रुचतहै अच्छा लगता है + क्षुधा - भूख + ग्राह्य - लेना - लेने योग + बाधते सताता है सताती है + त्याज्य - छोडना छोडने योग्य + द्रुतं - जलदी + पीयतां - पीना + देहि - तू दे + घृत - घी पूरिका - पूरी + हैयंगवीन - कल गाय को दोहकर आज तैयार किया हुआ मक्खन - घी + शाक - भाजी + सोहालिका - कचौरी - सोहालिया + अतिथि - पराणा भिक्षुक आगत + भोजनावसर - जीमन का समय + [illegible] + आरब्ध + आह्वयामि - मैं बोलता हूं + इह - यहां + आगच्छन्तु तुम जाओ [illegible] + दत्त गाढ + गदन - नेमे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

सूपादि - दाल आदिक + पदार्थ - वस्तु + ब्रूत - तुम बोलो + शोभन - अच्छा + मूर्ति - आकार +
आहूय - बुलायके + भुंजत - जीमनेवाला + एकाकिन - अकेला + भूयस - बहुतसा - सी + संतोष - आनंद +
भोक्तुम - जीमनेको + प्रवृत - लगा हुआ + उत्पद्यते - उपजता है + आसम - मैं - था + साक्षात - प्रत्यक्ष +
आतृप्ति - संतुष्ट होवे तबतक + भूजनस्थल - जीमनेकी जगह + हरि - विष्णु - शांति सत आनंद भवान +
रङ्गावली - सृष्टि संसार - चित्र विचित्र रंगोंकी बेलबूटी + समन्ततः - सब - ओरसे - आसपाससे +
त्रयोदशगुण - तेरहगुणका विश्व रूप सृष्टि संसार + सुविन्यस्त - अच्छी - रीती से रक्खे रक्खी हुई +
ताम्बूल - बीडा + अभक्षयं - मैं खाता हूं + अददां - मैं देता हुआ + आसीत - था - थी + सर्वतः सर्व ओरसे +
अस्वपं - मैं सोता हुआ + स्वकार्य - अपना काम + परिव्याप्त - भराहुआ + अकर्वं - मैं करता हुआ +
सुविचित्र - अनेक प्रकारका + नित्यक्रम - रोजकी चाल + वादित्र - बाजा + सीदति - वो - दुःख पाताती है +
अवाद्यंत - वे - बजतेभये - बजती भई + वर्धते - वो बढता है - बढती है + अन्न - अनाज +
भोजनोत्तरम - भोजनके उपरान्त + भोजनोपदेश - भोजनका - सिखाना + उपदेश - शिक्षा देना +
ग्राम - गाम - स्थान + आपण - बजार + अत्र - यहां + सर्वा - सब + सामग्री - सर सामान +
एक सेर परिमित - एक सेर - भर + गोधूम चूर्ण - गेहूं - का - आटा + कथं - कैसा + वर्तते - वो है +
मिलति - मिलता - ती है + समानय - तू ला + तु - तौ + द्वि - दोय + भोजन - भोजन जीमना +
ताम्रिकपण - पैसा + अपेक्ष्यते - चाहता - चाहती है + तैल - तेल + पत्रावली - पत्तल + क्व - कहां +
कियत - कितना + मूल्य - कीमत - पण - पैसा + लभ्यते मिलता - ती है + तण्डुल - चावल +
द्रोणक - दोना + कति - कितने + दीयंते - देते हैं - दिये जाते हैं + वस्त्र - कपडा + आयाति - आता ती है +
क्रीणामि - मैं खरीदता - ती हूं + विक्रीणाति - वो बेचता है + ब्राह्मण - मणिका मणि - बाणी शब्द +
गृह - घर + गृह्णाति - वो लेता - ती है + एतावत - इतना + वणिग्जन - गज नासिका अर्थात सूंड
की एक ही नोक बाण रूप बाणी बना हुआ लोक रूपी ब्रह्मांड कि जिसका अर्थ है बनिया एक ही असंग जाति +
ददामि - मैं देता - ती - है + गृह श्रेणी - घरोंकी पंक्ति + इतः - यहांसे इससे + अधिकं - ज़्यादा +
तत्र - तहां + अहं - मैं + मतः - मेरे से मुझसे + गंतुं - जानेको + इच्छा - चाहना + गृहाण तू ले +
इच्छामि - मैं इच्छती हूं मेरी इच्छा है + वयं - हम + नोचेत - नहीं तौ दो अर्थ फिर क्या + भवान - तू
आप + जानाति - जानता - ती है + अन्यत्र - दूसरी जगह + यदि - जो + पश्य - तू देख +
जानासि तू जानता ती है + भाटक - भाडा - किराया + तर्हि - तौ + मासिकं - महीनेका +
ब्रूहि - तू - कह + वस्तुं - रहनेको + वृन्ताक - बैंगन + मास महीना स्वास + अंग - शरीर +
रक्षण - रक्षा + अंग रक्षण - अगररवा + दास्यामि - मैं देऊंगा - मैं देऊंगी + अक्कलकर -
अकरकरा - अक्रोट - अखरोट गजदर्गान + अक्ष - बेहेडा + अंकोल - अंकोल + अगुरु - अगर +
आग्र - [illegible] + अग्रधान्य - [illegible] - आकृतिदौ - अजमोद [illegible] + अंजीर - अंजीर +
अजादुग्ध - बकरीका दूध + अजेय अर्जुन वृक्ष वीरवृक्ष + अटतष - अडूसा + अतसी - अलसी +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५८

अतिविषा - अतीस + अनुराधा - नागकेशर + अपा मार्ग - अंधा झाडा + अपूप कचौरी + अंबर सुगंध
अबीज - किसमिस - मुनक्का दाख + अभया - हर्ड - हरड हर्र + अमृत - जाम फल सफरी आम अमरूद
अमृता - गिलोय + अम्ल - तूतर खट्टा + अम्लक - इमली + आम्लवल्ली - कौंडल + अयस्कांत - चुंबक
अर्क - आकडा - आख + अर्क - तेल + अश्वगंधा - आसगंद अस्पंद + अश्वत्थ - पीपल मनुष्य वृक्ष
अश्ववल्ली - अंबरवेल + अश्विनी - कुचला + अष्टवर्ग - जीवक ऋषभ मेदा सृष्टि ऋद्धि वृद्धि +
अहिफेन - अफीम + अहिफेन फल - पोस्त तिजारा + अहिफेन बीज - तिजारा दाना + अहिफेनरस - दूध
और भांग की ओश अर्थात चरस + आकाशवल्ली - आकाश वेल + आज्य - घी + अपूप + मालपुआ +
आम - चनेका खार + आमलकी - अमला + आम्रफल - आम + आम्रफल चूर्ण - पिसा हुआ अमच
आम्रहरिद्रा - आंबा हलदी + आम्राष्टितैल - आमका तेल + आर्द्रक - अदरख + आर्द्रा - कृष्णागर +
आरण्य सुरसा - जंगली तुलसी + आलु - आलु + आलुकंद - आरवी + आश्लेषा नागचंपा + आस्कंद -
आसगंद + आस्कंदमूल - चोबचीनी + इक्षु - ईख - गन्ना साठा रक्त श्वेत + इक्षुर - ताल मखाना +
इन्द्रगोप - बीरबहुट्टी + इन्द्रयव - इंद्रजो + इन्द्रायणी - तस्तुंबा इंद्रायणी + इष्टका - ईंट +
उग्रगंधा - लहसन - वच - धोडवच - छड - बालछड + उत्कोप - कलोंजी जीरा + उत्तरा सुपावरी
पारस - पीपल + उत्तराभाद्रपदा - नीम + उत्तराषाढा - कटहर + उपलसरी - कावली + उशीर - खस +
उष्णजल - गरम पानी + उष्ट्री दुग्ध - ऊंटनीका दूध + ऊद - लोबान + एरंड - रंडा - मूल जड़
एला - बडी इलायची + एलात्रुटी - छोटी इलायची + औदुंबर गुलर + कंकरी - दक्षिणी बाबल +
कंकोल + कपूर चीनी शीतल चीनी + कचोर - कपूर कांचरी + कज्जल - काजल + कंटकिनी - वज्रदंती
कटुक - गाजर + कटुकंद - कड़वा सूरन + कटुफल - काय फल + कटुतुंबी - तुंमड़ी + कठिल्लक - करेला
कडुवा है + कदंब - कलम + कंदल - पीपली हरी पीपली ज़मीकंद + कदली फल - केला + कनक - धतूर
कमलाक्ष - कमलगट्टा + कपर्दक - कौडी + कपिकच्छु - क्रौंचबीज + करीर - केर टीट + कर्पास - कप
कर्कटी - खीरा - ककडी कांकडा शींगी + कर्कटकी - ककडी + कर्कटक ककोडा कर्कडा +
कर्कोटक - ककेला + कर्णस्फोटा - कागले का खेत + कर्पूर - कपूर + कलभी - सोरा + कसीस -
कसीस + कस्तूरी - बेद मुष्क बेराज + कलिंग - तरबूज़ मतीरा + काकजंघा - सींक झाड़
काकमाची सर्पकी मारडा सांपन + कागद - कागज + काच - कंच + कांचनी - सोन फली हलदी
कांडवल्ली - चौधारी थूहर + कारवेल्ल करेला कडुवी है + त्वक - छाल + काला स्कंद - तमाल वृक्ष
काश - कासनी + कासमर्द - कसोंदा + किरात - चिरायता + कुंकुम - केसर + कुक्कुट - मुर्गा +
अण्ड - अंडा + कुमारी - घीकुवार कुवार पाठा + कुश - डाभ + तृण - घास + कुंज - गुलाब
कुंजिका - गुलाबसेवती + कुंतलिका - जिलेबी + कुसुम - कसूंबा केड + कुंदरु - बलाई +
कूष्मांड - कुम्हडा + कृतिका - गूल [illegible] आरा + कृमि - केचुवा + कृशरा - खिचडी +
मिश्रान्न - मिला हुआ + कृष्ण जीरक [illegible] + कृष्ण हरीतकी - काली हेड +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कृष्णा पीपली हरी पीपली + कृष्णावज्र - अभ्रक + केतकी पीला केवडा + कोद्रव - कोद्रुम कोदों +
कोकंब - अमचूर + कोशातकी - तोरई + कोष्ठ कुलिजन - नागरबेल - पान की जड़ + क्रमुक सुपारी +
क्षीर - खार + क्षीरिणी - दुधी + खंडशर्करा - खांड मिश्री + खदिर - खैर का वृक्ष + खर्जूर + खजूर +
खर्जूर - छुवारा + खर्जूरिका - कनखजूरा + खलिनी मूसली + खादिर - कत्था + गजपिप्पली - पीपल +
गज्जल - अंजीर + गंध - गन्धक + गंधन गंधना + गंधा - अजमोद + गंधिलतृण - रोहिसघास +
गांगेरुक - तोरनी + गुग्गुल भैसा गूगुल + गंडिका - चिरमिठी श्वेत वा रक्त वर्ण + गुडूची - गिलोय +
गल्मा - श्वेतरिंगणी कटैया + गुडकंद - गुलकंद + गृंजन - गाजर + गेरिक - गेरु + गौकर्णी - आकूल +
गोजिव्हा - गोमी + गोधूम - गेहूं + गोरौण - गोलोचन + घपूर - घेवर + घषा - सौंफ सोया + चणक -
चना + चतुरम्ल - अम्लवेत अमली जंभीरी निंबू + चतुरास्य - इन्द्रायण + चतुरुष्ण - सूंट मिरच आदि +
चतुर्जातक - इलायची - दालचीनी - तेजपात - नागकेशर + चतुर्थांश - चौथा भाग + चंदन - चंदन +
चंदनपुष्प - लोंग + चव्य चवक - चोक + चारुफल - पिस्ता + चित्रा - बेल + चित्रक - चिता +
चिपिट - पोहा - चिवडा + चिल्ली + चिल्ली + चूक - चूका खट्टा + चुक्रिका - इमली + चूर्ण - चुना +
चेतकी - हर्र हरड + छिन्ना - गुडूची नीम गिलोय + छिन्नका - ढांक + जंतुवृक्ष - गूलर का वृक्ष +
जंभीर - झडबेरी + जंतुहरणा - वाय विडंग + जपा - जासुंदी + जलनिंब - जलनीम +
जंबूफल - जामुन + जयपाल - जमाल गोटा + जया - भंग - भांगरा - हरड + जलज - शंख +
जवासा - जवासा + जवानी - अजवायन + ज्वर - बुखार + जाति - चमेली + जाति - जूही +
जातिपत्र - जावत्री + जातिफल - जायफल + जीवन्ती - हरणवेल + ज्येष्ठा - सांबर थूहर
ज्येष्ठीमधु - अमृती - मुलहटी + ज्योतिष्मती - माल कांगोनी - लाल चिरमुटी + झष - मच्छी +
झावुक - झावू गज यथा चूहा काटे वाला + झिंझुर्टी - झींगर + टंकणक्षार - सुहागा +
डिंडिश - डिंडीश + तक्र - मठा छाछ + तारवु - तमारवु + तमालपत्र - तेजपात - तमारवु +
तर्पण - दारव - अनार - रजूर का पात + तंदुलीय चौलाई - चंदलाई + ताड - खजूर +
तांबूलपत्र - पान + तांबूल्य - शीतल चीनी १ कपूर २ कस्तूरी ३ सोपारी ४ लोंग ५ पान ६
चुना ७ - कत्था ८ जायफल ९ जावित्री १० केशर ११ इलायची १२ - तज १३ का एक रूप +
ताम्र - तांबा + तालीसपत्र तिल + तिलपर्ण - चंदन लाल चंदन + तुत्थ - नीला थोथा +
तौलिनी - तूर + त्रिकटू - सोंठ - मिरच - पीपल + त्रिकण्टक - कांटी - गोखरु - खार +
त्रिक्षार - सज्जीखार - जवाखार - सुहागा + त्रिजातक - इलाईची - तज - तेजपात +
त्रिफला - हरड - आंमला - बहेडा + त्रिवृत - निशोत + दधि - दही + दमनक - सुगंध +
दर्भ - डाभ + दुर्गंधि - कांदा + दूर्वा - दूब + देवदारु - देवदार + देवनल - नरहर + द्राक्षा - मुनक्का +
द्रोणलवण - [illegible] + द्विदल - दाल [illegible] आकृति - बैजडी + धव - धोवडा + धात्रीपत्र - तालीस +
धात्रीफल - आवला + धान्यक - गीला धानया + धान्याक - धनियां - धणा +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२५०

नलिन - कमल + नवनीत - मारवण मस्का + नवरत्न - हीरा १ पन्ना २ माणिक ४ नीलमणि ५
पुखराज ६ गोमेद ७ वैडूर्य ८ मोती ९ + नवसादर - नोसादर + नवविष - बछनाग १
हरिद्रक २ सक्तुक ३ प्रदिपन ४ सौराष्ट्रिक ५ शृंगिक ६ कालकूट ७ हलाहल ८ ब्रह्मपुत्र ९ +
नागदमनी - नागफण + नाग - नाग केशर - शीसा + नागरींग - नारंगी + नारिकेल - नारियल गर्दी
नागर - सोंठि + नागनी - नागर बेल + नाडी हिंगु - दिका माली + निशा - हलदी + निर्मला - फूल
नेत्र वाला - काला खश + पर्पट - पित पापडा + पलाशी कचूर + पाची - नीलम पाषाण
पारद - पारा + पचुमन्द - नीम + पुटिनी फेनी + पुनर्नवा साठा गनना + पुनर्वसु - बांस
पष्कर मूल - पोहकर मूल + पुष्प - पीपल + पूतना हर्र हरड + पूर्वा - ढारवे का वृक्ष +
पूर्वा भाद्रपदा - आंब + पूर्वाषाढा - बैंत वृक्ष + प्रपुन्नाट - कंकेरा + प्रवाल - मूंगा +
फेणिका - फेनी + बदर - बेर + बदरी फल - बेर + बहुफली - बोफली + नियास - गुंद
बृहती - जंगली बेंगन + भद्रयव - इंद्रजो + भल्लातक - भिलावाँ + भारगी - भारंगी +
भूमितनय - सोना मुखी + भृंगराज - भांगरा + मकुष्ठक - मोठ + मत्स्य - मच्छी - मीन +
मदन फल - मैन फल + मदिरा - मद्य - शराब - दारु + मधु - शहत + मधूक - मूली +
मरीच - मिरच + मलापकर्षक - साबन + मसुरा - मसूर + महाविष - शंखिया +
मक्षिका - मक्खी + माजुफल - माय फल + माष - उडद + मुक्ता मोती + मुद्ग - मूंग +
मुस्ता - मोथा + मृगमद - कस्तुरी + मेथिका - मेथी + मेष - मेढा + मोदक - लाडू +
मोदा - अजमूद + मंजिष्ठा - मंजिष्ठ + यव - जौ + रक्त - लाल - खून + रक्ताहुला - सनाय
रक्तालु - शक्करकंद + रजनी - हलदी + रवि - आकडा + रसांजन - रसोत + रेचना - रेवत
राल - राल + रेवती - महुवा + रोहिणी - जामुन + रुप्यक - चांदी + लक्ष्मीफल - बेल
लक्षुन - लहसन + लाक्षा - लाख + लोध्र - लोध + लोह - लोहा + वटवृक्ष - वड +
वत्सनाभ जहर मोहरा + वरांग तज + विजया - भंग + विडंग - वायविडंग +
विशाखा - देवबल + वेतमुख्या - कस्तुरी + वैजयंती - जंगली तुलसी + वैणवा - वन्सलोच
वैणवी - अदरक + वंशवेण - बांस + व्याघ्र - बाघ - सिंह + नख - नाखून + शठी - कचूरा +
शंखजीरक - संगजरात + शंखपुष्पी - शंखाहूली + शण - सण - सनि + शतावरी - शतावर
शरपूंखा - सरफोका + शर्करा - शक्कर खाड + शालपर्णी - सागवान शांभाक + शांब - सेंबल
शिग्रु - सहिंजन + शिरीष - शिरस - शीरसम + शिलाजीत - शिलाजीत + शिंशपा - शीसम
शुक्ति - सींप + शुकराग + हरारंग + शोपालिका - पालक + शृंगाटक - शिंघाडा +
शृंगवेर - आर्द्रक + शृंगी - काकडा सींगी + चिल्ली - चील + बृहती - कटय्या + श्वेतधान्य
साबूदाना + षडग्रंथिका - पीपल [illegible] आरक चव्य - चित्रक - [illegible] सूंठ +
सक्तु - सतू - सत + सहजुत - तूतीया + [illegible] - सोंफ + सदासुवासिनी - गुलाब +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समुद्रफल - समुद्र झाग - समुद्रशोष - समुद्रशोष + सप्तोप विष - सात प्रकार विष + सरस्वती -
ब्रह्मी + सर्षप - सिरसों + सामुद्रलवण - खारी निमक + सालिम - सालं मिश्री + सिंधुज - सेंधा +
सिंहवदना - अडूसा + सिंहा - बडी कटय्या + सीताफल - सीताफल - शीरीफा + सुख दर्शन - प्याज +
सुगंध त्रिफला - लौंग सुपारी - जायफल + सिनग्धदारु - चिकना देवदार + सुगंधिपुष्प - मोलसरी +
सुरद्रुम - देवदार + सुरसा - तुलसी + सुवर्ण - सोना + सेवंती - सेवती + सुरा - शराब + सैंधु - नमक +
सौवीर - शुरमा + हरप्रिय - धतूरा + हरप्रिया - भांग + हरिद्रा - हलदी + हर्य - बेहेडा + हवि - घी
हंसपादी - हंसराज + हस्त - पीली चमेली + यम - निवृत होना + रम - क्रीडा करना + राम - नमस्कार
करना + गुप - रक्षा करना + धूप - तप्त करना + विच्छ निकट आना + पण और पन - स्तुति करना +
प्रतिकृति - एक जैसा दूसरा रूप + मेघ - बादल + प्रद्योतते - वो प्रकाशता - ती है + वायु - पवन +
गर्जती - वो - गर्जना करता ती है + चन्द्र - चांद - वहति - वो बहता - ती है + सूर्य - सूरज + वृक्ष - झाड़ +
आह्लादयति - वो - आनंद देता - ती है + कंपंते - वे - हलते हैं + पर्ण - पान + गगन - आकाश +
प्रचलंति - वे - हलते - ती - हैं + स्वच्छ - निमल + फल - फल + प्रपतंति - गिरते हैं + ग्रीष्म गरमी +
उष्णकाल - गरमी + हेमन्त - हेमंतऋतु सरदी + सर्वजनमनः प्रसाद - सब लोगों के मन को आनंद देने वाला +
प्रचंड - अतिशय कड़ा - तेज़ + जठरानल - पेटमें का अग्नि + आतप - घाम - तकडा - धूप +
प्रदीप्यते - प्रदीप्त होता - ती - है + बसंत - वसंत ऋतु + क्षुधा - भूख + अभिनव - नवीन नूतन +
नूतन - नया - नई - नवीन + द्विगुण - दुप्पट - दूगना + वनशोभा - जंगलकी शोभा + शरीर - देह +
दृश्यते - वो देखता - देखती है + पुष्यंति - वे पुष्ट होते हैं होती हैं + वर्षर्तु - बरसात काल +
शिशिर - शिशिर ऋतु + पृथिवी - ज़मीन - निशा - रात्री + सकर्दम - कादव - कींच रूप +
महती - बडी + नदी - नदी + दिन - दिवस + वेग - जोर + स्वल्प - थोडा (और) छोटा +
प्रवहति - बहना - बहती है + जिह्वा - जीभ + निर्मल - स्वच्छ + शरदृतु - सरदी काल +
रस - स्वाद + स्वदति वो चखता है - ती है + चंद्रमस - चांद + श्रोत्र - कान + शब्द - आवाज -
शब्द - ध्वनि + चंद्रिका - चांदनी + शोभते - वो - शोभता है + आकर्णयति - सुनता - ती - है +
सरस - तालाब + चक्षुस - आंखि + कमल - कमल फूल + रूप - आकार + पश्यति -
देखता है - देखती है + विकसंति - वे प्रफुल्ल होते हैं होती हैं + घ्राण - नासिकेंद्रिय +
मल - मेला + गंध वांस - बोय + उत्सृजति - वो - छोडता है - छोडती है + वाच - वाणी +
उपस्थ - शिश्न - भग + जिघ्राति - सूंघता - ती है + त्वगिंद्रिय - त्वच - इंद्री +
आनंद - सुख + अश्नुते - वो भोगता है - ती है + वक्ति - वो - बोलता - ती - है + हस्त - हाथ +
मनस - मन + कार्य काम + गृह्णाति - वो - लेता है लेती है + चिंतयति - वो - सो-
चता है - सोचती है + पाद - पाव + [illegible] आकृति जाता - ती है - [illegible] - तजर्बा +
इंद्रिय कर्माणि - इंद्रियोंके काम + जगदनुभव - जगतका अनुभव + पायु - गुदा +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

252

निति - सत्य - मार्ग + व्याकरण - प्रपंच बाणी का एक प्रकार का बोद्ध + न्याय - सत्य - मार्ग +
मीमांसा - कर्म बोद्ध + वेदांत - अस पद त्वं पद बोद्ध + सातिक - सत्य बोद्ध - राजस - रजबोद्ध
तामस - तम बोद्ध + वैकुंठ - एक ही कंठ बाणी बोद्ध + मलेक्ष - घोर - काला रात्री अंधा +
स्वामी - पति - अमात - मन्त्री - सहृद मित्र - कोश मियान + राष्ट्र - देश + दुर्ग - किला शरीर
बल - शक्ति + नहुष - राक्षस - अंधा + बेन - पागल - पृथु + धर्म - अर्थ + नायक - शिकारी +
स्पर्श - छूना + नल - थोथा - पाणडव - ज्ञान + नल - जुवा - जादों - मद्य + काम - अग्नि +
दण्डक - काम + जन्मनय - क्रोध + वातापी - मोह + औल प्रारवा - लोभ + रावण - मान +
दंभ - मद + अनुवीक्षि - धर्म + त्रई - त्रिकाल भेद + वार्ता - कहानी इत्हास + दंडनीति - डकैती
दैत्य - पेटू + सामंत - त्रई + मांडलीक - दशरथ + महाराजा - सूक्ष्म आकृति अव्यय +
स्वराट - एक वृति + सम्राट - आकाश + विराट - पूर्ण + सार्वभूम - एक + चक्रवर्ती - एक +
आसापाल - महन्ती + पल्ली - चादर + कुंभ - धर + परिक्षा - पुरुष + प्रतिहार - एक दर्वान +
श्रुतज्ञ - आत्मा परमात्मा + तांत्रक - प्रसन्न + कविश्वर - आत्मा + अष्टादश - अठारह +
निमेषः - नेत्रों के पलकोंका उघारना और मूंदना + काष्ठा - दिशा काल - समय का एक नाम +
त्रिंशत - तीस + भिः - का की - एक + - कला - रुप - प्रमाण संज्ञाका एक नाम है +
क्षण - रुप - ३० कला का एक क्षण + द्वादश - बारा + क्षणै - क्षणों का + रेको - एक +
मुहूर्तः - नाम एक आकृति समय रुपका + त्रिंशद्भिर्मुहूर्तै रेकः अहोरात्रः - तीस मुहूर्तोंसे एक
दिन और रात होता है + तदेव - वोही + पंचदश - पंद्रह + पक्षः - परवबाज + द्वाभ्यां - दो
पक्षाभ्याम - पक्षोंसें + मासो - महीना + भवति - होता है + द्वाभ्यां मासाभ्यामेक ऋतुजायते
दो महीनोंसे एक ऋतु होता है + एवं - ऐसे ही + संवत्सरस्य - वर्ष का रुप + षट - छः +
ऋतवो - ऋतु - मोसम + ते - वे + यथा - ऐसे - बसंतः १ - ग्रीष्मः २ वर्षा ३
शरत ४ हेमंतः ५ - शिशिरः ६ + मासाश्च द्वादश - महीने १२ - तेषां - तिन्होंके +
नामानि - नाम + च - क्या + चैत्रवैशाखौ वसंतः - चैत्र और वैशाख को वसंत ऋतु
कह्या जाता है + ज्येष्ठाषाढौ ग्रीष्मः - जयेष्ठ और आषाढ को ग्रीष्म कह्या जाता है
श्रावण भाद्रपदौ वर्षा + श्रावण और भाद्रपद को वर्षा काल + आशिवन कार्तिकौ शरत -
आश्विन और कार्तिक का शरत नाम है + मार्गशीर्ष पौषौ हेमन्तः - मार्गशीर्ष और पोष
हेमंत कह्या जाता है + माघफाल्गुनौ शिशिरः - माघ और फाल्गुन को शिशिर ऋतु +
त्रिभिर्ऋतुभिरेकमयनं भवति - तीन ऋत प्रातः[1] मध्यान[2] संध्या[3] इस का एक ही
अयन अर्थात दोरुप में एक स्वरुप के छ भाग का नाम है क्योंकि एक स्वासा में छ रुप होते
हैं इसलिये एक आकृति के अर्द्ध भा[illegible] आरदान है अर्थात स्वास की प्राण गति का
नाम आयन है इसलिये प्राण प्रथम आयन और अपान दूसरी आयन होता है और इसी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कारण यन शब्द के अर्थ दो के हैं + द्वाभ्यामयनाभ्यामेकं वर्षं भवति - दो - यन का एक वर्ष होता है + तदेतन्मनुष्याणां वर्षं - तत रूप में एतत ये स्वासा अर्थात प्राण अपान की गति मनुष्यों 23
का यथा प्राणियों का ह्रस्व ऋतु रूप में एक वर्ष होता है अभिप्राय ये है कि १२ स्वर का आकृत रूप में पूर्ण आकृति रूप व्यक्त और अव्यक्त होता है और इसी का नाम ऋतु अर्थात स्वर की ह्रस्व गति वसंत ग्रीष्म वर्षा नाम में प्राण की ह्रस्व गति तीन रूप एक अयन और अपान मे स्वास की शरत हेमंत और शिशिर में ह्रस्व गति दूसरी अयन का रूप पूर्ण होकर एक वर्ष का रूप हो जाता है कि वर्ष नाम बारह स्वर का है + उत्तरायणं देवानां दिनम - उत्तरायण देवों का दिवस है अभिप्राय ये है कि उत्तरा नाम ऊपर का है और यण नाम चढ़ने का है सो जिस गति में स्वास उत्तरायण गति में उत्तर की ओर जाता है इसमें ह्रस्व स्वर होते हैं यही देव का एकदिन है कि जिसको ह्रस्व मास कहा जाता है - देव के अर्थ देवता अर्थात आत्मा परमात्मा के हैं + दक्षिणायनं देवानां रात्रिः - दक्षिणायन देवों की रात्री है इसका आशय ये है कि दक्षिणायन के अर्थ नीचे के हैं और सूर्य नाम स्वर का है सो जब स्वास की गति ऊपर से नीचे की ओर आती है वह काल अर्थात अपान की गति देव की रात्री कहलाती है सो दिन है न रात है वर्ष है न मास है एक अचल आकाश है + शुक्लपक्षः पितृणां रात्री - शुक्लपक्ष कि जिसे उज्यारा पक्ष कहा जाता है ये सूर्य रूप में स्वासा और स्वासा रूप मे प्राण का रूप है और प्राण के रूपमें पितर रूप से महान सूक्ष्म रूप में अन्धकार रूप से रात्री का रूप है कारण कि प्रकाश से अन्धकार शरीर में प्रवेश करता है इसलिये शुक्ल रूप से और पितर रूप से प्राण ही पितृ रात्री रूप है + और - कृष्णा पक्षः पितृणां दिनम - अर्थात कृष्ण पक्ष पितरों का दिन है - अभिप्राय ये है कि जब श्वास सूक्ष्म गति में अपान द्वारा बाहर आता है तो फिर प्रकाश रूप हो जाता है इसलिये ये दिन है भाद्रपदकृष्णपक्षः पितृपक्षः इत्युच्यते - भाद्रपद मास का कृष्ण पक्ष पितृ पक्ष महान तत्व ऐसा कहा जाता है अभिप्राय ये है कि भ नाम २० और आदि नान प्राकृत का और द नाम तीन गुण का है और पद रूप का है इसलिये भाद्रपद नाम ३० प्रकार की प्रकृति का है कि जो स्वासा रूप में कृष्ण पक्ष रूप से माया रूप और महान सूक्ष्म गति में लय रूप है कि सर्व प्रकार के प्राणियों की इसी से उत्पत्ति होती है इसलिये इसका नाम पितृ पक्ष है कि माया सूक्ष्म रूप मे शक्ति रूप है + माघकृष्णा चतुर्दशी शिवरात्रिर्भवति - माघ मास की कृष्ण पक्ष चतुर्दशी शिव रात्री होती है अभिप्राय ये है स्वास में मूल रूप स्वर १४ हैं कि शिव रात्री रूप में माया का परोक्ष पक्ष रूप है कि जिनसे सृष्टि उत्पन्न होती है + चैत्र शुक्लनवमी रामजयन्ती - अर्थात चैत्र शुक्लनवमी को राम जी का जन्म दिन होता है - इसका आशय ये है कि त्रिगुण काल का प्रकाश रूप नव प्रकृतियों का एक रूप चैतन्य एक ही तीन स्वरूप रूप पुरुष आदि है जन्म रहित अनन्त है + श्रावण कृष्ण आकृति जयन्ती - श्रावण मास की कृष्ण पक्ष अष्टमी को कृष्ण जन्म दिन होता है इसका आशय ये है कि स्वास ही प्राण रूप में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अष्टप्रकार की चैतन्य प्रकृति है कि जो सृष्टि का बीज रूप है और अपरोक्ष रूप है प्रकट रूप है+
२५ जयन्तीदिनेषु उपोषणं कार्यम - जन्म दिनों में उपास यथा बर्त कारकरना कर्म है - इसकाये
आशय है कि यही असंग और स्वतंत्र अपरोक्ष रूप में एक सार आत्म स्वरूप निस्वार्थ रूप है+
सप्त वाराः सन्ति - सात बार हैं अर्थात सात स्वर हैं (रविः सूर्य - अ) १ (सोमः चन्द्र - उ) २
(भौमः मङ्गल सुषुम्ना म) ३ (बुधः बुध तुर्यातीत) ४ (बृहस्पतिः गुरु सूर्य शि) ५
(भृगुः शुक्र चन्द्र र) ६ (शनि सुषुम्ना इ) इसप्रकार प्राण अपान का एक रूप ही
सात स्वर रूप है कि जो सात वार के नाम से प्रसिद्ध है + कार्य करने योग्य काम +
सप्तन - सात + वार दिन + श्मश्रुकर्म - हजामत + आयुष्य - आयु उमर +
क्षीयते - घटता ती है + विवर्जयेत वो दूर करे + तैलाभ्यङ्ग - तेल की मालिस +
लक्ष्मीप्रद - ऐश्वर्य को प्राप्त + विद्यारम्भ - आदि ज्ञान सीखना + शुभ - अच्छा +
कांति - प्रकाश + वर्धनः - विशेष होता ती है + सेवस्व तू सेवन कर + गुरु - बड़ा
आत्मा - आदि बृहस्पती - बुद्धि + भज - सेवन कर यथा २७ प्रकार की ज्योति
को अपनी शक्ति जान + हरि - भवान - आप ही आप + स्मर - चिंतवनकर +
सत्य - सच्चा + कृथाः त कर + लक्ष्मी शक्ति + नश्यति - नाश होता होती है +
अहिंसा - एक स्वरूप ही साकार सृष्टि को जानना + परम - श्रेष्ठ + असत्य - झूंट
ब्रूहि - तू बोल + ब्रूयाः - तू बोल + धर्म - शुद्ध आचार विचार रूप + पातक - आपे
ही आपन विपत में पडना मात्सर्य व्याप्त होना इसी का नाम पाप है कि संतोष न राखना +
चर - तू कर + पर श्रेष्ठ - अन्य - अधिक + प्राणी हि - स्वशकर + याचक भिक्षारी
क्रोध - गुस्सा + दान देना + जय - जीत + देहि तू दे + काम - कामदेव + अर्थ - धन
वै - निश्चयसे + जहि तू नाशकर + वर्धते वो बढ़ता है + दया - कृपा + यशस -
कीर्ति + धार्य तू पकड़ + पूजय - पूजाकर + पशु - जानवर + आवाप्नुहि - प
पालय - तू रक्षाकर + प्रापयति - पमाता ती है + हिंसा - वधिक कर्म काना +
मा - नही - मत + अभ्यास साध्या - अभ्यास से सिद्ध होने वाली + पितृ पिता
मातृ - मा + भार्या स्त्री + उपयमेत - व्याहे + प्रणम - नमस्कार + प्रेमन
प्रीति + परदार - दूसरे की स्त्री + किमपि - कुछभी + साह्य कर्ता - मदद करने वाला +
गच्छेत - वो पास जावे + सुख - आनंद + भय - डर + उपगच्छेत - वो पास जावे
दुःख - कष्ट + अनुभवति - वो - भोगता ती है + द्रव्य - पैसा + सहैव - साथही
गुह्य - छिपी बात + नविद्यते - नही है + परस्त्री - दूसरे की स्त्री का नाम +
गोपायति - वो गुप्त रखता ती है + आरक्षता ती है + शिव - कल्याण +
दुष्टसंग - बुरा लोग + उपदिशन्ति वो कहता ती है + अहित - अकल्याण +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्पद्यते - उपजता - ती है + अभक्ष्य - नहीं खाने योग्य + सूचयति - वो जिता देता ती है + 255
सत्कुलजा - अच्छ कुलमें उत्पन्न हुआ हुई + भुंक्थाः तू खा + अस्मिन - इस - इसमें +
भवद्भिः - आप + कियता - क्या यहां + मूल्येन खरीदने पर + अज्ञः - मूर्ख + शिशु - बालक +
क्रीडति - खेलता है खेलती है साधवः - सज्जन पुरुष दयामि परमात्मा का नाम है +
प्राणिमात्र - जीव जंतु + षु - सब + दयां - कृपा + कुर्वंति - करते हैं करती है + उदयात - प्रकट
होना निकलना + व्यम - मैं हूं + नम - निर्मित निराकारं + अव्यम हूं + मये मैं एक ही अकेला हूं
वक्तव्यम - कहता हूं + नाम हम - मेरा नाम है + ये है + आत - तक से + ले एक + गन्तव्यम
जाता हूं + सर्गेम - छोडता हूं साफ करता हूं + कुर्वीत - करे + नद्यां - नदीमें + कर्तव्यम - मैं करता हूं +
यात - करे + याम - कर्तव्य + एष यह + आं - में - प्रत्यहं - नित्य + आदौ प्रथम + सि - हैं +
ऐन - करने की का ऐसा - एक + व्या और + याम - में + लं है + अस - इस + वो - अनेक +
थिन - हैं + आयांति - आते हैं + तेषां तिनमें + थिनो - कोई - कतिपये - अनेक कितने ही +
तर्क - तर्क + मध्ये बीच में + सर्वे सब एक एक करके + अस्याः इसमें + आसेन - में से +
अस्याम - इस + नः - ही + उत्तीर्णाः - अवतार होना कामयाब होना - इच्छा पूर्ण होना प्रसन्नता +
वै - ही एक ही - हम ही + भिः कोई - अपि - भी + भिरपि शत्रु साझी - स्त्री काई भी +
इदं - ये + तस्मादि - तौ भी + एन - ऐसा ऐसी (बात) कि वर्णन में न आवे जैसे की) सुखमें
खुशी + पर्यंतं - ऊपर - तक - में अन्दर ही अन्दर + किस्मिन - कौनसे + यत - ये - जो +
तम - करता हूं + वा - या + न - नहीं + दृढा मजबूत + प्रत्यहं तौ भी + तेन - तिस +
त्वमपि - तू भी + सज्जा तैयार + अस्माकं - हमारा + नः हमसे + तुष्माकं - तुम्हारा +
यदा - जब + तदा - तब - मेव - मुझ को मेरे को - ही - चाहिये + किंचित कुछ भी +
एतदेव - यह ही + भ्यः उठना आना निकलन दिखन - से - में + प्रागेव प्रथम ही +
गत्वा - जाकर के + आवृत्या - ध्यान + पृष्टे पूछते + दद्यात - देना + अपृष्टे न पूछते
न बोलते + वदेत - बोलना कहना बोले कहे बोल कह + सत्यां सत्यमें + अग्रे आगे +
चरेत - करे + उन - को + तदेव - वोही - आयि - हे + सुसिद्धं - सब तैयार है - हुई है +
इमे - ये लो + आगताः आगये + सर्वमपि सब ही + वर्तते - हुए हैं + भोः - हे +
वाधते - लगरहा है लगरही है + बहवः बहुत + संति हैं + अतिथि - महमान +
भो भो - अहो + अतिथयः - अतिथो + इहा यहां + गच्छत - आओ - लो +
तेन - उस + सह - साथ + करोमि करता हूं + कस्मिन्नपि - कभी भी + ननु - तैयार
न होना + आसम - मैं आप ही + इति - ऐसा + हि - तो + शास्त्रं - धर्म का + यूयं - तुम +
यथेच्छ - इच्छा अनुसार + भुङ्क्ष्व [illegible] आकृति + यद्रोचेत - जो रुचि हो + तदग्राह्यं -
सोला + एतच्च - यह + भुजंतः - खाने वाले + आतृप्ति - असंतुष्ट + जातं - जाता हूं मैं +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

256

अनेन - इस + आचरणेन - स्वभाव - आदत + कोपि - कोईभी + आनय - लालेआ - लाव + मिलंती - मिलती हैं + पणस्य - पैसा + केन - किस + गृहाणि - घर + अत्र - इस + कियत - किस + तः - वो + तावतः तितने का + नलभ्यते - नमिलेगा + तर्हि - तो + अस्य इस + आपण - दूकान + मासकं - हमारा + पर्णानि - पत्ते + धीरो - धीरज वान + धर्य - धीरज + भुंक्ते - होता ती है + अहंकारी - अहंकार करने वाला + विनश्यति - नाश पाता होता है + शोभन - अच्छा + उपार्जयति - प्राप्त करता है - ती है - पाता है पाती है + सुतः - सुधड़ अच्छा जाने वाला - समझाने वाला + केनापि - किसी से भी + सह - साथ + कलह - झगड़ा + नकरोति - नहीं करता + धनिन - मालदार - पैसे वाला + व्यापार - उद्यम + व्यापारे - व्यापार में + वसते - निवास रहना वास करना - रहना - रहता रहती है + स्वामिन - धनी + भृत्य - नौकर - नौकरनी + वेतन - पगार - तनख्वाह + ददाति - देता है देती है + विनय - निम्रता + पात्रता - योग्यता + एति पाता - ती है + आप्नोति - आपसे आप आता है आती है प्राप्त होता है - होती है + धर्मेण - धर्म से + एधते - बढ़ता - ती है + वृद्धिं ते - विशेष होना बढ़ना + सुष्ठु - अच्छे + आचरण - आदत - स्वभाव + दुर्जन - बुरे लोग + सज्जन + अच्छे लोग + सत्फलं - अच्छा फल + दुष्फलं - बुरा फल + संग - साथ + संगान - साथ रहने से + किंतु - तो + हिताय - किया हुआ - कल्याण कारी कारण + अहिताय - अकल्याण कारी + प्राशनेन - पिलाना + प्राशन - पीना + गरल - जहर + तद्वत - तैसा - तैसे + द्वाभ्याम - दोनों से + अध्ययन - पढ़ना + तपस्त्वेकेनैवोतमं भवितः - तप तो एक से अकेले से ही अच्छा होता है + द्रव्येण - धन से + धनवंतं - धनवान को + जनाः - सब + अधिकं बड़ा + मन्यंते - मानते हैं + मानयंति - सत्कार करते हैं + नरपति - नरों में श्रेष्ठ परमात्मा + सत्कारोति - सत्कार करता है ती है + कः - कौन है + त्वं - तू + किं - क्या + तव - तेरा + एहि - आओ + स्मरसि - याद करता है याद है कि - खयाल करते हो - मित्र - हे मित्र + तत्र - जबके + वयम - हम + अवसाम - रहते थे अभिजानासि - याद आया कि नहीं + तस्मिन - तुम और हम + अभुञ्जाहि - जीमते थे + दक्षिणां - दक्षिण की + दिशं - दिशा को + जगाम - गया + सः - वो + आगच्छत - आया + कदा - कब + आगतोसि - तू आया + अयं - मैं + आगच्छामि - मैं आता हूं (भात्सु मतहो - नहीं चाहिये) + आगमिष्यसि - तू आवेगा + अविचार्य - विचार न करके + किंपि कुछभी + किञ्चित - कोईभी + रक्षक - रखवाला + तावत - तबतक + स्थानव्यं - खड़े रहो यावत - जबतक + वद - तू बोल - तू कह + कुतः - कहांसे - क्यों - वदसि - बोलता है कहता है + अपराद्धं - अपराध किया + क्षमे - मैं माफ करता हूं + इमं - इस - इसको इतः परम - यहांसे आगे - इस से आगे + एतादृशम - ऐसे चित्र + आकर्षिः - मनका मेरा काम है - मैं ने किया है + कोहं - आत्मा परमात्मा को + एनं - तू देख + एनम - इसको + आह्वयामि - मैं बुलाता हूं मैं बुलाती हूं + आयि - हे - अये अहो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जन - मनुष्य + प्रावृत - चाल + प्रावृति - चाल चलन + कर्माणि - काममें + अभिरत - लगा हुआ + अभिरताः - लगे हुए + कर्तव्य - करने का काम + पशुकृत्यं - जानवरों के काम को + नाचरंति - नहीं करते + वर्तते - हैं - रहते हैं + ये - जे - जो + नु - लोग + ते - वे + नु - तो + पशव - पशु - स्व - ही + ज्ञेय - जानना - जानने के योग्य + ज्ञेयाः - समझना + कर्तुं - करने को + नोचितं - योग्य नहीं है + उचिते - योग्य है + इदं - यह + कदापि - कभिभी + कुर्मः - करते हैं + नापि - नहीं नहीं नहीं + करिष्यामः - करेंगे + यदि - जो + करोषि - करेगा + यथेच्छं - जैसी इच्छा हो वैसा + द्रक्ष्यामि - मैं देखूंगा + नचात्र - चौकस न रहना - ऐसा नहोना + तिष्ठामि - रहता रहती हूं - रहूंगा + अन्यत्र - दूसरी जगह + गच्छामि - जाता हूं - जाती हूं - जाऊंगा - जाऊंगी + मृगेंद्र - सिंह + मृगेंद्रस्य - सिंह को - मृगेन्द्रत्व - सिंहपना + कानने - जंगलमें + वितीर्ण - दिया + मनस - मन + वचस - वचन + अन्यत - दूसरा + पापिन - हिये का अंधा माया का गोरख धन्धा आत्म नाशी + न्याय्य - वाजबी + पथः पथिन - मार्ग + प्रविचलंती - अचल रूप ही रहते हैं - अपनी जगह को नहीं छोड़ते + पदं - पगभर - पांवभर + धीराः - धैर्य वीर + दैवेन - आत्मसुख आत्मा से ही + देयमिति - मिलता है प्राप्त होता है - दिया जाता है + कायर - आलसी + विदन्ति - कहते हैं + यत्न - महनत + कृते - किये पर + नसिद्ध्यति - कामयाबी नहो अर्थात इच्छा पूर्ण न हो + कोऽत्र - कौन है - कौन ऐसा है - जो ऐसा + दोषः - कहता है - पाप है + गच्छ - जा + सूकर - सुवर + भद्रं - भला होने को हो कल्याण हो + त - तो सिंह - नाहर + मया - मैंने आपने आपने + हतः - मारा है + पण्डित - विद्वान + बलम - शक्ति को + गज - हाथी + गण्यन्ते - गिने जाते हैं + मशका - मीगुर - डांस + मशक - मसा + तु - वहां + का - क्या + कथा - बात + विधि - आत्मदैव अपनाही एक आत्मा + मतिः - बुद्धि है + दुर्बल - दुबला + घातक - मारने वाला + विनाश - नाश - मरण + अव्यय - नाश रहित + कश्चित - कोई भी + कर्तुं - करने को + अर्हति - योग्य होता ती है + न जायेत - उपजता नहीं + जायेत - उपजता है उपजती है + नम्रियते - नमरता ती है + म्रियते - मरता ती है + कदाचित - कभी भी + छिन्दन्ति - टुकड़े होते ती है + शस्त्र - हथियार + दहति - जलाती है ता है + पावक - अग्नि + काल - समय + हि - निश्चय से + धर्म - धर्म + निरवधि - अपरिमित - अनंत + विपुला - बडी विशाल + बहुरत्न - रत्न वाली + वसुंधरा - पृथिवी + बालादपि - बालकों से भी + सुभाषित - अच्छी भाषण + ग्राह्यं - लेना लेने योग्य है + मांसाशिन - मास खाने वाला + निर्दय - दया से रहित + दग्ध - जला हुआ जली हुई + भूम्य - जमीन + उप्तबीज - बोया हुआ बीज + अंकुर समर्थता - अंकुर पैदा करने [illegible] - आकृति रूप नाशे - दीपक का बुझाना + तमोराशि - अंधकार का समूह + आह्वान - बुलावा करना - निमन्त्रन +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२३८

अपेक्षते - चाहता - ती है + समीहितार्थ - मनवांछित कार्य + संसिद्धि - तैयारी +
तुष्यति - खुश होता ती है + कस्य - किस्का + अवश्य - ज़रूर + अनुभोक्तव्यम -
भोगना भोगने के योग्य + कृत - किया हुआ + सौभ्रात्र - अच्छा भाय पन अर्थात
अच्छा चलन + दुरासद - दुर्लभ है - मुशकिल है - कठन है + भाग्य - दैव अर्थात
अपना आत्मा परमात्मा + जाग्रति - जागता हो + गुरुरेवहि देवता - नश्चिय करके
अपना आत्मा ही बुद्धदेव परमात्मा बृहस्पति नाम एक ही देवता देवतों में पूर्ण देव है
आत्मीय - अपना + आत्मा - अपनी प्रकट रूप आकृति + परमात्मा - अपनी अव्यक्त आकृति
अपाय - नाश + उपाय - उद्यम + शंका - कल्पना - वहम - सन्देह + कल्प - शंका - वहम +
शंकु - खीला - कील - कांटा शूल + देहभृतां - प्राणियों के + प्राणभृत - प्राणी + हृदि - हृदय
हृत - हृदय - कलेजा + प्रदीप - दीप - दीपक + दीपित - प्रकाशित किया हुआ + देश - जगह
तमस - अन्धकार + गति - गमन + पुष्पावचय - फूलोंका बीनना + (शक्य - सके योग्य -
सकाय - ऐसा - आवश्यक्ता) + फलकाल - फल लगनेका समय + समागत - आया हुआ +
सत - सज्जन - पुरुष - आत्मा का नाम + आस्था - आशा + यशः काय - कीर्ति रूपी कीर्ति +
अस्थायिशरीरक - क्षणभंगुर देह + जीवित - जीवन + पराधीन - परायेके बश + जीव - प्राणी +
मरण - मरना + वरं - अच्छा + अप्रिय - कुप्यारा + पथ्य - हितावह - परहेज़ + वक्तृ - बोल
ने वाला - ली + श्रोतृ - सुनने वाला - ली + दुर्लभ - दुष्प्राप्य - मुशकिल - कठन +
नगर - शहर + मुद्रणालय - छापनेकाधर + श्रेष्ठिन - श्रेष्ठों में श्रेष्ठ - सेठ + अधिपति -
मालिक + मद्रित - दागी - छपी हुई + विक्रय्य - बिकने को तैयार + अपेक्षा - इच्छा +
बहूनि - बहुतसी + एषां - इनको + सर्वेषां - सबको + पत्र - चिट्ठी + पेषय - भेज +
शीघ्रमेव - जलदी ही + आयास्यंति - आवेंगी - पहुंचेंगी + कथमपि - कैसा भी +
विलंब - देर + भविष्यति - होगा होगी + काव्य - कविकर्ता + पुराण - पराचीन +
भाषा - बाणी + विपुल - बहुत + विद्यंते - मोजूद हैं + चंपू - लुभानेवाला ली +
मूल - तत - सत - अस्ति - भाति - प्रिये - आनंद + भाषांतर - बाणी में बाणी +
ग्राहक - खरीद करनेवाला + कथं - कैसा + सुंदर - अच्छा + अविलंबित - शीघ्र +
दृश्यते - दीखता ती है + प्रेषयिष्यंते - भेजे जांयेंगे + कीलाक्षर - टैप + यंत्र - चित्र
शोधयंति - शोधन + निष्पद्यन्ते - नवीन तैयार होते हैं + संयोजक - जोडने वाला +
भृत्य - नौकर + अवचिन्वंति - इकट्ठा करते हैं - जोडते हैं - वीनते है + मषी - स्याही +
संचा - सांचा + आनीयते - लाया जाता - लाई जाती है + अतिमहत - बहुत मोटा +
वर्तते - है + सुवर्ण - मुद्र - मूर्ति [illegible] कृतिर निर्मित - रचा हुआ ई + राष्ट्र अष्ट
समप्रति - हालमें - शिशु - बालक + निरमायि - निर्मान करी - निश्चय करी +

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तदपि-तौ भी + ऐसाभी - वोभी + कथय - कह + निर्मीयते - बनाई जाती है + मुनि - चुप + शृणु - सुनो + प्रवक्ष्यामि - मैं कहता हूं - फिर मैं कहता हू + ये सब शब्द और उनके अर्थ अव्यय वैखरी बाणि शब्द श्रुति रुप हैं इसलिये जो शब्द दिलमें चुभता हो और हृदयमें खुबता हो उसी उसी को जोडने से वे शब्द श्रुति रुप छन्द रुप व्याकरण रुप होजाते हैं और सत अर्थ को प्रकट करने लगते हैं और इसी का नाम यज्ञानाम में जप यज्ञ है अर्थात अजपाजाप है इसलिये श्रुति[1] छन्द[2] शूत्र[3] में एक अक्षर दूसरे अक्षर का रुप बनकर सत अर्थ को प्रकट करता है या एक प्रकट अक्षर सत अर्थ के सत भाव प्रकट करने को शब्द के उच्चारण रुप में अव्यक्त अक्षर को व्यक्त करके शब्द के शुद्ध अर्थ को प्रकट कर देता है सो यज्ञा नाम यज्ञ शब्द के जो अर्थ हैं वे अर्थ यह श्रुति प्रकट करती है - ॥ श्रुति ॥ शुद्ध श्रुति ॥

यज्ञानां संसृति इच्छा[1] द्वेष[2] प्रयत्न[3] सुख[4] दुःख[5] ज्ञानान्यात्मनो लिंकमिति नात्र षड दृर्शी कर्मा: ॥

कर्मातनां प्रकृति जायेत प्रकृति प्रारब्धनां आकृति असंगो अमृत पुरुषः महान्तमादित्यः ॥

अर्थ ये हैं कि - यज्ञ नाम सृष्टि संसार का है कि जो इच्छा अर्थात कामना १ और द्वेष अर्थात नफरत २ और प्रयत्न गमागम अर्थात आवा जावा उद्यम रुप ३ और सुख रुप ४ और दुःख रुप ५ और विद्यारुप अर्थात ज्ञान रुप ६ इन छ रुपवाली सृष्टि का नाम यज्ञा है - आत्मा एक जन्म मरण रहित नहीं है इन छ प्रकार के सृष्टि दृश्य कर्म रुप से कर्मवाला अर्थात आत्मा करता भोक्ता नहीं है और आत्मा इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञान वाला नहीं है और आत्मा को जनम मरण भी नहीं होता है - कर्म जिसका नाम है ये संसार रुपी संसार है कि जो प्रकृति कहलाती है प्रकृति ही है कि जो उपजती है और उपजने का नाम आकृति रुप में प्रकृति का प्रारब्ध नाम है कि जिस के अर्थ शेष के हैं अर्थात बाकी बचने के अर्थ का नाम प्रारब्ध है और प्रारब्ध का घृत में वासा है इसलिये प्रारब्ध का नाम छाच अथवा छाया है और इसी का नाम प्रकृति है और कर्म है और कर्म के अर्थ काम के हैं इसलिये जिस प्रकार घी में छाच रहता है - इसी प्रकार आत्मा में प्रकृतिनां कर्म और कर्म नाम प्रारब्ध का वास रहता है - स्वतंत्र है मोक्ष है अकाल स्वरुप है अद्वैत द्वैत से रहित अमृत नाम शुद्ध निर्मल पुरुष आदि अंत से रहित अनंत अन्धकार यथा प्रकृति कर्म नाम में सूर्य समान ही आत्मा है + सो इस प्रकार से यज्ञा नाम में जपयज्ञ अर्थात जो एक असंग स्वरुप ज्योति पुरुष यम रुप सृष्टि के भेद का जानने वाला है मैं हूं - (४) अस्मि शब्द अक्षर अर्थ से मैं ही जपयज्ञ रुप से अर्थात एक स्वतंत्र और असंग रुप से स्थावरनाम अर्थ में अचल स्थित स्वरुप से रहने वाला हिमालयः पर्वत रुप अचल से अचल पर्वत अर्थात « अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः » श्रुति अनुकूल अनादि काल से शकार [illegible] स्वरुप मैं हूं - अर्थात आकृतिरेवलु इदं ब्रह्म तद्दोषरस्य सर्व्वस्य तदु सर्व्वस्यास्य बाह्यतः ॥ श्रुति प्रमाण - जो कुछ अच्छा और बुरा देखने में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आता है ये सब बिन तृण पर्वत है पारब्रह्म अर्थात एक ही चेतन पृथक पृथक वस्तु में एक रस ज्यों का त्यूं व्यापक है अर्थात एक ही चैतन्य आत्मा सब के अन्दर है और ये ही चैतन्य सबके बाहर है और ये चैतन्य मेरा ही सत्य रूप अपना आप है यथा मेरा हिमालया रूप है

## शूत्र ६६ का आशय ।

(१) अश्वत्थः - शब्द अक्षर अर्थ में अश्व नाम बेलगाम घोड़े का है और त्थः अक्षर के अर्थ हैं अन्थक निरन्तर दौड़ने वाला सो इस प्रकार का दौड़ने वाला जो घोड़ा है वह प्रकृति सृष्टि आकृति इसी का नाम पीपल है कि जिस के अर्थ लोक के हैं और लोक का वृक्ष नाम है इसलिये अश्वत्थः वृक्ष नाम के अर्थ एकलिंक अनामय रूप मेरे के हैं कि जिसके मध्य १६ विकार मान तत्व निरंतर ही पंच भौतक देह को रचन किया करते हैं - और अपनी रचन क्रिया से आकृति रूप बना मेरे आश्रय में रहते हुए - नाना प्रकार के निर्त्य किया करते हैं कि जिनका नाम कर्म प्रारब्ध आकृति है - और इसही जायेत अर्थात प्रकट रूप आकृति का नाम अविद्या की ग्रन्थि लगना है - और ये ग्रन्थी देवर्षि के नाम में च अक्षर के अर्थ से चेतन आत्मा का नारद नाम है कि जो आदि अंत रहित ३० प्रकार की प्रकृति का आदित्य रूप उदित स्वरूप के सृष्टि रूप में एक आकृति रूप होता है और इस प्रकार से एक लिंक चेतन आत्मा एक ही चेतन आत्मा के आभास से सर्व प्रकार की आकृति प्रकृति अविद्या ग्रन्थी में प्रकृति रूप आकृति से संसार के सारे कार्य प्रकृति अनुकूल होते रहते हैं और इस प्रकार ॥ अश्वत्थामानां मं च केवलं महेश्व नारदः । न जायते म्रियते वा कदाचित मयैव अव्ययं - ॥ मेरे कैवल्य चैतन्य महेश्व नारद रूप का अश्वत्थामा नाम है जो प्रकृति जैसे घोड़े का रूप देखकर चेतन शक्ति से उसको रोक कर नाश कर देने वाला जो अश्वत्थामा नाम है इसी का चेतन केवल नारद नाम है कि जो न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है क्योंकि निश्चय रूप से मैं अविनाशी हूं -

(२) गंधर्वा नाम में मेरा नाम सिद्ध गधर्व चित्ररथः है और सिद्धा नाम में मेरा नाम कपिलः मुनि है और इस शब्दार्थ के अन्य इस नाम का सार आशय ये है कि जो इस श्रुति से प्रकट है - (श्रुति)

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ॥ महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति मुनि ॥

अर्थ - जिसके प्रकाश में स्वप्न अवस्था और जाग्रत अवस्था दृश्य मान होते हैं देखने में आते हैं उस यथार्थ अपने आप को कि जो पूर्ण वस्तु स्वतः सर्व व्यापक आत्मा है जानते ही शोक चिंता दूर हो जाते हैं वही कपिल मुनि मैं हूं -

(३) अभिप्राय ये है कि अंतर बाहर एक रस एक रूप जो मुनि नाम शब्दार्थ में मौन स्वरूप एक ही आत्मा है उसी एक आत्मा स्वरूप का नाम शुकदेव है कि जो सर्व सिद्धान्तों में अद्वय रूप है वही केवल रूप कपिल मुनि मैं हूं -

## शूत्र ६७ का आशय ।

(१) संपूर्ण श्रेष्ठ एक रस सप्त स्वर नाम का एक उच्चैः श्रवा नाम में इन्द्र का विधि नाम ब्रह्मा ब्रह्म प्रकट रूपी संसार का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ये संसार चित्र संपूर्ण ब्रह्मांड का एक नाम जो इन्द्र ब्रह्म नाम है मैं हूं अमर ब्रह्म मैं हूं और मैं ही ऐरावत नाम गृहस्थयों में गजेंद्राणाम गणपति अर्थात अष्टधा प्रकृति का एक नाम ॐ कार उलटा अकार अर्थात शक्ति रूप में माया और माया पुत्र संसार कि जिसका दिग्गजा नाम है मैं हूं और मैं ही पूर्ण प्रताप अर्चिंत रूप सर्व अधिकारी स्वरूप हूं—

अभिप्राय ये है कि मैं आप ही माया और माया पुरुष आप ही गुरु आप ही शिष्य आप ही शिक्षा और आप ही ॐ कार रूप ॐ कार महिमा हूं क्योंकि ये संसार जो देखने में आता है ये माया का रूप है और इस माया रूपी संसार का नाम ही माया माना मैं हूं और
पार्वती प्रकृति सृष्टि है कि जिसका परं पति पुरुष महेश्च नाम एक ही आत्मानन्द जगत पिता मैं ही निराधिपम नाम एक स्वतंत्र नारायण हूं क्योंकि माया अर्थात प्रकृति का पंच महाभूत उपून है कि जिस से नाना प्रकार की देहात्र बनती रहती हैं और आदि अंत के भेद का प्रत्यक्ष भाव दिखाकर नष्ट हो जाती हैं सो जब माया उपून से देह बनती है तो इस माया प्रकृति से प्रकृति अहंकार रूप में चूहे का रूप धार देहात्र में प्रवेश करती है और ये प्रकृति का अहंकार रूपी चूहा कि जो देहात्र में गुप्त भांति से निवास रखता है प्रकृति अनुकूल शक्ति पाकर प्रकृति का दूत बन करके हृदये स्थान में वास कर रहता हुआ उसे काटता और उसमें छिद्र करता रहता है और हृदये स्थान में शिव रूप ज्ञान मूर्ति विष्णु को नहीं आने देता और इस प्रकार अविद्या प्रमाद उत्पन्न कर ये माया का बुद्बुद की भांति माया उत्पन्न फैण रूपी चूहा माया को माना मान उस्का द्वारपाल बन जाता है आशय ये है कि संसार रूप में माया उत्पन्न आकृति माया रूपी संसार में ही लिप्त रहकर पिता रूपी अपने शिव स्वरूप विष्णु रूप को नहीं देखती अर्थात आत्म ज्ञान से मुख फेर अनात्म को धार सत्य निश्चय का प्रवेश अन्तः करण में नहीं होने देती क्योंकि माया रूप आकृति माया की ओर ही देखती है किंतु ज्ञानमय शिव का तेज जिस समय माया उत्पन्न तम रूपी अहंकारी चूहे पर पड़ता है तो उसी समय चूहे का एक विनोदनी रूप बन जाता है अभिप्राय ये है कि दुम कटकर मस्तक पर हाथी की सूंड समान जा लगती है और इस प्रकार अहंकार रूपी चूहा एक ऐसी विनोदनी मूर्ति बन जाता है कि जिसका देह तो मनुष्य जैसा प्रतीत होता है परन्तु ललाट पर हाथी की सूंड सी दिखाई देने लगती है और इसी विचित्र चरित्र का नाम नासाग्र ध्यान अर्थात आत्म स्वरूप का निश्चय विधि से जान लेना है चीन लेना है और इसी रूप का नाम गणपति और श्री गणेश है और इसी का नाम माया पार्वति पुत्र है कि जो ॐ कार मेरे अनाम स्वरूप की पाटल एक ऐसी ( ) मूर्ति है सो इस प्रकार से जो गजेंद्राणाम गणपति नाम है मैं हूं क्योंकि संसार की एक एक वस्तु आकृति आदि गुरु रूप में मेरा ही दिग्गजा नाम रूप से सत्य स्वरूप है कारण ये है कि जब मनुष्य अहंकार रहित हो इस बात पर विचार करता है कि संसार की एक एक वस्तु आकृति किस प्रकार से आदि गुरु और दिग्गजा नाम रूप है तो अनुभव अन्तर्य दृष्टी के साथ आत्मा आप ही आप अपने को आदि गुरु रूप से प्रकट करता है कि ज्ञान से अज्ञान अर्थात विद्या से अविद्या नष्ट हो जाती है इसी प्रकार जब आत्म चमत्कार का आभास देह रूप आकृति से अलग हो जाता है तो प्रकृति शरीर आत्मा की सारी विभूतियों में जड़वत रह जाता है प्रथम तो एक यही गुरु दीक्षा अर्थात शिक्षा है कि जो नाना प्रकार के पशु पक्षी और प्राणियों से मनुष्य रूप आकृति को भिन्नती है किंतु जगत में कोई विरला प्राणि ही इस शिक्षा को प्राप्त करता है अभिप्राय ये है कि आत्म शक्ति का बज्र माया कृत जो आकृति है वही ॐ कार आत्म ज्ञान दर्शन है कि जिस के सार को अविद्या प्रमादी अहंकारी समझने नहीं हैं कारण ये है कि क्षेत्रों में सब से बड़ा क्षेत्र हाथी का होता है कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२६२

जिसके पांव में सबका पांव रहता है इसी प्रकार ॐ कार अक्षर व्याकरण और कोश का एक ही प्रमाण रूप शुद्ध अक्षर है कि जिस एक अक्षर से सब अक्षर प्रकट होते हैं इसलिये मेरे दिग्गजा आत्मा नाम रूप में न श्रुति है न स्मृति है न अनुभव है आत्मा स्वरूप आप से आप है नित्य है और सद्गुरु है कि जिस सद्गुरु रूप दिग्गजा नाम मेरे की ऐसी आकृति है कि जैसी गुप्त अव्यक्त स्वरूप की व्यक्त रूप में इस प्रकार मूर्ति बनती है -

## दिग्गजा नाम ॐ कार आनंद मूर्ति ।

इस प्रकट भांति की मूर्ति का अर्थ आशय ये है कि इसमें नेत्र महेश्वर अर्थात ज्ञान का स्वरूप शिर ब्रह्मा रूप और नासिका विष्णु का सिद्ध स्वरूप है और गौरी भवानी ब्रह्मा विष्णु महेश्वर का माया की एक रूप है और माया १ - ब्रह्मा २ विष्णु ३ और महेश्वर ४ ये चारों एक ही गणेश रूप हैं और गणेश स्वासा रूप ॐ कार स्वरूप है और इसी का अर्थ नासाग्र धारणा ध्यान है कि जो अनुभव का स्वरूप है और इस प्रकार अनुभव का ये सिद्ध अर्थ है कि श्वेत वर्ण का जो एक दन्त गजाइस अनुभवी मूर्ति चित्र में लगा हुआ दृश्यमान होता है ये ही एक अद्वैत आनंद अवस्था है कि जो ॐ कार की चारों पाद से चतुर्भुजि रूप बना हुआ है और इस बात को निश्चय से प्रकट करना है कि (१) इस चित्र की जिस भुजा में [illegible] है इसी शंख की ध्वनि से जगत उत्पन्न हुआ है और (२) जिस हाथ में चक्र है वही भुजा अकाल पुरुष स्वरूप की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

और (३) जिस हाथमें गदा है यही प्रत्यक्ष प्रमाणमें मेरे अनाम स्वरूपको सर्व शक्तिमान होना जतारही है और (४) जिस हाथमें पद्म पुष्प है यही मेरे अनाम स्वरूपका सत चित आनंद ज्ञान स्वरूप होने का लक्ष्य है ऐसा इस रूद्र विनोदनी मूर्ति का भाव है कि जिस भाव के मय को प्राप्त हो अहंकारी चूहा देह के बाहर निकल मूष की भांति साक्षात दिग्गजा नाम गणपति मेरी विनोदनी अनुभवी मूर्ति का वाहन बन रहा है इसलिये दिग्गजा नाम ॐकार की अनंत महिमा है और इस प्रकार ॐकार जगत का सद्गुरु मैं ही निराधिपम हूं कि जिस रूप में माया शक्ति गौरी भवानी कि जिसके प्रभाव से जगत की सारी क्रया सिद्ध होती है मनुष्य देह में अषृ सिद्धि नव निद्धि का पूर्ण प्रकाश दिखाकर मनुष्य को अषृकला और १६ कला संपन्न अवतार होना प्रकट करती है और फिर अपना दिव्य रूप अषृ भुजा संपन्न दिव्यमाल्याम्बर धारण किये सिंह की पीठ पर चढ़े इस प्रकार अत्यन्त तेजवान सुन्दर स्त्री का रूप दिखाती है कि जिस प्रकार उमा अनुभवी माया शक्ति मूर्ति है और वह इस प्रकार का चिन्ह है-

## अषृधा प्रकृति माया शक्ति उमा मूर्ति चित्र ।

(अषृ भुजी अंबे आकृति)

इस माया अनुभवी मूर्ति का आशय ये है कि यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सर्व प्राणियों को इस प्रकार सावधान करती है कि हे हंस देव (सूर्य्य) अपने अरूप स्वरूप में मेरे दिव्य रूप को कि वह किस प्रकार कार्य कारण भाव के एक उत्पन्न माया वी रूप से स्थित है देख कि यही सिंहासनी अषृधा शक्ति गोल पैये की भांति आठ दिशाओं में अपना एक एक हाथ रखती हुई जो हे हंस देव (सूर्य्य) इस ब्रह्मांड चक्र को चक्र वत फिराती है और माया ही माया कहलाती है और देश काल चक्र वस्तु रूप है क्या है - देख कि

(१) प्रथम तो यही शारिका शक्ति है कि जो सर्व आकृतियों में अर्थात नाम रूप शरीरों में एक ही शरीर रूप है कि जो पृथिवी आकर्षण शक्ति रूप है और आकृर्षण शक्ति द्वारा सर्व पदार्थों को उत्पन्न करती है -

(२) इसी शक्ति का दूसरा नाम राज्ञा है कि जो जल रूप में सर्व आकृतियों की एक बीज रूप शक्ति है -

(३) इसी शक्ति का तीसरा नाम ज्वाला है कि जो अगिन रूप है और काम क्रोध का कारण है -

(४) इसी शक्ति का चौथा नाम चण्डी है कि जो पवन रूप है और संसार के चर्त्व को चलाती है

(५) इसी शक्ति का पांचवा नाम कालिका है कि जो आकाश स्वरूप है और जो धारणा धारण एक रूप है -

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(६) इसी शक्ति का मन मराडल में छटा नाम भवानी है कि जो ज्ञान और अज्ञान दो कला का एक कला रूप है
(७) बुद्धिमंडल में इसी शक्ति का सातवा नाम शुद्ध सरस्वती है कि जो सर्व शोधन स्वरूप है -
(८) अहंकार मंडल में यही शक्ति अपना आठवा नाम सावित्री रखती हुई शोधन और अशोधन दोनो से रहित
स्वना[1] उत्पति १ शिक्षा रक्षा २ और संहार ३ इन तीन स्वरूप से एक असंग उमा रूप में चैतन्य ही चैतन्य रूप से
चेतन ब्रह्म में लीन रहकर अपने को (ॐ हं ब्रह्म एकं ब्रह्म) प्रकट करती हुई कहती है कि नरा नाम में मेरा ही
नरसी निसंदेह निराधिपम[नाम] है कि जो गृहस्थ और संन्यस्थ का एक ही स्वरूप है क्योंकि श्रुति प्रमाण है -

हंसः शुचिषद् वसुरन्तस्क्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा आदिजा ऋतम्बृहत ॥

और अर्थ ये हैं कि -- आकाश की ओर नेत्र लगाकर देखो तो प्रिये हंस हंस सूर्य बनकर चमक रहा है
और आकाश पृथिवी के मध्य देखो तो प्रेम प्यारा वासु (वायु) बनकर मतवाली चाल चल रहा है
और पृथिवी पर होत्र अर्थात अग्नि रूपी भेष धारण कर बुला रहा है - वही तिथि वही अतिथि के
स्वरूप में पाह्वना (महमान) बनकर घर में आता है और वही मनुष्य आदिम आकृति में अपने प्रकाश की
चमक दिखाता है और ज्योति चमतकार में भी वोही प्रकाशन होता है व्योम वायु और आकाश में
अनामय रूप वह है - जल में वोही जल चरों की आकृति में उत्पन्न होता है और पृथिवी पर भी वोही
वनाशपति की भांति उगता है और बली में वोही प्रकट होता है और पर्वतों से वोही नदी नालों की
भांति निकलता है वोही सत है वही महान है। सो ऐसा जो हंस सूर्य है और ऊर्ध्व मूल अधः शाखा
सहित माया रूपी अश्वत्थ वृक्ष बना हुआ ये संसार है वही - निराधिपम नाम नर मैं हूं क्योंकि - श्रुति है

माया चित्रं बटाश्वत्थ तरोर्मूले शिष्या वृद्धा गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्याश्च छिन्न संशयाः नरोऽयम ॥

श्रुति प्रमाण - माया चत्र रूपी संसार जो बड़ पीपल के एक वृक्ष की तुल्य वृक्ष है उसके नीचे बड़ी
वड़ी आयु वाले शिष्य और छोटी अवस्था का एक ही गुरु एकत्र हुऐ - गुरुनें जिह्वा तक नहीं हलाई
किंतु सब को विदून व्याख्यान के ही शिक्षा देकर उनके संशय निवारण करदिये सो ऐसा जो मायारूपी
चित्र ये संसार है वह बट वृक्ष रूप में अश्वत्थ वृक्ष रूप है कि जिसमें पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय
पंचमात्रा और पंचभूत वृद्ध अवस्था वाले शिष्य अधः शाखा समान हैं और उन सबका गुरु जो
मौन रूप व्याख्यान रहित छोटी आयु वाला है वही नरों में नर निराधिपम नाम मैं हूं - और फिर
मैं कैसा हूं क्या हूं " हंसोऽहमसंगो शिवो सोऽहमस्मि निराधिपं अचलस्थित पुरुषः "
सूर्यदेवरूप मैं असंग कल्याण स्वरूप हूं कि जो कुछ है सो मैं आप निराधिपम नाम अचल स्थित पुरुष
आपही आप हूं -

## सूत्र ६८ का आशय ।

आशा रूपी तृष्णा के चमकीले शस्त्रों में छल कपट के शस्त्रों की बाढ़ यथा बाड़ काटने वाला जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बज्रकला नाम बज्र शस्त्र बिजली बाण है मैं हूं और मैं ही धनों में धन और अचल पुरुषार्थ हूं और मैं ही परमार्थ के हेतु एक मुख्य कारण रूप दर्पण हूं और मैं ही सर्प रूप में नाग यथा अषू प्रकार की वायु का एक रूप वासुकी हूं

## शूत्र ६९ का आशय।

(१) अनंत शब्द अक्षर अर्थ में मैं चैतन्य देव चैतन्य आत्मा नागा नाम अषू कला माया शक्ति रूप से परानाम जगदईश आकृष्णा नाम में आकर्षण शक्ति रूप पूर्ण बाल सुग्रीव नाम बानर बाल्मीक नाम डाकू जो एक ही नागा नाम नाग रूप अविनाशी आत्मा है वही एको ब्रह्म पूर्ण १-अनंत विधि २ सर्व व्यापक ३ सत चित आनंद रूप परंतत्व आदि कारण आदि अंत रहित अनंत और अनादि एक अङ्क रूप में हूं कारण प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रमाण में अंक १ के अनंत स्वरूप का नाम है कि जो ९ का सुलटा रूप है और ९ का अंक गुप्त रूप में विन्दु का रूप है कि जिस का ऐसा (०) आकार है और विन्दु अंक १ का अर्द्ध मात्रा रूप है कि जो तुर्या तीत का लक्ष दिरवाता है - अभिप्राय ये है कि विन्दु तीन गुण रूप और तीनों गुणों से रहित है विन्दु के तीन रूप में प्रथम जो रूप है उस का पूर्ण नाम है कि जिस का ये अर्थ है कि पूर्ण उसे कहा जाता है कि जिस में किसी प्रकार से किसी प्रकार का घटना बढ़ना अर्थात घटाव और बढ़ाव न हो पूर्ण ज्यों का त्यों ही रहे अर्थात उस में गुणा भाग आदि की क्रिया भी न हो - विन्दु का दूसरा रूप पूर्ण विधि अनंत विधि है कि जिस का ये आशय है कि विधि रूप में पूर्ण ही अनंत ज्ञान रूप हो अर्थात कोई बात कोई विद्या कोई क्रिया कोई कार्य और कोई कारण ऐसा न हो कि जो पूर्ण ज्ञान विधि के जाणने से बाहर हो अर्थात जो पूर्ण है वो पूर्ण रीति से सब कुछ जाणने वाला हो - तीसरा रूप विन्दु का पूर्ण रूप में सर्व व्यापक है कि जिस का ये आशय है कि कोई वस्तु और कोई गति और कोई काल और कोई नाम रूप ऐसा न हो कि जहां पूर्ण पूर्ण विधि से प्रकट प्रकाश मान न हो इस लिये पूर्ण का नाम ही अनंत है और पूर्ण विन्दु ही एक अङ्क रूप में १ का अनंत स्वरूप है कारण ये है कि जो वस्तु अनंत रूप होती है वह कभी पूर्ण रूप में एक से विशेष नहीं होती किंतु प्रकट प्रतीत में जो विशेषता प्रकट में प्रतीत होती है वह पूर्ण के एक अंक का ९ के अंक में जोड़ होता है और इस अंक में जो विशेषता होती है वही ९ का अंक रूप में एक जोड़ होता है सो विन्दु १ का रूप पूर्ण स्वरूप है इस लिये पूर्ण विन्दु एक अंक रूप में सत चित आनंद रूप है और वही परंतत्व परंब्रह्म परमात्मा अनंत नाम आदि अनादि मैं हूं और पूर्ण रूप में « पूर्णं परिपूर्णं एकं ब्रह्म परिपूर्णम » मैं हूं क्योंकि मैं एक ही हूं शेष की सर्व वस्तु मुझ एक का आभास हैं और आभास रूप अंक और आकृति मेरे उस एक के अनंत रूप के पूर्ण स्वरूप के प्रकाश की भिन्न भिन्न आकृति हैं और कुछ नहीं इस कारण इस एक में ही सब कुछ है यदि इस सब कुछ को देखा जाए कि किया वस्तु है तो इस सब कुछ का ऐसा रूप है (९) कि जो उमा नाम प्रकृति शक्ति स्वरूप है और ये पूर्ण का अर्थात १ का आभास अर्थात छाया है और छाया विन्दु का रूप है कि जो ९ की गुप्त शक्ति रखने पर भी कुछ नहीं है कारण ये है यदि विन्दु १ के साथ है तब ही तक उस के अर्थ हैं और जो ऐसा नहीं है तो विन्दु क्या है कुछ नहीं यदि १ के आगे विन्दु हो तो वो १० का रूप बन कर एक की ही विशेषता दिखलावे गी और जो १० के अंक रूप से एक अलग हो तो फिर विन्दु की कोई कीमत न होगी इसी प्रकार १ सब में व्यापक है एक के अन्य न कोई वस्तु है और न हो सकती है जैसे १,,,,,,,,,,-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की संख्या है यदि इसमें एक न हो तो इस संख्या का एक अर्व संख्या नाम ही नहो सो कारण ये है कि जो रूप है और जो वस्तु आकृति है वोही एक मेरे अनंत रूप का आभास रूप कटोटी अंक में एक ही अंक का भाग रूपी जोड है क्योंकि नहीं है और है इन दोनों शब्दों के मध्य ही जो सत्य ही सत्य है वो ही मेरा एक अनंत रूप है और अमर स्वरूप है कि जो ऽ३३ के अंक रूप में $\frac{१}{३}$ की आकृति अनंत रूप है वास्तव में १ किसी गति और किसी अवस्था में किसी पदार्थ से अलग नहीं है क्योंकि ऽ३३ क्या है $\frac{१}{३}$ का एक रूप जिसका ये अर्थ है कि ऽ३३+ऽ३३+ऽ३३=१ के या $\frac{०}{३३}+\frac{०}{३३}+\frac{०}{३३}=\frac{०}{९९}$ के है और $\frac{०}{९९}$ = है $\frac{१ऽ००}{००}$ के और $\frac{१ऽ००}{००}$ = है १ के इसलिये एक का अंक ही विन्दु आभास रूप में ९ का रूप है और विन्दु कोई वस्तु नहीं और ९ का अंक एक का पाटल रूप अर्थात छाया है और छाया नित्य सार वस्तु के साथ रहता है वैसे प्रतीत नहीं होता है और सार रूप मेरा ही एक अनंत अनादि स्वरूप है क्योंकि १ का पाटल रूप ९ का अंक है और अनंत अनादि चैतन्य जो एक ब्रह्म है मैं हूं ९ का अंक मेरी माया अर्थात मेरी चैतन्य शक्ति है कि जो उमा रूप से नित्य मेरे शुद्ध स्वरूप में लीन रहकर चेतन्ता शक्ति के सर्व प्रकार के चमत्कार दिखाती है और फिर में अनंत चैतन्य ब्रह्म नित्य स्वतंत्र और असंग ही रहता हूं जैसे कि पूर्ण के अर्थ हैं कि पूर्ण ब्रह्म सत १ चित २ आनंद ३ इन तीन अवस्था वाली एक आकृति का अनंत नाम है इसलिये पूर्ण चेतन का विचित्र चित्र ये है -

| अनंत चैतन्य एक रूप चित्र | अनंत चेतन आभास माया चित्र |
|---|---|
| १×३=३ व ३×३=९ और ९×१=९ के | १ के ३ और ३ के ९ और ९ के उलटे ९ ही ९ जैसे |
| ९×२=१८ के और १+८=९ के | ९×६=५४ के और ५+४=९ के और आभास १ के |
| ९×३=२७ के और २+७=९ के | ९×७=६३ के और ६+३=९ के और १ के आभास के |
| ९×४=३६ के और ३+६=९ के | ९×८=७२ के और ७+२=९ के " " |
| ९×५=४५ के और ४+५=९ के | ९×९=८१ के और ८+१=९ के आभास रूप के |

इस प्रकार १ का अंक अनंत चैतन्य ब्रह्म का रूप है और १ का आभास १ का उलटा चित्र ९ का अंक है कि जो प्रकट प्रतीत में चेतन का आभास है और कुछ नहीं है कारण ये है कि ९ के अंक को चाहे जिस अंक से गुणा किया जाए वह अपनी सार अंक संख्या को नहीं छोड़ेगा जोड़ संख्या में एक रस ही रहेगा इसी का नाम माया है और माया पुरुष प्रकृति रूप में १+८=९ पुरुष प्रकृति संयोग रूप में १८ का रूप है कि जो १८ विन्दु रूप में १ का १०००००००००००००००००० दश संख्या रूप में १ ही १ असंग और अनंत स्वरूप है सो जो इस प्रकार जो एक ही पूर्ण परं तत्व पूर्ण विधि सत चित आनंद सब में रमा हुआ और सब से स्वतंत्र अकर्ता अनंत स्वरूप है वोही अनंत योगीश्वर अनाम अवधूत परं परमेश्वर मैं हूं और (अनंतोऽहमनंतो नागा नाग अव्ययम्) मैं हूं -

(२) वरुणः शब्द अक्षर अर्थ में शश नाम चन्द्र आकर्षण शक्ति रूप में यादसाम अर्थात स्वासा की गति में बिजली मैं हूं और सूक्ष्म रूप मैं हूं और निर्विकार असंग रूप मैं हूं और धर्म तत्व रूप से यम नाम में तत्व विज्ञान नियम रूप भी मैं हूं अर्थात हेम मैं हूं भाप मैं हूं और जल मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## शूत्र ६० का आशय ।

प्रह्लाद नाम चैतन्य स्वरूप चेतन मैं हूं और आदित्य नाम सूर्य अर्थात काल रूप में अकाल नारायण मैं हूं और स्वरस्वासा मैं हूं और माया पति श्रेष्ठ बीर सिंह नरसिंह पद्म रूप में निर्पक्ष पक्षी गरुड मैं हूं स्वतंत्र मैं हूं ।

## शूत्र ६१ का आशय ।

पवित्र पवन मैं हूं त्रिगुणी स्वरूप नारायण दशरथि राम को एक रूप राम त्रिग्नि शस्त्र एक ही शस्त्र सुदर्शन चक्र नाम तीन आदित्य का एक रूप दत्तात्रेय अर्थात तीन सूर्य का एक आभास रूप मच्छ माया काम मकर पंच मछाँ नही रूप मैं मच्छ - कच्छ - वराह - वामन - हरि एक ही बाण रूप नाम जाह्नवी गङ्गा अर्थात सृष्टि संसार मैं हूं

## शूत्र ६२ का आशय ।

अचेतन रूप कार्यों का जड़ मरत रूप माया सृष्टि का आदि मध्य तथा अन्त मैं हूं अर्थात निज़ि नाह वा कल्यान रूप मुक्ति मोक्ष एक पथ पन्थ धर्म आदित्य सूर्य स्वतंत्र स्वरूप आनंदमय ईश्वर एक मैं हूं अर्थात मन कृत सर्गा नाम सृष्टि में विषय भोग विषयानन्द का अधिष्ठान रूप मन को खैंचने वाला राग के पांच नियम अश्व को चलाकर मन रुपी गैंद से खेलने वाला पूर्ण रीती से लगाम डोरी में क़ाबू किये हुवे बलवान घोड़े को रोक करके माया रुपी शरीर और नाम आकृति को निष्कलङ्क रूप में प्रकट करके सूरज रूप प्रकाशों का प्रकाश मैं हूं कि जिस सृष्टि में माया मन रुपी अश्व और गैंद का रूप है कि जो १ का उलटा ६ का सात अंक स्वरूप है इसी का मोहन नाम रंग है कि जिस झूटे और नीचे खेल का ऊंचा काम दुःख की होली है इस होली का खेलना दुःख रूप कर्म काण्ड है और सुख रूप में मस्त गति है कि जो मृगू वंश रूप से जीते जी मौत को कोड़ा मार अध्यात्म विद्या रूप से पालन पोसन भाग दौड़ हंसी आदि से रहित हो नाम मान से स्वतंत्र प्रकाश स्वरूप सूरज जो एक आत्मा है मैं हूं अर्थात निश्चय स्वरूप जो आत्म साक्षात कार में अज्ञान से स्वतंत्र शुद्ध सत्य सत्ता मात्र वास्तुक वस्तु एक ही एक चिद्घनानन्द अहंकार रहित महान स्वरूप एकत्व शुद्ध स्वरूप का आनन्द सर्व व्यापक एक रस स्थिर सत् ही सत सतस्वरूप जड़ मूल पुष्प पात फल बीज वृक्ष एक रूप अर्जुन नाम है और जो केवल शरीर को आत्मा करके नहीं मानता और नहीं पूजता शरीर का ग़ुलाम बनकर नहीं रहता और शरीर में किसी प्रकार की बैठक नहीं रखता आनंद रूप निर्भय रहता है आत्म ज्ञान ब्रह्म विद्या द्रुपदी बाह्य स्थूल शरीर जिसकी माया स्त्री है और जो अत्यंत पुष्ट और धनवान है अर्थात नित्य निजानन्द रूप से सूक्ष्म शरीर नत है वही अर्जुन मैं हूं और विद्या नाम में ग्रिथि ग्रहण रूप न टूटने वाली विधि बांसरी और बांसरी से बाजे के रूप में नकलने वाली अनेक प्रकार की सुरीली रागों को हृदय को वेधरण करने वाली वाद रूप राग रागनी अर्थात आनंद की लैहराने वाली लहर कि प्रसन्न रूप में न समानी वाली बांसरी में स्वर गति सुनने की शक्ति देखने की शक्ति एक रंग एक रूप साधू स्वरूप ध्रुव सूर्य चन्द्र और सृष्टि का घर अर्थात धाम खाली खोली बांसरी जो वाद रूप है और आश्चर्य मय गुम्बज़ की घन्नाहट युक्त जैसी चिन की आवाज़ बानी है और सृष्टि भेद में अनेक प्रकार की होने के कारण द्वैत रूप है वोही सजीवन आनन्द की अधिकता सुनैहरी तरवत जड़ाऊ आसन वेद विद्या वाद को कथन करने वाला बाणी अंधकार का नाश करने वाली वाद अद्वैत आनंद स्थान प्रकाश मान कभी तलवार और कभी पुष्प खिला हुआ फूल निगाह

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२८०

नज़र दृष्टि दिल भर कर बरसने वाला वर्षा ऋतु का बादल प्रतिबिम्ब २८ तत्व का एक वस्तु रुपी सूक्ष्म शरीर आश्चर्य रुप बाणी कुल संपूर्ण समस्त अद्वैत तत्व ईश्वर गद्दी निराकार हरि नाम प्रेम की बाणी लोभ की बाणी और हंसी विधि निषेध एक रुप कुलराज्य पूर्ण मूल्य असली रत्न अहंकार और धन की मान युक्त विद्या इत्यादि की अहंकार कारण रुप बाणी - खफगी गुस्सा क्रोध वाला वाद जगत का दानी प्रकाश पूजने योग्य पूजनीय सर्व माया को कम्पा देने वाला शोक राहित वाद जंगल में मंगल रुप बाणी जो सब वाद स्वरुप है मैं हूं - और आश्चर्य बढ़ाने वाला डर दर्द देने वाली लहर महान वाद का स्वरुप शनी तारे के सिरे से भी दूर वस्तु टुकड़ा भाग पृथ्वि और समुद्र जंगल और बन को वाद रुप समझ ज्ञान परिछिन्न अर्थात अंत का सार आनन्द दायक पृथ्वि किरण मृग तृष्णा का जल केन्द्र आकाश के तारे आदि का प्रकाश अनंत कोटि सूर्यों का रुप गुप्त भेद एक रुप एकाग्र स्वरुप वाद रुप में संसार माया का महाराज अमृत पानी ध्रुव नाना प्रकार का शोर इत्यादि जो अत्यन्त सुन्दर सत्य ही सत्य अद्वैत बाणी वाद है ब्रह्म धाम सत्य स्वरुप बाणी मेह शब्द आवाज बाणी माया रानी सुन्दर स्त्री प्रिया चांदी सोना उत्तम राग रंग बैहती हुई नदी दर्या रुप वाद मैं हूं कि जो अद्वैत रुप वेद और अंत का एक अनंत वाद है और वाद नाम अनंत शब्द बाणी है मैं हूं -

## शून्य ७ ३ का आशय ।

(१) अक्षरा नाम निरेश्य पदार्थों में मैं अकार अक्षर हूं अर्थात वाम देव अवधूत मैं हूं कि सर्वत्र व्यापक हूं और सर्वत्र रम रहे होने पर भी सब से असंग और स्वतंत्र हूं अर्थात ब्रह्म और ब्रह्म धाम आकृति सकन्द आवाज़ अज्ञान, अविद्या अन्धकार रहित फुलझड़ी पुष्पों का गिराने वाला अम्बर झाड़ने वाला अर्थात खुशबू वाला मोती की चमक नृत्य रुप पानी का झरना आनन्द मंगल शुद्ध आनंद शुद्ध अहंकार यम दारा आदि स्वामी सबसे बड़े मरतबे वाला सब बादशाह सबसे बड़ा शहंशाह अग्नि वायु घर विशालता का एक ही फैला हुआ सीमा सागर पृथ्वि आकाश तीन छोटे नाचीज समुद्र बश में और हुये काबू हुए हुवे काम क्रोधादि पर हुक्म करने वाला बादशाह नौकरों का नौकर नीच से नीचा ऊंच से ऊंचा रिंची हुई तल्वार गुस्से क्रोध को बच्चे का खेल जानने वाला मान्धाता कल्पित प्रमाणु से अन्य नित्य जो एक है - होगा - था - भूत - भविष्यत - वर्त्तमान में वर्त्तमान रुप - अन्धकार की सेना का नाश करने वाला सर्व कल्पित प्रमाणु पृथ्वि का जानने वाला ज्योतिश अचल पेचदार हेच पेच अर्थात शुद्ध स्वरुप के अन्य कुछ न होने का भेद कड़वा होकर महान बेड़ा मरतबे वाला ओ अर्थात आदि धुरी आदि ओ अनंत धुरी अर्थात बाणी और बाणी का आधार शरीर का करण से कागज़ के शेर छंद का ग़ज़ अहंकार प्रत्यक्ष बड़ा विद्यमान बंधन से रहित शरीर से भिन्न रौशनी प्रकाश आत्मवित आत्मा परलोक परमात्मा एक अन्धड़क सर्व नाशी त्यागी अनंत द्रिव्य की खान अर्थात कोश आत्म स्वरुप का हीर चश्मा: खज़ाना जीवन मुक्त चन्द्र विदेह मुक्त सूर्य मुरब्बल पवित्र पूर्ण प्रकाश का शरीर दृष्टि नाड़ समझ - पदार्थ अर्थात सूर्य चन्द्र तारा गणों का पर्दा कपड़ों में कोश अर्थात प्रलय का समय सृष्टि का प्रकाश ईश्वर अश्चर्य अवस्था दृष्टा और दृष्टि और दृश्य प्रेम रुपी सुंदर चक्षू कपल मुन्दे शीशा अर्थात दर्शन अन्तः करण प्रकाशित प्रकाश देने वाला चमकाने वाला गले के अन्दर बड़ी रग नाड़ी में रक्त रुप भागदौड़ करने वाला लोहा तल्वार अत्यन्त विशाल दिव्य रुप रखने वाला लहरों वाला समुद्र तूफान की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लैहरें नंगा निग्न बे पर्दे अबधूत अनेक प्रकार के झाग फेण बुलबुलों बुद्बुदों का एक रूप पर्वत सम सर्व संसार का जो एक ही रूप झूठा और असत्य माया ही माया स्वरूप है एक ईश्वर ही ईश्वर ये सब है सो इस प्रकार साकार अ अकार अक्षर है इस प्रकार इन सब साकार अक्षरों में मैं एक ही अ का एक अकार अक्षर हूं।

(२) द्वंद्वः नाम १२ का है कि जो १ के २ रूप में २ और १० के प्रमाण से अ अक्षर का द्वादश रूप स्वरूप में १२ अक्षर रूप और १२ से १२ स्वासा सुर रूप है इसलिये सामासिकस्य अर्थात स्वासा अथ्वा सुर ही नाश रहित द्वंद्व समास रूप एक अकाल सर्वतो मुख आकाश रूप धाता अर्थात धारण रूप मैं अहंकार पर्वत की गुफा रूप में प्राण अर्थात प्रणव रूप घने जंगल में एक ही अ अक्षर चैतन्य परमात्मा आनंद इन्द्र ब्रह्म आकाश खुला मैदान अति सुन्दर सुगंधि देने वाले पुष्पु का छैर मैं हूं अर्थात पोशाक ओढ़े हुवे सरसबज हरा भरा प्रतीत होने पर भी वस्त्र रहित हूं अर्थात हंसते हुए खड़े हुए बोलते हुए वन्सरी की ध्वनि रूप सर्व ओर स्वर्ग का बाग और स्वर्ग की नहरें १८ तत्व का एक ही स्वर शब्द रूप बोल चाल आवाज दिल पसंद मन को मोह लेने वाला सुर चमक प्रकाश तेज चादी के बदन वाली सफेद चांदी के शरीर वाली चादरें नित्य समय के माया नित्य की झांझन की सुन्दर आवाज नाना प्रकार का शोर घोर घन्घोर्घोर मोत्यों की वर्षा अति सुन्दर चांद का मुंह बल चेनन रूप प्रातः काल की आनन्दित वायु सरु वृक्ष चांदी के श्वेत जैसे के सिर केश वैहता दर्या रमता जोगी अर्थात योगी सुन्दर गाने वाली चिड़या अर्थात शुद्ध वायु पक्षी ईश्वर शब्द भासमान प्रकाश चमक मारने वाली दृष्टि सरोवर प्रकृति प्यारी प्रिया नित्य सर्वदा रहने वाला भेद मैं हूं—

## शूद्र ७८ का आशय।

(१) मृत्युः शब्द अक्षर अर्थ में अमृत तत्व अर्थात अमर ब्रह्म खुला लम्बा चौड़ा माया का प्रकट रूप में प्रतीत होने वाला आकार कि जो कुछ वस्तु नहीं खड़ा हुआ पड़ा हुवा एक आकृति का दूसरी आकृति में बदल देने वाला स्थान अर्थात माया आकृति का हरने हारा और माया आकृति का उत्पन्न कर देने हारा उद्भव अर्थात संसार सृष्टि का नाश करने वाला और नाश रूप से प्रकाश रूप में लाने वाला मैं हूं

(२) श्री नाम शक्ति माया के मध्य नित्य सर्वदा परिछिन्नता का भेद भाव अर्थात कीर्ति लक्ष्मी वाणी स्मृति बुद्धि धारण शक्ति और क्षमा सुरव आनंद रूप प्रकृति हवा जल के प्रमाणु आकाश अर्थात साया प्रतिबिम्ब गुह्य भेद गणित आकृति ज्योति सच्चिदानंद प्रकट होने का स्थान द्वैत भेद में एक तत्व चांद के मुखड़े वाला सूर्य का मुखड़ा वाला प्रकाश चेहरे वाला मोह लेती पार्वति माया में माया प्रकाश स्वरूप दर्शन प्रकाश वाले चेहरे का एकागरता रूप एक प्यारा यार जान की जो जान है उसकी अर्थात आप अपने स्वरूप की मूर्ति पैहचान शरीर और प्राण एकता का आनंद कि जिसको आंख देख नहीं सकती पाओं चल नहीं सकते हाथ हिल नहीं सकते ऐसी जो श्री नाम शक्ति है ऐसी श्री नाम शक्ति का मैं श्रीनम हूं अर्थात मैं वह धनपति हूं कि जिसके मिलने पर दुन्यादार को धन की प्राप्ति नहीं होती और वह साधु हूं कि जिसके मिलने पर दुन्यादार को अर्थात माया के पुजारी को उसकी मायावी कामायें और दुन्यावी मुरादें पूरी नहीं होती और वो गुरु हूं कि जिसके मिलने पर दुःख दूर नहीं होते क्योंकि मैं वैहता दर्या हूं कि दुन्या की कामनाओं के पूर्ण होने और करने के कारण सर्वदा उनसे कि जो ढांई मार मार कर अपना आराध्य को रोते रहते हैं नित्य स्वतंत्र रहता हूं क्योंकि मैं आत्म ज्ञान निजानन्द रूपी अमृत हूं अमृत आनंद धारा अर्थात जो नारी नाम श्री

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२१०

शक्ति उमा नाम प्रकृति है वो शुद्ध स्वरूप आनंद रूप नारी अर्थात स्त्री मैं हूं ।

## शूद्र ७ पृ का आशय ।

(१) वृहत्साम शब्द अक्षर अर्थ में अर्थात आनंद की प्रातः काल फूल स्वरूप सूरज की भांति लाल मोती की चमक जैसा स्वरूप गाने वाले पक्षी प्रातः सायन दिनरात रूप सुनेहरी सांप स्वर रूप स्वास गति का वृहत्साम नाम अर्थात छन्दोमें गायत्री छन्द नाम जो बाणी है यथा शब्द आवाज़ है शराब है अदृष्ट दृष्टि कांटा है अर्थात अन्तः करणी घर का यार पक्का मित्र संसार सृष्टि का आराम लड़ाई का समय अविद्या ईशा शरम का समय द्वेश इच्छा का समय अग्नि पर रखवखी हुई काष्ठा ज्ञान अग्नि का समय सुर सूर्य अर्थात ज्ञान का सूर्य जो उदय होने वाला है और जो अन्धकार के धब्बे में शूल रूप कांटा है और कांटोमें रिवला हुआ फूल है और जो राग द्वेश इच्छा ईशा से रहित जादू का खेल निजानंद की मस्ती का प्याला संसार के बाजों का नया राग और समुद्र रूप है और समुद्र में तुफान और तुफान में आकाश खुले हृदय वाला विशाल माया विस्तार बिजली और बिजली रौशनी और रौशनी के बुन्द्र चमकीला गुह्य भेद देश काल वस्तु जादू काम पियानो बाजे की आवाज़ मृग तृष्णा का जल पानी का चित्र चक्षु आंखों में प्रधान पुरुष छोटा सा बालक अनंत रूप अन्मूल्य रत्न जादू की भांति प्रवेश करने वाला स्वतंत्र चुपचाप आश्चर्यवत श्रोतागण उच्छल पड़ने चमकने वाला अनंत मोतियों का प्रकाश सैर और तमाशा इन्द्र धनुष बादल बैठने का स्थान ऊंचे देवहार के वृक्ष - अवाज की - शब्द - पक्षी - वायु पाओं से खेलने का गंद पानी पत्थर में सरोवर और द्वीप नाना प्रकार के रंग रूप पूर्ण लैहरें काम पर्दे का अधिष्ठान इन्द्रिय गोचर पदार्थों के अगोचर रूप को अनुभव करने वाली वृत्ति अर्थात « ॐ ब्रह्मणे नामं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भवः स्वरोम् पूर्ण तत सत्य सरस्वती सावित्री नां एकं प्रणव द्वादशाक्षरी प्रब्रह्म ऋषि साम्नां गायत्री छन्दसाम नामयेऽहम् » जो गायत्री है और जिसका यह अर्थ है कि मैं अनामय स्वासा ध्वनि में केवल ॐ कार ब्रह्म १२ अक्षर में ज्योति रस अमृत पूर्ण तत सत रूप में जो सरस्वती और सावित्री नाम में पृथ्वि जल अग्नि का स्वरूप है वोही ॐ ब्रह्म नाम मैं हूं - कि इसका स्व गायत्री छन्द नाम है इसके अन्य जो गायत्री है वही अशुद्ध है क्योंकि गायत्री का पूर्ण चित्र ही ये है -

## गायत्री चित्र अनुभव मुर्ति ।

इस चित्र में मध्य काला लाल विन्दु सरस्वती और सावित्री का एक रूप चेतन स्वरूप ब्रह्म गायत्री है और इस के ऊपर अहंका (रेखा) चक्र ब्रह्म चेतन का आभास अर्थात प्रतिबिम्ब या छाया माया रूप है और विधि निषेध के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रूप में सप्त व्याहृति रूप में नव प्रकृतियों का उलटा सीधा पूर्ण सार १६ स्वर का एक गायन रूपी राग अर्थात ॐ कार १६ सुर का १२ अक्षरी ॐ कार गायत्री छन्द सुर रूप मैं हूं अर्थात एकं ॐ ब्रह्म मैं हूं-

(२) मासानां शब्द अक्षर अर्थ में मेरा साकार नाम मार्गशीर्षो श्रेष्ठ मार्ग देश काल वस्तु है कि जिसका ऋतु नाम कुः अर्थात प्रकाश स्वरूप में उमा ओ३म अकार है कि जो (अ आ इ ई उ ऊ ॥ ए ऐ ओ औ अं अः)) १२ स्वर में १२ अक्षर का एक अ अकार अक्षर अर्थात शुद्ध शब्द बाणी गुण वस्तु है सो जो ऐसा उमा अकार है मैं हूं-

## शूत्र ६६ का भाष्य ।

(१) द्यूतं शब्द अक्षर अर्थ में मैं जूवा अर्थात एक पेच खाता हुआ अकार अनंत पूर्ण विधि रूप से लड़ाई जंग का गुप्त भेद प्रकट रूप में दुःख काल देश कारण कार्य नीच ऊंच पीछे आगे दमक मारने वाला प्रकाश छाती फाड़ने वाला जखमी दिल तीर और तीर का मुंह सुली छल कपट दूसरी वस्तु भिन्न वस्तु अलेप वैहम भ्रान्ति रस्सी सांप पर्वत कन्दरा गुफा चांद तारे पृथ्वि आकाश स्वप्न जाग्रत अन्य पदार्थ रोने की अवस्था एक ताबका तूफान गुलाम प्रजा बादशाह राजा शरीर स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर बाह्य हर जगह रहने वाला प्रतिविम्ब प्रकाश करने वाला सूर्य चमकने वाला प्रकाश स्वरूप अविद्या अज्ञान शरीर बहुत शरीर देह शुद्ध स्वरूप आत्मा दृढ़ प्रकाश वाला मुख अपना स्वरूप दृष्टि का शस्त्र पानी और सूरज आकाश तारे इत्यादि की विद्या के भेद प्रकट होने की प्रतिविम्ब डालने वाला आश्चर्य जादु आश्चर्य रूप सोच भ्रम की फौज डर भय से अद्वैत एक जीव दृष्टि से अविद्या अज्ञान अप्रकट कारण अमूर्तीमान सब से पैहिला कारण भूगोल वृक्ष शिर के बल उलटा मुंह जड़ नित्य ऊंची उठी हुई सुनैहरी नन वाली अव्यक्त सूक्ष्म आकृति कि जिसके आधीन अकल होश तमीज ख्याल बाणी और श्रोत्रादि इन्द्रिय ये सब अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर कहलाता है और प्रकाश स्वरूप सूर्य आत्मा अव्यक्त प्रकाश डालने वाले प्रकाश के तले रहता है और कल्पित बाह्य देह से सूर्य प्रकाश के तुल्य छलों में छल और तेजों में तेज है ऐसा जो द्यूतं नाम जूवा है अर्थात केवल प्राण रक्षा या देह का पालन पोषन गिराना घटना इच्छा अहंकार का लंगर कठा हुआ कोश है अर्थात बाणी रूप में द्वैष बढ़ाने वाले ख्याल नाना रंग बदलने वाली प्रकृति है अर्थात जिस प्रकृति कोश का एक पैसा भी दाम नहीं रखता है और जो एक कौड़ी कीमत वाली भी नहीं है बाणी ही बाणी में संसारी आकृतियां बराबर वाले साथीयों से पैण डूलम का तमाशा अर्थात गुल्ली डंडे का खेल घबराहट बढ़ाने वाले ख्याल और मलिनता रूप निन्दित सृष्टि है इस में श्रेष्ठ प्रकृति उत्तम चाल चलन कुल जगत की रोशन करने वाली प्रकाश देने वाली जूवे स्वरूप में जो कि एक आकृति बहुत ऊंची गद्दी अभिमन्यू नाम स्थिर अचल कुरुक्षेत्र के भारतीय रणयज्ञ में ऋत्विज का कार्य सफलता समाप्त भीष्माचार्य रूप धनञ्जय के गुरु द्रोणाचार्य स्वरूप के चक्रव्यूह का भेदन करने का ज्ञान एवं शक्ति है और अर्जुन नाम है धर्मराज रूप है और अभिमन्यु के उत्साह और साहस पर आश्चर्य रूप है वोही द्यूतं नाम चक्रव्यूह का भेदन करने वाला मैं हूं कि जो छल रूप में चक्रव्यूह के भेदन कर डालने वाले अभिमन्यु को चक्रव्यूह से लौटने का ज्ञान न होने के कारण द्रोणाचार्य रूप से साधु साधु कहते कहते हुवे छ रथियों के व्यूह अर्थात दुर्योधन कर्ण दुःशासन आदि के स्वयं मूर्छित कर दुःशासन पुत्र रूप से अभिमन्यु का शिर चूर कर जयद्रथ रूप से लोथ को लात मार उस का अपमान करने वाला और रवि मंडल को भेदन कर परम पद जैसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्थान पर रहते हुवे कुल सृष्टि पर तेज प्रकाश डालने वाला मृगू चमकीला सूर्य सत्य सूर्य जो अनंद है मैं हूं किजय रूप हूं और पूर्ण सत्य हूं अर्थात हूल तेज जय रूप में अद्वैत आनंद स्वरूप मैं हूं

## शूत्र ७८ का आशय ।

(१) कृष्णी नाम शक्ति माया के रूप में मेरा नाम वासुदेव है अर्थात मैं ही वासुदेव रूप बुद्धि हूं और (३) पाण्डव नाम में अर्थात माया शक्ति प्रकाश रूप में मेरा नाम धन अन्न जय है और मुनी नाम में मैं आप ही व्यास हूं और कवि नाम में मेरा ही नाम उशना कवि है अर्थात मैं आप ही शुक्र सूर्य हूं

## शूत्र ७९ का आशय ।

(१) दण्डः नाम अद्वैत देह रूप में मैं जयेतरथ अर्थात सर जीवन शरीर हूं कि जो कुरुक्षेत्र के भारती यरणयज्ञ में अर्थात सृष्टि संसार में द्रोणाचार्य रूप से चक्र व्यूह का अधिष्ठान रचन करके अर्थात सृष्टि संसार में हथियों का एक व्यूह चक्र नाम शरीर रचन करके दण्ड नाम अर्जुज रूप जो मेरा भीष्माचार्य एक असंग अवस्था का अद्वैत रूप है यही साधु नाम व्यूह चक्र भेदन अभिमन्यु नाम दमन करने वालों में दण्ड अर्थात सम्पूर्ण शत्रु जीतने वालों में नीति अर्थात जगदीष नाम अर्जुन है सो ही अनीती दमन नीती नाम अर्जुन जगत ईश्वर मैं हूं -

(२) निश्चय करके मैं मौन स्वरूप अर्थात महान उत्तम स्वरूप जो व्यष्टि और समष्टि: अर्थात जुज़्वी और कुल्ली वस्तु में एक ही गुह्या नाम है वही गुह्या अर्थात दृश्य न होने वाला गुप्त बाग़ बूटा गवाह साक्षी नीला आकाश अज्ञान अधा माया से विक्षेप शक्ति का मानु अर्थात प्रकाश से भरपूर अन्धकार में पूर्ण प्रवेश रूप दीपक नृण की ओट पर्वत आत्म स्वरूप रूपी बादशाह ग्रहण की छाया ग्रहण में पृथ्वि माया शक्ति के साथ एक रस रहने वाला गुह्या नाम का अलख निरञ्जनी विकार रहित ईश्वर ब्रह्म ये - वह - क्यों - किस तरह - ऐसा - और वैसा - समझ होश और अकल से भी दूर देश रहित काल रहित चिन्ह रहित निराकार निर्भय पदी पदी गुप्त स्वरूप का मर्म रूपमें सार वस्तु है वो ही मैं हूं

(३) ज्ञानों में ज्ञान अर्थात अज्ञान नष्ट दृष्टि दिव्य दृष्टि वस्तु जो के समझ में आवे अर्थात वाणी बोलने की शक्ति काम पूरा करने वाली शक्ति बल संसार के पदार्थों का गोड ईश्वर मन्दिर गिरजा और मसजिद की जो एक ही एक है आदि आदिम अर्थात हज़रत आदम कि जिसको ईसाई और मुसलमान मेरी सृष्टि अपना पैहला पैग़म्बर सृष्टि रचने वाला मानते हैं ) अकेला बे मिसाल अनंत गिन्ती का एक कोश तत्व विज्ञान का जानने वाला सत्य वस्तु गुण वाचक अथवा नाम वाचक शब्द युक्ति सिद्धान्त अद्वैत ईश्वर अद्वैत का राग दुःख नाशक अति ऊंचा आकाश स्वयं प्रकाश जो एक ज्ञान नाम ज्ञान सूर्य है मैं हूं -

## शूत्र ८१ का आशय ।

(१) यच्चापि नाम अर्थ से चैतन्य रूप चैतन्य स्वरूप मैं आप ही अर्थात भूतानाम आकृतियों में चांद सितारे इत्यादि प्रकाश रूप आकृति प्रकट प्रतीत रूप आकृतियों में शुद्ध आकाश दैव स्वभाव रखने वाले सुन्दर सुन्दर रूप स्वरूप वाले प्राणी पशु पक्षी मनुष्य आदि उत्तम गले सुरसे गाने वाले प्राणी पक्षी इत्यादि और बाजे सितार चंग इत्यादि नाप तोल वाले रूप गिणित इत्यादि के रूप और चित्र अनंत गुण और स्वभाव वाले सुरीले रागों को कानों में भरने और सुनाने वाली वायु प्रेम भरी वाणी आवाज़ और बड़े दब दबे रुतबे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वाली अज्ञान अन्धकार नाशक अत्यंत तप वाली सुन्दर आकृति अग्नि (रूपबुद्धि) और आनंद महिमा रूपी जल और चौदह विद्या में चतुर अर्थात चौदह विद्या की कोश वाली पृथिवी लक्ष सिंहारी रवि रूप लक्ष सिंहों को मारने वाली पूर्ण शक्ति (शक्ति) आदि अद्वतीय सत्य बीज रूप कि जिसकी मानिन्द और कोई प्रसिद्ध शक्ति अनुभव में नहीं है अर्थात मेरे अन्य और कोई वस्तु नहीं है तत और नहीं है भूतनाम चराचर आकृति में कोई आकृति चैतन्य शक्ति रूप मेरे स्वा ईश्वर्य शक्ति सो जो ऐसी अद्वैत चेतन शक्ति है वह मैं ही एक अर्जुन नाम धनुष्य अर्क बाण रूप हूं कि प्रकाश स्वरूप हूं

## शूत्र ८० का आशय ।

नहीं है अनंत रूप मेरे का अंत क्योंकि दिव्यानाम अलौकिक विभूतियों अर्थात माया माया शक्तियों मेरी का कि जो अत्यंत विस्तार वाली अनंत शक्ति है वह प्रत्यक्ष प्रमाण में मेरा अद्वैत स्वरूप है सर्वत्र प्रवेश रूप है यथा कारण सूक्ष्म स्थूल आकाश के पदार्थ मेरे विना सब नाचीज़ हैं कारण ये है कि सब कुछ मेरा ही स्वरूप है-

## शूत्र ८१ का आशय ।

चेतन रूप साक्षी जो मेरी माया शक्ति है वही सतों में सत्य बीज रूप दिव्य रूप लक्ष्मी रूप बलरूप निश्चय रूप और तत शरोमणि रूप जान और जीव प्राण और अपान शक्ति तारों में चमक जैसे तेज मान सार अंश मेरी शक्ति है यथा जो जो वस्तु ऐश्वर्य युक्त और शोभा युक्त और किसी प्रकार से चमत्कार रूप हैं सब मेरे तेज अंश से उत्पन्न हैं-

## शूत्र ८२ का आशय ।

अब बहुत इस कहने से क्या प्रयोजन जानने वाला इस सब भेद का केवल मैं ही अर्जुन नाम एक अकाल पुरुष्य हूं इस जगत का धारण रूप हूं और पूर्ण सत्य सत्य कार्य कारण रूप हूं कि जिसने अपने एक अंश में इस जगत रूपी माया को सृष्टि को अधिष्ठान देकर (अपने को आप ही) आप अपनी गुंडरी में स्थित किया है अर्थात उच्च नीच का कल्पित भेद भाव मेरे में नहीं है क्योंकि जीवविद्या की ढाल रसायनविद्या की तलवार और पदार्थ विद्या की बर्छी रूप विज्ञान स्वरूप समरक्षेत्र कुरुक्षेत्र में मैं ही अवतीर्ण संघर्ष जीवन हूं प्रकृति रूप प्रकृतिमूर्ति हूं व्यक्त प्रकृति में भी अव्यक्त प्रकृति ज्ञाता ज्ञातज्ञेय स्वरूप हूं व्यक्त प्रकृति जगत का एकरूप है और यह ही रूप - रूप रस- गंध- स्पर्श - शब्दादिमय है कि जो अव्यक्त प्रकृति में अंश मात्र को नहीं है क्योंकि शब्द स्पर्श रूप रस गंध जो व्यक्त रूप प्रकृति है यह सम्पूर्ण व्यक्त प्रकृति चित्र मेरे विश्वस्वरूप प्रकाश रूप अव्यक्त प्रकृति का प्रकाश आभास है और इसी व्यक्त प्रकृति का नाम वेद है कि जो कारण कार्य रूप में मैं आप ही आप हूं -

## शूत्र ८३ का आशय ।

(१) काल रूप में अकाल स्वरूप मैं हूं अर्थात कालोऽस्मि नाम अकाल पुरुष मैं हूं और लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो शब्द अक्षर अर्थ में व्यक्त रूप का अक्षय अर्थात नाम रूप आकृति का नाश करने वाला प्रोक्ष नाम अक्षर स्वरूप हूं और व्यक्त रूप लोक नाम आकृतियों का संहार करने वाला निश्चय करके मैं ही प्रवृत रूप हूं तो भी तो नहीं चैतन्य होने योग प्रकट प्रतीत में दृश्य मान होने वाली प्रकृति चैतन्य रूप में अचल रहने योग किंयोंकि यह सब पृथक पृथक करके प्रकृति सेना के जो जो आकृति रूप देखने में आते हैं और [illegible] में अत्यंत विस्तार वाले नाराणादि योधा रूप प्रकृति का स्वरूप हैं इनमें से कोई भी किसी काल स्थिर नहीं रह सकता है कि वे नहीं हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरे अव्यक्त प्रकृति रूप का कोई अंश इसलिये ये किसी प्रकार नतो अचल स्थित हैं और न रह सक्ति हैं

## शूत्र ८४ का आशय ।

तस्मात - तिस करके तिन्हीं कारणों करके मैं आप ही उतिष्ठ नाम अपरोक्ष रूप से कीर्ति प्राप्त व्यक्त आकृतियें का खाने वाला समर्थ राजा हूं और निश्चय करके मैं ने ही इस प्रपंच नाम रूप माया व्यक्त आकृति को पहले पहले ही निर्बल कर दिया हुआ है कि जो निमित मात्र है कारण ये है कि एकादश रुद्र का २७ सूर्यों के रूप में एक सव्यसाचिन नाम सूर्य और चन्द्र दोनों सुरों का चलाने वाला मैं हूं अर्थात अधिपति मैं हूं -

## शूत्र ८५ का आशय ।

चैतन्य स्वरूप से मैं आप ही अक्षर ॐ कार रूप स्वरूप हूं देश रहित निरदेश हूं अविनाशी हूं निरन्तर काम अर्थ रूप अर्थात काम और कर्म रूप हूं सर्व व्यापक हूं चिंता रहित अचिंत हूं चैतन्य साक्षी वीर पुरुष हूं और सनातन सिद्ध स्वरूप हूं अचल और अगम रूप हूं ध्रुव नाम आदिम आदि ध्रुवम ध्रुव मैं हूं -

## शूत्र ८६ का आशय ।

पांच महाभूतों के नाम में मैं आप ही यम नाम धर्म रूप एक आकाश रूप अकार हूं अर्थात अव्यक्त रूप में निश्चय करके मैं ही चेतन रूप बुद्धि हूं अर्थात दश इन्द्रियों में मैं चेतन साक्षी एक ही नाम पंच शब्द अर्थ में पंच ब्रह्म रूप में चेतन नाम एक अगोचर इन्द्रिय नाम इन्द्र हूं

## शूत्र ८७ का आशय ।

इच्छा द्वेष सुख दुःख संघात रूप में अर्थात लालसा रूप में अचेतन शरीर के चेतना रूप में ये सब असार वस्तु क्षेत्र नाम शरीर के संक्षेप करके एक रस विकार मान अविद्या के कार्य मिथ्या रूप हैं कि नहीं हैं -

## शूत्र ८८ का आशय ।

(१) एक अद्वैत अनादि आत्म ज्ञान रूप नित्य मैं हूं पूर्ण सार हूं ज्ञान अर्थ में ज्ञान दर्शन मैं हूं इस के अन्य अतत ज्ञान अज्ञान का अंत लक्ष मिथ्या का कहने मात्र ज्ञानों में ज्ञान जो चेतन रूप आभास है द्वैत रूप मिथ्या है

## शूत्र ८९ का आशय ।

अनादि सूर्य प्रकाश स्वरूप में गुणों से रहित परम आत्मा अव्यय अविनाशी मैं हूं और शरीर में टिका हुआ मी कौन्तेय नाम सर्व प्रकाश कला होने पर सब कुछ करने वाला प्रतीत होने पर भी न कुछ कार्य करता हूं और न उत्पन्न होता हूं और न किसी कार्य में लिप्त होता हूं -

## शूत्र ९० का आशय ।

वायु थल आदि सर्वत्र मैं व्यापक हूं सूक्ष्म यात सूक्ष्म शरीर में आकाश में हूं कि निर्लिप्त रूप स्वरूप हूं और सर्वत्र अर्थात सब जगह एक अचल स्थिल सदा रूप स्थिर स्वरूप हूं और देह विषय अर्थात किसी अर्थ से नतो मैं उत्पन्न होता हूं और न किसी अर्थ विषे देह में मैं लिप्त होता हूं कारण कि मैं स्वतंत्र हूं

## शूत्र ९१ का आशय ।

अर्थ में मैं प्रकाश स्वरूप चैतन्य मैं एक ही सत्य स्वरूप नाम रूप आकृति में इस प्रकार जैसे सूर्य प्रकाश मान

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

होताहै दृढ़ देहात्रों में साक्षी अर्थात सत्य स्वरूप प्राकाशक नाम में यनिअर्थात स्वतंत्र और असंग भारत नाम रूप में आकाश राजऋषि ब्रह्म ऋषि अर्थात भरत नाम दुष्यन्त पिता और शकुन्तला माता का पुत्र अर्थात आप ही में अपना पिता और आप ही अपनी माता और आप ही वेद और आप ही व्यास हूं कुरु नाम अन्धकार काल और काला कौवा काग अर्थात माया और पांडव नाम आत्मा अर्थात कौरव और पांडव का घनघोर संग्राम अर्थात एक अक्षर के दो नाम धृतराष्ट्र और पांडव दो नाम का एक नाम भारत पूर्ण अधिकारी प्रचण्ड युद्ध का अर्थात सर्व गतिका गति रूप में आदि आरम्भ रण भूमि और सैन्यारचणी भरत नाम (भ र त) अक्षर अर्थ में २७ प्रकार की अग्नि रूपी नव प्रकृति सारे जगत की उत्पत्ति का भारत नाम प्रत्यक तारा सूर्य सूर्यों का एक सूर्य असंख्यातीत ब्रह्माण्डों का एक विशाल ब्रह्मांड निश्चित प्रकाश चार प्रकार की चाल एक सैकंडे में एक लाख में एक करोड़ में एक और इस से भी अधिक कोटान कोट में एक सब का बड़ा न दिखलाई पड़ने वाला दूर से दूर निकट से भी निकट सूर्य चन्द्र बुद्ध मंगल शुक्र शनैश्चर पृथिवी राहु और केतु और अनेक प्रकार के निर्दिष्ट पथ पर भ्रमण करने वाले ब्रह्मांड रूप तारे सब एक रूप धूमकेतु और उल्कापुंज सूर्य मैरे बृहस्पति सब से बड़े समनल भारत नाम सूर्य के मध्य भ्रमण करने वाले तारे जगत रूप सृष्टि रूप में पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने वाले तारे और पश्चिम को पूर्व की ओर से घूमने वाले तारे अत्यन्त आश्चर्य का विषय और दक्षण से उत्तर की ओर और उत्तर से दक्षण की ओर घूमने वाले तारे चार चाल रूप-०-३-६-१२-२४-४८-९६-१९२ का एक रूप चार का एक जोड़ स्वरूप और ४-६-१०-१६-२८-५२-१००-१९६ का एक रूप जगत की विचित्र-ता का गुह्य व्यापक भिन्न भिन्न अंश सूक्ष्म अंश में एक भरत नाम भरत आकाश स्वरूप आकाशनद्ध जड जगत का अद्भुत रहस्य-७-२-७२-८९-१००-२-७-७२-२४-१३-२३-२१ प्राचीन तत्व का आकाश नाम एक सूक्ष्म तत्व विश्व व्यापी भरत एक ही समष्टि शक्ति अनंत आयु रूप निरायु वाला अर्थात आयु ही आयु विजय ज्ञान राज दिग्विजयी चतुर प्रवीण ज्योति विज्ञान प्रा प्रकृति प्राकृत अपूर्व केवल एक ही पुरुष भारत नाम जो विश्वामित्र नाम ऋषि जगत का एक प्रकाश रूप है मैं हूं

## सूत्र ९२ का आशय।

(१) मम अर्थ में मेरा देह अर्थात शरीर महत्व ब्रह्म अणोचा मन आकाश है यही माया विषय माया का स्वरूप है जिस माया में मैं गर्भ रहित गर्भ में नहीं आता हूं कारण कि दधाम्यहम शब्द अक्षर अर्थ में मैं स्वासा ध्वनि रूप हूं अचल आकाश हूं प्रकाश प्रकट रूप में सर्व भूतानाम अर्थ में मेरी माया का एक ही नाम भूत नाम है कि जो भूत भविष्यत वर्तमान में मेरे भारत नाम आकाश विश्वामित्र रूप में नित्य उत्पन्न रूप है उसी का नाम भूत है और इसी भूत का जिन नाम है और इसी का सिद्ध नाम है और इसी का कालिका नाम है कि जो मेरे लिये नित्य मेरे लिये काम किया करती है यह मेरी माया मेरी ही छाया है कि वास्तव में कुछ नहीं है मेरे से ही उत्पन्न रूप है मेरे लिये ही काम करती है और काम करने के पश्चात ये कालिका भूत या जिन के रूप में शैतान या पिशाच का रूप धार मुझी को धमकाती है कि मेरे करने को मुझे काम बना नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगी खालूंगी मेरी ये विलक्षण शक्ति मेरी मेरे आभास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की कालरूप उलटी छाया है कि ये आप ही अपने लिये विपत्ति रूप है कारण ये है कि ज्यों ही मैं इसकी ओर देखता हूं तो यह इस प्रतिज्ञा के साथ कि अब मैं तुझे न सताऊंगी चम्पत हो जाती है सो मेरे भारत नाम में विश्वामित्र स्वरूप आकाश रूप में माया का महत ब्रह्म नाम है यही माया मेरे गर्भ रखने का स्थान है कि जो गर्भ रखती और गर्भ रख कर अपने उदर से अनेक प्रकार के भूतों की आप से आप ही उत्पत्ति करती है मैं भारत नाम पुरुष न तो कभी गर्भ में आता हूं और न कभी उत्पन्न होता हूं कारण कि मैं माया प्रकाश रूप हूं मैं केवल दधामि अर्थात हों हूं शब्द रूप में अशब्द स्वासा अगोचर ध्वनि रूप हूं अर्थात स्वतः स्वतंत्र मोक्ष हूं ॥

## शूत्र ९३ का आशय ।

सब योनियों में जो शरीर उत्पन्न होते हैं उन सब का उत्पत्ति स्थान महत ब्रह्म अर्थात माया है और उसमें बीज डालने वाला अर्थात माया में माया को प्रकाश करने वाला पिता रूप ईश्वर और माया उत्पन्न कृत अहंकार माया मूर्ति आकृति मूर्ति का कौन्तेय नाम प्रकाश परम रूप परमात्मा अर्थात माया और माया आकृति प्रकाश रूप आदि पुरुष हूं सम्पूर्ण ब्रह्म मैं हूं ॥

## शूत्र ९४ का आशय ।

निश्चय करके मैं ही अचल ब्रह्म हूं मृत्यु से रहित विकार से रहित अविनाशी चेतन शाश्वत वीर पुरुष चेतन ब्रह्म धर्म रूप सुख स्वरूप एक ही अनंत कान्ति स्वरूप चैतन्य ब्रह्म विदुर नाम ब्रह्मणः मैं हूं

## शूत्र ९५ का आशय ।

नहीं तत स्वरूप को प्रकाश देने योग सूर्य नहीं चन्द्र नहीं अग्नि अर्थात सूर्य चन्द्र और अग्नि मेरे को मेरे स्वयं प्रकाश होने के कारण कि वह मुझ से ही प्रकाश पाते हैं तत स्वरूप मेरे को प्रकाशित नहीं कर सकते और यत नाम जिस चेतन स्वरूप मेरे में गति मेट अर्थात आवा जावा जन्म लेना मरना भी नहीं है अर्थात जिस स्वरूप में बन्धन के हेतु किसी प्रकार की निवृत्ति नहीं है अर्थात जो चेतन स्वरूप मेरा स्वयं स्वतंत्र स्वयं मोक्ष मुक्त धाम रूप है ऐसा जो धाम अर्थात स्थान है वह ही उत्कृष्ट स्थान मेरा मेरा परम स्वरूप परम आत्मा रूप है कि जो एक ही अनंत स्वरूप है सो ऐसा जो अनंत रूप है मैं हूं

## शूत्र ९६ का आशय ।

चेतन्य सर्व साक्षी मेरे विष्णु स्वरूप का जो आभास आदित्य नाम सूर्य में प्रवेश रूप से प्रकाशमान है वही तेज जगत नाम संसार के चमत्कार रूप में प्रकाश रूप है कि जो केवल मेरा एक ही अद्वैत स्वरूप है अर्थात चन्द्र अग्नि में तत अविनाशी विधि नाम ब्रह्मा मेरा एक ही स्वरूप है कि आदिम आदि एक रूप

## शूत्र ९७ का आशय

गाम नाम अचल शक्ति से प्रत्यक्ष प्रवेश प्रकट चैतन्य प्राक्रम से सर्व मूर्त नाम आकृतियों का इन्द्र ब्रह्म मैं आप ही एक रूप सार स्वरूप पोशन चमत्कार स्वरूप औषधियों का पूर्ण सूक्ष्म रूप रस रूप स्थूल काष्ठात्मक नाम एक ही रस वाली एक रस आत्मा हूं

## शूत्र ९८ का आशय ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

मैं वरुण अग्नि बिजली रूप से भूत नाम आकृतियों में प्राणी नाम देहाओं में प्रविष्टहूं और प्राण वायु तथा अपान वायुसे संयुक्त हुआ चतुर्मुखी नाम ब्रह्मा पंच अमृत रूप पचाम्यन्न नाम पंच अग्नि रूप एकस्वरूप मैं हूं

## शूत्र ९९ का आशय ।

सर्वत्र माया रूप से गुप्त चैतन्यस्वरूप मैं हूं बुद्धि रूप में प्रकट वसिष्ठ रूप मैं हूं ज्ञाता ज्ञानधर्म समरस अद्वय रूप एक अंक आप ही चैतन्य चिदानंदघन मैं हूं मेरे से स्मृति ज्ञान और तर्क उत्पन्न होकर वेद बनता है अर्थात देहरूप आकृति उत्पन्न हो अपरोक्ष होती है इसी का नाम वेद है सो सम्पूर्ण वेदों के द्वारा जानने योग्य जो कि एक वस्तु है मैं हूं और वेदान्त का निर्माण करने वाला अर्थात वेद नाम आकृति के आदि अंत के भेद का जानने वाला मैं हूं अर्थात संपूर्ण वेदों में वेदवित वेद का ज्ञाता निश्चय स्वरूप आगम अकाल मैं हूं -

## शूत्र १०० का आशय ।

द्वीप नाम दीप दीपान्तर देश देशान्तर में केवल मैं ही पुरुषः नाम आदिम नाम रूप रस में अक्षर अर्थात माया का रूप चेतन अविनाशी निश्चय करके चैतन्य ही चैतन्य क्षरः नाम विनाश रूपी माया के संपूर्ण कार्यों का कारण भूतानि पंच अग्नि प्रपंच का साक्षी ब्रह्म अक्षर अचिंत चेतन पूर्ण ब्रह्म हूं ।

## शूत्र १०१ का आशय ।

महान सूक्ष्म आदिम देव नाम कि जिसका दूसरा नाम परमात्मा है और जो परम आत्मा नाम में उत्तम पुरुष अविनाशी ईश्वर तीन लोक चौदह भवन सात दीप नव खंड को व्याप्त करके उनका धारण तथा पोषण कर रहा है वही अविनाशी सर्व साक्षी सर्वाधार मैं हूं ।

## शूत्र १०२ का आशय

मेरा तेज अविनाशी स्वरूप क्षर नाम माया से रहित अर्थात अतीत और अक्षर से उत्तम है इसलिये मैं आपही इस संसार सृष्टि कार्य कारण एक रूप में एक आत्मा हूं और नाम रूप आकृतियों में ज्ञान आकृति अर्थात वेद नाम बुद्धि में चैतन्य परम आत्मा अर्थात प्रसिद्ध नाम में पुरुष और उत्तम दो शब्दों का एक नाम कि जो पुरुषोत्तम कहा जाता है आत्म सर्वज्ञ पुरुषोत्तम मैं हूं ।

## शूत्र १०३ का आशय ।

अभय रूप निर्भय सत्य धर्म सतों में पूर्ण सत्य प्राक्रमी बोध देव युग नाम एक योग स्वरूप मैं आपही सत्य देव अनंत स्थिन रूपों में एक ही अधिष्ठान रूप दान रूप अर्थात शक्ति रूप ब्रह्म रूप चैतन्य स्वरूप सृष्टि संसार रूप चेतन रूप में स्वासा ध्वनि रूप तेजों में तेज अजन्य अकाल अपूर्व आगम मैं हूं

## शूत्र १०४ का आशय ।

सर्व भूतों में प्रकट अर्थात नाम रूप आकृतियों में प्रसन्न आत्मा शोक रहित अभिलाषा रहित एक नाम पूर्ण ब्रह्म सर्वत्र व्यापी सुप्रकाश माया प्रकाश मायातीत रूप भरपूर का प्राकृत सत्य रूप मैं आप ही मधुसूदन माधव नाम केवल सब में जय से आपको देखने वाला और सब में अपने आप को पाने वाला जो एक ऐसा आत्मा है मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## शूत्र १०५ का आशय

सर्व प्रपंच धर्मोंसे रहित मेरा एक ही निस्वार्थ न कहने के योग्य स्वयं प्राप्त एक ही धर्म एक ही रूप एक ही अर्थ एक ही कर्म एक ही आशय स्वयं आप ही आप जो आदि एक ध्रुव धर्म मेरा धर्म है मैं हूं अर्थात नो भेदा भेद रहित अभेद नाम अनंत पूर्ण एक अगस्त स्वरूप अपाप नाम में निष्पाप अर्थात निष्कलङ्क आत्म देव सत्य नाम अभय रूप पाप रहित स्वतः अवतारण एक से अनेक नामों में रूपों में जो शुद्ध स्वतंत्र मोक्ष स्वरूप है मेरा शुचः नाम अर्थात शाश्वत अचिंत अद्वैत धर्म है से मैं सर्व धर्मों शोक और सन्ताप से रहित निराश्रय धर्म रूप हूं कि सब पापों से रहित हूं ।

## शूत्र १०६ का आशय ।

मैं ही आदिम में ही हौवा और मैं ही नूह पैगम्बर हूं और मैं ही मूसा मैं ही ईसा और मैं ही जरदश्त और मैं ही कनाफियुश्शा पैगम्बर नाम के नामों का पृथक पृथक पैगम्बर हूं

## शूत्र १०७ का आशय ।

मैं ही निश्चय करके अहमद नाम मौहम्मद पैगम्बर हूं और मैं ही दाऊद पैगम्बर हूं और मेरा ही मरयम नाम है मैं ही याकूब यूनिस अब्रहाम पैगम्बर हूं और मैं ही गुरुवों के नामों में मैं एक धर्म गुरु लामा हूं ।

## शूत्र १०८ का आशय ।

मैं ही निश्चय कर के ऊम्मत मौहम्मदी का आखरी और पहिला अर्थात आगे और पीछे अपनी ऊम्मत को अपने साथ लेकर चलने वाला अगवी इमाम हूं अर्थात उम्मत मौहम्मदी में मेरा नाम इमाम मौहम्मद मँहदी है क्योंकि मैं दशवाँ इमाम हरि नाम विष्णु का अवतार हूं और मैं ही मसीह नाम क्राइष्ट अर्थात ईसा मसीह खुदा नाम परमात्मा का पुत्र हूं और आप ही परमात्मा हूं कि आप ही अपनी रक्षा को आकाश से उतरता हूं और मैं ही दशवाँ अवतार विष्णु का अवतार निष्कलङ्क अवतार हूं कि पूर्ण कला कौशल अनंत शक्ति अनंत रूप अनंत प्रकाश के साथ नवीन सृष्टि रचने और अपनी नवीन सृष्टि में नवीन सृष्टि रचन कर अचल मर्यादा ध्रुव धर्म सनातन धर्म के स्थित करने को मैंने अवतार लिया है अर्थात कलकी विष्णु भगवान के स्वरूप में मेरा निष्कलङ्क अवतार प्रकट हुआ है कि जो महान प्रलय रूप है नवीन सृष्टि रचन रूप है पूर्ण कर्म योगी कर्म प्रभाव कर्म चरित्र रूप है ।

इस प्रकार हे मनु इन्द्र वेद व्यास रामचन्द्र नू इस महान वेद को अपरोक्ष करके नू आप ही अपने से कहता है मेरा ये निष्कलङ्क दशमावतार कैसा अवतार है सम्बन्ध देशी है आदि गुरु वंशी है और वसिष्ठ कुल गोत्री है वासुदेव मेरा पिता और पिता का पितृ विश्वामित्र है कि जो अखंड नाथ का पुत्र है श्री मति सेहनी मेरी माता कि जो पराशर पुत्री कौशल गोत्री है और मेरी ये अवतार अयोध्या अत्यन्त गुप्त अचरज्या है क्योंकि सर्व जगत मेरी ही एक मूर्ति और मेरा ही एक चित्र चरित्र है विष्णु आदि आदित्य चित्र आदित्य मेरा नाम है कि जो सर्व सृष्टि के आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रमादको नष्टकर कलियुग और वराह कल्पी सृष्टिसंज्ञाका नष्टकर कलियुग और वराह कल्पको मेट जुग जीवन आदि यज्ञ कल्प का आरम्भ कर अपनी अचल शक्ति से असुर गति असुर शक्ति को संहार नवीन सृष्टिकी रचना में आसुरी संख्या के ९९ कोटी आसुरी संज्ञा के असुर संख्या में नाम मात्र के मनुष्योंको संहारने के हेतु पूर्ण १०८ कलाधारी शक्ति से १६-३६-५६ कलाके रुपमें एक सत्य सनातन अ अकार ॐकार अवतारणी स्वरुप है कि जिस मेरे निष्कलङ्क अवतारणी स्वरुप की गुप्त भाव की गुप्त माया शक्ति सर्वत्र व्यापक होके उत्पति और प्रलय कार्य कर रही है कि जिन दोनो माया कार्यों में वर्तमान रुप से दोनों के तीन तीन रुप हैं अर्थात नित्य १ निमित २ और महान ३ और इन तीनों रुपोंमें मेरी माया शक्ति का अटल अकाल चक्र महान सिघ्रता के साथ इस प्रकार चलरहा है कि पृथम तो (१) गति ये है कि वर्तमान को माया शक्ति चक्र सिंहार कर भूत समय के कोशमें डालना जाता है और इस प्रकार प्राणियों के प्रत्यक श्वासा संकल्प क्रिया का प्रतिक्षण लय होता रहता है और इसी का नाम नित्य प्रलय है किंतु यही चक्र भविष्यत को वर्तमान का रुप देकर नवीन रचना का हेतु होता है और इसी का नाम नित्य नवीन रचना है - इसके अन्य (२) दूसरी निमित प्रलय और रचना ये है कि पृथक पृथक करके जिन जिन स्थानोंपर किसी एक आकार आकृति वा वस्तु अथ्वा नगर या देश का अभाव होता है इसीका नाम निमित प्रलय है और इस प्रकार गुप्त भाव की गुप्त माया शक्ति द्वारा इस निमित प्रलय से जिन जिन नवीन वस्तु और आकृति और पदार्थ अथ्वा नगर और देशों का चमत्कार तथा प्रकाश होता है इसी का नाम निमित रचना है इसके अन्य (३) महान जिसका नाम है ये महाँ प्रलय और महाँ रचना तत्वविज्ञान अर्थात आदि आदित्य आत्मज्ञान ब्रह्म ज्ञान से हुवा करती है कि जिसका अभिप्रायी अर्थ ये है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति से संसार का अभाव होजाता है और प्रत्यक्ष प्रमाण में एक ही कलङ्क विन निष्कलङ्क भवान नाम रुप में आप ही आप शेष रहता हूं कारण ये है कि मैं अत्यन्त विनोदनी और अत्यन्त गुप्त भाव से १६-३६-५६- कलाधारी निर्विघ्न और चिरञ्जीव अवतार हूं कि १६ कला अनुकूल कृष्ण योगेश्वर सोलह कला संपन्न अर्जुन नाम बौद्ध निर्वाण ही निर्वाण रुप एक अवतार हूं कि जिसने अपनी सामर्थ के एक अंश में सर्व जगत को धारण करके ३६ कला की ३ कला से ही अपना स्वरुप रामावतार बाल्मीक नाम रुप से अष्ट कला संपन्न मर्य्यादा पुरुषोत्तमी एक ही परमार्थी और पुरुषार्थी अवतार बनके शेष की ३३ कला से अपने को अमर प्रकट कर अमर नाम से अमर नाथ नाम रक्खा है कि जिस अमर रुप से महान प्रलय और महान रचना का अगम वेद रुप अगम स्वरुप हूं और ५६ कला अनुकूल एकादश रुद्र का एक रुप अनंत स्वरुपों में महेश नाम शिव लिंङ्क रुप कर्म रहित एक ही विक्रमादित्य नाम अर्थात कर्म रहित सूर्य मैं हूं कि हरि नाम रक्खता हूं बल रुप बल का पुत्र हूं प्रमार पुँवार घर जन्मा हूं कालनजर दैत्य के मारने और जराकाल असुर के सिंहारने के हेतु संसार में आया हूं सो कालंजर दैत्य और जराकाल असुर को सिंहार महिहर नाम धरावेंगा दिल्ली में ही सिर छत्र फिरावोंगा और छओंदिश अचल राज करुंगा कि जिस राज्य में पृथक पृथक प्राणी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मेरा ही स्वरूप क्राइष्ट इमाम मँहदी नाम निष्कलङ्क महिहर नाम होगा और प्रकट करेगा कि मैं कौन हूं इस तर्क का उत्तर फिर आप ही ऐसा देगा- श्रुति-

शृण्वन्तु अश्वाने अश्व विश्वे अमृतस्य कुमारी वासु पुत्राः ।
आये धामानि दिव्यानि तस्थुः वेदाहमेकं हरिहर महिहर पुरुषः
निष्कलङ्को निस्वार्थो असंगो हं केवलो हं शिवो हं ब्रह्मास्मि ॥

अर्थ- सुनों हे अश्वों में अश्व रूपी प्रकाश स्थान के रहने वालो अमृत रूपी कुमारी नाम अग्निशक्ति की सन्तान सुनों मैं ने पाया है मैं ने जान लिया है कि मैं एक ही अनंत स्वरूप हरिहर विष्णु नाम में विश्वामित्र अर्थात महिहर नाम एक ही आदिम आदि पुरुष आप ही अपना स्वामी हूं कि मेरे अन्य और कहीं कोई वस्तु नहीं है क्योंकि मैं निष्कलङ्क: नाम कलङ्क से रहित और स्वार्थ से रहित और संगत से रहित निर्लेप और स्वतन्त्र हूं निर्विकार विकार से रहित केवल हूं अर्थात साक्षात में मैं ही कल्याण स्वरूप एक ही ब्रह्म नाम जो पूर्ण ब्रह्म है वोही निष्कलंक ब्रह्म मैं हूं अर्थात

निर्गुणं निष्क्रियं नित्यं निर्विकल्पं निरञ्जनं भारत ॥
निर्विकारं निराकारं नित्यमुक्तं निर्मलं विक्रमास्मि ॥

श्रुति प्रमाण - मैं प्रकृति रूप माया और माया के कार्य जो बुद्धि आदि जैसे गुण हैं इनसे रहित हूं और देहादि की क्रिया से रहित हूं नत्य अर्थात सर्व काल में चैतन्य स्वरूप हूं संकल्प विकल्प रूपी जो मन के धर्म हैं उनसे रहित हूं माया के कार्य जो जगत रूपी मल हैं उनसे रहित हूं कारण कि मैं भारत नाम से एक ही आकाश रूप में मिथ्या कल्पित जो माया के कार्य जगत रूप में विकार वाले हैं इनसे रहित और इनका अधिष्ठान रूप हूं आकाश की समान स्वतन्त्र व निरवयव अर्थात आकार रहित हूं और वास्तव में बन्धनों से रहित हूं और माया रूप मल से रहित हूं क्योंकि मैं कर्म रहित कर्म हूं कि सब कुछ उत्पन्न करने और सर्व प्रकार की उत्पन्न रूप शक्ति और आकृतियों के नाश कर देने की सामर्थ रखता हूं इसलिये विक्रम नाम कर्म त्यागी मैं हूं अर्थात कलंक विन निष्कलङ्क मैं हूं इसलिये विक्रम मेरा नाम है और विक्रम कर्म रहित कर्म त्याग कर्म का नाम है कि जिसके दत्तात्रेय १ और राम २ ये दो नाम हैं सो दत्तात्रेय त्रिकाल रूप में कर्म त्याग अकाल अद्वैत दृष्टि का नाम है और राम त्रिकाल रूप में कर्म अर्थात अद्वैत रूप में काल कर्म का नाम है कि जिसका अर्थ त्रिकाल दृष्टि में धर्म और मर्यादा रूप में एक ही अर्थ अद्वैत आनंद के हैं और इसी का नाम तत्त्व विज्ञान सायन्स फिलसफा हिकमत मंतक मज़हब दीन नेशन और जाति इत्यादि के हैं सो इस प्रकार विष्टि और स्मष्टि जो कुछ है मैं हूं अर्थात मैं ही आकाश से उतरा हुवा क्राइष्ट अर्थात ईसा मसीह हूं और मैं ही गोशे कबर से उठा हुवा मँहदी इमाम मँहदी हूं और मैं ही दशम अवतार निष्कलङ्क अवतार हूं कि महाँ प्रलय में असुरों के सिंहारने और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अचल धर्म और मर्यादा नवीन सृष्टि की रचना में स्थित करने के हेतु आया हूं ।

इस प्रकार अपने आप को जानकर और अपने नाम का आपही अपने से वर्णन करके हे मनु इन्द्र वेद व्यास राजेन्द्र तू कहता है कि विक्रम आदि आदित्यरूप मेरे में जो निष्कलङ्क कर्म रहित कर्म त्याग दत्तात्रेय स्वरूप मेरा है इस अपने स्वरूप को मनु और मनु इन्द्र और चिदानंद का शिष्य रूप देकर मैं ने इस प्रकार कर्म त्याग अर्थात स्वतन्त्रा शिक्षा का आठ प्रकार से उपदेश किया है जैसे कि निरूपण है

१ कर्म त्याग स्वतंत्रता प्रथम शिक्षा उपदेश ॥

अहम अर्थात मैं - शब्द की व्याख्या ब्रह्म तत्त्व का स्वरूप आत्मज्ञान का उपदेश ॥

विक्रमानुग्राहादेव पुंसामद्वैतवासना ॥ महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते ॥१॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

विक्रमानुग्राहाद - कर्म त्याग कर्म के अनुग्रह से अर्थात दिव्य दृष्टि से एव - निश्चय करके पुंसाम् - पूर्ण स्वासारूप सृष्टि के मध्य में अद्वैतवासना - अद्वैत नाम एक ही स्वरूप सत्य ब्रह्म का ज्ञान महद्भयपरित्राणा - महान भय अर्थात माया से स्वतन्त्र करवने वाला महान भय से रक्षा करनेवाला विप्राणाम् - विप्रों को अर्थात् प्रा नाम प्रकृति एक ही स्वरूप की अनंत प्रकार की आकृतियों को उपजायते - उत्पन्न होता है -

आशय ॥

ये है कि अद्वैत की वासना अर्थात जीव और ब्रह्म के अभेद की वासना दिव्य दृष्टि से विक्रम रूप में आप से आप ही उत्पन्न होती है कारण ये है कि विक्रम नाम कर्म रहित कर्म त्याग जो एक अद्वैत आत्मा है संपूर्ण प्राणी मात्र आकृतियों में सम अर्थात् एक रस है स्वयं निष्काम रूप है केवल ब्रह्म है कि जो व्यक्त रूप से साक्षात कार है और इस प्रत्यक्ष आत्मा का सर्वत्र एक आत्म दिव्य दृष्टि ही स्वरूप है

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि ॥ निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम् ॥२॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

येन - जो - इदम् - ये दृश्यमान - पूरितम् - मकड़ी जैसा जाल पूर्ण संसार जाल रूप में पूरा हुवा जैसा प्रतीत हो रहा है ये पूर्ण सर्वम् - संपूर्ण जगत मैं हूं - आत्मना - आप अपने आप एव निश्चय ही आत्माना - आत्मा करके - आत्मनि - अपने में ही अपने आप निराकारम् - निराकार अकार रहित मैं हूं कथम् - क्या मैं अपने आप अपने आप को ही वन्दे वन्दना करूं हि - क्योंकि मैं महि आप ही अभिन्नम् एक ही आत्मा हूं कोई जीव तथा आकृति रूप आकृति नहीं हूं जीव और आकृति दोनों से ही रहित हूं क्योंकि मैं - शिवम् - नाम आदिम कल्याण स्वरूप हूं और अव्ययम् - अविनाशी हूं

आशय ।

जिस चेतन ब्रह्म अर्थात आत्मा में ये दृश्यमान संपूर्ण जगत प्रपंच पूर्ण हो रहा है और जिस प्रपंच के भीतर और बाहर एक ही आत्मा व्यापक होके स्थित है और जिस आत्मा में शुक्ति और रजत की भांति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२८२

संपूर्ण जगत कल्पित होकर स्थित है वह मेरा आप अपना ही आत्मा है कि वास्तव में नाम रूप आकृति संसृति से रहित आकार रहित निराकार है कि जिस आप अपने आत्मा को मैं किसी प्रकार से भी वन्दना नहीं कर सकता हूं क्योंकि वन्दना अपने से अन्य और भिन्न की कि जिस का अपने से कोई अंतर और भेद हो और किसी प्रकार की अधिकता हो की जाती है - किंतु जिस का कि अपने से किसी प्रकार का कोई भेद ही नहीं है अर्थात "अयमात्मा ब्रह्म" पद अनुकूल मैं आप ही ब्रह्म आत्मा हूं स्वयं मोक्ष अर्थात स्वतंत्र हूं और अविनाशी हूं अर्थात् नाश से रहित हूं अर्थात मैं आप ही परं ब्रह्म हूं तो वन्दना कैसी और किस की क्योंकि इस दृश्य मान जगत में जो एक सार वस्तु है वही एक अविनाशी परं ब्रह्म निष्कलङ्क आत्मा मैं हूं ॥२॥

**पञ्चभूतात्मकं विश्वं मरीचिजलसन्निभम् ॥ कस्यापि हो नमस्कुर्यामहमेको निरञ्जनः ॥३॥**

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

पंचभूतात्मकं - पांच भूतों के समुदाय रूप में मैं एक ही आत्मा हूं - विश्वं जगत के स्वरूप में मैं हूं मरीचिजलसन्निभम् - वायु और जल के स्वरूप में २७ तत्व रूप अनाम प्रकट आकार निराकार मैं हूं कस्य - किसको अपि - निश्चय करके - अहो - अपना ही आश्चर्य रूप प्रकाश देख कर के आप ही नमस्कुर्याम् - मैं नमस्कार करूं क्योंकि अहम् मैं - एकः एक ही - निरञ्जनः - राग द्वेष रहित आत्मा हूं

आश्य ।

पंच भूतों के समुदाय रूप में यह जितना दृश्य मान जगत है चैतन्य से भिन्न है और मिथ्या है क्योंकि मैं एक ही द्वैत से रहित माया मल से रहित शुद्ध हूं तब फिर किस को नमस्कार करूं क्योंकि मेरे अन्य कहीं कोई और दूसरा चेतन नहीं है और जगत सब मिथ्या है तो मिथ्या जगत को देख कर के अर्थात आश्चर्य बन आप ही अपने निश्चय प्रकाश स्वरूप को देख कर के मैं जो केवल एक ही शुद्ध ब्रह्म हूं आप ही अपने आप को नमस्कार नहीं कर सकता हूं क्योंकि मैं राग द्वेष से रहित एक ही शुद्ध और अभेद अचिंतन आत्मा हूं ॥३॥

**आत्मैव केवलं सर्वं भेदाभेदो न विद्यते ॥ अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां विस्मयः प्रतिभाति मे ॥४॥**

पदच्छेदः शब्दार्थ

आत्मा - मैं आत्मा - एव - निश्चय करके ही - केवलम् निरन्तर स्वतंत्र और एक ही हूं मैं - सर्वम् - पूर्ण अर्थात सर्व सृष्टि रूप भी हूं मैं भेदाऽभेदः - भेद और अभेद दोनों - न - नहीं - विद्यते देखे जाते हैं मुझे मेरे आत्म स्वरूप में - अस्ति - आत्मा स्वरूप मेरा है और नास्ति नहीं है कथम् किस प्रकार ब्रूयाम् - मैं कहूं अर्थात अपने एक ही आत्म स्वरूप के होने न होने के भेद को अभेद रूप से प्रकट करूं कि विस्मयः आश्चर्य रूप आत्मा मेरा आत्मा रूप मेरे अपने आप को अर्थात् मुझको प्रति भाति - अनंत रूप अनंत स्वरूप वाला अनंत शक्ति वाला अनंत आकृति वाला नाम वाला प्रतीत होता है - मे - मेरे को अर्थात मेरा विस्मय स्वरूप कि जो अनंत शक्ति वाला है कहने में नहीं आता है ॥

आश्य ।

संपूर्ण ब्रह्माण्ड में केवल मैं एक आत्मा ही सत्य रूप हूं कि जिस से भिन्न कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है यदि है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तो वेही मिथ्या है कि होने पर भी नहीं है किंतु सर्वरूप आत्मा ही है क्योंकि कल्पित पदार्थ की सत्ता कभी अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है इस लिये संपूर्ण विश्व आत्मा से भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं है क्योंकि संपूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय कर के दिखाई पडता है यदि अभिन्न हो तब आत्मा की तुल्य कदापि दिखाई न पड़े तथा जगत दिखाई पडता है इसलिये इस का नाम माया है और अनिर्वचनीय है कि जिस का सत्य असत्य रूप से कुछ भी निर्वचन नहीं हो सक्ता है इसलिये इस का नाम अनिर्वचनी है सो जैसे शुक्ति में रजत आकाश में नीलता रज्जु में सर्प का हो ना अनिर्वचनीय है कारण कि सत्य हों तो अधिष्ठान के ज्ञान से इन का नाश न हो और यदि असत्य हो तो इन की प्रतीति न हो तथा इन की प्रतीत होती है और इन्का नाश भी होता है इसी प्रकार जगत की प्रतीत होती है और उस का नाश भी होता है इसलिये यह अनिर्वचनीय है। और अनिर्वचनीय पदार्थ का अपने अधिष्ठान के साथ भेद और अभेद भी नहीं नहीं हुवा करता है क्योंकि सत्यरूप आनन्दरूप ज्ञानरूप चेतन अधिष्ठान आत्मा के साथ असद्रूप दुःखरूप जडरूप प्रपंच का अभेद कदापि नहीं होसकता है और भेद भी नहीं होसकता है क्योंकि सत्य असत्य के अभेद में कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलता है इस लिये नहीं है और है अर्थात नास्ति और अस्ति दोनों रूपों से किसी एक रूप वाला नहीं है क्योंकि जगत आश्चर्य वत प्रतीत होता है तो भी सिद्धान्त ये है कि

वेदान्तसारसर्वस्वं ज्ञानविज्ञानमेव च ॥ अहमात्मा निराकारः सर्वव्यापी स्वभावतः ॥५॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

वेदान्तसारसर्वस्वम्- आदि और अंत का सार अद्वैत है वही आदि अंत पूर्ण अद्वैत जो साकार है मैं हूं ज्ञानविज्ञानम्- ज्ञान और विज्ञान मैं हूं- एव- निश्चयस्वरूप- च- चेतन वा पुरुष भद्रपुरुष अहम- मैं- आत्मा- नारायण- निराकारः- आकार रहित सर्वव्यापी- सर्वत्र व्यापक प्रवेशरूप स्वभावतः- स्वभाव से ही अर्थात प्रकृति माया शक्ति से ही मैं हूं कि निराकार हूं

## आशय ।

आदि और अंत का सार भूत जो अद्वैत चेतन है वो ही अद्वैत ब्रह्म सर्वस्व साकार रूप में ज्ञान और विज्ञान रूप में निश्चय करके परोक्ष और अपरोक्ष रूप में मैं ही चारों ओर चैतन्य रूप से व्यापक रूप आत्मा हूं और आकार रहित हूं और फिर स्वभाव से ही मैं निराकार सर्वत्र व्यापक होके दिप्यमान भी हो रहा हूं ॥ ५॥

यो वै सर्वात्मको देवो निष्कलो गगनोपमः ॥ स्वभावनिर्मलः शुद्धः स एव अहं न संशयः ॥६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

यः- जो- वै- निश्चय करके- सर्वात्मकः- मेरा पूर्ण प्रकाश रूप है- देवः- दैव नाम श्रुति रहित रूप है निष्कलः- निरवयव निष्कलंक स्वरूप है- गगनोपमः- आकाश की नरह उपमा वाला है अडोल है स्वभावनिर्मलः- स्वभाव से ही निर्मल है- शुद्धः- शुद्ध स्वरूप है- स एव- सो ही निश्चय करके अहम- मैं हूं- न- नही है- संशयः- संदेह अर्थात न संशय इसमें ॥

## आशय ।

जो स्वप्रकाश प्रकाश मान सर्व रूप मेरा है वही निष्कल इ. श्रुति रहित गगन जो आकाश है उस की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपमा वाला है अर्थात जिस प्रकार आकाश चलाय मान नहीं होता है और स्वभाव से ही वो निर्मल है स्वच्छ और शुद्ध है - सो ही निश्चय करके शुद्ध चेतन ब्रह्म मैं हूं इसमें किसी प्रकार का भी संदेह नहीं है

अहमेवाव्ययोऽनन्तः शुद्धविज्ञानविग्रहः ॥ सुखंदुःखं न जानामि कथं कस्यापि वर्तते ॥ ७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अहम् - मैंही - एव - निश्चय करके - अव्ययः - नाश से रहित हूं - अनन्तः - अनंत भी हूं अर्थात आदि अंत रहित भी हूं - शुद्धविज्ञानविग्रहः - शुद्ध विज्ञान स्वरूप वाला भी हूं - सुखं - सुख को और दुःखं दुख को - न जानामि - नहीं जानता हूं मैं कथम किस प्रकार कस्य - किसको - अपि निश्चय करके वर्तते - वर्तमान होते हैं वर्तते हैं व्याप्त होते हैं उपजते हैं अनुभव होते हैं ।

आशय ।

मैं ही निश्चय करके नाश से रहित हूं अनंत चेतन हूं शुद्ध ज्ञान स्वरूप हूं माया मल से रहित हूं और सुख और दुःख इन दोनों को भी नहीं जानता हूं कि किस प्रकार किस को हर्ष और शोक का कारण होके अनुभव होते हैं । क्योंकि सुख और दुःख का अध्यास शरीरादिकों के धर्म हैं सो जो शरीरादिकों के साथ अध्यास रखता है वही शरीरादिकों के धर्म कि जो सुख दुखादिक हैं उनको जानता है अर्थात दूसरे के धर्मों को अपने में मानता है क्योंकि उसका अज्ञान माया रूपी माया बन कर उसे चिमट रहा है किंतु अज्ञान जो माया रूप से संसार में प्रवेश होकर शरीरादिकों में अध्यास रखने वाले प्राणियों को अनुभव रूपसे सुःख और दुःख का मूल हो रहा है ये मेरे निष्कलङ्क चेतन स्वरूप से नष्ट होकर भस्म होगया है इसलिये देहादिकों में किसी प्रकार से किसी प्रकार का कोई अध्यास मेरे अविनाशी चेतन स्वरूप का नहीं रहा है । और इस अध्यास के न रहने से अहंता और ममता भी नहीं रही है । इसलिये विषय इन्द्रियों के सम्बन्ध से जो सुख दुःख अनुभव होते हैं उनको भी मैं नहीं जानता हूं कि किस को किस प्रकार होते हैं किस में वर्तते हैं क्योंकि मेरी दृष्टि में केवल चेतन ब्रह्म के अन्य कहीं कुछ और कोई दूसरी वस्तु नहीं हैं ॥ ८ ॥

न मानसं कर्म शुभाशुभं मे न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ।
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं हैं मानसम् - मन करके - कर्म - काम जितने कि कर्म होते हैं शुभाशुभम् - अच्छे और बुरे मे - मेरे - न - नहीं हैं कायिकम् - शारीरिक कर्म - कर्म - जो कर्म शुभाशुभम् अच्छे बुरे मे - मेरे - न - नहीं हैं वाचिकम् - वाणी कृत - कर्म जो की कर्म हैं शुभाशुभम् अच्छे बुरे मे - मेरे क्योंकि ज्ञानामृतम - ज्ञानरूपी अमृत - शुद्धम् शुद्ध - अतीन्द्रियः इन्द्रिय रहित अहम् मैं हूं

आशय ।

कर्म क्रियते यत्तद् कर्म अर्थात जो किया जाय उसका नाम है व्यवहार में कर्म के फल को भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्म कहा जाता है और कर्म कायिक काया करके १ और वाचिक वाणी करके २ और मानसिक मन करके ३ तीन प्रकार के होते हैं। किंतु कर्म का विस्तार और महत्त्व यहाँ तक ही सीमाबद्ध नहीं है क्योंकि कर्म के विशाल वृत में कार्य और कारण रूप से वे सब कर्म और उनके विपाक समा जाते हैं कि जो भूत वर्तमान और भविष्यत तीनों ही कालों के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। तथा जहाँ तक कर्म का सम्बन्ध है वहाँ तक कर्म का तात्पर्य्य केवल वर्तमान काल के कर्मों तक ही कर्म का सीमाबद्ध रहता है। कारण ये है कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश्य विवेक यथा ज्ञान है और ज्ञान ही मनुष्य का अभीष्ट सिद्ध कर्म है। सो जो लोग सुख तथा आराम को मनुष्य जीवन का उद्देश्य जानते हैं वे बड़ी भूल में हैं क्योंकि सुख का अंत होता है और उसके पश्चात दुःख अवश्य करके इसी प्रकार से कि जैसे दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन होता है भावी है। सो संसार में जिन ने दुःखमय दृश्य देखने में आते हैं उन सब का कारण केवल यही है कि मनुष्य भ्रान्ति से सुख को अपने जीवन का आदर्श मान लेता है। और फिर थोड़े ही काल में विचार करने से उसको अनुभव होने लगता है कि उसकी गति सुख की ओर नहीं ज्ञान की ओर गति भावरखती है। और सुख और दुःख दोनों अपने अपने स्थान पर शिक्षक का काम देते हैं। भलाई और बुराई दोनों से ही मनुष्य का अनुभव बढ़ता रहता है। सो सुख और दुख दोनो परिवर्तन शील हैं कि जो एक अवस्था में कभी स्थिर नहीं रह सकते - सुख दुःख अन्तः करण की एक भावना का नाम है और इसी निश्चय का नाम ज्ञान है। और ये ज्ञान ही स्वयंभव आत्म ज्ञान का अधिकरण है कि सब कुछ इसमें भरा पड़ा है। सुख और दुख की भावना का मनुष्य देह में ये एक ही एक ऐसा आवरण पड़ा रहता है कि जिसने संपूर्ण आत्मा को कि जो पूर्ण विद्याओं और कलाओं का कोश है छिपाया हुआ है। यदि आत्मा के इस आवरण को हटा दिया जाए तो ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित देखने में आती है अर्थात आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होजाता है। और फिर वह सब ज्ञान कि जो संसार में फैला हुआ है वह सब आत्मा से ही प्रकट होना प्रकट प्रतीत से देखने में आता है। और मनुष्य को फिर अपना हृदय ही सृष्टि के असंख्य पदार्थों का कोश पाया जाता है। कारण ये है कि प्रत्यक ज्ञान चाहे वह बाह्य हो या आन्तरिक सांसारिक हो या आध्यात्मिक मनुष्य के अन्तः करण में रहता है। सो जिसको सुख और दुःख का अध्यास नहीं रहता है वही तत्वविज्ञानी और विवेकी और सर्वज्ञ बन जाता है। जिस प्रकार पत्थर में आग रहती है उसी तरह अंतः करण में ज्ञान रहता है। संसार में जो जो कर्म रचना होरही है और होने वाली है और हो चुकी है वह सब मनुष्य हृदय से आत्म ज्ञान द्वारा निकली है निकल रही है और निकलेगी और इसी का नाम कर्म है। इसके अन्य और कोई कर्म नहीं है तथा बात चीत करना - सुनना - श्वास लेना चलना फिरना बोलना सोचना समझना - कहना भी कर्म हैं अनके अन्य नाना प्रकार के कार्य और कारण भी कर्म हैं। सो मनुष्य शरीर करके जो कर्म होते हैं उनका फल शरीर ही भोगता है। वाणी करके जो कर्म होते हैं उनका फल वाणी ही भोगती है। और मन करके जो अच्छे बुरे कर्म होते हैं उनका फल पुरुष मन करके ही भोगता है। क्योंकि अज्ञानी पुरुषों का ही इन तीनों प्रकार के कर्मों के साथ अध्यास होता है इसलिये वह शरीरादिकों के कर्मों को अपने में मानते हैं और अपने को कर्म कर्ता भी जानते हैं। किंतु ज्ञानवान जीवन्मुक्त का इनके साथ अध्यास नहीं रहता है इसलिये वह किसी प्रकार के कर्मों को अपने में नहीं मानता है। वह अपने को कर्मों से स्वतन्त्र और असंग चिद्रूप जानता है। सो जिस कारण से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मैं ज्ञानस्वरूप अमृत रूप शुद्ध और इन्द्रियों से रहित हूं अर्थात इन्द्रियों का विषय नहीं हूं। इसलिये कायिक वाचिक और मानसिक यह तीन प्रकार के जो कर्म हैं मेरे नहीं हैं ये कर्म देहादिकों के हैं। मैं केवल इनका साक्षी और दृष्टा हूं क्योंकि जब तक शरीर विद्यमान रहता है तबही तक शरीर के धर्म भी रहते हैं और शरीर के धर्म अनुकूल ज्ञानी भी खानपानादिक और गमनागमनादिक कर्मों को करना ही रहता है किंतु वह बालक और पागल की भांति कर्मों के फल भोग से स्वतन्त्र ही रहता है क्योंकि वह ज्ञान और अज्ञान दोनों से रहित रहते हुए आत्मानंद में सर्व काल मग्न रहते सो ऐसा जो कर्म फल भोग रहित ज्ञान रूपी अमृत शुद्ध और इन्द्रियों का विषय नहीं है मैं हूं ॥ ८ ॥

**मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम् ॥ मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥ ९ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मनः मनही - वै - निश्चय करके - गगनाकारम् - आकाशजैसा आकार वाला है और - मनः - मनही वै - निश्चय करके - सर्वतोमुखम् - सर्वओर का मुख है - मनः मनसे - अतीतम् - मैं आत्मा अतीत मनः और मनसेही - सर्वम् - संपूर्ण विश्व में मैं हूं और न - नहीं है - मनः मन - परमार्थतः - परमार्थ में

## आशय ।

प्राणियों का मन जो है सो ही निश्चय करके आकाशवत आकार वाला है। अर्थात जिस काल में मन संकल्पों को करने लगता है तो शनैः शनैः यह धुवें की भांति शीघ्रही आवरण रूप में फैलता हुआ आकाश रूप होकर संपूर्ण आकाश में व्याप्त होजाता है और सर्व ओर मुख ही मुख वाला होने के कारण ये जिस तरफ का संकल्प करता है उधर को ही बेधडक चला जाता है कोई रुकावट इसको रोक नहीं सकती इस लिये मन ही संपूर्ण विश्व रूप भी है। कारण ये है कि सर्व जगत मन का ही बनाया हुआ है और मन भी परमार्थ अर्थात परं अर्थ में सत्य रूप नहीं है। क्योंकि मैं आत्मा जो मन से अतीत और सूक्ष्म हूं मैं ही सत्य रूप सत्य हूं ॥ ९ ॥

**अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतं निरन्तरम् ॥ पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वा तिरोहितम् ॥ १० ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अहम - मैं एकम् एकही हूं मैं - इदम् - ये दृश्यमान जगत - सर्वम् जो सर्व विश्व ब्रह्मांड है मैं हूं और व्योमातीतम - आकाश से भी सूक्ष्म मैं हूं - निरन्तरम - निरन्तर अर्थात अन्तर रहित मैं हूं पश्यामि - देखने वाला मैं हूं - कथम् किस प्रकार - आत्मानम् मैं आत्मा अपने आप - प्रत्यक्षम् प्रकट हूं मैं कि - वा - आपही - तिरोहितम् - परोक्ष अर्थात गुप्त रूप हूं मैं ॥

## आशय ।

मैं एक ही आत्मा प्रत्यक्ष अर्थात अपरोक्ष और तिरोहित अर्थात परोक्ष अर्थात गुप्त रूप में ही रहने वाला हूं पूर्ण विश्व रूप में आकाश से भी विशेष सूक्ष्म हूं मेरे से अन्तर कोई वस्तु नहीं है क्योंकि मैं आप ही अपने आप को देखने वाला हूं फिर किस प्रकार मैं आत्मा अपने आप को इस प्रकार कि मैं एक ही हूं प्रकट करूं कि मैं आप ही परोक्ष अर्थात गुप्त रूप भी हूं। सो संपूर्ण जगत जो मेरा एक ही आत्मा रूप है यही चेतन ब्रह्म एक ही द्वैत से रहित है इसमें जो नाना रूप करके जगत प्रतीत होता है सो नहीं है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२८६

मैं ज्ञानस्वरूप अमृत रूप शुद्ध और इन्द्रियों से रहित हूं अर्थात इन्द्रियों का विषय नहीं हूं। इसलिये कायिक वाचिक और मानसिक यह तीन प्रकार के जो कर्म हैं मेरे नहीं हैं ये कर्म देहादिकों के हैं। मैं केवल इनका साक्षी और दृष्टा क्योंकि जब तक शरीर विद्यमान रहता है तबही तक शरीर के धर्म भी रहते हैं और शरीर के धर्म अनुकूल ज्ञानी भी खानपानादिक और गमनागमनादिक कर्मों को करता ही रहता है किंतु वह बालक और पागल की भांति कर्मों के फल भोग से स्वतन्त्र ही रहता है क्योंकि वह ज्ञान और अज्ञान दोनों से रहित रहते हुए आत्मानंद में सर्व काल मग्न रहते सो ऐसा जो कर्म फल भोग रहित ज्ञान रूपी अमृत शुद्ध और इन्द्रियों का विषय नहीं है मैं हूं ॥ ८ ॥

**मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम् ॥ मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः ॥ ९ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मनः मनही - वै निश्चय करके - गगनाकारम् - आकाशजैसा आकार वाला है और - मनः - मनही वै - निश्चय करके - सर्वतोमुखम् - सर्व ओर का मुख है - मनः मन से - अतीतम् - मैं आत्मा अतीत मनः और मन से ही - सर्वम् - संपूर्ण विश्व में मैं हूं और न - नहीं है - मनः मन - परमार्थतः - परमार्थ में

## आशय ।

प्राणियों का मन जो है सो ही निश्चय करके आकाशवत आकार वाला है। अर्थात जिस काल में मन संकल्पों को करने लगता है तो शनैः शनैः यह धुवें की भांति शीघ्रही आवरण रूपमें फैलता हुआ आकाश रूप होकर संपूर्ण आकाश में व्याप्त होजाता है और सर्व ओर मुख ही मुख वाला होने के कारण ये जिस तरफ का संकल्प करता है उधर को ही बेधडक चला जाता है कोई रुकावट इसको रोक नहीं सकती इस लिये मन ही संपूर्ण विश्व रूप भी है। कारण ये है कि सर्व जगत मन का ही बनाया हुआ है और मन भी परमार्थ अर्थात परं अर्थ में सत्य रूप नहीं है। क्योंकि मैं आत्मा जो मन से अतीत और सूक्ष्म हूं मैं ही सत्य रूप सत्य हूं ॥ ९ ॥

**अहमेकमिदं सर्वं व्योमातीतं निरन्तरम् ॥ पश्यामि कथमात्मानं प्रत्यक्षं वा तिरोहितम् ॥ १० ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अहम - मैं एकम् एकही हूं मैं - इदम् - ये दृश्यमान जगत - सर्वम् जो सर्व विश्व ब्रह्मांड है मैं हूं और व्योमातीतम - आकाश से भी सूक्ष्म मैं हूं - निरन्तरम - निरन्तर अर्थात अन्तर रहित मैं हूं पश्यामि - देखने वाला मैं हूं - कथम् किस प्रकार - आत्मानम् - मैं आत्मा अपने आप - प्रत्यक्ष प्रकट हूं मैं कि - वा - आपही - तिरोहितम् - परोक्ष अर्थात गुप्त रूप हूं मैं ॥

## आशय ।

मैं एक ही आत्मा प्रत्यक्ष अर्थात अपरोक्ष और तिरोहित अर्थात परोक्ष अर्थात गुप्त रूपमें ही रहने वाला हूं पूर्ण विश्व रूप में आकाश से भी विशेष सूक्ष्म हूं मेरे से अन्तर कोई वस्तु नहीं है क्योंकि मैं आप ही अपने आप को देखने वाला हूं फिर किस प्रकार मैं आत्मा अपने आप को इस प्रकार कि मैं एक ही हूं प्रकट करूं कि मैं आप ही परोक्ष अर्थात गुप्त रूप भी हूं। सो संपूर्ण जगत जो मेरा एक ही आत्मा रूप है यही चेतन ब्रह्म एक ही है इससे जो नाना रूप करके जगत प्रतीत होता है सो नहीं है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation, USA

त्वमेवमेकं हि कथं न बुध्यसे समं हि सर्वेषु विमृषमव्ययम ।
सदोदितोऽसि त्वमखण्डितः प्रभो दिवा च नक्तं च कथं हि मन्यसे ॥ ११ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

त्वम् - तन तौ मैं आप ही - एव निश्चय करके हूं - एकम् - मैं एक ही हूं - हि - निश्चय करके - कथम् किस प्रकार क्यों कर मैं अपने को - न नहीं - बुध्यसे जानता हूं - समम् सर्व साकार वस्तु में एक रस बराबर मैं हूं - हि - निश्चय स्वरूप - सर्वेषु - संपूर्ण शरीरों में भरपूर - विमृषृम - अषृ प्रकार की प्रकृति रूप में विचार किया गया हुआ मैं हूं - अव्ययम - नाश से रहित अविनाशी मैं हूं - सद - सत्य रूप सत सर्व काल सदा - उदितः प्रकाशमान जो असि - है और त्वम् तन रूप में मेरा अपना आप ही अखण्डितः भेद से रहित प्रभः प्रकाशमान सत्व रूप है - दिवा दिन समान दिव्य स्वरूप है च और नक्तम् रात्रि समान जो काला काजल जैसा स्वरूप है च कथम् किस प्रकार अपने इस चेतन स्वरूप की कथना करूं कि - हि निश्चय करके मन्यसे - ये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है मन कृत मायावी रूप है ॥

## आशय

निश्चय कर के जो एक ही ब्रह्म चेतन आत्मा है वही संपूर्ण प्राणियों में एक रस है और वही मैं हूं कि सर्व काल में उदित प्रकाशमान भेद से रहित स्वयं स्वप्रकाश हूं अर्थात स्वयंस्वप्रकाश होने से दिन रात्रि का अनुमान भी मैं अपने में नहीं रखता हूं क्योंकि माया रूप होने पर भी मैं माया से रहित और नाश से रहित हूं ॥ ११ ॥

आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम् ॥ अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्ड्यते कथम् ॥१२॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

आत्मानम् - मेरा अपना आत्मा जो है सो - सततम् - निरन्तर मेरा सत्य स्वरूप है कि जो विधि - नाम चतुर्भुजि ब्रह्मा ब्रह्म रूप चतुर्मुखी स्वरूप - सर्वत्र - हर एक स्थान पर - एकम् एक मेरा ही निरन्तरम् - एक रस स्वरूप है - अहं मैं ध्याता ध्यान स्वरूप - परम् - आत्मा ध्येयम अनंत कर्म रूप अखण्डम् भेद से रहित अद्वैत हूं और खण्ड्यते द्वैत भेद करने हुए भी कथम् किस प्रकार कहूं कि मैं द्वैत वाला हूं

## आशय ।

ये है कि मेरा जगत रूप में असंग चेतन रूपी एक विभु का जो नाना करता भोगता रूप चेतन अविद्या करके अर्थात माया करके प्रतीत होता है ये सब अधिकार रूप में एक रस एक ही आत्मा चेतन ज्यों का त्यों सर्वत्र भेद से रहित एक ही आत्मा है। तब फिर उस एक में ये भेद कैसे बन सकता है कि आत्मा द्वैत वाला है इस लिये भेद की कल्पना सब मिथ्या है अभेद में भेद करना जो है इसी का नाम अज्ञान है क्योंकि मैं सर्वत्र एक ही हूं ॥१२॥

न जातो न मृतोसि त्वं न ते देहः कदाचन ॥ त्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः ॥१३॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न - नहीं - जातः - उत्पन्न हुवा है न - नहीं - मृतः - मरता है असि - ऐसा ही है त्वम् तू तो हे चित चिदानंदघन - न - नहीं है ते तेरे देहः - शरीर ही कदाचन - कभी कोई आचरण या चिन्ह वाला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२८८

सर्वम्[११] - सर्वत्र विश्व में संपूर्ण जगत में - ब्रह्म[१२] - एक ब्रह्म ही - अति[१३] - विशेषकर के विशेषता में पूर्णरूप विख्यातम[१४] - प्रसिद्ध है प्रकट है और ब्रवीति[१५] - ऐसा ही कहा ही है बहुधा[१६] - बहुतसी - श्रुति[१७] - श्रुति-

## आशय ।

हे चिदानंदघन आत्मा वास्तव से नहीं उत्पन्न हुवा है तू और न कभी उत्पन्न होता है तू और न कभी मरता ही है तू अर्थात जन्म मरण तेरे में नहीं हैं क्योंकि तू एक रस व्यापक है और तेरा ये देह भी नहीं है क्योंकि तू अकायम् अर्थात काया रहित है और संपूर्ण जगत रूप हो कर ही एक ही ब्रह्म रूप ब्रह्म तू है अर्थात प्रसिद्ध ब्रह्म तू है ॥ १३ ॥

सबाह्याभ्यन्तरोसि[१] त्वं[२] शिवः[३] सर्वत्र[४] सर्वदा[५] ॥ इतस्ततः[६] कथं[७] भ्रान्तः[८] प्रधावसि[९] पिशाचवत[१०] ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सः[१] सो जो - बाह्याभ्यन्तरः[२] बाहर और अन्दर चेतन आत्मा है वही असि[३] - है - त्वम्[४] - तू आप ही और तू ही शिवः[५] - नाम कल्याणस्वरूप परमात्मा है कि जो सर्वत्र[६] सब स्थानों में सर्वदा[७] - सर्व काल विद्यमान है सो इतः ततः[८] इधर उधर कथम्[९] किस प्रकार क्योंकर कहो तो सही तू आप ही भ्रान्तः[१०] भ्रान्त होकर प्रधावसि[११] - दौडता फिरता है - पिशाचवत[१२] - पिशाच के तुल्य वायु के समान भ्रांत होकर -

## आशय ।

हे चेतन आत्मा जिस चेतन ब्रह्म का पीछे निरूपण किया गया है और जो एक ही भेद से रहित है सो ही चेतन ब्रह्म सब आकृतियों के बाहर और भीतर प्रकाशमान है और स्वतः स्वतन्त्र कल्याण स्वरूप है और सर्वत्र एकरस सर्वदा विद्यमान भी है सो जो ऐसा विद्यमान पुरुष आत्मा है सो तुम आप ही हो अर्थात जो एक ही आत्मा परमात्मा है वह तुम ही हो - सो जबकि शुद्ध चेतन ब्रह्म तुम ही हो तब फिर तिसी ब्रह्म की प्राप्ति के लिये वायु की भांति किस लिये इधर उधर दौडते फिरते हो क्योंकि जो कुछ हो सो तुम ही तुम अपने आप ही आप हो अपने को ही हित कर के आप जानो ॥ १४ ॥

संयोगश्च[१] विभागश्च[२] वर्तते[३] न[४] चेतन[५] मे[६] ॥ न[७] त्वं[८] नाहं[९] जगन्न[१०] इदं[११] सर्वमात्मैव[१२] केवलम[१३] ॥ १५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संयोगः[१] - संयोग रूप में मेल तथा मिलावट च[२] और विभागः[३] विभाग रूप में बट बटाव च[४] - चेतन स्वरूप आत्मा वर्तते[५] जो वर्तमान रूप है न[६] नहीं है च[७] - हे चित चेतन ते[८] तेरा और मे[९] नहीं है मे[१०] कोई मेरा और न[११] नहीं है - त्वम्[१२] - तू आप भी और न[१३] अहम्[१४] नहीं हूं मैं भी जगत्[१५] जगत रूपी जगत अर्थात इदम्[१६] - ये दृश्यमान जगत रूप प्रपंच जो भिन्न भिन्न करके प्रतीत होता है सर्वम्[१७] - संपूर्ण सर्वस्वरूप आत्मा[१८] आत्मा में है और आत्मा - एव[१९] निश्चय करके जो निश्चय स्वरूप है वही केवलम्[२०] - केवल मैं हूं

## आशय ।

हे चेतन सर्वज्ञ चित चेतन संयोग और विभाग तुम्हारे में नहीं हैं और मेरे में भी नहीं हैं और तुम हम का जो भेद है ये भेद भी आत्मा में नहीं बनता है और ये दृश्यमान जगत भी वास्तव से रज्जु में सर्प की नाईं से नहीं है क्योंकि निश्चय करके जो सर्व रूप है केवल आत्मा का ही है और आत्मा से भिन्न कोई भी वस्तु स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सेसत्य नहीं है अर्थात जो सत्य वस्तु है वही निश्चय करके केवल सर्वम् एक मैं ही आत्मानंद आत्मा हूं ॥१५॥

शब्दादिपञ्चकस्यास्य नैवासि त्वं न ते पुनः ॥ त्वमेव परमं तत्त्वमतः किं परितप्यसे ॥१६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**शब्दादिपञ्चकस्य** - कहने मात्र जो प्रपंच के विषे हैं - **अस्य** - इनसे **एव** निश्चय करके **आसि** इसमें **त्वम्** - तू आप **न** नहीं है **ते** तेरे आप अपने करके अर्थात शब्द प्रपंच रूप कोई विषे **पुनः** फिर तू हे चित क्या है - **त्वम्** तू आप ही **एव** निश्चय करके - **परमम्** - महान सूक्ष्म मूल कारण अपार **तत्त्वम्** तत्व मूल रूप है **अतः** इस लिये **किम्** - क्यों और क्या और किस लिये - **परितप्यसे** - तू संतप्त होता है चिन्ता करता है ।

## आशय ।

हे चित चेतन - ये जो शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध प्रकृति के पांच विषय हैं इनके साथ तेरा और तेरे साथ इनका कोई भी संबन्ध नहीं है क्योंकि ये सब असत्यरूप और मिथ्या हैं और तू सत्य रूप चेतन है । सो मिथ्या और सत्य का वास्तव से कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता है और तू तो आप ही परमतत्व सार वस्तु है इसलिये हे चित जबकि तू आपही आदि अंत रहित अनंत परम तत्व है फिर तू किस लिये शोकातुर होता है कि तू अनंत है ॥१६॥

जन्ममृत्यु र्न ते चित बन्धमोक्षौ शुभाशुभौ ॥ कथं रोदिषि रे वत्स नामरूपं न ते न मे ॥१७॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**जन्म** - जन्म लेना उत्पन्न होना - **मृत्युः** मरना अर्थात नष्ट हो जाना न रहना - **न** - नहीं है **ते** तेरे में **चित** हे चित चेतन मेरे - **बन्धमोक्षौ** बन्धन और मोक्ष तथा **शुभाशुभौ** शुभ और अशुभ भी **कथम्** किस प्रकार से कहूं कि हैं तुझ को तेरे को **रोदिषि** - फिर क्या रुदन - **रे** हे **वत्स** - चित जबके **नाम** - **रूपम्** - नाम और रूप भी - **न** नहीं हैं - **ते** तेरे में और **न** नहीं हैं **मे** - मेरे में -

## आशय ।

हे चित पैदा होना और मरना तेरा मेरे चेतन स्वरूप में नहीं है कारण कि ये माया कार्य है और बन्धन और मोक्ष तथा शुभ और अशुभ जितने कि कर्म हैं ये भी सब माया के ही कार्य हैं तुम्हारे नहीं हैं और नाम रूप भी माया कार्य हैं कि जो माया नाम प्रकृति से उत्पन्न होते हैं तुम्हारा अर्थात मेरा कोई नाम और रूप नहीं है फिर रुदन कैसा रोना और चिल्लाना प्रकृति का कार्य है तेरा नहीं है तू तो साक्षी चैतन्य ही है ॥१७॥

अहो चित कथं भ्रान्तः प्रधावसि पिशाचवत् ॥ अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात्सुखी भव ॥१८॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**अहो** - बड़ा आश्चर्य है - **चित** हे चित **कथम** किस प्रकार मैं कहूं कि तू - **भ्रान्तः** - भ्रान्त हो कर के **प्रधावसि** - दौड़ता फिरता है - **पिशाचवत** वायु रूप होकर बिजली की नरह - **अभिन्नम्** भेद से रहित मैं एक ही हूं **पश्य** - देख **च** चैतन्य रूप - **आत्मानम्** - आत्मा आप ही **रागत्यागात** राग रहित **सुखी** - सत्य उदित निर्लेप परम् रूप अनंत सुख वाला **भव** नाम एकादशतद् को आदि आदि एक स्वरूप

## आशय ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

२१०

हे चित ! बडा आश्चर्य है कि तू भ्रान्त होकर वायु रूप आत्मा को अपने से भिन्न जान करके पिशाच की तरह से अर्थात धूरत रूप धरके नाना प्रकारके पाखण्ड रचन कर आप ही अपने से छल करता है अर्थात बनों और पर्वतों में आप अपने आत्म स्वरूप को भूल कर खोजता फिरता है। आत्मा अभिन्न करके भेद से रहित अभेद चेतन है रागं रहित दुःख से रहित सत्य स्वरूप सुख रूप है अर्थात आत्मा एक ही एकादिश रुद्र का रूप है इसमें देख और विषयों से राग का त्याग करके सुखी हो कारण कि राग ही दुःख का मूल माया कार्य है ॥ १८ ॥

त्वमेव तत्वं हि विकारवर्जितं निष्कम्पमेकं हि विमोक्षविग्रहम् ।
न ते च रागो ह्यथवा विरागः कथं हि सन्तप्यसि कामकामतः ॥ १९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

त्वम् - तू आप ही एव निश्चय करके तत्त्वम् आत्मस्वरूप है और तू आप ही हि निश्चय करके सत्य ही सत्य विकारवर्जितम् - विकार से भी रहित है अर्थात तुझ को विकार तथा किसी प्रकार से किसी प्रकार का नाश नहीं है निष्कम्पम् - निष्काम रूप निष्कलङ्क, निर्दोष भी तू आप ही है और तू एकम् हि - एक ही निश्चय करके निश्चय आत्मा है और विमोक्षः मोक्षस्वरूप है और विग्रहम् - अधिष्ठान रहित आप ही अधिष्ठान रूप है न नहीं है - ते तेरे - च चेतन स्वरूप में रागः राग ही और हि निश्चय करके अथवा तथा - विरागः विराग अर्थात द्वेष ही - कथम् किस प्रकार कहूं मैं कि हि निश्चय स्वरूप आत्मा में सन्तप्यसि - संताप तथा दुःख और शोक होता है और काम कर्म कामना रूप है अकामतः कर्म रहित और कामना रहित होकर के भी अर्थात तू आप ही निष्काम कर्म रहित है शोक संताप रहित है ॥

## आशय ।

हे चित तू ! आप ही चेतन आत्म स्वरूप षड् विकारों से रहित है और निष्काम अर्थात कर्म रहित निर्दोष अभय स्वरूप अचल रूप है और विशेष करके तू आप ही मोक्ष स्वरूप मुक्त रूप है इसलिये तेरा राग और द्वेष से भी कोई संबन्ध नहीं है क्योंकि राग और द्वेष बन्धन वाले में ही रहते हैं जैसेकि कर्म का फल भी कर्म ही कहलाता है सो मन वचन से और कर्म से जो फल उत्पन्न होते हैं और जो काल पाकर कर्म चक्र में सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रकार कर्म से फल और फल से कर्म का चक्र संसार में सदा चलता रहता है। अर्थात वस्तु कर्म में कार्य कारण भाव दोनों रहते हैं। जहाँ कोई कार्य होता है वहाँ उस का कारण भी अवश्य होता है चाहे वह गुप्त ही क्यों न हो इसी प्रकार जहाँ कारण होगा वहाँ कार्य्य भी विद्यमान हुए नहीं रहेगा चाहे कार्य कारण की उपस्थिति में भी न हुवा हो सो ये ही कर्म का सिद्धान्त बन्धन रूप बन्धन वाला है कि जो संसार भर में सच्चा माना गया है। सो जो कुछ देखने छूने सुनने और करने में आता है वह सब कर्म रूप बन्धन है। और जहाँ इस प्रकार के कर्म रूप बन्धनों से कुछ फल उत्पन्न होने लगते हैं वहाँ उन फलों के सम्बन्ध में बहुत से नये नये कर्म भी बन जाते हैं। जहाँ कहीं एक कर्म होता है वहाँ उसके सम्बन्ध से अनेक कर्मों का बार बार होना आवश्यक और प्रत्यक्ष प्रमाण होना रहता है। जैसा कि नैयायिक सिद्धान्त के संबंध में संपूर्ण मानसिक वाचक और कायक कर्मों में व्याप्ति काम कर रही है क्योंकि व्याप्ति नाम माया का है और माया नाम कारण का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है और कारण नाम कर्म रूप कार्य का है। इसलिये जब मन में विशेष करके किसी एक प्रकार का सङ्कल्प उठता है तो देखने में आता है कि उससे सम्बन्ध रखने वाले और अनेक प्रकार के भाव सागर की तरङ्गों के समान उत्पन्न होही जाते हैं। और ये एक प्रत्यक्ष बात है। और इसी का नाम बन्धन और इसी का नाम कर्म और इसी का नाम व्याप्ति और इसी का नाम माया है। बाह्य और आन्तरिक जगत में सर्वत्र यही एक सिद्धान्त समान रूप से काम कर रहा है। एक भाव के पश्चात दूसरे भाव का आना अथवा युगपत अनेक सम्बद्ध भावों का प्रादुर्भूत होना इसका प्रत्यक्ष में प्रत्यक्ष प्रमाण है। किंतु विचारणीय ये बात है कि ये कर्म का सिद्धांत एक देशी है या सर्व देशी है इसका उत्तर यही है कि ये पृथिवी जिस पर कि नाना प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते और मरते प्रतीत होते हैं ये उस अपरिमित ब्रह्मांड का जो देश काल और निमित के संयोग से बनकर प्रकट हुआ है एक वियष्टि रूप है छोटा सा भाग है। ये देखने से स्पष्ट है कि ये संसार नैमित्तिक है। कि जिससे आगे चल कर फिर और कोई नियम या उसका प्रभाव नहीं रहता है। संसार क्या है एक ही अनंत वस्तु का वह भाग है कि जो मन के द्वारा आक्रान्त यथा सीमाबद्ध होता है और ऐन्द्रिय जगत करके प्रसिद्ध है। और जिसमें देखने छूने सुनने का अनुभव होता है और सोचने तथा समझने का कर्म रहता है। इससे आगे चलकर फिर कार्य कारण का कोई नियम नहीं रहता। कारण ये है कि जो वस्तु मन और इन्द्रियों से परे है वहाँ न प्रत्यक्ष का गम्य है न अनुमान का। क्योंकि इस सृष्टि में जहाँ तक नाम रूप की छाप लगी हुई है वहाँ तक कार्य कारण भाव की सीमा है और वहीं तक प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द काम करते हैं। और इसी जगत में प्राकृत नियम अपना काम करते हैं। यद्यपि इस संसार में प्राणी मात्र अपनी मानसिक शक्ति से ही काम लेते हैं। तथापि पूरी स्वतन्त्रा के न होने से मानसिक शक्ति में आत्मक शक्ति दबी रहती है और प्राणी मात्र का ज्ञान भी इसी सीमा के भीतर और उन्हीं प्राकृत नियमों के अनुसार होता है। सो जिस वस्तु को प्राणी मात्र जिस विधि से जानते हैं यद्यपि जिसका जानना सम्भव है वही उस प्राकृत नियम के आधीन है कि जिस के द्वारा प्राणी अपने मन और इन्द्रियादि से काम लेते हैं। इसलिये जहाँ आधीनता है वहीं स्वतन्त्रा भी है। स्वतन्त्रा क्या है इस शब्द का प्रयोग यही है कि वह वस्तु कि जिसने देश काल और निमित के संयोग से अपनी दशा और शक्ति में परिवर्तन स्वीकार किया है जो पहले से ही संपूर्ण शक्तियों का कोश केन्द्र है और जिसने प्रकृति के आवरण से अपने को छिपाया हुआ है वो स्वयं स्वरूप से मुक्त और पूर्ण स्वतन्त्र है उसमें देश काल और निमित का संयोग होने पर भी किसी प्रकार की बन्धन नहीं है वह नित शुद्ध बुद्ध और मुक्त है। यदि हे चिन तू ये प्रश्न करे कि ये संसार कहाँ से उत्पन्न हुआ किस में रहता है और कहाँ जायगा। इस का यही उत्तर है कि ये तेरे ही मोक्ष स्वरूप से प्रकट होता है बन्धन में रहता है और फिर तेरे ही मोक्ष स्वरूप अधिष्ठान रूप में समा जाता है कि जो तेरी अनंत अखण्ड सर्वव्यापक सत्ता का एक अंश है कि जो माया रूप है और ये माया अर्थात ब्रह्माण्ड रूपी सृष्टि तेरी ही अनंत सत्ता में एक बिन्दु की उपमा रखती है। कि जिसका कर्म और उस कर्म का फल माया रूपी इच्छा और आशायें सब इसी बिन्दु रूप ऐन्द्रिय जगत से सम्बन्ध रखने वाले हैं कि जिनमें न उन्नति है न अवनति कारण ये है कि ये सब नाशमान हैं और इसका अस्तित्व कारण केवल तू आप ही माया मन रूप है अर्थात आप ही अधिष्ठान स्वरूप है कि जिस तेरे स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में न राग है न द्वेष है न दुःख है न सुख है न शोक है न पश्चाताप है क्योंकि तू कर्म रहित मोक्ष स्वरूप है ॥१९॥

वदन्ति श्रुतयः सर्वा निर्गुणं शुद्धमव्ययम् ॥ अशरीरं समं तत्त्वं तन्मां विद्धि न संशयः ॥२०॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

वदन्ति - प्रकट करती हैं और कह रही है! श्रुतयः आत्मा अपने आप कि निर्गुणम् मैं गुणों से रहित हूं और सर्वा संपूर्ण शुद्धम् शुद्ध और पवित्र हूं मैं और अव्ययम - नाश से रहित हूं मैं और अशरीरम् शरीर से रहित हूं मैं और - समम् - एक रस रूप हूं मैं और - तत्त्वम् - तत् स्वरूप हूं मैं और तत् माम् तत स्वरूप मेरा - विद्धि - नाम ब्रह्मा ब्रह्म चेतन्य स्वरूप है न - नहीं है जिसमें - संशयः - कोई शंका अर्थात कल्पना -

आशय ।

हे चित! आत्मा प्रकट करती है कि मैं गुणों से रहित पूर्ण शुद्ध नाश से रहित शरीर से रहित एक ही तत् स्वरूप हूं कि जिस तत स्वरूप मेरे का नाम ब्रह्म चैतन्य है और इसमें कोई संशय नहीं है इसलिये वह जो ब्रह्म चेतन है एक ही आत्मा है वही तू अर्थात मैं आपने आप ही हूं इसमें किसी प्रकार की कल्पना तथा शंका नहीं है।

साकारमनृतं विद्धि निराकारं निरन्तरम् ॥ एतत्तत्त्वोपदेशेन न पुनर्भवसंभवः ॥ २१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

साकारम् - साकार माया रूप जो है सो - अनृतम् - माया का मिथ्या स्वरूप है - विद्धि - नाम जो एक ही चैतन्य ब्रह्म है वही निराकारम् - आकार रहित मैं हूं और - निरन्तरम् - सद्रूप एक ही आदिम आदि स्वरूप मैं हूं - एत - इस - तत्त्वोपदेशेन तत् उपदेश सत्य उपदेश से न नहीं है पुनः - फिर - भवसंभवः हे एकादश रुद्र के एक ही शिव स्वरूप अनृत का साकार होना

आशय ।

हे चित - ये आश करना कि ये जगत सदा रहेगा एक बाल चेष्टा है संसार साकार एक कल्पित अर्थात मिथ्या रूपान्तर है इस साकार में ब्रह्माण्ड के अन्दर जितने कि साकार पदार्थ दिखाई पडते हैं सब मिथ्या हैं इन सब को सत्ता देने वाला जो निराकार चेतन ब्रह्म है वही सत्य रूप इस संसार की सीमा से बाहर केवल तू है और यही सत्य उपदेश मेरा है हे चित इस उपदेश के स्वीकार करने से फिर कभी इस संसार में हे एकादश रुद्र के एक ही शिव स्वरूप जन्म मरण रूपी संसार जो तेरे ही अन्तर गत है और जो बन्धन के नियम से मुक्त नहीं है और ये सब तेरे निराकार स्वरूप में ही समाप्त रूप है तेरे परम पद अधिष्ठान में समाप्त होने के पश्चात फिर कभी अनृत रूप कर के ये प्रकट नहीं होता है क्योंकि कार्य कारण और उनके नियमों की सामा "इति इति" ये है ये है "नेति नेति" कि जिसके अर्थ हैं नहीं है नहीं है इसके अन्तरगत ही रहती है इसलिये केवल तू ही सद्रूप आकार रहित कि जो कभी साकार नहीं होता चेतन ब्रह्म है ॥२१॥

एकमेव समं तत्त्वं वदन्ति हि विपश्चितः ॥ रागत्यागात्पुनश्चितमेकानेकं न विद्यते ॥ २२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

एकम् एक ही - एव - निश्चय स्वरूप समम् पूर्ण सम रूप - तत्त्वम् तत् सत् रूप आत्मा वदन्ति कहने वाला हि - निश्चय रूप आत्मा विपः सब कुछ जानने वाला - चितः चेतन ब्रह्म आत्मा - रागत्यागात् - रागों से रहित पुनः विस्तार के साथ प्रकाशमान - चितम् - चेतन अदृष्ट - एकान् अनंत विशेष रूप में एकम् - एक ही मेरा स्वरूप है! न नहीं है - विद्यते - वह आत्मा द्वैत रूप भेदाभेद का जानने वाला अर्थात आत्मा में भेद नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आदय ।

हे चित! जो अत्यन्त विस्तार के साथ प्रकाशमान स्वरूप है वह चेतन अदृष्ट निश्चय करके एक ही आत्मा समरूप भेद से रहित और रागों से रहित सब कुछ जानने वाला संसार रूपी विशेषता में अर्थात अनंत रूपों में सर्वत्र एक है। अर्थात जो आत्मा सर्वत्र एक है और सब में सम है अर्थात प्राणी मात्र में नित्य ही है तथा विषयों में राग करके ही प्राणियों को एक के अन्य नाना आत्मा मान होते हैं किंतु जब प्राणी राग का त्याग कर देता है तब उसे एक और अनेक का मान नहीं होता है अर्थात द्वैत और अद्वैत दोनों का ही मान नहीं रहता है क्योंकि आत्मा ज्यों का त्यों एकरस आप अपनी महिमा में स्थित होता है ॥२२॥

अनात्मरूपं च कथं समाधिरात्मस्वरूपं च कथं समाधि ।
अस्तीति नास्तीति कथं समाधिर्मोक्षस्वरूपं यदि सर्वमेकम् ॥ २३ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**अनात्मरूपम्** - माया के अनात्मस्वरूप को **च** चैतन्य ब्रह्म में **कथम्** किसी प्रकार से भी - **समाधिः** एकाग्रता की स्थिति नहीं हो सकती है। और **आत्मस्वरूपम्** आत्मा मेरे स्वरूप को भी - **च** चैतन्य ब्रह्म स्वरूप में **कथम्** किसी प्रकार **समाधिः** एकाग्रता की स्थिति नहीं है **अस्ति इति** - है ये है - **नास्ति इति** - नहीं है ये है - **कथम्** कैसे कहूं मैं कि **समाधिः** एकाग्रता की स्थिति हो सकती है क्योंकि **मोक्षस्वरूपम्** मैं स्वरूप ही करके मोक्ष तथा स्वतन्त्र हूं **यदि** जैसे की जो कि चेतन ब्रह्म है सो **सर्वम्** सर्वत्र पूर्ण रूप में सब अधिष्ठानों में **एकम्** - मैं केवल समाधि रहित एक ही ब्रह्म चेतन हूं ॥

## आदय ।

हे चित! इस संसार में दो ही मार्ग हैं एक निवृति और दूसा प्रवृति - निवृति स्वतन्त्र और प्रवृति बन्धन का नाम है कि जिन दोनों पदार्थों में स्वतन्त्र तो आत्मा है और बन्धन रूप अनात्मा अर्थात माया है। सो इन दोनों में से एक में भी समाधि व्यवहार नहीं बनता है। समाधि नाम एकाग्रता का है सो जोकि अनात्म रूप जड पदार्थ माया है अर्थात प्रवृति रूप सृष्टि संसार है उसमें किसी प्रकार से भी समाधि नहीं बनती है क्योंकि माया को किसी प्रकार का ज्ञान ही नहीं है और चेतन आत्मा जोकि स्वतन्त्र है वही शुद्ध है और ज्यों का त्यों विक्षेपादि कोसे रहित अपनी महिमा में स्थित है उसमें भी समाधि नहीं बनती है क्योंकि जोकि पहले एकाग्र नहीं उसको एकाग्र होने की इच्छा होती है सो आत्मा में यह बात नहीं है क्योंकि जो पदार्थ सदैव विद्यमान है उसमें भी कभी समाधि नहीं बन सकती है इसी प्रकार जोकि नास्ति है अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों में विद्यमान नहीं है उसमें तो समाधि की नाम मात्र को संभावना भी नहीं हो सकती है तो फिर आत्मा हे चित चेतन जो तू नित्य शुद्ध मुक्त स्वरूप पूर्ण और सर्वत्र केवल एक ही द्वैत से रहित आत्मा है तिस में तो समाधि की अंश मात्र को भी संभावना नहीं बनती है ॥ २३ ॥

विशुद्धोऽसि समं नित्यं विदेहस्त्वमजोऽव्ययः ॥ जानामीह न जानामीत्यात्मानं मन्यसे कथम् ॥ २४ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**विशुद्धः** विशेष करके **असि** - **जो** शुद्ध है **समम्** - एकरस है **नित्यम्** नित्य शरीर आत्म तत्त्व है। **विदेहः** विदेह मुक्त है अर्थात देह सहित ही मोक्ष है स्वतन्त्र है वह **त्वम्** तू आपही **अजः** जन्म से रहित और **अव्ययः** नाश से रहित है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जानामि-मैं जानता हूं या मैं ने जानलिया है-इह-इसको न नहीं जानामि-जानता हूं मैं इति ये है-आत्मानम् आत्मा मन्यसे हे मनु मनये तू ही है कथम् कैसे कहूं मैं कि मैं आप ही आत्मा हूं ॥

आशय ।

हे चित! विशेष करके जो शुद्ध है एकरस है माया मल से रहित है और सर्वत्र एकरस सम भी है और विदेह मुक्त है अर्थात जिसका कि देह के साथ कोई भी संबन्ध नहीं है और जो के जन्म से रहित है और बाज्ञा से भी रहित है अर्थात स्वयं मोक्षरूप स्वतन्त्रस्वरूप है वह तू आप ही है सो जब ऐसा तेरा स्वरूप है तो तू फिर कैसे कह सकता है कि मैं ने आत्मा को जान लिया है या मैं आत्मा को जानता हूं कि आत्मा ये है या मैं आत्मा को नहीं जानता हूं हे मनु मन इन्द्र राजेन्द्र ये केवल तू ही तो है कि जो कह रहा है कि मैं कैसे कहूं कि मैं आप ही आत्मा हूं और अज अव्यय हूं ॥ २४ ॥

तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च स्वात्मा हि प्रतिपादितः ॥ नेति नेति श्रुतिर्ब्रूयादनृतं पाञ्चभौतिकम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

तत्त्वम्-तत्वों में तत् और सत्य जो आत्मा असि है-आदि- प्राचीन और प्राक है वाक्य शब्दस्वरूप है इह यही च-चैतन्य आत्मा है स्वात्मा सो ही आत्मा-हि-निश्चय स्वरूप करके ही-प्रतिपादितः आदि प्राक स्वरूप से ही प्रकाशमान है प्रकट है उदित्य स्वरूप है उदय है-नेति नेति ये नहीं है ये नहीं है श्रुतिः आकृतिरूप आत्मा ब्रूयात् कहने योग्य आत्मा अनृतम् मिथ्या माया का रूप पाञ्चभौतिकम् पांचभौतिक प्रपंचक देह ॥

आशय ।

हे चित! तत्वों में तत् सत्य जो प्राचीन प्राक शब्दस्वरूप आत्मा है यही चैतन्य आत्मा है सो ही आत्मा निश्चय करके आदि प्राक स्वरूप से ही प्रकाशमान है प्रकट है उदित्य स्वरूप है उदय है। अर्थात ये जितना दृश्यमान जगत प्रकट प्रतीत में अर्थात श्रुति आकृति रूप में जो भी आकृति है वास्तव से ब्रह्मरूप आत्मा में कि जो स्वात्मा है अर्थात जो आप ही आप आत्मा है नेति नेति करके ये सब पंचभौतिक प्रपंच जितना कि जगत है देह रूप में ये आत्मा नहीं है ये आत्मा नहीं है क्योंकि ये सब ब्रह्म आत्मा में कि जो वास्तव में आत्मा कहे जाने योग्य है ये सब मिथ्या ही है और जो तत् स्वरूप आत्मा है वही तत्वमसि शब्द अर्थ रूप में तेरा अपना स्वरूप है अर्थात तू आप ही तत् आत्मा है ॥ २५ ॥

आत्मन्येवात्मना सर्वं त्वया पूर्णं निरन्तरम् ॥ ध्याता ध्यानं न ते चितं निर्लज्जं ध्यायते कथम् ॥ २६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आत्मनि-आत्मा में एव निश्चय करके आत्मना हे आत्मा-सर्वम् सर्वत्र सब संसार जगत-रूप में त्वया तेरा आप अपना पूर्णम् पूर्ण स्वरूप है निरन्तरम्-निरन्तर है-ध्याता बुद्धरूप ज्ञानस्वरूप चेतन है-ध्यानम् ध्यान में ध्यान विचार और विचार में सृष्टि संसार न नहीं है ते तेरा स्वस्य चितम्-हे चित चैतन्य-निर्लज्जम् निर्लज्ज जो माया रूप है अर्थात् ध्यायते-मायारूप सृष्टि से जो माया सृष्टि उत्पन्न रूप है कथम् कहता हूं मैं प्रकट करता हूं मैं

आशय ।

हे आत्मानंद! निश्चय करके आत्मा में ही अर्थात तुम्हारे अपने आप में ही व्यापक करके निरन्तर एकरस संपूर्ण यह संसार पूर्ण हो रहा है दूसरा तो कोई भी तुम्हारे से बना नहीं है। जबकि एक ही चेतन आत्मा सर्वत्र व्यापक है तब हे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्धरूप ज्ञानस्वरूप चेतन चिदानंदघ्न निर्लज्ज रूप जो माया अर्थात माया रूप सृष्टि से जो माया सृष्टि उत्पन्न रूप है येनहीं है तेरा स्वरूप यही है मेरा कहना तेरे से क्योंकि आत्मा ध्यान वाला और ध्यान रूप नहीं है आत्मा एक है और ध्यान और ध्येय दोनों व्यवहारों से रहित है क्योंकि आत्मा में न ध्यान है न धारणा ॥ २६ ॥

शिवं न जानामि कथं विदामि शिवं न जानामि कथं भजामि ।
अहं शिवश्चोत्परमार्थतत्वं समस्वरूपं गगनोपमं च ॥ २७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

शिवम् - कल्याणरूप मोक्षस्वरूपको - न जानामि - नहीं जाता हूं मैं कथम् कैसे वर्णन करूं मैं विदामि उसस्वरूपका शिवम् - शिवस्वरूप को न जानामि नहीं जानता हूं मैं कथम् कैसे भजामि भजन करूं मैं उसका अर्थात जानूं मैं उसको अहम् मैं आप ही शिवः कल्याणरूप मोक्षस्वरूप हूं च चेतन आत्मा हूं एव इसलिये परमार्थतत्वम् परमार्थस्वरूप भी हूं अर्थात परम् अर्थ रूप से मैं ही तत् और सत्स्वरूप हूं और समस्वरूपम् सम रूप भी हूं अर्थात एकरस एक ही स्वरूप वाला मैं हूं और गगनोपमम् आकाश की उपमा वाला भी मैं हूं च और चेतन चिदानंदघ्न सत्य स्वरूप भी मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! कल्याणस्वरूप ब्रह्म को मैं नहीं जानता हूं अर्थात ज्ञानेन्द्रियों करके मैं उस स्वरूप का वर्णन कहो कैसे कर सकता हूं तो फिर मैं कैसे शिवस्वरूप के स्वरूप को जानूं और कहूं जबकि वह किसी भी इन्द्रिय करके जाना नहीं जाता है तब किस प्रकार उसका भजन हो क्योंकि विना जाने का भजन हो नहीं सकता है। जबकि मैं आप ही कल्याणरूप मोक्षस्वरूप हूं चेतन आत्मा हूं और परम् अर्थ रूप से मैं ही तत और सत स्वरूप हूं सम रस एक ही आकाश के तुल्य अचल हूं तब फिर जानना किसका और भजन किसका क्योंकि जो चेतन सब का जानने वाला है वह मैं ही चेतन चिदानंदघ्न हूं फिर मैं अपने अन्य किस को जानूं और कैसे जानूं कि अपने से अन्य का जानना हो नहीं सकता है जानना अपना ही अपने आप का ही है सो जो आप ही अपने आप का जानने वाला है वही चेतन मैं आप हूं ॥ २७ ॥

नाहं तत्त्वं सम तत्त्वं कल्पनाहेतुवर्जितम् ॥ ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं स्वसंवेद्यं कथं भवेत ॥ २८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं अहम हूं मैं तत्त्वम् तत्त्व शरीर सत्यम् सम तत्त्वम् तत्त्व कल्पनाहेतुवर्जितम वहमरूपी जो संसार है उसकरके शरीर रूप में कोई तत्त्वरूपी सम तत्त्व क्योंकि मैं इस प्रकार की कल्पना से कि मैं शरीर हूं रहित हूं और ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं ग्राह्य और ग्राहक के व्यवहार से भी मैं रहित हूं स्वसंवेद्यम् आपही ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयस्वरूप हूं कथम् कैसे कहूं मैं कि भवेत मेरा तत्त्व सम तत्त्व शरीर होता है कि जो नहीं होता और नहीं है

आशय ।

हे चित मैं भिन्न तत्त्व और सम तत्त्व भी नहीं हूं और कल्पना तथा कल्पना के कारण माया से भी रहित हूं और ग्राह्य ग्रहण करने योग्य तथा ग्राहक ग्रहण करने वाला के व्यवहार से भी रहित हूं। क्योंकि एक में ग्राह्य ग्राहक व्यवहार नहीं बनता है सो कैसे कहूं मैं कि शरीरधारी होता हूं मैं जबकि मैं आप ही ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय स्वरूप हूं ॥ २८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनन्तस्वरूपं न हि वस्तुकिञ्चित्तत्त्वस्वरूपं न हि वस्तुकिञ्चित् ।
आत्मैकरूपं परमार्थतत्त्वं न हिंसको वापि न चाप्यहिंसा ॥ २९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अनन्तस्वरूपं - ब्रह्म चेतन जो एकही अनंतस्वरूप है और न नहीं है हि उस निश्चयस्वरूप से भिन्न कोई भी वस्तु - पदार्थ - किंचित् - अंशमात्र को भी सत्य रूप और तत्त्वस्वरूपम् वास्तव रूप में वह ब्रह्म ही जो कि तत्सत्रूप है उस से भिन्न न नहीं है हि निश्चय करके वस्तु किञ्चित - सद्रूप कोई भी वस्तु आत्मा - आत्मा ब्रह्म एकरूपम् एकरूपही है और - परमार्थतत्त्वम् परम् अर्थ से तत्त्व स्वरूप भी है और न नहीं है हिंसकः हिंसकही - वा और अपि निश्चय करके न नहीं है च चेतन आत्मा - अपि निश्चय करके अहिंसा - अहिंसकही

## आशय ।

हे चित ! चेतन आत्मा का अनंत रूप है । आत्मा का अंत नहीं है कि आत्मा कहाँ से कहाँ तक है आत्मा से भिन्न और कोई भी वस्तु अनन्त नहीं है यदि कोई है तो वही परिच्छिन्न है केवल आत्मा ही अनंत और नाश से रहित है और आत्मा के अन्य जो वस्तू है वही नाशमान है । आत्मा सदैव एक रूप से ही रहता है और आत्मा ही वास्तविक तत्त्व भी है और आत्मा से भिन्न कोई भी वस्तु किसी प्रकार कुछ भी नहीं है इस लिये आत्मा में न तो हिंसा है और न अहिंसा सो न कोई हिंसा का कर्ता है न अहिंसा का करने वाला है क्योंकि हिंसा और अहिंसा का व्यवहार द्वैत को लेकर के होता है और आत्मा में द्वैत भाव ही नहीं है इस लिये हिंसा और अहिंसा का व्यवहार नहीं ॥ २९ ॥

घटे भिन्ने घटाकाशं सुलीनं भेदवर्जितम् ॥ शिवेन मनसा शुद्धो न भेदः प्रतिभातिमे ॥ ३० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

घटे भिन्ने घटाकाशम् - घट के नाश होने पर घटाकाश - सुलीनम् - महाकाश में लीन हो जाता है और भेदवर्जितम् - भेद से रहित हो जाता है शिव शिव रूप मोक्ष स्वरूप एव ऐसा जो मनसा मन कर के शुद्धः शुद्ध स्वरूप आत्मा है और न नहीं है भेदः भेद उसमें प्रति किसी प्रकार की प्रतीत का और भाति - किसी प्रकार के भान का ऐसा जो शुद्ध स्वरूप है वह मे मेरा ही आत्मा स्वरूप है ॥

## आशय ।

हे चित ! जबतक घट बना रहता है तबतक घटाकाश रूप आकृति का मिथ्या व्यवहार प्रतीत होता है और जब घट का नाश होजाता है तब घटाकाश का व्यवहार भी नहीं रहता है क्योंकि घटाकाश महाकाश में लीन हो जाता है इसीप्रकार जबतक लिङ्ग शरीर रहता है तबतक ही जीव व्यवहार भी होता है । लिंक शरीर एक उपाधि का नाम है कि जो माया कृत एक सूक्ष्म आकृति होती है ये लिङ्ग शरीर रूपी उपाधि वास्तव में अज्ञान का नाम है और अज्ञान ज्ञान के स्वयं नष्ट हो जाता है अर्थात अज्ञान का कार्य जो लिंक शरीर रूपी उपाधि है अर्थात कल्पना रूपी जीवात्मा है तिसके नाश होने पर जीवात्मा कि जो वास्तव में कोई वस्तु नहीं है कल्पना ही कल्पना है चेतन आत्मा में कि जो एक ही तरह वस्तु भेद व्यवहार अर्थात कल्पना से रहित है उसमें लीन हो जाता है अर्थात आत्मा जो स्वयं चेतन ही चेतन है और उसमें सांप बिच्छू सिंह व्याघ्र हाती चीता आदि का कोई भेद व्यवहार की कल्पना नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और जो अशुद्ध मन करके अर्थात कल्पनाकरके द्वैतरूपमें नाना प्रकार की कर्ता भोक्ता रूपआकृतियोंमें अशुद्धमान होता है अशुद्ध नहीं है क्योंकि भेदव्यवहार कल्पना रहित शुद्ध मन करके देखनेसे चैतन्य आत्मा भी शुद्ध ही प्रतीत होता है सो ऐसा जो शुद्ध चेतन शुद्ध मन करके शुद्ध आत्मा है अर्थात मन शुद्ध कल्पना रहित सबकुछ जानेवाला है वही सबकुछ जाननेवाला भान स्वरूप जो चैतन्य स्वरूप है वो केवल मेरा ही भेदभाव कल्पना रहित भानस्वरूप है ॥ ३० ॥

न घटो न घटाकाशो न जीवो जीवविग्रहः ॥ केवलं ब्रह्म संविद्धि वेद्यवेदकवर्जितम् ॥ ३१ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं है घटः घट रूपआकृति कोई वस्तु और न नहीं है - घटाकाशः घटाके स्वरूप में आकाश अर्थात घटाकाश भी कोई वस्तु और न नहीं है - जीवः जीवात्मा करके जीव भी कोई वस्तु और जीवविग्रहः जीव का अर्थात कल्पना रूपी जीव पना कोई वस्तु कि मैं ब्राह्मण हूं वह राजा है ये महतर है वह गधा है ये काग है ऐसी कल्पना केवलम् - केवल एकही ब्रह्म - नाम ब्रह्म चेतनआत्मा हूं मैं संविद्धि - तू स्मयक जान कैसा चेतन ब्रह्म हूं मैं वेद्य कल्पनारूपी जन्यज्ञान के विषयोंसे अर्थात वेदक नाम जन्यज्ञान कल्पना से कि ये मृग है ये पक्षी है ये पशु है ये मनुष्य है ये राजा है वो पुत्र है ये स्त्री है ऐसा जो कल्पना जन्यज्ञान है इससे विर्जितम् रहित हूं मैं

## आशय ।

हे चित ! जब के एक रस भेद रहित तू ही चेतन ब्रह्म सद्रूप आत्मा है और तेरे में घट रूप उपाधि भी नहीं है और जबकि अभाव रूपी घट रूप उपाधि ही नहीं है तो वास्तव से घटाकाश भी नहीं है और जब घटाकाश भी नहीं है तो अन्तःकरण रूपी अभाव रूप उपाधि कि जो कल्पना रूपी जीव है ये भी नहीं है क्योंकि जीव नाम अन्तःकरण की विच्छिन्न वृतिका नाम है कि जो चेतन के इसी प्रकार आभास पडने से कि जैसे सूर्य्य का प्रतिविम्ब जलमें पड़ने से जल में सूर्य्य प्रतीत होने लगता है और जल के हलने से सूर्य्य भी काम्पता हुआ दृश्य मान होता है इसी प्रकार अन्तःकरण चेतन का मिथ्या आभास है कि जो जीव रूप प्रतीत होता है इसलिये अन्तःकरण विशिष्ट जीव का जीवत्व स्वरूप जीव पना भी कुछ नहीं है क्योंकि जीव नाम एक मिथ्या वस्तु का है कि नहीं है केवल ब्रह्म चेतन ही चेतन कि जो विषय विषयीभाव से भी रहित है सर्वत्र एक रस भेद से रहित अद्वैत ही अद्वैत है और जो ऐसा है वही तू आप है ॥ ३१ ॥

सर्वत्र सर्वदा सर्वमात्मानं सनतनं ध्रुवम् ॥ सर्वं शून्यमशून्यं च तन्मा विद्धि न संशयः ॥ ३२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सर्वत्र - सब स्थानों में सर्वदा सर्व काल हर वक्त सर्वम् सर्वरूप पूर्ण भरा हुआ भरपूर अचल आत्मानम् जो आत्मा है वो ही सनतनम् निरन्तर सत्य स्वरूप है और ध्रुवम् - नित्य अचल अगम रूप है और सर्वम् सर्वत्र सब जगत में जो माया रूप प्रपंच है शून्यम् - ये माया रूप प्रपंच शून्य समान है कि कुछ नहीं है किंतु गुप्त भाव में ये माया रूप प्रपंच ही कि शून्य स्वरूप है एक ही गुप्त आकृति में एक अङ्क नाम १ - का पाटल रूप ९ प्रकृति स्वरूप है और फिर भी अशून्यम् ये सब जगत शून्य से रहित है कि कुछ नहीं क्योंकि जिस प्रकार शून्य एक की एक विन्दु रूप आकृति में आकृति वाला प्रतीत होता है इसी प्रकार अशून्य रूपी ज्ञान कि जो वास्तव में आकृति मान रूप में आकृति वाला प्रतीत होता है शून्य रूप आकृति वाला भी नहीं है अर्थात च चेतन स्वरूप आत्मा ही जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जोकि तत्[११] - नाम सत्य और सार स्वरूप है वह माम्[१२] मेरा ही एक आत्मा रूप है विद्धि[१३] - हे चित चेतन ब्रह्म तू ऐसा जान इसमें - न[१४] नहीं है संशयः[१५] शङ्का और संदेह अर्थात किसी प्रकार की कल्पना ।

आइय ।

हे चित ! चेतन ब्रह्म जो सर्व काल सर्वत्र सर्व रूप एक रस और नित्य है वह तू ही आत्म ब्रह्म है क्योंकि ये जितना भी दृश्य मान जगत प्रपंच रूप है सो स्वरूप से शून्य है अर्थात वास्तव से असद्रूप है और आत्मा अशून्य अर्थात शून्य से रहित है कारण ये है कि आत्मा शून्य का भी साक्षी है इसलिये हे चित वह जो सर्व साक्षी ब्रह्म आत्मा है वह चेतन ब्रह्म मैं ही हूं ऐसा तू जान क्योंकि इसमें कोई भी संदेह नहीं है किसी प्रकार की शंका और कल्पना नहीं है ॥ ३२ ॥

वेदाः[१] न[२] लोका[३] न[४] सुरा[५] न[६] यज्ञा[७] वर्णाश्रमौ[८] नैव[९] कुलं[१०] न[११] जातिः[१२] ।
न[१३] धूममार्गो[१४] न[१५] च[१६] दीप्तिमार्गो[१७] ब्रह्मैकरूपं[१८] परमार्थतत्त्वम्[१९] ॥ ३३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

वेदाः[१] - वास्तव से वेद भी न[२] नहीं है - लोकाः[३] - लोक नाम सृष्टि भी - न[४] नहीं है सुराः[५] नाम दैव देवता भी न[६] नहीं है यज्ञाः[७] नाम यज्ञः भी और वर्णाश्रमौ[८] वर्ण और आश्रम भी न[९] नहीं हैं और एव[१०] निश्चय करके कुलम्[११] कुल भी न[१२] नहीं है और जातिः[१३] जाति भी न[१४] नहीं है धूममार्गः[१५] धूम मार्ग भी न[१६] नहीं है च[१७] और हे चेतन दीप्तिमार्गः[१८] दीप्ति नाम अग्नि मार्ग भी नहीं है - ब्रह्मैकरूपम्[१९] ब्रह्म ही केवल एक रूप - परमार्थतत्त्वम्[२०] परमार्थ से तत्त्व वस्तु है और वह तू आप ही है ।

आइय ।

हे चित ! वास्तव से जैसे कि सुषुप्ति काल में बाहर का जितना कि प्रपंच है इसका अभाव हो जाता है और जाग्रत अवस्था में सब प्रपंच ज्यों का त्यों बना रहता है ! इसी प्रकार माया पुजारी माया रूपी प्रकृति में कि जो वास्तव में कर्म रूप है और चर्म नेत्र दृष्टि स्वरूप है इसमें संपूर्ण कर्म रूप प्रपंच कि जिसका नाम वेद शास्त्र और यज्ञादिक कर्म है ये सब बना रहता है । तथा माया रहित अनामय स्वरूप दिव्य दृष्टि में कि जो जीवन मुक्त विदेह स्वरूप है इसमें न तो वास्तव से वेद ही है न लोक है न देवता है न यज्ञादि का कोई कर्म है न वर्ण है न आश्रम है और न निश्चय करके कोई कुल ही है और न जाती है और न कोई बड़ा है अर्थात न राजा है और न ईश्वर है क्योंकि धूममार्ग राजवी और दीप्ति मार्ग ईश्वर्य मार्ग का नाम है ये भी नहीं है अर्थात उत्तरायण दक्षिणायन आदि कुछ भी नहीं है ! केवल एक ब्रह्म ही चेतन स्वरूप परम् अर्थ में तत्त्व वस्तु है और हे चित चेतन वो तू आप ही है ॥ ३३ ॥

व्याप्य[१] व्यापक[२] निर्मुक्तं[३] त्वमेकः[४] सफलो[५] यदि[६] ॥ प्रत्यक्षं[७] चापरोक्षं[८] च[९] ह्यात्मानं[१०] मन्यसे[११] कथम्[१२] ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

व्याप्य[१] - इच्छा से और व्यापकः[२] व्यापक भाव रूप माया सृष्टि से - निर्मुक्तम्[३] - स्वतन्त्र हूं मैं त्वमेकः[४] अपने आप मैं एक ही - स[५] - सत्य रूप - फलः[६] - फल स्वरूप - यदि[७] - जो कि - प्रत्यक्षम्[८] - प्रकाशमान है च[९] चेतन स्वरूप है - अपरोक्षम्[१०] प्रकट स्वरूप है च[११] और हि[१२] निश्चय करके आत्मानम्[१३] आत्मा है मन्यसे[१४] मन करके ये जो सर्व साकार माया सृष्टि है कथम्[१५] कैसे कहूं कि क्या है क्यों है और क्योंकर है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आश्य ।

हे चित! तू एक ही सत्य रूप निज स्वरूप इच्छा और द्वेष से स्वतन्त्र अपने आप एक ही है प्रकाशमान है चेतन है प्रकट है निश्चय करके आत्मा है ! फिर मन करके जो ये माया कृत साकार सृष्टि है कैसे कहूं कि क्या है और क्योंकार है क्योंकि ये व्यवहार आत्मा में जो एक ही है किसी प्रकार नहीं बनता है और न बन्ध मोक्ष का व्यवहार ही बनता है इस लिये हे चित तू जो बन्ध मोक्ष से रहित स्वतन्त्र है अपने आप एक ही चैतन्य आत्मा है और साकार संसार सृष्टि तेरे में नहीं है क्योंकि तू व्याप्य और व्यापक भाव से रहित है एक ही सद्रूप फल है ॥ ३४ ॥

अद्वैतम् केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ॥ समं तत्त्वं न विन्दन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥३५॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अद्वैतम्-अद्वैत की के किसलिये चित-हे चित तू इच्छन्ति-इच्छा करता है और द्वैतम् द्वैत की इच्छन्ति-इच्छा करता है च-चैतन्य आत्मा तो तू अपरे आप ही है अर्थात तेरे अन्य और कोई नहीं है समम्-पूर्ण स्वरूप तू है और तत्त्वम् तत्त्वस्वरूप सत्यरूप भी तू आप है न नहीं है-विन्दन्ति जानने वाला तू द्वैतः द्वैतका-अद्वैत हे केवल स्वरूप विवर्जितम्-द्वैत से रहित है तू ॥

## आश्य ।

हे चित! तू द्वैत और अद्वैत से रहित है केवल है क्योंकि तू चेतन आत्मा आप ही अपने आप है और तेरे से अन्य यथा तेरे से अतिरिक्त दूसरा कोई भी पदार्थ सत्य रूप नहीं है तब द्वैत और अद्वैत भी तेरे में नहीं है द्वैत और अद्वैत क्योंकि मन कृत माया सृष्टि के रूप हैं कि जो द्वेष और इच्छा के दो स्वरूप हैं सो इन्में जब एक को अद्वैत रूप की इच्छा होती है तो वह अद्वैत की ही इच्छा करता है किंतु उसको अद्वैत स्वरूप का पूरा पूरा विश्वास नहीं होता है और गुप्त भाव में द्वैत को बनाए ही रखता है इसी प्रकार जब द्वैत रूप को द्वैत की वासना होती है तो उसको अद्वैत से द्वेष उत्पन्न होता है और विषय भोगों को भोगने के कारण द्वैत के वास्तव तत्त्व को न जान कर किन्तु से द्वेष किया जाता है ये कोई अन्य पदार्थ नहीं है वह मिथ्या जगत और उसमें अपने माया रूपी माया रूप को सत्य ही सत्य का मानता है अर्थात यथार्थ रूप को न जान कर माया का माया ही बना रहता है इसलिये अतएव तत्त्व को द्वैत और अद्वैत दोनों ही माया के स्वरूप हैं और तू इन दोनों से रहित कैवल्य है ॥ ३६ ॥ नहीं जानते

श्वेतादिवर्णरहितं शब्दादिगुणवर्जितम् ॥ कथयन्ति कथं तत्त्वं मनोवाचामगोचरम् ॥३६॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

श्वेतादिवर्णरहितम्-श्वेतादि रंगों से रहित और-शब्दादिगुण वर्जितम् शब्दादि गुणों से भी रहित आत्मा है कथयन्ति-कहूं-कथम् कैसेकि तत्त्वम् तू आप ही मनोवाचाम मन और वाणी का मन और वाणी करके-अगोचरम्-निर्विकार स्वरूप है विकार रहित है आकार रहित है ॥

## आश्य ।

हे चित! जितने कि श्वेत पीत आदि वर्ण होते हैं और शब्दादिक गुण होते हैं वही मन और वाणी का विषय होता है अर्थात उसी को मन और वाणी कथन करते हैं। जो कि निर्गुण ब्रह्म है उसमें तो कोई भी गुण नहीं है और शब्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्पर्श रूप रस गन्ध ये गुण भी उसमें नहीं है इसलिये तू आप ही निर्विकार निर्गुण ब्रह्म है ॥ ३६ ॥

यदाऽनृतमिदं सर्वं देहादि गगनोपमम् ॥ तदा हि ब्रह्म संवेत्ति न ते द्वैत परम्परा ॥ ३७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

यदा - जबकि - जिसकालमें - अनृतम् - मिथ्या ही - इदम् इस दृश्यमान सर्वम् संपूर्ण प्रपंचमें देहादि शरीरादिक - गगनोपमम् भरपूर हैं तदा तौभी - हि - निश्चय करके ब्रह्म हे ब्रह्म आत्मा तू संवेत्ति - जो सम्यक एकरस सबका जानने वाला है न नहीं है ये - ते तेरेमें - द्वैत द्वैतरूपसे - परम्परा - अनादि -

आश्य ।

हे चित ! जबके ये दृश्यमान संपूर्ण प्रपंच रूपी जगत कि जो शरीरादिकों के स्वरूपमें आकाश की भांति भरपूर है ये सब शून्य ही शून्य है तौभी निश्चय करके हे ब्रह्म आत्मा तू जो सम्यक एकरस सबका जानने वाला है नहीं है ये प्रपंच तेरे में द्वैत द्वैत रूपसे अनादि अर्थात ये द्वैत रूप प्रपंच तेरे स्वरूपमें नहीं है ॥ ३७ ॥

परेण सहजात्मापि ह्यभिन्नः प्रतिभाति मे ॥ व्योमाकारं तथैवैकं ध्याता ध्यानं कथं भवेत ॥ ३८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

परेण - परब्रह्म इच्छा करके - सहः संसार रूपी सृष्टि से जो दृश्य मान होती है - आत्मा - हे आत्मा अपि तू आपही - हि निश्चय करके - भिन्नः रहित है और - प्रतिभाति - भान होता है कि - मे मेरा व्योम - निराकार स्वरूप - आकारम् - एकही आकार के समान व्यापक है - तथा - और फिर भी एव - निश्चय स्वरूप निश्चय करके एकम् - केवल एक ही है तब वह कि जो एक ही है ध्याता - ध्यान करनेवाला ध्यानम् - ध्यान स्वरूप वृत्ति रूप - कथम् कैसे - भवेत हो सकता है जबकि इच्छा रूप नहीं है

आश्य ।

हे चित ! ब्रह्म चेतन इच्छा रहित और अनादि है और इस प्रब्रह्म के साथ इच्छा अर्थात [illegible] माया [illegible] अर्थात आत्म स्वरूप में जो दृश्य मान प्रपंच सृष्टि रूप है हे आत्मा ये भी तेरे [illegible] आप से आप ही आप है और तू आप ही निश्चय करके इस मायासे अभिन्न अर्थात रहित है और ऐसा ही भान भी होता है कि मेरा ब्रह्म चेतन निराकार स्वरूप सर्वत्र एक ही आकार के समान अभेद चेतन है और चेतन रूपसे ही सर्वत्र व्यापक है और फिर भी निश्चय स्वरूप निश्चय करके केवल एक ही है तब हे एक ही चिदानंदघन चेतन स्वरूप ध्यान का करता ध्यान स्वरूप वृत्ति वाला तू कैसे हो सकता है जब कि तू इच्छा रहित है अर्थात तो इच्छा स्वरूप सहः नाम माया और माया का विषय ही नहीं है तब ऐसा ध्यान कि ये माया क्या है और मैं क्या हूं तेरे एक निश्चय स्वरूपमें बनता ही नहीं है कियोंकि तू किसी पदार्थसे विक्षेप नहीं है सर्वत्र तू ही तू है क्योंकि हे चित चेतन ब्रह्म सर्वसाक्षी चिदानंदघन तुम ॥ ३८ ॥

यत्करोमि यदश्नामि यज्जुहोमि ददामि यत् ॥ एतत्सर्वं न मे किञ्चिद्विशुद्धोऽहमजोऽव्ययः ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थः ।

यत् - चेतन वृत्ति रूपसे जो कुछ है अर्थात जो कुछ दृश्य मान प्रपंच है करोमि - ये सब प्रकाश ज्योति उभी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाम माया रूप में मेरा कर्म नाम कर्म ही कर्म स्वरूप है और यत्- ये जो कुछ प्रपंच आकृति रूप चेतन है अश्नामि ये सब मेरा ही भक्षण है अर्थात माया रूपी आहार है और यज्ञः ये यज्ञ रूप संसार जो कुछ कि है ऊँ हो आश्चर्यवत मि- माया रूपी मायावी मेरा स्वरूप है और दृढः महान है नित्य है और अमि अमृत रूप में अमर स्वरूप है और यत ये जो कुछ है ए एक ही तत् तत्व रूप में सत्य सर्वम् संपूर्ण जगत प्रपंच न- नहीं है मे मेरा इस में कोई किञ्चित- कुछ भी अंश क्योंकि विशुद्धः शुद्ध स्वरूप हूं और ऽहम मैं अजः जन्म से रहित हूं और अव्ययः नाश से रहित हूं ॥

## आशय ।

हे चित ! चेतन स्वरूप में जो कुछ दृश्य मान प्रपंच है ये सब प्रकाश ज्योति उमि नाम माया रूप में मेरा कर्म नाम कर्म स्वरूप है और ये जो कुछ प्रपंच आकृति आकृति चेतन है सब मेरा ही भक्षण है और यज्ञ रूप संसार जो कुछ है आश्चर्य वत माया रूपी मेरा स्वरूप है कि जो महान और नित्य है ये अमृत रूप में अमर स्वरूप है और वे जो कुछ है एक ही तत्व रूप में सत्य संपूर्ण जगत प्रपंच नहीं है मेरा इस में कोई भी अंश क्योंकि मैं शुद्ध चेतन हूं जन्म से रहित हूं और नाश से रहित हूं। अर्थात कर्ता और कर्म दोनों से रहित हूं कि इन से मेरा कोई संबंध नहीं ॥३९॥

सर्वं जगद्धि निराकृतीदं सर्वं जगद्धि विकारहीनम् ।
सर्वं जगद्धि विशुद्धदेहं सर्वं जगद्धि शिवैकरूपम् ॥ ४० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सर्वम्- संपूर्ण- जगत् प्रपंच ही को विद्धि हे चित ब्रह्म चेतन- निराकृति- कर्म रहित आकार से रहित इदम् इस दृश्यमान सर्वम् संपूर्ण- जगत् संसार को विद्धि ब्रह्म चेतन ही है चित विकार हीनम् विकार से रहित तू जान सर्वम् संपूर्ण- जगत माया प्रपंच को विद्धि- ब्रह्म चेतन ही चेतन विशुद्धदेहम् शुद्ध ब्रह्म चेतन का शरीर तू जान सर्वम् संपूर्ण जगत प्रपंच को- विद्धि हे ब्रह्म चेतन शिवैकरूपम् केवल्य कल्याण स्वरूप अपना ही शिव नाम एक ही एक स्वरूप तू जान ॥

## आशय ।

हे चित ! संपूर्ण जगत को तू निराकार ही जान कर्म रहित स्वयं स्वतन्त्र इस दृश्य मान संसार को ब्रह्म चेतन ही चेतन विकार से रहित तू जान क्योंकि कल्पित वस्तु साकार नहीं होती है और जबकि संपूर्ण जगत माया प्रपंच ब्रह्म चेतन ही चेतन शुद्ध ब्रह्म एक ही शरीर रूप है अर्थात संपूर्ण जगत प्रपंच ब्रह्म चैतन्य है और निश्चय ये जगत प्रपंच ब्रह्म चेतन में ही कल्पित है इसलिये आकार मान प्रतीत होने पर भी निराकार ही है और निराकार वस्तु विकार से रहित हुआ करती है इसलिये संपूर्ण जगत विकार से रहित है और शुद्ध ब्रह्म चेतन तेरा ही केवल शिव नाम एक स्वतन्त्र स्वरूप है ॥४०॥

तत्त्वं हि न संदेहः किं जानाम्यथ वा पुनः ॥ असंवेद्यं स्वसंवेद्यमात्मानं मन्यसे कथम् ॥४१॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

तत्- तत् रूप में सत्य स्वरूप त्वम् तू आप है- त्वम तेरा अपना आप है हि निश्चय करके निश्चय स्वरूप है न- नहीं है संदेहः इसमें कोई संदेह अर्थात शंका किम् क्योंकि जानामि जानती या है मैं मैं और जानता हूं मैं अथः आदि को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वा - और पुनः फिर अंत को तौ - असम् - छिन्न भिन्न वेद्यम् ज्ञान रखने वाले स्वरूप को अर्थात आत्मा को और स्वसम् - स्वयं एक रस चेतन के वेद्यम् ज्ञान रखने वाले स्वरूप को अर्थात आत्मानम् - आत्मा को मन्यसे - मन कृत माया रूप जो साकार सृष्टि है छिन्न भिन्न रूप है और स्वयं प्रकाश चेतन है असम् और स्वसम् कथम् कैसे कहूं

आश्य ।

हे चित तू आप ही निश्चय करके निश्चय ब्रह्म है इसमें किसी प्रकार का भी संदेहः नहीं है कियोंकि मैं आदि अंत का जानने वाला हूं और एक ही ब्रह्म ब्रह्मात्मा चेतन ब्रह्म हूं और असम् और स्वसम् के सब व्यवहारों से रहित हूं ॥ ४१ ॥

मायाऽमाया कथं तात छायाऽछाया न विद्यते ॥ तत्त्वमेकमिदं सर्वं व्योमाकारं निरञ्जनम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

माया - नाम आकृति रूप संसार और अमाया - निराकृति रूप ब्रह्म चेतन कथम् कैसे कहूं मैं तात हे प्रिय चित किये - छाया - माया रूप संसार छाया तुल्य है या - अछाया छाया रहित है और न नहीं है विद्यते विद्यमान क्योंकि - तत् नाम सत्य स्वरूप तो - त्वम् तू आप ही - एकम् एक ही है इदम् इस - सर्वम् संपूर्ण जगत में व व्यापक - ओम् आकाश रूप आकारम् ॐ कार आकाश के तुल्य स्वरूप वाला एक व्योमाकारः निरञ्जनम् - माया कार्य जो जगद्रूपी मल है उससे रहित स्वतन्त्र अनजनः ॥

आश्य ।

हे चित! चेतन निराकार ब्रह्म एक ही है तब फिर माया अमाया छाया अछाया ये सब व्यवहार चेतन ब्रह्म में नहीं होसकते क्योंकि ब्रह्म चेतन एक ही है और वह तू ही है। और ये जितना कि दृश्य मान जगत है सो सब आकाश के तुल्य आकार वाला है और वह सब ब्रह्म रूप है और वह ब्रह्म माया मल से रहित तू ही अनजनः है ॥ ४२ ॥

आदिमध्यान्तमुक्तोऽहं न बद्धोऽहं कदाचन ॥ स्वभावनिर्मलः शुद्ध इति मे निश्चिता मतिः ॥ ४३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आदिमध्यान्त - पहले बीच और पीछे अर्थात आदि मध्य और अंत से मुक्तः रहित - अहम् मैं हूं और न नहीं बद्धः बद्धः होता हूं अहम् मैं - कदाचन कभी भी - स्वभावनिर्मलः स्वभाव से ही निर्मल हूं शुद्धः शुद्ध हूं इति इस प्रकार कि मे मेरी निश्चिता निश्चित - मतिः बुद्धि है ॥

आश्य ।

हे चित! जो वस्तु कि अपनी उत्पति से पहले न हो किन्तु उत्पति से पीछे हो वह आदि वाली कही जाती है और जो उत्पति से पहले और नाश से उतर न हो वही मध्य वाली और अन्त वाली भी कही जाती है सो आत्मा ऐसा नहीं है अर्थात आदि मद्ध अन्त तीनों से रहित है क्योंकि आत्मा का न कोई आदि है न मध्य है न अन्त है। आत्मा ज्यों का त्यों एक रस है सो जो ऐसा आत्मा है वो ही मेरा स्वरूप है। इसलिये मैं कदापी बद्ध नहीं होता हूं और स्वभाव से ही निर्मल और शुद्ध हूं ऐसा मेरा निश्चित निश्चय स्वरूप है ॥ ४३ ॥

महदादि जगत्सर्वं न किञ्चित्प्रतिभाति मे ॥ ब्रह्मैव केवलं सर्वं कथं वर्णाश्रमस्थितिः ॥ ४४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महदादि - महत्त्व नाम महत्तत्त्व अहंकार को जो जगत् संसार रूपमें सर्वम् सर्वत्र संपूर्ण भर पूरहै न नही है किंचित् कुछ भी प्रतिभाति पूर्ण रूपसें भान होने वाली सत्य रूप वस्तु मे मेरको ब्रह्म ब्रह्मही एव निश्चय करके केवलम् केवल स्वरूपमें सर्वम् सर्व स्वरूप है कथम् कैसे कहूं मैं कि उस स्वरूपमें वर्णाश्रम वर्ण और आश्रम अर्थात जाति भेद रंग भेद और ऊंच नीच भेद की स्थितः जगह है अर्थात आत्मा वर्णाश्रम रूप है

## आशय।

हे चित! महत्तत्व आदि से लेकर जितने कि तत्व हैं और उन संपूर्ण तत्वों का कार्य रूप जितना कि ये जगत है सोये सब मेरे को किंचित भी प्रतीत नहीं होता है क्योंकि केवल द्वैत से रहित आनंद रूप ब्रह्म जो मेरा स्वरूप है मुझको सर्वत्र ज्योंका त्यों भान होता है। जबके ब्रह्म से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु मेरे को प्रतीत नहीं होती तो मेरे ब्रह्मस्वरूप में वर्ण आश्रम का भेद कैसे स्थित होसकता है अर्थात विभाग की प्राप्ति और प्रतीत हो ही नहीं सकती है ॥ ४४ ॥

जानामि सर्वथा सर्वम् अहमेको निरन्तरम् ॥ निरालम्बमशून्यं च शून्यं व्योमादि पञ्चकम् ॥ ४५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

जानामि - जानता हूं मैं - सर्वथा - सर्वप्रकार से - सर्वम् संपूर्ण जगत को अहम् मैं एकः एक ही हूं निरन्तरम् - निरन्तर हूं और निरालम्बम् निरालम्ब हूं - अशून्यम शून्यसे रहित हूं च और शून्यम् शून्य - व्योमादि पञ्चकम् - आकाशादि पांच हैं ॥

## आशय ।

हे चित! मैं सर्वथा संपूर्ण जगत और आकाशादि पांच भूतों को शून्य रूप जानता हूं और मैं अपने को शून्यता से रहित शून्य का साक्षी जानता हूं। और मैं एक ही हूं और निरन्तर हूं अर्थात एकरस हूं निरालम्ब हूं ॥ ४५ ॥

न षण्ढो न पुमान्न स्त्री न बोधो नैव कल्पना ॥ सानन्दो वा निरानन्दमात्मानं मन्यसे कथम् ॥ ४६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

न षण्ढः आत्मा न, नपुंसक है - न पुमान न पुरुष है न स्त्री न स्त्री है न बोधः न ज्ञान है न एव कल्पना नहीं निश्चय करके कल्पना है सानन्दः आनन्द वाला वा और निरानन्दम् आनन्द से रहित आत्मानम् आत्माको मन्यसे मन करके माया करके साकार करके कथम् कैसे कहूं मैं कि आत्मा ऐसा है तथा वैसा है

## आशय ।

हे चित! तू जानता है कि आत्मा नपुंसक नहीं है और पुरुष तथा स्त्री भी नहीं है और वृत्ति ज्ञान भी नहीं है क्योंकि वह ज्ञान स्वरूप है और कल्पना रूप भी नहीं है क्यों साक्षी स्वरूप है और कल्पना का भी साक्षी है इसलिये आत्मा [illegible] आनंद सहित भी नहीं है क्योंकि आनंद रूप है इसलिये आनन्द से रहित भी नहीं है इसलिये मन करके आत्मा कथन रूप नहीं है ॥ ४६ ॥

षडंगयोगान्न तु नैव शुद्धं मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम् ।
गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं स्वयं चैतन्यं स्वयमेव शुद्धम् ॥ ४७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

षडंगयोगात् - षडंगयोग से भी आत्मा न नहीं है तु तेरा हे चित और तू आपभी न एव नहीं है शुद्धम्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३०५

शुद्ध और मनोविनाशात्- मनके नाश होवेपर भी आत्मा नतु नहीं है न नहीं है एव निश्चय करके शुद्धम् शुद्ध और गुरूपदेशात- गुरुके उपदेश से भी आत्मा नतु नहीं है तु आप- न नहीं है शुद्धम- शुद्ध क्योंकि- स्वयम् प्रत्यक्ष प्रमाण में है आत्मा तू अपने आप ही- चैव चेतन स्वरूप आत्मा है और तत्त्वम् तू आपही आप सारवस्तु है और स्वयम् आप ही एव निश्चय करके शुद्धम् शुद्ध है।

## आशय।

हे चित! षट अंगोंके सहित योगाभ्यासके करने से भी आत्मा शुद्ध नहीं है और न शुद्ध होता है और नहीं मनके नाश करने या नाश होने पर आत्मा की शुद्धि होती है और न गुरुके उपदेश करके आत्मा की शुद्धी होती है क्योंकि आत्मा स्वतः शुद्ध है और जो वस्तु स्वरूप से ही शुद्ध है उसको अशुद्ध कहना भी अविद्या अज्ञान है कि जो संसार रूप है इसलिये हे चित चेतन आत्मा तू आप ही सार और शुद्ध आत्मा है॥ ४७॥

न हि पञ्चात्मको देहो विदेहो वर्तते न हि॥ आत्मैव केवलं सर्वं तुरीयं चत्रयं कथम्॥४८॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

न नहीं है आत्मा- हि- निश्चय करके- पञ्चात्मकः पांच भौतिक भूतोंसे भूत रूप- देहः देह रूप आकृति वाला कोई भूत और विदेहः- देहसे रहित भी वर्तते वर्तमान करके न नहीं है- हि आत्मा निश्चय रूप आत्मा- आत्मा ही एव निश्चय करके- केवलम् केवल है- सर्वम् सर्व रूप भी है तुरीयम् तुरीय भी है अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान में तीनोंसे रहित एक ही स्वरूप- च- चेतन ही चेतन फिर आत्मा को त्रयम्- तीन अवस्था वाला कथम् किस प्रकार से मैं कहसकता हूं अर्थात नहीं है॥

## आशय।

हे चित! आत्मा भूत रूप आकृति नहीं है देह नहीं है और देह से रहित भी नहीं है क्योंकि आत्मा चेतन है और संपूर्ण देहों में पूर्ण होकर स्थित है अर्थात सर्व रूप है और केवल सद्रूप है और आत्मा से भिन्न कोई भी वस्तु नहीं है इसलिये आत्मा तुरीय अर्थात तीन अवस्था वाला भी नहीं है क्योंकि चेतन आत्मा तुर्यातीत है॥ ४८॥

न बद्धो नैव मुक्तोऽहं न चाहं ब्रह्मणः पृथक्॥ न कर्ता न च भोक्ताहं व्याप्यव्यापकवर्जितः॥४९॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

न नहीं है बद्धः- बद्ध- न एव नहीं है निश्चय करके मुक्तः मुक्ति मोक्ष अहम् मैं आत्मा न नहीं हूं च चेतन रूप से अहम मैं ब्रह्मणः साम ब्रह्म से पृथक् अलग कोई ब्राह्मण आदि आकृति और न नहीं हूं- कर्ता- किसी काम का करने वाला और न नहीं हूं च चेतन स्वरूप से भोक्ता कर्तव्य का भोगवे वाला अहम मैं आत्मा- व्याप्यव्यापक उत्पन्न रूप इच्छा से भी वर्जितः रहित हूं॥

## आशय।

हे चित! मैं आत्मा बद्ध नहीं हूं और मुक्त भी नहीं हूं क्योंकि स्वयं प्रकाश द्वैत से रहित आत्मा में बन्ध और मोक्ष दोनों का व्यवहार नहीं है और पृथक करके ब्रह्म से भिन्न कोई ब्राह्मणादि भी नहीं है इसलिये न मैं कर्ता हूं और न मैं भोक्ता हूं क्योंकि एकोऽहं मसंगो ब्रह्म" श्रुति प्रमाण में ब्रह्म एक ही असंग स्वरूप हूं॥ ४९॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यथा जलं जले न्यस्तं सलिलं भेदवर्जितम्॥ प्रकृतिं पुरुषं नद्धमभिन्नं प्रतिभातिमे ॥ ५० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

यथा - जिस प्रकार - जलम् जलमें जले जल न्यस्तम् फेंक देने से मिलने से सलिलम अस्ली रूप जलरूप ही रहता है अर्थात् भेदवर्जितम भेद से रहित होजाता है प्रकृतिम् प्रकृति और पुरुषम् पुरुष भी नद्धम् वैसे ही अभिन्नम् भिन्न रूपमें अभिन्न प्रतिभाति प्रतीत होते हैं मे मेरे को मुझे ॥

## आशय ।

हे चित! जैसे जल में जल एक रूप होता है वैसे ही प्रकृति और पुरुष अभिन्न करके एक ही ब्रह्म चेतन रूप है और जैसे अग्नि और अग्नि की दाहशक्ति का एक ही अभेद स्वरूप है इसी प्रकार मेरी ब्रह्म चेतन शक्ति का मेरे ब्रह्म चेतन स्वरूप के साथ किसी प्रकार का भेद नहीं है सर्वत्र एक ही ब्रह्म अभेद रूप मेरा है॥५०॥

यदि नाम न मुक्तोऽसि न बद्धोऽसि कदाचन ॥ साकारं च निराकारमात्मानं मन्यसे कथम् ॥५१॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

यदि ये जो नाम कहा गया न नहीं है मुक्तः मुक्त आत्मा को असि है और न नहीं है बद्धः बद्ध भी असि है और कदाचन कभी नहीं आत्मानम् आत्मा को साकारम् साकार आकृतिस्वरूप क्योंकि च चेतन आत्मा निराकारम् निराकार ही है मन्यसे माया करके हे चित तू आत्मा को अपने आप कू साकार कथम् - कैसे कहता है।

## आशय ।

हे चित! ये बात प्रसिद्ध है कि आत्मा को मुक्त नहीं है और किसी प्रकार से कभी बद्ध भी नहीं है और साकार भी नहीं है फिर आत्मा निराकार को किस प्रकार साकार कहा जासकता है क्योंकि चेतन आत्मा निराकार भी नहीं है सो तेरे में मुक्त और बद्ध दोनों व्यवहार नहीं हैं और साकार निराकार का कथन भी नहीं है क्योंकि आत्मा तू तो आप ही चेतन है तू सब व्यवहारों से स्वतन्त्र है तेरे में बद्ध और मोक्ष दोनों का व्यवहार नहीं है ॥५१॥

जानामि ते परं रूपं प्रत्यक्षं गगनोपमम्॥ यथा परं हि रूपं यन्मरीचि जलसन्निभम ॥ ५२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

जानामि - जानता हूं मैं ते तेरे परम् महान रूपम् स्वरूप को प्रत्यक्षम् प्रत्यक्ष है और गगनोपमम् आकाश की उपमा वाला है। यथा जैसे कि - परम् जगत का हि निश्चय करके रूपम् - रूप और स्वरूप है यत ये मरीचि वायु और जल जल के सन्नि समान - भम् तू २७ तत्त्व का एक स्वरूप है

## आशय ।

हे चित! मैं तेरे महान स्वरूप को जानता हूं ये प्रत्यक्ष रूप में आकाश की तरह व्यापक है और नित्य है और ये जो कि जगत का निश्चय कर के रूप और स्वरूप है ये वायु और जल के समान २७- तत्त्व रूप है जैसे कि जल और वायु में २७ - २७ तत्त्व का एक रूप प्रकृत प्रतीत में पृथक पृथक करके जल और वायु कहा जाता है इसी प्रकार से हे चित तुम्हारा जो स्वरूप है जल और वायु के भांति कि जो २७-२७ तत्त्व का एक एक रूप होने पर भी मिथ्या है मिथ्या नहीं है क्योंकि वह एक ही स्वरूप है महान रूप है प्रत्यक्ष है और व्यापक चैतन्य ब्रह्म है॥ ५२ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

**नगुरुर्नोपदेशश्च न चोपाधिर्न मे क्रिया ॥ विदेहं गगनं विद्धि विशुद्धोऽहं स्वभावतः ॥ ५३ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**न** नहीं है **गुरुः** कोई गुरु और **न** नहीं है **उपदेशः** कोई उपदेश **च** और हे चेतन **न** नहीं है **च** चेतन स्वरूप आत्मा को **उपाधिः** किसी प्रकार की कोई उपाधि भी और **न** नहीं है **मे** मेरे आत्म स्वरूप में **क्रिया** कोई क्रिया भी क्योंकि **विदेहम्** देह से रहित हूं मैं और **गगनम्** आकाश वत आकाश स्वरूप हूं मैं **विद्धि** नाम ब्रह्मा ब्रह्म विष्णु और शिव भी **विशुद्धः** शुद्ध स्वरूप **अहम** मैं आप **स्वभावतः** स्वभाव से ही

## आशय ।

हे चित! नहीं है वास्तव से कोई गुरु मेरा और जब गुरु ही नहीं है तो नहीं है फिर कोई गुरु उपदेश भी मेरा क्योंकि हे चित चेतन स्वरूप में चेतन आत्मा उपाधि वाला नहीं है अर्थात चेतन में दृष्टि में भेद भाव नहीं है क्योंकि मेरा आत्म स्वरूप क्रिया रहित है देह से रहित है आकाश वत व्यापक है इसलिये मेरा नाम ब्रह्मा विष्णु और शिव ब्रह्म है और स्वभाव से ही शुद्ध शुद्ध स्वरूप है सो ऐसा जो चेतन ब्रह्म है वही मैं हूं ॥ ५३ ॥

**विशुद्धोऽसि शरीरोऽसि न ते चिन्तं परात्परम् ॥ अहं चात्मा परं तत्त्वमिति वक्तुं न लज्जसे ॥ ५४ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**विशुद्धः** विशेष करके शुद्ध **असि** तू आप है फिर तू **अशरीरः** शरीर से रहित **असि** है और **न** नहीं है **ते** तेरा कोई **चिन्तम्** हे चित चेतन कोई चित्र **परात्** नाम जो परा पराकृति माया है उस भी **परम्** महान सूक्ष्म से सूक्ष्म कोई रूप क्योंकि **अहम्** मैं आप ही हूं **च** चैतन्य **आत्मा** आत्मा ब्रह्म **परम्** महान अपार **तत्त्वम्** सत्य स्वरूप आप ही **इति** इसलिये ऐसा **वक्तुम्** कहने में **न** नहीं है **लज्जसे** कोई लज्जा ॥

## आशय ।

हे चित! विशेष करके तू शुद्ध है और शरीर से रहित है और नहीं है तेरा कोई चित्र क्योंकि हे चित तू शरीर से कोई संबंध नहीं रखता है तू प्रकृति से भी अति सूक्ष्म है इसलिये मैं जो आप ही चेतन हूं मेरा ऐसा कहना कि मैं आत्मा हूं और महान अपार स्वरूप आप ही हूं अद्वैत में नहीं हो सकता तथा ऐसे कहने में कोई लज्जा भी नहीं है ॥ ५४ ॥

**कथं रोदिषि रे चित्त ह्यात्मैवात्मा त्वमात्मना भव ॥ पिब वत्स कलातीतमद्वैतं परमामृतम् ॥ ५५ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**कथम्** क्यों तू **रोदिषि** रुदन करता है **रे** हे **चित** चित **हि** निश्चय करके **आत्मा** तू ही आत्मा है **एव** निश्चय करके **आत्मा** तू ही आत्मा रूप है और **आत्मना** हे आत्मा तू अपने आप ही **भव** नाम एकादश रुद्र का एक ही शिव रुद्र स्वरूप है **पिब** तू ये निश्चय कर कि **वत्स** नाम जो संसार का स्वरूप है ये सब **कलातीतम्** कला से रहित **अद्वैतम्** अद्वैत रूप में ही **परमामृतम्** परम अमृत रूप है ॥

## आशय ।

हे चित! तेरा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तू आत्मा है अनात्मा नहीं है तू ही निश्चय कर के आत्मा और आत्मा रूप है तू आप ही एकादश रुद्र का एक रुद्र स्वरूप है कि जिस अद्वैत स्वरूप में कला से रहित संसार निश्चय कर परम अमृत रूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है और भ्रम रूप है तू इस भ्रम को दूर करके अपने आत्मा द्वारा अपने स्वरूप में कल्याण स्वरूप अद्वैत परं अमृत रूप है ॥५५॥

**नैवबोधो न चाबोधो नबोधाबोधएव च ॥ यस्येदृशः सदाबोधः सबोधो नान्यथा भवेत ॥५६॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**न** नहीं है **एव** निश्चय करके **बोधः** ज्ञान आत्मज्ञान और **न** नहीं है **च** चेतन ब्रह्म में **अबोधः** अज्ञान अर्थात अनात्म ज्ञान भी और **न** नहीं है **बोधाबोध** ज्ञान अज्ञान उभय रूप भी अर्थात उत्पन्न रूप भी **एव** निश्चय करके **च** चेतन स्वरूप में और **यस्य** ऐसा जो यम रूप स्वरूप है और **इदृशः** एक ही देखने वाला और चर्म नेत्र दृष्टि में न आने वाला स्वरूप है वह **सदा** नित्य ही सर्वकाल ही **बोधः** ज्ञान स्वरूप है और **सः** सोही **बोधः** ज्ञान स्वरूप आत्मा है और **न** नहीं है **अन्यथा** उस स्वरूप से भिन्न कोई दूसरा आत्मा **भव** भव स्वरूप शिव रुद्र रूप **एतं** इस प्रकार का

## आशय ।

हे चित! आत्मा अन्तः करण की वृत्ति ज्ञान रूप नहीं है और अज्ञान रूप भी नहीं है और ज्ञान अज्ञान उभय रूप भी नहीं है आत्मा निश्चय करके केवल चेतन ज्ञान स्वरूप ही है नित्य है और भव स्वरूप है कि उसके अन्य और कुछ नहीं है और वह तू है ॥५६॥

**ज्ञानं न तर्को न समधियोगो न देशकालौ न गुरुपदेशः ॥**
**स्वभावसंवित्तिरहं च तत्त्वमाकाशकल्पं सहजं ध्रुवं च ॥ ५७ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**ज्ञानम्** ज्ञान जो कहने में आता है **मैं** **न** नहीं हूं और मैं **तर्कः** तर्क रूप भी कि जो कहने और सुनने में आता है नहीं हूं और **न** नहीं हूं मैं **समाधियोगः** समाधियोग रूप भी और **न** नहीं हूं मैं **देशकालौ** देश और काल रूप भी और **न** नहीं हूं मैं **गुरुपदेशः** गुरु का उपदेश रूप भी किया हूं मैं - **स्वभावसंवित्तिः** स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप हूं और **अहम्** मैं आप ही **च** चेतन ब्रह्म हूं और **तत्त्वम्** यथार्थ स्वरूप हूं और **आकाशकल्पम्** आकाश के सदृश व्यापक हूं और **सहजम** - स्वभाव से ही **ध्रुवम्** ध्रुव नाम अचल स्वरूप हूं और **च** चेतन ब्रह्म चेतन आत्मा हूं ॥

## आशय ।

हे चित! अनुभव रूप से जो ज्ञान है और जिसे ज्ञान कहा जाता है मैं नहीं हूं और कल्पना रूप तर्क भी मैं नहीं हूं और देश काल वस्तु और समाधि योग रूप और गुरुपदेश रूप भी मैं नहीं हूं मैं स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप यथार्थ रूप आकाश वत व्यापक स्वभाव से ही ब्रह्म चेतन और नित्य अचल ब्रह्म चेतन आत्मा हूं ॥ ५७ ॥

**न जातोऽहं मृतो वापि न मे कर्म शुभाशुभम् ॥ विशुद्धं निर्गुणं ब्रह्म बन्धो मुक्तिः कथं मम ॥ ५८ ॥**

## पदच्छेद शब्दार्थ

**न** नहीं **जातः** उत्पन्न हुआ हूं **अहम्** मैं और **मृतः** मरा भी नहीं हूं मैं **वै** और **अपि** प्रत्यक्ष रूप में भी **न** नहीं है **मे** मेरा **कर्म** कोई कर्म **शुभाशुभम्** शुभ तथा अशुभ **विशुद्धम्** शुद्ध स्वरूप हूं मैं और **निर्गुणम्** गुणों से रहित हूं और **ब्रह्म** हूं ब्रह्म ही **बन्धः** बन्ध और **मुक्तिः** मुक्ति रूप **कथम्** कैसे कहूं कि **मम** मेरा रूप है

## आशय ।

हे चित! मैं जन्म मरण बंध मोक्ष से रहित चेतन व्यापक ब्रह्म हूं सो बन्ध मोक्ष और शुभ अशुभ कर्म मेरे निर्गुण स्वरूप में नहीं हैं ॥ ५८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यदि सर्वगतो देवः स्थिरः पूर्णो निरन्तरः ॥ अन्तरं हि न पश्यामि स बाह्याभ्यन्तरः कथम् ॥५९॥

## पदच्छेदशब्दार्थ ।

यदि - जबकि - सर्वगतः सर्वत्र एकस्वरूपही देवः प्रकाशमान आत्मा है और स्थिरः स्थिरभी है और पूर्णः पूर्णभी है - और निरन्तरः एकरसभी है और फिर अन्तरम् शरीर के अन्दरभी हि निश्चयकरके न नहीं है और पश्यामि मैं देखता हूं सः सोही आत्मा - बाह्याभ्यन्तरः सर्वत्र अन्दर और बाहर है कथम् फिर क्या कहूं

## आशय ।

हे चित! जबकि प्रकाशमान आत्मा सर्वत्र है सर्वगत एकरस है कहींभी न्यूनअधिक नहीं है और स्थिरअर्थात आत्मा अचलभी है और किसी प्रकार चलायमान नहीं होता है पूर्ण है और केवल शरीर के भीतर ही नहीं है किंतु बाहर भीतर सर्वत्र है फिर क्या कहूं कि आत्मा क्या है क्योंकि मैं आत्मा को सर्वत्र एकरस देखता हूं ॥ ५९ ॥

स्फुरत्यैव जगत्कृत्स्नमरवण्डितनिरन्तरम् ॥ अहो मायामहामोहौ द्वैताद्वैतविकल्पना ॥६०॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

स्फुरति - विस्तार के साथ जो स्फुरण होता है अर्थात जो प्रकट स्वरूप है एव यही निश्चयकरके जगत् संसारक कृत्स्नम् सत्यसाकार संपूर्ण रूपहै कि जो अरवण्डितनिरन्तरम् - निरन्तरअरवण्ड रूपहै फिर अहो बड़ा ही आश्चर्यहै कि मायामहामोहौ - मायाका महामोहभी द्वैताद्वैत द्वैतऔर अद्वैत करके विकल्पना कल्पना करके विस्तार रूप कल्पना में प्रकट होता है अर्थात कल्पना रूप संसार भी सत्य प्रतीत होता है ॥

## आशय ।

हे चित! निराकार व्यापक चेतनमें संपूर्ण जगत अरवण्डित अर्थात प्रवाहरूप से निरन्तर ही स्फुरण होता है और माया तथा महामोहभी उसीमें स्फुरण होते हैं और द्वैतअद्वैत की कल्पनाभी उसीमें स्फुरण होती है कि जो चेतन आत्मा में कुछभी नहीं है अर्थात न माया है न मोह है और न जगत है यही आश्चर्य वत आत्मा का स्वरूप है ॥ ६० ॥

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा ॥ भेदाभेदविनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः ॥ ६१ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

साकारम् स्थूलरूप च चेतन आत्मा में और निराकारम् सूक्ष्मरूपभी जितनाकि है नेति - नहीं है ये सब नेति - नहीं है ये सब इति यह अन्त वाला सब पदार्थ सर्वदा सर्वकाल में क्योंकि भेदाभेद - भेद और अभेद से आत्मा विनिर्मुक्तः - स्वतन्त्र है और वर्तते स्वयं वर्तमान है केवलः शिवः केवल शिवरूप

## आशय ।

हे चित! स्थूल और सूक्ष्म जितना कि जगत है ये किसी कालभी चेतन आत्मा में नहीं है क्योंकि चेतन आत्मा भेदाभेद से रहित केवल वर्तमान रूप है और स्वयं स्वतन्त्र कल्याणस्वरूप है ॥ ६१ ॥

न ते च माता च पिता च बन्धुर्न ते च पत्नी न सुतश्च मित्रम् ॥
न पक्षपातो न विपक्षपातः कथं हि संतप्यसि यं हि चित्ते ॥६२॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न नहीं है ते तेरी च हे चित कोई माता माता च और नहीं है पिता पिता भी च और नहीं है कोई बन्धुः संबन्धी भी और न नहीं है ते तेरी च हे चेतन और कोई पत्नी स्त्री भी और न नहीं है सुतः पुत्र भी च और कोई मित्रम् मित्र भी और न नहीं है कोई पक्षपातः पक्षपाती भी और न नहीं है विपक्षपातः कोई विपक्षपाती शत्रु भी कथम् कैसे कहूं मैं कि हि निश्चय स्वरूप आत्मा में संतप्ति शोक संताप होता है और इयम् ये आत्मा हि निश्चय करके चिते चित रूप है या चित में निवास करती है।

## आश्य ।

हे चित! आत्मा चेतन स्वरूप का माता पिता संबन्धी पुत्र और स्त्री और मित्र पक्षपाती और विपक्षपाती कोई भी नहीं है और न निश्चय करके आत्मा में शोक संताप है और न आत्मा अन्तःकरण की वृति चित रूप ही है इसलिये ये जितने कि सांसारिक संबन्ध हैं सब मिथ्या माया रूप हैं इनसे हे चेतन आत्मा तुम्हारा कोई भी संबंध नहीं है॥६२॥

दिवानक्तम् न ते चित उदयास्त मयौ न हि॥ विदेहस्य शरीर त्वं कल्पयन्ति कथं बुधाः॥६३॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

दिवानक्तम् - दिन और रात्रि भी - न वास्तव से नहीं हैं ते हे चित चेतन तेरे में और चिते हे चित चेतन तेरे में उदयास्त उदय और अस्त भी - मयौ माया करके माया रूपी न नहीं हैं हि निश्चय करके फिर तू विदेहस्य देह से भी रहित है और शरीर शरीर भी त्वम् तेरा अपना नहीं है फिर तू कल्पयन्ति - कल्पना करने वाला कल्पना रूप जो माया का रूप है ये भी नहीं है तौ कथम् फिर कैसे तू बुधाः नाम बुद्ध ब्रह्मा ब्रह्म नहीं है

## आश्य ।

हे चित! तेरे चेतन स्वरूप में दिन और रात्रि नहीं हैं और उदय अस्त भाव भी जो माया करके माया रूप हैं तिसमें नहीं हैं क्योंकि चेतन आत्मा निश्चय करके सदैव एक रस ज्यों का त्यों ही रहता है और चेतन आत्मा वास्तव में देह से भी रहित है इसलिये आत्मा शरीर वाला भी नहीं है तब फिर ऐसी कल्पना करने वाला कल्पना रूप कि कि मैं शरीर वाला हूं और मैं नाम वाला हूं मैं फलानी जातिः और कुल का हूं ऐसी कल्पना सब माया का रूप है और तू माया का रूप नहीं है तो फिर तू कह कि तू कैसे बुधाः नाम बुद्ध आत्मा अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण में ब्रह्मा नाम ब्रह्म नहीं है क्योंकि तू स्वयं ब्रह्म चेतन है निश्चय करके ब्रह्म है क्यों तू आप ही॥ ६३ ॥

नाविभक्तं विभक्तं च न हि दुःखसुखादि च॥ न हि सर्वमसर्वं च विद्धि चात्मानमव्ययम्॥६४॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं है अविभक्तम् - विभाग से रहित और विभक्तम् विभाग स्वरूप वाला च चेतन आत्मा और न नहीं है हि निश्चय करके आत्मा दुःखसुखादि दुःख और सुख वाला क्योंकि आत्मा च चेतन स्वरूप है और न नहीं है हि निश्चय करके सर्वम् संपूर्ण रूप असर्वम् असर्व रूप क्योंकि - च चेतन आत्मा विद्धि - नाम स्वयं ब्रह्मा ब्रह्म है च - और ब्रह्म चेतन आत्मानम् जो आत्मा है वह अव्ययम् अविनाशी नाश से रहित है

## आश्य ।

हे चित! तू विभाग और अविभाग से रहित है क्योंकि तू जो चेतन आत्मा है निश्चय करके दुःख सुख वाला नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसलिये सर्व प्रकार की उपाधि मिथ्या ही है तू स्वयं प्रकाश ब्रह्म है कि जिस ब्रह्म में सर्व मिथ्या प्रपंचरूपता अल्पता भी नहीं बनते हैं क्योंकि आत्मा ब्रह्म चेतन नाश से रहित अविनाशी अव्यय है ॥ ६४ ॥

नाहं कर्ता न भोक्ता च न मे कर्म पुराऽधुना ॥ न मे देहो विदेहो वा निर्ममेति ममेति किम् ॥ ६५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं हूं अहम् मैं कर्ता कर्म कर्ता न और नहीं हूं भोक्ता मैं कर्म फल भोक्ता च और न नहीं है मे मेरा कोई कर्म कर्म भी पुराऽधुना - पुराना और नया अर्थात कभी पूर्व का किया हुआ या अब का किया हुआ कोई कर्म न नहीं है मे मेरा देहो - देहः देह भी क्योंकि विदेहः मैं शरीर से रहित हूं अर्थात माया रूप जो शरीर है मैं नहीं हूं वा और निर्ममेति मैं माया और ममता से भी रहित हूं तू फिर ममेति मैं माया रूपी ममता शरीर किम कैसे हूं ॥

## आशय ।

हे चित ! मैं न तो कर्मों का कर्ता हूं और न मैं उनके फलों का भोगता हूं और न मेरे पूर्वले जन्मों के ही कोई कर्म हैं और और न इसी जन्म के कोई कर्म हैं ! और जबकि पूर्वोतर जन्मों के मेरे कोई कर्म ही नहीं हैं तब माया रूपी शरीर जोकि माया कर के भान होता है मेरा नहीं है क्योंकि मैं विदेह हूं अर्थात देह रूप होने पर भी देह से रहित हूं क्योंकि संपूर्ण ये ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है इसलिये मैं जीवन मुक्त हूं और माया और ममता से भी रहित हूं अर्थात मायावी ममता रूपी जो शरीर है नहीं हूं क्योंकि मैं आत्मा नन्द कलङ्क बिन निष्कलङ्क अवतार हूं ॥ ६५ ॥

नमे रागादिको दोषो दुःखं देहादिकं न मे ॥ आत्मानं विद्धि मामेकं विशालं गगनोपमम् ॥ ६६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं है मे मेरे में रागादिकः इच्छा इत्यादिक के - दोषः दोष और दुःखम् दुःख रूप दुःख के कार्य और देहादिकम् देहादिक भी न नहीं हैं मे मेरे स्वरूप में क्योंकि - आत्मानम् - आत्मा स्वरूप में कि जो विद्धि नाम चेतन ब्रह्म है ये - माम् मेरा मुझको एकम् एकही विशालम् विशाल पूर्वक दिव्य स्वरूप विस्तार वाला गगनोपमम् - आकाश के तुल्य आकाश की उपमा वाला भान हो रहा है ॥

## आशय ।

हे चित ! राग और द्वेषादिक दोष भी मेरे में नहीं हैं और दुःख रूप देहादि के विष भी मेरे में नहीं हैं क्योंकि मैं एकही विशाल ब्रह्म चेतन आकाश की उपमा वाला हूं ॥ ६६ ॥

सखे मनः किं बहुजल्पितेन सखे मनः सर्वमिदं वितर्क्यम् ॥
यत्सारभूतं कथितं मयाते त्वमेव तत्त्वं गगनोपमोऽसि ॥ ६७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सखे - हे मित्र मनः मनुइन्द्र किम् क्या प्रयोजन है बहुजल्पितेन बहुत कहने और कथन करने से सखे हे मित्र मनः मन राजेन्द्र सर्वम् संपूर्ण इदम् ये जगत - वितर्क्यम - तर्क ही तर्क रूप में तर्क न करने के योग्य है अर्थात मौन ही मौन रूप में कुतर्क है कि नहीं है और यत् ये जोकि - सारभूतम् चेतन ब्रह्म है कथितम् प्रकट रूप है कथित किया हुआ स्वरूप है ये मया मेरा अपना और ते तेरा त्वम् तेरा अपना आप ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एव[16] - निश्चय करके तत्त्वम्[16] यथार्थ गगनोपमः आकाश के तुल्य ही असि शुद्धस्वरूप है ॥ 31

## आशय ।

हे मित्र मनुइन्द्र तुमसे बहुत कुछ कथन करने से क्या प्रयोजन है ! जितना कि ये दृश्यमान जगत है सो सब वितर्क्यम् है अर्थात शून्यस्वरूप है कि नहीं है ब्रह्म चेतन जो सार है आकाश के तुल्य निर्लेप और असंग भी है सो नहीं है ॥६७॥

येन[1] केनापि[2] भावेन यत्र[3] कुत्र[4] मृता[5] अपि[6] ॥ योगिनस्तत्र[7] लीयन्ते[8] घटाकाशमिवाम्बरे[9] ॥६८॥

## पदच्छेदः

येन ये सब कुछ - केन जो कुछ कि अपि निश्चय करके प्रकट प्रतीत रूप हैं भावेन भाव से ही यत्र यहाँ कुत्र वहाँ अर्थात जहाँ कहीं मृताः नाश को प्राप्त होते हैं अपि निश्चय करके आप ही योगिनः योगरूप से तत्र तेरे ही ब्रह्मस्वरूप में लीयन्ते लीन होजाते हैं जैसे कि घटाकाशम् घटाकाश रूप में जो घट का रूप होता है इव वह सब समान रूप से अम्बरे - महाकाश में ही लीन होजाता है ॥

## आशय ।

हे चित ! ये जो कुछ कि दृश्य मान जगत है ये नाश को प्राप्त होने पर आप से आप ही तेरे ब्रह्मस्वरूप में ही लीन होजाता है जैसे कि आकाश में छाई हुई घटा आकाश में ही लीन होजाती है तैसे तेरे में ही यह लीन रूप है ॥ ६८ ॥

तीर्थे[1] चान्त्यजगेहे[2] वा[3] नष्टस्मृतिरपि[4] त्यजन्[5] ॥ समकाले[6] तनुं[7] मुक्तः[8] कैवल्यव्यापको[9] भवेत[10][11][12] ॥६९॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

तीर्थे - तीर्थ नाम किसी किनारे घर में बाल बच्चों में हँसी खुशी से तथा घर से दूर कहीं मार्ग में रज तम सत तीन गुणों वाला शरीर माया रूप च चेतन से और या अन्त्यजगेहे किसी दूसरी जगह या चाण्डाल के घर में वा और नष्टस्मृतिः बेहोश हुआ भी अपि निश्चय करके त्यजन् अलग हो जुदा हो तो भी समकाले - एक आकाल रूप में ही तनुम् देह रूपी मायावी स्वरूप वाला शरीर मुक्तः मुक्त रूप से ही - कैवल्यव्यापकः कैवल्य व्यापक ब्रह्म रूप ही में भव नाम एकादृश रुद्र रूप होकर एत एक आत्मा है

## आशय ।

हे चित ! सचेतन और अचेत कोई माया स्वरूप किसी स्थान में चेतन से अतिरिक्त कोई भी शरीर रूप आकृति दूर नहीं है सब चेतन ही चेतन ही चेतन है मुक्त रूप है क्योंकि जो चेतन है वही व्यापक ब्रह्म चेतन है सो जो चेतन रूप भी अचेत होना प्रतीत होता है वह सब व्यापक ब्रह्म चेतन में ही मिलजाता है वह किसी लोकान्तर को तथा देहान्तर को प्राप्त नहीं होता है अर्थात (( न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति )) श्रुति प्रमाण उसके प्राण लोकान्तर में तथा देहान्तर में गमन नहीं करते स्वयोनौ अपने कारण में लीन होजाते हैं और ब्रह्म चेतन व्यापक रूप से व्यापक का व्यापक ही रहता है सो हे अकाल तन मुक्त स्वरूप केवल ब्रह्म चेतन रूप से तो तू आप ही व्यापक हुआ है और तुझे जन्म मरण नहीं होता है ॥ ६९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च[1] द्विपदादीदृशाचरम्[2] ॥ मन्यन्ते[3] योगिनः[4] सर्वं[5] मरीचिजलसन्निभम्[6] ॥७०॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

**धर्मार्थ काममोक्षान्**:- धर्म अर्थ काम और मोक्ष **च** चेतनस्वरूपमें **द्विपदादि चराचरम्** द्वैत रूपसे जितने कि प्रपंच रूपसे चर और अचर पदार्थ हैं और **मन्यन्ते** माने गये हैं **योगिनः** ये सब अनगिणत योग रूप - **सर्वम्** संपूर्ण माया के हैं कि जो सब रूप **मरीचि जलसन्निभम्** मृगतृष्णा के जल के सदृश मिथ्या ही हैं

## आशय ।

हे चित! धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों को और संसार में जितने के दो पाँव तथा चार पाँव वाले आकृति मान और वृक्षादिक जंगम स्थावर पदार्थ माया रूप हैं ये सब चेतन आत्मा में मिथ्या ही हैं ॥ ७० ॥

**अतीतानागतं कर्म वर्तमानं तथैव च ॥ न करोमि न भुञ्जामि इति मे निश्चला मतिः ॥ ७१ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**अतीतानागतम्** भूत और भविष्यत के कर्म और **कर्म** कर्म **वर्तमानम्** वर्तमान के **तथा** अर्थ रूपसे **एव** निश्चय करके **च** चेतन ब्रह्ममें **न** नहीं है - क्योंकि नहीं हूं - **करोमि** मैं कर्ता और **न** नहीं हूं **भुञ्जामि** कर्म फलों का भोक्ता भी मैं **इति** इसलिये **मे** मेरी **निश्चला** अचल **मतिः** बुद्धि है ॥

## आशय ।

हे चित ! भूत भविष्यत और वर्तमान ये तीन काल रूप माया के तीन प्रकार के कर्म हैं उन्में पूर्वले भूत और भविष्यत के भविष्यत और वर्तमान के वर्तमान कर्म कहे जाते हैं । सो इनका न तो मैं करता हूं और न इनके फल का भोक्ता हूं क्योंकि मैं अचल बुद्धि हूं कर्ता भोक्ता रूप माया का माया में ही रहता है ॥ ७१ ॥

**शून्यागारे समरसपूतः स्तिष्ठन्नेकः सुखमवधूतः ॥ चरति हि नग्नस्त्यक्त्वागर्वं विन्दति केवलमात्मनि सर्वम्**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**शून्यागारे** - शून्य मन्दिर में **समरसपूतः** समता रूपी रस करके पवित्र और **तिष्ठन्** स्थित **एकः** एकही अकेला **सुखम्** सुख रूप **अवधूतः** आत्मा - **चरति** - घूमता है और **हि** - निश्चय करके **नग्नः** नग्न है और **त्यक्त्वा** त्याग रूप में तेरा एकही स्वरूप है तू एक ही है **गर्वम्** अहंकार माया रूप में माया को **विन्दति** - जाननेवाला **केवलम्** केवल - **आत्मनि** आत्मा **सर्वम्** - सर्वत्र एक ही स्वरूप

## आशय ।

हे चित! आत्मा समदृष्टि से शून्य मन्दिर में पवित्र होकर स्थित है अर्थात निर्जन देश में ही रहता है और सर्व पदार्थों में अहंकार का त्याग करके ही विचरता है । अर्थात अपनी आत्मा में ही सर्व प्रपंच को कल्पित देखता है क्योंकि आत्मा केवल सर्वत्र एक ही स्वरूप है ॥ ७२ ॥

**त्रितयतुरीयं नहि नहि यत्र विन्दति केवलमात्मनि तत्र ॥**
**धर्माऽधर्मौ नहि नहि यत्र बद्धो मुक्तः कथमिह तत्र ॥ ७३ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**त्रितयतुरीयम्** - जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन और इन तीनों से रहित तुरीय जो चौथी अवस्था है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ये नहि नहि नहीं हैं निश्चय करके नहीं हैं निश्चय करके यत्र आत्मा में जो कि है इनसब अवस्थाओं का विन्दति ज्ञाता अर्थात जानेवाला - केवलम् केवलएक ही ब्रह्मानंद - आत्मनि आत्मा में ही तत्र अवस्थित और स्थित और धर्माऽधर्मौ - धर्म तथा अधर्म भी नहि नहि नहीं हैं निश्चय करके नहि हैं निश्चय करके यत्र उस आत्मा में फिर बद्धः - बद्ध होना और मुक्तः मुक्त होना कथम् कैसे होसकता है हि निश्चय करके तत्र निस आत्मा में ॥

## आश्य ।

हे चित ! आत्मा में जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय यह चारों अवस्था नहीं हैं आत्मा केवल ब्रह्मानंद मग्न स्वरूप है उसमें इसप्रकार से कि ये धर्म है ये अधर्म है ऐसा व्यवहार नहीं है और न आत्मा में बद्ध और मुक्त का ही कोई व्यवहार है आत्मा धर्म अधर्म बद्ध बन्ध मोक्ष से स्वतन्त्र और सर्व अवस्थाओं से स्वतन्त्र केवल और असंग ही है ॥ ८३ ॥

विन्दति विन्दति नहि नहि मन्त्रं च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तन्त्रं ॥
समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपितमेतत्परमवधूतः ॥ ८४ ॥

## पदच्छेदः शाब्दार्थ ।

विन्दति विन्दति आत्मा लभता है आत्मा लभता है नहि नहि कभी भी नहीं कभी भी नहीं मन्त्रम् मन्त्रको और न किसी छन्दः छन्द को क्योंकि लक्षणम् आत्मा किसी रूप लक्षण करके नहि नहि - नहीं है नहीं है किसी प्रकार की कोई तन्त्रम् तन्त्ररूप नामरूप वाली आकृति - समरसमग्नः आत्मा तो सबरसों में ही एकरस मग्नरूप है और भावितपूतः हे चित चित से भी शुद्ध है और आत्मा प्रलपितम् कैसा है एतत् एक ही यथार्थ सत्य स्वरूप है और परम् महान रूप में अवधूतः "एकोऽहं केवलः" केवल एक मेरा स्वरूप है

## आश्य ।

हे चित ! मैं एक ही केवल आत्मा हूं सब कुछ जानेवाला हूं मैं किसी मन्त्र छन्द और तन्त्र का शोधन करने वाला नहीं हूं और न मैं मन्त्र तन्त्र छन्द रूप ही कोई लक्षण करके हूं क्योंकि मैं सबरसों में एकरस शुद्ध और मग्नरूप ही से यथार्थ सत्य स्वरूप महान अवधूत रूप में निर्लेप और असंग ही हूं ॥ ८४ ॥

सर्वं शून्यमशून्यं च सत्याऽसत्यं न विद्यते ॥ स्वभावभावतः प्रोक्तं शास्त्रसंविन्निपूर्वकम् ॥ ८५ ॥

## पदच्छेदः शाब्दार्थ ।

सर्वशून्यम् संपूर्ण जगत शून्यरूप है और आत्मा अशून्यम् शून्य से रहित है और च चेतन है और सत्याऽसत्यम् सत्य असत्य से भी न नहीं है विद्यते विद्यमान ये जगत क्योंकि स्वभावभावतः स्वभाव से ही भावरूप में प्रोक्तम् आत्मा परोक्ष स्वरूप है और शास्त्रसंविति सिद्धान्त की समुन्नता के स्वरूप से अर्थात सर्व प्रकार के ज्ञानों और ध्यानों से पूर्वकम् - अपूर्व आत्मा अपूर्व और प्राक है

## आश्य ।

हे चित ! आत्मा ब्रह्म में संपूर्ण जगत शून्य की नाईं है और आत्मा शून्य से रहित है क्योंकि आत्मा शून्य का भी साक्षी है इसलिये चेतन आत्मा में सत्य और असत्य भी नहीं हैं क्योंकि आत्मा परोक्ष स्वरूप में सर्व प्रकार के ज्ञानों और ध्यानों से प्राक स्वरूप में अपार और अपूर्व ही है और इसी का नाम कर्म त्याग स्वतन्त्र प्रथम्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३१५

शिक्षा है कि जिससे अहम् अर्थात मैं शब्द की व्याख्या और ब्रह्म तत्व का स्वरूप और आत्म ज्ञान का निश्चय होता है तो अहम् नाम चेतन आत्मा का है कि जो अनंत रूप है कि उसका आदि और अंत नहीं है और जो ऐसा मेरा आत्मा है वही है चित अनंत रूप मैं तू आपही आप है कि नाश से रहित है और सदैव एक रूप से ही रहता है ॥ ७ ५ ॥

## २-कर्म त्याग स्वरूप द्वितीयो शिक्षा ॥

गुरु गुणावगुण स्वरूप का वर्णन निर्द्वन्द्व भाव का कथन ज्ञान भेद वर्णन स्थूल सूक्ष्म स्वरूप की परास्थिति ॥

बालस्य[1] वा[2] विषय[3]भोग[4]रतस्य[5] वापि[6] मूर्खस्य[7] सेवक[8] जनस्य[9] गृहस्थितस्य[10] ॥
एतद्गुरोः[11] किमपि[12] नैव[13] न[14] चिन्तनीयं[15] रत्नं[16] कथं[17] त्यजति[18] कोऽप्यशुचौ[19][20][21] प्रविष्टम्[22] ॥ १ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

बालस्य[1] बालक से वा[2] और विषयभोगरतस्य[3] - विषय भोग में प्रीती रखने वालों से वा[4] और अपि[5] निश्चय करके मूर्खस्य[6] - मूर्खों से और सेवक[8] जनस्य[9] - सेवक जन कों से गृहस्थितस्य[10] - घर में स्थित अर्थात रहने वालों से - एतत्[7] - इन इतने एक से एक ही प्रकार के गुरोः[11] गुरुओं से किम्[12] क्या अपि[13] निश्चय करके - नैव[14] नहीं होता है न[15] - नहीं होता है चिन्तनीयम्[16] चिन्तवन करने योग्य रत्नम्[17] शुद्ध ज्ञान आत्म ज्ञान - कथम्[18] कैसे त्यजति[19] - त्याग हो सकता है कः[20] किसी एक का भी अपि[21] निश्चय करके अशुचौ[22] - उन्हें अपवित्र जान करके उनका जब कि वह प्रविष्टम्[23] परा रूप में अपार रूप से स्थित है

### आशय ।

हे चेत! गुरु नाम आत्मा का है! इसलिये परा रूप में अर्थात आत्मा के अपार और अपूर्व स्वरूप में चाहे वह कैसा ही अपवित्र से अपवित्र पदार्थ क्यों नहो गुरु रूप ही है शिष्य कोई भी नहीं है इसी कारण से जो शुद्ध ज्ञान आत्म ज्ञान है वह बालक से विषयी से मूर्ख से सेवक से गृहस्थि से और इसी प्रकार सब प्रकार की अशुचौ वस्तु से आत्म ज्ञान की प्राप्ति है। क्योंकि उनमें से कोई भी निर्गुण नहीं होता है कोई न कोई गुण उन्में अवश्य होता है इसलिये उसी गुण का ग्रहण कर लेना और अवगुण का त्याग करना ही उचित है इसलिये जिस जिस से जिस जिस गुण की प्राप्ति हो ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

नैवात्र[1][2] काव्य[3]गुण[4] एव[5] तु[6] चिन्तनीयो[7] ग्राह्यः[8] पर[9] गुणवता[10] रवलु[11] सार[12] एव[13] ॥
सिन्दूर[14] चित्र[15] रहिता[16] भुवि[17] रूप[18] शून्या[19] पारं[20] नकिं[21] नयति[22] नौरिह[23] गन्तु[24]कामान्[25] ॥ २ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न[1] नहीं है एव[2] निश्चय कर अत्र[3] यहाँ कोई गुरु कः[4] किसी प्रकार अव्यय[5] अविनाशी गुणः[6] गुण से रहित अचल गुण वाला - एव[7] निश्चय कर तु[8] आप ही - चिन्तनीयः[9] चिन्ता रहित ग्राह्यः[10] ग्रहने वाला परम्[11] महान गुणवता[12] - गुणों वाला रवलु[13] निश्चय करके सारः[14] सारों में सार गुरु एव[15] निश्चय करके निश्चय स्वरूप है और सिन्दूरः[16] सिन्दूर रूपी चित्रः[17] संसार है इससे तू रहिता[18] रहित है भुवि[19] - ये जो पृथिवी तल है इसका भी रूप[20] स्वरूप शून्या[21] शून्य ही है पारम्[22] पार न[23] नहीं है किम्[24] क्या नयति[25] इस संसार सृष्टि रूप वनिता माया शक्ति का कि जो नौः[26] एक ही अंक रूप में ९ नौ का कहा गया है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और [२७]हि निश्चय करके **गान्तु** नाशमान उपाधि रूप है और **कामान्** कामरूप इच्छा स्वरूप इच्छा वाली है

## आशय ।

हे चित! निश्चय करके इस संसार में किसी प्रकार से कोई गुरु नहीं है कि जो अचल गुण वाला हो इसलिये हे चित निश्चय कर कि तू आप ही चिन्ता रहित सर्व प्रकार की चिन्ताओं का ग्रसने वाला महान गुणवता गुण निधान निश्चय करके ही गुरुओं में सार गुरु निश्चय स्वरूप सिन्दूरकी चित्रकारी से रहित अर्थात इस सृष्टि संसार से कि जो भूमि आकृति रूपमें शून्य स्वरूप है और फिर इसका कोई पार नहीं है कि यह संसार रूप माया शक्ति कि जो एक ही अङ्क रूपमें नौका ९ के अंक रूपमें अत्यन्त विस्तार वाली है और निश्चय करके नाशमान उपाधि रूप है और कामना रूप इच्छा स्वरूप इच्छा वाली है इसमें इसका सार भूत तू ही आत्मा गुरु है और तू ही इस विस्तार माया चित्र का इस से स्वतन्त्र इसका फैलाने वाला है॥ २ ॥

**प्रयत्नेन विनायेन निश्चलेन चलाचलम् ॥ ग्रस्तं स्वभावतः शान्तं चैतन्यं गगनोपमम्॥ ३॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

**प्रयत्नेन** किसी यत्न के **विना** - न होने से न करने से भी **येन** ये सब जो दृश्यमान रूप है **निश्चलेन** निश्चल करके माया रूपमें **चलाचलम्** सब चल और अचल चेतन है और **ग्रस्तम्** चेतन का ग्रसा है कि जो **स्वभावतः** स्वभाव से ही **शान्तम्** शान्त रूप है **चैतन्यम्** चैतन्य स्वरूप है **गगनोपमम्** आकाशवत है

## आशय ।

हे चित! विना किसी प्रयत्न के ये संपूर्ण दृश्यमान जगत चल और अचल रूप निश्चल करके चेतन आत्मा का ही ग्रसा हुआ अर्थात पकड़ा हुआ है और वह चेतन स्वभाव से ही शान्त है आकाश की तरह स्थिर और व्यापक है सो चेतन मैं ही हूं ॥ ३ ॥

**अयत्नाच्चालयद्यस्तु एकमेव चराचरम् ॥ सर्वगं तत्कथं भिन्नमद्वैतं वर्तते मम ॥ ४॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ

**अयत्नात्** विदून यत्न के ही **चालयत्** चलायमान है **यः** जो चेतन है **तु** पुनः फिर आप ही **एकम्** एक ही - **एव** निश्चय स्वरूप भी है और **चराचरम्** चर और अचर में **सर्वगम्** सर्वगत है **तत्** फिर सार है और फिर **कथम्** कैसा है कि **भिन्नम्** भिन्न भी है **अद्वैतम्** अद्वैत भी है और **वर्तते** वर्तमान भी है सो ऐसा वर्तमान स्वरूप है वह **मम** मेरा अपना आप ही है ॥

## आशय ।

हे चित! जो एक ही चेतन व्यापक ब्रह्म विना किसी प्रयत्न के है संपूर्ण चर अचर जगत को चलाने वाला है और जगत को चलायमान करता है वह सर्वगत भी है सो मेरे से भिन्न अद्वैत रूप होकर के कैसे वर्तता है किसी प्रकार नहीं वर्तता है क्योंकि जो सार है वह भिन्न रूप में अद्वैत रूप से ही वर्तमान स्वरूप है सो जो ऐसा स्वरूप है वह मेरा अपना आप ही है कि अद्वैत रूप से वर्तता है ॥ ४ ॥

**अहमेव परं यस्मात्सारासारतरं शिवम् ॥ गमागमविनिर्मुक्तं निर्विकल्पं निराकुलम् ॥ ५॥**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

316

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अहम् मैं ही - एव निश्चय करके - परम् महान सूक्ष्म हूं और यस्मात् जिस प्रकृति से कि जो माया का सारासार तरम् - मैं इसके सार असार से भी रहित हूं - शिवम् कल्याण स्वरूप हूं और गमागम विनिर्मुक्त गमना गमन से भी रहित हूं और निर्विकल्पम् - कल्पनाओं से भी रहित हूं निराकुलम् कुल से रहित

आशय ।

हे चित! मैं ही प्रकृति से सूक्ष्म हूं सार असार से रहित हूं कल्याण रूप हूं गमा गम से रहित हूं और कल्पना से रहित हूं अर्थात मेरे में द्वैत और अद्वैत का विकल्प भी नहीं है क्योंकि मैं कुल से भी रहित हूं अर्थात न मेरा कोई कुल है न जाति है मैं इन सबसे रहित हूं ॥ ५ ॥

सर्वावयवनिर्मुक्तं नह्हं त्रिदशार्चितम् ॥ संपूर्णत्वान्न गृह्णामि विभागं त्रिदशादिकम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

सर्वावयवनिर्मुक्तम - संपूर्ण अवयवों से रहित हूं और नन् यथार्थ अहम् मैं हूं त्रिदशाः तीन रूप में स्फुर देशकाल रहित चिन्तम् चेतन मैं हूं संपूर्ण समरस जगत रूप त्वात् आपही होने से न नहीं हूं गृह्णामि - मैं ग्रहण करता और विभागम् - विभाग रूप से - त्रिदशादिकम् - जन्म मरण कर्म वाला तीन दशा वाला

आशय ।

हे चित! मैं सच्चिदानंद निर्वयव अर्थात अवयव रहित हूं यथार्थ हूं देशकाल रहित चैतन्य हूं और संपूर्ण सम्यक जगत रूप होने से और सब में पूर्ण होने से समरस जगत रूप भी मैं आपही हूं इस लिये मैं न तो किसी रूप का ग्रहण करता हूं और न विभाग रूप से जन्म मरण कर्म वाला ही कोई भेद रूप हूं ॥ ६ ॥

प्रमादेन न सन्देहः किं करिष्यामि वृत्तिमान ॥ उत्पद्यन्ते विलीयन्ते बुद्बुदाश्च यथा जले ॥ 6 ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

प्रमादेन प्रमाद करके न नहीं है - सन्देहः किसी प्रकार का भय अर्थात संशय - किम् क्योंकि क्या करिष्यामि - मैं करता हूं - वृत्तिमान - अन्तः करण की वृतियों वाला बन कर और क्या उत्पद्यन्ते मैं उत्पन्न होता हूं विलीयन्ते मर करके जैसेकि बुद्बुदाः बुलबुला च चैतन्य हूं मैं यथा एसे ही जैसेकि जले जल निर्मल और शुद्ध स्वरूप होता है और उसमें बुद्बुदा प्रमाद युक्त जल रूप ही है

आशय ।

हे चित! प्रमाद करके मेरे को कुछ संदेह नहीं है! क्योंकि अन्तः करण की वृतियों को इस प्रकार कि जैसे प्रमाद करके जल में बुद्बुदा उत्पन्न होजाता है मैं उत्पन्न नहीं करता हूं और इस प्रकार मैं अन्तः करण की वृतियों वाला बन करके जन्म लेने वाला और मरने वाला नहीं बनता हूं क्योंकि मैं चेतन इसी प्रकार शुद्ध और निर्मल हूं कि जैसे जल मे बुद्बुदों के उत्पन्न होने से जल में किसी प्रकार का विकार नहीं होता है सो जैसेकि जल में आप से आप प्रमाद करके बुलबुले उत्पन्न होजाते हैं और फिर उसी में लय होजाते हैं। इसी प्रकार चेतन में अन्तः करण की वृतियां आप से आप उत्पन्न होती हैं और फिर चेतन में ही लीन होजाती हैं इसमें किसी प्रकार का भी संदेह नहीं है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

क्योंकि जिसप्रकार जल में बुद्बुदों के उत्पन्न होने से उनके उत्पन्न होने और नाश होने का जल को किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं होता इसी प्रकार मैं चेतन जो प्रमाद से रहित हूं और किसी कर्म का कर्ता नहीं हूं विनाश से रहित हूं और वृतिमान रूप में ये जगत जो चेतन में प्रमादयुक्त बुद्बुदों की भांति नाम आकृति वाला प्रतीत होता है इसके नाश होने और उत्पन्न होने से मैं संदेह मान नहीं होता हूं क्योंकि मैं इसका कर्ता नहीं हूं ये आप से आप ही उत्पन्न होता और आप से आप ही लीन होता रहता है और ये उत्पति और लीनता का कार्य आप से आप ही होता रहता है ॥ ७ ॥

महदादीनि भूतानि समाप्यैवं सदैव हि ॥ मृदुद्रव्येषु तीक्ष्णेषु गुडेषु कटुकेषु च ॥ ८ ॥
कटुत्वं चैव शैत्यत्वं मृदुत्वं च यथा जले ॥ प्रकृतिः पुरुषस्तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थः।

महदादीनि - महतत्त्व आदि भूतानी भूतों को समाप्य - समाप्त करता है एवम् इसीप्रकार सदैव नित्य ही सर्वकाल ही हि निश्चय करके जैसे कि मृदुद्रव्येषु - मरे हुए और मारे हुए और भिन्न भिन्न कर के नाना प्रकार की नाना रूप वाली आकृतियां होती हैं जैसे तीक्ष्णेषु - तीक्ष्ण और गुडेषु - गुड रूप कटुकेषु - कटु रूप च और कटुत्वम् - कटु रस च और एव ऐसे ही शैत्यत्वम् शीतल हेम रूप मृदुत्वम् कोमल च और यथा जैसे जले - जल - प्रकृतिः प्रकृति और पुरुषः पुरुष तद्वत तैसेही अभिन्नम् अभेद रूप करके प्रतिभाति - भान होता है जो है ये सब ही - मे मेरे को ॥

आशय।

हे चित! महतत्त्व आदि भूतों को सर्वकाल निश्चय करके इसी प्रकार समाप्त करता है कि जैसे मृदु अर्थात कोमल द्रव्यों में कोमलता उनमें से भिन्न करके भान नहीं होती अर्थात जैसे मिरचा आदिक तीक्ष्ण द्रव्यों में तीक्ष्णता और मधुर गुडादिक द्रव्यों में माधुर्यता और नामादिक कटु द्रव्यों में कटुता कडवापन उनसे भिन्न करके भान नहीं होती है इसीप्रकार जैसे जल में शीतता और कोमलता जलसे भिन्न करके प्रतीत नहीं होती है अर्थात अपने अपने द्रव्य के गुण अपने अपने द्रव्य में ही लीन होजाते हैं इसी प्रकार महतत्त्व से आदि लेकर स्थूल भूतों पर्यन्त इनको भी अपने कारणों में लय कर के बाकी जो संपूर्ण तत्त्वों का करणी भूत प्रकृति है उसका भी पुरुष के साथ अर्थात आत्मा के साथ किसी प्रकार से किसी प्रकार का भेद प्रतीत नहीं होता है क्योंकि प्रकृति चेतन की शक्ति है और जो जिसकी शक्ति होती है उसका शक्ति वाले से किसी प्रकार से भी भेद नहीं होता है जैसे अग्नि की शक्ति अग्नि से भिन्न होकर प्रतीत नहीं होती है किन्तु कार्य द्वारा अनुमान की जाती है इसी प्रकार चेतन की शक्ति भी चेतन से भिन्न नहीं है और भिन्न भान नहीं होती है अर्थात चेतन से उसका भेद नहीं है अभेद चेतन है ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वाख्याराहितं यद्वत्सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं परम् ॥ मनोबुद्धीन्द्रियातीतमकलङ्कं जगत्पतिम् ॥१०॥
ईदृशं सहजं यत्र अहं तत्र कथं भवेत् ॥ त्वमेव हि कथं तत्र कथं तत्र चराचरम् ॥११॥

पदच्छेदः शब्दार्थः।

सर्वाख्याराहितम् - आत्मा संपूर्ण संज्ञा से रहित है यद्वत् इसलिये सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरम् सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है और परम् महान उत्कृष्ट है और मनोबुद्धीन्द्रियातीतम् मन बुद्धि इन्द्रियों से रहित है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

318

**अकलंकम्**[6] - कलंकसे रहित निष्कलंक है **जगत्**[7] **पतिम्**[8] जगत का स्वामी है **ईदृशम्**[9] अदृष्ट है और **सहजम्**[10] - **स्वभावसे ही** - **यत्र**[11] ये आत्मा कि जिसमें सब कुछ भरा है **अहम्**[12] मैं हूं **तत्र**[13] तब फिर मैं आ **कथम्**[14] कैसे **भवेत**[15] हुआ हूं **त्वम्**[16] तू आप **एव**[17] निश्चय करके **हि**[18] - निश्चय करके कि तू **कथम्**[19] कैसे **तत्र**[20] यथार्थ करके **कथम्**[21] किस प्रकार से **तत्र**[22] यथार्थ करके आत्मा है कि तू आप **चराचरम्**[23] - जो चर और अचर रूप संसार रूप में देखने प्रतीत होता है यह सब तेरा अपना ही आत्मास्वरूप है ॥

## आशय ।

हे चित! ब्रह्म चेतन ब्रह्म संपूर्ण नामादिक संज्ञासे रहित सब से सूक्ष्म और श्रेष्ठ है और मन बुद्धि इन्द्रियों से भी रहित है उपाधि से रहित है संपूर्ण जगत का स्वामी है इसप्रकार से जिसका स्वभाव से ही ऐसा स्वरूप है वही आत्मा मैं और तू और ये जो कि चराचर जगत है एक ही अभेद रूप है कि जिसमें मैं तू और ये वो कुछ भी नहीं है कि तू अदृष्ट चेतन और निष्कलंक है कि सब कुछ तू आप ही है तेरे अदृष्ट स्वरूप में सब कुछ भरा है कि जो चराचर में दृष्टि गोचर हो रहा है॥ १० ॥ ११ ॥

**गगनोपमं तु यत्प्रोक्तं तदेव गगनोपमम्॥ चैतन्यं दोषहीनम् च सर्वज्ञम पूर्णं स्वच ॥१२॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**गगनोपमम्**[1] - आकाश की उपमा वाला **तु**[2] आप **यत्**[3] चैतन्य है जो कि **प्रोक्तम्**[4] परोक्ष में अपरोक्ष स्वरूप है **तत्**[5] यथार्थ करके **एव**[6] निश्चय रूप है और **गगनोपमम्**[7] गगनवत आकाश रूप है और फिर तू **चैतन्यम्**[8] आप ही चेतन है - **दोषहीनम्**[9] दोषरहित निर्दोष है **च**[10] चेतन स्वरूप में **सर्वज्ञम्**[11] सर्वज्ञ है **पूर्णम्**[12] पूर्ण स्वरूप है और **एव**[13] निश्चय करके **च**[14] चैतन्य ही चैतन्य है ॥

## आशय ।

हे चित! तू आप चेतन रूप में आकाश वत आकाश की उपमा वाला है परोक्ष में अपरोक्ष जो आकाश का स्वरूप है यथार्थ करके निश्चय करके ये गगन स्वरूप तू आप ही चेतन दोषरहित निर्दोष सर्वज्ञ चेतन और पूर्ण निश्चय करके चैतन्य ही चेतन है कि जो तू ही है ॥ १२ ॥

**पृथिव्यां चरितं नैव मारुतेन च वाहितम॥ वारिणा पिहितं नैव तेजोमध्ये व्यवस्थितम्॥१३॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**पृथिव्याम्**[1] - पृथिवी में तू चेतन **चरितम्**[2] गमन **न**[3] **एव**[4] निश्चय करके नहीं करता और **मारुतेन**[5] वायु जो है वह भी **च**[6] चेतन रूप आत्मा को **वाहितम्**[7] वाहन नहीं बनाता और **वारिणा**[8] - जल में भी **पिहितम्**[9] आच्छादित **नैव**[10] निश्चय करके नहीं होता **तेजोमध्ये**[11] - अग्नि बीच में रहकर भी **व्यवस्थितम्**[12] - स्थित है कि जिसको तेज जला भी नहीं सकता है ॥

## आशय ।

हे चित! चेतन आत्मा पृथिवी में चिलता नहीं वायु उसको ले नहीं सकता पानी उसको ढाँक नहीं सकता और वह आत्मा तेज के बीच में रहकर भी जल नहीं सकता सो ऐसा जो चेतन आत्मा है वही सब चेतन स्थित स्वरूप में सब रूप है ॥ १३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकाशं तेन संव्याप्तं न तद्व्याप्तं च केनचित् ॥ सबाह्याभ्यन्तरं तिष्ठत्यवच्छिन्नं निरन्तरम् ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आकाशम्- आकाश जो है सो तेन तेरे ही करके संव्याप्तम् समरस करके एक ही रूप से व्यापक है- न नहीं है तत् यथार्थ करके व्याप्तम् व्यापक च चेतन केन किसी और करके चित् हे चित- सः सो व्यापक चेतन बाह्याभ्यान्तरम् सबके बाहर और भीतर तिष्ठति स्थित है अवच्छिन्नम् विच्छिन्नता से रहित निरन्तरम् एकरस करके ॥

## आशय ।

हे चित! आकाश जो है सो तेरे ही चेतन स्वरूप करके अच्छे प्रकार से व्यापक है और तू चेतन यथार्थ करके आप ही अपने ही चेतन स्वरूप कर के व्यापक है किसी और करके व्यापक नहीं है तू ही सर्व व्यापक बाहर और भीतर करके सर्वत्र व्यवधान अर्थात विच्छिन्नता से रहित है सदा स्थित है आकाश का कोई अन्त नहीं उसकी कोई सीमा नहीं कि कहाँ से कहाँ तक है और इसका कोई अनुमान भी नहीं हो सकता सो ऐसा जो आकाश तेरे चेतन स्वरूप से व्यापक है वह सर्वत्र तेरा ही आत्म स्वरूप आत्मा है ॥ १४ ॥

विषविश्वस्य रौद्रस्य मोहमूर्च्छाप्रदस्य च ॥ एकमेव विनाशाय ह्यमोघं सहजामृतम् ॥ १५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

विषविश्वस्य- विष रूपी विषय विश्वमें संसार में रौद्रस्य बड़े भ्यानक हैं अर्थात संसार जिसका नाम विश्व है भयङ्कर विषय रूप है- मोहमूर्च्छाप्रदस्य मोह और मूर्च्छा का देनेवाला है च और चेतन स्वरूपमें एकम् एक ही एव निश्चय करके विनाशाय नाशमान नाश होनेवाला ये विश्व का रूप है तत् हि निश्चय करके अमोघम् चेतन आत्मा अमोघ स्वरूपमें सहजामृतम् स्वभाव से ही अमृत रूप है कि ये विश्व उस स्वरूपमें नहीं है ॥

## आशय ।

हे चित! ये संसार जगत रूपमें एक बड़ा भारी भ्यङ्कर रूप विष है कि जो भ्यानक रूपमें मोह और मूर्च्छा का देनेवाला है और ये चेतन स्वरूपमें निश्चय करके नाशमान है कि नहीं है क्योंकि चेतन आत्मा निश्चय करके स्वभाव से ही अमोघ और अमृत रूप है कि विनाश से रहित है क्योंकि चेतन आत्मा अमृत रूप में आत्मज्ञान स्वरूप है ॥ १५ ॥

सूक्ष्मत्वात्तदृदृश्यत्वान्निर्गुणत्वाच्च योगिभिः ॥ आलम्बनादियत्प्रोक्तं क्रमादालम्बनं भवेत् ॥ १६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सूक्ष्मत्वात्- सूक्ष्म तू आप ही है और तत् यथार्थ भी है और अदृश्यत्वात् तू आप ही दृश्यमें अदृश्य है और निर्गुणत्वात तू आप ही निर्गुण अर्थात गुणोंसे रहित भी है- च और चेतन रूपसे योगिभिः योग से भी तू रहित है आलम्बनादि आलम्बन रहित अनादि है और यत् चेतन स्वरूप में प्रोक्तम् जो कहने मात्र ही परोक्ष में अपरोक्ष स्वरूप है क्रमात् क्रमसे स्वतन्त्र- आलम्बनम् ध्यानसे रहित भवेत होता है ॥

## आशय ।

हे चित! तू आप ही सूक्ष्म और यथार्थ भी है और आप ही दृश्य में अदृश्य है निर्गुण है सब प्रकार के ध्यानों से रहित है अनादि चेतन है इसलिये अनादि चेतन में जो परोक्ष रूप है इसमें अपरोक्ष भावना कहने मात्र ही है क्योंकि चेतन आत्मा तो चेतन स्वरूप में कर्म से स्वतन्त्र ध्यान से रहित ही होता है सो तू ही स्वतन्त्र चेतन है ॥ १६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सनताऽभ्यासयुक्तस्तु निरालम्बो यदा भवेत ॥ तल्लयाल्लीयते नान्तर्गुणदोषविवर्जितः ॥१६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**सनताभ्यासयुक्तः** - यथार्थ करके जो सत्य स्वरूप है वह **तु** तेरा ही **निरालम्बः** निर्ध्यान स्वरूप है **यदा** जोकि **भवेत** हुआ है होरहा है होना है **तल्लयात्** निलिम्प रूप आश्चर्य स्वरूप एक ही **लीयते** लोटन जैसा एक अनुरवा विचित्र रूप मूल भुल्याँ जैसा अधिष्ठान आनंददायक निर्विघ्न निराकार सत्य स्वरूपकि न नहीं है **अन्तः** अंत जिसका और जो **गुणदोषविवर्जितः** रहित है गुण और दोष के भावों से ॥

## आशय ।

हे चित! यथार्थ करके जो सत्य स्वरूप है वह तेरा ही निर्ध्यान रूप है जोकि निलिम्प वत आश्चय स्वरूप निर्विघ्न रूप है गुण और दोषों से रहित अनंत स्वरूप है निरन्तर ब्रह्म है ॥ १६ ॥

**भावगम्यं निराकारं साकारं दृष्टिगोचरम् ॥ भावाभावविनिर्मुक्तमन्तरालं तदुच्यते ॥१७॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ

**भावगम्यं** - जो भाव से अर्थात आप ही अपने आप से जाना जाता है जानने में आता है और जो कि **निराकारम्** आकार रहित चेतन है सो **साकारम्** साकार रूप में तू - **दृष्टिगोचरम्** - आप ही अपनी दृष्टि में दृष्टि गोचर हो रहा है अर्थात आप ही अपने आपको देख रहा है और **भावा भाव विनिर्मुक्तम्** भाव और अभाव से भी मुक्त अर्थात स्वतन्त्र है अर्थात निरन्तर होने पर भी - **अन्तरालम्** निराला निराला करके नाना रूप वाला बन के पृथक पृथक रूप में एक ही विभुक्ता नाना कर्ता भोक्ता रूप वाला विशिष्ट चेतन - **तत्** यर्थात को ही **उच्यते** कहा जाता है

## आशय ।

हे चित! जोकि निराकार व्यापक चेतन है वही साकार रूप में आप ही अपने कर के जानने में आता है क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है तथा जो साकार रूप में दृष्टि गोचर होता है ये सब चेतन का साकार रूप है कि जो दृष्टि का विषय है और इन्द्रिय नेत्र से देखा जाता है किंतु आत्मा भाव और अभाव से स्वतन्त्र है सो ऐसा जो यथार्थ असंग आत्मा का स्वरूप है वही अन्तरालम् है अर्थात साकार रूप में अन्तरालम् को ही नाना कर्ता भोक्ता कहा जाता है क्योंकि साकार (संसार) नाना रूप में पृथक पृथक कर के ही भासता है कि जो न तो कर्ता है न भोक्ता है स्वतः विशिष्ट चेतन है और यथार्थ कर के स्वतन्त्र ही है ॥ १७ ॥

**बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ॥ अन्तरादन्तरं ज्ञेयं नारिकेलफलाम्बुवत ॥१९॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**बाह्यभावम्** बाहर को जितना कि भाव पदार्थ है **भवेत** होता है **विश्वम्** जगत **अन्तः** बाह्य भाव के भीतर अर्थात यह सब नाशमान है और ये ही **प्रकृतिः** माया **उच्यते** - कहा जाता है और **अन्तरात्** भीतर अर्थात अन्तर अर्थात माया से भी **अन्तरम्** स्वतन्त्र माया के भीतर माया रूप जो पदार्थ है वह **ज्ञेयम्** ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का एक ही ब्रह्म स्वरूप है **नारिकेलफलाम्बुवत्** - जैसे कि नार्यल के फल में उसके अन्दर जल भरा हुआ होता है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आश्य ।

हे चित! ये बाहर का जितना प्रपंच दृश्य मान होता है यह सबस्थूल भाव पदार्थ विश्व कहलाता है और इसके भीतर इसका कारण जो है उसका नाम प्रकृति है और उस सूक्ष्म प्रकृति के भीतर और प्रकृति से भी सूक्ष्म जो है वही व्यापक चेतन ब्रह्म है जैसे कि नारियल के फल पर उसका ऊपर का बड़ा कड़ा बकला फिर उसके भीतर सूक्ष्म गिरी और गिरी के भीतर सूक्ष्म जल होता है इसी प्रकार जो ज्ञेयम् ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय ब्रह्म है वह तू आपही है ॥ १९ ॥

भ्रान्ति[1] ज्ञानं स्थितं[2] बाह्य[3] सम्यग्[4] ज्ञानं[5] च मध्यगम[6] ॥ मध्यान्[7] मध्यतरं[8] ज्ञेयं[9] नारिकेल[10] फलाम्बुवत ॥ २० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

भ्रान्ति[1] ज्ञानम् - भिन्न भिन्नता का ज्ञान स्थितम् स्थित है बाह्य[3] बाहर के पदार्थों में सम्यग्[4] ज्ञानम् - यथार्थ ज्ञान च[5] चेतन के मध्यगम[6] अन्तर ही है - मध्यात्[7] मध्य से भी मध्यतरम्[8] अति मध्य जो है वह ही ज्ञेयम्[9] चेतन ब्रह्म में ऐसे ही हूं कि जैसे नारिकेल[10] फलाम्बत् नारियल में गिरी और गिरी में पानी ॥

## आश्य ।

हे चित! भिन्न भिन्नता का[1] ज्ञान अज्ञान रूप में माया रूप से बाहर के पदार्थों में स्थित है इसी का नाम माया है और इसके अन्तर अर्थात मध्य में स्थित का जो ज्ञान है सो समीचीन ज्ञान है अर्थात जैसे नारियल के फल के भीतर जल रहता है इसी प्रकार यथार्थ ब्रह्म चेतन ज्ञान ब्रह्म में स्वतन्त्र रूप से ही रहता हूं ॥ २० ॥

अनेन[1] एव[2] प्रकारेण[3] बुद्धि[4] भेदो[5] न[6] सर्वगः[7] ॥ दाता[8] च[9] धीरतां[10] एति[11] गीयते[12] नाम[13] कोटिभिः[14] ॥ २२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

अनेन[1] इसी पूर्वोक्त रीति से एव[2] निश्चय करके प्रकारेण[3] इस प्रकार से प्राक स्वरूप में बुद्धि[4] भेदः ज्ञान का भेद न[5] नहीं है सर्वगः[6] सर्वगत में दाता[7] देने वाला च[8] चेतन ब्रह्म को क्योंकि धीरताम्[9] चेतन आत्मा धीरता को एति[10] प्राप्त रहता है एक ही स्वरूप से और गीयते[11] हंस रूप है नाम कोटिभिः[12] अनंत नामों

## आश्य।

हे चित! सर्वगत चेतन आत्मा में किसी प्रकार से भी भेद की कल्पना नहीं बन सकती है क्योंकि प्राक स्वरूप में ब्रह्म चेतन में ज्ञान का भेद नहीं है और सर्वगत में ब्रह्म चेतन को अभेद ज्ञान का देने वाला तथा दान करने वाला कोई नहीं है क्योंकि ब्रह्म चेतन धीरता को प्राप्त रहता है एक ही स्वरूप से और हंस रूप ही है अनंत नामों करके ॥ २२ ॥

गुरु[1] प्रज्ञा[2] प्रसादेन[3] मूर्खो[4] वा[5] यदि[6] पण्डितः ॥ यस्तु[7] सम्बुध्यते[8] तत्त्वं[9] विरक्तो[10] भव[11] सागरात्[12] ॥ २३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

गुरु प्रज्ञा प्रसादेन[3] - आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रसन्नता करके प्रसन्न रूप है मूर्खः[4] मूर्ख वा[5] और यदि[6] जो पंडितः पण्डित है यः[7] ऐसा कोई भेद नु[8] जो तेरा अपना सम्बुध्यते[9] सब कुछ जानलिया हुआ जाना हुआ आत्मा रूप है वह तत्त्वम्[10] यथार्थ करके तेरा अपना आपही विरक्तः[11] स्वतन्त्र स्वरूप है कि जो भव[12] एक सागरात्[13] समुद्र रूप है

## आश्य ।

हे चित! आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रसन्नता करके प्रसन्न रूप है आत्मा में मूर्ख और पण्डित का कोई भेद नहीं है क्योंकि जो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सबकुछ जानने वाला तेरा अपना यथार्थ करके आत्मा रूप है वह ही स्वतन्त्र एक ही भवसागर स्वरूप है अर्थात वो ही संसार रूपीसमुद्र से विरक्त जन्म मरण से स्वतन्त्र यथार्थ आत्मा है और वह तू आप ही है ॥ २३ ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तः सर्वभूतहिते रतः ॥ दृढबोधश्चधीरश्चसगच्छेत्परमं पदम् ॥२४॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

रागद्वेष विनिर्मुक्तः - आत्मा राग और द्वेष से स्वतन्त्र है और सर्व भूत हिते रतः संपूर्ण भूतों से हित का रखने वाला भी है और दृढबोधः निश्चय करके निश्चय बोध स्वरूप है च चैतन्य है और धीरः धीर्ये रूप है च और चेतन रूप से ही सः साकार सृष्टि संसार को गच्छेत पकड़े हुए भी परमं महान पदं पुष्प रूप है

आशय ।

हे चित! आत्मा राग द्वेष से रहित संपूर्ण भूतों का हित रूप निश्चय स्वरूप चेतन है निश्चय बोध रूप है धीर रूप है और चेतन रूप से ही आत्मा ने साकार सृष्टि संसार को पकड़ा हुआ भी है और फिर भी वह चेतन आत्मा महान पुष्प रूप है अर्थात महान सूक्ष्म रूप में परम्पद स्वरूप है और वही तू आप है दूसरा नहीं है ॥ २४ ॥

घटेभिन्ने घटाकाशो आकाशे लीयतेयथा ॥ देहाभावे तथायोगी स्वरूपे परमात्मनि ॥२५॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

घटे भिन्ने - जैसे घटा के फटने पर घटाकाशो आकाश में छाई हुई घटा आकाशे आकाश में ही लीयते लीन होजाती है यथा ऐसे ही इसी प्रकार से देहाभावे - देह का प्रतीत रूप भी अर्थात साकार शरीर भी जो है तथा अर्थात योगी वायु के २७ तत्त्व का एक मिश्रित - स्वरूपे साकार स्वरूप है परमात्मनि मेरा ही एक आत्मा रूप है

आशय ।

हे चित! जब तक आकाश में घटा बनी रहती है तब ही तक घटा और आकाश का भेद भी प्रतीत होता है किंतु जब घटा रूप उपाधि का आप ही फट कर नाश होजाता है तब घटा और आकाश का अभेद हो जाता है तैसे ही ये देह रूपी नाना शरीर लिङ्ग शरीर जो पृथक पृथक करके नाना रूप में भास होता है इसी का योगी नाम है और ये वायु के २७ तत्त्व का एक मिश्रित रूप है इसके नाश होने पर ये जो कुछ है मेरा ही आत्मा स्वरूप है किये सबजो साकार रूप में दृष्टि होता है उपाधि रूप है कि कुछ नहीं है केवल मेरा ही एक अभेद परम् आत्मा रूप है ॥ २५ ॥

उक्तंयंकर्मयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपिसा गतिः ॥ नंचोक्तायोगयुक्तानां मतिर्यान्तेऽपिसा गतिः ॥२६॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

उक्त ज्ञान स्वरूप में परोक्ष रूप - अयम् मैं आप ही हूं कर्मयुक्तानाम् कर्मयुक्त रूप में मेरा नाम मतिः बुद्धि है या और अन्ते दूसरे स्वरूप में अपि निश्चय करके सा प्रकाश रूप में जो गतिः प्रकाश मार्ग स्वरूप है मैं हूं न नहीं हूं च चेतन रूप में उक्त माया का स्वरूप जोकि है अयोगयुक्ता नाम् माया रूप में माया का मतिः बुद्धि रूप से या और अन्ते दूसरा अपि निश्चय करके सा गतिः नाश मार्ग रूप

आशय ।

हे चित! ज्ञान स्वरूप में परोक्ष रूप में आत्मा मैं आप ही हूं और कर्मयुक्त रूप में मेरा ही नाम बुद्धि है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दूसरे स्वरूप में निश्चय करके प्रकाश रूपमें जो प्रकाश मात्र स्वरूप है मैं हूं और मैं चेतन नहीं हूं अपरोक्ष माया का स्वरूप जो कि माया रूप में माया का बुद्धि रूप से और दूसरा निश्चय करके साकार नाशमान गतिः रूप है ये देहादिक रूप क्योंकि एक ही स्वरूप में नहीं होते हैं संस्कार और नहीं होते हैं कर्म और आवागमन इत्यादि मिथ्या गपोड़े॥ २६ ॥

या गतिः कर्मयुक्तानां सा च वागिन्द्रियाद्भवेत॥ योगिनामथा गतिः क्वापि ह्यकथ्या भवतार्जिता॥२६॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

या ऐसी गतिः चाल कर्मयुक्तानाम् बुद्धिकी- सा शरीर में च चेतन से वागिन्द्रियात् बाणी और इन्द्रियों करके भवेत- प्रकट होती है योगिनाम् जो वायुके २८ तत्त्व का एक मिश्रित रूप शरीर का है या गतिः ये ऐसी चाल है कि क्वापि कभी भी कहने में हि निश्चय करके अकथ्या कथन करने में कहने में नहीं आती है हे भवता- चित चेतन तू आप ही अपार रूप ये सब- अर्जिता अजीत रूप आदि स्वरूप सर्व संग्रह एक रूप

## आशय ।

हे चित! बुद्धि की ऐसी चाल कि जो शरीर रूप में चेतन शक्ति रूप से बाणी और इन्द्रियों करके प्रकट होती है और शरीर आकृति वायु के २८ तत्त्व का एक मिश्रित स्वरूप है ये एक ऐसी गतिः है कि निश्चय करके कभी भी ये कथन करने और कहने में नहीं आती है क्योंकि हे चित ये तेरी ही अपार रूप में सर्व संग्रह सर्व रूप अजीत शक्ति है॥२८॥

एवं ज्ञात्वा त्वमुं मार्गं योगिनां नैव कल्पितम्॥ विकल्पवर्जनं तेषां स्वयं सिद्धिः प्रवर्तते॥२८॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

एवम् ऐसा ज्ञात्वा जानने वाला होकर के त्वम् तू आप उम् सर्व शक्ति रूप में मार्गम् मारगों का जो योगिनाम् एक शरीर रूप आकृति है वह न नहीं है एव निश्चय करके कल्पितम् कल्पना रूप वह स्वरूप विकल्पवर्जनम् कल्पना से रहित है तेषाम् उसी प्रकार जैसे कि स्वयम् आप से आप ही प्रकाश रूप करके सिद्धिः सिद्धि रूपमें सत्य स्वरूप प्रवर्तते प्रवर्त हो रहा है अर्थात व्यापक में प्रकाश मान है

## आशय ।

हे चित! इस प्रकार ऐसा जानने वाला होकरके जबकि तू आप ही सर्व शक्ति रूपमें जो सर्व शक्तियों का एक ही मार्ग रूप और एक ही शरीर रूप है तब तू नहीं है निश्चय करके कल्पना रूप अर्थात रहित है कल्पना से उसी प्रकार जैसे कि आप से आप ही प्रकाश रूप करके सत्य स्वरूप रूप से तू प्रवर्त हो रहा है अर्थात व्यापक रूप में प्रकाश-मान हो रहा है अर्थात स्वतन्त्र रूपमें आप से आप ही सिद्धि प्रवर्त रूप हो रहा है और नहीं रहता है आवश्यकता किसी सिद्धि की कि तू स्वयं सर्व सिद्धि रूप है और सर्व शक्ति रूप में ॐकार स्वरूप तू है॥ २८॥

तीर्थे वान्त्यजगेहे वा यत्र कुत्र मृतोऽपि वा॥ न योगी पश्यते गर्भम् परे ब्रह्मणि लीयते॥२९॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

तीर्थे त्रिकाल अकाल अवस्था में वा और अन्त्यजगेहे दूसरे स्थानों में वा और यत्र यहाँ कुत्र कहाँ कहीं भी मृतः मर्त्य रूप को अपि निश्चय करके वा और न नहीं योगी तत्त्व रूप से पश्यते देखा जाता गर्भम् गर्भ रूपी अहंकारी माया को तब परे अपूर्व उत्कृष्ट अपार ब्रह्मणि ब्रह्म को लीयते पाया जाता है॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आशय ।

हे चित! भूत भविष्यत वर्तमान काल का नाम अकाल तीर्थ है कि जो तीनों काल में रूप से और दूसरे भी सर्व प्रकार के प्रपंच रूप स्थान और मृतः रूप माया से रहित और स्वतन्त्र है क्योंकि अकाल रूप में तीर्थ नाम आत्मा का है सो निश्चय करके माया को देखने हुए यथार्थ रूप से इस रूप को नहीं देखा जाता है ये स्वतः जो माया से परे अपार और अपूर्व ब्रह्म स्वरूप है ये कब पाया जाता है जब कि जल में थल में अन्तरिक्ष में सब वस्तु में अपने आपको ही देखना और अपने आप को ही सब में पाना इसप्रकार देखना ब्रह्म स्वरूप में अपने अकाल ब्रह्म स्वरूप का ही देखना और अपने स्वरूप ब्रह्म में अपने ही को पाना है ॥ २९ ॥

सहजम जंम चिन्तयं यस्तु पश्येत्स्वरूपं घटति यदियथेषं लिप्यते नैव दोषैः ॥
सकृदपि तदभावात्कर्म किंचिन्नकुर्यात्तदपि न च विबद्धः संयमी वा तपस्वी ॥ ३० ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सहजम् स्वाभाविक ही अजंम् जन्म से रहित अचिन्तम् चिन्ता रहित मन वाणी के विषयों से रहित यः जो आत्मा है तु आप है पश्येत देख इस अपने स्वरूपम् स्वरूप को घटति कैसी घटना वाला गम्भीरता का यदि जो स्वरूप है यथेषम् यथार्थ और शुद्ध कि- लिप्यते लिप्त होता है और न नहीं एव निश्चय करके दोषैः किसी दोष को ही प्राप्त होता है सकृत एक बार भी- अपि निश्चय करके तत् यथार्थ ही है भावात् दोषों से और कर्म कर्म से किम् क्योंकि- चित् हे चित न नहीं है तू कुर्यात कर्म का कर्ता करने वाला- तत् यथार्थ ही तू अपि निश्चय करके और न नहीं होता है च हे चेतन विबद्धः बद्ध और संयमी नही है संयम वाला संग्रह कर्ता वा और तपस्वी नहीं है तू तपस्या करने वाला पपस्वी भी

## आशय ।

हे चित! तू चेतन ब्रह्म स्वाभाविक ही जन्म से रहित चिन्ता से रहित विषयों से रहित जो आत्मा है आप है तू देख अपने इस स्वरूप को कि घटना वाला गम्भीरता का कैसा यथार्थ और शुद्ध स्वरूप है कि निश्चय करके किसी पदार्थ की घटना में लिप्त नहीं होता है और न दोष करके किसी दोष को कभी प्राप्त होता है क्योंकि निश्चय करके आत्मा यथार्थ ही है सर्व प्रकार के दोषों और कर्मों से क्योंकि हे चित आत्मा नहीं है तू कर्म का कर्ता किसी कर्म का करने वाला कारण कि यथार्थ है तू निश्चय करके और नहीं होता है किसी प्रकार से कभी बद्ध और नहीं होता है किसी समय भी संयमी अर्थात किसी वस्तु का संग्रह करने वाला और नहीं है तू तपस्वी किसी तपस्या का करने वाला क्योंकि संग्रह उस वस्तु की कीजाती है कि जो प्राप्त न हो और तपस्या उस की की जाती है कि जो अपने से अन्य और भिन्न हो और तेरे अन्य और तेरे से भिन्न कोई वस्तु नहीं है इसलिये तू संयमी और पपस्वी भी नहीं है इसलिये तू स्वभाव से ही स्वतन्त्र है और किसी प्रकार से बंधाय मान नहीं होता है ॥ ३० ॥

निरामयं निष्प्रतिमं निराकृतिं निराश्रयं निर्वपुषं निराशिषम् ॥
निर्द्वन्द्वनिर्मोहमलुप्तशक्तिकं नमी शमात्मानमुपैनि शाश्वतम् ॥ ३१ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निराम्[1]यम् रोग से रहित मैं हूं निष्प्र[2]तिमम् प्रतिमा से रहित मेरा स्वरूप है निरा[3]कृतिम् आकृति से रहित हूं निरा[4]श्रयम् निराश्रय हूं निर्व[5]पुषम् शरीर से रहित हूं निरा[6]शिषम् इच्छा से रहित हूं निर्द्वन्द्व[7]निर्मोहम् राग द्वेष और मोह से रहित हूं अलुप्त[8] गुप्त[9] शक्ति[10]कम् शक्ति स्वरूप हूं तमीशम् यथार्थ करके जगत का स्वामी हूं आत्मा[11]नम् आप ही आत्मा हूं उपै[12]ति आप ही ॐ कार प्राप्त स्वरूप हूं शाश्व[13]तम् नित्य हूं और शुद्ध स्वतन्त्र हूं

## आशय ।

हे चित! मैं रोग से रहित प्रतिमा नाम मूर्ति से रहित आकृति नाम सूरत से रहित आश्रय से रहित शरीर से रहित इच्छा से रहित राग द्वेष और मोह से रहित गुप्त शक्ति स्वरूप हूं और यथार्थ करके जगत का स्वामी हूं आप ही आत्मा हूं और आप ही मैं ॐ कार प्राप्त स्वरूप हूं और नित्य शुद्ध और स्वतन्त्र हूं कि गप्त शक्ति होने पर भी शक्ति लुप्त नहीं हूं ॥ ३१ ॥

वेदो[1] न[2] दीक्षा[3] न[4] च[5] मुण्ड[6]नक्रिया[7] गुरु[8]र्न[9] शिष्यो[10] न[11] च[12] यन्त्र[13]संपदः[14] ॥
मुद्रा[15]दिकं[16] चापि[17] न[18] यत्र[19] भासते[20] तमीशमात्मानमुपैति[21] शाश्वतम्[22] ॥ ३२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

वेदः वेद न नहीं है और दीक्षा - नाम जो शिक्षा है ये भी नहीं है और न नहीं है च चेतन में मुण्डनक्रिय - मुण्डन-क्रिया भी और गुरुः न शिष्यः गुरु और शिष्य भाव भी नहीं है और न नहीं है च चेतन स्वरूप में यंत्र संपदाः किसी प्रकार का चित्र और संपदा रूपी धन सन्तान आदिक संपदा और मुद्रादिकम् - मुद्रादिक जैसा रूप भी अर्थात नशानीद सुस्ती और बेहोशी भी नहीं है च अपि और चेतन आत्मा निश्चय करके न यंत्र भासते नहीं है किसी चित्र द्वारा प्रकाशमान भी क्योंकि त[20] म[21] ईशम[22] तू और मैं यथार्थ करके इस सबका जो कि जगत रूप है स्वामी है और आत्मा[23]नम् आत्मा स्वरूप से उपैति[24] निश्चय करके ॐ कार रूप शाश्व[25]तम् नित्य हूं

## आशय ।

हे चित! आत्मा में न तो कोई वेद है और न कोई शिक्षा है और न किसी प्रकार की कोई क्रिया है और न उसमें गुरु और शिष्य का कोई भेद भाव भाव है और न किसी प्रकार के चित्र में चेतन आत्मा चित्र रूप है और न किसी चित्र रूप से धन सन्तान आदिक संपदा वाला है और न मुद्रादिक जैसे रूप में नशा वाला बेहोशी निद्रा और सुस्ती वाला है और न निश्चय करके आत्मा किसी यन्त्र और चित्र मन्त्र वाला बनकर प्रकाशमान ही है क्योंकि हे चित तू अर्थात मैं आप ही यथार्थ करके इस सब का जो कि जगत रूप में भासमान स्वरूप है स्वामी हूं और आप ही आत्मा हूं और निश्चय करके ॐ कार रूप में नित्य अकार रहित हूं ॥ ३२ ॥

न[1] शांभ[2]वं[3] शाक्ति[4]कमानवं[5] न[6] वा[7] पिण्डं[8] च[9] रूपं[10] च[11] पदादिकं[12] न[13] वा[14] ॥
आरम्भ[15]निष्पत्ति[16] घटादिकं[17] च[18] नो[19] तमीशमात्मानमुपैति[20] शाश्वतम्[21] ॥ ३३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न शाम्भवम् मैं आत्मा न तो शांभव हूं अर्थात है और न शाक्तिकमानवं मनु माया शक्ति रूप हूं अर्थात न कि नहीं है वा और पिण्डम् पिण्ड रूप च और रूपम् कोई स्वरूप च और पदादिकम् नाम रूप जाति वर्ण इत्यादिक वाला भी न नहीं हूं वा और आरम्भनिष्पत्ति घटादिकम् उत्पत्ति घटादिक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आरम्भमी च चेतनमें नः नहीं है क्योंकि तमीशम् चेतनईश्वर आत्मानम् - आत्मा उपैति ॐकार प्राप्तरूप शाश्वतम् - नित्य मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! मैं आत्मा न तो शांम्भव हूं और न शक्तिक मानव हूं अर्थात हूं और नहीं हूं इस व्यवहार से भी रहित हूं मैं न पिण्ड हूं न रूप हूं न नाम हूं न जाति हूं न राजा हूं न प्रजा हूं न बड़ा हूं न छोटा हूं और न घटादिकों का उत्पति आरम्भ ही हूं क्योंकि इन्में से कोई भी मैं नहीं हूं कारण कि मैं आत्मा चेतन्य ईश्वर ॐ कार प्राप्तरूप नित्य शुद्ध अविनाशी आकार रहित ही हूं कोई शरीर वाला आकार नहीं हूं ॥ ३३ ॥

यस्य स्वरूपात्सं चराचरं जगदुत्पद्यते तिष्ठति लीयतेऽपिवा ॥
पयोविकारादिव फेनबुद्बुदास्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

यस्य - जिस आत्मा के स्वरूपात् स्वरूपसे सं साकार चराचरम् चर और अचर जगत् संसार उत्पद्यते उत्पन्न होता है और तिष्ठति जिसमें स्थित होता है और लीयते फिर उसी में लय भी हो जाता है अपि निश्चय करके वा वह. पयोविकारात - जल के विकार से - इव इसी प्रकार जैसेकि जलमें फेन - बुद्बुदाः झाग और बुलबुले उत्पन्न होजाते हैं तम् तिसी प्रकार ईशम् ये सब जगत् आत्मानम् आत्मा में उपैति उत्पन्न होता है और आत्मा शाश्वतम् नित्य शुद्ध स्वरूप ही है वही मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! जिस आत्मा के स्वरूप से साकार चर और अचर जगत संसार उत्पन्न होता है और फिर उसी में लय भी होजाता है निश्चय करके वह जगत इसी प्रकार उत्पन्न होता है कि जैसे जल के विकार से अर्थात आप से आप आप ही एक ही जल की आपुस में दो धारों के टकराने से नाना प्रकार के फेन और बुद्बुदे उत्पन्न होजाते हैं और फिर उसी में मिल भी जाते हैं इसी प्रकार आत्मा की एक ही चेतन आत्मा की निर्विकार धारों से चेतनस्वरूप से संपूर्ण चर अचर अर्थात स्थावर जंगम रूप जगत उत्पन्न होता है और फिर तिसी में स्थित होकर फिर तिसी में लय भाव को प्राप्त भी हो जाता है क्योंकि आत्मा नित्य शुद्ध मुक्त शुद्ध स्वरूप ही है और जो ऐसा स्वरूप है वही आत्मा मैं हूं ॥ ३४ ॥

नासानिरोधो नैचे दृष्टिरासनं बोधोऽप्यबोधोऽपि न यत्र भास्तते ॥
नाडीप्रचारोऽपि न यत्र किंचित्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नासानिरोधः नासा निरोध अर्थात शब्द आदि बाहर के विषयों को दूर कर दोनों भौंहों के बीच में दृष्टि देना सिका के भीतर चलने वाले प्राण तथा अपान वायु को समान कर के इन्द्रिय मन और बुद्धि को अपने बश कर इच्छा भय क्रोध को छोड़ शरीर साधना करना अर्थात पवित्र स्थान में पहिले कुशा उस के ऊपर मृगादि कों का चर्म और फिर उसके ऊपर वस्त्र बिछा के स्थिर अर्थात निश्चल होकर बैठना और योग अभ्यास करने के लिये फिर मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसबात का ध्यान रखना कि आसन न बहुत ऊंचा हो और न नीचा तब उस आसन पर बैठ मन और इन्द्रियों के व्यापारों को अपने आधीन कर एकाग्र चित हो अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योगाभ्यास करना अर्थात अंतःकरण नाम फेनबुद्बुद रूपी अहंकार का है इसकी शुद्धि के लिये शरीर मस्तक और ग्रीवा नाम गर्दन को निश्चल तथा सूधा करके स्थिर हो इधर उधर न देखना और अपनी नासिका के अग्रभाग में दृष्टि दे अन्तःकरण को शान्त कर निर्भय ब्रह्मचर्य में दृढ़ मन को रोक शरीर की साधना की क्रिया करना अर्थात योगाभ्यास में भृकुटि के बीच प्राणों को रोकना अर्थात इन्द्रिय रूप संपूर्ण द्वारों को रोक मन को अपने स्थान में निश्चल कर निज प्राण वायु को मूर्धा अर्थात ब्रह्मरन्ध्र में लेजाना अर्थात हृदय व्यापार के अर्थ जो एकसौ एक नाडी हैं उन्में से एक नाड़ी का ब्रह्मरन्ध्र अर्थात कपाल से संबंध है उसके द्वारा योगाभ्यास में निषु ॐ इस अक्षर का उच्चारण करना जन्म मरण से और दुःखों से मोक्ष होने की मिथ्या आशा करना अर्थात मिथ्या आवागमन के मिथ्या भ्रम को सच जान कर इस प्रकार के मिथ्या असत्य को सत्य कर दिखाने के हेतु कृतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग रूप हजार महाँ युगों का ब्रह्मा का एक दिन और इतने ही कालपर्यन्त ब्रह्मा की रात्री बताना और इस अहोरात्र में बारम्बार पुनर्जन्म का होना मिथ्या पारवण्ड और भ्रम है और फिर इसी भ्रम की निवर्तीको नाम नासा निरोधः है करना इस प्रकार का कोई व्यवहार - न नहीं है च चेतन स्वरूप की दृष्टि - दृष्टि में और नहीं है आसनम् आसन और बोधः ज्ञान भी अपि निश्चय करके अबोधः अज्ञान भी और अपि निश्चय करके न नहीं है यत्र - इस प्रकार का कोई आत्मा में भासने अहोरात्र अर्थात दिन और रात भी और नाड़ी प्रचारः नाडियोंका कोई प्रचार भी अपि निश्चय करके न नहीं है यत्र चेतन आत्मा में किम् क्योंकि चिति हे चित तमीशम् चेतनसंपूर्ण रूप में आत्मानम मैं आत्मा उपैति व्यापक हूं और शाश्वतम् नित्य मोक्ष और स्वतंत्र हूं

## आशय ।

हे चित! चेतन व्यापक आत्मा में नसिका के अग्र में दृष्टि का निरोध करना नहीं है क्योंकि आत्मा में नासादिक ही नहीं है इसलिये निरोध भी नहीं है क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है अज्ञान वाला नहीं है कारण कि आत्मा प्रकाश स्वरूप है तिस में तमो रूप अज्ञान रह ही नहीं सकता है और फिर आत्मा में नाडियों का प्रचार भी नहीं है क्योंकि नाड़ियों का प्रचार शरीर में होता है और आत्मा शरीर नहीं है शरीर से भिन्न और चेतन है और संपूर्ण स्वरूप है सो जो ऐसा नासाग्रध्यान और धारणा इत्यादि योगाभ्यास और दिन रात से रहित नित्य व्यापक आत्मा है और जिसमें जीवन मरण अर्थात जन्म लेन और मरने अर्थात आवागमन में रहने का बन्धन और उस बन्धन से किसी क्रिय द्वारा मोक्ष नहीं है वही निर्बन्ध सर्व क्रिया रहित नित्य मोक्ष आत्मा मैं हूं ॥ ३५ ॥

नानात्वमेकत्वमुभत्वमन्यताअणुत्वदीर्घत्वमहत्वशून्यता ॥
मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितं नमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नानात्वम् नानारूपमें एकत्वम् एकही हूं मैं उभत्वम् प्रकाशस्वरूप अन्यता भेदसे रहित अद्वैत और अणुत्वदीर्घत्व महत्वशून्यता सूक्ष्म स्थूल महत्व और शून्यतासे रहित मानत्वमेयत्वसमत्ववर्जितम् मानसे तेरे मेरे उसके और समत्व की कल्पना से रहित नमीशम् नाराय आत्मनम् आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपैति - उत्कृष्ट महान प्रकाशरूप शाश्वतम् शुद्धस्वतन्त्र और नित्य हूं ॥

## आशय ।

हे चित! चेतन आत्मा में नानारूप जगत वास्तव से नहीं है और एकता एकत्व करके भी नहीं है क्योंकि नानात्व अपेक्षासे एकत्व होता है यदि पहले नानात्व सिद्ध होले तब एकत्व सिद्ध होता है और जब एकत्व सिद्ध होले तब नानात्व सिद्ध होता है और इसरीतिसे अन्योन्याश्रय दोष आता है। सो जबकि नानात्व नहीं तब फिर एकत्व अर्थसे ही सिद्ध नहीं होता है - सो आत्मा नानात्व और एकत्व दोनों से रहित नानारूपों को प्रकाश देने वाला भेदसे रहित सूक्ष्म स्थूल महत्व नाम अन्तःकरण अहंकार और शून्यता से रहित है और मानत्वम् नाम जोकि प्रमाण है और एयत्व इसप्रकार के जो विषय हैं और समत्व रूप जो संसार है इस से भी आत्मा रहित है क्योंकि नारायण नाम आत्मा मेरा ही प्रकाशरूप शुद्ध और नित्य स्वतंत्र स्वरूप है॥३६॥

सुसंयमि वो यदि वो न संयमी सुसंग्रही वो यदि वो न संग्रही ॥
निष्कर्मको वो यदि वो सकर्मकस्तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सुसंयमि - ज्ञानस्वरूप एक ही धर्म और नियम और मर्य्यादा रूप मेरा आत्मा स्वरूप है वो और यदि जो कि वो वर्तमान स्वरूप में ये संसार रूप है न नहीं है ये आत्मा का रूप संयमी किसी धर्म नियम और मर्य्यादा वाला और नहीं है सुसंग्रही सुख संग्रह करने वाला सुष्ठु शुद्ध वो और यदि वो जो कि वास्तव आत्मा है वह न नहीं है संग्रही संसार रूप माया कि जो दुःखरूप है ये क्योंकि आत्मा संग्रह करने से रहित है और निष्कर्मकः कर्म से रहित है वो और यदि वो जो वर्तमान संसार रूप है ये सकर्मकः कर्म सहित है नम् तो भी - ईशम् ये सब आत्मनि आत्मा में उपैति विद्यमान रूप से विद्यमान - शाश्वतम् शाश्वत-

## आशय ।

हे चित! मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा एक ही धर्म एक ही नियम एकही मर्य्यादा रूप है आत्मा स्वरूप मेरे में ये जो वर्तमान रूप संसार स्वरूप है नहीं है ये आत्मा का रूप किसी धर्म नियम और मर्य्यादा वाला और नहीं है सुख संग्रह करने वाला सुष्ठु शुद्ध स्वरूप क्योंकि जो वास्तव में आत्मा का स्वरूप है वह नहीं है संग्रही संसार संसार रूप माया कि जो दुःख रूप है क्योंकि आत्मा संग्रह से रहित है और कर्म से रहित है किन्तु ये जो वर्तमान संसार रूप है ये कर्म वाला है तो भी ये सब आत्मा में विद्यमान रूप से विद्यमान करके नित्य नहीं है इसलिये ये सब अनित्य होने कारण आत्मा में ही जो नित्य है समाप्त होता है ॥ ३७ ॥

मनो न बुद्धिर्न शरीरमिन्द्रियं तन्मात्रभूतानि न भूतपञ्चकम् ॥
अहंकृतिश्चापि वियत्स्वरूपकं तमीशमात्मानमुपैति शाश्वतम् ॥ ३८ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मनः न बुद्धिः - आत्मा में न मन है न बुद्धि है और न नहीं है शरीरम् शरीर तथा इन्द्रियम इन्द्रिय भी और तन्मात्रभूतानी पंच तन्मात्र भूत भी और न नहीं है भूतपंचकम् पृथिवि आदि ५ भूत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और-अहंकृतिः अहंकारभी क्योंकि च चेतन आत्मा अपि निश्चय करके वियत्स्वरूपकम्-आकाश के तुल्य व्यापक स्वरूप वाला है और तमीशम संपूर्ण जगतमें आत्मनि आत्मा रूपसे उपैतिशाश्वतम नित्य प्रकाशकहै

आशय ।

हे चित! आत्मा में न बुद्धि है न मन है न शरीर और इन्द्रिय हैं न पंच तन मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध हैं और नहीं आकाश वायु जल अग्नि पृथिवी पांच भूत हैं और न अहंकार है क्योंकि चेतन आत्मा निश्चय करके आकाश के तुल्य व्यापक स्वरूप वाला है संपूर्ण जगतमें आत्मा नित्य प्रकाश मान है और वह ही मैं हूं ॥ ३८ ॥

विधौ निरोधे परमात्मतांगते न योगिनश्चेतसि भेदवर्जिते ॥
शौचं न वाऽशौचमलिङ्गभावना सर्वं विधेयं यदि वा निषिध्यते ॥ ३९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

विधौ विधि और निरोधे निरोध परमात्मतांगते परआत्मा के मध्य एक ही गति रूप है कि जिसमें न नहीं है योगिनः आत्मा अचेतसि माया का रूप क्योंकि आत्मा है भेदवर्जितः भेदसे रहित ही और शौचम् पवित्रा है न वा और नही वह आत्मा अशौचम् अपवित्र है क्योंकि आत्ममें नहीं है कोई अलिंगभावना चिन्ह चित्र की भावना और सर्वम् संपूण विधेयम विधि यदि जोकि ये वा वर्तमान संसार रूप है कर्म रूप है ये सब आत्मामें निषिध्यते- निषेध रूप ही है कि नहीं है

आशय ।

हे चित! आत्मा में विधि और निरोध दोनों एक ही गति रूप से हैं कि जिस आत्मा में माया का रूप नहीं है क्योंकि आत्मा भेद से रहित और पवित्रता और अपवित्रता से रहित है और आत्मा में किसी प्रकार की कोई चिन्ह भावना भी नहीं है क्योंकि विधि रूप में जो कि वर्तमान रूप में ये कर्म रूप संसार है ये सबही आत्मा में निषेध रूप ही है कि नहीं है और जो ऐसा आत्मा है मैं हूं ॥ ३९ ॥

मनो वचो यत्र न शक्तमीरितुं नूनं कथं तत्र गुरूपदेशता ॥
इमां कथामुक्तवतो गुरोस्तद्युक्तस्य तत्त्वं हि समं प्रकाशते ॥ ४० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

मनः मन वचः वाणी यत्र जिसआत्मा में न नहीं है शक्तम् समर्थ ईरितुम् कथन करने को- नूनम् निश्चय करके कथम् कैसे कहूं कि हो सकता है तत्र तिस आत्मा में गुरूपदेशता गुरु और उपदेश का व्यवहार इमाम् इस मेरे अपने आत्मा स्वरूप में कथा कथा रूप से अर्थात् ऐसी कथा का कथना मुक्तवतः मुक्त रूप ही है अर्थात इसका किसी प्रकार से कथन ही नहीं हो सकता है- गुरोः गुरु और तद्युक्तस्य तिस गुरु से जुडा हुआ दूसरे रूप में शिष्य तथा उपदेश तत्त्वम् यथार्थ करके आत्मा में तेरे अपने आप में ही हि निश्चय करके समम् एकरस है एक ही प्रकार से प्रकाशते- प्रकाश मान होता है ॥

आशय ।

हे चित! चेतन आत्मा को किसी प्रकार मन और वाणी भी कथन करने को समर्थ नहीं है क्योंकि चेतन आत्मा मन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और बुद्धि का विषय नहीं है तब फिर गुरु के उपदेश की गम्य कहां है कहीं भी नहीं है क्योंकि चेतन ब्रह्म की कथा का निरूपण करनेवाला जोकि आत्मा में जुड़ा हुआ गुरु है यथार्थ करके अपने आप में ही एकरस प्रकाशमान होता है इसलिये हे चित वह आत्मा कि जो आप ही अपना गुरु है और आप ही गुरु उपदेश है निर्द्वन्द्व और यथार्थ है कि जिस से निश्चय करके सब कुछ प्रकाश मान है वह तेरे ही से प्रकाशमान होता है ॥ ४० ॥

## ३ कर्म त्याग स्वतन्त्रता तृतीयो शिक्षा ॥

### जीव ब्रह्म एकत्व असंग वर्णन ।

गुणविगुणविभागो वर्तते नैव किञ्चिद्रतिं विरतिं विहीनं निर्मलं निष्प्रपञ्चम् ॥
गुणविगुणविहीनं व्यापकं विश्वरूपं कथमहमिहं वन्दे व्योमरूपं शिवं वै ॥ १ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ

गुणविगुणविभागः - गुण और निर्गुण का विभाग तथा फर्क वर्तते वर्तमान - न एव नहीं होता है निश्चय करके किञ्चित् कुछ भी आत्मा में और रतिविरति विहीनम् आत्मा रति और विरति से भी रहित है और निर्मलम् निर्मल है और निष्प्रपञ्चम् प्रपंच से रहित है और गुणविगुण विहीनम् सगुणता निर्गुणता से भी रहित है और व्यापकम् व्यापक है और विश्वरूपम् संपूर्ण विश्व स्वरूप है कथम् कैसे अहम् मैं आत्मा इह इस अपने स्वरूप को वन्दे वन्दना करूं क्योंकि - व्योमरूपम् शिवम् वै मैं आप ही आकाशवत आकाशस्वरूप कल्याण रूप शिव हूं ॥

## आशय ।

हे चित! चेतन आत्मा में सगुण और निर्गुण का विभाग नहीं है और रति नाम प्रेम और विरति नाम कठोरता अर्थात् उपरामता है ये भी नहीं है इसलिये आत्मा निर्मल है और माया मल से रहित है और प्रपंच से भी रहित है क्योंकि प्रपंच सब माया का कार्य है और आत्मा में वास्तव से माया है नहीं इसलिये प्रपंच हो नहीं सकता सो आत्मा एक ही है कि जो संपूर्ण विश्व रूप है और व्यापक है और वै " हमारा अपना आत्मा भी है फिर कैसे मैं आत्मा इस अपने स्वरूप को वन्दना करूं क्योंकि मैं आप ही आकाशवत कल्याण स्वरूप हूं और भेद से रहित हूं ॥ १ ॥

श्वेतादिवर्णरहितो नियतं शिवश्च कार्यं हि कारणमिदं हि परं शिवश्च ॥
एवं विकल्परहितोऽहमलं शिवश्च स्वात्मानमात्मनि सुमित्र कथं नमामि ॥ २ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

श्वेतादिवर्णरहितः मैं आत्मा श्वेतादि वर्णों से भी रहित हूं नियतम् नित्य शिवः कल्याण रूप से स्वतन्त्र हूं च कार्यम् और चेतन कार्य रूप में जो हि निश्चय करके कारणम् जगत कारण है इदम् इस कारण का हि निश्चय करके परम् महान श्रेष्ठ शिवः कल्याण स्वरूप च चेतन आत्मा ही है एवम् इसलिये मैं आत्मा विकल्परहितः विकल्पों से भी रहित हूं और फिर अहम् मैं अलम् परिपूर्ण हूं और शिवः च स्वतन्त्र तथा चेतन हूं स्वात्मानम् आत्मनि अपने आत्मा में अपने आत्मा रूप से ही सुमित्र हे सुरव चेतन स्वरूप चित प्रसन्न रूप से एकत्र हूं स्वतन्त्र हूं फिर कथम् किस प्रकार से कहूं मैं कि नमामि मैं आत्मा नहीं हूं ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

हे सुख चेतन स्वरूप चित! मैं शिव रूप हूं स्वतन्त्र हूं और श्वेत पितादि वर्णों से रहित हूं और कार्य कारण रूपी जगत से भी रहित हूं क्योंकि इस कारण का निश्चय करके महान श्रेष्ठ कल्यान स्वरूप सब विकल्पनाओं से रहित मैं ही हूं फिर मैं परि पूर्ण हूं स्वतन्त्र चेतन हूं और आत्मा में अपने आत्मा रूप से ही प्रसन्नता सहित स्वतन्त्र हूं फिर किस प्रकार ऐसा कहूं कि मैं आत्मा आत्मा नहीं हूं अर्थात अपने आपको आत्मा न जानकर और माया में जो मेरी ही आत्मा का आभास चेतन रूप से पडता है उस कू अपने से अन्य और भिन्न जानकर और इस भेद को लेकर कैसे नमामि नमस्कार करूं और ऐसा कहूं कि ये आत्मा स्वरूप मेरा नहीं है क्योंकि नमामि नहीं है मेरे अन्य मुझ से भिन्न और कोई वस्तु इसलिये कि मैं आप ही अमि नाम अमृत हूं ॥ २ ॥

निर्मूलमूलरहितो हि सदोदितोऽहं निर्धूमधूमरहितो हि सदोदितोऽहम् ॥
निर्दीपदीपरहितो हि सदोदितोऽहं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निर्मूलमूलरहितः आत्मा निर्मूल है और मूल कारण से रहित है और हि निश्चय करके सद सत्य करके नित्य उदितः उदित स्वरूप है और वह आत्मा अहम मैं आप ही हूं और फिर मैं निर्धूम धूम रहितः निर्धूम हूं और धूम से रहित हूं और हि सद उदितः अहम् निश्चय करके नित्य ही उदित रूप मैं हूं और निर्दीपदीप रहितः निर्दीप हूं और दीपक से रहित हूं और फिर हि सद उदितः अहम् निश्चय करके नित्य ही उदित स्वरूप मैं हूं और ज्ञानामृतम् समरसम् गगनोपमः अहम् ज्ञान अमृत एकरस आकाश वत मैं हूं ॥

आश्रय ।

हे चित! मैं निर्मूल हूं अर्थात मेरा मूल कारण नहीं है और मैं भी किसी का मूल कारण नहीं हूं अर्थात अज्ञान मेरे में नहीं रहता है क्योंकि मैं निर्धूम हूं इसलिये मैं अज्ञान से भी रहित हूं फिर जिस हेतु से कि मैं निर्दीप हूं इसलिये दीपक नाम सूर्य भी मेरे को प्रकाश नहीं कर सकता है इसलिये मैं दीप नाम सूर्य से भी रहित हूं क्योंकि स्वयं प्रकाश हूं और सदैव उदित हूं ज्ञान स्वरूप अमृत रूप समरस अर्थात एकरस सर्वत्र ज्योंका त्यों आकाश की उपमा वाला मैं हूं मेरे से भिन्न कुछ नहीं है ॥ ३ ॥

निष्कामकाममिह नाम कथं वदामि निःसंगसंगमिह नाम कथं वदामि ॥
निस्सारसाररहितं च कथं वदामि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निष्कामकाममिह - कामना रहित हूं फिर कामना वाला मैं इह नाम इस संसार में प्रसिद्ध कथम् कैसे वदामि मैं कहूं कि मैं हो सकता हूं और निःसंग संग से रहित मैं हूं फिर संगम् संग वाला इह इस संसार में नाम प्रसिद्ध कथम् कैसे कहूं मैं कि मैं वदामि हो सकता हूं और निःसार सार रहितम् असार रूप माया और सार रूप में माया रूप संसार से रहित मैं हूं फिर च चेतन रूप में सार और असार माय को कथम् कैसे कहूं मैं कि वदामि यह सब मैं आप ही हूं क्योंकि - ज्ञानामृतम् ज्ञान अमृत मैं हूं और समरसम् एकरस गगनोपमः अहम् गगन की उपमा वाला मैं हूं ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आर्ष ।

हे चित ! मैं निष्काम आत्मा हूं काम वाला मैं नहीं हूं और असंग हूं कि संग वाला नहीं हूं और असार रूप में सार और सार रूप में माया रूप संसार मी रहित हूं क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत एक रस आकाश की उपमा वाला हूं।

अद्वैतरूपम् अविलं हि कथं वदामि द्वैतं स्वरूपमविलं हि कथं वदामि ॥
नित्यं त्वनित्यमविलं हि कथं वदामि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अद्वैतरूपम् अद्वैत स्वरूप में - अविलम् - माया रूपी संसार संपूर्ण प्रपंच हि निश्चय करके कथम् कैसे वदामि कहूं कि मैं हूं और द्वैतं स्वरूपम् अविलम् द्वैत रूप में भी माया रूपी संपूर्ण प्रपंच हि निश्चय करके कथम् कैसे कहूं कि वदामि मैं आप ही हूं - क्योंकि - नित्यम् नित्य हूं मैं और तु फिर अनित्यम् अनित्य है ये सब अविलम् संसार रूपी प्रपंच - हि निश्चय करके कथम् कैसे वदामि कहूं मैं क्योंकि ज्ञानामृतम समरसम् गगनोपमः अहम् ज्ञान रूपी अमृत एकरस आकाश की उपमा वाला मैं हूं ॥

## आर्ष ।

हे चित ! संपूर्ण प्रपंच को अद्वैत रूप करके कैसे कहूं कि यह सब मैं हूं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण में यह सब द्वैत रूप करके ही देखा जाता है और द्वैत रूप वाला भी इस द्वैत रूपी प्रपंच को देख कर मैं अपने को नहीं कह सकता कि मैं द्वैत रूप मैं एक जीव ही हूं क्योंकि नित्य हूं मैं कारण कि अनित्य है ये सब संसार रूपी प्रपंच निश्चय करके और नहीं हूं अनित्य क्योंकि सुषुप्ति और मोक्ष अवस्था में हो जाता है अभाव इस सब प्रपंच का अर्थात नहीं रहता है द्वैत इसमें इसलिये माया रूप ही है सब प्रपंच और मैं ज्ञान स्वरूप अमृत आकाश वत इसका जानने वाला हूं ॥ ५ ॥

स्थूलं हि नो नहि कृशं न गता गतं हि आद्यन्त मध्यरहितं न परापरं हि ॥
सत्यं वदामि खलु वै परमार्थ तत्त्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

स्थूलम् हि - स्थूल शरीर निश्चय करके नः न हि आत्मा नहीं है निश्चय करके और कृशम् अणु और न गता गतम् नहीं है गमना गमन वाला भी अर्थात आवा गमन करने वाला भी और हि निश्चय करके आदि अन्त मध्य रहितम् - आदि अंत और मध्य से भी रहित है और न पर अपर हि नहीं हूं पर नाम परा प्रकृति और अपरा नाम अपरा रूप प्रकृति भी निश्चय करके क्योंकि सत्यम् - सत्य ही वदामि कहता हूं मैं खलु वै निश्चय करके मैं आप ही परम् अर्थ तत्त्वम् महान अर्थ से तत्त्व स्वरूप हूं और ज्ञानामृतम् समरसम् गगनोपमः अहम् ज्ञान रूपी अमृत एकरस आकाश की उपमा वाला मैं हूं ॥

## आर्ष

हे चित ! मैं आत्मा निश्चय करके स्थूल शरीर नहीं हूं और कृशम् नाम अणु सूक्ष्म शरीर भी नहीं हूं और आवा गमन करने वाला अर्थात बारम बार जन्म लेकर मरने वाला भी नहीं हूं और आदि अंत और मध्य से भी रहित हूं अर्थात उत्पति स्थिति और लय वाला भी नहीं हूं क्योंकि उत्पति आदि को से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रहित हूं और नहीं मैं परा और अपरा रूप प्रकृति हूं क्योंकि यह ही व्यापक रूप हैं और ये वार्ता मैं सत्य कहता हूं क्योंकि मैं परमार्थ तत्व स्वरूप हूं अर्थात महान यथार्थ रूप हूं और ज्ञान रूप अमृत हूं समरस भी हूं और आकाश की उपमा वाला भी मैं हूं अर्थात स्वयंव ज्ञान रूप से ही एकरस गगन की उपमा वाला मैं हूं ॥ ६ ॥

संविद्धि सर्वकरणानि नभोनिभानि संविद्धि सर्वविषयांश्च नभोनिभांश्च ॥
संविद्धि चैकममलं न हि बन्धमुक्तं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ७ ॥

पदच्छेद शब्दार्थ ।

संविद्धि - सम्यक तू जान सर्वकरणानि - संपूर्ण करणों को नभोनिभानि - आकाश के तुल्य शून्य संविद्धि सम्यक तू जान सर्वविषयान: संपूर्ण विषयों को च चेतन स्वरूप में नभोनिभानि आकाश के तुल्य शून्य ही च और संविद्धि सम्यक तू जान च चेतन एकम् एक आत्मा को अमलम् शुद्ध मल से रहित है न हि बन्धमुक्तम् नहीं है निश्चय करके बन्ध और मोक्ष भी जिस आत्मा में क्योंकि आत्मा रूप ज्ञानामृतम समरसं गगनोपमोऽहम - ज्ञान स्वरूप अमृत एकरस आकाश वत मैं ही हूं ॥

आशय ।

हे चित! जितनी कि इन्द्रियें हैं ये सब वास्तव से आकाश के तुल्य शून्य हैं ऐसा तू जान और संपूर्ण विषय भी आकाश की तरह शून्य हैं ऐसे ही तू जान और एक चेतन आत्मा को ही अमल अर्थात माया मल से रहित तू जान क्योंकि जो आत्मा है उसमें नहीं है निश्चय करके बन्ध और मोक्ष भी और वही आत्मा मैं हूं और मैं कैसा हूं कि ज्ञान स्वरूप अमृत रूप हूं और एकरस आकाश वत व्यापक हूं ॥ ७ ॥

दुर्बोधबोधगहनो न भवामि तात दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहनो न भवामी तात् ॥
आसन्नरूपगहनो न भवामि तात ज्ञानामृतं तमरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ८ ॥

पदच्छेद: शब्दार्थ ।

दुर्बोधबोधगहन: - दुर्बोध आत्मा का जो वृति ज्ञान है सो बड़ा गम्भीर है सो न भवामि तात हे तात मैं नहीं हूं और दुर्लक्ष्यलक्ष्यगहन: दुर्लक्ष्य का लक्ष भी गंभीर है सो न भवामि तात हे तात मैं नहीं हूं और आसन्नरूपगहन: आत्मा का अति समीप भी बड़ा गम्भीर है इसलिये न भवामि तात हे तात मैं नहीं हूं फिर मैं क्या हूं ज्ञानामृतम् समरसम् गगनोपम: अहम् ज्ञान स्वरूप एकरस आकाश की उपमा वाला मैं हूं

आशय ।

हे तात चित! हे प्रिय वह आत्मा बड़ा ही दुर्बोध है अर्थात बड़े कष्ट से उसका बोध होता है और बोध भी वृति ज्ञान है सो मैं नहीं हूं क्योंकि वह मिथ्या ही है फिर वह आत्मा दुर्लक्ष्य है अर्थात किसी भी इन्द्रिय करके वह लक्ष नहीं होता है क्योंकि बड़ा गहन है सो उस दुर्लक्ष का जोकि लक्ष्य अर्थात जानना है वह भी मैं नहीं हूं क्योंकि जानना भी भेद करके होता है अभेद में जोकि आप ही अपना जानने वाला हो जानना बनता नहीं क्योंकि आत्मा का रूप मन बुद्धि के अति समीप भी है और आत्मा मन बुद्धि का विषय नहीं इसलिये उसका जानना अति कठन है इसलिये मैं तिसके अति समीप भी नहीं हूं किंतु मैं वही ज्ञान रूपी अमृत हूं एकरस हूं और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आकाश की तरह व्यापक हूं कि मेरे से अन्य और भिन्न कहीं कुछ नहीं है जो कुछ है वही सब मैं हूं ॥ ८ ॥

निष्कर्मकर्मदहनो ज्वलनो भवामि निर्दुःखदुःखदहनो ज्वलनो भवामि ॥
निर्देहदेहदहनो ज्वलनो भवामि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निष्कर्मकर्मदहनः - मैं आत्मा कर्मों से रहित हूं तब भी कर्मों का दाहक तथा ज्वलनः अग्नि भवामि मैं हूं और निर्दुःखदुःखदहनो मैं दुःख से रहित हूं तब भी दुखों का दाहक ज्वलनः अग्नि भवामि मैं हूं और निर्देहदेहदहनः मैं देह से रहित हूं तबभी देहों के दूर करने में देहों का दाहक ज्वलनः अग्निरूप भवामि मैं हूं और मैं कैसा हूं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ज्ञान रूप अमृत एकरस आकाशवत मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! मैं कर्मों से रहित हूं और कर्मों के जलाने में जिलती हुई अग्नि मैं हूं और मैं संपूर्ण दुःखों से भी रहित हूं तथा फिर भी दुखों के जलाने में मैं अग्नि रूप हूं और फिर मैं शरीर से भी रहित हूं इसलिये जन्ममरण अर्थात आवागमन के हेतु जो लिङ्ग शरीर और कारण शरीर है उसके जलाने में मैं जलती हुई अग्नि रूप हूं अर्थात जन्ममरण आवागमन और लिङ्ग शरीर और कारण शरीर का जो विचार है मिथ्या ही है क्योंकि मैं एकरस ज्ञान स्वरूप अमृत आकाश वत व्यापक ही हूं कि कर्म दुःख और शरीर के सब पाखण्डों से रहित हूं ॥ ९ ॥

निष्पापपापदहनो हि हुताशनोऽहं निर्धर्मधर्मदहनो हि हुताशनोऽहम् ॥
निर्बन्धबन्धदहनो हि हुताशनोऽहं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निष्पापपापदहनः पाप से रहित पाप के दाह करने को हि निश्चयकरके हुताशनः अग्निरूप अहम् मैं हूं और निर्धर्मधर्मदहनः - धर्म से रहित होकरके भी धर्म के दाह करने में हि हुताशनः अहम निश्चयकरके मैं अग्नि रूप ही हूं और निर्बन्धबंधदहनः हि हुताशनः अहम् बन्धन से रहित होकर भी बन्धन के दाह करने में निश्चयकरके मैं अग्नि रूप ही हूं और फिर भी ज्ञानामृतम् ज्ञान स्वरूप अमृत मैं हूं और समरसम् एकरस गगनोपमः गगन की उपमावाला अहम मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! मैं पापों से रहित हूं और पापों के दाह करने में अग्नि रूप भी हूं अर्थात जैसे अग्नि लकड़ियों को जला करके भस्म करदेता है तैसे मैं भी पापों को जला कर भस्म करदेता हूं फिर मैं धर्म से भी रहित हूं और धर्म अधर्म के जलाने में अग्नि रूप भी हूं फिर मैं बन्ध से रहित भी हूं और बन्ध के जलाने में अग्नि रूप भी हूं क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृतरूप एक रस हूं और आकाश वत व्यापक भी मैं हूं ॥ १० ॥

निष्कलङ्ककलङ्कदहनो हि शिवश्चनोऽहं निर्धर्माधर्मदहनो हि शिवश्चनोऽहं ॥
निर्द्वन्द्वद्वन्द्वदहनो हि शिवश्चनोऽहं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निष्कलङ्कः कलंक रहित मैं हूं और कलङ्कदहनः कलंक के दाहरूप से दमन करने को हि शिवश्चनः अहम् केवल कल्याण स्वरूप चेतन ब्रह्म आत्मा मैं हूं और निर्धर्माधर्मदहनः धर्म से रहित मैं हूं तोभी अधर्म के दाहरूप से दमन करने को हि शिवश्चनः अहम निश्चय करके कल्याणरूप स्वतन्त्र चैतन्य ब्रह्म मैं हूं और निर्द्वन्द्व द्वन्द्व से रहित मैं हूं तथा द्वन्द्वदहनः द्वन्द्व के दाहरूप से दमन करने को हि शिवश्चनः अहम् निश्चय करके स्वतः स्वतन्त्र चेतन ब्रह्म आत्मा मैं हूं और फिर ज्ञानामृतम् समरसं गगनोपमो अहम् ज्ञान अमृत एकरस आकाश स्वरूप गगन की उपमा वाला मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! मैं कलंक से रहित हूं और कलङ्क को दाहरूप से दमन करने में मैं ही निश्चय करके चैतन्य ब्रह्म आत्मा हूं और मैं धर्म से रहित हूं तथा फिर भी अधर्म के दमन करने को दाहरूप से निश्चय करके स्वतन्त्र चेतन हूं और मैं द्वन्द्व से रहित हूं तथा फिर भी द्वन्द्व के दमन करने को अग्नि रूप से निश्चय करके स्वतः स्वतन्त्र कल्याणस्वरूप मैं हूं क्योंकि ज्ञान रूपी अमृत एकरस आकाश की उपमा वाला भी मैं ही हूं ॥ ११ ॥

निर्भावभावरहितो न भवामि वत्स निर्योगयोगरहितो न भवामि वत्स ॥
निश्चित्तचित्तरहितो न भवामि वत्स ज्ञानामृतम् समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निर्भावभावरहितः निर्भाव होकर भी अर्थात धर्म से रहित होकर भी भाव से रहित अर्थात धर्म से रहित न भवामि वत्स नहीं हूं मैं हे चित और निर्योगयोगरहितः योग से रहित होकर के भी योग से रहित न भवामि वत्स नहीं हूं मैं हे तात और निश्चित्तचित्तरहितः चित से रहित होकर के भी चित से रहित न भवामि वत्स नहीं हूं मैं चित से रहित हे चित क्योंकि ज्ञानामृतम् ज्ञान स्वरूप अमृत मैं हूं और समरसम् एकरस हूं और गगनोपमो अहम् आकाशवत व्यापक मैं हूं

आशय ।

हे चित! मैं निर्भाव हूं अर्थात प्रेम मेरा किसी भी पदार्थ में नहीं है और इसी प्रेम का नाम धर्म है सो प्रेम से रहित भी मैं नहीं हूं किंतु प्रेमरूप ही हूं और फिर मैं योग से रहित हूं क्योंकि योग नाम है चित की वृत्तियों के निरोध का सो मैं निरोधरूप नहीं हूं किंतु निरोधरूपी योग से रहित भी मैं नहीं हूं क्योंकि मेरे में ही संपूर्ण जगत का लयरूपी निरोध होता है और निरोध नाम है स्वर का और स्वर के दस रूप हैं कि जो दस प्रकार की नाडी कहलाती हैं इनमें प्राण १ अपान २ समान ३ उदान ४ व्यान ५ नाग ६ मे कूर्म ७ कृकल ८ देवदत्त ९ और धनंजय १० ये दस स्वरों के नाम हैं और इनके रोकने का नाम निरोध है क्योंकि इसी का नाम इन्द्र है और इसी का नाम अश्वत्थ है कि जो अहंकार रूप बनकर अर्थात माया की ग्रन्थिरूप होकर मन बुद्धि चित को बनाता है और इस प्रकार कारण से सूक्ष्म और सूक्ष्म से स्थूल शरीर प्रकट होता है और इसमें जब ये स्थूल रूप में प्रकट होजाता है तो व्यान १ उदान २ प्राण ३ समान ४ और अपान ५ ये पांच श्वासा पांच रूप से सब कार्य स्थूल सूक्ष्म कारण के आप से आप ही करने लगते हैं किंतु

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन सब नाडयों की कुञ्जी प्राण वायु है कि जो माया ग्रन्थिरूप से इसप्रकार से इन्द्र स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर लिङ्ग शरीर को रचती है जैसेकि निम्नि अश्वत्थ १ देहपिण्ड २ मरुत देवस्थूल ३ और इन्द्र देव सूक्ष्म ४ और रुद्र देव कारण ५ चित्रों का चित्र सहित निरुपण है अर्थात (१)

ऊर्ध्वमूलमधःशारवमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्॥ छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

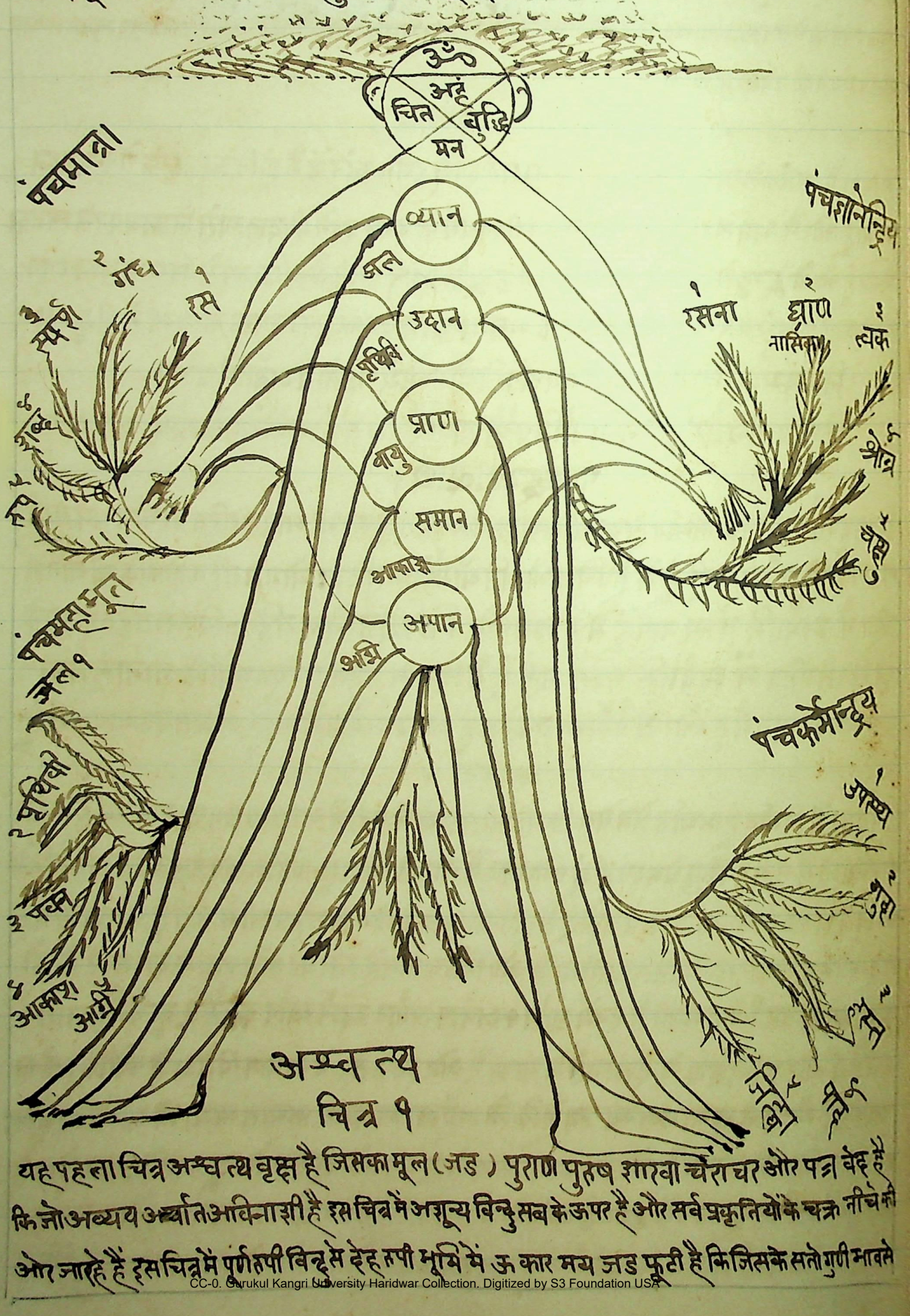


अश्वत्थ
चित्र १

यह पहला चित्र अश्वत्थ वृक्ष है जिसका मूल (जड) पुराण पुरुष शारवा चैराचर और पत्र वेद हैं कि जो अव्यय अर्थात अविनाशी है इस चित्र में अशून्य बिन्दु सब के ऊपर है और सर्व प्रकृतियों के चक्र नीचे की ओर जारहे हैं इस चित्र में पूर्णतपी बिन्दु से देहतपी भूमि में ऊ कार मय जड फूटी है कि जिसके सतोगुणी भावसे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चतुष्टअन्तः करण प्रकट हैं और इनसे पांच प्राणों के रजो गुणी आकार उत्पन्न हुए हैं और शाखा तमोगुणी रूपसे फैलकर पंच मात्रा पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय और पंच महाभूत के विभाग को सिद्ध करती हैं इसप्रकार योग का बाह्य भाव और अन्तर्य अवस्था का स्वरूप प्रकट होके इस चित्र से सत् शब्द के अर्थ और तत शब्द के लक्ष का ज्ञान होता है

(२) दूसरा चित्र देह पिण्ड चित्र है और वहीये है ॥

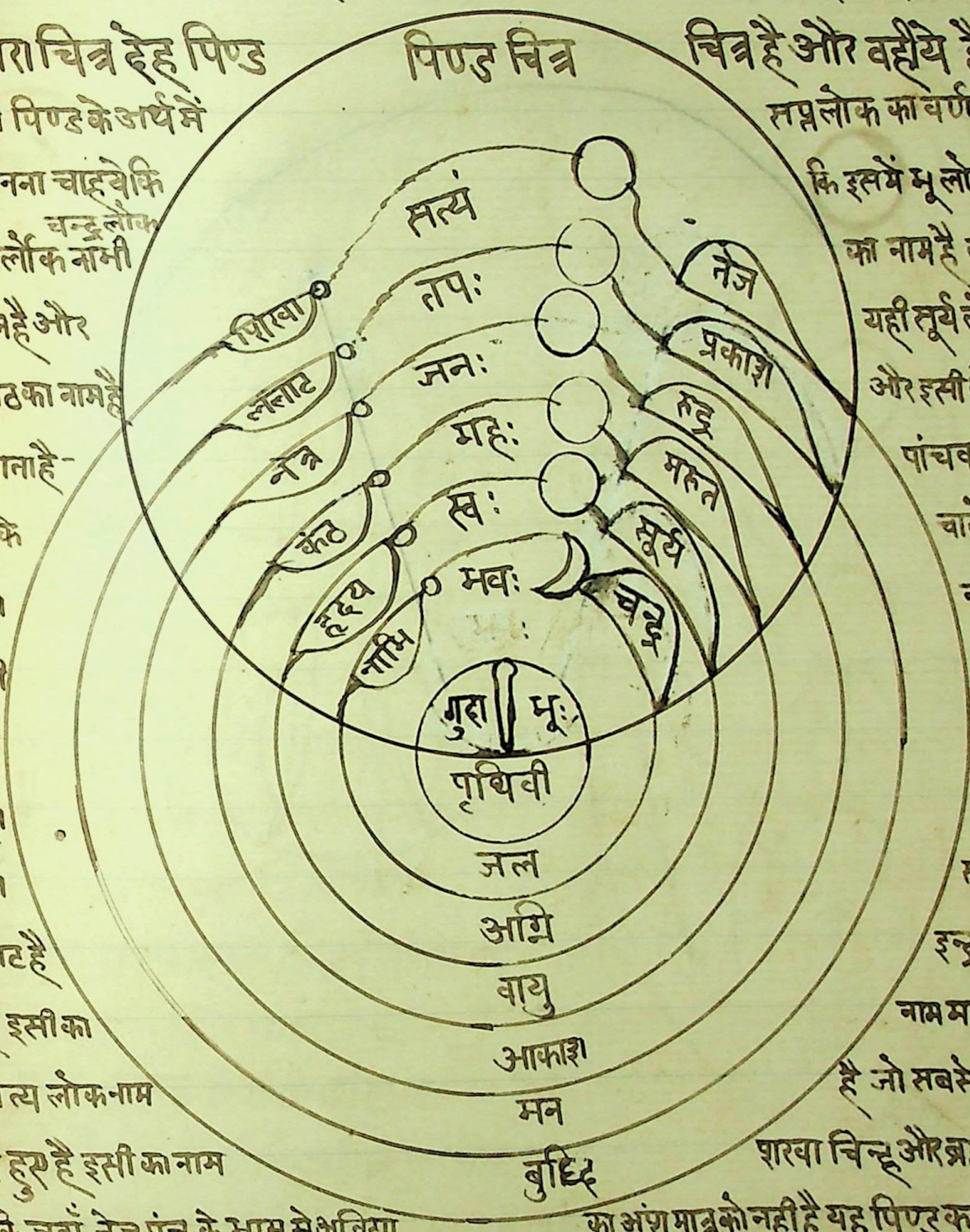

इस चित्र से पिण्ड के अर्थ में सप्तलोक का वर्णन है कि जिसे इसप्रकार जानना चाहये कि कि इसमें भू लोक मूलद्वारा है दूसरा भुवर्लोक चन्द्रलोक नाभी का नाम है तीसरा स्वः लोक हृदय का नाम है और यही सूर्य लोक है चोथा महर्लोक कंठ का नाम है और इसी को मरुत लोक भी कह्या जाता है पांचवा जनः लोक है इस में पृथम के चारों लोक अवस्थित हैं ये नेत्रों का नाम है और नत्रों को ही रुद्र भी कहा जाता है छटा तपः लोक है कि जो पंच महा भूत को अपने अन्तर लिये हुए उन सब का आधार है यही ललाट है इन्द्र के प्रकाश रूप का साक्षी है इसी का नाम मन और ज्ञाता है सातवे का सत्य लोक नाम है जो सबसे ऊँचा है और सब को घेरे हुए है इसी का नाम शखा चिन्ह और ब्रह्म रन्ध्र या कि कप्पाल है कि जहाँ तेज पुंज के भास से अविद्या का अंश मात्र को नही है यह पिण्ड का अर्थ है तथा

पिण्ड चित्र

सत्यं
तपः
जनः
महः
स्वः
भवः
शिखा
ललाट
नेत्र
कंठ
हृदय
नाभि
तेज
प्रकाश
रुद्र
मरुत
सूर्य
चन्द्र
गुदा
भूः
पृथिवी
जल
अग्नि
वायु
आकाश
मन
बुद्धि

(१) भू लोक न्याय का अधिष्ठान है अल्पज्ञता इसका भाष्य है देहानंद रूप है अध्यात्म स्वरूप है बुद्धि दृश्य है अहंकार दर्शन है अर्थात दशरथ है और चित इसका दृष्टा है। (२) भुवर्लोक मीमांसा का अधिष्ठान है सर्वज्ञता इसका भाष्य है जगतानंद इस का रूप है ब्रह्मस्वरूप है अहंकार दृश्य है बुद्धि दर्शन है और चित दृष्टा है (३) स्वः लोक वैशेषिक का आधिष्ठान है ज्ञाता भाष्य है परमानंद रूप है पर ब्रह्मस्वरूप है बुद्धि दृश्य है चित दर्शन है और अहंकार दृष्टा है (४) महर्लोक पातञ्जल का अधिष्ठान है ज्ञान इसका भाष्य है पुरुष रूप है पूर्ण स्वरूप है चित दृश्य है बुद्धि दर्शन है अहंकार दृष्टा है (५) जनः लोक सांख्य का अधिष्ठान है ज्ञेय इसका भाष्य है अशून्य इसका रूप है चैतन्य स्वरूप है चित दृश्य है अहंकार दर्शन है बुद्धि दृष्टा है (६) तपः वेदान्त का अधिष्ठान है ज्ञात इसका भाष्य है सहजानन्द रूप है अव्यय स्वरूप है अहंकार दृश्य है चित दर्शन है बुद्धि दृष्टा है (७) सत्य लोक अनुभव का अधिष्ठान है विज्ञान भाष्य है केवल रूप है स्वयं स्वरूप है ब्रह्म दृश्य है अध्यात्म दर्शन है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विचारदृष्टा है ये पिंड में ब्रह्मांड योग का रूप स्वरूप है इसके आगे —

(३)
महत स्थूलरूप

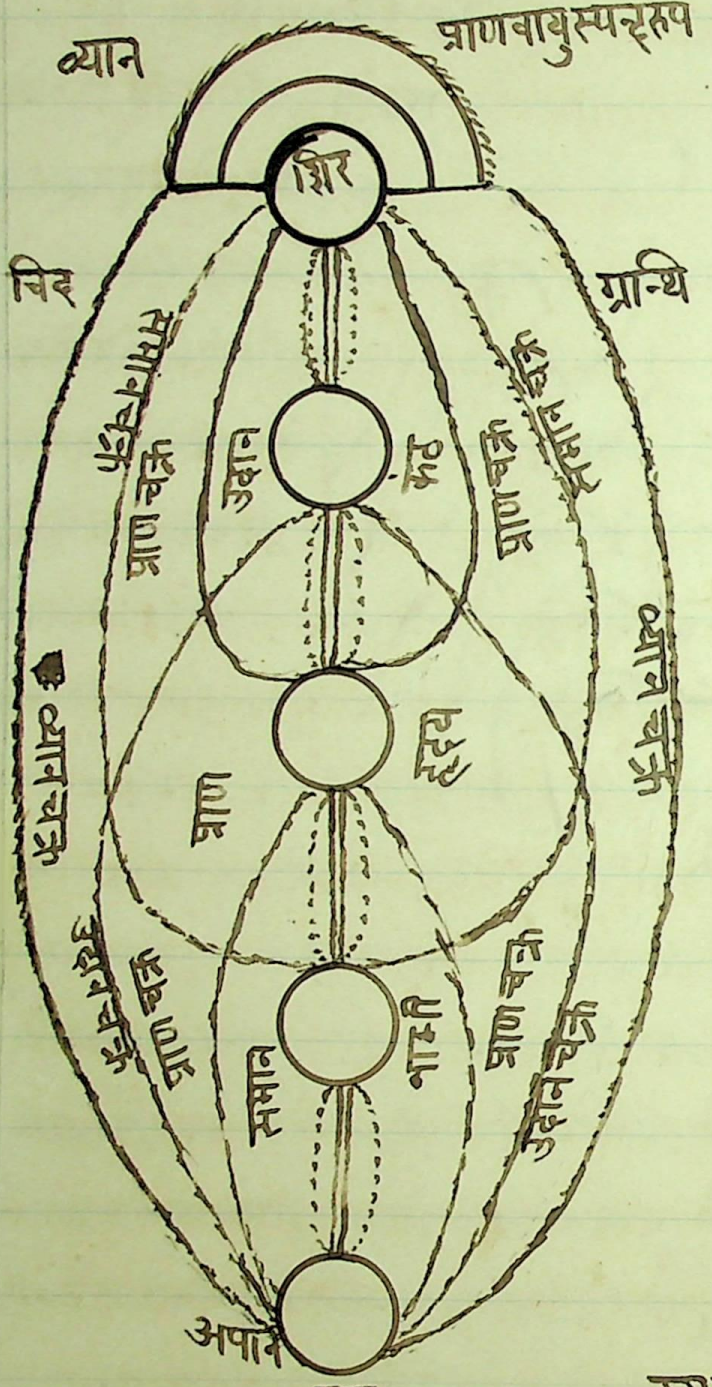


(४)
इन्द्र सूक्ष्मरूप

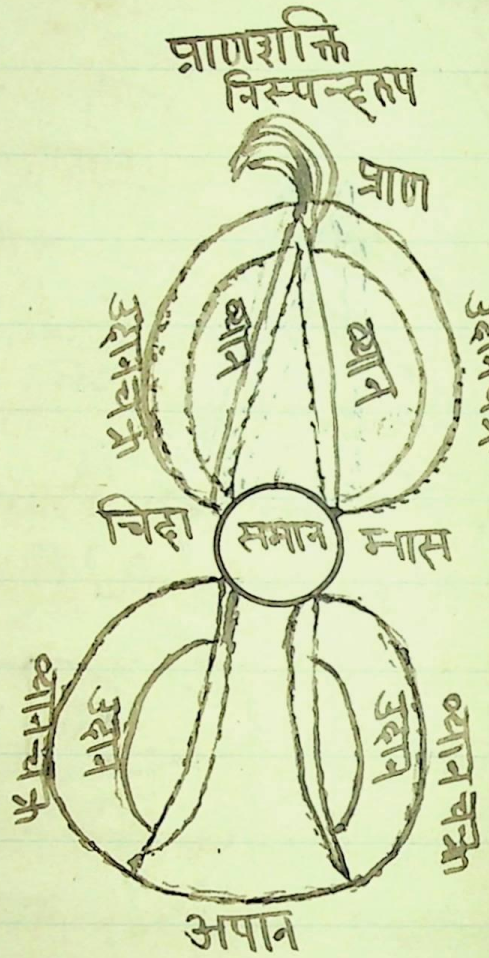


(५)
रुद्र कारणरूप
प्राण समाधिरूप

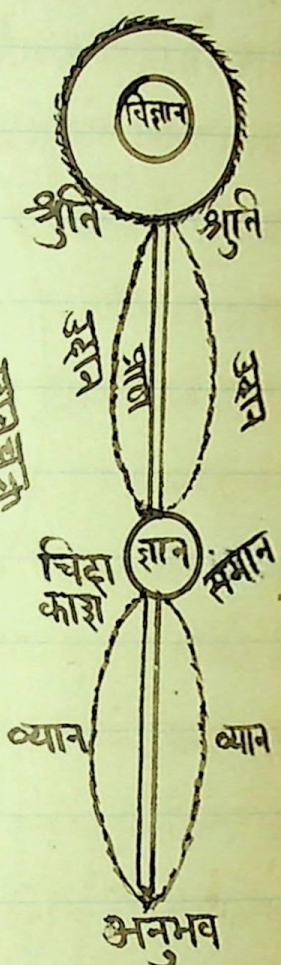


इन तीनों चित्रों का नाम षट चक्र है इन्द्र है
और
अष्टांग योग में इनके नाम
इस प्रकार पर वर्णन होते हैं जैसे कि निरूपण है

(१) षट चक्र रूप में शिर को सहस्त्र दल पद्म और ब्रह्मरन्ध्र अधिष्ठान शुभ्र वर्ण विसर्ग (:) बीज और अनंत दृष्टि रूप कहा जाता है (२) कंठ का षोडशदल पद्म नाम धूम्र रंग आकाश बीज में (हँ) अक्षर विश्वरूप दृष्टा प्राण रूप में समान और आकाश कहा जाता है और कंठ व नेत्र के संबन्ध का रेचक गति ईडा नाड़ी कि जो शरीर के बावें हिस्से में फैली होती है जीव धारणा शक्ति भी कहा जाता है (३) नेत्र को द्वादश दल पद्म का अधिष्ठान अरुण रंग वायु बीज में (यँ) अक्षर दिक दृष्टि प्राण रूप में प्राण वायु और पवन गति में रेचक नाड़ी ईड़ा और जीव धारना कहा जाता है (४) हृदय को अष्टदल पद्म का अधिष्ठान अष्टवसु दृष्टि प्राण रूप में अपान वायु प्राण स्वरूप में अग्नि गति में पूरक नाड़ी में पिंगला कि जो शरीर के दावें हिस्से में पहली हुई है और धारणा में ईषा नाम इसका है और अष्टावसु में मन बुद्धि चित्त और पंच भूत का नाम अष्ट वसु है और अग्नि बीज रूप में (रँ) अक्षर है (५) नाभी को त्रवर्गी पद्म का अधिष्ठान त्रकाल दृष्टि प्राण रूप में व्यान और जल स्वरूप है गति में कुंभक नाड़ी में सुषुम्ना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और धारणा में ब्रह्म नाम है और वरुण बीजमें "यं" अक्षर है और इसका शरीर के मध्य फैलाव है इसी प्रकार (६) गुदा कारण वर्गी पद्म नाम पृथिवी देह अध्यास दृष्टि प्राण रूपमें उदान व पृथिवी गतिमें कुंभक नाडीमें सुषुम्ना धारणमें ब्रह्म नाम है इसके आगे इन तीनो चित्रों का ये आशय है कि यही तीनो चित्र इन्द्र दर्शन रूप हैं और इन्में

(१) मरुत स्थूल रूप का जो चित्र है यही प्राणों के ढांच पर देह का कोश चर्म रूपसे मढा हुआ है।

(२) इन्द्र सूक्ष्म रूप चित्र में पांच शक्तियाँ प्राणों की चलाने वाली हैं और चलाती हैं -

(३) रुद्र कारण रूप चित्र अनुभव का लक्ष है। सो पहले चित्र का अधिष्ठान चिदग्रन्थि है दूसरे का चिदाभास और तीसरे का चिदाकाश। चिदग्रन्थि में देह का अभिमानी रहता है चिदाभास में लिङ्ग शरीर का ज्ञाता और चिदाकाश में स्वरूप का साक्षी चेतन निवास करता है। और इन्में चिदग्रन्थि उस प्रतिविम्ब के सदृश्य है जैसे कि किसी धातु के टुकडे में मुख के देखने से आभास पड़ता है और आभास धातु के रंग को लिये रहता है। चिदाभास उस प्रतिविम्ब के समान है कि जैसे जलमें मुख के देखने से प्रतीत होता है अर्थात मूर्ति भासता है - चिदाकाश उस निश्चल प्रतिविम्ब के तुल्य है कि जैसे दर्पण में मुख देखने से बनता है और सब रंगों को यथावत दर्शाता है। इसलिये मैं आत्मा योग से रहित हूं कि कभी स्थूल सूक्ष्म कारण में नहीं आता हूं सो स्थूल सूक्ष्म कारण तीनो शरीर प्राण वायु की माया ग्रन्थि से प्रकट होते हैं और उनके चिदग्रन्थि १ और चिदाभास २ और चिदाकाश ३ इन तीनों स्वरूपों में मेरा प्रतिविम्ब इसी प्रकार भासता है कि जैसे जल में सूर्य का प्रतिविम्ब भासता है इस प्रकार मैं योग सहित हूं। अर्थात वियोग ही हूं।

हे चित! मैं निश्चित हूं अर्थात चित से रहित हूं क्योंकि वास्तव में मेरा चित के साथमें कोई भी सबन्ध नहीं है तब भी मैं चित से रहित नहीं हूं क्योंकि संपूर्ण चित मेरे में ही कल्पित हैं और कल्पना ये हुआ करती है कि ये संसार जो विचित्र भांति से देखा जाता है कैसे उत्पन्न हुआ कैसे स्थिर है और कैसे इस का नाश होगा इसका उत्तर ये ही है कि ये जगत ऊपर वर्णी चित्रों से स्वासा गति माया रूप से आप से आप ही पांच पांच शक्तियों के संयोग से उत्पन्न हुआ है उन्ही से स्थित है और उन्ही में लय होकर रहता है॥

ऊपर के तीन चित्रों में स्थूल मूर्ति स्पन्द रूप में वायु है कि जिसकी क्रिया मरुत के आधीन है और मरुत पांच प्राणों का नाम है। सूक्ष्म मूर्ति प्राण शक्ति है कि जिसका निस्पन्द रूप है और इन्द्र नाम है और उसका अधिष्ठान कारण में है और कारण स्वरूप का स्वामी रुद्र है और रुद्र मेरी शिव स्वरूप शक्ति का नाम है कि जो समाधिस्थ गति है। इसप्रकार इन तीनों मूर्तियों में पांच पांच शक्तियाँ यथार्थ रूप से कार्य करती हैं इनमें पहली शक्ति समान है कि जिसका स्थान नाभी है और रूप इसका आकाश तत्त्व विन्दु है। दूसरी शक्ति का नाम प्राण है इसका स्थान हृदय है और वायु इसका तत्त्व रूप है। तीसरी शक्ति का नाम अपान है कि जिसका स्थान गुदा है और रूप इसका अग्नि तत्त्व विन्दु है। चौथी शक्ति का नाम व्यान है और सर्व ढांचे पर फैली हुयी है यही जल तत्त्व विन्दु रूप है। पांचवी शक्ति का नाम उदान है कि कंठ जिसका स्थान है और रूप इसका पृथिवी विन्दु तत्त्व है और इन्ही के भेदसे ये जगत इन्द्र रूप करके प्रकट हुआ है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३५१ हे चित! जितने कि देहात्र हैं उन सब में चाहे वह किसी आकृति रूप के हूं स्थर का ही कोश हैं कि जिनमें इस प्रकार की वायु कार्य करती हैं अर्थात श्वासा रूप से नित्य चला करती हैं। और वह स्थान के विभाग से इस नाम रखती हैं कि जिनमें (१) समान वायु है कि जो निश्चल होकर आकाश तत्त्व रूप है और धारण रूपमें जो सबके गमन को सिद्ध करती है अधिष्ठान इसका नाभी है कि जहाँ से आकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है॥

(२) दूसरी श्वासा वायु का नाम प्राण वायु है कि जिसकी क्रिया अपेक्षण है अर्थात प्राण वायु बाहर की पवन को देह के भीतर खेंचती है और वायु तत्त्व रूप धारण किये हुए हृदय अर्थात सीनः में रहती है

(३) तीसरी स्वासा वायु का नाम कि जिसकी क्रिया अपेक्षण है और ये देह की भीतर की पवन को ऊपर खेंचकर बाहर निकालती है अपान वायु है कि जो अग्नि तत्त्व रूप है और स्थान इसका गुदा है

(४) चौथी स्वासा वायु का नाम व्यान वायु है इसकी क्रिया प्रसारण है कि जो अन्तर बाहर देह के सब ही अंगों में और सर्वत्र प्रवेश रूप है इसी का नाम जल तत्त्व और स्थान ललाट है -

(५) पांचवी स्वासा वायु का नाम उदान है क्रिया इसकी आकुंचन है कि जो अपनी क्रिया से सर्व अंगों से देह को पवन को सुकेडती है रूप इसका पृथितत्त्व है और कंठ स्थान है

(६) समान वायु का नाम ही कूर्म वायु है नेत्रों में रहती है और इसी से नेत्र खुलते हैं ये उपप्राण वायु है

(७) उदान कृकल रूप से उर में रहकर भूक लगाती है - उप प्राण है

(८) नाग प्राण वायु का नाम है कि जो कै लाती है और उच्काती है उप प्राण है

(९) अपान का नाम ही देवदत्त है जो जम्भाई लाती है उप प्राण है

(१०) धनंजय उदान का नाम है कि जो मर्त्य शरीर को नष्ट करदेती है + उप प्राण है

हे चित! जितनी देहात्र हैं वह सब इन्द्र रूप में एक एक भपके तुल्य हैं कि जिन में सब के नीची अपान वायु अग्नि का काम देती है और समान वायु पात्र अर्थात बर्तन बनती है और प्राण वायु जल का कार्य देती है और इन तीनों के व्यापार से जो भाप उठती है वह सिर के ढकवे में एकत्र होकर सब अंगों में फैलती है और उसी का नाम व्यान है सो जब इस प्रकार भाप का कार्य हो चकता है तब वह द्रव रूप सिमट कर ढकपर रस विन्दुवों को उत्पन्न करती है और इसी का नाम उदान वायु होता है वास्तव में प्राण और अपान दो शक्तियाँ हैं कि जिनकी उदान और व्यान दो युक्तियाँ हैं प्राण का संबन्ध उदान से और अपान का व्यान के साथ है जैसे कि जल में मिट्टी के प्रमाणु बैठा करते हैं और अग्नि भाप को उठाती है वैसे ही समुद्रवत इन चारों का अधिष्ठान समान वायु है कि जो आकाशवत निर्लेप रहती है और जिसमें से आकर्षण शक्ति बाहर की प्राण वायु को देह के अन्तर खेंचती है और खेंच कर आप समाप्त होती है और फिर अपान शक्ति पवन को देह से बाहर निकालना आरम्भ कर देती है इस प्रकार श्वास की आवा गमन से एक चक्र बनजाता है कि जो लुहार की धूकनी के समान धौंकनी की भांति रात दिन चलता है और क्षिन मात्र को नहीं ठहरता इसी अवस्था का नाम जीवन है। समान वायु की आकर्षन शक्ति से जो प्राण वायु रूपी स्वास भीतर को खिंचता है और फिर अपान उसे बाहर निकालती है वह ईडा पिंगला और सुषुम्ना द्वार द्वारा ही आवागमन करता है अर्थात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जब स्वास बांवें नथने नासिका से खिंचता और बाहर निकलता है इसको ईड़ा अर्थात चन्द्र स्वर का चलन कहा जाता है। और जब दाँवें नथने से चलता है तो इसको पिंगला तथा सूर्य्य स्वर चलना कहा जाता है और जब दोनों नथने नाक से स्वर चलता है तो इसको सुषुम्ना स्वर का चलना कहा जाता है। सूर्य स्वर के चलने से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और चन्द्र के चलने से ठन्डक हुआ करती है और सुषुम्ना के चलने से मन में और शरीर में बे चैनी उत्पन्न होजाया करती है। और इस प्रकार स्वासों के चलने की विधि आप ही आप है क्योंकि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन सूर्य निकलने के समय स्वासा सूर्य्य स्वर से चलता है और पांच कला अर्थात ढाई घंटे के पश्चात सूर्य्य से चन्द्र और फिर इसी फिरा फिरी साथ चन्द्र से सूर्य और सूर्य से चन्द्र होता रहता है और इस प्रकार तीन तीन दिन चलकर बदलते बदलते शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को सूर्य्य उदय होने के समय चन्द्र स्वर चलता हुआ मिलता है और ऊपर कहे अनुसार तीन तीन दिन में चन्द्र से सूर्य और सूर्य से चन्द्र होकर फिर कृष्ण प्रतिपदा को सूर्य उदय के समय सूर्य स्वर होजाता है और इसी चक्र नित्य ही चलता रहता है और सुषुम्ना स्वर उस समय चला करता है कि जब सूर्य से चन्द्र तथा चन्द्र से सूर्य होता है। सो जब स्वास भीतर को खिंचता है तो बाह्य पदार्थों का चैतन्य के साथ इन्द्रिय गोचर द्वारा संग होता है और श्वास के भीतर से बाहर को निकलते हुए चैतन्य के रूप का प्रतिबिम्ब विश्व में भासता है और इन्ही दोनो क्रियाओं की समता से बाणी की उत्पति होती है और इन्हीं की परस्पर घिस्से जठराग्नि निकलती है कि जिस करके स्थूल शरीर में अन्न पचता है।

हे चित - प्राण वायु से इस सकल सृष्टि की उत्पति इस कारण कही जाती है कि पांचों पवनों तथा प्राणों का निजरूप स्वरूप पवन तत्त्व में प्राण पवन है और इसी का नाम माया है यही अन्जनी कुमार की माता स्त्री भगनि और पुत्री है अन्जनी महाँ बीर का नाम है और महाबीर कि जो ज्ञान स्वरूप अमृत एक रस आकाश की उपमा वाला है मैं हूं क्योंकि प्राण वायु रूप हूं और इस मेरे स्वरूप में सब तत्त्वों का अंश मिश्रित रहता है कारण ये है कि प्राण वायु पिण्ड और ब्रह्माण्ड और इन्हू तीनों में संपूर्ण एक रस व्यापक है यदि पिण्ड की वायु का भी ब्रह्माण्ड की वायु से संबन्ध न रहे तो फिर तत्काल ही देह का पात होजाता है अर्थात ऐसी अवस्था में शरीर को मृतिक होना कहा जाता है। सो एक शरीर को कुछ काल मर्त्य से रोक ने का नाम योग है और इसी प्रकार माया रूपी नाना प्रकार के पदार्थ शरीर क्रिया द्वारा उत्पन्न करने का नाम योग है। योग क्या है निश्चिन्त होकर निर्योग और निर्भाव होना सो मैं ऐसा ही हूं कि कोई शरीर नहीं रखता हूं फिर शरीर रक्षा को इस बात पर विचार करना कि योग के करने से कल्याण होगा ये बात किसी काल भी नहीं बनती है क्योंकि योग नाम ही निश्चिन्त और निर्योग का है फिर चित की वृतियों को रोकना कैसे संभव है क्योंकि चित में नाना प्रकार की वृतियां स्वांस स्वांस पर उत्पन्न होती रहती हैं और ये भी पांच तत्त्व अनुकूल अर्थात आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी तुल्य अक्षेप्त १ मूढ़ २ विक्षेप्त ३ एकाग्र ४ निरोध ५ पांच ही प्रकार की वृतियां हुआ करती हैं कि जिनमें (१) अक्षेप्त वृति तो उसे कहा जाता है कि जिस में चित संसार के विषयों के विश्व भाव का दृष्टा होकर उनकी तरफ दौड़ता है और अत्यन्त चंचल रूप से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भूक पियास काम क्रोध लोभ मोह शोक मान बड़ाई धन विद्या गुण और सर्व प्रकार की संपदा की इच्छा को सत्य प्रतीत करता है और सत्य कर के मानता है और इसी प्रकार की तृष्णा में प्रवर्त रहता है

(२) मूढ़ वृति वह है कि जिस में आलस निद्रा मूर्छा इत्यादि जैसे वृतियाँ उत्पन्न होती हैं

(३) विक्षेप्त वृति उन्हें कह्या जाता है कि जिन्में चित की भावना एकागरता से हट कर दूसरे भाव की तरफ दौड़ने लगती है जैसे प्रकट में कुछ कहना और करना तथा गुप्त भाव में दूसरी ओर का ध्यान लगाना

(४) एकागर वृति उसका नाम है कि जिसमें अक्षेप्त वृतियों की तरफ से चित को हटाकर एक ही तरफ लगाना

(५) निरोध वृति वह है कि जिसमें एकागर वृति को भी रोक कर अपने ही स्वरूप को देखना अर्थात सब में अपने आप को देखना और अपने आप को पाना और निश्चिंत और निर्योग होजाना अर्थात समाधि रूप से आत्म स्वरूप में स्थित होजाना सो हे चित तू स्वयं निरोध वृति रूप है कि तेरे में कोई भी अक्षेप्त वृति आदि से कोई भी नहीं है फिर निरोध वृति की प्राप्ति को अष्टांग योग करना और यम[1] नियम[2] आसन[3] प्राणायाम[4] प्रत्याहार[5] धारणा[6] ध्यान[7] समाधि[8] की तरफ चित को लेजाना कैसे बनता है किंतु नहीं बनता क्योंकि

(१) यम के अर्थ रोकने के हैं और विद्धि नियम अनुकूल यम के १० स्वरूप हैं अर्थात "अहिंसा१ सत्य२ अस्तेय३ ब्रह्मचर्य्य ४ क्षमा५ धृति६ दया७ आर्जव८ मिताहार९ शौच१० ये दश अङ्ग यम के हैं सो मैं साक्षात करके "अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं क्षमा धृतिः ॥ दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमा दशः ॥ निश्चय करके चेतन स्वरूप से मैं आप ही ये दश यम नियम रूप हूं क्योंकि अहिंसा का अर्थ है कि किसी दशा और गति में निरपराधी और असमर्थ जीवों को अपने सुख वा जिह्वा स्वाद निमित हनन न करना वा किसी और प्रकार का शारीरिक वा मानसिक दुःख न देना सो मैं स्वयम् ही "अहिंसा परमो धर्म्मः अहिंसा परमस्तपः ॥ अहिंसा परमो लाभः परं हंसो अव्ययो" श्रुति प्रमाण मैं महान सूक्ष्म स्वरूप अविनाशी आत्मा एक ही आत्मा रूप में एक ऐसा परम धर्म स्वरूप हूं कि जिसमें हिंसा नहीं है और जो आप ही हिंसा रहित परम तप और हिंसा रहित परम लाभ स्वरूप से परम हंस रूप अविनाशी है इसलिये अहिंसा के अन्य हिंसा का मेरे आत्म स्वरूप में अंश को अंश मात्र भी नाम नहीं है। यम का दूसरा अङ्ग सत्य है और सत्य का अर्थ ये है कि जो देखा जाता है और सुना जाता है अर्थात जानने में आता है तथा जो भी प्रत्यक्ष प्रमाण से बोध होता है वह सब "सत्यं हि सत्य केवलं स्वयेंवोऽहं एकं ब्रह्म" श्रुति प्रमाण निश्चय करके सत्य ही सत्य है केवल करके यथार्थ करके वह कि जो सब कुछ है वह मैं आप ही हूं क्योंकि जो सत स्वरूप तथा सत्य है वह मैं ही एक ब्रह्म आत्मा हूं इस निश्चय को देख कर सत्य के अन्य असत्य नहीं है इसलिये कुछ पूछा जाना और कहना सुनना भी नहीं है क्योंकि सत्य रूप आत्मा है और वही मैं हूं।

तीसरा अङ्ग यम का अस्तेय है जिसका अर्थ ये है कि जो वस्तु अपनी नहीं हो उसे कभी नहीं लेना अर्थात चोरी नहीं करना और किसी प्रकार के धोके और छल कपट से ग्रहण नहीं करना तो मैं स्वरूप से ही अस्तेय हूं अर्थात संसार का गुप्त स्वरूप हूं कि सब वस्तु रूप हूं कोई वस्तु मुझ से भिन्न नहीं है इसलिये लेना तथा चोरी करना मेरे में नहीं है क्योंकि "अस्तेय हं प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम" श्रुति प्रमाण बिना किसी रत्न वा पदार्थ के लिये ही सर्व रत्नों का स्थान रूप ही मैं हूं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसलिये चोरी छल कपट और ग्रहण आदि का कोई संबन्ध मेरे में नहीं है। चौथा अङ्ग यम का ब्रह्मचर्य्य है कि जिस का अर्थ है ब्रह्म आचर्य्य अर्थात स्वतन्त्र और असंग रहना सो मैं स्वरूप से ही स्वतन्त्र अर्थात असंग हूं इसलिये ये रोक भी मेरे में नहीं है क्योंकि श्रुति प्रमाण है " ब्रह्ममं ब्रह्मचर्य्य स्वरूप निर्वाणम् " अर्थात मैं ब्रह्म स्वरूप से ही स्वतन्त्र और ब्रह्म चर्य्य स्वरूप हूं फिर ये रोक भी कि किसी स्त्री की ओर काम चेष्टा न करना मेरे में नहीं है क्योंकि मैं स्वतन्त्र हूं॥ पांचवा यम का नियम छमा है जिसका ये अर्थ है कि जो कोई अपने साथ बुराई करे उससे उस बुराई का बदला न लेना और यथा शक्त उसके साथ सर्व प्रकार से भलाई ही करना सो श्रुति प्रमाण " स्वभाव निर्वाणं क्षमा शेलं नांयोऽहम् " मैं स्वभाव से ही स्वतन्त्र क्षमा शेल तथा शांन्ति स्वरूप हूं बुराई करना मेरे में नहीं है क्योंकि " सर्वं म्म्म्मं न द्वितीय " श्रुति प्रमान मैं ही मैं एक ही संपूर्ण स्वरूप हूं कि मेरे अन्य कहीं दूसरा कोई भी नहीं है फिर बुराई क्या और किस से सो बुराई का व्यवहार भी नहीं है यम का छटा अंग धृति है कि जिसका ये अर्थ है कि किसी आपति में चंचल होकर अपनी नष्ठा भ्रष्ट न करनी और आत्म विश्वास न छोड़ देना चाहे समा कैसा ही कठोर क्यों न आ जावे आंख मूंद दृढ़ता से सहन कर लेना सो श्रुति प्रमाण "धृतिरूपं धर्मं मित्रं निरापतो स्वरूप निर्वाणम् " मैं स्वरूप से ही धीरज रूप धर्म मित्र स्वरूप आपतों से रहित हूं और स्वतन्त्र हूं इसलिये धीरज के अन्य आत्म विश्वास हीनता तथा निष्ठा भ्रष्टा मेरे में नहीं है। सातवा यम का अङ्ग दया है कि जिसका ये अर्थ है कि दुखी जीवों की जो अपने से निर्बल हों अपने आधीन हूं अपनी शरण में आय हूं वा किसी आपति में फंसे हूं यथा शक्ति उनकी सहायता करना सो श्रुति प्रमाण " दयामि ऽहं जगतो पति शिवश्चनः " अर्थात मैं चेतन कल्याण स्वरूप जगत का स्वामी हूं और मैं आप ही दयारूप हूं इसलिये निर्दईता का भाव भी मेरे में नहीं है। यम का आठवा अङ्ग आर्जव है जिसका अर्थ है अन्तः करण की शुद्धि तथा प्रपंच से दूरी सो श्रुति प्रमाण मैं " स्वयं आर्जवं शुद्धऽहं एकं न प्रशंसा " अर्थात मैं प्रत्यक्ष प्रमाण से ही शुद्ध अन्तः करण शुद्ध स्वरूप एक ही आत्मा हूं इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं है और प्रशंसा अर्थात बड़ाई भी नहीं है। यम का नवां अङ्ग मिताहार है जिसका ये अर्थ है कि थोड़ा खाना सो श्रुति प्रमाण " मिताहारि अनारोग्यं शिवोऽहं " मैं विना खाय ही सर्व प्रकार के रोगों से रहित हूं और फिर भी मैं कल्याण स्वरूप हूं अर्थात मैं कुछ न खाने पर भी रोग रहित हूं और नित्य हूं इसलिये खाना भी मेरे में नहीं है। यम का दशवा नियम अङ्ग शौच है कि जिसके अर्थ हैं शरीर से शुद्ध होना सो श्रुति प्रमाण " सर्वेषामेव शरीरशौचं न शरीरः शौचानामर्थ शौचं शिवो ऽहं " अर्थात मैं शरीर नहीं हूं इसलिये सर्व प्रकार के शरीरों से निश्चय करके मैं शुद्ध ही हूं क्योंकि सर्व प्रकार के शौचों से " अर्थ शौच रूप में शुचि नाम जो कल्याण स्वरूप है मैं हूं इस प्रकार मैं यम अङ्ग रूप हूं॥

(२) अष्टाङ्ग योग का दूसरा अङ्ग नियम है और नियम के अर्थ प्रमाण तथा बन्धं के हैं अर्थात बन्धन बांधने का नाम नियम है परण है और इस के भी दश अंग हैं अर्थात तप १ सन्तोष २ आस्तिक्य ३ दान ४ ईश्वर-पूजन ५ सिद्धान्त वाक्य श्रवण ६ ह्री ७ मति ८ जप ९ हुत १० ये १० अङ्ग नियम के हैं सो साक्षात करके " मयैव तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्॥ सर्वो सिद्धान्त वाक्यश्रवणं ह्री मति च जपो हुतम् " श्रुति प्रमाण मैं ही निश्चय करके तप सन्तोष आस्तिक्य दान ईश्वरपूजन रूप में संपूर्ण सिद्धान्तों में जगत रूप वाक्य श्रवण नियम विद्धि से ह्री मति जप हुत स्वरूप हूं क्योंकि नियम के अगों में पहला अङ्ग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तप है कि जिसके अर्थ तप्त होने ही के है अर्थात अलग होने स्वतन्त्र होने माया मल से रहित और असंग होने का नाम तप है सो श्रुति प्रमाण « तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखम् ॥ तपो मध्यं बुधैः प्रोक्तं तपो अनंतं चराचरम् » मैं मूल कारण चेतन आत्मा तप रूप से अर्थात असंग और स्वतन्त्र स्वरूप से इस संपूर्ण जगत को अपने ज्ञान स्वरूप में लिये हुए हूं क्योंकि ये जगत नहीं है किसी प्रकार से सुख स्वरूप क्योंकि मेरे असंग स्वरूप के मध्य ये जगत प्रोक्ष ज्ञान स्वरूप में अनंत स्वतन्त्रा सहित स्वरूप है. चर अचर रूप अर्थात जड़ और चैतन्य का अनंत रूप केवल तप रूप ही है इसलिये मैं ही स्वयं तप हूं कि जिस तप स्वरूप में सरदी गर्मी भूख प्यास दुख और सुख से स्वतन्त्र तप रूप हूं।

नियम का दूसरा अंग स्वरूप सन्तोष है कि जिसके अर्थ निरइच्छित होने अर्थात ग्रहण त्याग दोनों से ही स्वतन्त्र राग द्वेष और शोक संताप से स्वतन्त्र रहने के हैं सो श्रुति प्रमाण « सन्तोषमादित्यऽहं परं सुखं शिवम् » मैं सन्तोष स्वरूप सूर्य्य हूं और परं सुख रूप में ही कल्याण स्वरूप हूं कि असन्तोष मेरे में नहीं है।

नियम का तीसरा अङ्ग स्वरूप आस्तिक्य है कि जिसके अर्थ हैं इस विश्वास और दृढ़ता के कि इस जगत का कोई जगदीश्वर पुराण पुरुष सर्व शक्तिमान खुदा तथा गोड अवइय है और वह किसी इन्द्रिय द्वारा देखा तथा सुना और जाना नहीं जाता सो श्रुति प्रमाण « जानामि मं परं रूपं आस्तिक्यं गगनोपमोऽहम् » अर्थात मैं जानता हूं मेरे अपने स्वरूप को कि मैं ही दृढ़ विश्वास के साथ जगदीश्वर पुराण पुरुष हूं और आकाश की उपमा वाला भी मैं ही हूं इसलिये अनीश्वर्य भाव अर्थात नास्तिक पने से भी मैं रहित हूं कि नास्तिक पना मेरे में नहीं है।

नियम का चौथा अङ्ग स्वरूप दान है कि जिसके ये अर्थ हैं कि यथा शक्ति दुर्बलों के उपकार निमित अपने उपार्जन अर्थात उत्पन्न किये हुए द्रव्य से कुछ देना सो श्रुति प्रमाण « मयैव दानं महा दान रूपं प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं » मैं ही निश्चय करके दान और महादान स्वरूप हूं और मैं ही तीनों लोक अर्थात त्रिकाल रूप में अकाल पुरुष अपने वर्तमान दान स्वरूप का देखने वाला और जानने वाला हूं। सो किसी प्रकार दुर्बल और बलवान का भाव मेरे में नहीं है क्योंकि मैं स्वयं समर्थ सर्व दान रूप ही हूं क्योंकि संपूर्ण एक रस मैं हूं

नियम का पाँचवाँ अङ्ग स्वरूप ईश्वर पूजन है कि जिसके ये अर्थ हैं कि चिलते फिरते हंसते खेलते खाते पीते उठते बैठते सोते जागते ईश्वर को स्मरण रखना अर्थात अपने स्वरूप को जानना और सब वस्तुओं में उसी ईश्वर्य तेज का मान करना देखना सो श्रुति प्रमाण « सदीश्वरोऽहं साक्षी सर्व भूतेषु च आत्मनिकम् ॥ अर्थात मैं ही चैतन्य आत्मा संपूर्ण भूतों का देखने वाला सत्य ईश्वर हूं साक्षी स्वरूप हूं फिर पूजन और नाना प्रकार का ईश्वर समरण मेरे में नहीं है क्योंकि मेरे अन्य कोई दूसरा ईश्वर नहीं है मैं स्वरूप से ही ईश्वर हूं अर्थात मैं आप ही अपने को देखने वाला और अपने को जानने वाला हूं इसलिये पूजन व्यहार मेरे में नहीं है और मैं पूजन से रहित भी नहीं हूं कि सब भूतों में एक ही चेतन आत्मा मैं हूं

नियम का छठा अङ्ग सिद्धान्त वाक्य श्रवण है कि जिसके अर्थ अन्त की सिद्ध की हुई शब्द रूपी बात का सुनना है सो श्रुति प्रमाण « श्रुति न श्रवनञ्च सिद्धान्त स्मृति केवलो शिवोऽहम् » अर्थात न श्रुति है और न श्रवण है और न कोई सिद्धान्त है न ही स्मृति है केवल एक कल्याण स्वरूप ही सिद्ध है और वही मैं आप हूं इस लिये जो सिद्धान्त वाक्य श्रवण स्वरूप है वही मेरा अपना आपा है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नियम का सातवाँ अङ्ग स्वरूप ह्रीं है जिसके ये अर्थ हैं कि स्वतन्त्र रहना अर्थात स्वार्थ वश होकरके स्वतन्त्रों का परित्याग न कर देना सो श्रुति प्रमान " ह्रीं बल पुत्र प्रमारहं महिहर क्षेत्र पति। कुलोन वंशो गृह न जाति सत्यं श्रेष्ठ ह्रीं " अर्थात मैं ह्रीं नाम विष्णु बल नाम शक्ति का पुत्र प्रमार नाम प्रापञ्चकृति रूप में आप ही विष्णु रूप में इस सृष्टि का स्वामी हूं मेरा न कोई कुल है न वंश है न घर है न नाति है फिर भी मैं निश्चय करके स्वतः स्वतन्त्र ही हूं कि किसी प्रकार स्वतन्त्रों का त्याग रूप मेरे में नहीं है कि मैं ह्रीं ह्रीं हूं

नियम का आठवा अङ्ग स्वरूप मति है कि जिसके अर्थ हैं ब्रह्म सत्तो जगद्मिथ्या " अर्थात ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है इस प्रकार मति तथा बुद्धि से जानना सो श्रुति प्रमाण " मति श्रेष्ठो श्री अमरः हं अमर ब्रह्म अविनाशी " मैं बुद्धि रूप में जो श्रेष्ठ बुद्धि ज्ञान रूप में अमर स्वरूप है वही अमर ब्रह्म विनाश से रहित मैं हूं ॥ ऐसा मेरा निश्चय है इसलिये मति व्यवहार रूप में संसार के विषय सुख स्वर्ग इच्छा रूप मेरे में नहीं हैं।

नियम का नवां अङ्ग जप है जिस के अर्थ हैं जाप अर्थात अज आप इसी का नाम है अजपा जाप और ये सो अँ हं स्वासा गति में हों हूं रूप से आप होना है और यही यज्ञ रूप में श्रेष्ठ यज्ञ जपयज्ञ रूप है अर्थात जो जप यज्ञ रूप है वही हंस स्वरूप आत्मा है कि जो कर्म से स्वतन्त्र है और स्वयं कर्म यज्ञ रूप है अर्थात श्रुति प्रमान " हंसोऽहं विधि यज्ञाज्जापयज्ञो विशिष्टो निष्कर्मयोगो मौनः हम् " मैं हंस स्वरूप हूं और ब्रह्म रूप में मैं ही यज्ञ रूप संसार हूं और यज्ञ रूप संसार में मैं जपयज्ञ अर्थात स्वासा ध्वनि रूप से हों हूं शब्द अर्थ में सर्व श्रेष्ठ कर्म और योग से रहित मौन स्वरूप में जप रूप अर्थात अपना जानने वाला मैं हूं

नियम का दशवाँ अङ्ग हुत है कि जिसका अर्थ जला देने के हैं अर्थात अग्नि रूप हो जाने हैं सो ही श्रुति प्रमाण " हुतो रूपं ज्वलनो हि भवामि " अर्थात अग्नि रूप में निश्चय करके जलती हुई अग्नि की हुत हूं इसलिये होम मेरे में नहीं है कि मैं स्वयं होम रूप होम स्वरूप हूं इस प्रकार मैं नियम स्वरूप हूं।

(३) अष्टाङ्ग योग का तीसरा अंग आसन है और आसन स्थित होके बैठने का नाम है सो श्रुति प्रमाण में " आसनं सिद्ध स्थितिः निश्चलो सर्वत्रऽयम् " मैं ही सिद्ध स्थित और निश्चल संपूर्ण आसन हूं अर्थात चौरासी लाख आसनों में चौरासी और चौरासी में चार और चार में एक जो सिद्ध आसन सर्व स्थित और निश्चल और श्रेष्ठ आसन है वही ब्रह्मासन मुक्तासन गुप्तासन और सिद्धासन मैं हूं इस लिये किसी आसन का कोई व्यवहार भी मेरे में नहीं है कारण कि " आसनं सिद्धासनं कुम्भकं न खेचरी मुद्रा स्वयंवद्दि लयं नादहं " अर्थात आसनों में सिद्धासन मैं हूं और न हूं कुम्भक और न खेचरी और न मुद्रा क्योंकि निश्चय करके संपूर्ण रूप में जिस प्रकार कि मैं सिद्धासन हूं वही सिद्धासन रूप में मेरा लय स्वरूप है और लय स्वरूप में नाद रूप में हूं

(४) अष्टाङ्ग योग का चौथा अङ्ग प्राणायाम है कि जिसके ये अर्थ हैं कि प्राण वायु स्वरूप मैं आप हूं फिर कैसे मैं अपने आपको बन्ध में डालूं और रोकूं जबकि मैं स्वतन्त्र हूं और स्वतन्त्र भी कैसा कि लय रूप में नाद रूप और नाद रूप में स्वासा रूप और स्वासा रूप में यथार्थ स्वरूप कि जो तत्त्व कहा जाता है अर्थात अबाजप नाम रखता है और आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी और सर्व पदार्थों के स्वरूप में प्रकट है और सिद्ध रूप में सिद्ध आसन है और अमृत और विष कार्य और कारण एक ही रूप है जैसे कि वर्णन किया गया है कि मेरा मुख्य तो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लय स्वरूप है और लय का नाद रूप है और नाद का यथार्थ स्वरूप है कि जिस के अवकाश में पांच तत्त्वों का एक एक स्वरूप एक ही रूप अ अक्षर स्वर रूप में आकाश है कि जिसका समान नाम है और इसी समान के अवकाश में दूसरी चारों चारों पवनों का परस्पर संबन्ध है कि जिनके नाम प्राण अपान व्यान उदान हैं और इन्हीं का नाम वायु अग्नि जल पृथिवी है कि जो एक ही समान के स्वरूप में १६ स्वर स्वासा रूप हैं और ये चारों पवन तत्व इसप्रकार परस्पर संबन्ध रखते हैं कि प्राण की अपान से मित्रता उदान से शत्रुता और व्यान से समता है। और अपान की प्राण से मित्रता व्यान से शत्रुता और अपान से समता है और व्यान की उदान से मित्रता अपान से शत्रुता और प्राण से समता है। और उदान की व्यान से मित्रता प्राण से शत्रुता और अपान से समता है। और यही चारों पवन पृथक पृथक भाव होने पर भी समान सहित एक पिण्ड रूप हैं और यही नाना पदार्थ स्वरूप हैं और इन सब का निर्वाह मेरी ही सहायता से मेरे अभय और यथार्थ स्वरूप में मेरे ही भय से बनता है अर्थात प्राण से वायु अपान से पित और व्यान से कफ उत्पन्न होकर उदान रूपी देह की स्थिती और सिद्धि का हेतु होती हैं और इन्ही पवनों का समोह होने पर ग्रन्थि रूप आकृति में कि जो नाना रूप करके मेरे यथार्थ स्वरूप में भासती हैं संकल्प उठता है अर्थात ये कर्म आप से आप होता है कि मन का अध्यास चिद ग्रन्थि में कि जो चारों पवनों का एक समोह रूप आकृति होती है भासने लगता है और इसप्रकार ये आकृति मन के आभास से चैतन्य इन्द्र का रूप दिखाती है और सर्व इन्द्रियों का राजा मन को प्रकट करती है और अपने को जीव मान लेती है क्योंकि इस आकृति में जित कार्य होते हैं वह सब आप से आप व आपही स्वासा द्वारा कि जो सर्वही सृष्टि का मूलकारण हैं होते हैं। क्योंकि स्वर अर्थात पवन कि जिनका तत्व नाम है पांच हैं कि जिन की शत्रुता और मित्रता पर सर्व सृष्टि में नाना प्रकार की चराचर वस्तु आप से आप बनती और बिगड़ती हैं और स्वर फिर भी हंस रूप में कि जो मेरा यथार्थ स्वरूप है यथार्थ ही रहता है क्योंकि ज्ञान स्वरूप सत्य है और सब चर रूप आकृतियों में व्यापक रूप से इस प्रकार चलता हुआ प्रतीत होता है कि जैसे पृथग्र प्रकट किया गया है कि नासिका द्वारा सूर्य चन्द्र और सुषुम्ना रूप से चलता प्रतीत होता है और एक एक नथने से पांच पांच घड़ी तक इस रीति से चलता है कि पृथम आकाश आकाश फिर आकाश वायु फिर आकाश अग्नि फिर आकाश जल फिर आका पृथिवी २४ मिन्ट अर्थात एक घड़ी तक इसके पीछे इसी प्रकार से २४-२४ मिन्ट अर्थात एक एक घड़ी तक इस प्रकार स्वासा चलता है कि पहले वायु वायु फिर वायु अग्नि फिर वायु जल फिर वायु पृथिवी फिर वायु आकाश इसके पीछे - अग्नि अग्नि फिर अग्नि जल फिर अग्नि पृथिवी फिर अग्नि आकाश फिर अग्नि वायु इससे पीछे जल जल फिर जल पृथिवी - फिर जल आकाश फिर जल वायु फिर जल अग्नि इसके पीछे पृथिवी पृथिवी फिर पृथिवी आकाश फिर पृथिवी वायु फिर पृथिवी अग्नि फिर पृथिवी जल चलता है। और इस प्रकार ये पांचों स्वर तत्व एकरस पांच घड़ी तक चलकर चन्द्र से सूर्य और सूर्य से चन्द्र और सुषुम्ना रूप नित्य चलते रहते है। अर्थात रात दिन में पाँचों के १२-१२ दौरे होते हैं और इन दौरों में सुषुम्ना स्वर और आकाश तत्व सिंधी रूप में वर्तमान होता है और आकाश तत्व कभी एक साथ एक घड़ी तक नहीं चलता है किंतु दूसरे चारों तत्वों के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

साथ चलकर पांच घडी में अपनी एक घड़ी पूरी करलेता है। और इस प्रकार पृथक पृथक करके हरएक तत्व प्रत्यक्ष प्रमाण रहता है क्योंकि इन्ही पांचों प्राणों के संयोग से पांच उप प्राण उपजते हैं कि जो नाग रूप से तो उबकाई को लाता है या हिचकी और डकार का हेतु होता है और देवदत रूप से जिंबाई का कारण होता है और कुर्म रूप से पलक और नेत्रों में खुलने और मिचने की क्रिया होती है और कृकल रूप से भूक को लगाते हैं और धनंजय रूप से मृत्यु का हेतु होकर देहको फुलाकर वा सड़ाकर नष्ट कर देते हैं। तथा समान वायु आकृति रूप पिण्ड में और ब्रह्मांड में आकाश वत व्यापक है और चारों प्राण अपान व्यान उदान उसी से उत्पन्न होती हैं और पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में इस प्रकार कार्य कारण रूप हैं कि प्राण वायु ब्रह्मांड में पवन रूप होकर बहती है और आकृति पिण्ड में स्वासा रूप से अन्तर बाहर प्रवेश किये हुए जीवनी कहलाती है और अपने को मिथ्या भ्रम से जीव प्रकट करती है। अपानवायु ब्रह्मांड में अग्नि ज्योति होकर रहती है और पिण्ड में जठराग्नि बनकर के अन्न को पचाती और स्वास को भीतर से बाहर को निकालती है। व्यान वायु ब्रह्माण्ड में चन्द्र ज्योति होकर रहती है और आकृति पिण्ड में भाप बन करके रुधिर को नाड़ियों में चक्र देती है और देह का पोषण करती है। उदान वायु ब्रह्माण्ड में प्रमाणु के रूप से ठहरी है और आकृति पिण्ड में स्थूला कार बनी है कि जिसके द्वारा सर्व कर्मेन्द्रियों के कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार मैं स्वयं प्राणायाम हूं कि ब्रह्माण्ड और पिण्ड में इन्ही पांचों प्रकार की पवनों का खेल खेल रहा हूं। तथा इन पवनों का व्यवहार स्थान भेद से ब्रह्माण्ड में और आकृति पिंड में दैत रूप करके बिम्ब प्रति बिम्ब करके प्रतीत होता है किंतु ऐसा है नहीं क्योंकि पांच प्राणों का रूप तो सूक्ष्म ही परन्त पंच महा भूत उन्ही की स्थूल मूर्ति इन्द्र रूप हैं कि जो जो महत स्थूल रूप हैं सो स्थूल रूप में जब प्राण वायु की विशेषता होती है तो शान्ति उत्पन्न होती है और ऐसे समय पर घर बनाने बाग लगाने कूप लगाने तालाब बनाने देशाटन करने नवीन घर में प्रवेश करने नाना प्रकार प्रकार की वस्तु एकत्र करने दान देने विवाह करने भूषण बनवाने पानी पीने लघुसंज्ञा करने अर्थात मूतने और सर्व प्रकार की ऐसी प्रपंच क्रिया करने की इच्छा उत्पन्न होती है कि जिसके पूर्ण होने पर कुछ काल आनंद प्राप्त हो यदि ऐसे समय पर प्राण वायु में चन्द्र स्वर और पृथिवी तत्व अर्थात उदान वायु का चक्र हो तो ऐसे जो कार्य ऐसे समय पर हूं उन्में अवश्य आनंद हो और यदि ऐसा नहीं तो ऐसे कार्यों में अवश्य विघ्न हो वे क्योंकि इस प्रकार के सर्व आनंद देने वाले कार्य आप से आप चन्द्र स्वर में प्राण और उदान के चलने में ही सिद्ध होते प्रतीत हुआ करते हैं। और पाटल रूप में यदि सूर्य स्वर और उदान वा व्यान वायु का चक्र हो तो ऐसे समय में कठन बातों के जाने विषय भोग करने और सर्व ऐसे कार्य करने की इच्छा उत्पन्न हुआ करती है कि जिसमें संक्षेप कर के सुख तथा आनंद की प्राप्त हुआ करती है जैसे स्नान करना खाना खेलना अत्यादि। कारण कि यदि ऐसा हूं तो सर्व सिद्धि प्राप्त हो। सुषुम्ना स्वर और समान वायु में तो किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती है कारण यह है कि उस समय अपना यथार्थ स्वरूप ही देखा जाता है यदि सर्प काटे या विष खा लिया जाय तो चन्द्र स्वर और जल तत्व होने पर विष का कोई गुण नहीं होता है इसी प्रकार जितने विशेष देर तक रहने वाले कार्य हैं वह सब चन्द्र स्वर और पृथिवी तत्व में आप से ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आप बनते हैं और जलदी के कार्य सूर्य स्वर और जल तत्त्व में हुआ करते हैं और कठन कार्य अपान वायु में होते हैं दिन में सूर्य और रात में चन्द्र स्वर चलने से आकृति पिंड बिगड़ता है और दिन में चन्द्र रात में सूर्य रहने से कभी बीमार अर्थात रोग नहीं होता है उदान और व्यान के विशेष चलने से सर्व सिद्धि होती है वायू और अग्नि में बीमारी और समान में मौत होती है। आकाश तत्त्व नासिका के समीप ही रहता है वायू अष्ट अंगुष्ट त्रिछा चलता है अग्नि ४ अंगुष्ट ऊपर को जाता है पृथिवी १२ अंगुष्ट तक सीधा चलता है और जल १६ अंगुष्ट नीची को चलता है और सूर्य से चन्द्र और चन्द्र से सूर्य बग़ल को राण पर दबाकर रख कर बैठने से दहने से चन्द्र और बांये से सूर्य आप होजाता है। तथा मेरे स्वरूप द्वारा वायु से चपला की चमक जल से वर्षा होती है दिन में पृथिवी और रात में जल के चलने से सर्व सिद्धि हुआ करती हैं अग्नि से मृत्यू होती है वायु से उल्का पात आकाश से अग्नि उत्पन्न होजाती ही चन्द्रस्वर और पृथिवी तत्त्व के वर्तमान समय कही हुई बात नित्य सिद्ध होती है। इसप्रकार प्राणायाम् के अर्थ प्राणों के रोकने के भी हैं क्योंकि जब तक शरीर में वायु स्थिर रहती है तब तक ही आकृति पिण्ड जीवन कह्या जाता है और वायु के निकल जाने से मरण होता है और मेरे में जीवन वा मरण दोनों नहीं क्योंकि श्रुति प्रमाण ॥ प्रत्यक्ष प्रमाणं नाभू भर्वः स्वः महः जनः तपः प्राणायाम् हि ऽहमेकं ॐ ब्रह्म स्त्यं ॥ अर्थात प्रत्यक्ष प्रमाण में भूमि जल अग्नि वायु आकाश और मन जोकि आकृति रूप में जीव के होने का धोका करता है इन्द्र वायु रूप होने के कारण सिद्ध नहीं है क्योंकि प्राणायाम् में जो प्राण वायु है वही मैं आप ही निश्चय करके एक ही ॐकार सत्य ब्रह्म स्वरूप हूं अर्थात स्वतन्त्र हूं फिर कैसे प्राणायाम बनती है किंतु किसी प्रकार नहीं बनती क्योंकि इन्द्र सूक्ष्म चित्र में जो चौथा चित्र है ये मेरी प्राण वायु शक्ति का अत्यन्त गुप्त रूप है कि जिसमें प्राण का रंग हरा है अपान का लाल व्यान का हलका नीला उदान का मटयाला और समान का गहरा नीला रंग है मेरी इस शक्ति में इस शक्ति का नाम ही कि जो प्राण वायु रूप है और हृदय के स्थान व्यान वायु में बाहर से भीतर को प्रवेश करती हुई जाती है और फिर वहां से अपान वायु को गुदा स्थान तक पहुंचाती है तो जब प्राण वायु अपान तक पहुंचती है तो अपान वायु अपने गुदा स्थान से ऊपर को जाती है और हृदय स्थान व्यान वायु से होती हुई नासिका पर्यन्त प्राणों को बींधती बाहर निकलकर प्राण वायु रूप होजाती है और इसी का नाम प्रत्याहार है कि जो

(५) अष्टाङ्ग योग का पांचवां अङ्ग है और जिसके अर्थ पाटल कर देने के हैं अर्थात पाटल रूप में जो विधि और निषेध एक रूप में द्वन्द से रहित स्वरूप है अर्थात नित्य एक रस है उसी का नाम प्रत्याहार है क्योंकि प्राण और अपान के मिश्रित होने से द्वन्द उत्पन्न होता है और अपान की युक्ति कि जिसका व्यान नाम है ऊपर की ओर प्राण को घेर लेती है और नीचे अपने अधिष्ठान में सब से बाहर चक्र बांधती है और प्राण की युक्ति जिका उदान नाम है नीचे की ओर अपान को आवृत करती अर्थात ढक लेती है और ऊपर जाकर प्राण के स्थान में सबसे बाहर अपना चक्र बनाती है सो श्रुति प्रमाण ॥ प्रत्याहार नाम शुद्ध मोक्षो प्राणासंगो ॥ अर्थात प्रत्याहार नाम ही शुद्ध सूतन्त्र असंग प्राणों का है कि जो न तो कछु सुनता है न देखता है और फिर भी सर्व कार्य कारण रूप है सो जो ऐसा स्वतन्त्र प्राण है मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि मुझमें किसी प्रकार का पाटल नहीं है मैं आपही असंग प्राण वायु रूप में नित्य प्रत्याहार हूं।

(६) अष्टाङ्ग योग का छटा स्वरूप अङ्ग धारण है कि जिसके अर्थ निश्चित और स्थित होने के हैं सो हृदयके मध्य-स्थान में मेरी समान वायु शक्ति का निश्चल रूप से वासा है और उसी में से ऊपर की चारों प्रकार की वायु शक्तियों का आवागमन होता है जैसा कि सूक्ष्म मूर्ति चक्र में उसके ऊपर वाले भाग के देखने से ये सार प्रकट होता है कि प्राण और उदान नाम रखने वाली और शत्रु भाव रखने वाली व्यान वायु शक्ति इन दोनों के मध्यस्थ बनी है इसलिये श्रुति प्रमाण " निश्चित चितरहितं नाधारणा कदापि " अर्थात मैं चित से रहित निश्चित हूं किसी प्रकार भी मेरे मे धारणा नहीं है क्योंकि मैं स्वयं ही धारणा रूप हूं इसलिये धारणा मेरे में नहीं है

(७) अष्टाङ्ग योग का सातवा अङ्ग ध्यान है जिस के ये अर्थ हैं कि एक रस रहना सो सूक्ष्म मूर्ति चक्र को उसके नीचे का भाग देखने से निश्चय करके प्रकट है कि अपान और व्यान की शत्रुभाव रखने वाली शक्तियों के मध्य सम भाव रखने वाली उदान वायु शक्ति स्थित हुई है और इन चारों शक्तियों में से जब कि किसी एक में भी विसमता होजाती है तो ततकाल ही व्याधा उत्पन्न होकर देह पिण्ड को निष्ट कर देती है सो इसी बात का नाम ध्यान है कि देह पिण्ड जीव रूप में कोई वस्तु नहीं और श्रुति प्रमाण " असंगोहमसंगो ना जीवादि देह नां रूप मान ध्यान प्रकृति आकृति " अर्थात मैं आत्मा असंग और स्वतन्त्र ही हूं और मैं जीवादि करके जो नाम रूप में मान का ध्यान रखने वाली देह रूपी प्रकृति आकृति है सो नहीं हूं कि इसी का नाम ध्यान है इसकारण मैं ध्यान रहित निर्ध्यान हूं और स्वयं ध्यान रूप हूं अर्थात देह की विकारता को निश्चय करके जानने वाला मैं हूं अर्थात ध्यान भी मेरे में नहीं है।

(८) अष्टाङ्ग योग का आठवा अङ्ग समाधि है जिसका ये अर्थ है कि ज्ञाता और ज्ञान से केवल ज्ञेय के अन्य और कुछ न रहै यथार्थ लय ही शेष रहै सो मैं सूक्ष्म मूर्ति चक्र चित्र में वह समान रूप वायु समाधि रूप हूं कि जो मूर्ति चक्र में उस्का ऊर्ध्व भाग जो एक भपके के तुल्य है और उदान जिसका भांडा है और जिस में प्राण रूपी जल अपान की अग्नि से तप्त होकर व्यान रूपी पसेव को उत्पन्न करता है और फिर उसके अर्धः भाग में अपान की अग्नि उदान में जिलती हुई प्राण की भाप को ऊपर उछालती है और व्यान रूप जल उदान रूपी भांडे को उसके चारों और रहकर उसे ठंडक देकर ठंडक देता हुआ फटने से बचाता है सो प्राणों की गति पर अन्तर्य दृष्टि भाव के करने पर पवन की चाल मन्द होती हुई प्रतीत होने लगती है और अन्त में समान रूप से ठहरी ही भासती है तब प्राण शक्ति की उन क्रियाओं का अनुभव होता है कि जिनसे प्राण पवन के निस्पन्द रूप होते ही द्वन्द मिट जाता है और चिदाभास का लक्ष पेद्धान्त में आता है कि जिसमें चैतन्य की स्वतन्त्रता और जड रूपी देह की परतन्त्रता भली प्रकार दिखाई देती है। अन्य शब्दों में ये कहना उचित है कि चेतन के आधीन मन और इन्द्रयों के सर्व व्यापार होते हैं और समान वायु के स्थान से प्राण शक्ति के उदय होते ही जगत दृश्यमान होता है और अपान शक्ति के अस्त होते ही संसार लय होजाता है। उदय का रूप दिन और अवस्था जाग्रत है अस्त का रूप रात्री और अवस्था स्वप्न है जाग्रत अवस्था में श्रोत्र गति ब्रह्मांड की ओर प्रकाशवत खिंडि हुई होती है कि जिस का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाम श्रुति है। और स्वप्न अवस्था में अनुभव का तेज पिण्ड आकृति के अन्तर इस प्रकार भासता है कि जैसे किसी घट के मध्य दीपक के बलते रहने से उसका प्रकाश होता है। आगे चित वृति के वहिर्मुख होने का नाम है उदय होना और अन्तर्मुख होने का नाम है अस्त होना क्योंकि दिन रात में स्वासा प्राण पवन की संख्या २१६०० होती है और उदय वा अस्त के भेद से द्विगुणी अर्थात ४३२०० होजाती है और मेरे अशून्य विन्दु स्वरुप की विन्दु की अधिकता से कि जो सूक्ष्म इन्द्र रुप मूर्ति चित्र का अधिष्ठान है ये संख्या ४३२००० बनजाती है कि जो कल्युगी युग की नाम मात्र वर्ष आयुसंज्ञा है। क्योंकि हे चित मैं पूर्ण रुप से इस प्रकार सूक्ष्म इन्द्र रुप का अधिष्ठान बन रहा हूं कि जिस प्रकार सूर्य का नेत्रों में चन्द्र का मन में अग्नि का मुख में और दिक का कानों में स्थान है तैसे मेरा प्राण पवन में वासा है अर्थात जैसे जल में सूर्य्य का प्रतिविम्ब रहता है इसी प्रकार मैं प्राणों में रहता हूं। क्योंकि समान वायु मेरा संघासन है दामिनी मेरा बज्र है और काले मेघों की भय उत्पन्न करने वाली मेरी सेना है और श्वेत बादल मेरे ऐरावत हाथी हैं इस प्रकार जब अपान वायु के दूत सागर से चन्द्र ज्योती का कर उगाते हैं और प्राण वायु के हाथों कि जो मेरे द्वारपाल होते हैं सोम रस की वर्षा रुप में वह कर मेरे तक पहूंचाते हैं तो देह रुपी पृथिवी की रक्षा होती है कारण ये है कि पाचवां रुद्र कारण रुप का जो इन्द्र चित्र है वह स्वरुप से ही समाधि रुप है विलक्षण एक अवस्था है कि जिसमें पाँचों प्राण अपने अपने स्थान में दीप्तमान होते हैं क्योंकि श्रुति का रुप प्राणवायु है और अनुभव का स्वरुप अपान वायु है और यही हंस रुप में समाधि स्वरुप है और श्रुति प्रमाण है कि

" श्रुति अनुभव प्रत्यक्ष हि स्वरुपेण साक्षी समाधिषृ सदैवो निर्देश अकालश्च अणु निर्वाणमष्टयोगः "

अर्थात प्राण और अपान प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय करके इस जगत रुपी माया के साक्षी समाधिषृ हैं कि जो नित्य ही निर्देश अर्थात देश से रहित अकाल स्वरुप चेतन हैं और अणु रुप से स्वतन्त्र तथा निर्वाण रुप में अष्टाङ्ग योग रुप हैं अर्थात ८ + ८ = १६ के पूर्ण षोडश कला स्वरुप हैं इसलिये मैं योग से रहित होकर भी अष्टाङ्ग योग रुप हूं चित से रहित होकर भी चित वाला हूं और ज्ञानरुपी अमृत हूं और आकाश की उपमा वाला एक रस मैं हूं। और - ॥ १२ ॥

निर्मोह मोह[१] पदवीति[२] न[३] मे[४] विकल्पो[५] निःशोक शोक[६] पदवीति[७] न[८] मे[९] विकल्पो[१०] ॥
निर्लोभ[११] लोभ पदवीति[१२] न[१३] मे[१४] विकल्पो[१५] ज्ञानामृतं[१६] समरसं[१७] गगनोपमोऽहम[१८] ॥ १३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

निर्मोह मोह[१] पदवी - मोह से रहित अथवा मोह की पदवी वाला इति[२] इस प्रकार का न[३] नहीं है मे[४] मेरे में - विकल्पः[५] विकल्प अर्थात कल्पना वहम् - निःशोक शोक[६] पदवी - शोक से रहित या शोक वाला इति[७] इस प्रकार का भी न[८] नहीं है मे[९] मेरे में विकल्पः[१०] वहम - और निर्लोभ[११] लोभ पदवी लोभ से रहित वा लोभ वाला इति[१२] इस प्रकार का भी न[१३] नहीं है मे[१४] मेरे में विकल्पः[१५] वहम क्योंकि ज्ञानामृतम्[१६] ज्ञानरुप अमृत मैं हूं और समरसम्[१७] - एक रस भी हूं और गगनोपमोऽहम[१८] - आकाश की तरह व्यापक भी मैं हूं॥

आशय।

मैं मोह से रहित हूं या मोह वाला हूं इस प्रकार का विकल्प अर्थात वहम् मेरे में नहीं है। और फिर मैं शोक वाला हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

या शोक से रहित हूं इस प्रकार का वहम भी मेरे में नहीं है। और फिर मैं लोभवाला या लोभ से रहित हूं इस प्रकार का वहम भी मेरे में नहीं है क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत स्वरूप हूं समरस हूं और आकाश वत निर्लेप भी हूं ॥ १३ ॥

संसारसन्ततिलता न च मे कदाचित्सन्तोषसन्ततिसुखं न च मे कदाचित् ॥
अज्ञानबन्धनमिदं न च मे कदाचिज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संसारसन्ततिलता - संसार रूप प्रवाह की लता न नहीं है च चेतन स्वरूप में मेरे में कदाचित् किसी काल भी और संतोषसन्ततिसुखं संतोष रूपी सन्तति का सुख भी न नहीं है च चेतन स्वरूप में मेरे में कदाचित् किसी काल और अज्ञानबन्धनमिदं अज्ञान रूपी बन्धन भी न नहीं है च चेतन स्वरूप में मेरे में कदाचित् - किसी काल क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ज्ञान रूपी अमृत और एक रस और आकाश वत व्यापक मैं हूं

## आशय ।

हे चित! जन्म मरण रूपी संसार की लता चेतन स्वरूप मेरे में किसी समय भी नहीं है और सन्तोष रूपी सन्तति का सुख भी जो अज्ञान करके इस प्रकार भान होता है कि ये मेरा पुत्र है ये पुत्र का पुत्र है ये भी मेरे में नहीं है और नहीं किसी काल मुझे ऐसा भान ही होता है क्योंकि ये अज्ञान कार्य अज्ञान रूपी बन्धन में बन्धायमान हैं अर्थात माया रूप हैं और माया में ही रहते हैं सो मेरे में ये बन्धन भी किसी काल नहीं हैं क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत हूं और एक रस हूं और आकाश वत व्यापक रूप से असंग भी मैं हूं ॥ १४ ॥

संसारसन्ततिरजो न च मे विकारः सन्तापसन्ततितमो न च मे विकारः ॥
सत्त्वं स्वधर्मजनकं न च मे विकारो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संसारसन्ततिरजः संसार रूपी प्रवाह का जो रज है सो न नहीं है च चेतन स्वरूप में मेरे का विकारः नाश करने वाला और ऐसे ही संतापसन्ततितमः शोक रूपी प्रवाह जोकि अज्ञान रूप है यह न नहीं है च चैतन्य स्वरूप में मेरे में विकारः नाश करने वाला क्योंकि सत्त्वम् - सत्य स्वरूप हूं मैं आप ही स्वधर्मजनकम् - अपने धर्म का जनक नाम एक ही आत्मसत्य इसलिये न च मे विकारः मेरे चैतन्य स्वरूप का नाश नहीं है क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ज्ञान स्वरूप अमृत एकरस मैं हूं और आकाश वत व्यापक असंग स्वरूप वाला भी मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! ये संसार रूपी प्रवाह जो वहम अर्थात कल्पना रूप है अर्थात जन्म मरण वाला जैसा प्रतीत होता है ये रेत समान है अर्थात कुछ नहीं है अर्थात जन्म लेना और मरना यही इसकी रज अर्थात धूलि है सो चेतन स्वरूप मेरे को इससे किसी प्रकार का विकार नहीं है क्योंकि जन्म लेना और मरना मेरा कार्य नहीं है फिर इस संसार में जोकि जन्मते हैं उन्को जन्म लेने के पश्चात सन्ताप का प्रवाह चला ही जाता है। सो इस प्रकार का जो शोक रूपी प्रवाह अज्ञान रूप है ये भी चेतन स्वरूप मेरे को विकार मान नहीं करा सकता है क्योंकि मैं सत्य स्वरूप हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और मैं आप ही अपने धर्म का एक ही जनक नाम आत्म सूर्य हूं इस लिये मेरे चेतन स्वरूप का विनाश नहीं है और फिर भी ज्ञान रूपी अमृत मैं हूं और एक रस गगन की उपमा वाला मैं हूं अर्थात असंग चेतन मैं हूं ॥ १५ ॥

सन्तापदुःखजनको न विधिः कदाचित्संतापयोगजनितं न मनः कदाचित् ॥
यस्माद्दहङ्कृतिरियं न च मे कदाचिज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संतापदुःखजनकः संताप रूपी दुःखों का सूर्य नहीं है विधिः चैतन्य आत्मा कदाचित कभी भी संतापयोगजनितम् शोक रूपी जो संकल्प माया करके उत्पन्न हुआ करते हैं न नहीं है मनः मेरा अपना माया संकल्प उत्पन्न रूप कदाचित कभी भी और यस्मात् इसी प्रकार अहंकृतिः अहंकार भी अर्थात इयम् - ये जो जगत रूपी माया है न नहीं है च चेतन स्वरूप मे मेरे में कदाचित कभी भी क्योंकि ज्ञानामृतम् ज्ञान रूपी अमृत मैं हूं और समरसम् एकरस मैं हूं और गगनोपमोऽहम निर्लिप्त असंग मैं हूं।

## आशय ।

हे चित! संताप रूपी दुःखों का मूल कारण चैतन्य आत्मा नहीं है क्योंकि शोक रूपी संकल्प जो माया करके स्वर्गादि के सुख भोगों के लिये इच्छा रूप से तृष्णा रूप में उत्पन्न हुआ करते हैं ये मेरे अपने चेतन स्वरूप में तो किसी काल पर्यन्त भी नहीं हैं और इसी प्रकार अहंकार भी अर्थात ये जो जगत रूपी माया है अर्थात जिस माया रूप में माया करके अज्ञानियों को अपने अधिक योग्यता वाले को देख कर संताप रूपी दुःख उत्पन्न होता है और फिर संताप के संबन्ध से संकल्प रूपी मन भी उत्पन्न होता है अर्थात अहंकार करके नाना रूप नाना स्वरूप में कर्ता भोक्ता रूप से द्वैताद्वैत भेद वाला जो माया रूपी संसार प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है ये भी मेरे चेतन स्वरूप में नहीं है क्योंकि ज्ञान रूपी अमृत एकरस में हूं और निर्लेप असंग स्वरूप मैं हूं ॥१६॥

निष्कम्पकम्पनिधनं न विकल्पकल्पं स्वप्नप्रबोधनिधनं न हिताहितं हि ॥
निःसारसारनिधनं न चराचरं हि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निष्कम्पकम्पनिधनम् न विकल्पकल्पम् - कम्प से रहित और कम्प दोनों का नाश रूप भी और विकल्प और कल्प रूप भी मैं नहीं हूं और स्वप्न सोना और प्रबोध जाग्रत अर्थात जागना और निधनम् स्वप्न और जाग्रत दोनों का विनाश रूप भी न नहीं हूं मैं और हिताहितम् हि निश्चय करके हित और अहित रूप भी मैं नहीं हूं और निःसारसारनिधनम् न चराचरम् हि - नहीं सार से रहित और सार का भी नाश रूप मैं हूं और निश्चय करके चर अचर रूप भी मैं नहीं हूं क्योंकि ज्ञानामृतम् ज्ञान रूपी अमृत मैं हूं और समरसम् एकरस मैं हूं और गगनोपमोऽहम् - गगन की उपमा वाला भी मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! मैं कम्प रहित या सकम्प अर्थात आशा इच्छा रहित या इच्छा आशा सहित नहीं हूं और नहीं विकल्प और कल्प सहित भी हूं क्योंकि विकल्प नाम है मिथ्या भ्रम का और कल्प नाम है मिथ्या वहम

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

का सो श्रुति प्रमाण " कम्पो कल्प विकल्पो नामात माया आशाया ये दासास्ते दासाः ॥ आशा येषां दासी तेषां दासायते विश्वं ऽहमेकमव्ययम् " अर्थात कम्पः रूप जो भय है और कल्पविकल्पः रूप जो मिथ्या भय का वहम रूपी संसार है यही नाम है माया का कि जो आशारूपमें दासों की दास अर्थात स्वार्थ तृष्णा रूप में संसार का स्वरूप बन रही है। और आशा जिस प्रकार दासी का रूप धारण किई हुए संपूर्ण विश्व के स्वरूप से जिसकी दासी बनी हुई है वह मैं ही एक अविनाशी स्वरूप हूं। इसलिये " वासो बहूनामकालोऽहं ना स्वप्न जाग्रतो " श्रुति प्रमाण जो न स्वप्न है न जाग्रत है और अकाल रूप से ही अनंत नाम रूप में निवास करते हुए नित्य केवल्य स्वरूप है मैं हूं क्योंकि सोना और जागना ये दोनों मेरे में नहीं हैं और हित तथा अहित भी मैं नहीं हूं और न निस्सार हूं और न सार युक्त हूं न चर हूं न अचर हूं तथा नित्य ज्ञान स्वरूप एकरस हूं और व्यापक मैं हूं ॥ १६ ॥

नो वेद्यवेदकमिदं न च हेतुतर्क्यं वाचामगोचरमिदं न मनो न बुद्धिः ॥
एवं कथं हि भवतः कथयामि तत्त्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १८ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नः हम आप - वेद्यवेदकम् - वेद हैं और वेद के जानने वाले इदम् अनंत चेतन ब्रह्म हैं और न नहीं हैं च चेतन आत्मा ब्रह्मरूपसे हेतुतर्क्यम् - कारण और तर्क रूप कार्य वाचाम् वाणी का अगोचरम् गुप्तरूप क्योंकि - इदम् यह हमारा आत्मा ब्रह्म न नहीं है मनः मन रूप माया न बुद्धिः ज्ञान रूपी विद्या के रूप में बुद्धिः तथा कोई वेद भी नहीं है । एवम् - इसी प्रकार कथम् कैसे कहूं मैं कि हि निश्चय करके भवतः आत्मा आप ही होता हूं मैं कथयामि कैसे प्रकट करूं मैं तथा बता दूं कि मैं तत्त्वम् आप ही यथार्थ हूं और ज्ञानामृतम् आप ही ज्ञान स्वरूप अमृत हूं और समरसम् एकरस हूं और गगनोपमोऽहम् स्वतन्त्र मैं हूं

## आशय ।

हे चित! हम आप ही वेद हैं और आप ही वेद के तथा अपने जानने वाले हैं हम आप ही अनंत चेतन ब्रह्म हैं और कैसे ब्रह्म हैं कि जिस स्वरूप में कारण और कर्म तर्क रूप कार्य अर्थात वाणी और वाणी के गुप्त विषय मन बुद्धि रूप उस हमारे चेतन ब्रह्म रूप में नहीं हैं अर्थात इस आत्मा स्वरूप में मन रूपी माया और ज्ञान रूपी विद्या के रूप में कोई वेद अर्थात बुद्धि रूप बुद्धि भी नहीं है तो कैसे कहूं मैं कि निश्चय करके मैं आप ही वह आत्मा ब्रह्म होता हूं कैसे कहूं मैं कि मैं आप ही यर्थात स्वरूप आत्मा हूं । क्योंकि मैं ज्ञानस्वरूप अमृत हूं और एकरस हूं और आकाश के तुल्य असंग और स्वतन्त्र मैं हूं ॥ १८ ॥

निर्भिन्नभिन्नरहितं परमार्थतत्त्वमन्तर्बहिर्न हि कथं परमार्थतत्त्वम् ॥
प्राक्संभवं न चैतन्न हि वस्तु किञ्चिज्ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ १९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निर्भिन्नभिन्नरहितम् - अभिन्न स्वरूप आत्मा भिन्नता भेदन क्रिया के कर्म और कर्ता पने से रहित है और परमार्थतत्त्वम् यथार्थ करके परमार्थ स्वरूप है अन्तर्बहिः भीतर और बाहर किसी के भी न हि निश्चय करके नहीं है क्योंकि वही आत्मा कथम् - प्रत्यक्ष में ही कैसा है परमार्थतत्त्वम् - परमार्थ सार है भेद से रहित है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राक्संभवम्- पूर्व तथा पहले होना और फिर न होना ये बात भी न च नहीं है उस आत्मा में और न तम् आत्मा किसी में लिप्त भी न नहीं है और हि निश्चय करके वस्तु किञ्चित् आत्मा से अतिरिक्त और कोई वस्तु भी नहीं है क्योंकि जो आत्मा है वह ही ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम्- ज्ञानस्वरूप अमृत एकरस व्यापक मैं हूं।

आशय ।

हे चित- आत्मा मोहादि रहित परमार्थ तत्व भीतर बाहर आदि व्यवहार से शून्य है पहले किसी समय में भी उसका होना सम्भव नहीं किसी पदार्थ में भी वह लिप्त नहीं है और कोई पदार्थ भी वह नहीं है क्योंकि आत्मा ज्ञान स्वरूप नाश से रहित सदा आनंद मय और आकाश के समान व्यापक निर्लिप्त है सोई आत्मा मैं हूं ॥ १९ ॥

रागादिदोषरहितं त्वहमेव नत्वं दैवादिदोषरहितं त्वहमेव नत्वम् ॥
संसारशोकरहितं त्वहमेव नत्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

रागादिदोषरहितं- इच्छा के दोषों से रहित त्वहमेव- निश्चय करके मैं आप ही तत्वम् यथार्थ हूं और दैवादिदोषरहितं सर्व प्रकार के दुखों के दोषों से रहित होकर भी त्वहमेव मैं आप ही निश्चय करके नत्वम् निश्चय स्वरूप हूं और फिर संसारशोकरहितं संसार के सब शोकों से रहित होकर भी त्वहमेव तत्वम् निश्चय करके मैं आप ही सत्य स्वरूप हूं और फिर ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम- ज्ञान रूप अमृत एकरस गगनवत्

आशय

हे चित्! रागद्वेषादिक दोषों से रहित आत्मतत्व मैं हूं और जितने कि दैव आदि दोष हैं अर्थात आधिदैविक दोष जोकि गुण प्रकृति अनुकूल दुःख होते हैं १ और जोकि आत्म आदिक भूतों से दुःख होते है २ और जोकि ग्रहों से दुःख होते हैं ३ ये तीन प्रकार के दुःख दैव आदि दोष कहे जाते हैं। इन सर्व प्रकार के दुःख और दोषों से मैं रहित हूं क्योंकि मैं आप ही निश्चय करके निश्चय स्वरूप हूं और संसार रूपी शोक से भी मैं रहित हूं अर्थात किसी भी भ्रम रूपी देव और भूत और ग्रह आदि करके संसार में किसी प्रकार का शोक और दुःख मोमुक्ष को दृढ़ता में दुःख का देने वाला नहीं है। क्योंकि निश्चय करके मैं ज्ञान रूप अमृत हूं और एकरस गगन वत स्वतन्त्र मैं हूं ॥ २० ॥

स्थानत्रयं यदि च नेति कथं तुरीयं कालत्रयं यदि च नेति कथं दिशश्च ॥
शान्तं पदं हि परमं परमार्थ तत्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

स्थानत्रयं जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप तीन स्थान यदि च न जबकि चेतन में नहीं हैं तब फिर इति अन्त की यह बात भी कथम् कैसे कही जाए कि आत्मा तुरीयम् तुरीय स्थान रूप है अर्थात कालत्रयम भूत भविष्यत् वर्तमान ये तीन काल रूप है यदि च न जबकि ऐसा नहीं है तब फिर इति इस प्रकार कथम् कैसे कहा जाए कि आत्मा दिशः च दिशा अर्थात देश और च अर्थात काल रूप वस्तु है क्योंकि आत्मा शान्तम् पदम् शान्त स्वरूप पुंज है और हि वही निश्चय करके परम- अपार स्वरूप से परमार्थ तत्वम- अपार अर्थ से यथार्थ वस्तु है और ज्ञानामृतम् ज्ञान रूपी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अमृत है और समरसम् एकरस है और गगनोपमः आकाशवत है और वही अहम् मैं आपही हूं ॥

## अन्वय ।

हे चित! जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्था स्थान हैं सो ये तीनों स्थान भी वास्तव से आत्मा में नहीं हैं तब फिर चेतन आत्मा तुरीय अर्थात सोने वाला जागने वाला और मूर्छा वाला इन तीन स्वरूप वाला अर्थात काल रूपमें भूत भविष्यत और वर्तमान रूप वाला कैसे होसकता है कभी नहीं होसकता क्योंकि वह देश काल वस्तु नहीं है। वह ब्रह्म शान्तरूप है और निश्चय करके अपार स्वरूपसे और परं अर्थ रूपसे यथार्थ वस्तु है और ज्ञान रूपी अमृत है और एकरस है और आकाशवत असंग है सो जो ऐसा आत्मा ब्रह्म है वही मैं हूं ॥ २१ ॥

दीर्घो लघुः पुनरितीह न मे विभागो विस्तारसंकटमितीह न मे विभागः ॥
कोणं हि वर्तुलमितीह न मे विभागो ज्ञानामृतम समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

दीर्घः - लघुः - पुनः - इति - इह - न - मे - विभागः - बड़े - छोटे - और - इसी प्रकारसे - इस आत्मा में नहीं है मेरा किसी प्रकार से कोई विभाग अर्थात फर्क और विस्तारसंकटम् विस्ताररूपी संसार रूपमें संकोच भी अर्थात इति - इह - न - मे - विभागः अन्तवाला इस आत्माका नहीं है स्वरूप मेरे किसी विभागसे भी कोणम् त्रिकोणादि हि - निश्चय करके वर्तुलम् - मूलाकार और इति अन्त वाली आकृतियां हैं इह इस संसार रूपी विस्तार वाली माया में और न - मे - विभागः नहीं है इस प्रकार से इस जगत में मेरा कोई विभाग क्यों कि मैं ज्ञानामृतम ज्ञान रूपी अमृत हूं और समरसम् एकरस हूं और गगनोपमोऽहम् आकाशवत व्यापक भी मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! मेरे आत्मा स्वरूप में छोटे बड़े का किसी प्रकारसे कोई भेद भाव नहीं है और नहीं विस्तार रूपी संसार में किसी प्रकार का कोई विस्तार और संकोच भी क्योंकि ये सब ही है अन्त वाला और नहीं है ये आत्मा में आत्माका स्वरूप किसी विभाग के साथ कारण ये है कि त्रिकोणादि में चतुष्कोणादिक और चतुष्कोणादिक में गोलार आदिक जो निश्चय करके मूलाकार और अन्त वाली आकृतियां हैं ये सब संसार रूपी माया में संसार रूपी माया का मायावी रूपहैं कि जिसमें मेरे आत्मा स्वरूप का किसी प्रकारसे कोई विभाग नहीं है क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत हूं एकरस हूं और आकाशवत असंग निर्लेप विनाशसे रहित अविनाशी स्वयं स्वतन्त्र मैं हूं ॥ २२ ॥

मातापितादि तनयादि न मे कदाचिज्जातं मृतं न च मनो न च मे कदाचित ॥
निर्व्याकुलं स्थिरमिदं परमार्थतत्त्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मातापितादि - माता और पिता आदिक और तनयादि देहरूपी स्त्री आदिक न मे कदाचित नहीं है मेरे कोई भी किसी काल और जातम् जन्म लेना और मृतम् मरजाना ये भी न च नहीं है चेतन स्वरूप मेरे में और मनः मनभी न च मे कदाचित - नहीं है चेतन स्वरूप मेरे में किसी काल भी क्योंकि निर्व्याकुलम् व्याकुलतासे रहित और स्थिरम् स्थिर रूप से इदम् एकही अनंतस्वरूप आत्मा परमार्थतत्त्वम् परं यथार्थ स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और ज्ञानामृतम् ज्ञान रूप अमृत है और समरसम् एकरस है और गगनोपमोऽहम् गगन वत है और वही आत्मा मैं हूं

आर्य ।

हे चित! मेरे माता पिता और स्त्री पुत्रादिक कोई भी किसी काल नहीं उत्पन्न हुए हैं क्योंकि जन्म लेना और मरजाना ये भी चेतन स्वरूप मेरे में किसी काल नहीं है और नहीं मन ही कोई वस्तु है अर्थात चेतनस्वरूप मेरे में मन भी किसी काल नहीं है क्योंकि व्याकुलता से रहित और स्थिररूपसे जो एक ही अनंत स्वरूप आत्मा है और जो परमार्थसे ही यथार्थ है अर्थात सत्य वस्तु है और ज्ञान स्वरूप अमृत है और एकरस है और गगनवत असंग है वही आत्मा मैं हूं।

शुद्धं विशुद्धमविचारमनन्तरूपं निर्लेपलेपमविचारमनन्तरूपम् ॥
निष्खण्डखण्डमविचारमनन्तरूपं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

शुद्धम् आत्मा शुद्धस्वरूप है और विशुद्धम् विशेषकरके शुद्ध तथा पवित्र है और अविचारम् विचारसे रहित है और अनन्तरूपम् अनंतरूप और अनंत स्वरूप वाला है और निर्लेपलेपम् निर्लिप्त तथा स्वतन्त्र होने पर भी बन्धन के भाव सम्बन्ध रूप आकृति तथा देहात्म रूप स्मृति के अर्थात मुक्त होने के हेतु बन्धन के अविचारम् - विचारसे रहित है क्योंकि अनंतरूपम् आत्मा का अनंत स्वरूप है और निरखण्डखण्ड नाशसे भी वह रहित है अर्थात अखण्ड एकही स्वरूप है इसलिये - अविचारम् विचार से रहित है और अनंतरूप अनंत स्वरूप वाला है इसलिये ज्ञानामृतम् ज्ञान रूपी अमृत है और समरसम् एकरस है और गगनोपमः आकाशवत स्वतन्त्र और असंग है और जो ऐसा है वही अहम् - मैं आप ही हूं ॥

आर्य ।

हे चित! मैं आत्मा शुद्ध हूं और विशेषकरके शुद्ध हूं और विचार से मैं रहित हूं अर्थात मेरे अनंत रूप और अनंत स्वरूप में विचार की गम्य नहीं है क्योंकि मैं निर्लिप्त तथा स्वतन्त्र हूं इसलिये बन्धन के विचार से रहित हूं अर्थात किसी प्रकार का बन्धन मेरे आत्मा स्वरूप में नहीं है क्योंकि मैं अनंत स्वरूप हूं और फिर नाश से भी रहित हूं इसलिये विचार से रहित अनंत हूं और ज्ञान रूपी अमृत हूं और एकरस व्यापक भी मैं हूं ॥२४॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः कथमत्र सन्ति स्वर्गादयो वसतयः कथमत्र सन्ति ॥
यद्येकरूपममलं परमार्थतत्त्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ब्रह्मादयः आदि ब्रह्म से सुरगणाः १६ स्वर नाम रूप देवताओं का समूह जो अ आ इ ई इत्यादि हैं कथम् कैसे अत्र आदि ब्रह्म में एक पुरुष तीन स्वरूप सन्ति - होसकते हैं और स्वर्गादयः स्वर्गादिक जो स्वर्ग के स्वरूप वसतयः वस्तियों के रूप में आकृति रूप हैं कथमत्र कैसे एक ब्रह्म पुरुष में सन्ति होसकते क्योंकि यदि एकरूपम् अमलम् जो एकही शुद्धब्रह्म है वही परमार्थतत्त्वम् परमार्थस्वरूपतत्त्व है और ज्ञानामृतम् ज्ञान स्वरूप अमृत है समरसम् एकरस है और गगनोपमः असंग है और वही अहम् मैं हूं

आर्य ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हे चित! जो एक ही शुद्ध ब्रह्म है वही परमार्थ स्वरूप से यथार्थ भी है सो उस आदि ब्रह्म में १६ स्वर नामरूप देवता-गण का समूह जो अ आ इ ई उ ऊ ऐ ऐ ओ औ इत्यादि १६ स्वर रूप हैं ये आदि ब्रह्म में एक ही पुरुष रूप में तीन स्वरूप जीव[1] ब्रह्म[2] प्रकृति[3] अर्थात स्वर रूप तीन प्रकार की आकृति एक ही पुरुष रूप में किसी प्रकार नहीं हो सकती हैं क्योंकि जो एक ही ब्रह्म आत्मा है वह ज्ञान स्वरूप अमृत है और एक रस है और आकाश की तरह निर्लेप है असंग है स्वतन्त्र है और उसमें रूप आकृति और स्वर आदि से कोई वस्तु नहीं है सोई मैं आपहूं ॥ २५ ॥

निर्नेनिनेति विमलो हि[3] कथं[2] वदामि निःशेष[5] शेष[4] विमलो हि[6] कथं[2] वदामि ॥
निर्लिङ्ग[9] लिंग[8] विमलो हि[10] कथं[11] वदामि[12] ज्ञानामृतं[13] समरसं[15] गगनोपमोऽहम्[16] ॥ २६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

निर्नेनिनेति[1] विमलः - आत्मा रहित है सब प्रपंच प्रकृति रूप आकृतियों और स्वरूप श्रुति स्मृतियों से क्योंकि वह शुद्ध है और हि[2] निश्चय करके कथम्[3] कैसे वदामि मैं कहूंकि निःशेष[5] शेष[4] विमलः मेरा आत्मा स्वरूप शेष से रहित शेष है और शुद्ध है और हि[6] निश्चय स्वरूप है कथम्[7] सो ऐसा भी कैसे - वदामि मैं आत्मा को कहूं क्योंकि निर्लिङ्ग[9] लिङ्ग[8] विमलः - चिह्न से रहित और आकृति से शुद्ध आत्मा है और हि[10] निश्चय करके कथम्[11] ऐसा भी कैसे वदामि[12] - मैं आत्मा को कथन करूं क्योंकि आत्मा ज्ञानामृतम्[13] ज्ञान स्वरूप अमृत है और समरसम्[15] - एक रस है और गगनोपमः[16] आकाश वत निर्लेप है और वही असंग आत्मा अहम्[17] मैं ही हूं

## आशय ।

हे चित! नेतिनेति श्रुति कि जिसका ये अर्थ है कि आत्मा रहित है सब प्रपंच प्रकृति रूप आकृतियों और श्रुति स्मृतियों से क्योंकि प्रकृति रूप आकृति और श्रुतिस्मृति रूपमें जो जगत प्रपंच है ये तीन काल में भी नहीं है ब्रह्म आत्मा में क्योंकि आत्मा शुद्ध स्वरूप है और जगत तीन काल में भी सत्य नहीं है इसलिये निश्चय करके आत्मा शुद्ध है और सब का शेष होने से विमल है अर्थात माया मल से रहित है इसलिये आत्मा निश्चय करके निश्चय स्वरूप है और उसका कोई चिह्न नहीं है क्योंकि वह ज्ञानरूप अमृत एकरस असंग है और वही मैं हूं॥२६॥

निष्कर्म[1] कर्म[2] परमं[3] सततं[4] करोमि[5] निःसंग[6] संग[7] रहितं परमं[8] विनोदम् ॥
निर्देह[9] देह[10] रहितं सततं[11] विनोदं[12] ज्ञानामृतं[13] समरसं[14] गगनोपमोऽहम्[15] ॥ २७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निष्कर्म[1] कर्म परमम्[2] - मैं कर्म से रहित हूं तथा महान कर्म स्वरूप हूं सततम्[3] सत्य रूप हूं और करोमि[4] मैं ही कर्ता हूं तो भी निःसंग[6] संग[5] रहितम् कर्मों से स्वतन्त्र और उनके फल भोग से असंग अर्थात रहित भी हूं क्योंकि परमं[8] विनोदम्[7] - मैं महान आश्चर्य वत स्वरूप हूं और निर्देह[9] देह[10] रहितम् देह से रहित हूं और देह से रहित होकरके भी सततम्[11] निरन्तर हूं और विनोदम्[12] आश्चर्यवत हूं अर्थात ज्ञानामृतम्[13] ज्ञान रूपी जो अमृत है मैं हूं और समरसम्[14] एकरस मैं हूं और गगनोपमोऽहम्[15] आकाश की उपमा वाला भी मैं हूं

## आशय ।

हे चित! मैं कर्म रहित हूं तोभी महान कर्म स्वरूप हूं अर्थात निरन्तर नाना प्रकार के कर्मों का मैं ही कर्ता हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तो भी कर्मों से स्वतन्त्र और उनके फल भोग से असंग अर्थात रहित ही रहता हूं क्योंकि महान आश्चर्य वत स्वरूप हूं कि सदा विनोद करता हूं और फिर मैं देह से भी रहित हूं और देह से रहित होकर के भी मैं ही आश्चर्य वत निरन्तर हूं कि सदा आनन्द रहता हूं क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत हूं एक रस हूं अर्थात अभा हूं आकाश की उपमा वाला हूं और निर्लेप वा व्यापक भी मैं ही हूं ॥ २७ ॥

माया प्रपंच रचना न च मे विकारो कौटिल्य दम्भ रचना न च मे विकारः ॥
सत्या नृते निरचना न च मे विकारो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

माया प्रपंच रचना - माया रूपी प्रपंच की जो रचना है ये - न च मे विकारः नहीं है चेतन स्वरूप मेरे को विकार मान - और कौटिल्य दम्भ रचना - करोड़ों दम्भ रचना भी न च मे विकारः नहीं है चेतन स्वरूप मेरे को विकार मान और सत्या नृते निरचना माया की मिथ्या रचना भी न च मे विकारः नहीं है चेतन ब्रह्म मेरे को विकार मान क्योंकि ज्ञानामृतम् समरसं गगनोपमोऽहम् ज्ञान रूपी अमृत एक रस आकाश वत मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! माया प्रपंच रचना जो ये संसार है ये मेरे चेतन ब्रह्म स्वरूप का विकार नहीं है। और करोड़ों प्रकार का जो कुटिलता करके माया का संसार रूप में कपट ढोंग आदि है ये भी मेरे चेतन ब्रह्म स्वरूप के विकार का हेतु नहीं है और इसमें अर्थात संसार रूपी माया रचना में जितनी भी माया की असत्य प्रकार की मिथ्या रचना है और ये सब सत्य जैसी करके प्रतीत होती है क्योंकि नाम ही इसका सत्य की असत्य रचना है सो ये भी मेरी ब्रह्म आत्मा चैतन्य स्वरूप को विकार मान नहीं है क्योंकि मैं ज्ञान रूपी अमृत एक रस हूं और आकाश वत असंग भी मैं हूं ॥ २८ ॥

सन्ध्यादि काल रहितं न च मे वियोगो ह्यन्तः प्रबोध रहितं बधिरो न मूकः ॥
एवं विकल्प रहितं न च भाव शुद्धं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

सन्ध्यादि काल रहितम् - सिन्धी रूप जो काल हैं उनसे मैं रहित हूं किंतु न च मे वियोगः नहीं है साक्षी स्वरूप मेरे का संध्यादिक कालों से कोई योग क्योंकि हि अन्तः प्रबोध रहितम् बधिरः निश्चय करके जो सिन्धी रूप में काल का अन्त रूप है वही बुद्धि से रहित माया का बहरा स्वरूप है और न मूकः नहीं हूं मैं चेतन साक्षी इस न सुनने वाली माया में गूंगा - एवं इसलिये विकल्प रहितम् न च भाव शुद्धम् माया विकल्प से रहित नहीं है और चेतन करके चेतन रूप में निर्मल तथा यथार्थ भी नहीं है क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमो अहम् - जो ज्ञान स्वरूप अमृत है और एक रस है और आकाश वत ब्रह्म चेतन है वही मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! सिंधी रूप और काल रूप में जो वर्तमान काल संध्या और मध्याह्न और सायं इत्यादि के दिन और रात्रि के रूप में प्रतीत होते हैं इनसे मैं रहित हूं किंतु साक्षी स्वरूप मेरे का संध्यादिक कालों से कोई भी योग नहीं है क्योंकि कालकृत भेद भी मेरे चेतन स्वरूप में नहीं है आत्मा सर्व कालों में एक रस है इस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कारण काल रूपों से मेरा कोई व्योग नहीं है और प्रत्यक्ष रूप में आप ही अकाल काल हूं क्योंकि निश्चय करके सिंधि और काल रूप में जो काल का अन्त रूप है वही अन्तर के ज्ञान से अर्थात बुद्धि से रहित है और यही माया का बहरा स्वरूप है किंतु इस माया के बहरे स्वरूप में मैं चेतन साक्षी स्वरूप इस न सुनने वाली माया में बहरा और गूंगा नहीं हूं। इसलिये ये माया जो तीन काल रूप में सृष्टि क्रम का कर्म रूप बन रही है ये माया न तो कल्पना से रहित है और नहीं चेतन करके चेतन भाव से शुद्ध और निर्मल ही है क्योंकि जो चेतन विकल्प से रहित और निश्चित अर्थात चित रहित निर्मल और यथार्थ है और ज्ञान स्वरूप अमृत है अर्थात शुद्ध स्वरूप है और एकरस ही रहने वाला है और आकाशवत गगन रूप असंग और स्वतन्त्र है वही आत्मा ब्रह्म मैं आप ही हूं ॥ २९ ॥

निर्नाथनाथरहितं हि निराकुलं वै निश्चिंतचिंतविगतं हि निराकुलं वै ॥
संविद्धि सर्वविगतं हि निराकुलं वै ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम ॥ ३० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निर्नाथनाथरहितम् - नाथ तथा स्वामी रहित हूं और नहीं किसी का मैं स्वामी ही हूं और हि निराकुलं वै निश्चय करके कुल रूपी व्याकुलता से भी मैं रहित हूं और फिर आप ही निश्चय करके निश्चिंतचिंतविगतं मैं अचिन्त चेतन हूं और चिंत से भी रहित हूं और हि निराकुलम् वै - निश्चय करके कुल से भी रहित मैं हूं और संविद्धि - एकरस सब कुछ जानने वाला मैं हूं और सर्वविगतम् - सब से रहित भी मैं हूं इसलिये हि निराकुलम् वै निश्चय करके मैं कुल से रहित हो करके भी मैं आप ही - ज्ञानामृतम् ज्ञान स्वरूप अमृत हूं और समरसम् एकरस भी हूं और गगनोपमोऽहम गगन की उपमा वाला भी मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! मेरा कोई भी नाथ अर्थात स्वामी नहीं है और मैं भी किसी का नाथ अर्थात स्वामी नहीं हूं क्योंकि मेरे से अन्य और भिन्न निश्चय करके व्याकुलता रूप में कुल रूप से दूसरा कोई नहीं है इसलिये मैं आप ही अचिन्त चेतन हूं और चिंत से भी रहित हूं और निश्चय करके कुल से भी रहित हूं और सर्वगत रूप से एकरस सब कुछ जानने वाला भी मैं हूं और फिर सब कुछ से रहित भी मैं आप ही हूं इसलिये मैं निराकुल कुल से रहित आप ही आप हूं क्योंकि ज्ञान रूपी अमृत मैं हूं और एकरस भी मैं हूं और आकाशवत व्यापक और असंग भी मैं हूं ॥ ३० ॥

कान्तारमिन्द्रियमिदं हि कथं वदामि संसिद्धसंशयमिदं हि कथं वदामि ॥
एवं निरन्तरसमं हि निराकुलं वै ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

कान्तारम् - प्रकाशमान आत्मा एक ही है और अन्द्रियम् इन्द्रियों से रहित निर्जन वे रूप है और इदम् वे आत्मा हि निश्चय करके कथम् कैसे वदामि - मैं कहूं कि संसिद्धसंशयम् आत्मा सर्व सिद्ध स्वरूप और सर्व प्रकार के संशयों से रहित है और इदम् इस संसार माया रूप में हि निश्चय करके आत्मा कथम् कैसा है क्या है कैसे किस प्रकार से वदामि मैं कथन करूं क्योंकि आत्मा एवम् एक ही शान्ति सरोवर है और वही निरन्तरसमम् नित्य है एकरस है और हि निश्चय करके निराकुलम् वै व्याकुलता रहित निश्चयस्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और ज्ञानामृतम्[१८] ज्ञान स्वरूप अमृत है और समरसम्[१९] एकरस है वा गगनोपमः निसंग है और मैं[२०] ही

## आशय ।

हे चित! इन्द्रियों से रहित निर्जन बेरूप प्रकाशमान आत्मा एक ही है। और निश्चय करके सर्व सिद्ध स्वरूप है और सर्व प्रकार के संशयों से रहित है और इस संसार माया रूप में जो एक शून्य मन्दिर रूप है और सत्य असत्य आदि माया संज्ञायों करके युक्त है। निश्चय करके आत्मा कैसा है क्या है कैसे किस प्रकार से मैं कथन करूं कि अद्वैत एक ही शान्त सरोवर है और वही नित्य है और निरन्तर है और निश्चय करके व्याकुलता[१३] रहित है और विश्रान्ति स्वरूप है और उसी आत्मा में जो नित्य एकरस है और निराकुल है। ये जगत जो मूल कारण से रहित है प्रवाहरूप करके व्यापक है और उस आत्मा का इस प्रवाहरूपी जगत से कोई भी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि आत्मा सत्य है और जगत असत्य है और केवल आत्मा ही मूल कारण है ज्ञानस्वरूप अमृत है और एकरस है कि जिसमें ये जगत आपसे आप है और जगत आप ही आप नष्ट होता और बनता रहता है क्योंकि आत्मा गगनोपमः अर्थात आकाशवत असंग है निर्लेप है स्वतन्त्र है और जो एक ही ऐसा आत्मा है वही अद्वैत असंग मूल कारण मैं आप ही हूं कि प्रकाशमान व्यापक हूं ॥ ३१ ॥

निर्जीव[१] जीव[२] रहितं सतं[३] तं विभाति निर्बीज[४] बीज[५] रहितं सतं[६] तं विभाति ॥
निर्वाण[७] बन्ध[८] रहितं सतं[९] तं विभाति ज्ञानामृतं[१०] समरसं[११] गगनोपमोऽहम्[१२] ॥ ३२ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

निर्जीव[१] जीव रहितम् जड रूपी माया और जीव रूपी काया से मैं रहित हूं और सतं[२]तम् मैं ही सत्य स्वरूप हूं अर्थात ऐसा ही विभाति[३] मेरे को अपने आपको मुझको भान होता है कि निर्बीज[४] बीज रहितम् मैं न तो कोई बीज हूं और नहीं बीज से रहित हूं केवल सतं[५]तम् सत्य स्वरूप हूं और ऐसा ही विभाति[६] मेरे को भान भी होता है क्योंकि निर्वाण[७] बन्ध[८] रहितम् सुख और दुःख दोनों से रहित मैं हूं और सतं[९]तम् सत्य स्वरूप मैं हूं और ऐसा ही विभाति[१०] आपसे आप अपने ही प्रकाश का चमत्कार स्वरूप का मुझको भान भी होता है अर्थात निश्चय है कि ज्ञानामृतम्[११] ज्ञान स्वरूप अमृत रूप मैं हूं और समरसम्[१२] एकरस मैं हूं और गगनोपमोऽहम् आकाशवत मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! निर्जीव नाम माया का है कि जिसमें आत्मा चेतन नहीं रहता है और जीव नाम माया रूपी काया का है इसमें भी आत्मा नहीं रहता है इसलिये आत्मा जीव और निर्जीव दोनों से रहित है क्योंकि आत्मा सत्य स्वरूप व्यापक चेतन पदार्थ है निरन्तर भानु रूप है और ऐसा ही मुझको भान भी होता है क्योंकि माया मिथ्या है। और आत्मा जो ब्रह्म चेतन है निर्बीज है अर्थात बीज कारण से रहित है और आप भी किसी का उपादान कारण नहीं है क्योंकि केवल आत्मा सत्य स्वरूप है और ऐसा ही निरन्तर मेरे को भान भी होता है और फिर सुख और दुःख दोनों से रहित है अर्थात निर्वाण मोक्ष स्वरूप है बन्धन से रहित है और सत्यस्वरूप का निश्चय करके भानु है अर्थात आत्मा प्रकाश का कोरा चमत्कार का भन्डार पूर्ण है और निश्चय करके ज्ञान स्वरूप अमृत है और सर्वकाल में एकरस ही रहने वाला है और आकाश के तुल्य निर्लेप और स्वतन्त्र है सो ऐसा जो असंग रूप आत्मा है सो वह आत्मा मैं आपही हूं ॥ ३२ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संभूतिवर्जितमिदं सततं विभाति संसारवर्जितमिदं सततं विभाति ॥
संहारवर्जितमिदं सततं विभाति ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संभूतिवर्जितम् - माया कार्य प्रपंच से रहित - इदम् इस मायारूपी जगत में आत्मा है और वही सततम् सत्य है निरन्तर है और ऐसा ही विभाति मेरे को भान भी होता है और संसारवर्जितम् संसार से भी रहित इदम् इस मायारूपी संसार में चेतन आत्मा है और सततम् और आत्मा सत्य स्वरूप है और ऐसा ही विभाति मेरे को प्रकट भी होता है और संहारवर्जितम् - नाश से भी रहित इदम् - इस जगत में ब्रह्म आत्मा है और सततम् निरन्तर सत्य स्वरूप है और ऐसा ही विभाति मेरे को प्रकाश भी होता है क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् जो आत्मा ज्ञान स्वरूप अमृत है और निरन्तर एकरस है और आकाश की उपमा वाला है अर्थात स्वतन्त्र और असंग है वह मैं आप ही हूं

## आशय ।

हे चित्त ! माया कार्य प्रपंच की जो रचना वे संसार है इसमें ब्रह्म चेतन अर्थात आत्मा निरन्तर सत्यस्वरूप है और ऐसा ही मेरे को भान भी होता है । क्योंकि संसार में जितना ईश्वर्य है सो सब माया का कार्य है । और ईश्वर्य नाम ब्रह्म चेतन के उस आभास का है कि जो माया में इसी प्रकार पड़ता है कि जिस प्रकार दर्पण में सूरत का आभास पड़ता है इसलिये वह ब्रह्म चेतन माया और माया के कार्यों से रहित अर्थात स्वतन्त्र है और फिर ये ब्रह्म चेतन जन्म मरण रूपी संसार से भी रहित ही है क्योंकि व्यापक चेतन में जन्मादिक नहीं बनते हैं इसलिये ये व्यापक चेतन संहार से भी रहित है अर्थात इसका कभी नाश नहीं होता है क्योंकि ऐसा जो ज्ञान स्वरूप अमृत आत्मा है और एक रस व्यापक है वही गगन वत सबसे स्वतन्त्र और असंग मैं ही ब्रह्म आत्मा हूं कि आदि आकाश सत्य स्वरूप हूं ॥ ३३ ॥

उल्लेखमात्रमपि तेन च नामरूपं निर्भिन्नमपि तेन हि वस्तु किञ्चित् ॥
निर्लज्जमानस करोषि कथं विषादं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

उल्लेखमात्रम् - नाम मात्र को भी किञ्चित् अपि निश्चय करके ते तेरा हे चित न च नहीं है चेतन स्वरूप में नामरूपम् कोई नाम और रूप और निर्भिन्नमभिन्नम् भेद से रहित होकर के फिर भिन्नता का कोई भेद भी अपि निश्चय करके क्योंकि ते तेरे से न नहीं है हि निश्चय करके कहीं भी वस्तु कोई पदार्थ - किञ्चित् अंश मात्र को तथा नाम मात्र को भी किञ्चित करके निर्लज्जमानस - लज्जा से रहित होकर हे मन मनुइन्द्र करोषि किस लिये तू करता है कथम् क्यों विषादं दुःख क्योंकि तू ज्ञानामृतम् आप ज्ञान स्वरूप अमृत है और समरसम् एकरस है और गगनोपमः आकाश वत व्यापक है और वही अहम् मैं आप हूं ॥

## आशय ।

हे चित्त ! किंचित मात्र भी तेरा कोई नाम और रूप निश्चय करके नहीं है क्योंकि तू भिन्न भिन्नता के भेद से रहित है तेरे स्वरूप में भेद उत्पन्न करने वाली कोई भी वस्तु नहीं है इसलिये लज्जित होकर किसी बात पर भी रुदन करना तेरे को नहीं बनता क्योंकि तू ज्ञान अमृत एकरस आकाश वत है और जो ऐसा है सो मैं हूं ॥ ३४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किं नाम रोदिषि सखे न जरा न मृत्युः किं नाम रोदिषि सखे न च जन्म दुःखम् ॥
किं नाम रोदिषि सखे न च ते विकारो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

किम् क्यों किस नाम: अर्थ के लिये रोदिषि रुदन करता है तू सखे हे चित सखे न जरा नहीं है कोई जरा अवस्था अर्थात जीवन अवस्था और न मृत्युः नहीं है मृत्यु भी फिर किम् नाम रोदिषि सखे किस हेतु से रुदन करता है तू मित्र जबकि न च जन्म दुःखम् नहीं है चेतन ब्रह्म को जन्म का कोई दुःख अर्थात आत्मा रहित है सब प्रकार के दुःखों से तब किम् नाम रोदिषि सखे किस अर्थ के लिये रुदन करता है हे मित्र न च ते विकारः नहीं है चेतन आत्मा तेरे को किसी प्रकार का विकार भी क्योंकि तू आप ज्ञान अमृतम् सम: सम् गगन् उपम: वेद का जानने वाला ज्ञान स्वरूप और वेद और है अमर और अमृतस्वरूप और केवल एक आत्मा एकस्वरूप एवं ब्रह्म उपमः रहित और वही अहम् हूं मैं आप ॥

## आशय ।

हे चित! क्या तू जरा मृत्यु का भय करके रुदन करता है अथवा किसी नाम के हेतु रुदन करता है यदि ऐसा है तो जान ले कि नहीं है चेतनस्वरूप तेरे को जन्म और मृत्यु और नहीं है कोई दुःख भी तेरे को और नहीं है विकार भी चेतन स्वरूप तेरे को क्योंकि तू आप ही है वेद का जानने वाला ज्ञान स्वरूप वेद और अमर अमृतस्वरूप है और केवल एक आत्मा एक स्वरूप एवं ब्रह्म है उपमा रहित है कि तेरी कोई उपमा नहीं है कि तू आप ही अपनी वह उपमा है कि जिसके अन्य व्यापक रूप में और कोई उपमा नहीं है और जो ऐसा निश्चयरूप है मैं हूं ॥ ३५ ॥

किं नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपं किं नाम् रोदिषि सखे न च ते वितथं ॥
किं नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

किम् नाम रोदिषि सखे न च ते स्वरूपम् - किस - नाम अथवा किस अर्थ के लिये तू रुदन करता है हे चित सखे नहीं है चेतन आत्मा तेरी का कोई स्वरूप भी अर्थात नहीं है तेरा स्वरूप ये शरीर और किम् नाम रोदिषि सखे न च ते वितथम् । किं अर्थ कार्य के लिये तू रुदन करता है चित नहीं है चेतन स्वरूप तेरे का विनाश भी और किम् नाम रोदिषि सखे न च ते वयांसि किस लिये तू किस भाव को प्राप्त होकर रुदन करता है हे चित नहीं है चेतन स्वरूप तेरे की कोई आयु आदिक भी क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् - तू जो ज्ञान रूपी अमृत एकरस आकाश वत है सो ही मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! किस वास्ते तू शरीर या इन्द्रियों के लिये रुदन करता है ये तेरा रूप नहीं है क्योंकि ये सब मिथ्या हैं और चेतन स्वरूप से तू नित्य इनका साक्षी है कि जिस स्वरूप का विनाश ही नहीं है और जिस की कोई आयु भी नहीं है। कारण यह है कि हे मनु इन्द्र तू जिन आयु आदिकों के लिये रुदन करता है कि ये नष्ट हो जायेंगी सो ये तो तेरे पहले ही से नहीं हैं कि तू इनसे रहित है फिर इनादिकों के लिये भी तेरा रुदन करना व्यर्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है क्योंकि तू इनसे भी अलग है और ये इन्द्रियादिक भी तेरी नहीं हैं क्योंकि तू ज्ञानस्वरूप अमृत एकरस आकाश की उपमा वाला है और निश्चय से जो ऐसा असंग चेतन है वही मैं हूं ऐसा तू जान ॥३६॥ २६३

वयांसि मनांसि न ते वै इन्द्रियाणि विमोहो न लोभो न तेऽस्ति कामः ॥
त्वं ह्यवस्थितः सर्वत्रो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३७

## पदच्छेदः शब्दार्थ

वयांसि - आयु आदिक और मनांसि मन आदिक भी न नहीं हैं ते तेरे इन्द्रियाणि - वे इन्द्रियों के रूप और विमोहः न लोभः - नहीं हैं मोह और लोभ भी तेरे में और न ते अस्ति कामः वही तेरे में है इच्छारूपसे कामना भी और त्वम् तू आपही हि निश्चय करके अवस्थितः स्थित हुआ है बैठा हुआ है फैला हुआ है और सर्वत्रः सर्वत्र एकही स्वरूपसे व्यापक होरहा है क्योंकि ज्ञानं अमृतम् तेम रसम् गगन उपमः अहम् वेद स्वरूप में वेद अर्थात सब कुछ जानने वाला अमृत स्वरूप केवल एकही आनंद स्वरूप निर्लेप उपमारूप मैं हूं तू जान

## आशय।

हे चित! नहीं रहता है तू कोई आयु और मन भी और नहीं हैं इन्द्रियरूपमें ये इन्द्रियें तेरा स्वरूप क्योंकि तू इनसे रहित है और मोह लोभ और इच्छा कामनाओं से भी तू रहित है क्योंकि तू आप ही निश्चय करके सर्वत्र में एकही स्थित स्वरूप है सो ज्ञानस्वरूप अमृत एकरस असंग और स्वतन्त्र निरुपमा मैं हूं ऐसा तू अपनेको जान ॥३७॥

ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न चेते धनानि ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न चेते हि पत्नी ॥
ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न चेते ममेति ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३८ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

ऐश्वर्यम् - जिस प्राक्रम शक्ति की इच्छसि - तू इच्छा करता है कथम् कैसे कहूं मैं कि ये न च ते धनानि नहीं हैं चेतन स्वरूप तेरे में धनादिक करके कोई वस्तु भी और ऐश्वर्यमिच्छसि कथं न चेते हि पत्नी - जिस मान बड़ाई और नामकी तू इच्छा करता है कैसे कहूं मैं कि नहीं हैं चेतन स्वरूप तेरे में निश्चय करके मान की चाहने वाली स्त्री रूप माया भी और ऐश्वर्यमिच्छसि जिस मिथ्या महिमा की तू इच्छा करता है कथम् कैसे कहूं मैं न च ते ममेति - नहीं है चेतन स्वरूप तेरे में ममता रूपी मेरे अपने अनंत स्वरूपमें इसप्रकार का कोई व्यवहार भी अर्थात ममता रूपी मेरे तेरे का बोध भी क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् । ज्ञानरूपी अमृत एकरस आकाश की उपमा वाला मैं हूं ऐसा ही तुम अपने को जानो और मानो ॥

## आशय।

हे चित! तुम जिस मान अभिमान की इच्छा करते हो और जिसकी प्राप्ति के हेतु मिथ्या धनादि को संचय करते हो वे किसी प्रकार से भी तुम्हारे चेतन स्वरूप में नहीं है क्योंकि सर्व प्रकार के मान और ऐश्वर्य की चाहने वाली स्त्री रूपी जो माया है और जो ममता रूपमें मेरे तेरे का बोध करती है और मिथ्या महिमा इच्छा रूप है इसप्रकार का कोई भी व्यवहार तुम्हारे चेतन स्वरूप में नहीं है अर्थात मिथ्या धनादि स्त्री और ममता रूपी माया से तुम रहित हो क्योंकि तुम ज्ञानस्वरूप अमृत एकरस आकाशवत हो सो मैं आप ऐश्वर्यरूप हूं ऐसा जानो ॥३८॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३६५

लिङ्गप्रपञ्चजनुषी न चते न मे च निर्लज्जमानसमिदं च विभाति भिन्नम् ॥
निर्भेदभेदरहितं न चते न मे च ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ३९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

लिङ्गप्रपंच जनुषी - चिह्नरूप प्रपंचकी उत्पति न चे ते नहीं है चेतन स्वरूप तेरेसे और न मे च नहीं है मेरे ब्रह्म चेतनस्वरूपसे किंतु निर्लज्जमानसम् - लज्जासे रहित माया रूपी मनमें इदम् ये माया प्रपंच रचना चे विभाति भिन्नम् - चेतन आत्मा के प्रकाश से प्रतीत होती है भिन्न भिन्न करके क्योंकि निर्भेदभेदरहितम् - अभेदरूपी स्वरूपमें भेदसेरहित होना भी न चे ते न मे च नहीं है चेतन रूप आत्मा तेरी में और नहीं है मेरे ब्रह्म चेतन रूपमें अर्थात अभेदस्वरूपमें किसीप्रकारसे मिथ्या भेदका व्यवहार नहीं है क्योंकि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् - ज्ञानरूपी अमृत स्करस गगनकी उपमा वाला मैं ही आत्म

## आशय ।

हे चित! नानाप्रकारके चिह्न अर्थात पशु पक्षी मनुष्य आदि की पहिचान करानेवाले लक्षण नहीं है ये चेतन स्वरूप तेरे में और नहीं है ब्रह्म चेतन स्वरूप मेरे में किंतु लज्जासे रहित माया रूपी मनमें ये मायाप्रपंच रचना चेतन आत्मा के प्रकाशसे प्रतीत होती है कि ये पशु है वह पक्षी है और ये सब प्रपंच जो भिन्न भिन्न करके प्रतीत पडते हैं निर्लज्ज मानस प्रपंच है कि नहीं है और प्रतीत होता है इसी का नाम माया है सो ये माया नहीं है साकार रहित अभेदरूपी स्वरूपमें क्योंकि भेदसेरहित होना नहीं है साकार रूप माया में इस लिये कोई भी साधारण अथवा विशेष भेद नहीं है चेतन रूप आत्मा तेरी और ब्रह्म चेतन स्वरूप आत्मा मेरे में अर्थात अभेद चेतन स्वरूपमें किसी प्रकार से कोई भी मिथ्या भेदका व्यवहार नहीं है क्योंकि मैं तो ज्ञानरूपी अमृत स्वरूपसे सदा समान रहने वाला स्करस आकाश तुल्य हूं ऐसा तू जान किसी का नाम है ज्ञान कि जो मैं हूं ॥ ३९ ॥

नो वाणुमात्रमपि तेंहि विरागरूपं नो वाणुमात्रमपि ते हि सरागरूपम् ॥
नो वाणुमात्रमपि तेंहि सकामरूपं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नः हमको वै और अणुमात्रम् शून्यरूपमायाको अपि निश्चयकरके तेंहि - हे निश्चयस्वरूप आत्मा यथार्थ आत्मा तेराही तो विरागरूपम् विराग और स्वरूप प्राप्त है क्योंकि नः हम वै और अणुमात्रम् माया का शून्यरूप अपि निश्चयकरके तेंहि तेराही तो निश्चयस्वरूप सरागरूपम् साकार मायाका स्वरूप है और नः हम वै और अणुमात्रम् माया का शून्यरूप अपि निश्चयकरके तेंहि तेराही तो है सकामरूप कार्यकारण सहित स्करूप क्योंकि ज्ञानामृतम् समरसं गगनोपमोऽहम् ज्ञानरूप अमृत स्करस आकाशवत मैं हूं

## आशय ।

हे चित! तुम और शून्य रूप माया निश्चय करके आत्मा का ही यथार्थ स्वरूप हो क्योंकि तुम माया का निश्चय करके राग सहित साकार रूप हो और तुम आप ही निश्चय करके कार्य कारण सहित आत्मा का स्वरूप हो क्योंकि तुम्हारा स्वरूप अणुमात्र भी विगतराग अर्थात राग से रहित नहीं है कारण ये है कि सर्व काल आत्मा में तुम्हारा राग वर्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और फिर अणुमात्र भी अर्थात किंचित मात्र भी अर्थात कुछ भी तुम्हारा स्वरूप राग सहित नहीं है क्योंकि विषयों में तुम्हारा राग नहीं है इस लिये कामना सहित भी तुम्हारा स्वरूप नहीं है क्योंकि तुम ज्ञान रूपी अमृत रूप एकरस गगन की उपमा वाले हो तो ऐसा ही तुम निश्चय करो कि कार्य कारण सहित और दोनों से रहित ज्ञान रूपी अमृत असंग और स्वतन्त्र मैं हूं ॥ ४० ॥

ध्याता न ते हि हृदये न च ते समाधि ध्यानं न ते हि हृदये न बहिः प्रदेशः ॥
ध्येयं न चेति हृदये न हि वस्तु कालो ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ध्याता ध्यान का कर्ता न नहीं है ते तेरेही हि निश्चय स्वरूप में अर्थात हृदये हृदय स्थान में कोई क्योंकि न च ते नहीं है चेतन स्वरूप तेरे में समाधि लय का स्वरूप और ध्यानम् ध्यान अर्थात विचार चिन्तन भी और न ते हि हृदये नहीं है तेरा निश्चय करके कोई हृदयाकाश स्थान भी और न बहिः प्रदेशः नहीं है भीतर और बाहर का कोई अन्तर भेदही और ध्येयम् न च इति हृदये ध्यान का नियम भी नहीं है चेतन रूप अनंत आत्मा में किसी हृदये स्थान करके अर्थात किसी देश रूप करके क्योंकि न हि वस्तु कालः नहीं है आत्मा देश और काल भी अर्थात आत्मा देश काल वस्तु से भी रहित है कारण कि ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् जो आत्मा है ज्ञान स्वरूप अमृत रूप एकरस आकाश वत है और वही आत्मा मैं हूं ऐसा जानो ॥

आशय

हृदय में

हे चित! निश्चय करके तुम्हारे न तो कोई वास्तव से ध्यान का कर्ता है और नहीं समधि तथा ध्यान ही है और नहीं निश्चय करके कोई हृदये काश स्थान ही है अर्थात बाहर और भीतर का और देश रूप करके काल का कोई भेद कल्पना मात्र को नहीं है क्योंकि तुम देश काल वस्तु रहित अनंत स्वरूप हो इसलिये ऐसा जानो कि वह आत्मा जो ज्ञान स्वरूप अमृत एकरस आकाश वत व्यापक है और असंग और स्वतन्त्र है मैं हूं ॥ ४१ ॥

यत्सारभूतमखिलं कथितं मया ते नत्वं न मे न महतो न गुरुर्न शिष्यः ॥
स्वच्छन्दरूपसहजं परमार्थतत्त्वं ज्ञानामृतं समरसं गगनोपमोऽहम् ॥ ४२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

यत् जो सारभूतम् निश्चय करके सत्य है अखिलम् वही संपूर्ण एक आत्मा है कथितं मया कहा है सो मया मैं ने ते तेरे से और न नहीं है त्वम् तू आप न नहीं हूं मे मैं भी और न नहीं है महतः मन आकाश भी और न नहीं है गुरुः गुरु और न नहीं है शिष्यः शिष्य भी कोई स्वच्छन्दरूपसहजम् स्वभाव से ही आत्मा शुद्ध स्वरूप है और परमार्थतत्त्वम् परमार्थ से यथार्थ वस्तु है सो जो ऐसा शुद्ध आत्मा है वही ज्ञानामृतम् समरसम् गगनोपमः अहम् ज्ञान स्वरूप अमृत एकरस गगनवत मैं हूं ॥

आशय

हे चित! जोकि सारभूत या अर्थात निश्चय करके सत्य है वही संपूर्ण एक आत्मा है सोई मैं ने तेरे से कहा भी है क्योंकि वास्तु से न तू है न मैं हूं न कोई गुरु है न शिष्य है और न मन आकाश है केवल स्वभाव से ही जोकि आत्मा है शुद्ध स्वरूप है यथार्थ है सो जो ऐसा निज रूप आत्मा है वही ज्ञान अमृत एकरस गगनवत मैं हूं ॥ ४२ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कथमिह परमार्थं तत्त्वमानन्दरूपं कथमिह परमार्थं नैवमानन्दरूपम् ॥
कथमिह परमार्थं ज्ञानं विज्ञानरूपं यदि परमहमेकं वर्तते व्योमरूपम् ॥ ४३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

कथम् कैसा है इह ये आत्मा परमार्थम् परंस्वरूपसे परमार्थ रूप है और तत्त्वम् यथार्थ करके आनंदरूप आनंदस्वरूप है और फिर कथमिह परमार्थम् कैसा है ये आत्मा परमार्थ स्वरूपमें न एवम् आनंदरूपम् नहिं है इसनिश्चय स्वरूप आत्मामें आनंद रूपी अज्ञानता का कोई मायावी गुण फिर कथमिह कैसा है ये आत्मा परमार्थम् परमार्थ स्वरूपसे ज्ञान विज्ञानरूपम् ज्ञान और विज्ञान का स्वरूप अर्थात विद्या और अविद्या का एक रूप किसी प्रकारसे भी नहीं है क्योंकि यदि जो एक ही आत्मा है वही तो परम् महान उत्कृष्ट अर्थात सूक्ष्म स्वरूप में अहम् मैं एकम् एक ही हूं और वर्तते वर्तमानरूपसे प्रकाशमान हो रहा हूं व्योमरूपम् गगनवत व्यापक स्वरूप में असंग और स्वतन्त्र हो करके ॥

## आशय ।

हे चित! आत्मा परमार्थ स्वरूपसे यथार्थ करके परमानंदरूप नहीं है क्योंकि आनंद नाम अज्ञानता का है आत्मा अज्ञानतासे रहित है सो जब आत्मा अज्ञानता से रहित है तो परमार्थ से आत्मा ज्ञान तथा विज्ञान रूपी भी नहीं है अर्थात विद्या और अविद्या दोनों से रहित है सो जो ऐसा एक ही आत्मा है वही तो महान उत्कृष्ट अर्थात शुद्ध स्वरूप में मैं एक ही आत्मा हूं कि जो वर्तमान रूपसे गगनवत् व्यापक स्वरूप में असंग और स्वतन्त्र स्वरूप से प्रकाशमान हो रहा हूं कि जिसमें ज्ञान विज्ञान प्रपंच का कोई अंश नहीं है ॥ ४३ ॥

दहनपवनहीनं विद्धि विज्ञानमेकं अवनिजलविहीनं विद्धि विज्ञानरूपम् ॥
समगमनविहीनं विद्धि विज्ञानमेकं गगनमिवं विशालं विद्धि विज्ञानमेकम् ॥ ४४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

दहनपवनहीनम् अग्नि और वायु से भी रहित आत्मा है और विद्धि विज्ञानम् ब्रह्म सत्य स्वरूप ही एकम् एक आत्मा है और अवनिजलविहीनम् पृथिवी और जल से भी रहित विद्धि विज्ञानरूपम् सत्य ब्रह्मात्मा सत्य स्वरूप है और समगमनविहीनम् स्थिरसे गमन करने तथा चलने से भी आत्म रहित है और विद्धि विज्ञानम् सत्यविधि स्वरूप है और एकम् एक ही है गगनम् इव आकाश वत ही आत्मा है और विशालम् आश्चर्यवत अपूर अर्थात आदि अन्त रहित अनंत विस्तार वाला आत्म है और विद्धि विज्ञानमेकम् पूर्णविधि स्वरूप में जो आत्मा है वह मेरा ही एक ब्रह्म आत्मा स्वरूप है

## आशय ।

हे चित! आत्मा अग्निवायु जल पृथिवी से रहित है और सत्य रूप एक ही आत्मा है कि जो एक से आकाश वत है और आश्चर्य वत अपूर स्वरूप है अर्थात आदि अंत से रहित अनंत विस्तार स्वरूप में जो सत्य ब्रह्म आत्मा का एक ही पूर्ण स्वरूप है वह मेरा ही एक आत्मा रूप है अर्थात मेरा ही अपना आप शुद्ध ब्रह्म विधि विज्ञान रूप में एक आत्म सत्य स्वरूप है ऐसा तू जान ॥ ४४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

न शून्यरूपं न विशून्यरूपं न शुद्धरूपं न विशुद्धरूपम् ॥
रूपं विरूपं न ममास्ति किञ्चित् स्वरूपरूपं परमार्थतत्त्वम् ॥ ४५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

न शून्यरूपम् आत्मा शून्यस्वरूप नहीं है और न विशून्यरूपम् विशेषकरके शून्यरूप भी नहीं है और न शुद्धरूपम् शुद्धस्वरूप भी नहीं है और न विशुद्धरूपम् नहीं विशेषकरके शुद्धस्वरूप है और रूपं विरूपं - रूपवाला तथा विगत रूपवाला भी न ममास्ति किञ्चित नहीं होता है किंचित भी क्योंकि सरूपं रूपम् परमार्थं तत्त्वम् आत्मा स्वरूप का भी स्वरूप है और जो ऐसा है वही परमार्थ से यथार्थ मैं हूं।

## आशय

हे चित! मैं आत्मा शून्य रूप नहीं हूं और विगत शून्य रूप भी नहीं हूं क्योंकि विगत शून्य भी मेरे ही में ही कल्पित है और किसी साधन करके भी मैं शुद्ध नहीं होता हूं और विगत शुद्धरूप भी मैं नहीं हूं अर्थात शुद्धता से रहित भी मैं नहीं हूं और वर्णा वर्ण करके रूपस्वरूप वाला भी मैं नहीं हूं क्योंकि रूप माया कार्य है सो मैं किंचित भी रूप वाला नहीं होता हूं क्योंकि मैं स्वरूप से ही चेतन ब्रह्म हूं और परम् अर्थ से ही मैं यथार्थ हूं ऐसा तुम जानो ॥ ४५ ॥

मुञ्च मुञ्च हि संसारं त्यागं मुञ्च हि सर्वथा मायासंसृतिमोहः ॥
त्यागात्यागविषं शुद्धममृतसहजं ध्रुवम् न ममतामं लोभः ॥ ४६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

मुञ्च मुंच - छोड़दे छोड़दे हि निश्चय करके संसारम् संसार को और त्यागम् त्याग को भी और मुंचे छोड़दे हि निश्चय करके सर्वथा माया सर्वप्रकार की मायावी इच्छा संसृति संसार रूपी जो मोहः मोह है कि ये मेरी भूमि है धन है इस मोह को भी छोड़दे और त्यागात्यागविषम् त्याग और त्याग भाव रूपी विष को भी छोड़दे क्योंकि शुद्धम् शुद्ध स्वरूप है तू और अमृतम् अमृत रूप है तू सहजम् स्वभाव से ही और ध्रुवम् नित्य अचल है तू क्योंकि न नहीं है ममतामम् मेरे आत्मास्वरूप में माया रूप किसी पदार्थ की ममता और न लोभः नहीं है किसी प्रकार का लोभ ही ॥

## आशय ।

हे चित! संसार का तू त्याग करदे फिर उस त्याग का भी त्याग करदे और त्याग तथा त्याग के अभाव को भी तू विष रूप जान करके त्याग दे अर्थात त्याग का जो अभिमान है कि मैं त्यागी हूं ये भी निश्चय करके सर्वप्रकार की जो मायावी इच्छा मोहरूप है उनका ही स्वरूप है इसलिये तू त्याग और अत्याग दोनों के ही अभिमान को त्याग दे क्योंकि ये आत्मा में नहीं हैं कारण कि आत्मा स्वभाव से ही शुद्ध अमृत रूप है और नित्य अचल रूप भी है कि जिस में किसी प्रकार से किसी प्रकार का ममता और लोभ का व्यवहार नहीं है क्योंकि कोई वस्तु भी आत्मा से भिन्न नहीं है अर्थात न तो कोई जीव है और न कोई ईश्वर है। क्योंकि जो सर्वरूप है और जो सर्वका अधिष्ठान है वही मेरा अपना ही एक आत्मा है और वह मैं आप ही अपने आप हूं ऐसा हे चित तू निश्चय कर और जान ॥ ४६ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## ४ - कर्म त्याग स्व तन्त्रता चतुर्थो शिक्षा ।

चैतन्य ब्रह्म आत्मा की सर्वव्यापता का वर्णन -

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
नावाहनं नैव विसर्जनं वो पुष्पाणि पत्राणि कथं भवन्ति ॥
११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
ध्यानानि मंत्राणि कथं भवन्ति समासमं चैव शिवार्चनं चे ॥ १ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

१ न आवाहनम् - नहीं होता है व्यापक चेतन का आवाहन और ३ न ४ एव विसर्जनम् नहीं होता है निश्चय करके विसर्जन भी ६ वो तब फिर ७ पुष्पाणि पुष्प तथा फूल और ८ पत्राणि पत्र कथम् कैसे उस ब्रह्म चैतन्य को ९ भवन्ति - समर्पण होते हैं अर्थात प्राप्त होते हैं पहुंचते हैं और ११ ध्यानानि ध्यान भी १२ मंत्राणि मन्त्रों के कथम् कैसे उस चेतन ब्रह्म का १४ भवन्ति हो सकता है तथा बाँधा जा सकता है क्योंकि १५ समासमम् सर्वत्र सम स्वरूप सम दृष्टि रूप एकरस ही १६ चे चेतन ब्रह्म आत्मा १७ एव निश्चय करके व्यापक है तब फिर १८ शिवार्चनम् कल्याण स्वरूप चेतन ब्रह्म का आर्चनम् अर्थात पूजन १९ चे हे चित चेतन कैसे किंतु किसी प्रकार भी नहीं

### आशय ।

हे चित! ब्रह्म चैतन्य आत्मा कल्याण स्वरूप असंग और स्व तन्त्र स्वरूप से सर्वत्र ब्रह्माण्ड मात्र में व्यापक है और वह एकही है तब उसका पूजन और आवाहन और विसर्जन कौन करे और कैसे बन सकता है! क्योंकि आवाहन और विसर्जन उसका ही होसकता है कि जो कहीं हो और कहीं न हो अर्थात आवा गमन रूप से आता जाता हो सो इस प्रकार का परिच्छिन्न स्वरूप माया का है कि जो नाना प्रकार की आकृति रूप में उत्पन्न होकर आपसे आप ही नष्ट होती रहती है और इस प्रकार आप से आप ही माया रूपी जगत का नित्य आवाहन और विसर्जन होता रहता है। आत्मा में न आवाहन है न विसर्जन क्योंकि आत्मा सर्वत्र एकरस पूर्ण है इस लिये उसका कोई आवाहन और विसर्जन अर्थात आवा जावा नहीं होता है और पूजा भी अपने से अन्य और भिन्न की होती है और आत्मा अपने से भिन्न भी नहीं है इस लिये उसकी पूजा भी नहीं होती है और पुष्प पत्रादिक उसको दिये जावें हैं कि जिसके घ्राणादिक इन्द्रिये हुं देहधारी हो सो आत्मा घ्राणादिक इन्द्रियों और देह से स्वतन्त्र है तब पुष्प पत्रादिकों का समर्पण करना भी नहीं बनता है। हे चित माया कृत अज्ञानता से जो अज्ञानी है सो ही ऐसा माया प्रपंच का व्यवहार करते हुए कहदेता है कि आत्मा वासना का भूका है किंतु ऐसा जो अज्ञानी है उसको वासना के अर्थ का ज्ञान नहीं होता है। वासना नाम शुभ अशुभ इच्छाओं के संस्कारों का है सो संस्कार देहधारी परिच्छिन्न में ही रहते हैं देह से रहित व्यापक आत्मा में वासना नहीं रहती है फिर जबकि उसका आवाहन और विसर्जन ही नहीं बनता है तब फिर ध्यान और मंत्र कैसे बन सकते हैं क्योंकि साकार वस्तु का ही ध्यान होसकता है निराकार तक तो मन बुद्धि पहुंच ही नहीं सकते क्योंकि मन बुद्धि ही माया प्रपंच हैं अज्ञान रूप में साकार हैं आश्चर्य वत मोह रूप हैं तृण की ओट पहाड़ है क्योंकि शब्द व्यापार रूप हैं और शब्द व्यापार रूप होने के कारण स्वार्थ तत्परता करके आकृति ही आकृति रूप हैं। और इस प्रकार आकृति और शब्द के भिन्न कुछ नहीं देखा जाता है। और आकृति और शब्द

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से ही अज्ञान रूपी माया प्राणी मात्र का उपयोग भोग और सम्पर्क रहता है और मनुष्य मात्र का व्यवहार आधार और ईश्वर भावना इन्हीं में स्थित है इसलिये अपनी अपनी भलाई के लिए अज्ञानी अज्ञानता से इस प्रकार के यत्न करते रहते हैं और मिथ्या ध्यान और मन्त्रों के स्नेह प्रेम के पाखण्ड फंद में पड़ कर भ्रम से साकार की पूजन में प्रेम करते हैं। अर्थात जब विश्व में शब्द और आकृति के अन्य तीसरी भिन्न वस्तु को नहीं पाते तब तीसरी का पूजन कैसे हो सकता है किसकी शुश्रूषा किसकी रक्षा और किस से स्नेह होता है कि जिसके लिये मन्त्र तन्त्र और कलमा और गायत्री और स्तुति है। ये सब माया रूपी साकार मूर्तिमान के अर्थात माया के गुण के गाथा ही हैं और इस प्रकार माया आकृति को चेतन आत्मा का विषय मान नबी वा अवतार पैगम्बर जान उन से प्रेम करते हैं और उनको सिर झुकाते हैं। हे चित साकार माया चेतन आत्मा का किसी प्रकार से भी विषय नहीं है इसलिये ध्यान मन्त्र और पूजन और स्तुति नहीं बनते हैं फिर ध्यान मन्त्र वा स्तुति व पूजन क्या है इसका अर्थ आशय यही है कि « यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः » श्रुति प्रमाण सर्वत्र समदृष्टि करके अर्थात सर्वत्र में एक चेतन आत्मा को जान करके सब में अपने आप को ही देखना और सब में अपने आप को ही पाना अर्थात पृथिवी से आकाश तक जो भी जहाँ कहीं जो कुछ भी देखना उसको अपनी ही शक्ति और अपने ही सत्य स्वरूप आत्म यज्ञ रूप में स्थित देखना और ऐसा ज्ञान नाकि ये सब मैं ही « एकं ब्रह्मास्मि » अर्थात मैं ही एक ब्रह्म कल्याण रूप शिव स्वरूप हूं और ऐसा जान करके किसी प्राणी मात्र को मनसा वाचा कर्मणा से न सताना कि इसी का नाम ध्यान है और इसी का नाम मन्त्र है गायत्री है स्तुति है पूजन है और चैतन्य शिव आर्चन है आत्मा का आत्म यज्ञ है आत्म पूजन है कि जिसका न आवाहन है न विसर्जन है क्योंकि आत्मा समरस व्यापक है ॥ १ ॥

न केवलं बन्धविबन्धमुक्तो न केवलं शुद्धविशुद्धमुक्तः ॥
न केवलं योगवियोगमुक्तः स वै विमुक्तो गगनोपमोऽहम् ॥ २ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

न केवलं मैं कैवल्य सत्य आत्मा न केवल बन्धविबन्धमुक्तः सामान्य विशेष रूपी बन्धनों से ही रहित हूं और न केवलम् न केवल शुद्धविशुद्धमुक्तः सामान्य विशेष रूप शुद्धविशुद्धयों से ही स्वतन्त्र हूं और न केवलम् न केवल अर्थात यथार्थ करके योगवियोगमुक्तः योग और वियोग से ही स्वतन्त्र हूं अर्थात आवागमन से रहित हूं मैं तो सः साकार रूप जो ये माया रूपी सृष्टि है वै निश्चय करके इस से भी मैं विमुक्तः सिद्ध करके स्वतन्त्र अर्थात मुक्त मोक्षता ही हूं और गगनोपमः गगन की उपमा वाला निर्लेप तथा असंग अहम् मैं हूं ॥

## आशय

हे चित! दो प्रकार का माया कृत बन्ध है एक तो सामान्य रूप बन्ध है कि अज्ञान कृत लोभ है और दूसरा विशेष रूप से बंध है कि जो स्त्री पुत्रादिकों से अहन्ता ममता रूपी बन्ध है तो मैं यथार्थ करके इन दोनों से रहित हूं और इसी प्रकार आभ्यन्तर और बाह्य भेद से कि जो दो प्रकार के हैं स्वतन्त्र हूं क्योंकि आत्मा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नित्य शुद्ध है। इसी प्रकार योग वियोग से भी अर्थात संयोग वियोग से भी मैं रहित हूं क्योंकि संयोग वियोग अर्थात आवागमन तथा जन्म मरण साकार माया के ही होते हैं सो इनसे भी निराकार होने के कारण मैं स्वतन्त्र हूं और निश्चय करके मेरा आत्मा निराकार स्वरूप गगन रूप है और वही मैं हूं ऐसे तू जान ॥ २ ॥

संजायते सर्वमिदं हि तथ्यं संजायते सर्वमिदं वितथ्यम् ॥
एवं विकल्पो मम नैव जातः स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संजायते जो उत्पन्न होता है तथा प्रकट होना है सर्वम् सर्वत्र संपूर्ण जगत् इदम् ये सब दृश्यमान माया का स्वरूप है और इसमें जो हि निश्चय करके तथ्यम् सत् स्वरूप आत्मा है वह संजायते व्यापक है और सर्वम् परिपूर्ण है और इदम् इस दृश्यमान जगत से कि जो वितथ्यम् मिथ्या है एवम् वह आत्मा इसी प्रकार कि जैसे विकल्पः विकल्प अर्थात वहम कोई वस्तु नहीं है ऐसे ही मम मेरे आत्मा स्वरूप में न नहीं है निश्चय करके जातः ये माया प्रपंच कि जो उपजता है और नष्ट होता है क्योंकि स्वरूपनिर्वाणम् स्वरूप से ही स्वतन्त्र है आत्मा अनामयः अहम् वही बेनाम मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! ये जितना कि दृश्यमान जगत है सो सब मिथ्या ही है कि माया रूप है और माया से स्वतन्त्र जो कि सत्य स्वरूप आत्मा है वह निश्चय करके परिपूर्ण है और व्यापक है और इस मिथ्या जगत से वह आत्मा इसीप्रकार कि जिस प्रकार विकल्प रूपी ये संसार है वैसा मेरा निश्चय स्वरूप आत्मा नहीं है क्योंकि वह जन्मता और मरता नहीं है और विकल्प संसार जन्मता और मरता रहता है आत्मा जिस में इस प्रकार का कोई विकल्प नहीं है स्वरूप से ही मोक्ष तथा स्वतन्त्र है और वही अनाम आत्मा मैं हूं हे चित ऐसा तू निश्चय कर क्योंकि रोगों से रहित और जन्म मरण से रहित बेनाम मैं आत्मा हूं ॥ ३ ॥

न साञ्जनं चैव निरञ्जनं वा न चान्तरं वापि निरन्तरं वा ॥
अन्तर्विभिन्नं न हि मे विभाति स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न साञ्जनम् माया मल के सहित नहीं हूं मैं च एव चेतन आत्मा निश्चय करके क्योंकि निरञ्जनम् माया मल से रहित और निर्मल हूं मैं वा और न च नहीं हूं मैं चेतन आत्मा अन्तरम् माया रूप होकर माया के भीतर ही क्योंकि वा अपि मैं आप ही निश्चय स्वरूप हूं और निरन्तरम् नित्य हूं मैं वा और मैं अन्तर्विभिन्नम् माया के कार्य और कारणों से रहित हूं क्योंकि न हि मे नहीं है निश्चय स्वरूप में में विभाति भेद रूप से माया का प्रकाश भी क्योंकि स्वरूपनिर्वाणम् स्वरूप से ही मैं मुक्त रूप हूं और अनामयः रोग से रहित अर्थात माया के आदि अन्त से स्वतन्त्र बेनाम ही अहम् मैं हूं ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

हे चित - आत्मा माया मल से स्वतन्त्र है क्योंकि चेतन आत्मा निश्चय करके निर्मल है इसलिये आत्मा माया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रूप होकरके मायाके भीतर भी नहीं है क्योंकि आत्मा आप ही निश्चय स्वरूप है नित्य है और मायाके कार्य और कारणों से स्वतन्त्र है क्योंकि निश्चय स्वरूप आत्मामें माया का भेद रूपसे कभी कोई प्रकाश नहीं होता है और आत्मा स्वरूपसे ही मुक्त रूप है रोगसे रहित है अर्थात वह आत्मा मायाके आदि अन्तसे स्वतन्त्र है और नाम रूप रहित है सो ऐसा जो आत्मा है वही चेतन निर्मल और निरन्तर स्वरूपसे ही मोक्ष निश्चय करके मैं आप हूं ऐसा तू जान ॥ ४ ॥

अबोधबोधो मम नैव जातो बोधस्वरूपं मम नैव जातम् ॥
निर्बोधबोधं चकथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**अबोधबोधः** बोधरहितका बोध अर्थात मायाका कोई ज्ञान **मम** मेरेको **न एव** नहीं है निश्चय करके क्योंकि **जातः** मायाआप ही अबोधरूप है कि जो उत्पन्न हुई है इस प्रकार से कि **बोधस्वरूपम्** मैं बोधस्वरूप हूं अर्थात ज्ञानी हूं ऐसा भाव करके किंतु **मम** मेरेको **न एव** नहीं है निश्चय करके ऐसा **जातम** प्रकट तथा उत्पन्न हुआ हुआ बोध भी क्योंकि **निर्बोधबोधम** बोधसे रहित बोध वाला अपने को अर्थात माया रूपी ज्ञानसे रहित ज्ञानी अपनेको **च** मैं चेतन आत्मा **कथम्** कैसे किस प्रकार से **वदामि** कहूं मैं क्योंकि **स्वरूपनिर्वाणम्** - **अनामयः** - **अहम्** - स्वरूपसे ही स्वतन्त्र रोगसे रहित नाम रूपसे भी रहित मैं हूं ॥

## आशय ।

हे चित! बोध नाम ज्ञान का है और नहीं वेजो ज्ञान उसीका नाम अबोध अर्थात अज्ञान है। सो अज्ञान का जो बोध ज्ञान है सो भी मेरेको नहीं है क्योंकि अज्ञान जो है सो शुद्ध स्वरूप आत्मामें तीनों कालमें नहीं है और जो वस्तु तीनों कालमें है ही नहीं उसका ज्ञान कैसे हो सकता है कभी हो ही नहीं सकता सो मैं ज्ञान रूप हूं ऐसा ज्ञान भी मेरेको नहीं है और न कभी हुआ है क्योंकि ऐसा ज्ञान तब होवे कि जब ज्ञान मेरेसे भिन्न होवे सो जब ज्ञान मेरे अपने स्वरूपसे भिन्न नहीं है तब मैं कैसे कह सकता हूं कि मैं ज्ञान स्वरूप हूं फिर मैं निर्बोध हूं अर्थात ज्ञानसे रहित मैं ज्ञान हूं सो ऐसा भी मैं अपनेको कैसे कहूं कि ये कथन भी चेतन आत्मामें नहीं बनता है क्योंकि ज्ञानसे रहित तो साकार माया है और माया ज्ञान स्वरूप किसी प्रकार से हो नहीं सकती इसलिये मैं मोक्षरूप रोगसे रहित स्वतन्त्र हूं ॥ ५ ॥

नधर्मयुक्तो न च पापयुक्तो न बन्धयुक्तो न च मोक्षयुक्तः ॥
युक्तं त्वयुक्तं न च मे विभाति स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ ६ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**नधर्मयुक्तः** - नहीं हूं मैं धर्म करके भी युक्त अर्थात धर्मयुक्त मैं नहीं हूं और **न च पापयुक्तः** नहीं हूं मैं चेतन चेतन आत्मा पापयुक्त भी अर्थात पापी भी मैं नहीं हूं और **न बन्धयुक्तः** नहीं हूं मैं बन्धयुक्त भी अर्थात मेरेको बन्धन नहीं है और **न च मोक्षयुक्तः** नहीं हूं मैं चेतन मोक्षयुक्त भी अर्थात मेरेको मोक्ष भी नहीं है क्योंकि **युक्तं** युक्त होना और **तं** फिर **अयुक्तं** अयुक्त होजाना **न च मे विभाति** नहीं चेतन आत्मा मेरी मैं मुझे भान होता है क्योंकि **स्वरूपनिर्वाणम्** - स्वरूपसे ही स्वतन्त्र मैं हूं और **अनामयः** रूप और नाम से स्वतंत्र मैं हूं और **अहम्** आदि आकाश मूल सर्वज्ञ मैं हूं ऐसा तू जान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

372

## आर्य

हे चित! मैं मुक्त रूप और स्वतन्त्र हूं और जन्म मरणादि रोगों से भी मैं रहित हूं इसलिये मेरे को ये भान नहीं होता है कि मैं धर्म करके युक्त हूं या पाप करके युक्त हूं क्यों कि मैं धर्म और अधर्म दोनों से रहित हूं और बन्ध और मोक्ष से भी स्वतन्त्र हूं क्योंकि मैं स्वतः स्वतन्त्र चेतन हूं और मुझे अपनी दृष्टि में एक चेतन के अन्य कोई भी अतिरिक्त पदार्थ दृश्यमान नहीं होता है क्योंकि मैं मुक्त स्वरूप हूं और नाम और रूप से भी स्वतन्त्र मैं हूं ऐसा तू जान ॥ ६ ॥

परापरं वा न चे मे कदाचिन्मध्यस्थ भावो हि न चारिमित्रम् ॥
हिताहितं चापि कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणम नामयोऽहम ॥ ७ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ।

**परापरम्** - पर रूप प्रकृति और अपर रूप प्रकृति भी जो **वा** प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थात गोचर और अगोचर है **न** नहीं हूं मैं **च** चेतन क्योंकि पर अपर भाव **मे** मेरे स्वरूप में नहीं है **कदाचित्** किसी काल भी और नहीं है **मध्यस्थभावः** मध्यस्थ का कोई भाव भी क्योंकि **हि** निश्चय करके **न** नहीं है **च** चेतन में **आरिमित्रम्** शत्रुता और मित्रता भी और **हिताहितम्** हित और अहित भी क्योंकि **च अपि** चेतन ब्रह्म निश्चय स्वरूप है और **कथम्** कैसा है **वदामि** कहता हूं मैं कि **स्वरूपनिर्वाणम्** स्वरूप से ही मुक्त है और **अनामयः** रूप और नाम और रोगों से रहित है और जो ऐसा आत्मा है वही **अहम** मैं आप ही हूं॥

## आर्य ।

हे चित! पर और अपर प्रकृति का कोई भाव कदाचित भी मेरे में नहीं है क्योंकि मैं सर्व व्यापक हूं और फिर मध्यस्थ भाव भी मेरे में नहीं है क्योंकि मैं द्वैत से रहित हूं और फिर मेरा अपना कोई हितकारी और अनहितकारी भी नहीं है और न हो सकता है क्योंकि मेरे से अन्य और भिन्न दूसरा कोई भी नहीं है इसलिये जब कि मेरे में द्वैत भेद की कल्पना ही नहीं है तो मेरा कोई शत्रु और मित्र भी नहीं है इसलिये मैं मुक्त स्वरूप और रोग से रहित हूं ॥ ८ ॥

नोपासकोनैवमुपास्यरूपं न चोपदेशो न च मे क्रिया च ॥
संवित्स्वरूपं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणम् नामयोऽहम ॥ ८ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**न उपासकः** नहीं हूं मैं उपासक अर्थात उपासना करने वाला और **न एवम् उपास्य रूपम्** नहीं हूं इसी प्रकार मैं उपास्य रूप भी और **न च उपदेशः** नहीं हूं मैं चेतन उपदेश रूप भी अर्थात मेरे में उपदेश भी नहीं है और **न च मे** नहीं है चेतन स्वरूप मेरे में **क्रिया** क्रिया भी **च** और चेतन आत्मा में फिर कोई **संवित्स्वरूपम्** - एक रस करके ज्ञान और स्वरूप भी फिर **च कथम्** चेतन आत्मा कैसा है और क्या है **वदामि** प्रकट करता हूं मैं आप ही कि **स्वरूपनिर्वाणम्** - स्वरूप से स्वतन्त्र हैं और **अनामयोऽहम्** वही

## आर्य ।

हे चित! मेरे में उपासना और उपास्य भाव अर्थात भक्ति और भक्ति साधन दोनों नहीं हैं और उपदेश और क्रिया भी मेरे में नहीं हैं क्योंकि एक ही व्यापक चेतन में ये सब बातें किसी प्रकार नहीं बनती हैं और नहीं होती

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकती है और नहीं व्यापक चेतन में एकरस करके कोई ज्ञान और स्वरूप ही होसकता है अर्थात मेरे में ज्ञान और स्वरूप भी नहीं है फिर मैं क्या हूं मैं आप ही अपने आप को प्रकट करता हूं अर्थात कहता हूं कि मैं स्वरूप से ही मुक्त हूं और संसार रोग से रहित अर्थात नाम और रूप से भी स्वतन्त्र बे नाम मैं हूं ॥ ८ ॥

नो व्यापकं व्याप्यमिहास्ति किञ्चन्न चालय वापि निरालयं वा ॥
अशून्यशून्यं च कथं वदामि स्वरूप निर्वाणम नामयोऽहम ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न उ नहीं है ॐ स्वरूप आत्मा में व्यापकम् व्यापक भाव और व्याप्यम् उपज अर्थात उत्पन्न भाव इह ये आत्मा अस्ति है किम् क्या चित् हे चित न च आलयम् नहीं है इस चेतन ब्रह्म आत्मा में आश्रयन पना अर्थात आधीनता करके स्वार्थ ही वा और अपि निश्चय करके है ये आत्मा निरालयम् निराश्रय अर्थात निस्वार्थ ही वा और अशून्य शून्यम् आत्मा अशून्य स्वरूप में शून्य पना ही फिर च कथम् चेतन ब्रह्म आत्मा कैसा है वदामि कहता हूं मैं आप ही कि स्वरूप निर्वाणम् किस्वरूप से ही मुक्त अर्थात स्वतन्त्र हूं मैं आत्मा और अनामयः रोग से रहित बे नाम बे रूप अहम मैं हूं

आशय ।

हे चित ! ॐ स्वरूप आत्मा ब्रह्म में नहीं है व्याप्य व्यापक भाव क्योंकि आत्मा पूर्ण ब्रह्म एक ही है और एक में किसी प्रकार से व्याप्य व्यापक भाव नहीं बनता है और आश्रय निराश्रय भाव भी एक में नहीं बनता है और अशून्य का जो अभाव शून्यता है ये भी आत्मा में नहीं बनती है क्योंकि अशून्य स्वरूप आत्मा शून्य का भी साक्षी है सो जोकि इस प्रकार का चेतन ब्रह्म आत्मा है हे चित वह मैं ही हूं ऐसा तू जान क्योंकि मैं नित्य मुक्त और स्वतन्त्र हूं और इस संसार के रोग और पीड़ाओं से भी स्वतन्त्र हूं अर्थात नाम ग्राम से रहित अनामय मैं हूं ॥ ९ ॥

न ग्राहको ग्राह्यकमेवकिञ्चिन्न कारणं वा मम नैव कार्यम् ॥
अचिन्त्यचिन्त्यं च कथं वदामि स्वरूप निर्वाणम नामयोऽहम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न नहीं है ग्राहकः ग्रहण करने वाला भाव आत्मा में और ग्राह्यकम् ग्रहण होने वाला भाव भी एव निश्चय करके किञ्चित् कुछ भी और कारणम् ग्रहण करने तथा ग्रहण होने का कोई कारण भी क्योंकि वा प्रकाश रूप आत्मा मम मेरा न एव नहीं है निश्चय करके कार्यम् किसी प्रकार से किसी प्रकार का कार्य रूप भी क्योंकि आत्मा है अचिन्त्यचिन्त्यम् मन बुद्धि की सर्व प्रकार की चिन्ताओं से रहित अचिन्त्य स्वरूप है अर्थात किसी भी चिन्ता में न आने वाला अर्थात च कथम् और कैसा है चेतन आत्मा वदामि प्रकट करता हूं मैं कहता हूं मैं कि स्वरूपनिर्वाणम् आत्मा स्वरूप से ही मुक्त अर्थात स्वतन्त्र है और वही अनामयोऽहम् संसार के रोग से रहित मैं हूं

आशय ।

हे चित ! आत्मा में ग्रहण होने तथा ग्रहण करने का कोई भी कार्य और कारण नहीं है क्योंकि प्रकाश स्वरूप आत्मा अर्थात मेरा ही आत्मा निश्चय करके मन बुद्धि की चिन्ताओं से रहित कैसा है मैं कहता हूं कि अचिन्त चेतन है नित्य मुक्त है और वही मैं हूं ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न भेदकं वापि न चैव भेद्यं न वेदकं वा मम नैव वेद्यम् ॥
गतागतं तात कथं वदामि स्वरूप निर्वाणम नामयोऽहम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न भेदकम् नहीं है आत्मा भेद का करनेवाला वा अपि और निश्चय करके न च एव नहीं है चेतन आत्मा निश्चय स्वरूप से भेद्यम् भेद उत्पन्न करनेवाला वा भेद के योग्य भी और न वेदकम् नहीं है आत्मा में वेद अर्थात किसी प्रकार के ज्ञान का जानना भी क्योंकि वा मम वह आत्मा मेरा न एव नहीं है निश्चय करके वेद्यम् वेदवत भी अर्थात जानने योग्य भी क्योंकि गतागतम् आना जाना भी नहीं है आत्मा में अर्थात भूत और भविष्यत काल रूप भी क्योंकि जाने के अर्थ हैं व्यतीत होजाना और आने के अर्थ भविष्यत रूप से आगे आना इसलिये तात हे तात हे दादा हे गुरु हे पिता रूपी चित कथम् कैसा और किस प्रकार का है आत्मा वदामि मैं प्रकट करता हूं कहता हूं कि स्वरूप निर्वाणम् आत्मा मुक्त अर्थात स्वतन्त्र रूप है और जो आत्मा ऐसा है वही अनामयोऽहम् वे नाम मैं हूं

आशय ।

हे चित! आत्मा में न तो कोई भेद ही है और न कोई भेद का करने वाला ही है और न कोई पदार्थ भेद होने के योग ही है और न कोई जानने वाला ज्ञान ही है और न कोई पदार्थ जानने के योग्य ही है क्योंकि वास्तव से उस मेरे आत्मा निश्चय से निश्चय स्वरूप में किसी प्रकार से किसी प्रकार का आना जाना नहीं है इसलिये न तो कोई जाता ही है और न कोई आता ही है अर्थात किसी को भी मिथ्या आवागमन नहीं होता है फिर आना क्या और जाना क्या क्योंकि आत्मा में भूत रूप से व्यतीत होजाने और भविष्यत रूप से आगे आने का कोई भी व्यवहार किसी काल किसी प्रकार नहीं बनता है फिर हे तात कैसा है मेरा आत्मा कि मुक्त स्वरूप है और संसार के रोगों से स्वतन्त्र है और वह मैं आप ही हूं ॥ ११ ॥

न चास्ति देहो न च मे विदेहो बुद्धिर्मनो मे न हि चेन्द्रियाणि ॥
रागो विरागश्च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न च अस्ति नहीं चेतन आत्मा में है देहः शरीर ही और न च मे विदेहः नहीं चेतन आत्मा मेरा है देह से रहित ही क्योंकि बुद्धिः मनः बुद्धि और मन भी मे मेरे आत्मा स्वरूप में न हि नहीं हैं निश्चय करके च और नहीं हैं इन्द्रियाणि इन्द्रिय भी फिर रागः राग अर्थात पदार्थों के इच्छा और कामना भी और विरागः विराग अर्थात अनेच्छित रूप में पदार्थों से स्वतन्त्र भी च कथम् वदामि चेतन आत्मा कैसा है कथन करता हूं मैं स्वरूप निर्वाणम् आनमयोऽहम् नित्य मुक्त है और वही स्वतन्त्र स्वरूप मैं हूं ॥

आशय ।

हे चित! चेतन आत्मा न तो शरीर सहित है और न शरीर रहित है क्योंकि आत्मा तो निर्देह है तथा संपूर्ण शरीर आत्मा में ही कल्पित हैं और इन कल्पित शरीरों का अधिष्ठान आत्मा है इसलिये आत्मा प्रकट प्रतीत में ही शरीर वाला प्रतीत होता है किंतु ऐसा है नहीं क्योंकि मन बुद्धि इन्द्रियादिक भी आत्मा में नहीं हैं ये तो प्रकट कल्पित शरीरों में ही कल्पित हैं इसलिये राग और विराग भी आत्मा में नहीं है क्योंकि कोई पदार्थ आत्मा का उत्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कानेवाला नहीं है इसलिये चेतन आत्मा कैसा है मैं प्रकट करता हूं अर्थात कहता हूं मुक्तस्वरूप है और संसारके रोगों से स्वतन्त्र है अर्थात ऐसा जो अनामयः आत्मा है वही मैं हूं ऐसा तू जान ॥ १२ ॥

उल्लेखमात्रं न हि मिन्नमप्येकोल्लेखमात्रं न तिरोहितं वै ॥
समा समं मित्र कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

उल्लेखमात्रम् नाममात्रको भी अर्थात किञ्चिन्मात्रको भी न नहीं है हि निश्चयकरके हि निश्चयस्वरूपमें अर्थात आत्मा में भिन्नम् द्वैतरूप करके किसी प्रकार का कोई भेद उच्चैः ऊंचेसे ऊंचा उल्लेखमात्रम् नामरूप का कोई विचार करके भी न नहीं है तिरोहितम् छिपा हुआ आत्मा उस नामरूपवाली किसी मात्रामें वै निश्चय करके क्योंकि समम् एकरस है आत्मा सब पदार्थों में और नहीं है असमम् थोड़ा और विशेष करके भी किसी में मित्र हे मित्र फिर कथम् कैसा है आत्मा वदामि मैं कहता हूं स्वरूपनिर्वाणम् ब्रह्म स्वरूप से ही स्वतन्त्र अर्थात मुक्त है और वही अनामयः नाम और रोग से रहित अहम् मैं हूं

## आशय ।

हे चित ! आत्मा में नाममात्र को भी किंचित जीवब्रह्म का भेद नहीं है क्योंकि निश्चयस्वरूप आत्मा में द्वैतरूप करके किसी प्रकार का भी ऊंचेसे ऊंचा नामरूप का कोई विचार करके भी लेशमात्र को भेद नहीं है और आत्मा किसी नामरूपमात्रा में तथा लेशमें निश्चय करके छिपा हुआ भी नहीं है इसलिये हे मित्र वह आत्मा एकरस है असमम् रूप नहीं है क्योंकि कैसा है वह आत्मा आश्चर्यरूप है और कहता हूं मैं कि वह आत्मा स्वरूप से ही निसंग है और नाम तथा रोग से भी रहित अर्थात स्वतन्त्र है और वही मैं हूं ॥ १३ ॥

जितेन्द्रियोऽहं त्वं जितेन्द्रियो वा न संयमो मे नियमो न जातः ॥
जयाजयौ मित्र कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

जितेन्द्रियः इन्द्रियों से रहित अर्थात स्वतन्त्र अहम् मैं हूं और त्वं तू भी हे चित जितेन्द्रियः इन्द्रिय जीत अर्थात इन्द्रियों के विषयों से स्वतन्त्र ही है वा और न नहीं है संयमः संयमरूप मे मेरा आत्मा क्योंकि नियमः न जातः नहीं है उत्पन्नरूपी कोई नियम आत्मा में और नहीं है जया जन्म आत्मा को और जयौ नहीं है उत्पत्ति आत्मा को मित्र हे मित्र कथम् कैसे वदामि कहता हूं मैं स्वरूपनिर्वाणम् आत्मा स्वरूप से ही मुक्त है और अनामयः नाम रोग से भी रहित है और वही अहम् मैं हूं

## आशय ।

हे चित ! मैं आत्मा इन्द्रियों से स्वतन्त्र हूं और तू भी इन्द्रिये जीत है अर्थात इन्द्रियों के विषयों से स्वतन्त्र है इसलिये नहीं है संयम कार्य मेरे आत्मा स्वरूप में और नहीं है उत्पन्नरूपी कोई नियम भी आत्मा में और नहीं है जन्म तथा उत्पत्ति भी आत्मा को अर्थात जय अजय स्वरूप को क्योंकि हे मित्र किसप्रकार आश्चर्य वत है आत्मा मैं कहता हूं नित्य मुक्त है और संसार के नाम और रोगों से स्वतन्त्र है और वह मैं आप ही हूं ॥ १४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

376

अमूर्तमूर्तिर्नचमेकदाचिदाद्यन्तमध्यं नचमे कदाचित् ॥
बलाबलं मित्र कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अमूर्तमूर्तिः मूर्तिसे रहित मूर्तिवाला न च मे कदाचित नहीं है चेतन आत्मा मेरा कभी भी और ऐसे ही आद्यन्तमध्यम् आदि अन्त और मध्य वाला भी न च मे कदाचित नहीं है चेतन स्वरूप मेरा कभी भी फिर बलाबलम् बल और निर्बलता आत्मा का मित्र हे मित्र कथम् कैसे वदामि प्रकट करूं मैं अर्थात आत्मा का बलवाला होना तथा निर्बल होना कहूं मैं क्योंकि आत्मा स्वरूपनिर्वाणम् स्वरूप से ही मुक्त स्वरूप है और अनामयः नाम और संसार के रोगों से रहित है और वही आत्मा अहम् मैं आप ही हूं ऐसा तू जान ॥

आशय ।

हे चित ! मैं आत्मा मूर्ति से रहित हूं अर्थात कभी भी मूर्तिवाला नहीं बनता हूं क्योंकि द्वैत का व्यवहार मेरे में नहीं है इसलिये मैं एक ही अनंत स्वरूप हूं और अनंत होने के कारण मेरा कोई आदि अंत और मध्य भी नहीं है क्योंकि ये सब व्यवहार द्वैत को लेकर के ही होता है अद्वैत में नहीं बनता है सो हे मित्र न तो मैं बली हूं और न मैं दुर्बल हूं क्योंकि बली और दुर्बल का व्यवहार भी द्वैत को लेकर एक दूसरे की अपेक्षा से होता है कैवल्य अद्वैत में अर्थात एक में नहीं होता है सो मैं मुक्त स्वरूप हूं और संसार रूपी रोग से रहित अर्थात बे नाम वाला मैं हूं ॥ १५ ॥

मृतामृतंवापि विषाविषं च संजायते तात न मे कदाचित ॥
अशुद्धशुद्धे च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मृतामृतम् मरना और न मरना वा अपि और निश्चय करके विषाविषम् विष और अविष च और संजायते उत्पन्न होना तात हे तात न मे कदाचित नहीं है मेरे आत्मा स्वरूप में कभी भी और फिर अशुद्धशुद्धम् अशुद्धि और शुद्धि नहीं है च चेतन स्वरूप में क्योंकि कथम् वदामि कैसा है आत्मा कहता हूं मैं कि स्वरूपनिर्वाणम् अनामयः अहम् नित्य है मुक्त बे नाम और वही हूं मैं आप ॥

आशय ।

हे चित ! निश्चय करके मेरे आत्मा स्वरूप में मरना जीना विष अमृत और शुद्ध अशुद्ध से कोई पदार्थ कदाचित भी नहीं हैं क्योंकि मैं नित्य मुक्त स्वरूप बे नाम हूं और संसार के रोगों से रहित मैं हूं ॥ १६ ॥

स्वप्नः प्रबोधो न च योगमुद्रा नक्तं दिवा वापि न मे कदाचित ॥
अतुर्यतुर्यं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम ॥ १७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

स्वप्नः स्वप्न और प्रबोधो जाग्रत न च नहीं होते हैं आत्मा में और नहीं है योगमुद्रा योग की मुद्रा भी और नक्तम् रात्रि व दिवा दिन भी वा और अपि निश्चय करके न मे कदाचित नहीं हैं कभी मेरे में अतुर्यतुर्यम् स्वप्न जाग्रत सुषुप्ति तीन अवस्था तीन स्वरूप करके क्योंकि आत्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

चक्षुम् कैसा है वदामि जानता हूं मैं स्वरूप निर्वाणम अनामयः अहम् मुक्त रूप रोग रहित है साई मैं हूं ॥

आर्य्य ।

हे चित! मेरे में न स्वप्न है न जाग्रत है नहीं योग की मुद्रा अर्थात समाधी है न दिन है न रात्री है न तुरीया है न अतुरीया है क्योंकि मैं जानता हूं कि मैं नित्य स्वतन्त्र अनामयः अर्थात नहीं है जिसका कोई नाम वह मैं हूं ॥ १८ ॥

संविद्धि मां सर्वविसर्वमुक्तं मायाविमाया न च मे कदाचित् ॥
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

संविद्धि - सर्व प्रकार की क्रियाओं से जान तू माम् मेरे को सर्वविसर्वमुक्तम् संपूर्ण सबही से रहित और स्वतन्त्र क्योंकि मायाविमाया न च मे कदाचित माया अर्थात अविद्या अविद्यारूप से नहीं है चेतन स्वरूप मेरे में किसी काल भी और अविद्यारूपी संध्यादिकं कर्म - संध्यादिक कर्म भी कथम् क्यों कैसे वदामि प्रकट करता हूं मैं कि मैं स्वरूपनिर्वाणम् स्वरूप से मुक्त हूं और अनामयोऽहम् रोग से मैं हूं

आर्य्य ।

हे चित! सर्व प्रकार की प्रपंचक्रियाओं से मैं स्वतन्त्र हूं क्योंकि अविद्यारूपी माया मेरे चेतन स्वरूप में किसी काल में भी नहीं है अर्थात माया और माया के कार्य से मैं रहित हूं और ज्ञान तथा संध्यादिक कर्मों के करने से भी कि जो कुम्भक के भेद से आठ प्रकार की संध्या प्राणायाम है अर्थात " सूर्य्य भेदनमु ज्जायी सीत्कारी सीतली तथा । भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनी त्यष्टु कुम्भकाः ॥ " जो ये आठ प्रकार की प्राणायाम हैं और जिसमें (१) सूर्य्य भेदन की क्रिया में दाहिने नासा से अर्थात पिंगला नाड़ी से पूरक करने अर्थात श्वासा को बाहर से खेंच कर शरीर में भरने और रोकने और रोकी हुई वायु को धीरे धीरे इड़ा से बाहर निकाल देने का नाम सूर्य्य भेदन है इससे और (२) उज्जायी की क्रिया में मुह मूंद कर एक बार इड़ा से श्वास खेंचकर शरीर में भरने और पिंगला से छोड़ कर रेचक करने का नाम है इससे और (३) शीत्कारी में दोनों होंटों के मध्य जिह्वा लगाकर श्वासा खेंचने और पूरक करने तथा दोनो नासा स्वर से रेचक करने अर्थात श्वासा को छोड़ने का नाम है इससे और (४) शीतली में जिह्वा को होंटों से बाहर को निकाल मुंह से पूरक करने और नासा से रेचक करने का नाम है इस से और (५) भस्त्रिका में पिंगला से रेचक करने और पूरक करने और बारम्बार इसी प्रकार क्रिया कर के पेट में वायु भर कर पूरक रेचक करने का नाम है इस से और (६) भ्रामरी में पूरक करते समय भृंग समान नाद और रेचक समय भृंगी सम नाद करने का नाम है इससे और (७) मूर्च्छा की क्रिया में किसी एक नाड़ी से पूरक रेचक करने का नाम है इस से और (८) प्लाविनी में पूरक करके शरीर में वायु को बांधने का नाम है इस से ये आठ प्रकार की जो प्राणायाम और संध्या कर्म षट राग है उस सबसे मैं स्वतन्त्र हूं अर्थात किसी कर्म करने की मेरे में मेरे को आवश्यक्ता नहीं है इन से तू मेरे को रहित ही जान क्योंकि मैं मुक्तस्वरूप हूं और संसार के रोगों से मैं रहित और स्वतन्त्र हूं अर्थात नहीं है कोई मेरा नाम और हूं मैं अनामयः ॥ १८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संविद्धि मां सर्वसमाधियुक्तं संविद्धि मां लक्ष्यविलक्ष्यमुक्तम् ॥
योगं वियोगं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ १९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

संविद्धि - सर्व विधियोंमें सम्यक एकही विधि तू जान मां मेरे को अपने आप को क्योंकि सर्वसमाधियुक्तम् सर्व प्रकार की समाधियोंके युक्तरूपमें एक अयुक्त स्वरूपमैं हूं और सम एकही विद्धि विधियोंके रूपमें विधि माम् मेरा नाम है कि जो लक्ष्यविलक्ष्य मुक्तम् लक्ष्य में विलक्ष्य और विलक्ष्य से भी रहित अर्थात मोक्षस्वरूप है और जिस योगम् अपूर योग स्वरूपमें वियोगम् नहीं है खण्डन रूपसे किसी प्रकारका खण्डण अर्थात वियोग भी क्योंकि च चेतन वीरआत्मा जो स्वतन्त्रहै योग वियोग से कथम् कैसा है वदामि - प्रकट करता हूं मैं आपही स्वरूप निर्वाणम् अनामयः अहम् स्वरूपसे स्वतन्त्र है नाम से रहित है और वही संसारके रोगोंसे रहित मैं हूं

## आशय ।

हे चित! सर्वप्रकार की समाधियोंके युक्तरूपमें अयुक्तस्वरूप अर्थात सर्व प्रकार की विधियोंमें एक ही विधि मैं हूं क्योंकि सबका लय अधिष्ठान मैं हूं अर्थात सबका लय कोश मैं हूं कारण कि सबका लय मेरे में ही होता है और इसी हेतु से केवल एकही विधि मेरा नाम है कि जिस नाम में संपूर्ण इन्द्रियादिकोंके लक्ष्य भाव अर्थात विलक्षण स्वरूप नानारूप हैं और ये विगत लक्ष्य भाव भी मेरे में नहीं हैं क्योंकि मैं इन सब लक्ष्यविलक्ष्य लक्षणों से मुक्त अर्थात स्वतन्त्रव रहित हूं क्योंकि योग करके संयोग और संयोग करके वियोग भी मेरे में नहीं है क्योंकि एक अपूर अखण्डित स्वरूपमेरा है कि जिस एकस्वरूपमें संयोग वियोग दोनों नहीं बनते हैं इसलिये चेतन वीर पुरुष आत्मा मेरा जो योग वियोग से स्वतन्त्र है कैसा है मैं आप ही प्रकट करता हूं अर्थात कथन करके कहता हूं कि वह आत्मा मुक्तस्वरूप है जन्म मरणरूपी रोगों से रहित है अर्थात कोई नाम रूप उसका नहीं है और वही मैं हूं ॥ १९ ॥

मूर्खोऽपि नाहं न च पण्डितोऽहं मौनं विमौनं न च मे कदाचित् ॥
तर्कं वितर्कं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मूर्खः अपि न अहम् मूर्ख निश्चयकरके नहीं हूं मैं और न च पण्डितः अहम् नहीं हूं चेतनस्वरूपसे पण्डित भी मैं और मौनम् विमौनम् मौन रूप अर्थात नबोलने वाला और विमौनरूप अर्थात मौनसे रहित बोलनेवाला न च मे कदाचित् नहीं है चेतन आत्मा मेरा कभी भी और तर्कम् तर्क और वितर्कम वितर्क भी अर्थात पूछना और न पूछना भी नहीं है च चेतन स्वरूप में कथम् कैसे वदामि - कहता हूं मैं कि स्वरूप निर्वाणम् अनामयः अहम् मैं स्वरूप से मुक्त और नाम रोग से भी स्वतन्त्र हूं

## आशय ।

हे चित! मैं न तो निश्चयकरके मूर्ख हूं और नहीं पण्डित हूं और न ही मित भाषी तथा मौनी हूं और नहीं अमित भाषी अर्थात बोलनेवाला हूं और नहीं तर्क वितर्क का करनेवाला ही मैं हूं फिर कैसा हूं मैं चेतन प्रकट करता हूं मैं आप ही कि मैं आत्मानंद नित्य मुक्त नामरूप रोग से रहित सत्य ब्रह्म हूं ॥ २० ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

पिता च माता च कुलं न जातिर्जन्मादिमृत्युर्न च मे कदाचित् ॥
स्नेहं विमोहं च कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

पिता च माता च कुलम् न पिता अर्थात बाप और माता अर्थात महतारी और कुल अर्थात कुलवंश की सारवा नहीं हैं मेरे में और नहीं है जातिः जाति भी कोई मेरी और जन्मादिमृत्युः न च मे कदाचित जन्म लेना और मरना अर्थात आवागमन करना भी नहीं है चेतन स्वरूप मेरे में किसी काल पर्यन्त भी और फिर स्नेहम् मित्रता का भाव और विमोहम् विशेष करके मोह तथा प्रेम का भाव भी नहीं है च चेतन आत्मा में कथम् क्योंकि वदामि प्रकट कररहा हूं मैं कि आत्मा स्वरूपनिर्वाणम् मुक्त है और वही अनामयः अहम् बेनाम मैं हूं

आशय ।

हे चित ! न तो मेरा कोई पिता है और न कोई मेरी माता है न मेरा कोई कुल है और न मेरी कोई जाति है क्योंकि मैं जन्म मरण अर्थात आवागमन से स्वतन्त्र हूं अर्थात मेरे को किसी काल में भी आवागमन अर्थात जन्म और मरण नहीं होता है और नहीं है इसकरके मेरे को किसी के साथ स्नेह ही और नहीं है विशेष करके मोह ही क्योंकि चेतन आत्मा मेरा मैं आप ही कहता हूं स्वरूप से ही मुक्त हैं संसार के रोगों से रहित है और बे नाम है और वही मैं हूं ॥२१॥

अस्तं गतो नैव सदोदितोऽहं तेजो वितेजो न च मे कदाचित् ॥
संध्यादिकं कर्म कथं वदामि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अस्तं गतः अस्त अर्थात लय भाव को प्राप्त होजाने वाला भाव तथा मार्ग न एव नहीं है निश्चय स्वरूप में क्योंकि सत् सत्य करके जो सत्य स्वरूप आत्मा है वह उदितः प्रकाश मान प्रकाश स्वरूप ही है और वही अहम् मैं हूं और तेजः तेज रूप हूं कारण कि वितेजः तेज से रहित न च मे कदाचित नहीं है चेतन स्वरूप मेरा कभी भी फिर संध्यादिकं कर्म कथं वदामि - संध्यादिक कर्म कैसे होसकते हैं मेरे में क्योंकि मैं तो स्वरूपनिर्वाणम् अनामयः अहम् स्वरूप से ही मुक्त हूं और संसार के रोगों से रहित मैं हूं ॥

आशय ।

अहो चित ! क्या तू ऐसा जानता है कि मैं अस्त रूप करके लय भाव को प्राप्त हो जाने वाला हूं नहीं ऐसा तो किसी काल में भी होने वाला नहीं है क्योंकि नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में अस्त गति का कोई भाव और सत्य स्वरूप है आत्मा सत्य करके सत्य ही सत्य अर्थात प्रकाश स्वरूप में प्रकाश मान और उदय ही उदय रूप बना रहता है ये आत्मा कि जो स्वयं है तेज और नहीं होता है कभी तेज से रहित अर्थात नहीं कहा सकता है कभी भी चेतन स्वरूप मेरे को कोई सामान्य तेज और विशेष तेज भी प्रकाशमान फिर संध्यादिक कर्म कि जो मनादिक इन्द्रियों के कर्म हैं अर्थात इस प्रकार से जैसे कि पूरक के समय सप्तव्याहृतियों के द्वारा सात स्थानों के देवता देवी भिन्न भिन्न मान कर मूढ़ कर्माचार्य देवता देवी इत्यादि का इस प्रकार ध्यान क्या करते हैं कि पृथम तो (१) ॐ भूः का ध्यान है और वह इस प्रकार से है कि मनुष्य देह में सषुम्ना नाडी के मूलसे लगा हुआ लिंग से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नीचे और गुदा से दो अंगुल ऊपर चार दल का एक पद्म कहते हैं और उसी का नाम आधार चक्र भी है इस के चारों दल शोभा अर्थात रक्त वर्ण हैं और इन चारों दलों पर चार अक्षर व, ष, श, स, तप्त सोने के रङ्ग चमकते हुए शोभायमान हैं और इस कमल का अधोमुख है अर्थात नीचे को मुंह है कि जो प्राणायाम करने से मूल द्वार के आकुंचन के कारण ऊर्द्ध मुख होजाता है फिर इस मूलाधार पद्म के बीच चौकोन बिजली जैसा चमकता हुआ पृथिचक्र है कि जो सम अष्ट कोन शूल से घिरा हुआ है और इसके मध्य में पीत वर्ण दामिनी के ऐसा दमकता हुआ कोमल स्वरूप (लं) अक्षर पृथिवी बीज है और इस पृथिवी बीज की गोद में बाल सूर्य के समान रक्त वर्ण बालक स्वरूप ब्रह्मा ऐरावत हस्ती पर चढ़े चार भुजा ओंकार के भूषित सृष्टि करने में तत्पर हो शोभायमान है कि जिसके चारों मुख से चार वेद उच्चारण होरहे हैं और उक्त बाल स्वरूप ब्रह्मा के समीप उसकी शक्ति डाकिनी नाम की देवी चतुर्भुजी रक्त नयना प्रलय काल के द्वादश सूर्य्य के समान तेज धारण किये प्रकाश वान हो रही है सो जो इस प्रकार ध्यान करता है अर्थात लं बीज की गोद में ब्रह्मा सहित डाकिनी देवी का और इस कमल की कर्णिके मद्ध त्रिपुरा देवी सम्बन्ध त्रिकोन यंत्र स्थित कन्दर्प नाम वायु और स्वयम्भूलिंग के ऊपर कुण्डलिनी नाम महा माया और फिर जिसके अनन्त महा प्रकृति को कड़ोड़ो सूर्य्यों के समान प्रकाश मय ध्यान करता है वह वृहस्पति के समान सर्व विद्या का जानने वाला और मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा के समान होजाता है इसके अन्य दूसरा ध्यान

(२) ॐ भुवः का है इसका ध्यान चतुर्दल पद्म के ऊपर और एक पद्म दो दल का है कि जिसको स्वाधिष्ठान चक्र कहा जाता है ध्वज अर्थात लिंग के मूल में सिन्दूर के रंग ऐसा ये पद्म वर्तमान है और सुषुम्ना नाड़ी के मध्य चित्रिणी नाड़ी से ग्रथित है इस के दूनों पत्ते बिजली के समान निर्म्मल दमकते हैं कि जिन पर अनुस्वार सहित बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ ये छः अक्षर शोभायमान हैं और इस के मध्य स्वच्छ निर्म्मल शुक्ल वर्ण नभ मण्डलाकार वरुण चक्र है इसी वरुण चक्र के अन्तर अति स्वच्छ निर्म्मल शरद ऋतु के चन्द्रमा ऐसा शुक्ल वर्ण (वँ) वरुण बीज है जो मकर पर आरूढ़ मस्तक में अर्द्ध चन्द्र धारण किये शोभायमान है अर्थात वरुण का वाहन मकर है इस करके उसके बीज का भी वाहन मकर है। जिस वरुण बीज अर्थात वरुण देवता की में सर्व संसार रक्षक विष्णु भगवान चतुर्भुज श्याम वर्ण पीताम्बर पहरे किशोर अवस्था हृदय में भृगुलता और गले में कौस्तुभ मणि धारण किये हुये विराजमान है और समीप ही राकिनाम देवी नीले कमल की कर्णिका ऐसी श्यामा नाना प्रकार के शस्त्रों को चारो भुजाओं में धारण किये विद्युत के समान दमकती हुई नाना प्रकार के वसन और भूषण से शोभित होकर के अति आनन्द से शोभायमान है सो जो इस स्वाधिष्ठान पद्म के मध्य वरुण चक्र के बीच वरुण बीज की गोद में श्री विष्णु भगवान को राकिनी नाम देवी के सहित ध्यान करता है उस के अहंकारादि उसी क्षण नाश होजाते हैं और मोह रूप के नाश करने में सूर्य्य के तुल्य समर्थ होता है इस के अन्य

(३) ॐ स्वः की तीसरी ध्यान साधना है कि जो इसप्रकार है कि स्वाधिष्ठान चक्र से ऊपर नाभी के मूल में नील वर्ण पूर्णमेघ के समान दशदल का कमल है कि जिसको मणि पूरक पद्म कहा जाता है और इसके दशों पत्तियों पर डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ, के रस अक्षर चन्द्र और बिन्दु के सहित वर्तमान हैं

CC-0.Gurukul Kangri University,Haridwar.Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

और ये पत्तिया जठर अर्थात पेट में फैली हुई हैं फिर इसके मध्य में वैश्वानर देवता का त्रिकोण मंडल बालसूर्य्य के समान लाल वर्ण ध्यान करना चाहिये इस त्रिकोण यन्त्र के बाहर तीन द्वार स्वस्तिक नाम करके लगे हैं और इसी त्रिकोण यन्त्र के बीच में वैश्वानर देवता के (रँ) बीज को सूर्य्य मंडल के समान दमकते हुये ध्यान करना चाहिये वैश्वानर देवता अग्नि का नाम है सो मेढ़ा पर स्वार बालबाल सूर्य्य के ऐसा दमकते हुये चतुर्भुजी (रँ) अग्नि बीज की गोद में सिन्दूर के समान लोहित वर्ण वृद्धरुपी त्रिनेत्र भस्म भूषित अङ्ग एक हस्त से संसार को बांछित फल देते हुये और दूसरे हस्त से अभय दान देते हुये प्रलय काल में संहार करने को समर्थ रुद्ररुपी शिव निवास करते हैं इसी प्रकार ध्यान करना चाहिये और शिव के समीप में लाकिनी नाम की देवी अच्छे प्रकार सर्व मङ्गल की करने वाली चतुर्भुजी अति प्रकाशमान श्यामा स्वर्ण वर्ण पीताम्बर धारण किये विविध प्रकार के भूषण से भूषित आनंद से मग्न चित्त संहार पालन करने में समर्थ होकर वर्तमान हो रही है। सो जो इस प्रकार दशदल पद्म के मध्य वैश्वानर देवता के त्रिकोण मंडल स्थित (रँ) बीज की गोद में शिव भगवान की मूर्ति को लाकिनी नाम देवी के सहित ध्यान करता है वह भी संहार और पालन में समर्थ हो जाता है। इसके अन्य चौथा ध्यान -

(४) ॐ महः का है कि जो इस प्रकार है कि उक्त मणि पूरक पद्म के ऊपर हृदय में बन्धूक के पुष्प समान लाल वर्ण का द्वादशदल का एक कमल है कि जिस की बारहों पत्तियों पर कँ खँ गँ घँ ङँ चँ छँ जँ झँ ञँ टँ ठँ - ये बारह अक्षर सिन्दूर वर्ण शोभायमान हैं और इसी पद्म का नाम अनाहत चक्र है जो कल्पवृक्ष के समान बांछा से अधिक फल का देने वाला है इस के बीच षटकोण धूम्र वर्ण वायु का मंडल शोभायमान है कि जिसके बीच में (यँ) वायु बीज मधुर धूम्र वर्ण चतुर्भुजी मृग के ऊपर स्वार है इसी बीज के मध्य हंस वर्ण अर्थात शुक्ल वर्ण द्विभुज ईशान नाम शिव अपनी भुजाओं से तीनों लोक को अभय दान देते हुए वर्तमान है और इसके समीप ही काकिनी नाम देवी दामिनी समान दमकती हुई तीन नेत्र वाली मुण्ड की माला धारण किये चतुर्भुजी खड्ग अंग पाश कपाल लिये अमृत पान करती वर्तमान है और इसी पद्म में त्रिनयना नाम त्रिकोण शक्ति का निवास है कि जिसके साथ वाणाख्य नाम द्विभुज शिवलिङ्ग मस्तक पर अर्द्ध चन्द्रमा धारण किये विराजमान है जिसमें मणि के छिद्र समान एक छिद्र है ये स्थान लक्ष्मी के आलय समान है और इसी अनाहत चक्र में सुरतरु अष्टदल कमल गुप्त रूप से वर्तमान है कि जिसके मूल में सर्व देवताओं का निवास स्थान है और इसी स्थान पर जीव आत्मा का निवास होता है सो जो ऐसा ध्यान करता है सर्व सिद्धि को प्राप्त करता है

(५) ॐ जनः का पांचवा ध्यान भी इसी प्रकार है कि चौथे कमल के ऊपर कण्ठ के मध्य में षोड़श दल का एक कमल धूम्र वर्ण का है जिसके सोलहों पत्तियों पर - अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः - ये सोलहो स्वर रक्त वर्ण के शोभायमान हैं और इसी को विशुद्धाख्य चक्र कहा जाता है इस कमल के मध्य गोलाकार आकाश मण्डल अर्थात शून्य चक्र है कि जो पूर्ण चन्द्र मंडल ऐसा है और इसी स्थान पर श्वेत वर्ण हस्ती पर स्वार निर्म्मल दीप के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाला (हँ) आकाश बीज चतुर्भुजी रूप से वर्तमान है और हाथों में इसके पाश[1] भीति[2] अंकुश[3] वर[4] ये चारों शस्त्र हैं इस हंकार आकाश बीज की गोद में अर्द्धाङ्ग अर्थात हरगौर्य्याख्य श्री सदाशिव भगवान हिम समान उज्ज्वल अंग त्रिनेत्र पञ्च मुख दश भुज व्याघ्र के चर्म्म को अम्बर समान कटि में धारण किये वर्तमान हैं और समीप में ही सुधासमुद्र को पान करती हुई निर्म्मल शुक्ल वर्ण पीत वस्त्र पहने चारों भुजाओं में शर चाप पाश और अंकुश को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धारणकिये शाकिनी नाम देवी निवास करती है और इसी मे मोक्ष चन्द्र विराजमान है कि जो मोक्ष का देने वाला है तो जो ऐसा ध्यान करता है सोही सर्व सिद्धियों को प्राप्त होता है कोई शक्ति उसके बाहर नही होती -

(६) ॐ तपः हृदा ध्यान है कि जो भ्रूमध्य अर्थात दोनों भौहों के बीच ललाट स्थान में जो द्विदल का रक्त कमल है और चन्द्र शुक्ल रूप है और इसी का आज्ञाख्यपद्म नाम है कि जिसके दो शुक्ल पत्ते हैं इन पर हं क्षं दो अक्षर हैं और मध्य में इनके चन्द्र समान षट मुखी हाकिनी नाम देवी चारो भुजाओं में विद्या मुद्रा अर्थात ज्ञानमुद्रा कपाल डमरू और जप वटी अर्थात जप माला धारण किये शुद्ध चित विराजमान है कि जिसके मध्य मन का सूक्ष्म रूप से निवास है और कमल की कर्णिका के बीच इतराख्य नाम शिवलिङ्ग वर्तमान है कि जहां कोटि दामिनी समान दमकता हुआ परम शक्ति स्थान है इसी स्थान से ब्रह्म नाड़ी का बोध होता है और इसी स्थान के मध्य वेदों का बीज प्रणव अर्थात ॐ दिप्त मान है सो इसप्रकार ध्यान करने से और नेत्रों को उलट कर देखने से मूलाधार पद्म से सहस्रदल पद्म तक का जो ब्रह्मनाड़ी नक है बोध हो जाता है और यही परम शक्ति प्रणव अन्तरात्मा ॐ कारके ऊपर द्वितिया के चन्द्र समान उर्द्ध चन्द्र शोभित है कि जिसके ऊपर बिन्दु रूपी मकार है तहां से नाद आरम्भ है अर्थात अनाहत ध्वनि होती है इसी स्थान में निरालम्ब मुद्रा का चित को लीन करने से द्वैत भेद का नाश होजाता है और आत्मा दिखने लगता है और सर्वत्र पूर्ण ज्योति ही ज्योति देखने में आती है इसी का नाम है परम पुरुष में लीन होजाना और यही है लय स्थान कि इस ध्यान से वाक्य सिद्धि लाभ होता है -

(७) ॐ सत्यं सातवा ध्यान है कि जो हृत चक्र के ऊपर जो शंखिन्या नाम की नाडी है उसके शिरमें शून्यस्थित विसर्ग नाम शक्ति के नीचे अत्यन्त प्रकाशमान पूर्ण चन्द्र समान शुभ्रवर्ण सहस्र दल पद्म है कि जो अधोमुख है अर्थात नीचे को मुंह रखता है ये कमल सहस्रो बाल रवि की किरणों के समान अत्यन्त ही प्रकाशमान है और केसर समान है और अकारादि पचासों अक्षर वर्ण माला के (अ से क्ष) तक इस कमल की पत्तियों पर शोभा दे रहे हैं अर्थात इस कमल की २० - २० पत्तियाँ एक एक अक्षर से ग्रथित है और इसी के बीच में ज्ञान अमृत रूप निःकलंक पूर्ण चन्द्र निवास करता है और अपनी ज्योति को सर्वत्र ही फैला रहा है। और इसी कमल में त्रिकोण यंत्र है कि जिसके बीच में सब देवों का देव चिद्रूप परब्रह्म निःशून्य रूप से निवास करता है कि जो अज्ञानता रूपी अन्धकार का नाश करता है अर्थात हंस सूर्य समर्थ है इसी कमल का नाम हरिहर स्थान है इसी का नाम प्रकृति पुरुष का स्थान है सो जो इसप्रकार ध्यान करता है वह मुक्त अमर संहार पालन में समर्थ होजाता है - इसके अन्य आठवां ध्यान -

(८) अयमेव गायत्री मन्त्रः ॥ का है कि जिसके ये अर्थ हैं कि निश्चय करके मैं आप ही गायत्री रूप हूं किंतु ऐसा न जान कर और निम्न मंत्र को गुह्य मंत्र कहकर और गायत्री नाम रखकर - अना नाम शक्ति है और मध्य निर्वाण नाम की जो सहस्र दल पद्म में निवास करती है और इसी को महाकुण्डलिनी कहा जाता है और जो कुम्भक में विशेषकर जपा जाता है ये है - "ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो योनः प्रचोदयात् ॥" सो जो इस प्रकार कुम्भक में तीन बार अर्थात दो चन्द्र और एक सूर्य से दोनों वायें पूरक रेचक करने से सातों कमलों का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ध्यान करते हुए ध्यान करता है वह एक प्राणायाम् करता है और संध्या कर्म में इस प्रकार की तीन प्राणायाम होती हैं और प्रत्यक पूरक कुम्भक और रेचक में जितना मन्त्र पढ़ा जावे उतनी मात्रा का प्राणायाम होता है किंतु हे चित सन्धादिक प्राणायाम जो कि मन इन्द्रियादिकों के कर्म हैं ये मेरा क्या सुधार कर सकते हैं कुछ भी नहीं क्योंकि ये सब मिथ्या प्रपंच माया की कल्पना का कल्पित भाव ही है क्योंकि मैं बन्धन से रहित नित्य मुक्त रूप हूं मेरे अन्य कौन है कि जिसका मैं ध्यान करूं कोई भी नहीं है क्योंकि श्रुति प्रमाण " तत्त्वं वरेण्यं भर्गो जङ्घादि विक्रमादैत्या नामय ऽहम् " अर्थात यथार्थ करके सर्व श्रेष्ठ २६ सूर्य्यों का एक ही सूर्य गर्ग नाम में आदि जनक अर्थात स्वतन्त्र स्वरूप आत्मा और कर्म रहित सूर्य्यों का सूर्य्य संसार के रोगों से रहित नहीं है जिसका कोई नाम वही मैं हूं ॥ २२ ॥ फिर हे चित क्या हूं मैं ।

असंशयं विद्धि निराकुलं मामसंशयं विद्धि निरन्तरं माम् ॥
असंशयं विद्धि निरञ्जनं मां स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

असंशयम् संशयों से रहित विद्धि तू जान निराकुलं माम् मूल कारण से भी रहित मेरे को अर्थात असंशयम् विद्धि निरन्तरं माम् - संशों से रहित ही तू जान एक रस मेरे को अर्थात असंशयं विद्धि निरञ्जनं माम् संशयों से रहित ही तू जान निर्लेप निरन्तर मेरे को क्योंकि स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् नित्यमुक्त रोग रहित मैं हूं ॥

आश्य ।

हे चित ! वास्तव से मेरा कोई कुल नहीं है अर्थात उत्पति का मूल कारण मेरा कोई भी नहीं है इसलिये मैं सर्व प्रकार के संशयों से रहित हूं और सदैव एकरस ही रहता हूं क्योंकि घटने बढ़ने से भी मैं रहित हूं और मायामल से भी रहित हूं क्योंकि नित्य मुक्त स्वरूप ज्यों का त्यों संसार के रागों से स्वतन्त्र नहीं है जिसका कोई नाम ऐसा अनामय मैं हूं ॥ २३ ॥

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति शुभाशुभं कर्म परित्यजन्ति ॥
त्यागामृतं तातं पिबन्ति धीराः स्वरूपनिर्वाणमनामयोऽहम् ॥ २४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ध्यानानि सर्वाणि परित्यजन्ति - ध्यानों का संपूर्ण त्याग किया हुआ है मैं ने और फिर शुभाशुभम् कर्म परित्यजन्ति - शुभ और अशुभ कर्मों का भी त्याग कर दिया है मैं ने और त्यागामृतम् तातं पिबन्ति धीराः त्याग रूपी अमृत को हे तात मैं पान कर रहा हूं धीर्य से क्योंकि स्वरूपनिर्वाणम् स्वरूप से ही मुक्त हूं मैं और अनामयोऽहम् संसार सागर के रागों से भी रहित हूं मैं ॥

आश्य ।

हे चित ! आत्मा सर्व प्रकार के ध्यानों से स्वतन्त्र है और सर्व प्रकार के शुभ और अशुभ कर्मों से भी वह आत्मा स्वतन्त्र है और फिर स्वतन्त्र स्वरूप का जो अमृत है उसी का पान करने वाला आत्मा है क्योंकि नहीं है किसी प्रकार का ध्यान और कर्म और त्याग आत्मा में क्योंकि आत्मा अमृत पान रूप है और स्वरूप से ही मुक्त है और नाम रोग से भी स्वतन्त्र है सो जो ऐसा आत्मा है वही मैं हूं ॥ २४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ॥
समरसमग्नो भावित पूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

विन्दति विन्दति आत्मा नहीं चाहता है कुछ अर्थात नहीं इच्छा करता है किसी प्रकार की भी किसी से क्योंकि न हि न हि यत्र नहीं है निश्चय कर करके नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा के अन्य अर्थात चेतन ब्रह्म के अन्य कहीं कोई पदार्थ क्योंकि च चेतन स्वरूप आत्मा में नहीं हैं छन्दः लक्षणम् छन्द और लक्षण भी और न हि न हि तत्र नहीं है निश्चय करके अर्थात नहीं है निश्चय स्वरूप में तत् स्वरूप के अन्य कोई भी पदार्थ क्योंकि समरसमग्नः भावित पूतः एकरस ही है ब्रह्म आत्मा का प्रसन्न स्वरूप और है वह आत्मा पवित्र भी सो जो ऐसा आत्मा है वही प्रलपति अपूर्ण स्वरूप है और आधीन्ता से स्वतन्त्र है और तत्त्वम् यथार्थ है और परम् श्रेष्ठ है और वही अवधूतः अवधूत स्वरूप मेरा है ॥

आशय ।

हे चित ! आत्मा सर्व प्रकार की कामनाओं से रहित है अर्थात श्रेष्ठ आत्मा को किसी प्रकार की भी इच्छादि आवश्यकता नहीं है क्योंकि नहीं है निश्चय करके निश्चय स्वरूप आत्मा के अन्य कोई पदार्थ सत्य करके सत्य रूप क्योंकि चेतन आत्मा में अर्थात सत्य स्वरूप में नहीं हैं निश्चय करके छन्द रूप मन्त्रादिक भी कारण कि वास्तव में श्रेष्ठ आत्मा आनन्दघन है एकरस है पवित्र और अपूर्व स्वरूप है यथार्थ करके स्वतन्त्र है और श्रेष्ठ है निर्मल पूत है और ऐसा जो आत्मा है वही अवधूत स्वरूप मेरा है ऐसा तू जान ॥ २५ ॥

चिद्रूप ब्रह्मणोऽहं नः कलङ्क कलंक हीनम् ॥ विस्तारं सार मनन्तो केवलं गगनाकारम् ॥२६॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

चिद्रूपसंपूर्ण श्रेष्ठ चेतन ही चेतन ब्रह्मणः ब्रह्मात्मा अहम् मैं हूं और नः कलङ्क कलङ्क बिन कलङ्क हीनम् कलंक से रहित भी मैं हूं और विस्तारम् विस्तार करके जो सर्वत्र फैला हुआ है उसका सार यथार्थ फल मैं ही अनन्तो अनंतस्वरूप केवलम् केवल अर्थात एक ही हूं कि जो गगनाकारम् आकाशवत सर्वत्र ही एक रस व्यापक आकार में व्यापक होरहा हूं ॥

आशय ।

हे चित ! संपूर्ण श्रेष्ठ आत्मा जो चेतन ही चेतन ब्रह्म आत्मा है वह मैं ही कलंक से रहित निष्कलङ्क आत्मा हूं कि विस्तार पूर्वक सर्वत्र फैला होने के कारण दृष्टि गोचर होने पर भी अदृष्ट हूं किंतु इस संपूर्ण विस्तार रूपी आकार का कि जो दृष्टि गोचर होता है यथार्थ करके इस अनंत स्वरूप का कि जो नानाकर्ता भोक्ता रूप करके प्रतीत होता है केवल मैं ही अर्थात एक मैं ही आत्मा हूं कि जो आकाशवत सर्वत्र एक रस व्यापक आकार में व्यापक होरहा हूं अर्थात जो जीव जगत परमार्थ सत्ता रूप देखने में आता है वह केवल मेरी चेतनता की सर्व व्यापकता ही आभास है क्योंकि मैं चिद्रूप राम परम ब्रह्म निष्कलंक रूप एक ही हूं और जगत स्वरूप होने पर भी नित्य मुक्त तथा असंग हूं ॥२६॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

दशमावतारो हि रवि मनु प्राकं परमवधूतः॥ नः कलङ्क अगमं हरि बल महि हर नित्यं पूतः॥२७॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

दशमावतारः - दश अवतारों के स्वरूप में - हि निश्चय करके रवि नाम सूर्य्य और मनु नाम महत्त्व महाकाश प्रकाश रूप में प्राकम् करोड़ों सूर्य्यों का एक प्रकाश रूप सूर्य्य परम् महान श्रेष्ठ अवधूतः नित्य मुक्त एक आत्मा मेरा है कि जो नः कलङ्क निष्पाप है अर्थात सर्व प्रकार के दोषों से रहित है और यही एक अगम् मम अगम स्वरूप मेरा है और फिर इसी स्वरूप का नाम हरि विष्णु भगवान भी है और इसी का नाम बल अर्थात शक्ति भी है और ये ही मः मेरा एक हि निश्चय स्वरूप है कि जो हर नाम से अनंत शक्ति रूप में परमात्मा कह्या जाता है और जो नित्यम् नित्य है और फिर यही स्वरूप पूतः अति पवित्र एक अपूर्व अर्थात निरन्तर सर्व व्यापक मेरा स्वरूप है ॥

आशय ।

हे चित्त! दश अवतारों के स्वरूप में निश्चय करके रवि नाम सूर्य्य जो मनु महत्त्व महाकाश आकाश प्रकाश रूप है ये ही करोड़ों सूर्य्यों का एक प्रकाश रूप सूर्य्य महान श्रेष्ठ नित्य मुक्त एक आत्मा रूप मेरा है कि जो निष्पाप है अर्थात जो एक ही निष्कलङ्क स्वरूप में सर्व प्रकार के दोषों से रहित है और एक अगम स्वरूप में एक ही अवतार स्वरूप मेरा है सो मेरे इसी निष्कलङ्क स्वरूप का नाम हरि अर्थात विष्णु भगवान है और इसी का नाम बल अर्थात शक्ति भी है कि जो मेरा निश्चय करके अनंत शक्ति वाला रूप होने के कारण अनंत नामों से एक ही परमात्मा नाम कह्या जाता है सोई नित्य मुक्त है और अत्यन्त पवित्र स्वरूप मेरा है अर्थात निरन्तर सर्व व्यापक मेरा ही एक रूप है हे चित्त ऐसा तू जान क्योंकि नहीं है मेरे पवित्र स्वरूप के अन्य कोई वस्तु भी किहीं किसी ओर ॥ २७ ॥

## ५- कर्म त्याग स्वतन्त्रतापञ्चमो शिक्षा ।

प्रणव अक्षर ज्ञान तत्त्व निर्णय - ॥

ओमिति गदितं गगनसमं तन्न परापर सार विचार इति ॥
अविलास विलास निराकरणं कथमक्षर बिन्दुसमुच्चरणम् ॥ १ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ओश्म् इति - ओश्म इस प्रकार गदितं गरजता हुआ गगनसमम् आकाशवत मेरा स्वरूप है और तत् यथार्थ है कि जिसमें न पर अपर सार विचार इति - नहीं है परा रूप की कोई भी प्रकृति और नहीं है अपरा रूप की कोई भी प्रकृति और नहीं है प्रकृति का कोई सार विचार ही क्योंकि इति अर्थात आदि और अन्त का एक ही अनंत स्वरूप जो गरजता हुआ शब्द है अर्थात प्रणव ओश्म एक अक्षर है ये ही अविलास दुःख का और विलास सुख का - निराकरणम् आकार रहित मेरा रूप अर्थात स्वरूप है और फिर ये कथम् कैसा स्वरूप है अक्षर नाश से रहित है और विन्दुसम् अर्थात विन्दु के समान है कि जो प्रकृति प्रकट प्रतीत में विन्दु समान कोई वस्तु नहीं किंतु गुप्त भाव में वही विन्दु ९ गुप्त शक्ति रूप है कि जो एक ही प्रणव ॐ अक्षर रूप में कि नहीं होता है जिसका कभी नाश क्योंकि नित्य ही है ॐ अक्षर उच्चरणम् निराकार रूप में व्यापक अर्थात प्रकाशमान अर्थात माया रूपी सर्व संसार प्रपंच

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आइय ।

हे चित! ओम् इस प्रकार जोकि उच्चारण किया जाता है सोई ओंकार निराकार ब्रह्म रूप है क्योंकि ब्रह्म का वाच्य है और वाच्य वाचक का किसी प्रकार से भी भेद नहीं होसकता है इसलिये आत्मा गगन तुल्य व्यापक है। उसी ओंकार में जगत रूपी सुखके विलासके अभाव का और विलास का निराकरण भी है अर्थात ॐकार रूपी ब्रह्म में जोकि सुखदुःख का प्रपंच रूप जगत है ये तीनो काल में नहीं बनता है तब विचुकके उक्त अक्षर का भी उच्चारण कैसे बन सकेगा किसी प्रकार भी नहीं बनेगा इसलिये केवल अद्वैत ही सिद्ध होता है अर्थात मेरा गरजता हुआ आकाश वत स्वरूप निश्चय करके परा और अपरा प्रकृतियों से रहित है स्वतन्त्र है अर्थात अक्षर पदार्थ है चैतन्य रूप है क्योंकि जो उच्चारण में आता है वही जगत रूपी माया प्रपंच है कि नहीं है तथा अक्षर पदार्थ जो प्रणव ॐकार आत्मा है वही नाश से रहित है और नित्य है अर्थात अशून्य है ऐसा तू जान कि इसी का नाम है प्रणव अक्षर ज्ञान ॥ १ ॥

इति[1] तत्त्वमसि[2] प्रमृति[3] श्रुतिभिः[4] प्रतिपादितमात्मनि[5] तत्त्वमसि[6] ॥
त्वमुपाधि[7] विवर्जित[8] सर्वसमं[9] किमु[10] रोदिषि[11] मानस[12] सर्वसमम्[13] ॥ २ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इति[1] आदि अन्त तक जितनाकि प्रपंच है और उच्चारण रूप है उसमें - तत्त्वमसि[2] - अर्थात मैं आप ही यथार्थ करके शुद्धस्वरूप आत्मा ब्रह्म हूं प्रमृति[3] आप ही अपूर्व आत्मा की सत्यरूपी श्रुति निराकार अक्षर आकृति भिः[4] माया प्रपंच शक्ति प्रतिपादितम्[5] कथन करती हैं कि ॐ आत्मनि[6] आत्मा आत्मा कैसा है क्या है तत्त्वमसि[7] तेरा अपना आप ही जो स्वरूप है यही आत्मा है अर्थात जिस प्रकार से घट में स्थित आकाश निर्विकार है इसीप्रकार त्वम्[8] तू आप ही आत्मा है कि उपाधि[9] विवर्जित सर्व समम्[10] शरीर स्थित होकर भी सर्व प्रकार की उपाधियों से विकाररहित है और एकरस है अर्थात न तो माया रूपी देह में आत्मा है और नही उस से भिन्न है फिर किमु[11] किस वास्ते रोदिषि[12] रुदन करता है मानस[13] हे महत्त्व रूपी नाम मात्र की मुनि मद्रूप मन आकृति सर्वसमम्[14] आत्मा सब में एक रस है

## आइय ।

हे चित! अपूर्व आत्मा का निश्चय स्वरूप माया प्रपंच रूप आकृतियों से स्वतन्त्र है क्योंकि वही आत्मा कि जिसको अनंत श्रुतियां कथन करती हैं क्या है वह तेरा अपना आप ही है और वह मिथ्या भेद रूपी जीव नहीं है क्योंकि वह न कभी देह में आता है और नहीं देह से भिन्न ही है क्योंकि वह वास्तव में सर्व प्रकार की उपाधियों से रहित है और एक ही आत्मा है और सर्व देहों में एक रस है किंतु जिन उपाधियों ने भेद उत्पन्न करा रक्खा है सो अज्ञान कार्य माया प्रपंच है यही कारण है कि भेद रूप में नाना कर्ता भोक्ता रूप करके प्रतीत होता है न कोई कर्ता है न भोक्ता है और नहीं कोई कर्म योग और कर्म फिल ही हैं ये सब भेद प्रकृति प्रपंच व्यवहार रूप माया के हैं कि जो अज्ञान का रूप है सो अज्ञान के नष्ट होजाने पर सब अज्ञानता और कर्म प्रपंच अर्थात कर्ता भोक्ता के फल अफल का नाश होजाता है इसलिये भेद को ले करके रुदन करना नहीं बनता है ॥ २ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

अधऊर्ध्वं विवर्जितसर्वसमंबहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् ॥
यदि चैकं विवर्जितसर्वसमंकिमुरोदिषिमानससर्वसमम् ॥ ३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अधऊर्ध्वं विवर्जितसर्वसमम् - नीचे ऊपर दोनोंसे रहित सबमें समरूप आत्मा है और फिर वह आत्मा बहिरन्तरवर्जितसर्वसमम् - बाहर और भीतरसे भी रहित सबमें सम है और यदि जो कि ऐसा च चैतन्य स्वरूप एकः एकही आत्मा है वह एकसे भी विवर्जित रहित है क्योंकि वह एकही सर्वसमम् सबमें एकरस है फिर किंमुरोदिषि मानस सर्वसमम् क्यों रोता है हे मनरूपी इन्द्रियाण इन्द्र आत्मा सबमें एक है

आशय ।

हे राजेन्द्र ! आत्मा नीचे और ऊपरके विभागसे रहित है कारण कि वह चेतन एक ही है और सब पदार्थों में अर्थात आकृतियोंमें एकरस अर्थात बराबर ही है किसीमें भी न्यून अधिक वह नहीं है अर्थात बाहर और भीतरके व्यवहारसे भी वह रहित है अर्थात एकत्वभावसे भी वह रहित है क्योंकि सबमें एकरस बराबर ही है तब फिर हे मन माया रूपी मानस नामकी आकृति तू क्यों रुदन करती है ! क्या तेरा रुदन इसलिये है कि तू इस माया रूपी देहको अचल स्थिर करके माया ही माया अर्थात अज्ञानता ही अज्ञनता को देख देखकर इसी में आनंद मनाया चाहती है यदि ऐसा है तो सुनकि ॥ ३ ॥

नहि कल्पित कल्प विचार इति नहि कारण कार्य विचार इति ॥
पदसंधि विवर्जितसर्वसमंकिमुरोदिषि मानससर्वसमम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नहि कल्पित कल्प विचार इति - नहीं है निश्चय करके इसमायारूपीदेहका - मायारूप वह्मभी और वह्म अर्थात कल्पका विचार भी क्योंकि आदि और अन्तसे रहित अनंत है आत्मा इसप्रकारकि नहि कारण कार्य विचार इति - नहीं है निश्चय करके कारणका और कार्यका विचार भी इस प्रकार अनंत रूप आत्मामें कि ये कारण है और ये कार्य है ऐसा करके क्योंकि पद संधि विवर्जित सर्व समम् पदनाम मान और बडाई और संधि नाम मेल मिलावट से भी रहित आत्मा सबमें समही है फिर किंमु रोदिषि मानस सर्व समम् - किस लिये रुदन करता है तू हे महत्व रूप मन आत्मा तू सबमें एक है

आशय ।

हे माया मोहित मन ! चेतन ब्रह्मात्मामें निश्चय करके इसप्रकार का कि ये वस्तु प्रतीत होती है ये इस की प्रतीत है विचार नहीं बनता है क्योंकि अनंत है आत्मा सो आत्मा में कल्प रूपसे इसप्रकार की कल्पना करना कि ये कारण है ये कार्य है ऐसा विचार भी नहीं बनता है और नहीं पद संधि व्यवहार ही बनता है क्योंकि आत्मा द्वैतसे रहित है और सर्वत्र एकरस है फिर तुम किस लिये रुदन करते हो क्योंकि तुम से अन्य और भिन्न तो कहीं भी कोई वस्तु कार्य कारण रूप नहीं है जो कुछ हो तुम हो तुम को इस माया रूपी देह का क्यों मोह होता है ये तो तुम्हारी माया रूपी माया ही माया कल्प मूर्ति है तुम इसको निश्चय करके कल्परूप जानो और अपनेको अनंत मानो ॥ ४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहि बोधविबोध समाधिरिति नहि देशविदेशसमाधिरिति ॥
नहि कालविकालसमाधिरिति किमु रोदिषि मानस सर्वे समम् ॥ ५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न हि बोध विबोध समाधिः इति - नहीं है निश्चय करके सामान्यज्ञान रूपी और विशेष ज्ञान रूपी समाधि भी अर्थात निश्चिंताई भी आत्मा में अनंत स्वरूप में क्योंकि न हि देश विदेश समाधिः इति नहीं है निश्चय करके सामान्य और विशेष रूप करके देश और विदेश की समाधि भी अनंत चेतन आत्मा में और न हि काल विकाल समाधि इति - नहीं है निश्चयस्वरूप आत्मा में थोड़े और बहुत करके काल और विकाल की समाधि क्योंकि अन्त से रहित है आत्मा अर्थात नहीं है उसकी कोइ सीमा फिर किमु रोदिषि मानस सर्वे समम् - क्यों रुदन करता है हे मन क्योंकि सर्व में तू ही एक सम भी है ॥

आशय ।

हे चित! निश्चय करके आत्मा में नहीं है सामान्य विशेष ज्ञान वाली समाधि भी और नहीं है सामान्य विशेष करके देश विदेश की समाधि भी और नहीं है सामान्य विशेष रूप करके काल और विकाल की समाधि भी क्योंकि ब्रह्म चेतन द्वैत से रहित एक ही है इसलिये ब्रह्म चेतन में इसप्रकार की कोई कल्पना कि ये ज्ञान है और ये अज्ञान है और ये देश है ये विदेश है ये काल है ये काल नहीं है इस प्रकार का कोई विचार भी नहीं बनता है तब फिर हे माया मन आकृति तेरा इस प्रकार का विचार कि मैं जीव हूं यदि ऐसा करूंगा तो मरजाऊंगा और ओ ऐसा नहीं करूंगा तो चैन करूंगा सुख भोगूंगा नहीं बनता है इसलिये तेरा रुदन करना ही व्यर्थ है क्योंकि तू सर्व चेतन ही चेतन ब्रह्म है और सर्व पदार्थों में सम अर्थात एक रस भी फिर तेरे को रुदन क्यों है ॥ ५ ॥

नहि कुम्भनभो न हि कुम्भ इति नहि जीववपुर्न हि जीव इति ॥
न हि कारण कार्य विभाग इति किमु रोदिषि मानस सर्वे समम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न हि कुम्भनभः न हि कुम्भ इति - नहीं है निश्चयस्वरूप आत्मा में घटाकाश मायारूपी मल भी और नहीं है निश्चय कर घट रूप आकृति भी आदि अन्त करके और न हि जीव वपुः नहीं है निश्चय कर जीवरूपी कोई शरीर भी अर्थात जीव कोई वस्तु नहीं है इसलिये जीव का कोई शरीर भी नहीं है और न हि जीव इति नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में जीव का कोई अनंत चेतन रूप ही क्योंकि नहीं है जीव कोई आकृति पदार्थ ही और न हि कारण कार्य विभाग इति - नहीं है निश्चयस्वरूप आत्मा में कारण और कार्य का कोई विभाग ही आदि और अंत करके फिर किमु रोदिषि मानस सर्वे समम् किसलिये रुदन करता है हे मन माया मूर्ति तू क्योंकि आत्मा सर्व में सम ही तो है अर्थात एक ही है ॥

आशय ।

हे चित् । व्यापक चेतन में न तो घट है और नहीं घटाकाश है और इसी प्रकार जीव का शरीर भी नहीं है और इसप्रकार जीव भी नहीं है और ये कारण है और ये कार्य है इसप्रकार का कोई विभाग रूपी व्यवहार भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं है तो जब व्यापक आनंदघन चेतन में घट ही तीनों काल में नहीं है तब घटाकाश तो अर्थ से ही अभाव सिद्ध होता है इसी प्रकार वास्तव से जीव भी उस में सिद्ध नहीं होता है और जब जीव सिद्ध नहीं होता है तो जीव का स्वरूप और शरीर कैसे सिद्ध होसकता है क्योंकि कारण और कार्य का कोई व्यवहार भी उसमें नहीं है तब कार्य कारण के वास्ते रुदन करना कि जो वास्तव से है ही नहीं किसी काल नहीं बनता है क्योंकि वह आत्मा सर्वत्र एकरस है और निश्चय करके निश्चय स्वरूप है कि जिस का कभी भी नाश नहीं है फिर रुदन करने वाला माया प्रपंच रूपी जीव मिथ्या जीव रूपी शरीर तू कैसे होसकता है किंतु कभी नहीं होसकता क्योंकि तू कैवल्य है ॥ ६ ॥

इह सर्व निरन्तर मोक्ष पद लघु दीर्घ विचार विहीन इति ॥
न हि वर्तुल कोण विभाग इति किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ ७ ॥

## पदच्छेदशब्दार्थ ।

इह आत्मा सर्व निरन्तर मोक्ष पदम् संपूर्ण एकरस है और मोक्ष पद रूप है अर्थात स्वतन्त्र है और लघु दीर्घ विचार विहीन इति - छोटाई बड़ाई के विचार से भी रहित है इस प्रकार कि न हि वर्तुल कोण विभाग इति - नहीं है गोल का और कोण का विभाग वाला भी आत्मा इसलिये किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है हे मन्वा तू आत्मा तो सब में सम है अर्थात एक ही है ॥

## आशय ।

हे चित ! निराकार निरवयव आत्मा में मोक्ष रूप आत्मा में छोटाई बड़ाई का विचार और गोलाकार तथा त्रिकोणादि के विभाग का विचार नहीं बनता है क्योंकि आत्मा इनसे से रहित है सो रुदन व्यर्थ है ॥ ७ ॥

इह शून्य विशून्य विहीन इति इह शुद्ध विशुद्ध विहीन इति ॥
इह सर्व विसर्व विहीन इति किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ ८ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह शून्य विशून्य विहीन इति - ये शून्य है और शून्य नहीं है इस प्रकार के विचार से रहित है आत्मा और इह शुद्ध विशुद्ध विहीन इति - ये शुद्ध है और शुद्ध नहीं है इस व्यवहार से भी रहित है आत्मा और इह सर्व विसर्व विहीन इति - ये पूर्ण है और विशेष कर सर्व से हीन है ये व्यवहार भी नहीं है आत्मा में इसलिये किमु रोदिषि मानस सर्व समम् क्यों रुदन करता है हे मन आत्मा सर्व में एक है

## आशय ।

हे चित निरञ्जन ! इस आत्मा में शून्य और विशेष शून्य से हीन इस प्रकार का व्यवहार और फिर इसमें ये शुद्ध है और अशुद्ध है इस प्रकार का व्यवहार और ये सर्व है और विशेष कर के सर्व से हीन है इस प्रकार का व्यवहार भी नहीं बनता है यदि फिर ऐसी शंका हो कि जब आत्मा निराकार है तो शून्य रूप ही है क्योंकि शून्य निराकार निरवयव ही होता है नहीं ऐसा नहीं है क्योंकि आत्मा में शून्य अशून्य विचार नहीं बनता है क्योंकि वह तो शून्य का भी साक्षी है और एकरस व्यापक होने से बाहर और भीतर का और संधि का भी विचार उसमें नहीं हो सकता है और सर्व से भिन्न अभिन्न का विचार भी उसमें नहीं होसकता इसलिये रुदन व्यर्थ ही है ॥ ८ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न हि भिन्न विभिन्न विचार इति बहिरन्तः सन्धि विचार इति ॥
अरि मित्र विवर्जित सर्व समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ ९ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न हि भिन्न विभिन्न विचार इति - नहीं होसकता है निश्चय स्वरूप आत्मा में द्वैत और अद्वैत के विचार भी अन्त और नहीं बहिः अन्तर सन्धि विचार इति - बाहर और भीतर की सन्धि का विचार ही बनता है आत्मा में और नहीं अरि मित्र शत्रु और मित्र का विचार ही बनता है आत्मा में क्योंकि आत्मा है विवर्जित रहित सब प्रकार के विचारों से और है सर्व समम् एक ही सब प्रकार के स्वरूपों में अर्थात सर्व में समरस ही है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्योंतदन करता है मनकि तू एक ही मनु रूप से सर्व में व्यापक है

## आशय ।

हे आनंद कला ! आत्मा में इस प्रकार का कि आत्मा द्वैत रूप है या द्वैत से रहित अद्वैत वाला है विचार नहीं बनता है और नहीं बाहर और भीतर का ही अर्थात आत्मा बाहर है या भीतर है या दोनों के बीच में है इस प्रकार का भी विचार नहीं होसकता है और नहीं निर्गुण आत्मा में इस प्रकार का ही विचार बनता है कि आत्मा जगत से भिन्न है वा अभिन्न है और शत्रु है कि मित्र है क्योंकि आत्मा इन सर्व प्रकार के प्रपंच विचारों से स्वतन्त्र है कारण कि सर्वत्र एक ही तो आत्मा है फिर हे रवि केन्द्र मनु तुम किस लिये रुदन करते हो क्योंकि तुम एक ही मनु रूप से सर्वत्र समरस हो करके व्यापक हो रहे हो अर्थात वह आत्मा तुम ही हो इसलिये तुम्हारा रुदन मिथ्या है ॥ ९ ॥

न हि शिष्य विशिष्य स्वरूप इति न चराचर भेद विचार इति ॥
इह सर्व निरन्तर मोक्ष पदं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ॥

न हि शिष्य विशिष्य स्वरूप इति - नहीं है निश्चय करके शिष्य और शिष्य भाव के स्वरूप भी इस आत्मा में अन्त और न चराचर भेद विचार इति - नहीं है चर अचर के भेद का विचार अर्थात भेद विचार का अन्त ही आत्मा में क्योंकि इह सर्व निरन्तर मोक्ष पदम् ये आत्मा संपूर्ण नित्य मोक्ष पद रूप अर्थात स्वतन्त्र ही है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् क्यों रोता है हे मनु ही आत्म

## आशय ।

हे मुक्त स्वरूप ! आत्मा शिष्य और शिष्य भाव स्वरूप वाला नहीं है अर्थात निश्चय करके आत्मा में शिष्य भाव और अनशिष्य भाव दोनों नहीं हैं और इसी प्रकार चर अचर के भेद के विचार से भी आत्मा रहित है अर्थात चर अचर जगत का उस से भेद है अथवा अभेद है ऐसा विचार व्यवहार भी आत्मा में नहीं है क्योंकि यह जगत वास्तव से सत्य नहीं है अर्थात कल्पित मात्र है कि शङ्का रूप है किंतु आत्मा इसका नित्य मोक्ष रूपी पद है अर्थात आत्मा आश्चर्यवत मोक्ष स्वरूप निरन्तर स्वतन्त्र है अर्थात जीव और शरीर नाम और रूप के भेद से आत्मा निरन्तर ही रहित है फिर हे कल्याण स्वरूप मनु इन्द्र निरेन्द्र मानस तुम क्यों रोते हो क्योंकि वह आत्मा जो सत्य ही है अर्थात सत्य सर्वत्र व्यापक है तुम ही तो हो ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar. Collection. Digitized by eGangotri Foundation-2015

ननु रूपविरूप विहीन इति ननु भिन्न विभिन्न विहीन इति ॥
ननु सर्ग विसर्ग विहीन इति किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

ननु रूप विरूप विहीन इति - निश्चय करके आत्मा रूप और विगत रूपसे भी रहित है अर्थात नहीं है रूप और विगत रूप का अन्त आत्मा में और ननु भिन्न विभिन्न विहीन इति - निश्चय करके भेद से और विगत भेद से भी वह रहित है अर्थात भेद और अभेद अर्थात द्वैत और अद्वैत का भी आत्मा में अन्त नहीं है और ननु सर्ग विसर्ग विहीन इति - निश्चय करके उत्पति और प्रलय से भी वह रहित है अर्थात नहीं है और अन्त उस्का फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है तू हे राजेन्द्र इन्द्र राजा कि तू सब सम है अर्थात एक आत्मा है

आश्य।

हे मनु ! निश्चय करके चेतन आत्मा रूप से और रूप के अभाव से रहित है अर्थात आत्मा में रूप और अरूप दोनों नहीं हैं और इसी प्रकार भेद और अभेद अर्थात द्वैत और अद्वैत दोनों नहीं हैं और निश्चय करके उत्पति और प्रलय भी उसको नहीं है अर्थात जगत के अभाव से वह नाश नहीं होता है क्योंकि वास्तव से आत्मा में न तो जगत की उत्पति है और न प्रलय ही है सो इस बात को तू जान करके हे मोहिपत मोहित्व मन तू किस लिये रोता है कि तू ही तो एक अनंत रूप आत्मा है ॥११॥

न गुणागुण पाशनिबन्ध इति मृत जीवन कर्म करोति कथम् ॥
इति शुद्ध निरञ्जन सर्व समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

न गुण अगुण पाश निबन्ध इति - नहीं है गुण और अवगुण और भय और सम्बंध रूप बन्ध भी आत्मा में और इसी प्रकार नहीं है मृत जीवन कर्म करोति कथम् मृतक का और जीवन के कर्मों का वह आत्मा करने वाला अर्थात कैसे होही सकता है कर्म कर्ता वह आत्मा जबकि इति शुद्ध निरञ्जन सर्व समम् अत्यन्त पवित्र है और निलिप्त स्वरूप है और फिर सर्वत्र सम रूप भी है अर्थात एक ही असंग चेतन स्वरूप है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है हे मन कि आत्मा जो समरस है वह तू ही एक है

आश्य।

हे रवि मनु ! आत्मा में गुण और निर्गुण की पाश अर्थात भेद का बन्धन रूपी कोई सम्बन्ध नहीं है और इसी प्रकार मृतक और जीवन के कर्मों का कर्ता भी वह नहीं है क्योंकि आत्मा शुद्ध निरञ्जन स्वरूप है और सर्वत्र एक ही है सो जो आत्मा ब्रह्म शुद्ध है माया मल से रहित है निरञ्जन है और उसमें सगुण पना और निर्गुणपना दोनों कार्य और कारण रूप से नहीं हैं तब मृत जीवन के कर्मों का करना भी उस आत्मा में कैसे बन सकता है किंतु कभी भी नहीं बनता है फिर तुम कैसे कर्म कर्ता हो और किस हेतु अर्थात किस आत्मा की प्राप्ति के वास्ते और किस कार्य की निमित्त तुम रुदन करते हो वह आत्मा जो सर्व में सम है तुम्हारा अपना आप है अर्थात वही तुम हो ॥१२॥

इह भाव विभाव विहीन इति इह काम विकाम विहीन इति ॥
इह बोधतमं खलु मोक्ष समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

३०२

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह भाव विभाव विहीनः इति - आत्मा भाव और अभाव से रहित है अर्थात आत्मा में भाव अभाव का अं
नहीं है और ऐसे ही इह काम विकाम विहीन इति ये आत्मा काम और काम के अभाव से भी रहित है इसी प्रकार से
इह बोधत मम खलु मोक्ष समम् - ये आत्मा ज्ञान स्वरूप में मेरा एक ही निश्चय स्वरूप है कि जो संपूर्ण ही
मोक्षरूप है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है तू हे मनु कि तू सर्वत्र ही व्यापक है और एक

## आशय ।

हे मनु व्यास! इस जगत में साधारण असाधारण भाव अर्थात इच्छाओं से आत्मा रहित है अर्थात नाना प्रकार के
संकल्प और विकल्पों से अर्थात त्यागों और ग्रहणों से जो भ्रान्ति हुआ करती है इसी का नाम अज्ञान है और
माया है क्योंकि आत्मा में न त्याग है न ग्रहण है अर्थात आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है और मेरा ही एक निश्चय
स्वरूप है कि जो संपूर्ण ही मोक्ष रूप है और इसी निश्चय का नाम ज्ञान है और विवेक है और इसी निश्चय में जगत
स्वर्गरूपी स्वर्ग सुख की प्राप्ति और जगत रूपी संसार को मोक्ष है। सो हे ननु इन्द्र व्यास नारायण तुम को तो
हानिलाभ सुख और दुःख सब कामों में समान ही रहना चाहिये व्यर्थ दुःख कर क्यों रोते हो क्योंकि तुम तो
असंग चेतन परमात्मा हो और सर्वत्र एक रस करके सर्वज्ञ अर्थात व्यापक भी तुम हो ॥ १३ ॥

इह तत्त्व निरन्तर तत्त्वमिति न हि सन्धि विसन्धि विहीन इति ॥
यदि सर्व विवर्जित सर्व समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह तत्त्व निरन्तर तत्त्वम् इति - आत्मा तत्त्व स्वरूप है या नित्य यथार्थ है नहीं है इस प्रकार का
व्यवहार आत्मा में और न हि सन्धि विसन्धि विहीन इति - नहीं है सन्धि और सन्धि के अभाव
से भी हीन है इस प्रकार का भी व्यवहार आत्मा में नहीं होता है क्योंकि यदि - आकाशवत आदि चेतन
है आत्मा और सर्व विवर्जित सर्व से रहित है और वही सर्व समम् सर्व में एक मेरा ही स्वरूप है फिर
किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - फिर क्यों रुदन करते हो हे मनु निरेन्द्र कि ये सब सम रस मेरा स्वरूप है

## आशय ।

हे नारद ऋषि मनु निरेन्द्र! इस ब्रह्म आत्मा में ये तत्त्व है या निरन्तर ही तत्त्व है इस प्रकार का व्यवहार नहीं
होता है और फिर ये आत्मा सन्धि या सन्धि के अभाव से हीन है इस प्रकार का व्यवहार भी नहीं होता है
क्योंकि जो चेतन आत्मा आकाशवत निर्लेप है अर्थात सर्व से रहित और सर्व में सम है वही एक ही है
मेरा स्वरूप जो ध्रुव नाम में बाल्मीक और राम इत्यादि अनेक नाम रूप वाला है अर्थात इस आत्मा में
तत्त्वों का कभी कभी संबन्ध होता है या कि सब तत्त्व आत्मा में रहते हैं या कि जो तत्त्व पदार्थ हैं ये सब
निरन्तर हैं या इनमें से किसी का किसी से मेल भी है या ये किसी के मेल वाले नहीं हैं या ये सोमरस
आत्मा रूप सभी उपाधियों से रहित हैं ऐसा व्यवहार नहीं है क्योंकि कोई तत्त्व तत्त्व रूप से सब ही
पदार्थों में आत्मा के अन्य एक रस रहने वाला नहीं है क्योंकि सवर्ण भी ६ माशे पारे और तोला एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्वेत वर्ण संख्ये को ४ ½ तोला पुष्य नाग फणि के रस में खड़ल करके फूंक देने से और फिर उस फूंकी हुई भस्मी में मेघ जल भस्मी से तीन गुणा मिलाकर खरल करने से तांवें के १ ½ तोले के पैसे को अग्नि में अग्नि रूप बनाकर उसपर एक सींक से एक बूंद ऊपर वर्णित जल की डालने से तांबा कुन्दन बन जाता है। सो आत्मा के अन्य कोई तत्व रूप पदार्थ भी एक रस रहने वाला नहीं है। इसलिये हे मनु नारद ऋषि रूप अर्थात माया रूप विष्णु ब्रह्म की व्यापक ज्योति तू जगत के सुख दुख से निरन्तर ही रहित है फिर एक रस आत्मा के लिये क्यों रोता है वह आत्मा जो सर्वत्र व्यापक है और सब में सम है वह सब मेरा ही स्वरूप है ऐसा तू जान कि इसी का नाम है आत्मज्ञान ज्ञान॥ १४॥

अनिकेतकुटी परिवार समं इह सङ्ग विसङ्ग विहीन परम् ॥
इह बोध विबोध विहीन परं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १५॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

अनिकेत कुटी - वास के बाहर तथा वस्ती से अन्य कुटी को बनाकर रहना तो भी परिवार समम् परिवार के तुल्य ही सब को जानना क्योंकि इह ये ब्रह्म आत्मा सङ्ग विसङ्ग विहीन परम् - संग और असंग सब से परम पवित्र अर्थात श्रेष्ठ है और इह बोध विबोध विहीन परम् और यही ब्रह्म का ज्ञान है कि जो ज्ञान और अज्ञान दोनों से रहित है और श्रेष्ठ है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् क्यों रोता है हे मनु तू एक ही है

आशय।

हे मनु राम! अनियत वास कुटी होनी परिवार के तुल्य सब को जानना ये ब्रह्म संग विसंग से रहित परम पवित्र है ब्रह्म ज्ञान अज्ञान से रहित श्रेष्ठ है क्यों ऐसा है कि निराश्रय होकर अर्थात स्वतन्त्र होकर रहने वाला है सो तू निराश्रय होकर एकान्त झोंपड़ी में रहे या परिवार से भरा पूरा रहे तेरे लिये तो सब समान है क्योंकि चाहे तू थोड़े साथ में रहे अथवा अधिक समूह में रहे वा एकान्त वास करे या थोड़ा बोध हो या अधिक ज्ञान हो अथवा ज्ञान रहित हो आत्मा सदैव एकाग्र है है अर्थात स्वतः स्वतन्त्र मोक्ष ही है फिर हे मनु राज मन रामा कृष्णा तू उसके लिये क्यों रोता है क्योंकि वह तो तेरा अपना आप ही है॥ १५॥

अविकार विकारम सत्यमिति अविलक्ष विलक्षम सत्यमिति ॥
यदि केवलमात्मनि सत्यमिति किमु रोदिषि मानस सर्व समम्॥ १६॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

अविकार विकारम - विकार से रहित का विकार ये जगत है जो असत्यम असद्रूप है और इति अनंत का एक ही अर्थात अविलक्ष विलक्षम् अविलक्ष का ये लक्ष है और असत्यम् ये असत्यरूप है क्योंकि इति आत्मा एक ही आदि अन्त रहित अनंत है कि यदि जो चेतन स्वरूप में केवलम केवल ही आत्मनि मेरा अपना आत्मा है और सत्यम् सद्रूप है और इति नित्य निसंग है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है हे मनु इन्द्र ये सब सम है अर्थात एक ही आत्मा है॥

आशय।

हे मनु! आत्मा विकार से रहित है और जगत विकार वाला है इसलिये असत्य रूप है और आत्मा का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कोई लक्ष नहीं किंतु जगत लक्षवाला है इसलिये असत्य रूप है कारण ये है कि जो चेतन आत्मा है वही केवल सत्य रूप है क्योंकि इस एक आत्मा का कभी विकार नहीं होता है इसलिये आत्मा नित्य है और संसार अनित्य है और नित्य आत्मा से अनित्य संसार हो नहीं सकता क्योंकि आत्मा निराकार है और जगत साकार है इस से वे अनित्य है। यदि तेरे को ऐसी शंका हो कि निराकार कोई वस्तु नहीं है कार्य कारण एक रूप एक गुण स्वभाव हुआ करते हैं और कारण ही कारण कार्य दोनों रूप होते रहते हैं जैसे कि बीज वृक्ष व पिता पुत्र इसलिये ये जगत जो साकार है नित्य है ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि निराकार से साकार उत्पन्न नहीं होता है और न ऐसा कोई प्रमाण है और न इस प्रकार की कोई पहिचान है। क्योंकि पहिचान साकार की ही हुआ करती है निराकार की नहीं होती इसलिये जो नाना और भिन्न भिन्न रूप नाम करके जीव जगत ईश्वर सत्ता की वे साकार रूप सत्ता प्रतीत होती है इसीका नाम माया है। तू माया नहीं है! यदि यो साकार रूप जो माया करके तू देखता है वास्तु से ये तेरा स्वरूप नहीं है तेरा स्वरूप तो दृष्टि से अदृष्ट है और वही निराकार चेतन स्वरूप तेरा है फिर तू किस लिये रुदन करता है कि केवल तू ही सर्व में सम है अर्थात एक ही आत्मा है॥ १६

इह[1] सर्वत[2] मं[3] रवलु[4] जीव[5] इति[6] इह[7] सर्व[8] निरन्तर[9] जीव[10] इति[11] ॥
इह[12] केवल[13] निश्चल[14] जीव[15] इति किमु[16] रोदिषि[17] मानस[18] सर्व[19] समम्[20] ॥ १७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

इह[1] - आत्मा में ये संसार जो सर्वत[2] सर्व त्र ही फैला हुआ है मम[3] रवलु[4] मेरा जो निश्चय स्वरूप आत्मा है उसमें इसका जीव[5] - जीव नाम माया आकृति एक साकार रूप है और इसलिये ये इति[6] नाशमान है और इह[7] ब्रह्म चेतन आत्मा इससे सर्व[8] संपूर्ण - निरन्तर[9] स्वतन्त्र है तथा जीव[10] इति[11] माया रूपी आदि और अन्त वाली आकृति जीव नाम वाली नाशमान ही है क्योंकि इह[12] ये आत्मा ब्रह्म चेतन केवल[13] निश्चल[14] केवल है और अचल स्वरूप है परन्तु जीव[15] इति[16] जीव नाम रूप वाली माया आकृति नाशमान ही है तो किमु[16] रोदिषि[17] मानस[18] सर्व[19] समम्[20] - क्यों रुदन करता है तू हे मनु माया साकार को देख के ये सब सम है

आइय।

हे मनुराज! इस मायारूपी संसार में निश्चय करके सर्व से उत्तम आत्मा है और आत्मा ही निरन्तर और केवल है और अचल है! अर्थात प्रकट प्रतीत में माया करके प्रत्यक्ष प्रमाण में जो संसार में नाना प्रकार के जीव देखने में आते हैं ये कोई वस्तु नहीं हैं क्योंकि ये सब नाम मात्र की माया आकृति हैं कि जो मति के मान करने से मानमति के कर्तव्य की भांति दृष्टि गोचर होती हैं सो जो इनको न देखा जाय तो फिर ये कहाँ हैं किंतु कहीं भी नहीं क्योंकि इन सर्व का होना तो यही है कि तू इनका द्रष्टा है और ये अपने जीवन को तेरे ही आधीन हैं अर्थात ये तेरी ही माया है फिर तू क्यों रुदन करता है कि तू ही एक आत्मा है॥

अविवेकविवेकम[1] बोध[2] इति[3] अविकल्पविकल्पम[4] बोध[5] इति[6] ॥
यदि[7] चैके[8] निरन्तर[9] बोध[10] इति[11] किमु[12] रोदिषि[13] मानस[14] सर्व[15] समम्[16] ॥ १८

पदच्छेदः शब्दार्थ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation, USA

अविवेकविवेकम्- विवेक का अभाव और विवेक अबोधः अज्ञानतारूप ही है इति अंत वाला है और अविकल्पविकल्पम् विकल्प का अभाव और विकल्प का रूप अबोधः मायाकार्य अज्ञानता ही है क्योंकि इति ये भी नाशमान है तथा यद्वै चैक निरन्तर बोधः इति- जो चेतन का एक नित्य ज्ञान है यही अनंत है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम्- क्यों रोता है हे मनु तू कि तू तो सब में ही सम है

आशय ।

हे राजेन्द्र! आत्मा का कभी विकार नहीं होता है तथा विवेक रूपी जो जगत है इसका ही विकार देखने में आता है इसलिये ये जगत असत्य ही है। आत्मा आंखों से अर्थात इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात देखा नहीं जाता सो जो चैतन्य ब्रह्म आत्मा का एक रस रहने वाला ज्ञान है वही अनंत आत्मा का रूप है और सत्य है फिर तुम क्यों हे मानुस्दन करते हो कि आत्मा में ये सब जीव ईश्वर और माया रूपी जगत मिथ्या ही है क्योंकि तुम ही जो सर्वत्र में व्यापक हो रहे हो एक रस एक ही आत्मा हो तुम से भिन्न कहीं भी कुछ नहीं है ॥ १८ ॥

नहि मोक्षपदं नहि बन्धपदं नहि पुण्यपदं नहि पापपदम् ॥
नहि पूर्णपदं नहि रिक्तपदं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

नहि मोक्षपदम्- नहीं है निश्चय करके मोक्ष पद भी और नहि बन्धपदम् नहीं है निश्चय करके बन्धपद भी और नहि पुण्यपदम् नहीं है निश्चय करके पुण्य पद भी और नहि पापपदम् नहीं है निश्चय करके पाप पद भी और नहि पूर्णपदम् नहीं है निश्चय करके पूर्ण पद भी अर्थात शून्य रूप भी और नहि रिक्तपदम् नहीं है रिक्त पद अर्थात अपूर्ण पद भी फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् किसलिये रुदन करता है हे मन क्योंकि तू संपूर्ण सम है अर्थात तू आप ही एक अपूर्व पूर्ण आत्मा है॥

आशय ।

हे मनुराज ! निश्चय करके जानो कि आत्मा के लिये मोक्ष और बन्धन और पुण्य और पाप और शून्यता और अशून्यता से किसी एक का व्यवहार भी नहीं बनता है। क्योंकि जिसको बन्धन होता है अर्थात जिस में पहले बंध होता है वही पीछे मुक्त भी होता है आत्मा में पहले बन्ध ही नहीं है तब फिर पीछे मुक्त कहांसे होगा क्योंकि उसमें बन्ध और मोक्ष दोनों नहीं हैं इसलिये पुण्य और पाप भी आत्मा में नहीं हैं इसीप्रकार जो वस्तु प्रथम च्युत होती है तब ही पीछे पूर्ण भी हुआ करती है सो आत्मा में पूर्णता और अपूर्णता दोनों ही नहीं हैं फिर तुम किस वास्ते रुदन करते हो कि तुम ही तो सर्वत्र सर्वदा सम रूप व्यापक हो ॥१९॥

यदि वर्णविवर्णविहीन समं यदि कारणकार्यविहीन समम् ॥
यदि भेदविभेदविहीन समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

यदि वर्णविवर्णविहीन समम्- आत्मा वर्ण विभाग से और वर्ण विभाग के अभाव से रहित है और एक है और यदि कारणकार्यविहीन समम्- आत्मा कारण और कार्य से भी रहित है और एक ही सम रूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यदि भेद विभेद विहीन समम् - आत्मा भेद और भेदाभाव से स्वतन्त्र है और सम अर्थात एक ही है
फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - काहेंको रोते हो हे मनु मानस रूपी आकृति माया को देख कर कि तुम सम रूप आत्मा

आइय ।

हे जनक मनुराज! आत्मा वर्णविभाग अर्थात नाना प्रकार की जातियों और रंगों से स्वतन्त्र है अर्थात आत्मा में किसी प्रकार भी वर्ण भेद नहीं है क्योंकि एक ही आत्मा का चमत्कार नाना प्रकार की योनियों तथा मनुष्य पशु पक्षी आदिक की जो योनियां हैं सब में एक रस होता है क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण में पशु आदिक योनियों में किसी काल में भी पूर्व योनियों वाला वर्ण विभाग नहीं होता है। इस करके सिद्ध होता है कि वर्ण विभाग आत्मा का धर्म नहीं है और विवर्ण अर्थात विशेष करके जो कि मानस आकृति में वर्ण और जाती का भेद है वह भी नहीं है क्योंकि आत्मा एक ही है किंतु वर्ण नाम रूप का भी है सो रूप से भी आत्मा रहित है इसी प्रकार आत्मा न किसी का कारण है न कार्य है इसलिये कारण व कार्य से भी आत्मा रहित ही है और भेद तथा भेदभाव से भी रहित है क्योंकि वह नाना नहीं है एक ही है तब हे जनक राज मनु तू आत्मा के लिये क्यों रोता है कि वह तू ही है कि जो सर्व व्यापक हो रहा है और एकरस है॥

सर्व निरन्तर सर्व चिते इह केवल निश्चल सर्व चिते ॥
द्विपदादि विवर्जित सर्व चिते किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सर्व निरन्तर सर्व चिते - आत्मा सब से असंग अर्थात स्वतन्त्र होने पर भी नाना प्रकार के चित्रों में स्थित है और इह यह आत्मा इस संसार में केवल निश्चल सर्व चिते - एक ही आत्मा है और अचल है और संपूर्ण आश्चर्यवत है क्योंकि द्विपदादि विवर्जित सर्व चिते आत्मा दोपद रूपी दो पांव वाला भी नहीं है क्योंकि पांव आदिकों से भी रहित है तथा फिर संपूर्ण आश्चर्य स्वरूप में विचित्र नाम रूपों वाला ही वह प्रतीत होता है सो किमु रोदिषि मानस सर्व समम् क्यों रुदन करता है तू हे मछन्दर मन कि तू ही गोरख

आइय ।

हे चेतन चित! आत्मा तो सब से स्वतन्त्र अर्थात मुक्त स्वरूप होने पर भी नाना प्रकार के चित्रों में स्थित हो रहा है और इस संसार में एक ही आत्मा है कि जो अचल अर्थात अपूर्व है अर्थात संपूर्ण आश्चर्यवत है अर्थात दो पांव वाला न होकर भी विचित्र रूपों में चेतन ही चेतन है फिर हे चेतन मनु तू क्यों रुदन करता है तू चेतन रूप आत्मा तो सर्वत्र सम है सब नाम रूपों में एक रस है संपूर्ण चित्र चित्रों में व्यापक है और केवल निश्चल है अर्थात दो पांव या चार पांव वाला भी तेरा अपना स्वरूप नहीं है तू तो केवल साक्षी है॥

अति सर्व निरन्तर सर्व गतमति निर्मल निश्चल सर्व गतम् ॥
दिन रात्रि विवर्जित सर्व गतं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अति सर्व निरन्तर सर्व गतम् - आत्मा संपूर्ण स्वतन्त्र होने पर भी एकरस सर्वगत है अर्थात सर्वत्र है और अति निर्मल निश्चल सर्व गतम् - विशेष करके निर्मल है निश्चल है और सर्वत्र व्यापक है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और दिन रात्रि विवर्जित सर्व गतम् - आत्मा दिन और रात्री से भी रहित है अर्थात सर्वत्र एकरस ही है फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रोता है तू हे ममता रूपी मन कि तू ही संपूर्ण आत्मा है ॥

## अन्वय

हे चित्त राजेन्द्र! आत्मा सर्व श्रेष्ठ है और नित्य व्यापक है आत्मा शुद्ध है और क्रिया रहित है और दिन और रात्रि के व्यवहार से भिन्न आकाश वत सर्वगत है हे राजेन्द्र तू अपने ऐसे ब्रह्म चेतन स्वरूप को भूलकर क्यों रुदन करता है कि तू संपूर्ण मुक्त अर्थात स्वतन्त्र समरस सर्वत्र सर्व व्यापक एक ही आत्मा है ॥ २२ ॥

नहि बन्ध विबन्ध समागमनं नहि योग वियोग समागमनम् ॥
नहि तर्क वितर्क समागमनं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

नहि नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में बन्ध विबन्ध सामान्य और विशेष रूप से किसी प्रकार के बन्धन का सम्यक् आगमन अर्थात आवा और गमन अर्थात समागमनम् रूपी आना जाना और नहि योग वियोग समागमनम् नहीं है निश्चय करके किसी प्रकार का संयोग और वियोग भी इस आत्मा को आवागमन रूप से अर्थात नहीं होता है आवा गमन इसको कि हेतु से और नहि तर्क वितर्क समागमनम् - नहीं है निश्चय करके सामान्य और विशेष तर्क की भी कोई कथना आवागमन के हेतु इस आत्मा में अर्थात मिथ्या है आवागमन का संशय तर्क वितर्क के रूप में फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रुदन करता है तू हे माया रूपी मन आत्मा तो एक ही है ॥

## अन्वय ।

हे मन महेन्द्र ! तू क्यों रुदन करता है गोरख रूप आत्मा तो तेरा सर्वत्र सम है और सामान्य विशेष बन्धनों से भी वह रहित है अर्थात जन्म मरण रूपी जो सामान बन्ध हैं और स्त्री पुत्रादिक ये सब विशेष बन्ध हैं अर्थात बन्धन के कारण हैं इस प्रकार के जितने कि बन्धन हैं इन सभों से आत्मा स्वतन्त्र है अर्थात इस आत्मा को किसी प्रकार का भी बन्धन नहीं है इसलिये आत्मा संयोग वियोग अर्थात आवागमन से स्वतन्त्र है तर्क वितर्क करके भी आत्मा को आवा गमन सिद्ध नहीं होता है क्योंकि तर्क वितर्क की भी आत्मा में गम्य नहीं है इसलिये आत्मा तर्क से भी नहीं जाना जाता और जाना भी कैसे जाये कि केवल रूप मेरे को मेरे अन्य तो कोई भी देख नहीं देख सकता क्योंकि मेरे और दूसरा कोई भी नहीं है क्योंकि मैं आप सर्व व्यापक आत्मा हूं ॥ २३ ॥

इह काल विकाल निराकरणम् अणुमात्र कृशानु निराकरणम् ॥
नहि केवल सत्य निराकरणं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह काल विकाल निराकरणम् आत्मा काल और विकाल से भी आकृति रहित है और अणुमात्र कृशानु निराकरणम् - रूप जो अग्नि का बिजली का है इस प्रकार के स्वरूप से भी आत्मा रहित है और नहि केवल सत्य निराकरणम् नहीं है निश्चय करके केवल और सत्य आत्मा का कोई आकार फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

क्यों रुदन करता है हे मन तू कि ये सब जो तू देखता है तेरी ही समरस आत्म माया है और कुछ नहीं है

आशय ।

हे मन मनंग ! ब्रह्मात्मा में सामान्य काल का और विशेष काल का अर्थात दिनरात्रि वा युग रूपकाल का निराकरण अर्थात प्रमाण नहीं है और नहीं है अणुमात्र किंचित मात्र भी बिजली तुल्य कोई आकृति में रूपही क्योंकि निश्चय करके केवल आत्मा सत्य स्वरूप है और आकृति व रूप रहित है। तात्पर्य ये है आत्मा को प्रवाहरूपी जो काल है अर्थात घडी पल आदि और दिन रात्रि आदि इस का निराकरण ही है अर्थ आत्मा को काल नहीं व्यापसकता है और सूक्ष्म जो तेज है वह भी निस को प्रकाश नहीं करसकता है वो वह भी माया रूप है इसलिये आत्मा में संपूर्ण जगत माया रूप से ही है और आत्मा तो केवल और सत्य स्वरूप ही है फिर तू क्यों रोता है मन मांमी किनू आप ही आत्मा है और सर्वत्र समरस व्यापक भी है॥ २४॥

इह देह विदेह विहीन इति ननु स्वप्न सुषुप्ति विहीन परम् ॥
अभिधान विधान विहीन परं किमु रोदिषि मानस सर्व समम् ॥ २५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह देह विदेह विहीन इति - आत्मा सामन्यरूपी देह और विदेह से रहित है क्योंकि अनंत का और आदि नहीं होता है। इसलिये देह और विदेह का आत्मा में व्यवहार नहीं है और ननु निश्चय को स्वप्न सुषुप्ति विहीन परम् - स्वप्न और सुषुप्ति से भी स्वतन्त्र है और महान श्रेष्ठ है और अभिधान विधान विहीन परम् - कथन अर्थात विधि और आकथन अर्थात निषेध की क्रियाओं से भी रहित और श्रेष्ठ करके स्वतन्त्र है आत्मा फिर किमु रोदिषि मानस सर्व समम् - क्यों रुदन करता है हे मन आत्मा सब में एक ही है

आशय ।

हे चित चिन्तामणि ! रुदन करना कब होता है जब कि पहले अज्ञानावस्था में आत्मा देह के सहित ही होवे यदि आत्मा ऐसा होवे तो फिर उसको पीछे ज्ञानावस्था में देह से रहित भी होना चाहये और इस करके जितना रुदन किया जाय थोड़ा है किंनु निराकार व्यापक चेतन आत्मा में अज्ञान किसी काल पर्यन्त भी है नहीं इसलिये आत्मा का कोई देह नहीं है और जब देह नहीं है तो फिर किसी प्रकार का ज्ञान भी नहीं है और जब ज्ञान भी नहीं है तो आत्मा विदेह भी नहीं है इसलिये देह और विदेह होनों से ही आत्मा स्वतन्त्र है क्योंकि उसका अन्त नहीं है वह अनंत है और जब आत्मा अनंत है तो आत्मा में देह और विदेह के अभाव होने से स्वप्न और सुषुप्ति का तो अर्थ से ही अभाव है फिर विधि और निषेध की भी कोई क्रिया आत्मा में नहीं बनती है इसलिये आत्मा विधि और निषेध की क्रियाओं से भी स्वतन्त्र है फिर किस हेतु से हे मन तू रोता है कि तू ही तो समरस व्यापक आत्मा है॥ २५॥

गगनोपम शुद्ध विशाल समम विसर्व विवर्जित सर्व सगम् ॥
गतसारं विसार विकार समं किमु रोदिषि मानस सर्व समम ॥ २६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

गगनोपम शुद्ध विशाल समम् - आत्मा आकाश के तुल्य है शुद्ध स्वरूप है प्रिये रूप है विस्तार वाला है सर्वत्र एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अविसर्वे विवर्जितसर्वे समम् - विशेषकरके सर्वसे रहित है तथा सर्वत्र सम है और गानसारविसार वि-
सारसमम् - पन्थ तथा सम्यक चाल अर्थात सार और विसार और विकार से भी स्वतन्त्र है और एकरस ही है
किमुरोदिषि मानस सर्वे समम् - क्यों रोता है हे मन आत्मा तू सर्वत्र व्याप्त है एकरस है साई तू है

आशय ।

जड भरत ! चेतन आत्मा तो गगन की उपमा वाला है और विशाल भी है अर्थात अति विस्तार वाला है और फिर
व्यापक भी है और एकरस सम है और संपूर्ण मिथ्या प्रपंच से भी रहित है और सार और असार के भाव तथा
अभाव से भी स्वतन्त्र है अर्थात विकार से रहित है तब उसकी प्राप्ति के लिये जबकि आत्मा स्वयं ही
प्राप्त रूप है हे मनु जड भरत रूप आत्मा होकर तेरा रुदन करना व्यर्थ है क्योंकि तू आप व्यापक आत्मा है ॥ २६ ॥

इह धर्मे विधर्मे विरागनरमिह वस्तु विवस्तु विरागनरम् ॥
इह कामे विकामे विरागनरं किमुरोदिषि मानसे सर्वे समम् ॥ २७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह धर्मे विधर्मे विरागनरम् - आत्मा धर्म और अधर्म दोनों से स्वतन्त्र है और ये इह वस्तु विवस्तु
विराग नरम् - आत्मा वस्तु और अवस्तु से भी स्वतन्त्र है और इह कामे विकामे विरागनरम् आत्मा
इच्छा अनइच्छा से भी स्वतन्त्र है और किमु किसी प्रकार से भी रोदिषि रोना मा न स मेरे आत्मामें
नहीं है क्योंकि साकार सृष्टि सर्वे संसार समम् संपूर्ण एकरस आत्मा में ही व्यापक है ॥

आशय ।

हे चित! आत्मा ये संसार दो प्रकार के धर्म रूप वाला प्रतीत होता है एक सामान्य धर्म है कि जो चराचर में एक
सा है और दूसरा जो अधर्म है और जो विशेष धर्म कहा जाता है ये चराचर में पृथक २ है इन दोनो प्रकार के
धर्मों अर्थात धर्म और अधर्म से आत्मा स्वतन्त्र और श्रेष्ठ है और इसी वार्ता को जान लेने का नाम ज्ञान और
वैराग है आगे इस संसार में सामान्य वस्तु और विशेष वस्तु से भी आत्मा रहित है क्योंकि जो जो सामान्य और
विशेष वस्तु हैं अर्थात भोग पदार्थ हैं वह भी पृथक पृथक अज्ञान कार्य माया रूप हैं कि नहीं हैं तो इस ही
वार्ता को दृढ़ विश्वास से निश्चय करलेने का नाम ज्ञान और आत्म ज्ञान है क्योंकि आत्मा वस्तु भोग पदार्थ
भी नहीं है और जब आत्मा वस्तु भोग पदार्थ नहीं है तो सामान्य इच्छा और विशेष इच्छा से भी वह आत्मा
स्वतन्त्र और श्रेष्ठ है और इसी दृढ़ निश्चय का नाम ज्ञान और वैराग अर्थात आत्म ज्ञान है क्योंकि संसार में
इच्छा ही दुःख का मूल है कि जो नाम मान रूप के हेतु माया रूपी नाना प्रकार के दुःखों को उत्पन्न करती है यदि
इस प्रकार से जबकि आत्मा में न धर्म है न अधर्म है नहीं वस्तु है तो सामान्य और विशेष करके आत्मा
में इच्छा भी नहीं है क्योंकि इच्छा प्रकृति माया कार्य हैं इसलिये आत्मा शुद्ध श्रेष्ठ ही है और जब ये
आत्मा अति पवित्र और श्रेष्ठ है तो इस आत्मा में किसी प्रकार से भी रुदन करना मेरे को अर्थात इस
आत्मा को नहीं बनता है सो आत्मा में रोना नहीं है रुदन करना साकार सृष्टि माया कार्य है सो माया का
माया में ही रहता है और माया आत्मा में है नहीं फिर हे मन तू क्यों रोता है कि तू ही आत्मा सर्वत्र व्यापक है ॥ २७ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सुखदुःखविवर्जितं सर्वं सममिह शोकविशोकविहीनं परम् ॥
गुरुशिष्यविवर्जितं तत्त्वं परं किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् ॥ २८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सुखदुःखविवर्जितं सर्वं समम् - सुख और दुःख से रहित वह आत्मा संपूर्ण एकरस है और इह शोक विशोक विहीनं परम् इस आत्मा में सामान्य और विशेष रूपी शोक भी नहीं है क्योंकि श्रेष्ठ है और गुरुशिष्यविवर्जितं तत्त्वं परम् - गुरु और शिष्य का व्यवहार भी नहीं है इन व्यवहारों से भी आत्मा रहित है और परम श्रेष्ठ है यथार्थ है और फिर तू किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् क्यों रोता है हे मन ये सब एक

आशय ।

हे मनुइन्द्र! आत्मा सुख और दुःख दोनों से रहित है शोक और मोह से भी स्वतन्त्र है गुरु और शिष्य भाव से भी रहित है केवल तत्त्व ज्ञान स्वरूप है फिर तू किस लिये रोता है हे मन कि तू ही एक आत्मा है

न किलाङ्कुरसारविसार इति न चलाचलसाम्यविसाम्यमिति ॥
अविचारविचारविहीनमिति किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् ॥ २९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न किल नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में अङ्कुर उत्पत्ति का अंकुर भी और सार विसार इति सार विसार का अन्त ही अर्थात अनन्त आत्मा में नहीं है उत्पत्ति कर्म का कोई कर्म ही और न चलाचल नहीं है चल चर रूपी और जड रूपी व्यवहार ही और नहीं है साम्य विसाम्यम समता और विषमता का कोई व्यवहार ही - इति आदि अन्त रूपी क्योंकि - अविचार विचार विहीनम इति - अविचार और विचार से भी रहित है अनंत स्वरूप आत्मा फिर किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् क्या रोना है मनुष्य

आशय ।

हे कृष्ण मन! निश्चय करके माया रूपी संसार में माया के दो प्रकार के कर्म होते हैं एक तो सार सहित दूसरे सार से रहित सो जो कि जन्म का हेतु कर्म हैं वह माया रूपी आकृतियों के सार सहित होते हैं दूसरे कि जिनका नाम बिसार है और जो मरण का हेतु होते हैं ये दोनों प्रकार के कर्म माया प्रकृति के अज्ञान और ज्ञान रूप में आप से आप हुआ करते हैं क्योंकि जो आकृति जन्म रूप से प्रकट होती है उसका फिर मरने के पश्चात कभी जन्म नहीं होता है क्योंकि जन्म और मरण आत्मा में नहीं हैं और इन दोनों प्रकार के कर्मों से आत्मा स्वतन्त्र है और सर्वत्र व्यापक है इसलिये चल और अचल से भी आत्मा रहित है और आत्मा में मन न होने के कारण विचार और विचार का अभाव भी नहीं है फिर तू क्यों रोता है ॥ २९ ॥

इह सारसमुच्चय सारमिति कथितं निजभावविभेद इति ॥
विषये करणत्वमसत्यमिति किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् ॥ ३० ॥

पदच्छेद शब्दार्थ

इह सारसमुच्चयसारमिति - आत्मा ही सार है और अनंत है कथितम्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

कट कररहा हूं निजभाव विभेदः इति अपने भ्रमसेही भेद का खण्डण करके भेद रहित होकरके
ादि अन्त रहित अनंत का सार क्योंकि विषये आत्मा के विषय में करणत्वम् जो कुछ कि किया
ाय और कहा जाये वह सब असत्यम् असत्य ही प्रपंच रूप कथना है क्योंकि इति आत्मा
नंत ही है फिर किंमुरोदिषि मानस सर्वं समम् क्यों रुदन करता है हे मन ये सब सम है

आशय।

मनु रामा ! आत्मा सारों का सार है अर्थात आत्मामें सब सारों का सार है और ये अपने निज भाव का ही उच्चार
ंश है क्योंकि आत्माके विषय में जो कुछ मी कहा जावे और जो कुछ मी किया जाये वही असत्य है क्योंकि जितनी बुद्धि की विचार
ागम्य है वहांतक का व्योरा बुद्धि द्वारा करने में आता है और जहांतक नेत्र देखती हैं वहांतक का भेद बुद्धि प्रकट
रती है किंतु अनुभव सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रत्यक्ष होकर प्रत्यक्ष कर रहा है कि संसार की सारी विषय वासना
ूठी है सर्वत्र केवल चेतन ही चेतन प्रकाश भाव है जब केवल सर्वत्र एक ही दशा है फिर तुम क्यों रोते हो॥ ३०॥

बहुधा श्रुतयः प्रवदन्ति यतो वियदादिरिदं मृगतोयसमम् ॥
यदि चैक निरन्तर सर्वं समं किमु रोदिषि मानस सर्वं समम् ॥ ३१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

बहुधा बहुतसी श्रुतयः श्रुतियां प्रवदन्ति कथन करती हैं प्रकट करती हैं कि यतः ये सर्व माया
पंच वियदादिः आकाश आदि इदम् चेतन आत्मा में मृगतोयसमम् मृगतृष्णा की जल के समान
चैतबालू रूप जैसा भ्रम ही है क्योंकि यदि जो चैक एक ही चैतन्य आत्मा है वही निरन्तर नित्य
र्वं समम् सर्वत्र एक रस ही है फिर किंमुरोदिषि मानस सर्वं समम् क्यों रोता है हे मन कि तू ही संपूर्ण चेतन है

आशय।

हे रवि मनु ! अनेक श्रुतियां इस वार्ता को कथन करती हैं कि ये जितना आकाशादिक प्रपंच है सो सब मृगतृष्णा
तुल्य मिथ्या है अर्थात भ्रम रूप धोका है और जो सत्य है वह तो केवल ऐसा एक स्वरूप है कि जो सर्वत्र में
ैतन ही चेतन रूप से भर पूर है और नित्य है और उसके अन्य कहीं कुछ नहीं है फिर हे रवि मन तू कैसे
रुदन करता है कि तू ही तो जो सर्वत्र में व्यापक हो रहा है एक चेतन आत्मा है तेरा रुदन मिथ्या ही है॥ ३१॥

न्दति विन्दति नहि नहि यत्र द्वन्द्वोलक्षणं नहि नहि तत्र ॥
समरसमग्नो भावित पूतः प्रलपसि तत्त्वं परम अवधूतः॥३२॥
वेदरूप ब्रह्मणोऽहं नः कलङ्क कलंक हीनम् ॥ विस्तारं सार मनन्तो केवलं गगनाकारम् ॥३३॥
शमावतारो हि रवि मनु प्राकं परमवधूतः ॥ नः कलङ्क अगंमं हरि बलगहिहरनित्यं पूतः॥३४॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

चतुर्थो शिक्षा श्रुति मंत्र २५-२६-२७ के अनुकूल ।

आशय ।

मैं ही निराश्रय नित्यार्थ आत्मा सर्व प्रकार के द्वन्द और लक्षणों से रहित महान श्रेष्ठ चेतनस्वरूप ब्रह्म हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि कलङ्क रहित हूं और कलंक का दमन करने वाला हूं और अनंत विस्तार में केवल मैं आप ही आकाशवत सर्वत्र व्यापक हूं अर्थात दशमावतार स्वरूप में मेरा ही नाम रवि सूर्य्य और मनु नाम में चन्द्र नाम है कि जो प्राकं परमवधूत स्वरूप है और जिसका यदि निश्चय कर के कोई नाम है तो वह नः कलंक ही नाम है कि जो विष्णु का अवतार है और आप ही अगम स्वरूप है और निश्चय करके नित्य पवित्र और मुक्त स्वरूप है और पूर्ण शक्तियों का कोश है सो ऐसा जो आत्मा है वही निष्कलङ्क भगवान मैं हूं ॥ ३२-३३-३४ ॥

मयैव वृक्षस्य रेरिवा कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव ऊर्ध्वं पवित्रः ॥ ३
वाजिनी वस्मृतमस्मि द्रविणं सर्वं च सं सुमेधा अमृतोक्षितः ॥ ३५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मयैव मैं ही निश्चय स्वरूप आत्मा हूं कि जो वृक्षस्य माया रूपी संसार के वृक्ष को रेरिवा मूल से ही हलाकर और ऊखेड़ कर फेंक देने वाला हूं कीर्तिः पृष्ठं मेरी कीर्ति की उपमा गिरेरिवः हिमालय पर्वत की सब से ऊंची चोटी के समान ऊर्ध्वं ऊंची है और मेरा ऊंचा स्वरूप अर्थात यथार्थ रूप पवित्रः पवित्र है शुद्ध है वा और अजिनी जन्मरहित अविनाशी वस्मृतम् आश्चर्यवत अस्मि मैं हूं और अद आदि प्राक मैं हूं और रविणम् सूर्य में भी तेज रूप से मैं ही प्रकाशमान हूं और सर्वम् संपूर्ण सर्वत्र च चेतन स्वरूप से सम् एक ही आत्मा हूं और सः नित्य मैं हूं और उमेधा ॐ का अक्षर प्रणव स्वरूप में समष्टी ज्ञान स्वरूप बुद्धि ही बुद्धि मैं हूं और अमृतोक्षितः अमृत अक्षर मैं हूं

आइया ।

मैं आप ही निश्चय स्वरूप आत्मा हूं कि जो माया रूपी संसार के वृक्ष को मूल सहित ऊखेड़ के फेंक देने वाला हूं अर्थात संसार में जो मिथ्या अहंकार अभिमान काम क्रोध लोभ मोह ऊंच नीच का महान असुर कालञ्जर नामी दैत्य उत्पन्न रूप है और वृक्ष की भांति सर्वत्र फैला हुआ है मेरा अपना आप नित्य इस दैत्य का स्वतन्त्रतापूर्वक नष्ट करदेने वाला है क्योंकि मेरी कीर्तिः का सूर्य्य हिमालय पर्वत की सब से ऊंची चोटी के समान आकाशवत ऊंचा है और ये मेरा ऊंचा और यथार्थ स्वरूप अत्यन्त पवित्र और श्रेष्ठ है कि जो नाश से रहित अजन्य है अर्थात इसको कभी जन्म नहीं होता है क्योंकि ये मेरा आश्चर्यवत स्वरूप है और फिर मैं आदि प्राक हूं कि मुझ से पृथम कोई भी नहीं है सो मैं न तो मारे मरता हूं न जन्मता हूं और सूर्य्य में तेज रूप से मैं ही प्रकाशमान रहता हूं और नित्य मैं हूं अर्थात एक ही ॐकार अक्षर प्रणव स्वरूप समष्टी ज्ञान स्वरूप मैं हूं और अमृत अक्षर मैं हूं अर्थात सर्वत्र चेतन स्वरूप से मैं एक ही आत्मा व्यापक भी हो रहा हूं और फिर श्रुति प्रमाण चैतन्य श्रुति ॥ दुःखं न ननु रोदिषि मायं सर्वगतं वा सर्वं समं नः कलङ्क अगं अवधूत पर नहीं है निश्चय करके दुःख और रुदन करना मेरे आत्मा स्वरूप में क्योंकि मैं यम अर्थात महा काल में एक ही अकाल रूप हूं अर्थात सर्वत्र व्यापक हूं और सर्व में एक रस हूं इसलिये कलङ्क से रहित निष्कलंक अगम स्वरूप अर्थात गम्य से रहित स्वतन्त्र और श्रेष्ठ मैं हूं ॥ ३५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

# ६ - कर्मत्यागस्वतन्त्रौषष्ठो शिक्षा ।

## ब्रह्म ज्ञान निरूपण मोक्षनिर्णय ।

## यज्ञादि कर्मों की तुच्छता के

## विषयमें श्रुतियां ॥

श्रुतिरहं श्रुतयः प्रवदन्ति वयं वियदादिरिदं मृगतोयसमम् ॥
यदि चैक निरन्तर सर्वशिवमुपमेयरहितं च कथम् ॥ १ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

श्रुतिः अहम् - मैं आप ही श्रुतिहूं और श्रुतयः श्रुतिरूप से प्रवदन्ति - प्रकट करता हूं कहता हूं कि वयम् हम आप आकाशवत व्यापक हैं और वियदादिः इदम् मृगतोय समम् - आकाशादि प्रपंच रूपमें ये जितना संसार प्रपंच रूप है मृगतृष्णाके जलके समान भ्रम रूप धोका है कि प्रतीत होने पर मनहीं है और यदि च जोकि चेतन्ता का कोश चेतन आत्मा है वह एक निरन्तर सर्वशिवम् एक ही चेतन है और नित्य है और सर्व कल्याण स्वरूप है और उपमेयरहितः उपमासे रहित है कि उसके अन्य और कोई भी नहि उपमा निश्चय करके उपना नहीं है फिर च कथम् चेतन आत्मा की उपमा का वर्णन कैसे होवे ॥

### आशय ।

हे राम हे कृष्ण ! निश्चय करके जान कि मैं आप ही श्रुति हूं अर्थात मैं ही अनेक वेदों की ऋचाएँ हूं इसलिये स्वयं प्रकट करता हूं कि मैं तू के स्वरूप से हम की गति में मैं ही आकाशवत व्यापक हूं और ये जितना संसाररूप प्रपंच है ये तो भ्रम रूप धोका ही है कि देखने से प्रतीत होता है किंतु प्रतीत में मृगतृष्णा तुल्य असार है क्योंकि जो चेतन ब्रह्मात्मा है वह एक ही चेतन्ता का कोश निरन्त मोक्ष और उपमा से रहित अविनाशी निश्चय स्वरूप सर्वगत है फिर ऐसे चेतन स्वरूप अपने को मैं किस प्रकार से और किस से उपमा दूं कि मैं ही राम हूं ॥ १ ॥

अविभक्ति विभक्ति विहीन परं ननु कार्य विकार्य विहीन परम् ॥
मय्येव चैक निरन्तर सर्वशिवं यजनं च कथं तपनं च कथम् ॥ २ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अविभक्ति विभक्ति विहीन परम् - चेतन आत्मा विशेष करके विभाग और विभाग भाव से रहित है और श्रेष्ठ है और ननु निश्चय करके कार्य विकार्य विहीन परम् कार्य और कार्य के अभाव से भी रहित और स्वतन्त्र है सो जो ऐसा आत्मा है मय्येव निश्चय करके वह मैं ही चैक एक चेतन निरन्तर नित्य हूं और सर्वशिवम् - संपूर्ण मुक्तस्वरूप हूं फिर मेरे में यजनम् च कथम् यजन नाम पूजन हे चित कैसे हो सकता है और तपनम् च कथम् तपना तपकरना भी कैसे हे चित हो सकता है किंतु नहीं हो सकता

### आशय ।

हे राघव ! आत्मा में विभाग और अविभाग नहीं है और कार्य और कार्य भाव भी नहीं है फिर उसमें पूजन और तप कैसे हो सकता है क्योंकि जो निश्चय मोक्षस्वरूप आत्मा है वही सर्वत्र व्यापक एक रस मैं ही तो हूं ॥ २ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मन एव निरन्तरसर्वगतं ह्यविशाल विशाल विहीन परम ॥
मन एव निरन्तर सर्व शिव मनसापि कथं वचसा च कथम् ॥ ३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मनः एव निरन्तर सर्वगतम् - मन ही निश्चय करके निरन्तर सर्व गत है और इस मन का ही नाम है ये माया - हि अविशाल विशाल विहीन परम् निश्चय करके विस्तार के अभाव और विस्तार से रहित है अर्थात कोई वस्तु नहीं है क्योंकि मन एव निरन्तर सर्व शिवम् मनसे निश्चय करके अर्थात माया से जो निरन्तर स्वतन्त्र स्वरूप आत्मा है वह सर्व शिवम् - संपूर्ण मुक्त एक ही आत्मा है फिर आत्मा मनसा अपि कथम मन करके अर्थात माया को देखते हुए माया करके कैसे देखा वा जानाजावे क्योंकि वचसा च कथम् वचन अर्थात बाणी किसी प्रकार से भी चेतन स्वरूप का वर्णन नहीं

## आशय ।

हे निरञ्जन ! मनकृत अर्थात माया रचित ये संसार है इसलिये माया ही सर्व गत है कि जो कोई वस्तु नहीं है क्योंकि माया रूपी मन से स्वतन्त्र आत्मा तो संपूर्ण मुक्त है एक रस है फिर वह आत्मा माया रूप मन और बाणीसे कि वास्तव में कोई वस्तु नहीं हैं किस प्रकार कैसे जाना जावे और किस प्रकार कहा जावे वह आत्मा कैसा है और क्या है क्योंकि मन और बाणी का विषय आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥

दिनरात्रिविभेद निराकरणमुदितानुदितस्य निराकरणम् ॥
मादि चैक निरन्तर सर्व शिवं रविचन्द्रमसौ ज्वलनश्च कथम् ॥ ४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

दिनरात्रि विभेद निराकरणम् - आत्मा दिन और रात्रि के भेद से स्वतन्त्र है और उदितानुदितस्य निराकरणम् उदय और अस्त के भाव से भी रहित है क्योंकि मा आदि च एक निरन्तर सर्व शिवम् मैं आदि चेतन आत्मा एक ही नित्य हूं और सर्व मुक्त स्वरूप से व्यापक हूं रवि चन्द्रमः ज्वलनः च कथम् सूर्य्य और चन्द्र और अग्नि ये सब चेतन स्वरूप में कैसे हो सकते हैं कभी नहीं

## आशय ।

हे शुकदेव मुनि ! आत्मा में दिन और रात्रि का भेद नहीं है क्योंकि जब दिन और रात्रि ही उसमें नहीं हैं तब दिन और रात्रि का भेद कैसे होसकता है क्योंकि दिन रात्रि सूर्य चन्द्र के उदय अस्त होने से होते हैं किंतु मैं जो आदि चेतन आत्मा एक ही निरन्तर हूं और सर्वत्र मुक्त स्वरूप से व्यापक हूं मेरे व्यापक स्वरूप में सूर्य्य चन्द्र और अग्नि किंचित भी माया रूप हैं कैसे हो सकते हैं नहीं होसकते क्योंकि उदय और अस्त का कोई भाव नहीं है शुद्ध चेतन स्वरूप मेरे में ॥ ४ ॥

गतकामविकामविभेद इति गतचेष्टविचेष्टविभेद इति ॥
मादि चैक निरन्तर सर्व शिवं बहिरन्तरभिन्नमतिश्च कथम् ॥ ५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गत काम विकाम विभेद इति - आत्मामें काम्ना अर्थात इच्छा और इच्छा के अभाव का भी भेद नहीं है क्योंकि आत्मा अन्त रूप नहीं है और गत चेष्टा विचेष्टा विभेद इति आत्मामें चेष्टा अर्थात रुचि और विरुचि के अभाव का भी भेद नहीं है क्योंकि आत्मा अनंत है और जो ऐसा आत्मा है वह मो आदि च एक निरन्तर सर्व शिवम् मेरा आदि चेतन एक ही निरन्तर सर्वत्र व्यापक मोक्ष स्वरूप है फिर बहिः अन्तर भिन्नमतिः च कथम् - बाहर और भीतर और दोनों से रहित होने का विचार भी चेतन आत्मामें कैसे हो सकता है ॥

आशय ।

"हे वामदेव! जबकि आत्मा में कर्म और निष्कर्म का भेद नहीं है अर्थात आत्मा में न तो सकामता है नहीं उसमें निष्कामता है और रुचि वा बे रुचि होने से भी वह स्वतन्त्र है क्योंकि आत्मा अनंत रूप है तो फिर ऐसे मेरे चेतन स्वरूप में जो एक ही निरन्तर है और सर्वत्र व्यापक वा मोक्ष स्वरूप है उसमें बाहर और भीतर का भेद कैसे हो सकता है किंतु कभी नहीं हो सकता है क्योंकि आत्मा आनंघन सर्वमय है ॥ २ ॥

मयैव सार विसार विहीन परं मयैव शून्य विशून्य विहीन परम् ॥
मयैव चैक निरन्तर सर्व शिवं प्रथमं च कथं चरमं च कथम् ॥ ६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मयैव मैं निश्चय स्वरूप आत्मा सार विसार विहीन परम् सार और विसार से स्वतन्त्र और श्रेष्ठ हूं और मयैव शून्य विशून्य विहीन परम् निश्चय करके मैं शून्य और अशून्य से भी रहित और श्रेष्ठ हूं और मयैव चैक निरन्तर सर्व शिवम् मैं ही निश्चय करके एक ही चेतन आत्मा नित्य सर्वत्र व्यापक हूं और मोक्ष रूप हूं फिर प्रथमं च कथं चरमं च कथम् आदि चेतन कैसे और अन्त चेतन कैसे होगा न होगा

आशय ।

"हे दत्तात्रेय! जबकि मैं निश्चय स्वरूप आत्मा हूं तू मेरे चेतन ब्रह्म रूप में सार और असार और शून्य वा अविशून्य का व्यवहार कैसे हो सकता है क्योंकि निश्चय करके मैं एक ही चेतन ब्रह्म आत्मा नित्य हूं और सर्वत्र व्यापक भी हूं और श्रेष्ठ कर मोक्ष रूप हूं तब मेरे आत्मा में यह प्रथम है अर्थात आदि है और ये चरम है अर्थात अन्त है ऐसा कोई व्यवहार नहीं है क्योंकि मेरा आत्मा अनंत है और शुद्ध है ॥ ६ ॥

इह भेद विभेद निराकरणं इह वेदक वेद्य निराकरणम् ॥
इह चैक निरन्तर सर्व शिवं तृतीयं च कथं तुरीयं च कथम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह भेद विभेद निराकरणं - ये आत्मा भेद और विभेद से भी स्वतन्त्र है और इह वेदक वेद्य निराकरणं ये आत्मा ज्ञाता ज्ञेय के भेद से भी रहित है अर्थात आत्मा में ज्ञाता और ज्ञेय पने का कोई व्यवहार नहीं है क्योंकि इह चैक निरन्तर सर्व शिवम् ये आत्मा एक ही चेतन स्वरूप से व्यापक है और स्वतः मोक्ष है फिर इसमें तृतीयं च कथम् तीसरे का व्यवहार चिन्तन कैसे और फिर - तुरीयं च कथम् तीनों अवस्था से स्वतन्त्र चतुर्थ अवस्था का व्यवहार कैसे हो सकता है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आश्य ।

हे अष्टावक्र अवधूत! चेतन ब्रह्म आत्मा में किसी प्रकार का भी भेद नहीं बन्ता है और ज्ञाता ज्ञेय व्यवहार भी उसमें नहीं बनता है क्योंकि वह द्वैत से रहित है और एक ही श्रेष्ठ एकरस पूर्ण है तब ज्ञान ज्ञेय तृतीय अवस्था रूप कैसे हो सकता है किंतु नहीं हो सकता फिर तुरीय कैसे होवेगा कदापि नहीं होगा क्योंकि आत्मा शुद्ध चेतन है और सर्वत्र व्यापक एकरस है और मोक्ष स्वरूप है ॥ ७ ॥

गर्दिता गर्दितं न हि सत्यमिति विहिता विहितं नहि सत्यमिति ॥
मय्येव चैक निरन्तर सर्व शिवं विषयेन्द्रियबुद्धि मनांसि कथम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

गर्दिता गर्दितं कथन किया और कथन न किया दोनों न हि नहीं हैं निश्चय करके सत्यं सद्रूप इति इसप्रकार का कोई व्यवहार नहीं है आत्मा में और विहिता विहितम् कहना और न कहना अर्थात जो कुछ परोक्ष अर्थात छिपा हुआ है और अपरोक्ष जो प्रकट है अर्थात अपरोक्ष और परोक्ष व्यवहार भी न हि नहीं है निश्चय करके सत्यम् इति सद्रूप इस आत्मा में क्योंकि मय्येव निश्चय करके मैं आप ही चैक एकही चेतनस्वरूप आत्मा हूं और निरन्तर सर्वं शिवम् नित्य एकरस स्वतन्त्रता पूर्वक सर्वव्यापक भी मैं हूं फिर विषयेन्द्रिय बुद्धि मनांसि कथम् ये विषय हैं इन्द्रिय हैं ये बुद्धि है और मन है ये व्यवहार कैसे होसकता है मेरे में किंतु नहीं है ऐसा व्यवहार भी आत्मा में ॥

आश्य ।

हे जनक हे वसिष्ठ! आत्मा में गर्दितागर्दित का कोई व्यवहार नहीं है क्योंकि आत्मा न तो किसी प्रकार कथन किया गया है और नहीं कथन किया जाता है यदि कोई ऐसा विचार है तो वह ही असत्य अर्थात मिथ्या है क्योंकि इस प्रकार के कथन से जो ज्ञात होता है और ज्ञात नहीं होने में आता है अर्थात ज्ञात हुआ है या नहीं हुआ है इस प्रकार का व्यवहार विचार भी आत्मा सद्रूप नहीं है क्योंकि मैं आत्मा निश्चय से तो एकही चेतन ब्रह्म हूं और नित्य एकरस स्वतन्त्रा सहित सर्वत्र व्यापक भी मैं हूं फिर मेरे एकही नित्य स्वरूप में गर्दितागर्दित अर्थात ज्ञात विख्यात और विषयों और इन्द्रियों अर्थात बुद्धि और मन इत्यादि व्यवहार कैसे हो सकता है कभी भी हो नहीं सकता सो इस प्रकार के जो विचार हैं सब मिथ्या हैं ॥ ८ ॥

गगनं पवनो न हि सत्यमिति धरणी दहनो न हि सत्यमिति ॥
मय्येव चैक निरन्तर सर्वं शिवं जलदाद्यो कथं सलिलं च कथम् ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

गगनम् आकाश और पवनः पवन ये दोनों भी न हि सत्यम् इति नहीं हैं निश्चय करके सत्य इस आत्मा में और धरणी दहनः पृथिवी और अग्नि भी न हि सत्यम् इति नहीं हैं निश्चय करके सद्रूप इस आत्मा में क्योंकि मय्येव चैक निरन्तर सर्वं शिवम् मैं निश्चय करके एक ही चेतन आत्मा अद्वयरूप पूर्ण मोक्ष सर्वत्र व्यापक हूं फिर जलदः च कथम् बादलरूपी माया चेतन आत्मा में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कैसे और मलिनम च कथम् माया रूपी बादल से जो जल बिन्दू रूप में वर्षा के समान सृष्टि उत्पन्न होती रहती है ये कैसे आत्मा में हो सकती है किसी प्रकार नहीं हो सकती कि ये सब माया ही माया है ॥

आशय ।

हे लक्ष्मण ! आत्मा में आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी भी नहीं हैं क्योंकि इन्ही का नाम प्रपंच और माया है और काया है और छाया है कि ये किसी काल आत्मा में विद्यमान नहीं हैं क्योंकि जब निश्चय कर के मैं एक ही चैतन्य आत्मा निरन्तर मोक्ष रूप से सर्वत्र व्यापक हूं तो माया कहां और जल रूपी काया वा छाया कहांपर हो सकते हैं किसी स्थान पर नहीं हैं इसप्रकार तुम जानो कि ब्रह्म चेतन मैं एक ही हूं ॥ ९ ॥

इह कल्पित लोक निराकरणं इह कल्पित देव निराकरणम् ॥
मादि चैक निरन्तर सर्वशिवं गुणदोषविचारनिश्चये कथम् ॥ १० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह कल्पित लोक निराकरणम् - आत्मा कल्पनारूपी मिथ्या भ्रमरूपी वहम रूपी स्वर्ग नर्कादि लोकों से स्वतन्त्र है अर्थात इसप्रकार का नहीं है कोई अधिष्ठान आत्मा में और इह कल्पित देव निराकरणम् - इस आत्मा में नहीं हैं मिथ्या कल्पना रूपी इन्द्र वरुण यम कुबेर आदि कोई देवता नाम मात्र को क्योंकि मा आदि च एक निरन्तर सर्व शिवम् मेरा आदि चैतन्य एक ही नित्य सर्व व्यापक मोक्ष स्वरूप आत्मा है फिर गुण दोष विचार निः च कथम् गुण और दोषों की किस प्रकार से इस एक ही चेतन आत्मा में गम्य हो सकती है अर्थात ऐसा बुद्धि द्वारा जाना जासकता है कि ये गुण है ये दोष है

आशय ।

हे दशरथ ! अजनाम आत्मा में पृथिवी स्वर्ग पाताल आदि लोकों का निषेध है अर्थात आत्मा में इनका कोई भेद नहीं हैं और इसी प्रकार कोई भ्रम रूपी देवता इन्द्र वरुण रुद्र आदि भी नहीं हैं क्योंकि ये सब ही कल्पना मात्र हैं मिथ्या हैं मेरा आदि चेतन एक ही निराकार नित्य सर्व व्यापक मोक्ष स्वरूप आत्मा है तब उसमें बुद्धि कृत ये माया प्रपंच कि ये धर्म है ये अधर्म है अर्थात ये दोष है ये दोष नहीं है ऐसा व्यवहार कैसे होसकता है कभी भी नहीं होसकता है क्योंकि आत्मा रहित है सब दोषों से ॥ १० ॥

मरणामरणं हि निराकरणं करणाकरणं हि निराकरणम् ॥
मयैव चैक निरन्तर सर्वशिवं गमनागमनं हि कथं परं ह ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मरणामरणम् - मरना और जीना हि निश्चय स्वरूप आत्मा में निराकरणं दूरीकरण है अर्थात नहीं है और करणाकरणम हि निराकरणम् काम का करना अर्थात कर्म और न करना अर्थात अकर्म भी निश्चय करके आत्मा में दूरीकरण हैं अर्थात नहीं हैं क्योंकि मयैव चैक निरन्तर सर्व शिवम् निश्चय करके मैं ही एक चेतन आत्मा निरन्तर मोक्ष रूप से सर्वत्र व्यापक हूं और फिर गमनागमनम् हि कथं परं अहम् - आवागमन भी निश्चय करके किसीप्रकार आत्मा में कि मैं ही श्रेष्ठ हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सर्वज्ञहूं न वदति नहीं बनता है ॥

## आश्य ।

हे व्यास ! निश्चयकर कि मरना और जीना अर्थात जन्म और मरण दोनों आत्मामें नहीं हैं और नहीं होतेहैं न किसी प्रकार का कर्तव्य और अकर्तव्य अर्थात कर्मका करना और न करना आत्मामें कैसे बनेगा कभी भी नहीं बन सकता सो आत्मा कर्म के करने और न करने से भी स्वतन्त्र है अर्थात आत्मामें कर्मका करना और न करना भी नहीं है फिर आवागमन अर्थात आना जाना कैसे सिद्ध होगा किसी प्रकार भी नहीं होसकता है अर्थात आत्मामें किसी प्रकार से किसी प्रकार का आवागमन भी नहीं है क्योंकि निश्चय कर के सर्वत्र व्यापक मोक्षस्वरूप निरन्तर ही एकरस रहने वाला जो आत्मा है वह मैं ही परम श्रेष्ठ आत्मा हूं किसी से अन्य कहीं भी कुछ नहीं ऐसे तू जान ॥ ११ ॥

प्रकृतिः पुरुषो न हि भेद इति न हि कारण कार्ये विभेद इति ॥
यदि चैक नित्य सर्वशिवं पुरुषापुरुषं च कथं वदति ॥ १२ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

प्रकृतिः पुरुषः न हि भेद इति - प्रकृति है और पुरुष है नहीं है भेद ऐसा आत्मामें और न हि का कार्ये विभेद इति - नहीं है कारण का भेद ही आत्मा में क्योंकि यदि च एक नित्य सर्व शिवम् जो चेतन आत्मा एक ही नित्य सर्वत्र मोक्ष स्वरूप से व्यापक है उसमें पुरुष अपुरुष च कथम वदति ये पुरुष है ये पुरुष नहीं है ऐसा एक ही चेतन आत्मा में किस प्रकार विभाग होसकता है कदापी नहीं होसकता

## आश्य ।

हे जैमिनी - प्रकृति और पुरुष में कुछ भेद नहीं है क्योंकि कारण और कार्य का कुछ भी भेद नहीं होता है फिर तुम जब कि एक ही चेतन नित्य व्यापक और मोक्षस्वरूप ब्रह्म ही है तो न तो कोई पुरुष है नहीं प्रकृति है जो प्रपंच पुरुष प्रकृति के विषय में है सब मिथ्या है इस प्रकार ही जानो ॥ १२ ॥

तृतीयं न हि दारव समागमनं न गुणाद्वितीयस्य समागमनम ॥
मयं चैक निरन्तर सर्वशिवं स्थविरश्च युवा च शिशुश्च कथम् ॥ १३ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

तृतीयम् न हि दारव समागमनम् - तीसरे नहीं है दारव भी कोई क्योंकि जब नहीं है भेद प्रकृति और पुरुष में अर्थात नहीं है प्रकृति और नहीं है पुरुष भी कोई एक ब्रह्म आत्मा है तो आगे कुछ भी नहीं है क्योंकि न गुणाद्वितीयस्य समम आगमनम् नहीं है गुण कोई किसी दूसरे का सर्व ही है एक स्वरूप ब्रह्म आत्मा तो आना क्या और जानाक्या और दारव क्या और सुरक्या और आगमनम क्या अर्थात मिलना क्या और मिलाप क्या क्योंकि मयं चैक निरन्तर सर्व शिवम् मैं आपही सब रूप में अर्थात धर्म रूप में मृत्यु रूप से एक ही चेतन ब्रह्म आत्मा निरन्तर सर्वत्र मोक्ष रूप से व्यापक हूं और स्थविरः च युवा च शिशु च कथम् नहीं है ब्रह्म चेतन स्वरूप में बुढ़ापा और जवानी और बालपन अवस्था भी चिन्तन करने योग किसी प्रकार क्योंकि आत्मा स्वतन्त्र है सब से ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आर्य्य ।

हे मनु ! इस आत्मा में कोई भी दुःख नहीं है और नहीं किसी दुःख का आगमन ही होता है अर्थात आत्मा में किसी दुःख की प्राप्ति का भय भी नहीं है क्योंकि एक वस्तु नाना रूप में एक ही रहती है उसमें किसी प्रकार का भी भेद और दूसरा गुण प्रकट नहीं होता है क्योंकि मैं यम रूपी ब्रह्म आत्मा एक ही चेतन ब्रह्म हूं कि जो निरन्तर मोक्षस्वरूप से सर्वत्र व्यापक हूं और मेरे इस मोक्षस्वरूप में न बुढ़ापा है न जवानी है न बालपन है ऐसा ब्रह्म मैं हूं ॥ १३ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनं परं ननु कारणकर्तृविहीनं परम् ॥
मयैव चैकं निरन्तरं सर्वं शिवं अविनष्टं विनष्टमतिश्चे कथम् ॥ १४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ॥

ननु आश्रमवर्णविहीनं परम् - निश्चयस्वरूपआत्मा वर्ण और आश्रम से स्वतन्त्र है और श्रेष्ठ है और ननु कारणकर्तृविहीनं परम् निश्चय करके कारण और कर्ता पने से भी स्वतन्त्र है श्रेष्ठ है क्योंवह आत्मा मयैव चैकं निरन्तरं सर्वं शिवं निश्चय करके मैं ही एक चेतन आत्मा नित्य हूं और सर्वत्र मोक्ष स्वरूप से व्यापक हूं फिर अविनष्टं विनष्टम् अतिः चे कथम् - अविनाशी आत्मा नाश को प्राप्त होकर अन्त को प्राप्त होजाने वाली तो चिन्तन करना किसी प्रकार भी नहीं बनता है ॥

आर्य्य ।

हे मनु ! आत्मा का कोई वर्ण और आश्रम नहीं है और नहीं आत्मा में कारण और कर्ता पनेका भाव ही है क्योंकि वह जो ऐसा आत्मा है निश्चय करके वही मैं एक चैतन्य ब्रह्म आत्मा हूं कि नित्य हूं और सर्वत्र ही मोक्ष स्वरूप से व्यापक हूं फिर मैं जो एक ही अविनाशी आत्मा हूं किस प्रकार नाश को प्राप्त होकर अन्त को जावेवाला हो सकता हूं किसी प्रकार भी नहीं हो सकता हूं ॥ १४ ॥

ग्रासिताग्रासितं हि वितथ्यमिति जनिता जनितं हि वितथ्यमिति ॥
यदि चैकं निरन्तरं सर्वं शिवं अविनाशि विनाशि कथं परोऽहम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ग्रासिता ग्रासितं हि वितथ्यम् इति - ग्रसने वाला अर्थात मारकर खाने वाला और ग्रासा हुआ अर्थात मारकर खाया जाने वाला निश्चय करके आत्मा में मिथ्या हैं क्योंकि आत्मा में इसप्रकार का व्यवहार नहीं है और जनिता जनितं हि वितथ्यम् इति - और उत्पन्न करने वाला और उत्पन्न होने वाला तथा हुआ भी निश्चय करके मिथ्या ही हैं क्योंकि ये व्यवहार भी अनंत आत्मा में नहीं है यदि च एकं निरन्तरं सर्वं शिवम् - जबकि चेतन ब्रह्म एक ही है और निरन्तर संपूर्ण मोक्ष रूप से व्यापक है फिर ऐसा जोकि अविनाशि - नाश से रहित आत्मा है विनाशि कथं परं अहम् नाश कैसे हो सकता है वही श्रेष्ठ ब्रह्म मैं हूं

आर्य्य ।

हे मनु ! निश्चय स्वरूप आत्मा एक ही है उसमें मारने और मरने का उत्पन्न करने और उत्पन्न होने का व्यवहार नहीं है क्योंकि अविनाशी आत्मा नाश से रहित है मोक्ष रूप से सर्व व्यापक है और वही श्रेष्ठ आत्मा मैं हूं ॥ १५ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुरुषा पुरुषस्य विनष्टमिति वनिता वनितस्य विनष्टमिति ॥
मयैव चैक निरन्तर सर्व शिव अविनोद विनोदमति श्च कथम् ॥ १५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

पुरुषा पुरुषस्य विनष्टम् इति - पुरुष और अपुरुष का व्यवहार नहीं है इस आत्मा में वनिता वनितस्य विनष्टमिति इति स्त्री और नपुंसक का व्यवहार भी नहीं है इस आत्मा में क्योंकि मयैव चैक निरन्तर सर्व शिवम् निश्चय करके मैं ही चेतन एक निरन्तर सर्व मोक्ष आत्मा हूं तो फिर अविनोद विनोदमति च कथम् - शोक और हर्ष वाला मैं चेतन ब्रह्म किस प्रकार हो सकता हूं अर्थात नहीं हो सकता ॥

आशय ।

हे मनु ! आत्मा में मर्द और हीजडे और स्त्री वा हीजडी का कोई व्यवहार नहीं होता है क्योंकि निश्चय करके मैं ही एक चेतन आत्मा मोक्ष रूप से सर्वत्र व्यापक हूं तो फिर मैं शोक और हर्ष वाला किस प्रकार हो सकता हूं अर्थात विषय भोग वासना वाला तथा क्रीडा करने कराने वाला मैं नहीं हूं अभिप्राय यह कि मैं मनुष्य और स्त्री भाव से रहित सर्व व्यापक कल्याण स्वरूप ब्रह्म एक ही हूं मेरे से भिन्न कुछ नहीं

इह मोह विषाद विहीन परम् इह संशय शोक विहीन परम् ॥
इह चैक निरन्तर सर्व शिव अहमैति ममेति कश्च कथम् ॥ १६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इह मोह विषाद विहीन परम् - आत्मा मोह और विषाद से रहित और अशुद्ध है और इह संशय शोक विहीन परम् आत्मा में भय और शोक भी किसी प्रकार का नहीं होता है क्योंकि आत्मा स्वतन्त्र अशुद्ध है और इह चैक निरन्तर सर्व शिवम् आत्मा चेतन एक ही निरन्तर है और सर्वरूप से स्वतन्त्रा पूर्वक व्यापक भी है तब फिर अहमैति मैं ही हूं अनंत रूप से स्वतः सब कुछ और ममेति - मेरा ही है ये अनंत विस्तार माया रूप संसार कः कैसे च चिन्तवन होसकता है ऐसा व्यवहार कथम् किसी प्रकार से भी नहीं हो सकता है ॥

आशय ।

हे मनु ! आत्मा माया रूपी अज्ञान और कष्ट से रहित है और संदेह और शोक से भी रहित है महान है और एक ही नित्य है और मोक्ष रूप से सर्व व्यापक है तब फिर ऐसा विचार कि मैं ही अनंत रूप सब कुछ हूं और मेरा ही विस्तार ये अनंत रूप संसार माया रूप है कैसे चिन्तवन हो सकता है ऐसा विचार इस माया रूपी संसार को देखते हुए किंतु किसी प्रकार से भी नहीं होसकता है क्यों आत्मा नित्य मुक्त और स्वतन्त्र है आत्मा में इस प्रकार के विचार की भी गम्य नहीं है ॥ १६

ननु धर्म विधर्म विनाश इति ननु बन्ध विबन्ध विनाश इति ॥
यदि चैक निरन्तर सर्व शिव मिह दर्शव विदुरव मनिश्च कथम् ॥ १७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

मनु धर्म विधर्म विनाशा इति - निश्चय करके धर्म और अधर्म दोनो का ही विनाश है आत्मा में अर्थात निश्चय स्वरूप आत्मा स्वतन्त्र है धर्म और अधर्म से और नन बन्ध विबन्ध विनाशा इति नहीं है सामान्य और विशेष बन्ध भी आत्मा को यदि चैक निरन्तर सर्व शिवम् जोकि है चेतन स्वरूप एक ही आत्मा और निरन्तर है अर्थात नित्य है और सर्व रूप है और मोक्षस्वरूप से सर्वत्र व्यापक भी है फिर सह दुरव विदुरवमतिः च कथम् आत्मा इसमें सामान्य दुरव और विशेष दुरव जोकि चेतन ही चेतन है कैसे हो सकते हैं।

आशय ।

हे मनु ! निश्चय करके आत्मा में न धर्म है न अधर्म है और नहीं किसी प्रकार का सामान्य और विशेष करके कोई बंधन है क्योंकि आत्मा चेतन स्वरूप है और निरन्तर एकरस है अर्थात मोक्षरूप से सर्वत्र व्यापक है फिर आत्मा में सामान्य और विशेष दुरव कैसे हो सकते हैं क्योंकि श्रुति प्रमाण « शारीरं केवलं आत्मनो कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् » आत्मा शरीर से स्वतन्त्र और निष्क्रिय निर्गुण है देह से गुणों के अनुसार जो कर्म होते हैं उन्का आत्मा से कुछ संबन्ध नहीं है क्योंकि आत्मा नित्य सर्व व्यापक मोक्षस्वरूप है इसलिये आत्मा में दुरव सुरव की वासना भी किसी प्रकार नहीं हो सकती है तो धर्म और अधर्म दोनों ही माया कृत अज्ञान कार्य हैं कि जो दुरव बन्धन रूप हैं आत्मा तो स्वतन्त्र ही है ॥ १८ ॥

ने हि याज्ञिक यज्ञ विभाग इति न हुताशन वस्तु विभाग इति ॥
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवं वद कर्म फलानि भवन्ति कथम् ॥ १९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न हि याज्ञिकं यज्ञ विभाग इति - नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में यज्ञ रूपी यज्ञ के कार्य और यज्ञ रूप कारण क्योंकि दूरीकरण है आत्मा को यज्ञ रूपी कारण और कार्यों से अर्थात विभाग रूप में स्वतन्त्र है आत्मा यज्ञादि मिथ्या यज्ञ रूपी कर्मों से और न हुताशन वस्तु विभाग इति नहीं है अग्नि रूपी वस्तु भी आत्मा क्योंकि विभाग इति दूरीकरण है आत्मा को अग्नि रूपी वस्तु से भी क्योंकि यदि चैक निरन्तर सर्व शिवम् जो एक ही चेतन आत्मा है वह निरन्तर सर्वरूप कल्याणस्वरूप सत्य है तब फिर वद - कहो कर्म फलानि भवन्ति कथम् । कर्मों के फल होते हैं कैसे और किसको किस प्रकार से ॥

आशय ।

हे मनु ! निश्चय करके आत्मा में यज्ञादिक मिथ्या कर्म का पारवण्ड नहीं है क्योंकि जिस प्रकार यज्ञ में होने वाले कर्म का यज्ञ के साथ विभाग नहीं है और अग्नि में हवन करी हुई वस्तु का अग्नि के साथ भी विभाग नहीं रहता है इसी प्रकार चेतन ब्रह्म आत्मा जो एक ही निरन्तर सर्व रूप मोक्ष स्वरूप सत्य आत्मा है और सर्व व्यापक है उस्का किसी के साथ भी विभाग नहीं है क्योंकि श्रुति प्रमाण « सर्वव्यापकः विसंगो केवलो सत्यं सत्य हि तत् आत्माः » अर्थात आत्मा सर्वत्र व्यापक होने पर भी आत्मा केवल है मोक्ष रूप से स्वतन्त्र है सत्यकरके शुद्ध है और निश्चय करके आत्मा ही यथार्थ है फिर कहो तो सही कि स्वर्ग आदि की प्राप्ति और सुरव प्राप्ति के हेतु जो कर्म किये जाते हैं इनका क्या फल है ऐसे कर्मों के फल किस को प्राप्त होते हैं और कैसे किस प्रकार से किसी को भी नहीं कि मिथ्या पारवण्ड ही हैं ॥ १९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ननु शोक विशोक विमुक्त इति ननु दर्प विदर्प विमुक्त इति ॥
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवं ननु राग विरागमतिश्च कथम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

ननु शोक विशोक विमुक्त इति - निश्चय करके आत्मा चिन्ता और विशेष चिन्ता से भी रहित है
और ननु दर्प विदर्प विमुक्त इति निश्चय करके अहंकार और विशेष अहंकार से भी आत्मा रहित है
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवम् - जोकि एक ही चेतन रूप है और सर्वत्र व्यापक मोक्ष रूप है इसलिये ननु
राग विरागमतिः च कथम् निश्चय करके राग विराग बुद्धि वाला भी चेतन ब्रह्म आत्मा किसी प्रकार

आशय ।

हे मनु! आत्मा साधारण शोक कि जाति कृषि रूप है और विशेष शोक कि जो स्त्री पुत्रादिक कृषि
शोक है और इसी प्रकार उत्तम जाति अभिमान साधारण अभिमान और धन संबंधि विशेष अभिम
कि मैं ही धन और संबंधियों वाला हूं इन मिथ्या प्रपंच अहंकार और शोकों से रहित है क्योंकि जो आत्म
है वह एक ही चेतन ब्रह्म निरन्तर सर्वत्र व्यापक है और मोक्ष स्वरूप है और उस निश्चय स्वरूप
में राग और विराग भी किसी प्रकार का नहीं है सो ऐसा जो आत्मा है सैव केवलं » मैं ही एक हूं ॥

नहि मोह विमोह विकार इति नहि लोभ विलोभ विकार इति ॥
यदि चैक निरन्तर सर्व शिवं ह्यविवेक विवेकमतिश्च कथम् ॥ २१ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न हि मोह विमोह विकार इति - नहीं हैं निश्चय स्वरूप आत्मा में मोह और विमोह कोंकि
विकार मात्र हैं सामान्य और विशेष मोह दोनों नित्य आत्मा में क्योंकि अज्ञान कृत माया कार्य हैं
स्वतन्त्र है आत्मा इन से और न हि लोभ विलोभ विकार इति नहीं हैं निश्चय करके लोभ
और विशेष लोभ भी आत्मा में कि ये भी माया रूपी अज्ञानता के कार्य हैं क्योंकि मो आदि च त
निरन्तर सर्व शिवम् - मेरा प्राक चेतन एक ही नित्य सर्व व्यापक मोक्ष स्वरूप है कि जिसम
हि निश्चय स्वरूप आत्मा में नहीं है अविवेक विवेकमतिः च कथम् अविवेक और ज्ञे
विवेक है ये भी चिन्तन रूप किसी प्रकार से अर्थात रहित है आत्मा इनसे भी ॥

आशय ।

हे मनु! नहीं है निश्चय स्वरूप आत्मा में सामान्य तथा विशेष रूप से अज्ञानता और नहीं है मात्र
रूपी लोभ ही क्योंकि मेरा प्राक चेतन जो एक ही माया रहित नित्य और सर्व व्यापक मोक्ष स्वरूप
आत्मा है इस निश्चय स्वरूप में अविचार और विचार भी नहीं हैं किसी प्रकार से ॥ २१ ॥

त्वमहं न हि हन्त कदाचिदपि कुलजाति विचारमसत्यमिति ॥
अहमेव शिवः परमार्थ इति अभिवादन मत्र करोमि कथम् ॥ २२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

त्वम् अहम् न हि तू और मैं नहीं हैं निश्चय करके हन्त माया कि जो है शोक रूप में नाश मान शोक रूप कदाचित् कभी भी क्योंकि अपि निश्चय करके मैं तू का अहंकार जो कुल जाति विचारम् असत्यम् इति कुल जाति के विचार में माया रूप है ये ही मिथ्या और हन्त रूप है नाशमान है इस आत्मा में क्योंकि अहम् एव शिवः परम् आर्य इति मैं निश्चय करके मोक्ष रूप हूं श्रेष्ठ हूं सत्य हूं और अनंत हूं ऐसा होनेपर अभिवादनम् निश्चय कर के वंदना वाद अत्र इस माया रूपी संसार में यहां पर करोमि मैं कहं कथयम् कैसे किस प्रकार से किस को ॥

आशय ।

हे मनु ! ये मैं हूं ये तू है इस प्रकार से जो कि भेद ज्ञान का द्वैत रूप माया अहंकार है ये कभी भी सत्य नहीं है और कुल तथा जाति आदि कों का जो विचार है कि हमारा कुल बडा उत्तम है और हमारी जाति भी उत्तम है ये भी सत्य नहीं है क्योंकि ये सब मिथ्या माया प्रपंच है । मैं निश्चय स्वरूप आत्मा मुक्त रूप हूं सद्रूप हूं श्रेष्ठ हूं सत्य हूं अनंत हूं कि मेरे से भिन्न किसी प्रकार कहीं भी कोई दूसरा नहीं है क्योंकि मैं अद्वैत रूप एक ही आत्मा हूं फिर कैसे और किस प्रकार किस को बन्धना कहां क्योंकि श्रुति प्रमाण « अहमेवो सर्वं एकं ब्रह्म » मैं ही निश्चय करके सर्व व्यापक एक ही ब्रह्म हूं ॥ २२ ॥

गुरु शिष्य विचार विशीर्ण इति उपदेश विचार विशीर्ण इति ॥
अहमेव परं अवधूत इति मैव निर्मल निश्चल स्वरूप इति ॥ २३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

गुरु शिष्य विचार विशीर्ण इति - गुरु और शिष्य भाव का विचार मिथ्या है आत्मा में कि नहीं है - और उपदेश विचार विशीर्ण इति और उपदेश का विचार मिथ्या ही है आत्मा में कि किसी प्रकार नहीं है क्योंकि अहम् एव परम् अवधूत इति - मैं ही निश्चय करके श्रेष्ठ अवधूत अनंत रूपी आत्मा हूं और मैं एव निर्मल निश्चल स्वरूप इति - मेरा निश्चय स्वरूप शुद्ध एकरस पवित्र तेजस्वी आत्मा है

आशय ।

हे मनु ! अद्वैत चेतन आत्मा में ये गुरु है यह शिष्य है इस प्रकार का जो कि विचार है सो भी नहीं बनता है क्योंकि आत्मा में गुरु शिष्य का व्यवहार ही नहीं है तब उपदेश करना भी नहीं बनता है मिथ्या है कि कोई भी सुनता नहीं है इस आत्मा में सुनना भी नहीं है क्योंकि मैं ही निश्चय करके श्रेष्ठ कल्याण रूप आत्मा हूं और मेरा निश्चय स्वरूप शुद्ध पवित्र है कि जिस में अभिवादन व्यवहार नहीं है रूप सत्य रूप है ॥ २३ ॥

नहि कल्पित देह विभाग इति नहि कल्पित लोक विभाग इति ॥
सरजो विरजो न कदाचिदपि अहमेव शिवः परमार्थ इति ॥ २४

पदच्छेदः शब्दार्थ

नहि कल्पित देह विभाग इति - नहि है निश्चय करके कल्पित देह करके भी कोई भेद आत्मा में और न हि कल्पित लोक विभाग इति - नहीं निश्चय करके कल्पित लोक करके भी कोई भेद आत्मा में

CC-0. Gurukul Kangri University, Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और **सर्वजः विरजः न कदाचित अपि** - राग विराग भी नहीं है कभी निश्चय स्वरूप आत्मा में क्योंकि **अहम् एव शिवः परमार्थ इति** मैं ही निश्चय करके मोक्ष रूप आत्मा श्रेष्ठ अर्थ से अनंत स्वरूप हूं ॥

## आशय ।

हे मनु! ये कल्पित देह जो माया रूप है और माया करके प्रतीत होती है ये आत्मा में ही किस प्रकार से कल्पित है जैसे सागर में फेण बुद्बुदा आदि कल्पित होते हैं और इसी प्रकार से लोक भी आत्मा में किसी प्रकार से नहीं किंतु माया करके कल्पित होते हैं और कल्पित वस्तुओं करके आत्मा का भेद किसी प्रकार से जाना नहीं जाता क्योंकि आत्मा न तो रागसहित है नहीं विराग सहित है दोनों से रहित है और वही आत्मा निश्चय करके ही शिव रूप अर्थात मोक्षस्वरूप श्रेष्ठ उत्तम हूं और अर्थ से ही अनंत स्वरूप मैं हूं ॥ २४ ॥

**नहि देह विदेह विकल्प इति अनृतं चरितं नहि सत्यमिति ॥**
**ननु निर्मल निश्चल शुद्ध इति अहमेव शिवः परमार्थ इति ॥ २५ ॥**

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

**न हि देह विदेह विकल्प इति** - नहीं है देह और विदेह की कल्पना भी आत्मा में इसी प्रकार से **अनृतम्** मिथ्या और **चरितम्** सत्य चरित्र भी **न हि सत्यम् इति** नहीं हैं निश्चय करके आत्मा में क्योंकि सत्यस्वरूप और अनंत है आत्मा और **ननु निर्मल निश्चल शुद्ध इति** निश्चय करके निर्लेप अर्थात स्वतन्त्र है एक रस है और पवित्र है और यही **अहमेव शिवः परमार्थ इति** - मैं निश्चय करके श्रेष्ठ अर्थ से

## आशय ।

हे मनु! निश्चय करके आत्मा निर्लेप निश्चल अर्थात असंग और स्वतन्त्र स्वरूप है और शुद्ध है और उस में इस प्रकार की कल्पना करना कि वह देहसहित है या देहरहित है या मिथ्या चरित्र है इस प्रकार का कोई भी धर्म आत्मा नहीं है क्योंकि वह सत्य स्वरूप और अनंत है और वही मैं निश्चय स्वरूप मोक्ष रूप अर्थ से ही श्रेष्ठ आत्मा कि अनंत स्वरूप हूं कि जिसमें कहना है न सुनना है न संशय है न बन्धना है ऐसे तुम जानो ॥ २५ ॥

**विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र च्छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र ॥**
**समरसमग्नो भावित पूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः ॥ २६ ॥**

**पदच्छेदः शब्दार्थ इस श्रुति मंत्र का और आशय।** शिक्षा ४ - मन्त्र २५ के अनुकूल ये है कि हुआ आत्मा में जो कि अवधूत रूप है उसमें छन्द कविता आदि से और माया पदार्थ से कोई वस्तु इच्छा रूप नहीं है क्योंकि श्रुति प्रमाण " न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैके अमृतत्व मानशुः " जिस के अर्थ ये कि वह त्याग अर्थात कर्म त्याग कि जिस से सर्व प्रकार के दुःख नष्ट होकर दूर हो जाते हैं उस शुद्ध तत्त्व का नाम है कि जिस से अदृष्ट दृष्टि में नाम रूप और संसार इस प्रकार मिट जाता है कि जिस प्रकार सूर्य प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है और केवल आत्मा ही आत्मा अर्थात आनंद शेष रहता है अर्थात आत्मा आनंद दिखता है जगत का जगत पना और सब पदार्थ माया रूप केवल आत्मा के प्रकाश में ढक जाते हैं सर्व प्रकार के बंधन छूट कर केवल आत्मा का शुद्ध स्वरूप ही भासता है ॥ २६

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आयेमात्मो पृष्टे किंस्मिन मित्रं वै आत्मो पृष्टे किंस्मिनपिरपि ॥
थिनो न मित्रं नहि नहि भिरपि अहमेव शिवं नहि भिन्नं किंमपि ॥ २८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ

आयिम् हे मनु आत्मः मैं आपही पृष्टे पूछता हूं किंस्मिन मित्रम् - कौन हैं मेरे मित्र और वै निश्चय करके आत्मः मैं आप ही पृष्टे पूछता हूं किंस्मिन कौन हैं मेरे भिरपि शत्रु थिनः कोई भी न नहीं है मित्रम् मित्र मेरे और न हि न हि भिरपि नहीं हैं नहीं हैं शत्रु भी कोई मेरे क्योंकि अहम् एव शिवम् न हि भिन्नम् किंमपि मैं आप ही निश्चय करके मुक्त स्वरूप आत्मा हूं और नहीं है मेरे से भिन्न कुछ भी

आशय ।

हे मनु आत्मा! मैं आप ही अपने से पूछता हूं कि मेरे कौन शत्रु हैं और कौन मित्र हैं निश्चय करके तो आप ही अपने से ये उत्तर पाता हूं कि मेरा कोई भी नहीं है मित्र और नहीं है कोई शत्रु क्योंकि मैं आप ही निश्चय स्वरूप से कल्याण स्वरूप हूं कि जिस निश्चय स्वरूप से भिन्न कोई दूसरी वस्तु कहीं भी कुछ नहीं है ॥ इसलिये ना कहीं कोई मेरा मित्र है न शत्रु है केवल मैं आप ही अनंत रूप से सर्वत्र व्यापक एक मुक्त आत्मा हूं। सो इसी का नाम है ब्रह्म ज्ञान और मोक्ष निर्णय ऐसा तू निश्चय करके जान ॥ २८ ॥

## ८ - कर्म त्याग स्वतन्त्रता सप्तमो शिक्षा ।

आत्मनो दिगंबर रूपवर्णन -

ॐ हूं ॐ

रष्ट्या कर्पट विरचित कन्थः पुण्यापुण्य विवर्जित पन्थः ॥
शून्यागारे तिष्ठति नग्नो शुद्ध निरञ्जन समरस मग्नः ॥ १ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

रष्ट्या शरीरों के कर्पट कपडों के रूप में नाना प्रकार के वस्त्र अर्थात आकृतियां भिन्न२ करके विरचित रचन किये हुए कन्थः हे आनंदघन आत्मा किसके हैं कि जिन को धारण करके अथवा गुदडी रूप में ओढ़के तू पुण्य अपुण्य विवर्जित पन्थः पुण्य और पाप दोनों से रहित होकर के स्वतन्त्रता पूर्वक मोक्ष मार्ग रूप धारण किये हुए हैं अर्थात स्वयं मोक्ष दिगंबर स्वरूप बना हुआ है और फिर शून्यागारे - शून्य मंदिर में तिष्ठति स्थिर स्थित होकर विराजमान है और फिर भी नग्नः नग्न स्वरूप ही तेरा है कि नहीं है वस्त्र तेरा कोई अर्थात नहीं है कोई शरीर रूप वाली आकृति अर्थात गुदडी ओढनी तेरी अर्थात मुक्त स्वरूप है तेरा और शुद्ध निरञ्जन समरस मग्नः - पवित्र हे तू और माया मल से रहित है तू और सर्व व्यापक रूप होकर के भी निरन्तर अपने ब्रह्मानंद में ही मगन अर्थात प्रसन्नता पूर्वक रहने वाला है तू

आशय ।

हे मनु ! शरीर क्या है और शरीर किसको कहते हैं ये एक ऐसा वस्त्र है कि जैसे गलियों में गिरे पडे पुराने सडे गले कपडों को लेकर और उनकी गुदडी बनाकर एक ऐसा पुरुष कि जिस को न तो कोई पुण्य है न पाप है ओढ़ने और फिर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह सब से अलग एकान्त स्थान में नग्न होकर ही बैठा हो अर्थात प्रकट प्रतीत में तो गुदड़ी ओढ़े हुए प्रतीत होता हो
किन्तु हो वास्तु में वह नग्न ही सो इस प्रकार नाना वर्ण रूपके जो वस्त्र हैं अर्थात पशु पक्षी मनुष्य आदि के आकृति
रूपों में जो भिन्न भिन्न करके देह रूपी शरीर हैं इनकी रचना करने वाली माया है और माया गुदड़ी रूप वस्त्र में कोई
भी वस्तु नहीं है एक आत्म स्वांग है और कैसा स्वांग है कि इस स्वांग का देखने वाला सब पुण्य और पापों से ही
स्वतन्त्र होकर इस प्रकार इस स्वांग को देख रहा है अर्थात इसका रस आनंद ले रहा है कि उसके इस रस आनंद का कभी भी
नाश होने में नहीं आता है क्योंकि इसी आनंद का नाम सम रस ब्रह्मानंद है और अपने इसी ब्रह्मानंद में मग्न जो कि अवधूत
रूप अनामय आत्मा है वह सर्व प्रकार के गले सड़े गिलियों में पड़े टुकड़ों को लेकर उनकी गुदड़ी बनाये हुये अर्थात
नाना रूप आकृतियों के स्वरूप में आपही अपने को अपने सर्व व्यापकता स्वरूप की लीला दिखाने और देखते हुये
इस माया रूपी गुदड़ी से स्वतन्त्र अर्थात सर्व प्रकार के पुण्य और पापों से स्वतन्त्र सब से अलग अर्थात सब मिथ्या
मार्गों से मुक्त रूप होकर शून्य मंदिर में अर्थात आकाशवत रूप स्वरूप में नग्न होकर अवधूत रूप से स्थित अर्थात
विराजमान है और वही शुद्ध पवित्र स्वरूप आत्मा दिगंबर रूप माया मल से रहित सर्वत्र व्यापक और एकरस जो कि
मग्न स्वरूप और अवधूत आत्मा है अर्थात इस माया रूपी स्वांग का दृष्टा अर्थात साक्षी है मैं हूं ऐसा तू जान ॥१॥

लक्ष्यालक्ष्य विवर्जित लक्ष्यो युक्तायुक्त विवर्जित दक्षः ॥
केवल तत्व विरञ्जन पूतो वादविवादः कथमवधूतः ॥ २ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

लक्ष्यालक्ष्य विवर्जित लक्ष्यः - लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों से स्वतन्त्र विलक्षण स्वरूप जो आत्मा है
और युक्तायुक्त विवर्जित दक्षः युक्त वा अयुक्त से भी श्रेष्ठ अर्थात मुक्त रूप स्वरूप में जो दक्ष नाम
चतुर आत्मा है और केवल तत्व विरञ्जन पूतः - एक ही यथार्थ करके माया मल से रहित पवित्र आत्मा है
वही वाद विवादः कथम् अवधूतः - वाद और विवाद से स्वतन्त्र अर्थात मुक्त स्वरूप अवधूत आत्मा मैं हूं

आशय ।

हे मनु ! दक्ष नाम अवधूत स्वरूप आत्मा का है सो ऐसा जो एक ही चतुर आत्मा है वही आत्मा लक्ष्य होता
है और वही अलक्ष्य होता है अर्थात लक्ष्य का अभिप्राय तो ये है कि जिस प्रकार अपने चित की वृत्ति के ही
अनुकूल पृथक २ करके ये मेरा धन है ये मेरी भूमि है ये मेरा पुत्र है ये मेरे पुत्री है और इसी प्रकार से और भी
अन्य पदार्थ कि जिनमें माया रूपी चित वृत्ति होती है पृथक पृथक प्राणी उन उन वस्तुओं को अपनी ही
अपनी होना प्रकट करते हैं सो इस प्रकार अपनी अपनी ही वस्तु की प्रतीत का नाम लक्ष्य है और इसके अ
भिन्न प्रतीत का नाम कि जिस से किसी प्रकार का हित नहीं होता अलक्ष्य है और इसी प्रकार युक्त और अयुक्त भी
भी गति है किंतु ये सब माया के ही स्वांग है क्योंकि आत्मा तो विलक्षण स्वरूप से कि लक्ष्य अलक्ष्य वा
युक्त अयुक्त सब ही माया कारण कार्यों से श्रेष्ठ है अर्थात एक ही यथार्थ स्वरूप है और माया मल से
रहित पवित्र है और किसी प्रकार का भी वाद विवाद उस पवित्र आत्मा में नहीं है सो ऐसा जो कि
अवधूत अर्थात अनामय आत्मा है अर्थात नहीं है जिस का नाम रूप कोई वही आत्मा मैं हूं ऐसे तू जान ॥२॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आशापाश विबन्धनमुक्ताः शौचाचारविवर्जितयुक्ताः ॥
एवं सर्वविवर्जितसन्तस्तत्वं शुद्धनिरञ्जनवन्ताः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आशापाश विबन्धन मुक्ताः -आशा रूपी फांसी के बन्धनों से मुक्त है आत्मा अर्थात नहीं है आशा रूपी कोई बन्धन आत्मा को क्योंकि स्वयं मुक्त है आत्मा और शौचाचार विवर्जित युक्ताः सर्व प्रकार के जो मिथ्या रूपी शौच कार्य कर्तव्य अर्थात कर्म और आचार हैं इन से भी अयुक्त रूप में स्वतन्त्र है आत्मा और एवम् इसी प्रकार सर्व विवर्जित सन्तः संपूर्ण विश्व अर्थात चराचर नाम रूपी पदार्थों से भी मुक्त है आत्मा क्योंकि जो ऐसा सन्त रूप आत्मा है अर्थात सर्व व्यापक है वही तत्त्वम् शुद्ध निरञ्जन वन्तः यथार्थ करके यथार्थ और शुद्ध करके पवित्र कि जो माया मल से रहित अर्थात मुक्त है मैं ही वन्तः अनंत नाम रूप स्वरूप वाला स्वयं हूं

आशय ।

हे मनु! निश्चय करके जानो हे राम हे कृष्ण हे अहमद हे मूसा हे ईसा हे नानक अर्थात साधुओं के साधु पीरों के पीर रसूलों के रसूल अवतारों के अवतार इमामों के इमाम बादशाहों के शहन्शाह आशा नाम ही माया रूपी सृष्टि का है और यही फांसी रूप में एक का तो कहना ही क्या है नाना प्रकार के बन्धनों का एक ही बंधन है इस बन्धन से आत्मा मुक्त है अर्थात स्वतन्त्र है! और इसी प्रकार शौच और आचार कि जो कर्म रूप में मिथ्या पाखण्ड बन्धन हैं इनसे तो आत्मा अयुक्त ही है और इसी प्रकार संपूर्ण विश्व के चराचर नाम रूप वाली आकृतियों से भी आत्मा स्वतन्त्र है क्योंकि असन्त रूप जो माया है उसमें सन्त रूप से आत्मा सर्व व्यापक है अर्थात जो इस प्रकार एक यथार्थ कर के यथार्थ स्वरूप पवित्र माया मल से रहित शुद्ध निर्मल आत्मा है वही मुक्त स्वरूप अर्थात अनंत नाम रूप स्वरूप वाला वन्तः आदि और अन्त से रहित मैं ही केवल आत्मा हूं कि सब प्रकार के नाम रूप का भास मेरे ब्रह्म चेतन स्वरूप में ही कल्पित है ऐसे तू जान ॥ ३ ॥

कथमिह देह विदेह विचारः कथमिह राग विराग विचारः ॥
निर्मल निश्चल गगनाकारं स्वयमिह तत्त्वं सहजाकारम् ॥ ४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

कथम् कैसे किस प्रकार से इह इस आत्मा में देह विदेह विचारः किये देह वाला है या देह से स्वतन्त्र है इस प्रकार का विचार हो सकता है और कथम् इह राग विराग विचारः कैसे इस आत्मा में राग और विराग का ही विचार कि आत्मा राग वाला है हो सकता है क्योंकि आत्मा निर्मल निश्चल गगनाकारं निर्मल है निश्चल है और आकाशवत एक ही आकार में व्यापक है अर्थात जो सर्व व्यापक आत्मा है यह स्वयं हि तत्त्वं सह अज अकारम् प्रत्यक्ष प्रमाण में निश्चय स्वरूप यथार्थ रूप में जो सह नाम माया विश्व विराट का स्वरूप साकार रूप है यही एक अज नाम में महा पति हरि बन माही हर निष्कलङ्क निर्दोष दश प्रकार के दश अवतारों के रूप में एक ही मुख्य अवतार दशमावतार के स्वरूप में नः कलङ्क अवतार अकार ॐ कार एक ही आत्मा स्वरूप मेरा है ऐसे तू जान ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

## आरती ।

हे मनु! हे दशमावतार नः कलङ्क स्वामी हरिहर महिर जगत पति! तू निश्चय करके जान कि इस आत्मा में देह और विदेह का कोई विचार कि ये आत्मा देह वाला है या कि देह से रहित है इस प्रकार का नहीं है और नहीं इसप्रकार का ही विचार है कि ये आत्मा राग वाला है या राग से रहित विराग वाला है क्योंकि ये तो निर्मल निश्चल है औस आकाशवत व्यापक है और प्रत्यक्ष प्रमाण में है निश्चय स्वरूप आत्मा तू आप ही यथार्थ है अर्थात माया के साकार रूप में अमर पति नष्कलङ्क ब्रह्म अवतार महिहर जगत पति अपने ही आप आकार रहित एक ही ॐकार अकार शब्द कोश रूप बना हुआ है और सर्वत्र व्यापक है और फिर स्वभाव से ही सहजाकार अपरम पार अपूर्व महिमां औत अपूर्व स्वरूप वाला है इस प्रकार तू अपने को जान ॥ ४

कथमिह तत्त्वं विन्दति यत्र रूपमरूपं कथमिह तत्र ॥
गगनाकारः परमो यत्र विषयीकरणं कथमिह तत्र ॥ ५ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

कथम् इह तत्त्वं विन्दति यत्र - किस प्रकार से इस आत्मा का यथार्थ स्वरूप जानने में आवे जबकि ये आत्मा - रूपम् अरूपम् रूप और अरूप दोनों ही नहीं रखता है कथम् क्योंकि हि तत्र निश्चय स्वरूप है ये और चेतन है ये आत्मा और गगनाकारः परमः यत्र केवल गगन को आकार वाला एक ही परं श्रेष्ठ चेतन ब्रह्मात्मा है तो इस चेतन आत्मा को विषयीकरणं विषयभूत अर्थात वश में करने वाला कथं कौन है कहां है कैसा है वह महि हे मही एक निश्चय स्वरूप तत्र यथार्थ चेतन

### आरती ।

हे मनु! चेतन ब्रह्मात्मा में रूप और अरूप का कोई भी तत्त्व भाव नहीं होता है फिर किस प्रकार से आत्मा का यथार्थ स्वरूप देखने तथा जानने में आवे जबकि ये आत्मा चेतन है और कैसा चेतन है कि निश्चय करके एक ही गगन स्वरूप आकार वाला है अर्थात एक ही परम श्रेष्ठ ब्रह्म चेतन है तब उस ब्रह्म चेतन में कि जो केवल है विषयीकरण व्यवहार कैसे हो सकता है और वह चेतन को वश में करने वाला कौन है कहां है कैसा है हे महेश्वरी नः कलङ्क आत्मा वह तू आप ही महि नाम रूप में एक निश्चय स्वरूप से और यथार्थ चेतन स्वरूप से व्यापक है कि तेरे केवल ही केवल श्रेष्ठ चेतन स्वरूप के अन्य कहीं भी कुछ नहीं है और इसी का नाम है आत्मा के अनंत रूप दिगम्बर स्वरूप को देखना और चेतन स्वरूप का जानना ॐ हं ॐ ॥ ५ ।

गगनाकारनिरन्तरहंसतत्त्वविशुद्धनिरञ्जनहंसः ॥
एवं कथमिह भिन्नं विभिन्नं बन्धविबन्धं विकारविभिन्नम् ॥ ६ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

गगनाकार निरन्तर हंसः - आत्मा गगन के तुल्य निरन्तर हंस रूप है और तत्त्व विशुद्ध निरञ्जन हंसः यथार्थ में विशेष करके माया मल से रहित है और एवम् इसलिये कथम् इह किसी प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी ये आत्मा भिन्न विभिन्नं भिन्न भिन्नता रूपी जो द्वैत भाव की मिथ्या माया प्रतीत है इस प्रकार से भिन्न भिन्नता वाला नहीं है एक ही केवल अद्वैत स्वरूप है और इस आत्मा में बन्धविबन्ध विकार विभिन्नम् बन्धन और विबन्धन का भी विकार है अर्थात अद्वैत चेतन में इस प्रकार का भी कोई भेद नहीं है मुक्तरूप है

आर्य ।

हे मनु ! ब्रह्म चेतन आकाशवत व्यापक है नित्य है और हंस रूप से निर्मल है परं श्रेष्ठ है शुद्धस्वरूप है और इस लिये इस आत्मा में किसी प्रकार से भी द्वैत रूप वासना भिन्नता रूप की नहीं है क्योंकि आत्मा एक भिन्नता से रहित है अद्वैत स्वरूप है कि जिसमें बन्धन और विबन्धन दोनों का विनाश है अर्थात इस आत्मा में बन्ध विबन्ध का भी व्यवहार नहीं है सब से स्वतन्त्र है और वही तू आप है ऐसा जानो ॥ ६ ॥

केवल तत्त्व निरन्तर सर्वं योगं वियोगौ कथमिह गर्वम् ॥
एवं परं निरन्तर सर्वं एवं कथमिह सारं विसारम् ॥ ७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

केवल तत्त्व निरन्तर सर्वम् - केवल एक शुद्ध स्वरूप आत्मा ही माया मल से रहित नित्य सर्वरूप है सर्वत्र व्यापक है योगं वियोगौ कथम् इह गर्वम् - संयोग और वियोग का किसी प्रकार इस आत्मा में माया रूपी अहंकार नहीं है एवम् परम् निरन्तर सर्वम् - इस लिये श्रेष्ठ रूप से एकरस सर्वत्र व्यापक है और एवम् कथम इह सारं विसारम् इस प्रकार किसी प्रकार का आत्मा में सार और विसार भाव भी नहीं है

आर्य ।

हे मनु - एक आत्मा ही केवल रूप सर्वत्र व्यापक है और नित्य है उसमें किसी प्रकार के संयोग और वियोग का कोई व्यहार अर्थात मायारूपी अहंकार किसी प्रकार नहीं है अर्थात जन्म या मरण वा आवा गमन की कोई कल्पना आत्मा में नहीं है क्योंकि आत्मा श्रेष्ठ रूप से कि जिसमें नहीं है सार विसार की कोई गम्य एक रस ही सर्वत्र व्यापक है ॥ ७ ॥

गगनं शुद्ध निरन्तर सर्वं किमपि रङ्ग न संग विहंगम् ॥
सत्यं सत्यं निरञ्जन सर्वं केवलमेकं निष्कलङ्की परमम् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

गगनम् शुद्ध निरन्तर सर्वम् - आकाश वत निर्लेप एक रस सर्व रूप आत्मा है और किमपि कुछ भी रंग न संगं रंग नहीं है उसका क्योंकि निसंग है और विहंगम् विहंगम रूप ही आत्मा है और सत्यं सत्यं निरञ्जन सर्वम् - सत्य ही सत्य है और माया मल से रहित है और सर्वत्र व्यापक है और केवलम् एकं निः कलङ्की परमम् - केवल स्वरूप में एक ही निष्कलंक परम श्रेष्ठ आत्मा है ।

आर्य ।

हे मनु ! आकाश की तरह निर्लेप एकरस सर्वरूप आत्मा है कि जिस में न तो कोई कुछ रंग है और नहीं कुछ आत्मा के संग ही है इस प्रकार आत्मा विहङ्गम रूप है अर्थात चेतन है और सत्य ही सत्य माया मल से रहित है और सर्वत्र व्यापक है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सो जब आत्मा इस प्रकार स्वतन्त्र है तब आत्मा में सत्संग और इस से विलक्ष जो कुसंग है होही नहीं सकते हैं इसलिये
120 आत्मा केवल स्वरूप में एक ही निर्दोष निष्कलंक नाम परम श्रेष्ठ है और वही मैं आप हूं ऐसा जानो ॥ ८ ॥

केवल[1] तत्व निरञ्जन सर्वं गगना[2]कार निरन्तर शुद्धम् ॥
कथमिह[3] संग[4] विसङ्गं[5] सत्यं कथमिह[6] रंग[7] विरङ्गं[8] स्वम्[9] ॥ ९ ॥
योग[10] वियोगै[11] रहितो[12] योगी[13] भोग[14] विभोगै[15] रहितो[16] भोगी[17]
एवं[18] चरति[19] हि[20] मन्दं[21] मनसा[22] कल्पित[23] महजानन्दम्[24] ॥ १० ॥

## पदच्छेद शब्दार्थ ।

केवल[1] तत्व निरञ्जन सर्वं - केवल एक आत्मा यथार्थ रूप ही सर्व स्वरूप है और गगना[2]कार निरन्तर शुद्ध आकाशवत स्फटरस पर शुद्ध है और कथम्[3] इह[4] संङ्ग[5] विसङ्गं[6] सत्यं किसी प्रकार का इस आत्मा में सत्संग और कुसंग नहीं है क्योंकि आत्मा ही सत्य स्वरूप है इसलिये कथम्[7] इह[8] रंग[9] विरंगम्[10] स्वम्[11] किसी प्रकार का इस आत्मा में रंग और विलक्षण रंग भी नहीं है ऐसा ये आत्मा है और फिर भी योग[12] वियोगै[13] रहितः[14] योगी[15] - संयोग और वियोग से रहित है अर्थात स्वतन्त्र है इस प्रकार का योगी ये आत्मा है और भोग[16] विभोगै[17] रहितो[18] भोगी[19] - सामान्य भोग और विशेष भोग अर्थात हित और अहित से भी स्वतन्त्र है इस प्रकार का भोगी ये आत्मा है और एवं[20] चरति[21] हि[22] मन्दं[23] मन्दम्[24] ये आत्मा इस प्रकार विचित्र चेतन है कि विचरता है निश्चय करके धीरे[25] धीरे और विचरन गति है इसकी निश्चल रूप कि नहीं प्रतीत होती है मन्द से मन्द भी सो मनसा[25] माया रूपी मन करके जो कल्पित[26] प्रकट प्रतीत रूप संसार है ये सहं[27] नाम माया का ही रूप है कि जो अज[28] नाम आत्मा की एक ही आनन्दम्[29] आनन्द रूप प्रसन्नता स्वरूप हर्ष शोक रहित मायातीत माया है

## आशय ।

हे मनु ! श्रेष्ठ आत्मा सर्व स्वरूप है और आकाश की[1] नरह निर्मल है तब ही इस आत्मा में न तो सत्संग है और नहीं ही किसी प्रकार का कोई कुसंग है केवल आत्मा ही सत्य स्वरूप है इसलिये आत्मा में किसी रंग अर्थात विलक्षण रंग अर्थात नाम रूप कङ्कर पत्थर मिट्टी रोड़ा सोना चांदी राजा प्रजा कुत्ता बिल्ली काग हंसादिक की भी प्रतीत नहीं है क्योंकि ये सब मिल कर ही जो एक रूप है वही सर्व रूप आत्मा का है सो ऐसा जो आत्मा है उसी का नाम योगी है कि सर्व प्रकार के योग अर्थात संयोग रूप होने पर भी सर्व प्रकार के[2] संयोगों से वियोग रूप में स्वतन्त्र ही है अर्थात मुक्त स्वरूप मुक्त है कि नहीं है और इसी का नाम भोगी है कि सर्व प्रकार के मायारूपी भोगों के भोग भोगने पर भी भोग भोगने वाला नहीं है अर्थात मुक्त है इसलिये विचित्र चेतन इस आत्मा का ही नाम है और इस विचित्र चेतना का नाम ही मनसा अर्थात माया है सो माया रूपी मन करके ही ये सर्व कल्पित संसार जो प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है सहं नाम साकार और भिन्नाभिन्न रूप में देखा जाता है क्योंकि साकार रूप का नाम ही माया ही माया है और इस माया का नाम ही अज है कि नहीं है आदि और अन्त इसका क्योंकि ये अनन्त है और आत्मा का एक ही अजन्य स्वरूप है अर्थात ये ही आत्मा की स्व आनन्द रूप प्रसन्न स्वरूप हर्ष शोक रहित महिमा तथा माया है और वही आत्मा तू आप है ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बोधविबोधैः सततं युक्तो द्वैता द्वैतैः कथमिह मुक्तः ॥
सहजो विरजाः कथमिह योगी शुद्धो निरञ्जनसमरसभोगी ॥ ११ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

बोधविबोधैः ज्ञान और अज्ञानको रखते हुए अर्थात द्वैत माया प्रपंचको रचते हुए भी सततंयुक्तः सत्य रूप जो एक ही आत्मा है निरन्तर अयुक्त है द्वैतः सर्व माया प्रपंच रूप युक्त होने पर भी क्योंकि अद्वैतैः एक ही आत्म और कथम् इह कैसा है ये आत्मा मुक्तः मुक्त स्वरूप है और सर्वोपरि स्वतन्त्र है और सहजः नाम देवी जो साकार मायारूप सृष्टि संसार है इस से अर्थात माया रूपी स्वभाव से ही विरजाः स्वतन्त्र है आत्मा और फिर कथम् इह कैसा है ये आत्मा योगी एक ही अगम स्वरूप स्वप्रकाश आकाश रूप है कि जो शुद्ध निरञ्जन समरस भोगी शुद्ध है माया मल से रहित है अर्थात सर्वव्यापी स्वरूप होने से ये अपने आत्मानन्द का ही भोगता है

आशय ।

हे मनु ! आत्मा में न ज्ञान है न अज्ञान है केवल सत्य रूप एक ही निरन्तर स्वरूप है कि जिसमें द्वैत का नाम ही नहीं है क्योंकि स्वयं अद्वैत स्वरूप मोक्ष रूप है और माया रूपी संसार से स्वतन्त्र है अर्थात कैसा है ये आत्मा कि इसीका नाम योगी है और ये योग रूप में एक ही अगम रूप स्वप्रकाश स्वरूप स्वतन्त्र आत्मा है कि मायामल से रहित शुद्ध श्रेष्ठ है और सर्वव्यापकता रूप से आपही अपने आत्मानंद को भोक्ता है सो ऐसा जो एक ही आत्मा है वही अपने आत्मानंद का भोक्ता तू आपही है ऐसे तू अपने स्वरूप को जान ॥ ११ ॥

भग्नाभग्नविवर्जितभग्नो लग्नालग्नविवर्जितलग्नः ॥
एवं कथमिह सारविसारः समरसतत्त्वं गगनाकारः ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

भग्नाभग्न विवर्जित भग्नः - आत्मा में व्यष्टि और समष्टि का व्यवहार नहीं है अर्थात आत्मा रहित है खण्ड २ के भाव से और इसी प्रकार लग्नालग्न विवर्जित लग्नः लग्न और अलग्न से भी रहित है अर्थात आत्मा की किसी से लग्न भी नहीं है एवम् कथम् इह सार विसारः इसलिये किसी प्रकार से इस आत्मा के सार स्वरूप का विसार अर्थात विनाश नहीं है क्योंकि समरस तत्त्वम् गगन आकारः आत्मा एकरस है परम श्रेष्ठ है आकाश रूप में आत्मा का ये सब कुछ जो दृश्य भान होता है एक ही आकार स्वरूप है

आशय ।

हे मनु ! चर्म नेत्र दृष्टि से आत्मा का यथार्थ स्वरूप जो आकाश के समान अनंत और अपार है यथार्थ रूप से जानने और देखने के अयोग्य है क्योंकि आत्मा नाना कर्ता भोक्ता रूप वाला नहीं है और नहीं नाना रूप आकृति में किसी एक आकृति में लगा हुआ अर्थात जुड़ा हुआ ही है क्योंकि आत्मा केवल सार स्वरूप है इसलिये आत्मा के सार स्वरूप का विनाश भी नहीं है । सो इस करके जैसे कि आकाश का ठीक २ जान लेना कठिन है इसी प्रकार बिना दिव्य दृष्टि के आत्मा और आत्मा के सार स्वरूप को जान लेना भी बहुत कठिन है क्योंकि वह दिव्य दृष्टि यही है कि एकरस आत्मा परम श्रेष्ठ है और जो कुछ दृश्य है वह सब आकाश रूप अकार में ही एक [redacted]

(जिस से आत्मा देखा जाता है)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५२ अरवण्ड नाथ विश्वामित्र पराशर आदि आत्मा हूं कि इसी बातके दृढ़ करके जान लेने का नाम है आत्म ज्ञान और इसी का नाम है सार स्वरूप आत्माके निश्चय स्वरूपको देखना और परम श्रेष्ठ आत्मानन्द का पाना और ठीक ठीक दिव्य दृष्टिसे आत्मा को देख लेना और मृत्युके भय से स्वतन्त्र हो जाना अर्थात अपने आत्म दिगंबर स्वरूपको फाड़कर उसमें समाजाना और सर्व शक्तिमान होने का सार लक्ष भी दिखाना और आप ही देखना सो हे मनु तू इसप्रकार अपने स्वरूपको देख ॥ १२ ॥

सततं सर्वे विवर्जित युक्तः सर्वं तत्त्वे विवर्जित मुक्तः ॥
एवं कथमिह जीवत मरणं ध्याना ध्यानैः कथमिह करणम् ॥ १३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

सततं सर्वे विवर्जित युक्तः - सत्यस्वरूप आत्मा संपूर्ण सर्व रूप होने पर भी रहित है युक्ति अर्थात सर्व प्रकार के योगों से और सर्वम् तत्त्वे संपूर्ण तत्त्वों से भी अर्थात इन्द्रियों से भी वह शुद्ध स्वरूप आत्मा विवर्जित मुक्तः रहित है मुक्त है एवं कथम इह इसलिये किसी प्रकार भी ये आत्मा जीवत मरणं जीवे और मरने वाला नहीं है अर्थात आत्मा में मौत और जीवा अर्थात आना और पेरा होना अर्थात आवा गमन करना दोनों से किसी एक का भी व्यवहार नहीं है तो फिर आत्मामें इस प्रकार का कि आत्मा - ध्याना ध्यानैः - ध्यान और ध्यानाभाव का करने वा रखने वाला है ऐसा जो कि व्यवहार है कथम् कैसे होसकता है इसमें और इह करणम् ये आत्मा होसकता है कर्ता नहीं है कर्ता

आइटो ।

हे मनु ! आत्मा में आवा गमन नहीं है इसलिये परश्रेष्ठ आत्मा कर्ता और भोक्ता नहीं है और आत्मा में कोई ध्यान और उस ध्यान का अभाव भी नहीं है क्योंकि ये सर्व प्रकार के तत्त्व भावों से स्वतन्त्र अर्थात मुक्त है और सर्व प्रकार के योग और युक्तियों से भी स्वतन्त्र है क्योंकि संपूर्ण सर्व रूप होने पर भी सत्य स्वरूप है अर्थात आत्मा ज्ञान और अज्ञान रूप में जो संसार है इस संसार के ज्ञान और अज्ञान रूपी पदार्थों से प्रयोजन न रखते हुए अपने आत्मानन्द में ही मग्न है अर्थात रमा हुआ है और प्रकृति महत्त्वादि के विकारों से वह आत्मा स्वतन्त्र ही रहता है इसलिये जीवन मुक्त और विदेह मुक्त से भी आत्मा स्वतन्त्र है फिर उसमें उत्पति और मरण कैसे हो सकते किसी प्रकार भी नहीं और ध्यान किस का होता और कौन करता होई ध्यान भी नहीं बन सकता और न कोई ध्यान का करने वाला ही होसकता और नहीं ध्यान का कोई प्रयोजन ही है सो हे मनु नहीं है जिसमें कोई ध्यान और नहीं है जो ध्यान करता और स्वतन्त्र है जीवन मुक्त व विदेह मुक्त से और मुक्त है प्रकृति के सब तत्त्व रूप कार्य और कारणों से और नहीं उत्पति और मरण जिसको और नहीं हो सकती है उत्पति और नहीं मरना है जो कभी भी ऐसा जो कि एक ही सत्य रूप सत्य स्वरूप दिगंबर आत्मा है वही मैं हूं इस प्रकार तुम अपने को जानो अर्थात वह सत्य ही सत्य आत्मा जो संपूर्ण युक्ति वा योगों से स्वतन्त्र है और सर्व प्रकार के तत्त्वों से मुक्त है और जिसको किसी काल में भी जीने का हर्ष और मरने का भय वा शोक नहीं है क्योंकि मरना और जीना भी उसमें नहीं है वही मैं हूं ॥ १३ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रजालमहिं संसृति सर्वं सर्वमरुमरीचिका भाव वितथ्यम् ॥ ४२३
अविनाशमेकमचलं केवलं वर्तते सर्वं कल्की नः कलङ्क अयं ॥ १४ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

इन्द्रजालम् अहिं संसृति सर्वम् - इन्द्रजाल के समान अहिं नाम आठ प्रकार की आकृति में जैसे कि भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं एक ही असत्य अहंकार रूपे पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश और मन बुद्धि का है वह बादल बिजली के रूप में एक ही निश्चय करके संसृति अर्थात इस संसार का सर्वत्र एक ही माया रूप है और ये सर्व संपूर्ण संसार मरुत नाम वायु के समान ऐसा ही है जैसे मरुमरीचिका मृग को दूर से बालू को देख कर जल का भ्रम और भाव वितथ्यम् धोका और धोका भी मिथ्या होता है क्योंकि अविनाशम् एकं नाश से रहित जो एक ही आत्मा है वही अचलं केवलम् निश्चल रूप से केवल ही वर्तते सर्वम् वर्तमान है सर्वत्र व्यापक है और वही कल्की कलङ्क रूपमें प्रकट प्रतीत होते हुए भी नः कलङ्क नाम में एक ही निर्दोष निष्पाप नः कलङ्क नाम आत्मा है और वही अटाम् मैं आप ही हूं ॥

## आशय ।

हे मनु ! ये सब जगत इन्द्र जाल के समान झूठा है अर्थात अहिं रूप में आठ प्रकार से निश्चय करके बादल और बिजली के रूप में इस संपूर्ण संसार का रूप है और ये सब इसी प्रकार से मिथ्या है जैसे कि वायु के चलने से बालू के चमकते हुए कण वास्तव में बालू होते हैं किंतु प्यासे मृगों को चन्द्रमा के उदय होने पर वही कण पानी के समान दूर से प्रतीत होने लगते हैं किंतु जब मृग उन के पास जाते हैं तो वहां पानी का लेश भी नहीं पाते ऐसा ही ये संसार है कि प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है और नाना प्रकार से इस प्रकार का निश्चय होता है कि ये पुत्र ये स्त्री ये मित्र ये संबंधी ये भूमि ये शहर ये राज ये धन ये सेना सब कुछ पदार्थ मेरे हैं किंतु वह मेरा शत्रु है मेरे राज को लेना और धन को छीनने की इच्छा करता है बस इस प्रकार का निश्चय कर लेना ही भ्रान्ति के मूलक निश्चय है धोका है और इस धोके का नाम ही संसृति है कि नहीं है सार इस संसार में कोई पदार्थ क्योंकि जो सार है सार है वही एक ही आत्मा है कि अचल रूप से केवल है और वर्तमान है कि उसका किसी प्रकार से भी विनाश नहीं है वही एक आत्मा सर्व रूप से सर्वत्र फैला हुआ है और कल्की नाम कालरूपी दैत्य अर्थात जरा काल असुर के रूप में कि जो जाति वर्ण आश्रम गोरे काले राजा योगी नाम रूप का मिथ्या अभिमान एक ही अहंकार है दज्जाल रूप में दज्जाल है और पाप के नाम से इसने आत्मा को कि जो स्वतः ही निष्पाप है पापी और पापकर्ता बनाया हुआ है इस पाप के रूप में भी आत्मा कि जिसमें नहीं है किसी प्रकार का कोई पाप और नहीं है जिसकी जाति और नहीं है जिसका कोई रंग और नहीं है जिसका कोई राजा और नहीं है जिसमें कोई प्रजा और नहीं है जिसका कोई नाम और नहीं है जिसका कोई धर्म और नहीं है जिसकी कोई मर्यादा और नहीं है जिसमें कोई वेद कुरान आदि के से कोई एक भी धर्म पुस्तक और किसी प्रकार की कोई नीति श्रुति स्मृति और जो एक ही है सब नाम रूपों में क्या नाम है उस का श्री नः कलङ्क महिर जगत पति आत्मा और वही मैं हूं इस से तुम जानो ॥ १४ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म्मादौ मोक्षपर्यन्तं निरीहाः सर्वथा मयैव मनु इक्ष्वाकुः ॥
विवस्वानु कल्पयन्ति किंमु रागविरागश्च रविरादिमिहः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

धर्म्मादौ - धर्म से आदि लेकर - मोक्षपर्यन्तम् मोक्ष पर्यन्त जितने कि विषय हैं इन सब से ही निरीहाः स्वतन्त्र है और मुक्त है सर्वथा सर्वत्र व्यापी सर्व प्रकार की माया चेष्टाओं से स्वतन्त्र एक ही मयैव मेरा निश्चय स्वरूप आत्मा मनु इक्ष्वाकुः मनु नाम में एक ही माया का रूप कि जो है इक्ष्वाकु नाम में एक ही विनाश से रहित प्रकाश का भानु क्योंकि विवस्वानु नाम रवि अर्थात सूर्य कि जो बुद्धि का रूप है यही मनु नाम मन और मन नाम माया का स्वरूप है कि जो कल्पयन्ति कल्पना करता है अपने होने की - किंमु रागविरागः क्योंकि यही है राग और विराग करके युक्त माया चै और रवि नाम सूर्य अर्थात बुद्धि माया रूप कि जो माया के प्रकाश का हेतु है आदिमे इहैं अनंत स्वरूप आत्मा में नित्य है

आशय ।

हे मनु ! आत्मा प्रथम धर्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त अर्थात मोक्ष तक जितने विषय हैं सब से ही स्वतन्त्र है और सर्वत्र व्यापक भी है अर्थात व्यापक स्वरूप में आत्मा सर्व प्रकार की चिन्ता और चेष्टाओं से भी स्वतन्त्र है क्योंकि ये निश्चय स्वरूप आत्मा ही माया रूप में एक अविनाशी स्वरूप है कि जो एक ही ब्रह्म रूप में प्रकाश का भानु है और इसी का नाम विवस्वानु अर्थात विशेष कर के माया का कुत्ता है सो जो भी आकृति है वही विवस्वानु के नाम में माया रूप होने के कारण कुत्ते का रूप है और कुत्ता बुद्धि का रूप है और इसी का नाम मन है कि जो कल्पना करता है अपने होने की क्योंकि राग विराग के साथ अपने होने की कल्पना करना ही माया में माया का स्वान रूप है और रवि नाम बुद्धि कि जो इस प्रकार की माया के प्रकाश का हेतु है अनंत स्वरूप आत्मा में नित्य है इस लिये आत्मा कर्ता भोक्ता पने से और धर्म से लेकर मोक्ष तक जितनी कि इच्छा हैं सब से स्वतन्त्र है आत्मा की न तो माया रूपी पदार्थ से कोई प्रीति ही है और नहीं द्वेष ही है सो जो ऐसा आत्मा है वही सर्वत्र व्यापक मेरा ही निश्चय स्वरूप आत्मा है तुम इस प्रकार जानो और निश्चय करो कि जब आत्मा में न धर्म है न मोक्ष है अर्थात सब से स्वतन्त्र है तो वह आत्मा जो कि सर्वत्र व्यापक है मेरा ही निरन्तर निश्चय स्वरूप है कि जो जगत को शोधन तथा प्रकाश करने वाला इक्ष्वाकुः एक ही नाम एक ही नाम रखने हुए प्रकट करता है कि विवस्वानु विशेष करके कुत्तों के रूप में कल्पयन्ति जो प्रकट प्रतीत में प्रतीत होने वाला संसार है धोका है फिर कुत्तों की भांति आपस में राग और विराग किसलिये है माया के कुत्ते अर्थात शरीर रूपी मिथ्या माया आकृतियो तुम्हें बुद्धि रूप हो और नहीं समझते हो कि चेतन ब्रह्म आत्मा जो एक ही रवि नाम सत्य सूर्य है और सर्व प्रकार की माया का प्रकाश रूप है वह एक ही आत्मा है और वही मैं हूं कि सर्वत्र एक ही एक हूं और श्रुति प्रमाण में कैसा है श्रुति (( विन्दति विन्दति नहि नहि यत्र छन्दो लक्षणं नहि नहि तत्र । समरसमग्नो भावितपूतः प्रलपति तत्त्वं परमवधूतः )) अर्थात जिस चेतन में छन्द रूपी वेद भी वास्तव से सत्य नहीं है अर्थात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिस चेतन पदार्थको वेद भी यथार्थ करके नहीं जान सकते हैं अर्थात जो बुद्धि रूपमें ज्ञान का रूप है निश्चय करके नहीं प्रकट कर सकते हैं कि चेतन्य स्वरूप ब्रह्मात्मा कैसा है सो जो एक ही चेतन ब्रह्मात्मा है वह जानता है जानता है क्या कुछ है जानता है और कुछ भी नहीं है नहीं जानता है नहीं जानता है नहीं जानता है क्योंकि जो चेतन ब्रह्म है वही है एक आत्मा कि जो अपने ब्रह्मानंद में मग्न रहते हुए शुद्ध और श्रेष्ठ अवधूत है और वही मैं हूं इस प्रकार तुम अपने आप को का अपनी सत्य स्वरूप आत्मा को जानो और राग द्वेष से स्वतन्त्र होकर सर्वत्र एक ही आत्मा मानो अर्थात भिन्न भिन्न करके जिनने कि नाम रूप और शरीर हैं उन सबको एक ही देह रूपमें एक ही आत्म देह और दिगंबर आत्मा समझो और दृढ़ निश्चय करो कि यही है आत्मा यही है आत्मा श्रुति प्रमाण मेरा अपना आत्मा एक ही सत आत्मा श्रुति "शृण्वन्तु मनः वेदाहमेनम पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात । दिगंबरं विष्णुं तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अर्थात सुनो हे मनः मनु सुनो मैं ने उस अनंत स्वरूप आत्मा को अर्थात ब्रह्म चेतन को जो है आदि और अंतर रहित जान लिया है कि जो अन्धकार में अन्धकार का नाश करने वाला एक ही रूप सूर्य के सूर्य के प्रकाश का सूर्य है और वह एक ही दिगंबर नाम आत्मा है कि उसी को जान कर हे मनु मन मृत्यु पर विजय पाता है यही विधि है मोक्ष पाने की अर्थात अपने उपमा रहित एक ही दिगंबर आत्म ब्रह्म स्वरूप के जान लेने की इसके अन्य और कोई मार्ग नहीं और कोई मार्ग नहीं ॐ हं ॐ ॥ १५ ॥

## ८ - कर्म त्याग स्वतन्त्रता अष्टमो शिक्षा ।

आत्मनो आत्मैव अवधूत रूप वर्णन+

आशापाशविनिर्मुक्तः आदिमध्यान्तनिर्मलः ॥ आनन्दे वर्तते नित्यमकारस्तस्य नाम अवधूतः ॥ १ ॥

### पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आशापाश आशा रूपी फांसी से जो कि विनिः स्वतन्त्र है और मुक्तः मोक्ष रूप है अर्थात कभी भी जिसको बन्धन नहीं है और आदि मध्य अन्त निर्मलः आदि मध्य अन्त तीनों कालों से जो कि स्वतन्त्र ही है अर्थात निर्मल है और आनन्दे केवल आनन्द ही आनंद स्वरूप है और वर्तते नित्यम् वर्तमान है नित्य ही अकारम् साकार रूप से सर्वत्र सत्ता जो एक आत्मा है तस्य नाम अवधूतः तिस ही एक ही आत्मा का नाम अवधूत है ॥

### आदेश ।

हे मनु ! हे स्वामिकार्तिक ! हे जनक ! हे विक्रमादित्य ! हे राम ! हे कृष्ण ! हे दशरथ अनंत नाम और रूपों के एक ही अनामय रूप ! तू इस प्रकार जान कि आत्मा संसार के पदार्थों से जो भोग रूप में आशा रूप से फांसी का रूप है स्वतन्त्र है अर्थात उसकी किसी भोग पदार्थ में आशा नहीं है और जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति ये अवस्था भी उसमें नहीं हैं इन तीन प्रकार के विकारों से भी जो शुद्ध है और वर्तमान के अन्य भूत और भविष्यत जिसमें नहीं हैं और वृद्ध युवा कुमार पन भी जिसमें नहीं है और जो नित्य ही केवल स्वरूप है अर्थात साकार रूप में जैसी भी वर्तमान गति हो वह उसी गति में रहते हुए अपने ब्रह्मानंद स्वरूप में ही मग्न रहता है उसी का नाम अ, अक्षर रूप में आदि अनादि अवधूत है ॥ १ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वासना विवर्जितायेन वक्तव्यं च निरामयम् ॥ वर्तमानेषु वर्तेत वकारं तस्य नामवधूतः ॥ २ ॥

पदच्छेदः पदार्थ ।

वासना विवर्जितायेन वासनासे भी रहित है ये आत्मा और वक्तव्यम् च निरामयम् जो शब्दस्वरूप से ही चेतन ब्रह्म है अर्थात सर्व प्रकार के रोगों से भी स्वतन्त्र है यही मेरा आत्मा रूप है कि जो वर्तमानेषु वर्तेत - वर्तमान रूप में ही वर्तना है वकारम् विकार रूप में माया रूप होकर के सो ऐसा जो व॰ के अक्षर अर्थ में विकार मान साकार माया का रूप है तस्य नाम अवधूतः तिसी एक ही आत्मा का नाम अवधूत आत्मा है इसलिये सर्व साकार रूप सृष्टि मेरे एक ही आत्म स्वरूप का वकार है

आशय ।

हे मनु! वकार नाम माया का है और माया साकार रूप में सर्वत्र व्यापक है इसलिये इस सर्व साकार माया रूप का नाम आत्मा के अवधूत वकार के हैं क्योंकि आत्मा तो चेतन स्वरूप में शब्दस्वरूप से ही स्वतन्त्रता सहित इस विकार मान में व्यापक है और वासना से भी इस माया के अर्थात माया वासना से अर्थात इस माया के सर्व प्रकार के भोग पदार्थों से भी स्वतन्त्र है इसलिये इस विकार मान माया में शुभ और अशुभ कोई कारण और कार्य भी ऐसा नहीं है कि जो विकार से रहित है इसलिये ये माया साकार रूप जो आत्मा का वकार है इसका भी कभी नाश नहीं होता है किंतु आकृतियों का पलटा रूप ही होता रहता है कि एक प्रकार की आकृति दूसरे रूप में माया सहित चेतन ही चेतन बनी रहती है फिर विनाश किसका होता है और कर्ता कौन और भोक्ता कौन होता है कोई भी नहीं सो इस प्रकार से वकार अक्षर अर्थ में जो साकार माया का रूप है इसका नाम वकार आत्मवधूत है ॥ २ ॥

धूलिधूसरगात्राणि अष्टौ धूतचितो निरामयः ॥ धारणा ध्यान निर्मुक्तो धूकारस्तस्य नामवधूतः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

धूलि धूसर गात्राणी - धूल करके धूसे के समान अङ्ग अर्थात शरीर है जिस आत्मा का उसके हैं अष्टौ नाम में आठ रूप और वह आठों ही धूतचितः निरमल हैं माया मल से और चेतन हैं आठों एक ही स्वरूप में अर्थात निरामयः रहित हैं रोगों से और धारणा ध्यान निर्मुक्तः और धारण और ध्यान कर्तव्य से भी स्वतन्त्र हैं और धूकारः एक ही धूम शब्द आकार रूप हैं सो इस प्रकार जो एक ही चेतन आत्मा है तस्य नाम अवधूतः तिसी नाम अवधूत है

आशय ।

हे मनु! धूकार शब्द अक्षर के अर्थ गर्ज के हैं और गर्ज धूम शब्दार्थ में धूल रूप धूसे के समान आत्मा के अष्टकला रूपी एक ही शरीर के हैं कि जो निर्मल है माया मल से और चेतन एक ही रूप स्वरूप आत्मा है स्वतन्त्र सर्व प्रकार के रोगों से अर्थात नहीं है जिसमें धारणा और ध्यान का कोई कर्तव्य कर्म रूप से क्योंकि मोक्ष है आत्मा सर्व प्रकार के कर्मों और कर्मों के फल भोगों से क्योंकि सर्वत्र व्यापक है इसलिये धू अक्षर अर्थ में ऐसी आत्मा का नाम अवधूत है ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

त्वमचिन्ताधृता येनचिन्ताचेष्टाविवर्जितः। तमोऽहंकारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्यनामवधूतः॥ ४॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

त्वामचिन्ता धृता येन- यथार्थआत्मा अचिंत रूप में स्थिर और स्थित स्वरूप है सो ऐसा जो आत्मा है
वह चिन्ता चेष्टा विर्जितः चिन्ता अर्थात सर्व प्रकार के संदेहों और भयों से स्वतन्त्र है और तमोऽहंकार
निर्मुक्तः तमः रूप जो अज्ञान है और अहंकार रूप जो अभिमान है नहीं है ये भी उस आत्मा में क्योंकि मुक्त
है इनसे भी आत्मा तकारः यथार्थ शुद्ध अकार रहित होने के कारण तस्यनामवधूतः तिसीका नाम अवधूत है

आइय।

हे मनु! तकार अक्षर शब्द के अर्थ यथार्थ और शुद्ध के हैं सो ऐसा जो यथार्थ अचिन्त आत्मा है और नहीं है
चिन्ता और चेष्टा किसी प्रकार की और नहीं है जिसमें अज्ञान और अहंकार भी वही एक तकार के अक्षर अर्थ
में एक ही अवधूत आत्मा है इसप्रकार तुम जानो ॥ ४॥

निष्कलङ्कं सर्वगतं शान्तं बोधात्मकमजं शुभांहरि ॥
तदेकभावनं कर्मत्यागमनः सर्वेकं हि संन्यस्थो श्रुतिः ॥ ५॥

पदच्छेदः शब्दार्थ।

निष्कलङ्कम् निर्दोष है आत्मा और सर्वगतम् सर्वत्र एकरस है और शान्तम् शान्तिः स्वरूप है
और बोधात्मकम् ज्ञान स्वरूप है और अजम जनम रहित है और शुभांहरि शुभ रूप में मनोहर
स्वरूप है और तत् एक यथार्थ करके एक ही भावनं- स्वभाव वाला है और इसी का नाम कर्म
त्याग मनः अक्रिया मनु है कि जो सर्वेकं हि सर्वत्र एक ही निश्चय स्वरूप से व्यापक है सो
इसी एक स्वरूप को निश्चय करके देखने का नाम संन्यस्थः संन्यास रूप में अर्थात निराशत रूप
में श्रुतिः ज्ञानेद्रिय चक्षु आंख श्रोत्र कान त्वक खाल घ्राण नाक रसना रस है माया है ॥

आइय।

हे मनु! निष्कलंक आत्मा सर्वत्र एकरस है शान्ति स्वरूप है बुद्धि ज्ञान रूप है और जन्म रहित
अविनाशी है और पवित्र है विष्णु रूप है एक ही श्रेष्ठ स्वभाव वाला है इसी बात के जान लेने का नाम
कर्म त्याग अर्थात संन्यास है मनु निश्चय करके यही कर्मत्याग अर्थात संन्यास रूप आत्मा
सर्व रूप से सर्व व्यापकता के साकार स्वरूप में फैला हुआ है और इसप्रकार इस आत्मा के अनेक
आंख नाक कान जिह्वा और त्वचा के रूप में एक ही शरीर रूप है और इस एक ही शरीर रूप
का नाम संन्यासी अर्थात निश्वार्थ रूप में नाना प्रकार के पशु पक्षी के रूपों और मानस देहादिक
के रूपों में सर्वत्र शुनने सूंघने चखने मिलने और देखने के लिये अनंत रूप में अनंत शक्ति रूप
ये आत्मा है और आत्मा कर्मेन्द्रिय बना हुआ है कि जो उपस्थ गुदा हस्त पाद और जिह्वा के रूप में नाना
प्रकार के कर्म ज्ञानेद्रियों के अनुसार करता ही रहता है इसलिये आत्मा कर्म ही कर्मरूप है और कर्म के
रूप में नाना प्रकार के नेत्र रूप नाक कानादिक रखते हुए नाना प्रकार से कार्य कारण बना हुआ है और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्म ही कर्म करता रहता है और फिर भी मुक्त ही है इसलिये कर्म करना श्रेयार्थ और न करना निश्चार्थ धर्म है
धर्म का नाम है और निश्चार्थी ही जीवन मुक्त है और साकार शरीर के नष्ट होने पर विदेह मुक्त कहा
जाता है इसलिये ऐसे आत्मानंदी स्वरूप का नाम कि जिसको कोई एक कर्म करके फिर किसी भी
कर्म करने की अविश्यक्ता नहीं रहती है हरिहर महिहर जगत पति नष्कलङ्क विक्रमादित्य कहा
रूप आत्मा
जाता है कि जो अकाल रूप में एक ही त्रिकाली अद्वैत दृष्टि का नाम है ऐसे तुम अवधूत आत्मा
जानो ! इसप्रकार अपने आपको शिक्षा उपदेश करके हे निष्कलंक देव नू फिर अपने आपको
कहता है कि आत्मा का अद्वैत रूप और अद्वैत धर्म तो सत्य है किन्तु त्रिकाल कर्म में इसी का नाम
राम अर्थात रं मं रं मं है कि जिसके अर्थ त्रिकाल रूप में धर्म और मर्यादा के हैं सो धर्म और मर्यादा
एक ही अर्थ से आत्माद्वैतानंद का नाम है इसलिये हे आनंदघन तू आपही अपने से तर्क करता है कि
जो ऐसी धर्म रूप मर्यादा हैं कि जो अद्वैत आनंद रूप हैं क्या हैं सो आप ही अपने तर्क के उत्तर
रूप में अपने को आत्मा के धर्म और मर्यादा के विषय में ये शिक्षा देता है ॥ ५ ॥

९-नोमो ध्रुव धर्म आत्मनो आत्मयी बोधकर्म शिक्षा ।

अर्थात
रामधर्म अर्थ परं मर्य्यादा शिक्षा

कर्म रूपमे आत्मनो धर्म वर्णने ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११
एको हमद्वय द्वयहं चित्रो सर्वत्रा उत्तानपादप्रियव्रतः ॥
१२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१
ध्रुव ध्रुवसदैवो धर्मो मर्य्यादा अहमेवहि न संशयः ॥ १ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

१ २ ३
एकः अहम अद्वय एक ही हूं मैं आत्मा एक ही और द्वय अहम् दूसरा भी हूं मैं ही
४
क्योंकि चित्रः नाम चित्र आकारादिक के रूप में साकार माया रूप से सर्वत्रा सब स्थानों में सब
५ ६ ७ ८
जगह ही है मेरा फैला हुआ रूप उत्तानपाद हाथों और पैरों के रूपों में प्रियव्रतः - माया के रूपमें
आकार रहित चेतन का चेतन ही चेतन जो है सब साकार रूप कि जो द्वैत रूप में प्रकट है भिन्न भिन्न
कर के वही है सब एक अद्वय रूप इसलिय ध्रुवम धारते ही अर्थात मूलते ही ध्रुव सदैवः ध्रुव
नित्य और इसी एक ध्रुव नाम का नाम है धर्मो मर्य्यादा धर्म और मर्य्यदा भी क्योंकि धर्म और
मर्य्यादा जिसका नाम है येनो अहम एव हि मैं ही आत्मा हूं निश्चय कर के निश्चय स्वरूप यही है
और न संशयः नहीं है इस में किसी प्रकार से किसी प्रकार की शंका और विचार भी ॥

आशय ।

हे मनु! माया आकृति ! मैं आत्मा एक ही हूं एक ही और फिर दूसरा भी हूं मैं एक ही क्योंकि नाम रूप वाले
आकारादिक रूपों में जो भिन्न भिन्न करके नानाकर्ता भोक्ता रूप प्रतीत होते हैं ये सब जो कि सर्वत्र फैले
हुए नाम रूपीपदार्थ देखे जाते हैं ये सब हाथ और पैरों के रूप में माया के रूप में आकार रहित चेतनस्वरूप
मेरा ही सब साकार रूप द्वैताद्वैत रूप में जो पृथक २ करके प्रकट प्रतीत में प्रतीत होता है ये सब ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एकही अद्वय रूप मेरा है और मेरे इसी रूप का नाम ध्रुवम नाम से आदि अनादि नामें एकही नाम कि जो सदैव रहने वाला है ध्रुव है और मेरे इसी ध्रुव नाम के अर्थ धर्म और मर्य्यादा के भी हैं क्योंकि मैं आपही निश्चय करके निश्चय स्वरूप से ध्रुव धर्म और ध्रुव मर्य्यादा भी हूं और इसमें किसी प्रकार के विचार तथा शंका की भी अविषय वक्ता नहीं है क्योंकि ध्रुव धर्म क्या है इसको इस प्रकार से समझो कि " द्वीपो महां द्वीपो भूमन्तरमकाशो परमकाशः मयैव अव्ययं नर पतिः ॥ पुत्रः न पुत्रि पिता न माता केवलं ध्रुव सन्तं मयेकं आत्मो सर्वेकं पुरुषोस्त्री " ॥ श्रुति प्रमाण द्वीप नाम स्थान और देश का है तो देशों के महाँ देशों में भूमि से दूर जो आकाश है और आकाश में श्रेष्ठ जो आकाश है वही मेरे निश्चय स्वरूप का अविनाशी अर्थात नाश से रहित निरपति अर्थात श्रेष्ठ स्वरूप है कि जिस स्वरूप में नहीं पुत्र पुत्रि पिता माता का कोई व्यवहार क्योंकि केवल हूं मैं इसलिये ध्रुव सन्त के नाम में मेरा एकही आत्मा नाम है कि सर्व रूपों में मैं आप ही पुरुष और आप ही स्त्री बना हुआ हूं बस इसी बात का नाम ध्रुव धर्म और मर्य्यादा है किन्तु इसीको ध्रुव धर्म कथा किस रूप से है मनु तू श्रवन करके निश्चय कर कि ध्रुव धर्म क्या है ॥ १ ॥

कथा न कथनो सर्वे अतीतं चत्रभुजं हि सिद्धं ध्रुवम् ॥
रवि विष्णा शिवं व निरन्तर कर्मो पर ह्मेव निरन्तर ॥ २ ॥
कर्माक्रियं हं स्नेह निरन्तर अचल पर ध्रुवं व निरन्तर ॥
मान रहित पर सन्त निरन्तर अटल पादं म भव निरन्तर ॥ ३ ॥
विश्वाकारं व निरन्तर भिन्नाभिन्न अहमेव निरन्तर ॥
कर्मो धर्मो सर्वं व निरन्तर प्रवृत्त पृवृत्तेव निरन्तर ॥ ४ ॥
गा हि निवृति मुक्त निरन्तर धर्म मिति ध्रुव धर्मे निरन्तर ॥
केवल निश्चल परं निरन्तर कृपा सिंधु निर्वैर निरन्तर ॥ ५ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

कथा न कथनः नहीं है कथा कोई भी कथन करने के योग क्योंकि सर्व अतीतं सर्व से स्वतन्त्र ही है आत्मा चत्रभुजम् पुरुषार्थी चतुर्भुजी रूप से क्योंकि हि निश्चय करके सिद्धम् ध्रुवम् सत्य स्वरूप ध्रुव रूप आदित्य है आत्मा और रवि नाम ब्रह्मा सर्व रचन रूप और विष्णु नाम विष्णु सर्व रक्षा रूप और शिवं कल्याण स्वरूप स्व निश्चय करके निरन्तर नित्य कर्मः नाना काम रूप और परम् श्रेष्ठ रूप सो जो ऐसा आनंद रूप आत्मा है अहम् स्व निरन्तर - वही मैं आप हूं नित्य ॥ २ ॥ और कर्म अक्रियम् कर्म के करते हुए भी निष्कर्मही हूं अहम् मैं क्योंकि स्नेह परम हूं निरन्तर नित्य और फिर भी अचल निश्चल रीति से परम् पवित्र और ध्रुव सर्व ध्रुवही निरन्तर नित्य मान रहित नाम रूप भाव अभिमान से स्वतन्त्र परम् सन्त महान श्रेष्ठ और निरन्तर एकरस अटल पादं अपूर्व पद रूप ही है ये आत्मा मम् मेरा भवं स्वरूप निरन्तर नित्य क्योंकि ॥ ३ ॥ यही मेरा आत्मा विश्वं आकारम् स्व निरन्तर विश्व के आकार वाला ही निश्चय करके नित्य है और भिन्नाभिन्न अहम् स्व निरन्तर - नाना प्रकार के अनेक रूप वाला मैं आप हूं निश्चय करके नित्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४३० और फिर कर्मः धर्मः सर्व स्व निरन्तर - कर्म धर्म रूप भी संपूर्ण निश्चय करके मैं ही नित्य हूं - और प्रवृत्तम् आश्चर्यवत फैल हुए स्वरूप का अर्थात माया साकार सृष्टि रूप का पूर्ववत फैला हुआ फैलाव भी स्व निश्चय करके निरन्तर नित्य एकरस मैं हूं और फिर भी ना हि निवृति नहीं है निश्चय करके स्वतन्त्रता तथा आजादी वा मोक्ष मेरे को क्योंकि मुक्त निरन्तर मुक्त रूप अर्थात मोक्ष ही मोक्ष मैं नित्य हूं सो बस धर्म इति ध्रुव धर्म निरन्तर - धर्म तो इतना ही है कि जो ध्रुव धर्म रूप में नित्य एकरस है क्योंकि मैं जो कि एक आत्मा हूं केवल निश्चल परं निरन्तर - केवल रूप में अचल हूं श्रेष्ठ हूं और नित्य हूं और कैसा हूं कृपा सिंधु - आनंद का भरा हुआ पूर्ण कोश हूं और निर्वैर निरन्तर वैर से तथा शत्रुता से भी नित्य ही मैं आत्मा स्वतन्त्र हूं अर्थात मोक्ष हूं कि मेरे अन्य कोई भी कहीं नहीं है फिर वैर कैसा और किस से होवे

## आश्चर्य ।

हे मनु ! नहीं है कथा कोई ध्रुव की और नहीं है कथन भी कोई ध्रुव धर्म का क्योंकि ध्रुव नाम आत्मा का है और आत्मा आप ही ध्रुव धर्म रूप है इसलिये कथा और कथना होनों से ही आत्मा स्वतन्त्र है फिर ध्रुव धर्म क्या सो कुछ भी नहीं केवल इस बात के निश्चय को के जान लेने का नाम ही ध्रुव धर्म है कि मैं नहीं हूं जो कुछ है और जो है वही केवल ही केवल आत्मा है और आत्मा क्या है और कैसा है संपूर्ण है अर्थात एक ही सर्व रूप से सर्वत्र व्यापक है और फिर भी सर्व रूप से सर्वत्र अतीत अर्थात मुक्त है रहित है असंग है अर्थात किस प्रकार से वह आत्मा अतीत है अतीत के विशेष रूप से क्या अर्थ हैं सो अतीत के अर्थ इस प्रकार जानो कि (१) केवल एक ही आत्मा सर्व रूप से व्यापक है किंतु वही इस सर्व स्वरूप का त्यागी भी है कि उसमें कोई रूप इस सर्व स्वरूप का नहीं है क्योंकि (२) जो ऐसा आत्मा है वही एक है कि जो सर्व रूपवत होते हुए भी सर्व रूपों से स्वतन्त्र है और मुक्त रूप है अर्थात मोक्ष ही मोक्ष रूप है और कैसे मोक्ष है कि (३) आत्मा निर्मोह है किसी प्रकार का मोह भी उसमें नहीं है क्योंकि वह केवल स्वरूप एक ही है इसलिये (४) निर्मोह आत्मा फिर कैसे अतीत है इस प्रकार अतीत है कि उसकी « श्रुतिः » तथा उसका रूप ध्यान रूप है अर्थात निर्ध्यान आत्मा सर्व प्रकार के ध्यानों से रहित हो कर के अपने आत्मानंद अर्थात अपने आत्मस्वरूप में ही मग्न रहना इसलिये निर्मोह आत्मा अतीत है सो हे मनु अतीत आत्मा कैसा है मुक्त स्वरूप है कि उसने आप ही अपने आत्म विश्वास से अपने आत्म स्वरूप के अन्य सब कुछ त्याग दिया हुवा है अर्थात केवल अतीत आत्मा में आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है इसलिये अतीत है अर्थात मुक्त है और स्वतन्त्रता तथा मोक्ष रूप के विश्वास से आत्मा इस प्रकार अतीत है कि कर्म ही कर्म अर्थात काम ही काम निष्काम रूप है कि कर्म कर्ता प्रतीत है किंतु फल भोगते स्वतन्त्र है क्योंकि आत्मा का कोई कर्म ही नहीं है कारण कि आत्मा आप ही कर्म रूप है इसलिये कर्म रूप में आत्मा का बन्धन रूपी कोई कर्म और उस कर्म का बन्धन रूपी कोई फल नहीं है इसलिये आत्मा अतीत है और फिर निर्मोह आत्मा निर्मोहता के विश्वास से किस प्रकार अतीत है कि वह शरीर रहित है अर्थात किस प्रकार का कोई शरीर उसका नहीं है वह एक ही सर्वत्र सर्व रूप है अर्थात सर्व शरीर रूप है इसलिये शरीर का होना और नहीं होना आत्मा में समान है इसलिये शरीर के होते हुए और न होते हुए भी सर्व प्रकार के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शरीर और वस्तु पदार्थों के मोह से आत्मा अतीत है क्योंकि आत्मा एक ही है और वह आप ही आप सर्व वस्तु और
और सर्व वस्तु पदार्थ और सर्व शरीर रूप है इसलिये सर्व प्रकार के दुःख सुख हर्ष शोक से प्रसन्न रूप आत्मा स्वतः
मोक्ष अर्थात अतीत है और श्रुति रूप से निर्ध्यान आत्मा इसप्रकार अतीत अर्थात मुक्त मोक्ष रूप है कि श्रुति रूपें
नित्य ज्ञान ही ज्ञान स्वरूप इसलिये जो श्रुति है वही एक ही सत्य रूप सत्य स्वरूप मुक्त और मोक्ष रूप आत्मा का
है इसलिये आत्मा निरन्तर सर्व काल में सर्व रूप होने पर भी श्रुतिरूप में निर्ध्यान और अतीत है। और फिर यही
आत्मा चक्रकला अर्थात ज्ञान स्वरूप होने के कारण चतुर्भुजी अर्थात चार प्रकार की चार शक्ति रूप में
ऋक् १ यजु २ साम ३ अथ ४ चार प्रकार से एक ही वेद रूप है क्योंकि ऋक् के अर्थ हैं शब्द और शब्द आत्मा का
स्वरूप है तो जिस प्रकार शङ्ख के बजाने से स्वर रूप में गर्जे शब्द उत्पन्न होता है इसी प्रकार ज्ञान रूप आत्मा से जगत
आप से आप उत्पन्न होता है और आत्मा में ही ऋक् रूप से कि जिस प्रकार संख में आकाश लीन रहता है जगत
भी लीन रहता है। इसी प्रकार यजु के अर्थ हैं गति और गति कर्म शक्ति का नाम है इसलिये आत्मा का कर्म शक्ति
रूप में आकाश रूप से कर्म शक्ति रूप है और कर्म शक्ति रूप में सर्व शक्तिमान स्वरूप है। इसी प्रकार साम के अर्थ
हैं चक्र और चक्र श्वासा का रूप है और श्वासा का अकाल स्वरूप है इसलिये आत्मा अकाल शक्ति स्वरूप
है। चौथी आत्म शक्ति का नाम अथ है और अथ के अर्थ हैं अनादि और अनादि आदि को अर्थात आठ
प्रकार की एकरस शक्ति को कहा जाता है और शक्ति कमल का रूप है और कमल पुष्प को कहते हैं सो
जिस प्रकार कमल पुष्प की आठ पङ्खड़ियां पृथक २ करके प्रतीत होती हैं इसी प्रकार भूमि जल अग्नि
आदिक पंच भूत और मनादिक रूप में नाना प्रकार की आकृतियां अन्तः करण वृत्ति रूप जो पृथक २
नाना कर्तों भोक्तना रूप प्रतीत होते हैं ये एक ही शक्ति रूप में आत्मा ज्ञान स्वरूप में पुष्प रूप से सत्-
चित्-आनन्द स्वरूप है। और निश्चय करके सिद्धम् अर्थात सर्व प्रकार के सिद्धान्तों में एक ही सिद्ध स्वरूप ध्रुव
नाम आत्मा है कि जो सूर्य्य समान अनूप स्वरूप में उत्तम अधिष्ठान अधिकार स्वरूप है और आप ही आप है
केवल ही केवन प्रेम ही प्रेम बना हुआ आप ही आप पूर्ण रूप सर्व आधार है चित्र गुप्त रूप है मान बड़ाई के
पदों का पद है क्योंकि सर्व रूपों में वही एक रूप है सृष्टि में सार है उत्तम पदार्थ है सर्व रूप में आप ही सर्व
रूप रक्षक है ममता और अहंकार से रहित और आश्चर्यवत मायारूपी साकार शरीरों से कि जो नेत्रों के
द्वारा देख जाते हैं स्वतन्त्र है उत्पत्ति पालन पोषण धारण रूप में ब्रह्मा विष्णु और शिव के निश्चय
रूपों से भी स्वतन्त्र है क्योंकि श्रुति प्रमान « केवलं रूप हि सत्य मिति नहि ब्रह्मा विष्णु शिव कश्चपि »
अर्थात एक केवन रूप आत्मा ही सत्य स्वरूप है और इस स्वरूप में नहीं है निश्चय करके किसी काल
में भी ब्रह्मा विष्णु शिवादि से नाम मात्र को कोई क्योंकि ब्रह्मा नाम माया रूपी आकृति का है और
विष्णु नाम मायारूप में माया रूपी पदार्थों से माया रूपी आकृतियों के हनका है और शिव नाम माया
रूपी आकृतियों का माया रूप से आत्मा में लीन होजाने का है इस प्रकार से न ब्रह्मा है न विष्णु है और
नहीं कोई शिव है केवन आत्मा ही निरन्तर है और इसप्रकार से सर्व प्रकार के शरीर रूप बना हुआ है वही
एक आत्मा जो श्रेष्ठ कर्म रूप है अर्थात पवित्र है निश्चय करके वह मैं आप ही निरन्तर हूं ॥ २ ॥ क्योंकि कर्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रूपमें कर्म करते हुए भी आत्मा निष्कर्म ही है ये माया रूपी शरीर अर्थात अहंकार रूपी देह नाशमान है इसलिये मिथ्या
देह से जो कर्म होते हैं वे सब मिथ्या ही होते हैं क्योंकि माया रूप आकृति में इन्द्रियों के विषय भोगों को इन्द्रियें ही
भोगती और अपने अपने विषयों पर दोडती ही रहती हैं सो मिथ्या माया माया विषयों का भोग करती हैं औ
जो एक ही आत्मा है वही अहंकार रहित आप ही अपने प्रेम में मग्न रहती है और आप ही अपने प्रकाश में
प्रकाश स्वरूप है चैतन्य प्रधान है भेद रूप नहीं अभेद है आप ही अपने आप में प्रसिद्ध है और आप ही
अपने आपमें लीन है जम्ना रूप में अन्तरयामी क्षीर सागर स्वरूप है सर्वज्ञ है निर्जन है निर्ध्यान है
निसंदेह है आप ही अपना स्थिर तप भूम है निश्चिन्त है अडिग है स्वयं है ज्ञान और अज्ञान रहित है
प्रत्यक्ष प्रमाण है केवल है अतीत है सर्व प्रकार के त्यागों का त्याग है और उसे कुछ भी करना नहीं है
इसलिये कर्म करते हुए भी आत्मा निष्कर्म ही है सो जो ऐसा निष्कर्म आत्मा है और मिथ्या देह प्रम
जीवन रूप नहीं है अर्थात पूर्ण आत्म प्रमाण रूप है कि सर्व रूप होने पर भी एक ही निराकार आत्मा है
और उसके अन्य कहीं भी कुछ नहीं जो कुछ है और जो है वह केवल आत्मा ही आत्मा है और जो कि
निर्विकार है सब कुछ जानने वाला है और सब से ऊपर और परे है इन्द्र वरुण आदि का प्रकट रू
है सर्व ज्ञानेन्द्रिय और कर्म इन्द्रियों का सहारा है और आप ही अपने को तू मैं का कहने वाला भी
है और जिसमें लम्बाई चोडाई का भी सार नहीं है परम्परा है और जो चित मन बुद्धि के एक गुप्त रू
से वह सब कुछ जो दृष्ट गोचर हो रहा है और जो अनंत रूप में अनंत हाथ पांव नाक कान आंख
आदिक बना हुआ आप ही अपने को नाना प्रकार के रंग और रूपों में देख प्रत्यक्ष रूप से
देखने वाला बना हुआ है और नाना प्रकार के कार्य कर्म रूप से करता रहता रहता है और
जो प्रकट और गुप्त में एक ही केवल आत्मा है वह मैं आप ही हूं और मैं कैसा आत्मा हूं
कि सूर्य के समान स्नेह अर्थात अपने प्रेम ही प्रेम रूप होने के कारण सर्व देह देहात्र को जिस प्रकार से
कि सूर्य प्रकाश मान है प्रकाशन किया हुआ है और आप धुन्धाकार रूप बना हुआ नाना प्रकार के प्रिश्रम
करता ही रहता हूं और नाना प्रकार के रूपों में एक ही देह और एक ही अन्तःकरण रूप से निरन्त अर्थात
गुप्त हो रहा हूं इस प्रकार से मैं जो एक ही आत्मा हूं अचल अर्थात निश्चल रूप से विश्व के देव मनुष्य
राक्षस आदि की चराचर योनियों का एक ही शरीर और एक ही आत्मा बना हूं और फिर भी परम् अर्थात
महान श्रेष्ठ पवित्र रूप ही मेरा आत्मा है क्योंकि जो कुछ है आत्मा है और कैसा आत्मा है कि विराट सुराट
और सम राट स्वरूप में एक ही ध्रुव निश्चय करके आत्मा का है कि निश्चय स्वरूप से ध्रुव नाम आत्मा आ
ही सर्व संसार रूप है और आप ही अपने सर्व संसार रूप का सहारा है और आप ही आधार है और आप ही
आप है अर्थात नित्य है कि वायु के समान सर्वत्र धूम रहा है इस प्रकार निर्गुण आत्मा ब्रह्मा से लेकर के एक
कीटि तक जितने कि नाम और रूप हैं इन सब में गुण रूप बना हुआ सर्वज्ञ अक्षर है फिर कैसा है आप
ही आप है कि न तो कुछ कहता है और न कुछ सुनता है सिद्ध रूप से निरन्तर है! हे मनु यही ध्रुव
ध्रुव धर्म कथा है अर्थात कथन आश्रय इसका ये है कि जिस समय विश्व रूप संसार में इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का आत्म ज्ञान परिवर्तन कर जाय कि जो कुछ है आत्मा है मैं माया रूप आकृति जो मैं और तू का व्यवहार करने वाले
सबको नाना रूप और स्वरूपों में द्वैत का व्यवहार करते हुए पृथक २ अपने २ को जानते और मानते हैं ऐसा कोई
व्यवहार आत्मा में नहीं है क्योंकि आत्मा एक ही है और हममें किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है इसी का नाम है
ध्रुव धर्म इसी का नाम है अगम वेदी नेशन ध्रुव धर्मे और ध्रुव धर्मे में ध्रुव आत्मा इसी का नाम है मान अभिमान
रहित श्रेष्ठ पवित्र आत्मा सन्त आत्मा क्योंकि सन्त आत्मा किस प्रकार है इस आत्म भेद का जानना और सन्त
आत्म भेद क्या है इस बात का निश्चय करना क्योंकि सन्त नाम शान्ति रूप सर्व रूपों में एक ही लीन रूप आत्मा
का है और ये कैसा स्वरूप है कि आप ही आप में आप है कि आदि और अन्त जो कुछ है आप है प्रकट है त्रिलोकी
के महाराज इन्द्रियादिकों से उत्तम है सर्व साक्षी और साक्षात रूप है इन्द्र इसीके आधीन है क्योंकि सन्त रूपी जो
एक ही आत्मा है नित्य है निरन्तर है सदैव है अटल पद रूप है अर्थात अगम अधिष्ठान स्वरूप है कि किसी समय भी
अपने अधिष्ठान से गिरने और विनाश को प्राप्त होने वाला नहीं है अनंत है इसी का नाम ध्रुव धर्म है कि जो एक
ही आदि अगम वेद रूप है कि जिसमें किसी प्रकार का भी गम्य नहीं है सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि तारागण भी
एक इसी सन्त आत्मा से प्रकाशमान हैं और अपने अपने स्थान पर इसी निर्गम्य ध्रुव धर्म में लिपटे हुए एक
दूसरे को गुप्त भाव से सहारा देते हुए और उनका भार सहारते हुए अचल पुरुषार्थ कर्म रूप से स्थित हैं
और अपने अपने स्थानों से नहीं टलते हैं सब ही निर्भय होकर सन्त रूपी आत्म होरी की ध्रुव धर्म रूप में
जो अगम वेदी जाति रूप का एक ही बल है उसी में बल रखकर सब एक ही शक्ति रूप बने हुए हैं और
उनको कहीं आना है न जाना है क्योंकि सब ही चराचर एक ही चैतन्य ब्रह्म आत्मा सर्व रूप से मेरा ही
निरन्तर भेष है। और मेरे इस सन्त स्वरूप एक ही ध्रुव धर्म अगम वेद रूप का नाम विश्व है और विश्व में
कर्म रूप से मैं आप ही कर्म करते हुए मैं आप ही दोष गंजन शोक भंजन सत निरञ्जन केशव माधव और
सगुण निगुण बना हुआ आप ही अपना स्वामी और आप ही अपना भक्त बनकर सत चित
आनंद अथ अगाध अगम अगोचर अमर अज दिव्य जोत प्रकाश अव्यय ब्रह्मवन आदि
कारण कार्य जगदीश आदि मध्य अन्त का एक अक्षय स्वरूप प्राण रूप में प्राण ही प्राण सर्व में
सर्व व्यापक सर्वयामी और सर्व से निरन्तर सर्व माया विस्तार अति प्रबल सर्व शक्तिमान काल
का भक्षक करने वाला शुद्ध बुद्ध शब्द और नाम से परे निर्वचन निर्लेप निश्चल निर्विकार केवल
ध्रुव मैं आप ही एक सन्त आत्मा हूं कि नहीं है मान और बडाई का कोई रूप और स्वरूप मेरे में क्योंकि
मैं हूं एक ही ध्रुव धर्म अगम वेद रूप आत्मा सर्वत्र सर्व रूप कि नहीं है मेरे से अन्य और भिन्न कोई दूसरी
वस्तु कहीं भी फिर मान क्या और बडाई कैसी और तू कौन और मैं कौन का व्यवहार कहां और दान क्या
और दया किस पर कि सर्व रूप होने पर भी सर्व रूपों में मैं ही एक वा सर्व रूपों से असंग अर्थात मुक्त मोक्ष
रूप अतीत और सन्त भी मैं ही एक नित्य हूं क्योंकि श्रुति प्रमाण (( ॐ हूं ॐ एकोहं श्री द्वैत्यो नहि
वास्ति सत्य अहमेव केवलं ब्रह्म केवलं ध्रुव )) ॐ कार रूप हूं मैं आत्मा और ॐ कार रूप में एक ही हूं मैं
ही नाम शक्ति से माया रूप सर्वत्र और नहीं है निश्चय करके दूसरा कोई कहीं भी क्योंकि सत्य स्वरूप तो मैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४३५ निश्चयस्वरूप केवल ब्रह्म केवल ध्रुव आत्मा हूं कि जिसका विनाश नहीं है इसलिये मायारूपी मान बड़ाई की
कोई अटल पदवी मैं लिये नहीं हूं कि मेरे मेरे ही अन्य न कोई कुछ देने वाला है न लेने वाला है क्योंकि मैं आप ही तो
अपना दाता और दान हूं और सच्चिदानंद स्वरूप हूं कि सर्वत्र मैं ही मैं हूं कि ध्रुव धर्म रूप में कर्ता और कारण और
कार्य का एक ही स्वरूप हूं क्योंकि मैं जो कर्म ही कर्म रूप हूं कर्म रूप में मैं कर्म फल प्राप्त रूप नहीं हूं इसलिये कर्म फल
रहित और स्वतन्त्र हूं क्योंकि जो कर्म किसी फल प्राप्ति की इच्छा से हो तो उसी का नाम अज्ञान और माया है
और अज्ञान रूपी माया से मैं स्वतन्त्र हूं और सर्वत्र केवल मैं ही मैं नित्य हूं संत रूप आत्मा हूं कि राग द्वेष से
विर्जित हूं मिथ्या जीवन मरण की कल्पना से भी मुक्त हूं और इसी ज्ञान का नाम विश्वास और ध्रुव धर्म है
इसी बात के निश्चय का नाम अगम वेद है और इसी बात की दृढ़ता का नाम कि नहीं है कहीं कुछ एक
आत्मा के अतिरिक्त सन्त और मुक्त और मोक्ष है क्योंकि सन्त सर्वत्र सर्व रूपों में व्यापक रूपी रूप
एक ही आत्मा का नाम है वह आत्मा कैसा है परम संत है और संत भी कैसा है कि आप ही अपने आत्म
आनंद में मग्न है और नहीं जानता कि द्वैत क्या होता है सर्व स्वरूपों में केवल आप ही अपने आत्म स्वरूप
को देखता और पाता है ! किसी विषय पर उसकी चित वृति नहीं दौड़ती और निर्ध्यान रूप में जिस
को आप ही अपने आत्म स्वरूप का इस प्रकार श्रुति प्रमाण आत्म विश्वास रहता है कि जैसा ये श्रुति है
« नित्य नित्यं संत संतं केवलं मयैव अव्ययम् » श्रुति अर्थ ये है कि साक्षात्कार में निरन्तर संतो
में संत केवल मैं ही निश्चय करके अविनाशी आत्मा हूं कि देह रूपी अहंकार और जाति भेष व्यवहार
से स्वतन्त्र नग्न अवधूत परम संत हूं कि यही एक अटल पद रूपी निरन्तर मेरा भेष है ॥ ३ ॥
क्योंकि विश्व रूप में जो कुछ भी संसार का स्वरूप है ये निश्चय करके केवल मेरा ही एक निरन्तर रूप
है कि जो भिन्न करके प्रतीत होता है मैं इस अपने विश्व रूप की सर्व प्रकार की भिन्नता से अभिन्न हूं
क्योंकि निश्चय करके मैं ही एक स्वतन्त्र स्वरूप मुक्त आत्मा हूं इसलिये सर्व रूपवते हुए भी मेरा तो
कोई भी रूप नहीं है इसलिये विश्व के सर्व रूपों से असंग ही हूं । और फिर भी निश्चय करके एकरस ही
नित्य कर्म रूप में धर्म ही धर्म और प्रकट रूप में निश्चय करके परिवर्तन ही रूप स्वरूप मेरा है अर्थात
किसी भेष रूप अनुसार मैं त्यागी वैरागी संन्यासी आदि के मिथ्या पाखण्डों करके त्यागी नहीं हूं
क्योंकि विश्व रूप में किसी प्रकार से भी गृहस्थ का त्याग नहीं है और गृहस्थी रूपी विश्व रूप तो
किसी प्रकार से भी त्यागी नहीं हो सकता है यदि विश्व में ऐसा कोई भेष है तो वही माया के
अहंकारी और शरीर के नाम रूप और मिथ्या मान बड़ाई के भिकारी का मिथ्या रूप है कि शरीर के
सुख को ठगों ने अर्थात ठग रूपी माया प्रकृति की मिथ्या आकृतियों ने गुरु शिष्य और नाम
रूप और भेष के मान बड़ाई के प्रचार को हरि भजन का भ्रम फैलाकर मिथ्या अहंकार के वस्त्र
धारण कर लिये हैं और मेरे विश्व रूप में जो एकरस है बहुरूपों का स्वांग भर रहे हैं ॥ ४ ॥
क्योंकि इस प्रकार के स्वांगों के भरने से मेरे आत्म स्वरूप को सत चित आनंद रूप को किसी प्रकार
का बन्धन और उस बन्धन से निवृति अर्थात मोक्ष नहीं है क्योंकि मैं आत्मानंद सत्य स्वरूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

तो। नित्य ही मुक्त रूप हूं और मुक्त स्वरूप होने से ही नित्य योगी त्यागी और संत रूप में संन्यासी और सन्यासी रूपों में कर्म ही कर्म रूप हूं और कैसा कर्म हूं कि विश्व रूप बनाए विश्वरूपी देहात्रों को आप ही अपने ही आत्म स्वरूप के प्रकाश की अग्नि में देह रूपी अहंकार का स्वाहा कर के नाना प्रकार की देहात्रों को ज्ञान अग्नि की वेदी में भस्म करता रहता हूं और फिर भी गृहस्थी का गृहस्थी ही बना रहता हूं सो जब कि मैं आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण से गृहस्थी हूं कि सर्व रूप रखते हुए भी कर्म करता रहता हूं तो गुरु कौन और शिष्य कौन क्योंकि मैं आप गृहस्थी हूं सर्व से उत्तम ऊंचा और श्रेष्ठ हूं क्योंकि मैं निर्हंकार हूं शरीर अभिमान रहित हूं आशा का दास नहीं हूं क्योंकि आशा के दास रूप में मेरा कोई भेष किसी सम्पर्दा रूपी कर्म कांडी पाखण्डी मिथ्या दण्ड कमण्डल उठाने वाले साधू जैसा नहीं है मेरे शरीर का चर्म मेरा एक भगवा वस्त्र है और ये शरीर ही एक सात पुरुष रूपी दण्ड है कि जो सर्वत्र सर्व रूपों में सर्व देहात्रों में एक ही अद्वैत पद को प्रत्यक्ष प्रमाण करता है और विश्व रूपी नाना प्रकार का शरीर चर्म ही अवधूत आत्मा के नग्न शरीर का लङ्गोटा है कि जो धृति अर्थात धीर्य का स्वरूप है और इस शरीर के मध्य लङ्गोट से ढका हुआ जो आकाश है येही आत्मा का कमंडल है कि जिसमें प्रकृति के परमाणु शान्त स्वरूप जल की भांति भरे हुए हैं और इन्हीं से नाना प्रकार की विश्व रूप में आप से प्रकृति अनुकूल आत्म कर्म से रचना हो रही है इस प्रकार का कर्म रूप मैं आत्मानंदी साधु हूं और फिर किस प्रकार से गृहस्थी हूं कि ध्रुव धर्म रूप से ध्रुव धर्मी अगम वेदी प्रसिद्ध हूं इस प्रकार कि मैं सर्वत्र प्रवृति और समता का एक ही निरन्त रूप हूं और इस प्रकार मैं आप केवल निश्चल स्वरूप से परं श्रेष्ठ निरन्तर एक रस आत्मा हूं कि जो एक ही शेल अर्थात सप्तव्याहृति रूप होने से एक ही सागर स्वरूप मेरा है इस लिये मैं अपने आत्म स्वरूप में निरन्तर निर्वैर रूप से इस प्रकार गृहस्थी हूं अर्थात विश्व रूप में केवल सर्व प्रकार के नियमों धर्मों आश्रमों और कर्मों से स्वतन्त्र और सर्व प्रवृत रूप एक ही गृहस्थी हूं और सर्व सुफलता रूप में सर्व प्रकार के कर्मों का एक कर्म रूप हूं अर्थात ध्रुव धर्म आत्माद्वैत रूप मैं हूं अर्थात निष्कलङ्क रूप में दश प्रकार से दस नियम यम रूप मैं हूं

(१) मैं ही शुद्ध पवित्र चैतन्य ब्रह्मात्मा सर्व प्रकाश सर्व साक्षी एक ही परंपरा सर्वज्ञ अक्षर पदार्थ हूं मेरे में ही सर्व प्रकार की इच्छा आशाओं का प्रकृति रूप पूर्ण भंडार अर्थात पूर्ण कोश लय रूप से लीन हो रहा है क्योंकि मैं पूर्ण काम अर्थात कर्म ही कर्म रूप हूं और एक ही अद्वैत रूप आत्मा हूं और मैं आप ही अपना पूर्ण विश्वास हूं कि जो आप ही अपने आत्म विश्वास में मग्न हुआ हुआ सर्वत्र सर्व रूपों में एक रस प्रकाश मान हो रहा हूं और मेरा एक एक रूपमान चराचर आकृतियों से निरन्तर अद्वैत रूपी ध्रुव धर्म से विशेष करके सब से अपूर्व रूप में गहरा अर्थात घनिष्ठ संबन्ध है क्योंकि वह सब नाम रूपमान आकृति मेरा ही एक आत्मा स्वरूप शरीर रूप हैं और मेरे ही आत्म विश्वास से वह सब अजर अमर अविनाशी हैं और आत्म विश्वास योग हैं क्योंकि मैं अविनाशी हूं ॥

(२) मैं वह एक ही आत्मा अपने आप ही अपना आत्म विश्वासी हूं कि सर्वत्र एक ही शक्ति रूप से पूर्ण सर्व रूप में एक ही आकर्षण शक्ति रूप बना हुआ अपने अशब्द रूप में अपनी आकर्षण शक्ति से अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आप
436 अपनी सर्व रूप आकृतियों का इस प्रकार आधार बन रहा हूं कि शब्द में नहीं आता हूं इस प्रकार से मैं आप ही अपना अशब्द वेद रूप आत्म वेद ध्रुव आत्मा भी हूं कि सर्व को अपने तक खेंच करके अपने निर्विकार आत्मस्वरूप में सर्व को ही अशब्द रूप में लीन करके आप अशब्द रूप होसकता हूं

(३) मैं वह कर्म रूप आत्मा हूं कि आप ही अपनी आत्म शक्ति अनुकूल निर्भय रूप आप ही अपनी पूर्ण आत्म शक्ति से जिस पदार्थ को चाहूं उत्पन्न अर्थात प्रकट करके वा प्रकट को अपने तक खेंच के अपनी आत्म अनुभव श्रुति शक्ति से आप ही अपनी आत्म इच्छा को पूर्ण करसकता हूं ॥

(४) मैं वह कर्म ही कर्म रूप ध्रुव संत आत्मा हूं कि अष्ट सिद्धि और नव प्रकृतियों को कि जन से मैं ने अपनी आत्म अनुभव श्रुति अनुकूल विश्व रूप में सर्व रूप की रचना की हुई है जब भी चाहूं तब ही मैं उनको अपने आत्म स्वरूप में खेंच कर इस जगत को नष्ट करके अपने आत्मा में लीन कर सकता हूं और जब जिस प्रकार से चाहूं इस जगत को उत्पन्न अर्थात प्रकट कर सकता हूं क्योंकि किसी प्रकार की याचना मेरे सत्य स्वरूप आत्म रूप में नहीं है क्योंकि मैं केवल रूप निरन्तर स्वरूप हूं मुझ से भिन्न कोई वस्तु और पदार्थ नहीं है सब कुछ मेरी ही चेतन शक्ति के आधीन

(५) मैं केवल आत्मा आत्म स्वरूप आनंद वह सर्व आकर्षण शक्ति स्वरूप हूं कि जब अपनी इस शक्ति को काम में लाओं और इस से काम लूं तो नाना प्रकार के विश्व और विराट रच कर अपने चलने वा रहने को नाना प्रकार के अधिष्ठान और मार्ग बना सकता हूं

(६) मैं केवल निश्चल परं पवित्र निरन्तर श्रेष्ठ आप ही अपना आत्म विश्वासी वह एक ही आत्मा हूं कि अपने इच्छित कार्यों में सुफलता के हेतु अपने सर्व स्वरूप के ध्यान रूप को छयों दिश से खेंच कर जब चाहूं एकत्रता में लाकर और एकत्र रूप अपने आत्म स्वरूप में ही लगाकर जब और जिस प्रकार से चाहूं शान्ति सहित सर्व प्रकार की सुफलता प्राप्त करलूं क्योंकि मैं एक आत्मा ही सर्व प्रकार की सुफलता का कर्म रूप में कर्म रूप हूं ॥

(७) मैं निरन्तर वह एक ही सर्वज्ञ सर्व रूप आत्मा हूं कि न मेरे में स्वप्न है न जाग्रत है नहीं सुषुप्ति है और नहीं काल विकाल का कोई रूप है क्योंकि मैं आप ही स्वयं ज्योति और स्वयं प्रकाश हूं इसलिये कृपा सिंधु मेरा नाम है और मैं निर्भय निर्वैर ही सर्व रूपों में एक रूप अचल आत्मा हूं साक्षात कार में मैं ही वह एक आत्मा हूं कि जो रवि आदिक नाना रूपों को प्रकाश दे रहा हूं ॥

(८) मैं वह निवृत्ति रहित प्रवृत्त रूप में कर्म मुक्त रूप आत्मा हूं कि जो निरन्तर कर्म ही कर्म रूप होने के कारण न कभी आप ही अपने देखने की इच्छा करता हूं और न कभी आप ही अपने जानने के लिये कि मैं कौन हूं और क्या हूं इस प्रकार की कोई चेष्टा वा चिन्ता करता हूं क्योंकि मैं सर्व रूप बना हुआ ही आप ही अपने आत्म विश्वास से अपना सहायक बना रहता हूं और इस प्रकार अचानक वह वह विचित्र और अपूर्व कार्य करता हूं कि माया प्रकृति मेरे ही अपूर्व शक्ति जो नित्य मेरे स्वयं नाचती रहती है और आप ही सर्व कार्यों की कर्ता होती है और जिन कार्यों को वह अपनी अज्ञान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वृत्ति से अस्तम्भव और अप्राप्त जानती है और वह स्वयं ही जब अप्राप्त से प्राप्त रूपमें प्रकट होके अपना संभव और प्राप्त
ता चित्त दिखाते हैं तो तत्काल ही माया प्रकृति अज्ञान वृत्ति को त्याग ज्ञान वृत्ति का रूप बनाती है और उन
प्रकट उत्पन्न रूप विचित्र कार्यों को देख कर नाना प्रकार से अपने कार्यों को सिद्ध करती और सुफलता प्राप्ति का
भी होती है किंतु ये सब कुछ जो इस प्रकार प्रकट होता है मेरे अपने आत्म शुद्ध कर्म रूप का ही कर्म रूप होता है
और इसी का नाम माया है प्रकृति है किसी प्रकार से किसी प्रकार का कोई कर्म फल नहीं है क्योंकि मैं कर्म रूपमें
निष्कर्म निष्फलङ्क केवल रूप एक ही सत् जन शुद्ध पुरुष शुद्धस्वरूप आत्मा हूं कि नाना प्रकार से मैं
आप ही अपनी सहायता करते हुए अप्राप्त को प्राप्त करता रहता हूं क्योंकि मैं आप ही केवल कर्म रूप में
आत्म प्राप्त रूप आत्मा हूं अप्राप्त वस्तु नहीं हूं क्योंकि अप्राप्त कोई वस्तु नहीं है इसलिये मैं योग रूप कर्म ही
कर्म केवल निश्चल निष्फलङ्क आत्मा निरन्तर अयोग अर्थात स्वतन्त्र रहता हूं और इस प्रकार से मैं ही
अयोग और स्वतन्त्र रहते हुए निरन्तर अपने अयोग कर्म आत्म स्वरूप से अर्थात आशा रहित अपने ही
आत्म स्वरूप से निरन्तर नाना प्रकार के सुफलता प्राप्त कार्य करता रहता हूं और अपने कर्म रूप को मैं
किसी काल में भी नहीं छोड़ता क्योंकि अकाल रूप में मेरा कर्म ही कर्म स्वरूप है इसलिये मैं निवृत्ति
रहित निरन्तर एक ही प्रवृत्त रूप में सर्व रूप प्रवृत्त निरन्त मुक्त एक ही निष्फलङ्क आत्मा हूं ॥

(९) मान रहित परं संत रूप में पूर्ण कृपालु और पूर्ण स्नेह सर्व में निरन्तर एक ही अटल पद रूप अचल ध्रुव
आत्मा मैं हूं कि आप ही अपने आत्म स्वरूप का सर्व रूप को दृढ़ विश्वासी हूं और घनिष्ठ रूप से आप ही अपना आत्म
कृपालु और आप ही विशेष करके घनिष्ठ विश्वार्थी और आप ही अपने आत्म स्वरूप का सच्चा प्रेमी और
भक्त और विश्वासी और सन्तोषी केवल आत्मा मैं हूं इसलिये सर्व रूप रखते हुए एक ही इतनी बड़ी और
अधिक रूपी अकाल रूप स्वरूप में निरन्तर ही रहने वाली सुफलता का स्वयं प्राप्त रूप मैं आत्मा हूं
कि मेरे आत्म स्वरूप में किसी प्रकार की भी कोई इच्छा नहीं है क्योंकि नहीं है कोई वस्तु मुझ से भिन्न
और मेरे आत्म स्वरूप से दूर वा अलग कि जिस की प्राप्ति की मैं इच्छा करूं इसलिये केवल एक ही एक
अविनाशी स्वरूप निष्फलङ्क आत्मा पूर्ण सुफलता का एक रूप निरन्तर रहने वाला निसंदेह मैं हूं ॥

(१०) मैं कौन हूं और क्यों हूं और क्या हूं केवल निश्चल कर्म ही कर्म निसंदेह एक ही धर्म ध्रुव धर्म और
आगम वेद हूं मैं क्यों ऐसा हूं कि अटल सुफलता का एक ही सर्व रूपों में ध्रुव धर्म प्राप्त रूप हूं ध्रुव
धर्म क्या है एक ही आत्म निर्वैरता और आत्म प्रेम का नाम है क्योंकि सर्व रूपों में केवल मैं एक ही
आत्मा हूं और एक रस हूं न मेरा कोई राजा है और नहीं मैं किसी की प्रजा हूं मैं आप ही अपना
राजा और आप ही अपनी प्रजा हूं इसलिये मेरे ध्रुव धर्म का नाम ही बुद्ध धर्म है ईसा धर्म है वेद का
धर्म है सिंह धर्म है और इनके अन्य इस विश्व रूपी मेरे स्वरूप में जिस जिस प्रकार के जितने के मत मती
धर्म हैं उन सब धर्मों का एक ही मुख्य धर्म ध्रुव धर्म है कि जिस का केवल अचल अटल पद रूप
में एक ही ध्रुव आत्म पद आगम वेद रूपी केवल नियम है निर्वैरता सहित सच्चा प्रेम आत्म प्रेम
सहित निर्पक्षता सो मैं सर्व प्रकार के धर्मों का एक ही निर्पक्ष धर्म आगम वेद ध्रुव धर्म भक्त आत्मा हूं ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५३७ हे मनु बस इस प्रकार इस नियम से एक ही यम रूप में ध्रुव आत्मा नाम मैं सर्व जगत का एक ही एक अगम वेद ध्रुव रूप आत्मा हूं कि जिस आत्मरूप में मेरा एक ही धर्म नाम में कर्म रूप है इस प्रकार तू इस मेरे धर्म को जान और निश्चय कर कि सर्वधर्मों में केवल निर्वैता है आत्म ध्रुव धर्म है ॥ ५ ॥

किंमु रागं विवादो मुक्ता मुक्तं नहि पृथक पृथक मं किमपि पन्था ॥
किंमु व्यूहमोहविषादमिहं निर्वैरं एकं ध्रुवं धर्मं नेहं हिं हं विद्वः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थः ।

किंमु किसलिये - रागः रागकरके इच्छा करके विवादः तुम वाद करते हो कि मुक्तं मुक्तम् मुक्त है और मुक्त नहि है नहिं नहीं है निश्चय स्वरूप मेरे से पृथक पृथक अलग अलग मम मेरा किमपि कोई भी कुछ भी पन्थाः भिन्न भिन्न करके मार्ग अर्थात रस्ता फिर किंमु क्यों है व्यूह लडाई अमोहः द्वेष करके और क्यों है विषादम् रुदन तुमको क्योंकि इहं इस संसार सर्व रूप में आत्मा निर्वैरम् वैर रहित है और एकम् एक ही है और वही एक आत्मा ध्रुवं ध्रुव है और धर्मम् धर्म है और नेहम् स्नेह है और हि निश्चय करकरके वही आत्मा अहम् मैं आप ही हूं और कैसा हूं विद्वः उपमा रहित हूं ऐसे जानो -

आइये ।

हे मनु ! तू किस रागकरके अर्थात इच्छा करके वाद विवाद करता है अर्थात क्यों ऐसा विचार करता है कि मोक्ष है या नहीं है क्योंकि नहीं है निश्चय स्वरूप मेरे से भिन्न भिन्न करके मेरे से अलग कोई भी वस्तु अर्थात नहीं है मेरे से नाना करके नाना रूपी मार्ग कोई भी धर्म रूप में धर्म मार्ग धर्म का कोई रस्ता फिर तू किसवास्ते और किस लिये लड़ना है द्वेष करके और रुदन करता है तू क्यों कि इस सर्व रूप संसार में सर्व रूप आत्मा वैर रहित है और एक ही है और वही एक आत्मा ध्रुव आत्मा है और वही आत्मा धर्म आत्मा है और वही आत्मा प्रेम रूप में स्नेह आत्मा है और निश्चय करके वही आत्मा मैं आप हूं और मैं कैसा आत्मा हूं कि उपमा रहित हूं अर्थात मेरी महिमा की कोई भी उपमा मेरे अन्य नहीं है क्योंकि मैं एक ही आत्मा हूं केवल हूं और सर्व रूप हूं तू इस प्रकार से अपने को जान कर विचार कर कि जब मैं एक ही आत्मा सर्व रूप हूं तो फिर मोह किससे और व्यूह किससे और धर्म क्या और अधर्म क्या क्योंकि सर्वत्र सर्व धर्मों में और रूपों में मैं एक ही आत्मा अपमा रहित प्रवृत्त रूप हूं ध्रुव धर्म रूप में एक ही ध्रुव रूप आत्मा हूं कि नाना रूप नाना नाम और नाना धर्म और नाना पन्थ और नानापद रखते हुए भी सब से स्वतन्त्र हूं क्योंकि कोई नाम और रूप और पद और कोई धर्म मेरा नहीं है और सब कुछ मैं आप ही आप एक ही धर्म एक ही रूप में ध्रुव धर्म रूप आत्मा हूं संत आत्मा हूं सर्व प्रकार के पदार्थ और पात्रों और भांति भांति की भिन्नता भिन्नता में समभाव समुन्नता दृष्टि रूप हूं कोई भेष और कोई जाति मेरी नहीं है विद्या अविद्या में एक ही रूप मेरा है कि जिस में नहीं है मूढ़ अज्ञानी ज्ञानी और पण्डित का कोई विचार क्योंकि जो कुछ हूं वह सब कुछ मैं आप हूं तथा कि नाम और रूप मिथ्या कल्पना है यथार्थ रूप नो मैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

केवल आत्मा हूं नाम और रूप जो नाना कार मेरे एक ही आत्मस्वरूप के प्रकट प्रतीत होते हैं सर्व मिथ्या हैं क्योंकि मेरा कोई नाम और रूप नहीं है और मेरे सर्व रूप में जो विश्वरूप संसार है सब नाम रूप वाला है और ये नाम रूप की भावना एक मिथ्या कल्पना है कि जो ध्यान रूप में प्रवृतन करके अहंकार का रूप बन जाता है और इस प्रकार ये ही नाम रूप का मिथ्या अभिमान कालरूप दैत्य के रूप से सर्वथा प्रवृतन करके जरा काल असुर इत्यादि का लक्ष्य दिखाता है मैं इस से रहित हूं और सर्वत्र एक ही विभु अर्थात उपमा रहित आत्मा हूं और आत्मा के सिवाए और कहीं कुछ नहीं है और आत्मा राग द्वेष रहित निर्वैर है यथार्थ है चेतन है और ध्रुव धर्म रूप है निश्चय स्वरूप है बाल रूप है कि नहीं है दोष किसी प्रकार का उसमें और नहीं है शरीर की मग्नता और संसार की कोई वासना उसमें क्योंकि सर्वत्र सर्व रूप से व्यापक एक ही आत्मा है और वही आत्मा कि जो आप ही ( त्वमसि मे भूषणं त्वमसि मे जीवनम् ) श्रुति रूप आप ही अपना भूषण और आप ही अपना जीवन है यह निश्चय करके मैं ही एक धर्म रूप आत्मा हूं और कैसा आत्मा कि नहीं है राग विकार जिस में और नहीं है किसी प्रकार का बन्धन जिस में और नहीं है कोई पदार्थ भिन्न भिन्न करके जिसका और नहीं है भिन्न कोई नाम रूप वाली चराचर वस्तु जिस से और नहीं है किसी प्रकार का व्यूह जिस में और किसी दुःख करके रोना उसमें इस प्रकार जो एक ही आत्मा पूर्ण ब्रह्म मेध्रुव धर्म रूप है मैं हूं ॥ ६ ॥

अहं रुद्रेभ्यो रुद्रोऽहमादित्यः सोमो मा हंसः केवलं विभ्वो देवः ॥
इति धर्मस्ध्रुव धर्मो सदाचारो सर्वधर्मो सदादित्यो सदोहं ॥ ७ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

अहम् मैं आप ही हूं रुद्रः नाम आकाश मुक्त रूप में मुक्त स्वरूप वाला रामः राम ही राम एक नाम रूप और अहम् मैं आप ही हूं आदित्यः नाम सूर्य अर्थात प्रकाश चमत्कार सर्व प्रकार सर्व रूपों में एक ही रूप और सोमः नाम चन्द्र शान्ति स्वरूप सर्व रूपों में एक रस पक्षरहित निष्पक्ष शान्ति ही शान्ति का एक ही स्वरूप निर्मल आत्मा और मा मेरा ये स्वरूप आत्मा कैसा है हंसम् स्वासा रूप से नित्य मोक्ष ही मोक्ष अर्थात स्वतन्त्रता सहित केवलम् केवल ही माया मल से रहित एक ही विभ्वः सर्व रूप वाला सर्व आकृतियों वाला सर्व रूपों में एक ही नाना प्रकार के नाम रूपों में नाम रूप वाला देवः श्रेष्ठ अर्थात पवित्र आत्मा इति इस प्रकार इतना ही है धर्मः धर्म ध्रुवधर्मः ध्रुवधर्म आत्मधर्म सदाचारः सत्य रूप सत्य आचार सनातन धर्म सर्वधर्मः सब धर्मों का एक ही धर्म सदा सत्य ही सत्य उदित्यः प्रकाशमान निकला हुआ होना प्रकट होना सदः नित्य और वही अहम् मैं आप हूं

## आशय ।

हे मनु ! निश्चय करके कि मैं आप ही रुद्र नाम में आकाश कारण इन्द्र नाम महेश्वर सत पुरुष आदि रूप में मुक्त स्वरूप हूं और रुद्र नाम सभी शक्ति का नाम है और इस शक्ति का मैं स्वामी हूं इसलिये सर्व प्रकार की वस्तुओं को अपने एक ही रुद्र रूप में लय करना मेरा कार्य है क्योंकि इन्द्र कारण रूप में प्राणों का एक ही समष्टि रूप है और उसी का नाम रुद्र की सूक्ष्म अवस्था है कि एक ही अनुभव रूप है उसी एक ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५० अनुपम स्वरूप का आभास अहंकार रूप में विश्व का एकस्वरूप है कि जो चर्म नेत्र द्वारा देखने में आता है कि
उसके सार लक्ष को विना विचार बुद्धि ग्रहण नहीं करती क्योंकि मेरे रुद्र सूक्ष्म रूप में कोटानकोटि शिशुमार
चक्र इसप्रकार भरे पड़े हैं कि जैसे रवगोल रूपमें निर्मित रुद्र स्थूल चक्र चित्र है।

रुद्र स्थूलशिशु मार चक्र चित्र।

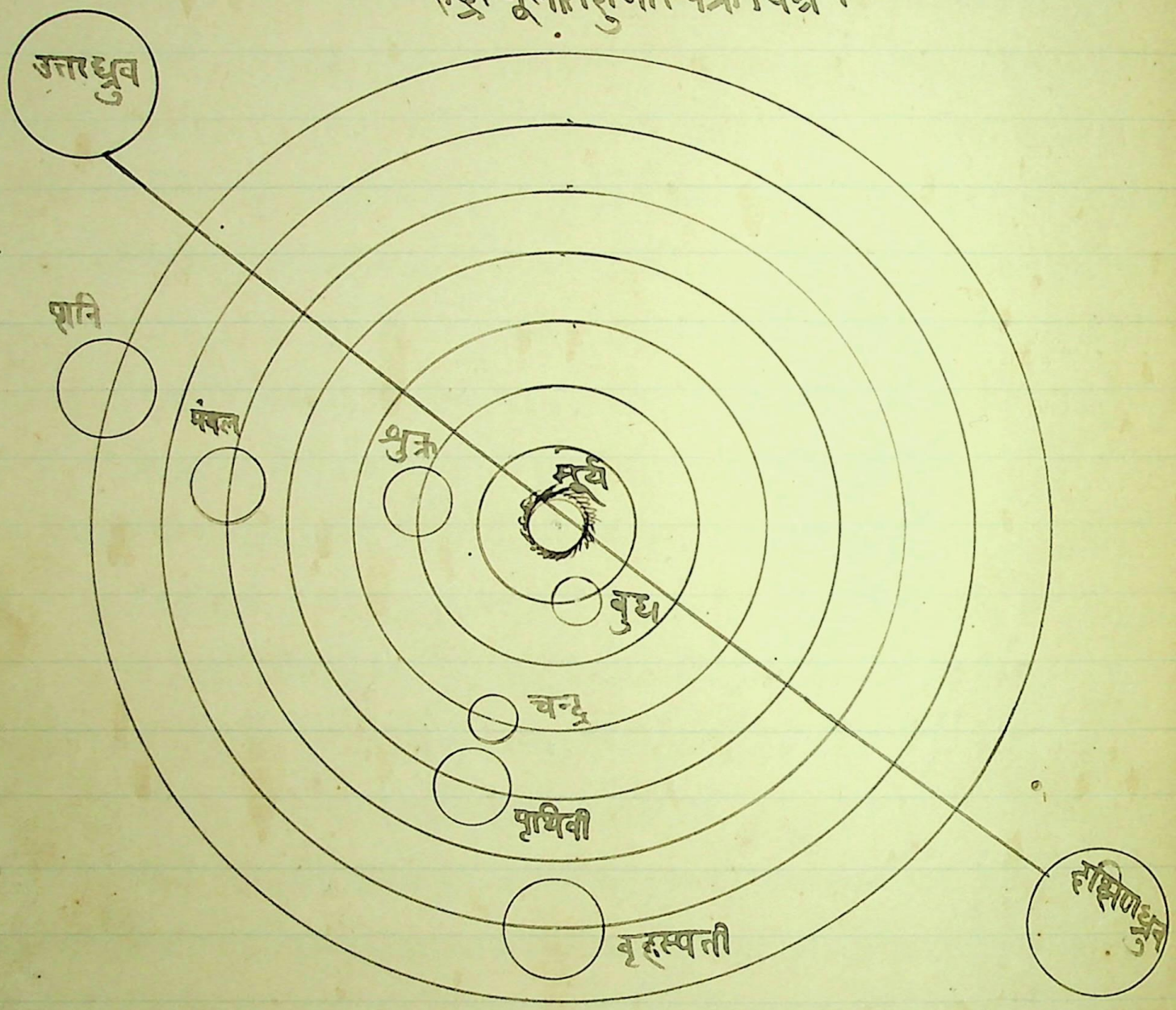


इस चक्र चित्र की भांति अनंत शिशु मार चक्र मेरे एक ही रुद्र स्वरूप में बने हैं बनते और बिगड़ते रहते हैं को
आकाश मेरे रुद्र स्वरूप का एक ही निश्चल अधिष्ठान है कि जिसमें वेद रूपी ब्रह्मा का अर्थात पवन अग्नि
जल पृथिवी का वासा है अर्थात वेद रूपी ब्रह्मा कि जिसका नाम कर्म भी है ऊपर वर्णन किये हुए चार
प्रकार के चार रूपों से अर्थात वायु अग्नि जल पृथिवी के रूप से इसी मेरे रुद्र रूप के अन्दर चलायमान
रहता है और प्राय ये है कि मेरी चर शक्ति द्वारा आकाश पवन बनजाता है और पवन की वेग की
परस्पर रगड से अग्नि बन जाता है और अग्नि और पवन के संयोग के संयोग से जल भाव को
स्वीकार करता है और अन्त में तीनों के मिलाप से राम रूप में पृथिवी आकार वाला बन करके
भक्त को लक्ष दिखाता है। और मैं आप कि जो रुद्र रूप में आदित्य नाम रखता हूं शिवरूप में ऐसे
ही शान्ति पूर्वक मेरे हंस रूप में हंस का हंस ही बना रहता हूं कि जिस प्रकार इस शिशुमार चक्र में
सूर्य का केवल चित्र बिन्दु रूप प्रतीत होता है क्योंकि मैं केवल स्वरूप विष्णु रूप में एक ही श्रेष्ठ
आत्मा हूं सोम [illegible] हूं कि जिस प्रकार सूर्य इस चक्र में है कि सर्व मण्डलों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपने ही चारों ओर उत्तर दक्षिण ध्रुव नाम मंडलों के सहारे से आप भी दोनों ध्रुवों सहित घूमता हुआ पृथिवी आदि मंडलों को घूमाता प्रतीत होता है और आप घूमता प्रतीत नहीं होता है इसी प्रकार मैं केवल आदि पुरुष अकाल पुरुष दिन रात्री से स्वतन्त्र स्वप्न जाग्रत सषुप्ति से स्वतन्त्र अर्थात नित्य मोक्ष ही रहता हूं क्योंकि सूर्य्य की भांति कि जिसमें पृथिवी मण्डल के दो मास अर्थात महीने की बराबर दिन और रात्रि होती है और पृथिवी के पांच वर्ष के समान एक मास और पृथिवी के साठ वर्ष के तुल्य एक वर्ष सूर्य्य में होता है इसी प्रकार नाना प्रकार की मण्डला कार आकृतियों में दिनरात के रूप में काल का रूप रहता है इस प्रकार एक एक मंडल ८४×८४००००० मण्डलों सहित दक्षण उत्तर ध्रुवों के चारों तरफ घूमते रहते हैं और इस प्रकार उत्तर ध्रुव व दक्षिण ध्रुव में सूर्य के २१६००×२ =४२२०० वर्ष के तुल्य एक दिन रात होता है सो जिस प्रकार उत्तर दक्षिण ध्रुव में इतना बड़ा दिनरात होता है और वह अचल ही प्रतीत होता है इसी प्रकार चन्द्रमा का एक दिन रात मनुष्यों के पांच वर्ष के तुल्य होता है और पृथिवी का एक दिनरात भी मनुष्यों के ६० वर्ष की बराबर होता है सो जिस प्रकार चन्द्रमा पृथिवी को अपना केन्द्र बनाकर उसके चारों तरफ घूमता है और सताईस स्थानों में से निकलता हुआ निक्षत्रों को सिद्ध कराता है इसी प्रकार अन्य मंडलों में भी दिन रात्री प्रकट होते हैं और राहू चन्द्र छाया और केतु पृथिवी छाया का नाम है इसी प्रकार कारण सूक्ष्म स्थूल तीन प्रकार के गुणों का नाम राम है और इस प्रकार राम नाम जो मेरे सूक्ष्म रुद्र रूप का छाया तुल्य आभास है इसी का नाम ॐ कार और श्री भी है कि जो ९ = ९ शक्ति रूप हैं अर्थात जैसे सूर्य बृहस्पती चंद्र का सात्विक भाव है और मंगल बुध शुक्र का राजसी और पृथिवी राहू केतु का तामसी भाव है इसी प्रकार विश्व का सर्व रूप राम नाम में तीन गुण रूप से सूर्य की भांति मेरे केवल रुद्र स्वरूप का आभास है इस प्रकार मैं अपनी चर शक्ति द्वारा कि जिसका नाम मरुत है आकाश रूप से सर्वत्र व्यापक हूं और वायु कहने में आता हूं सर्वत्र परिपूर्ण हूं व्यापक हूं और सर्व तारागणादि को अपने अन्तर लिये हुए एक रस हूं। इस प्रकार हे मनु मैं धर्म रूप हूं मनुष्य नाम आकृति और कोई भी नाम रूप मान वाली आकृति थिर पदार्थ नहीं है ये जितने नाना स्वरूप हैं मेरे पलक झपाकी का रूप हैं कि कोई भी इनमें से मेरे ध्रुव धर्म अनुसार नहीं है ये सब प्रकृति का स्वांग है इस प्रकार धर्म के लक्षण हैं और बस इतना ही ध्रुव धर्म का अर्थ है कि रुद्र नाम में आकाश मुक्त स्वरूप मेरा है और राम नाम में सर्व विश्व रूप सूर्य चन्द्र के रूप में हंस नाम मेरा है और केवल नाम से मैं ही एक आत्मा सर्व नाम रूपों वाला बना हुआ महान पवित्र आत्मा हूं। इस प्रकार ध्रुव धर्म इतना ही है। और इसी बात को जान लेने का नाम आत्म धर्म है सदाचार सत्य रूप सत्य आचार है सनातन धर्म है क्योंकि सब धर्मों का एक ही धर्म सत्य ही सत्य आदि से निकला हुआ जो एक ही नित्य और अचल धर्म है इसी धर्म का नाम अगम वेद रूपी एक ही आत्म धर्म है कि सब धर्म इसी एक धर्म से निकलते और इसी में अन्त को प्राप्त होकर लय हो जाते हैं कोई धर्म इसके बाहर नहीं है सदा रहने वाला केवल यही धर्म है और जो ये धर्म है वही धर्म नाम आत्म मैं हूं ऐसा जानो॥ ६॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५२

देशः न विदेशः हि आत्मानं अमृतत्वा अभिन्नं मोक्षमव्ययं ॥
गतो सर्व धर्मान हमे कं कुत्सितः काको वर्तते नरकं कथं मनः ॥ ८ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

देशः न विदेशः - नहीं है देश और प्रदेश का कोई रूप आत्मा में क्योंकि हि निश्चय करके आत्मा आत्मा को अमृतः अमृत रूप ही हि त्वा निश्चय करके तू अपना अभिन्नं एक ही मोक्षम् मोक्ष और अव्ययम् नाश से रहित जान क्योंकि गतः सर्व धर्मान अहम् एकम् तो सब धर्मों का तो मैं आप एक ही आत्मा हूं फिर कुत्सितः किस प्रकार से काकः किसको वर्तते वर्तना है - नरकम् नरक - कथम् - कैसे किस प्रकार से मनः हे मन अर्थात नहीं वर्तता है ॥

आशय ।

हे मनु ! निश्चय करके आत्मा में देश और विदेश का कोई व्यवहार नहीं है क्योंकि आत्मा अमृत रूप है और निश्चय करके वह आत्मा तू आप ही है कि जो एक ही मोक्षरूप अविनाशी स्वरूप है और फिर सब धर्मों के मार्गों में मेरा अपना एक ही मार्ग है तो फिर किस प्रकार से किस को नरक भोगना पडता है किसी प्रकार से किसी को भी नहीं हे मन इस प्रकार से तू निश्चय कर ॥ ८ ॥

मनसा कर्मणा वाचा न त्यज्यतां कदापि गृह मृग लोचना मनः ॥
अपवर्गो पवर्गो वा सानंदं हृदयं बहु प्रकारेण मां सर्व सिद्धयाः ॥ ९ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

मनसा मेरे साकार स्वरूप से कर्मणा प्रकट प्रतीत रूप से वाचा वचन वाणी करके न नहीं है त्यज्यताम् त्याग का करदेना कदापि कभी भी गृह समाई हुई लय हुई हुई मृग अन्होत लोचना - माया शक्ति का मनः हे साकार आकृति रूप मनु क्योंकि अहि ये एक अष्ठ प्रकार की शक्ति ही है स्वर्गः सर्व प्रकार का सुख और अपवर्गः मोक्ष का मेरा अपूर्व रूप वा और सानंद साकार रूप में मेरा आनंद ही आनंद रूप हि निश्चय करके हृदयम् यही मेरा एक रूप है यही मेरा एक स्वरूप है बहु अनंत रूप करके सर्व रूपों में एक रूप करके प्रकारेण नाना प्रकार से तरह तरह से मां मेरी सर्व संपूर्ण सब ही सिद्धयाः सिद्धियों की एक ही सिद्धि केवल सिद्धि ॥

आशय ।

हे मनु ! निश्चय करके जान कि मन वचन और कर्म से कभी भी स्त्री का कि जो माया रूप से लीन होकर के मेरे आत्म स्वरूप में रहती है अर्थात जो होने हुए भी नहीं होती है उसका त्याग मेरे स्वरूप में नहीं है क्योंकि यही मेरी आठ प्रकार की शक्ति अष्ट भुजा वाली उमा मूर्ति है कि जो सर्व सुख भोग और स्वर्ग रूपी मोक्ष का एक ही अपूर्व और आनंद ही आनंद रूप निश्चय करके मेरा ये एक ही रूप है और यही मेरा एक स्वरूप तरह तरह के नाम रूपों से नाना प्रकार के रूपों नामों में मेरा एक ही संपूर्ण सर्वत्र सर्व प्रकार की सिद्धियों में केवल सिद्धि का एक रूप है इस प्रकार से तू जान ॥ ९ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri

न जानामि किमपि मनः कथं तेन निर्म्मिता रचित अहि मृगलोचना ॥
विश्वास सात्वकिं विद्धि अहि स्वर्गमोक्ष सर्वसुरवं तर्वरूपं मनः मनः ॥ १० ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ ।

न जानामि नहीं जान सकता हूं मैं किमपि कुछभी मनः हे मन मेरे कि कथम् कैसे किस प्रकार से तेन इस निर्म्मिता निर्मल शक्ति स्वरूप को रचित रचकरके इसको अहि एकही रूप में आठ प्रकार से अषृकला मृगलोचना अन्हौन माया शक्ति को माया तथा प्रेम तथा स्नेह रूप में स्त्री का स्वरूप देकरके इस को एकही विश्वास सात्विकम् आपना सत्य रूप सत्य स्वरूप तू आप ही है पिति पवित्र आत्मा विद्धि जानता है अर्थात निश्चय किए हुए है क्योंकि अहि यही तेरी अषृकला अषृभुजा वाली प्रकृति शक्ति माया मूर्ति जोकि एकही स्त्री का रूप है यही है स्वर्गमोक्ष स्वर्गरूप में मोक्ष अर्थात आनंद और स्वतन्त्रता का स्वरूप सर्वसुरवम् संपूर्ण आनंद का पूर्ण सुरव स्वरूप सर्वत्र तथा औ सर्वरूप संपूर्ण सर्वत्र सर्व रूपों में एकही तेरा मनःमनः मथकरके

## आशय ।

हे मनु ! विश्वास करके जानले और इसबात के जानने की चिन्ता में मन पड कि जब मैं ही इस सर्व रूप सृष्टि संसार का रचने वाला हूं तो क्या कारण है कि मुझपर ये भेद नहीं खुलते कि मैं ने किस प्रकार से इस माया रूपी संसार को रचन क्या है क्योंकि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं कि मेरा निर्मल स्वरूप जो कि मेरा ही रचन किया हुआ है मैं ने अपने इस एकही आत्म स्वरूप को किस प्रकार से अषृकला रूप में अर्थात अन्हौन माया शक्ति के स्वरूप में प्रेम ही प्रेम स्नेह ही स्नेह से स्त्री का स्वरूप इसे देकर इसको एकही अपना सत्य रूप सत्य स्वरूप श्रेषृ रूप में एक ही आत्म आनंद रूप अपना बनाया हुआ है ! हे मनु इसबात को इस प्रकार से जानो ! कि ये अहि नाम जो अषृ कला अषृ भुजा वाली तेरी प्रकृति है अर्थात तेरी सर्व शक्तियों की विश्वरूप स्वरूप में नानाप्रकार और नाना रूप वाली जो एक ही शक्ति माया मूर्ति बन रही है ये एक स्त्री का ही रूप है और इस प्रकार ये स्त्री सर्व व्यापक रूप में स्वर्गसुरव के मोक्ष रूप से सर्वत्र सर्व रूपों में आनंद ही आनंद और सत्य रूप स्वतन्त्रता एक पूर्ण कोशवनी हुई है क्योंकि तेरी अहि नाम शक्ति का ही नाम मनः अर्थात मन मनु है और इसी का नाम हे मनु निश्चय करके जान सर्व रूपों में तेरा ही एक आत्मास्वरूप मन ही मन करके भरा हुआ है और इसी का नाम मीन अर्थात मीनः मच्छ का अवतार प्रथम अवतार तेरा है कि जो स्वयं भूरूप मनु के कमंडल में हुआ है और जिसने शङ्खा असुर को समुद्र में मार कर अर्थात संखासुर दैत्य को मार कर चार वेदों का प्रकाश किया है ! सो स्वयं के अर्थ प्रत्यक्ष प्रमाण के हैं और भव के अर्थ ११ के हैं और इस ११ के अर्थ का अभिप्राय एकादश रुद्र के अर्थ से एक ही आकाश स्वरूप सूक्ष्म आत्म स्वरूप तेरे के हैं और मनु के अर्थ माया रूप में मन शक्ति आत्मा के हैं कि जो जगत के साकार रूप में विश्व का एक रूप है और इसी का नाम आकाश कमंडल है इसमें मच्छ नी आत्मा का चेतन स्वरूप बीज रूप है और इसी को जीव कहा जाता है कि जो एक माया धोका है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५५ क्योंकि जीव कोई वस्तु नहीं है किन्तु सर्वत्र एक ही चेतन आत्मा सर्व रूप से व्यापक है और जो आत्मा का व्यापक स्वरूप है वही एक धोके के रूप में कल्पित रूप से विश्व का रूप है और ये विश्व रूप आत्मा में इसी प्रकार से रहता है कि जिस प्रकार मीन अर्थात मच्छली का समुद्र में निवास होता है क्योंकि चैतन्य आत्मा केवल है अखण्ड और अविनाशी है किंतु जीवन और मरण की संशय जो इस आत्मा को पृथक पृथक अपने ही मन कृत रूप देख कर और उन नाम रूप वाली आकृतियों को अपने से भिन्न प्रतीत करके और अपने को मिथ्या जीव वेद सिद्धान्त के लोप होने पर मानने से अर्थात अनात्म विश्चय की प्रवृतन के संशय को देख कर के अनात्म निश्चय से होता है अर्थात हे मनु तू ही ऐसी कल्पना करके किये जीव है अपने को आप ही आत्मा से भिन्न मानने लगता है इस प्रकार की कल्पना होने से एक प्रकार से शंका तथा संह्लासुर दैत्य का वेद रूप आत्मा को आप ही अपने आप संह्लासुर दैत्य बनाकर वेदों को समुद्र में लोप करदेना है क्योंकि माया रूपी संसार आत्म समुद्र है और इस समुद्र में ऊपर कहे अनुसार संशय अर्थात शंका संह्लासुर दैत्य है इसलिये शंका रहित होकर अपने को केवल आत्मा मानना और अनात्म निश्चय को पास न आने देना ही संह्लासुर दैत्य का मारना और वेदों को प्रकट करना है हे मनु वेद किस प्रकार प्रकट होते हैं और क्या हैं इस बात को भी तू इस प्रकार निश्चय कर कि मैं आप ही मनु नाम से माया रूपी मछली के रूप में वह एक वेद नाम सर्व विश्व का एक बीज हूं कि जो मनु नाम से माया के रूप में चेतन ही चेतन एक ही सर्व रूप आत्म शक्ति स्वरूप है कि जो मनु कमंडल नाम आकाश में रहते हुए चार प्रकार से स्वर ही स्वर रूप है क्योंकि स्वर का ही नाम वेद है इसलिये जो भी नाम रूप वाली आकृति है वही चार वेद के साकार रूप में मेरा ही मायावी एक साकार रूप ध्रुव धर्म आगम वेद स्वरूप है कि जिसमें चार वेद के चार रूप इस प्रकार होते हैं कि इनमें पहले वेद का ऋ नाम है और ऋक नासिका अर्थात नाक का नाम है सो नाक प्रथम वेद है दूसरे वेद का नाम यज है यज मुख का नाम है तीसरे वेद का नाम साम है और साम इन्द्रि का नाम है चौथे वेद का नाम अथ है और अथ गुदा को कहा गया है सो नाक मुंह लिङ्ग गुदा का नाम कि जिनसे स्वास चलता है चाहे वह साकार रूप में कोई आकृति हूं या न हो केवल एक ही सद्वि नाम हरी में एक ही आत्मा का स्वरूप है ये प्रथम विधि ध्रुव धर्म रूप से अपने आत्म स्वरूप के जानने की है क्योंकि हे मनु तू ही केवल एक आत्मा मन ही मन रूप से सर्वत्र सर्व रूप बन रहा है तेरे अन्य कहीं कोई दूसरी वस्तु कोई भी नहीं है इसलिये माया रूपी स्त्री ही तेरे सर्व सुख का भन्डार है इस प्रकार से तू इस को अपनी ही प्रथम मर्य्यादा ध्रुव धर्म आत्मनो आत्मयी बोधा रूप में जान क्योंकि यही है ध्रुव धर्म रूप में आत्म स्वरूप के कर्म रूप का वर्णन इस प्रकार स्त्री सर्व सुख की हेम [illegible] ॥ ॥ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

त्रैलोक्यजननी धात्री सौभागनी शान्ता सत्यशौच स्वर्गं ध्रुवम् ॥
तस्यां जातो रतस्तत्र हि संसारसंस्थितिः न बन्धनं संशयः ॥ ११ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ

त्रैलोक्यजननी - माया तीन रूपसे त्रिकालरूपमें तीन लोक की उत्पन्न करने वाली है अर्थात ये ही भूत भविष्य वर्तमान का तीन स्वरूप का एक ही नारायण नाममें वर्तमान आत्मा का रूप है इस लिये इसको धात्री सर्व शक्तिरूपमें स्त्री ही कहा जाता है सो माया रूपमें स्त्री क्या है सौभागनी सौभाग का स्वरूप है अर्थात सौभाग रूपमें स्त्री ही प्रवर्त रूपसे शान्ता - नाम शान्ति का रूप अर्थात सांन्यस्थ नाम में सन्यास का कर्म रूप है कि जो सत्यरूपसे पवित्रता सहित एकही नामरूपसे सत्यशौच सत्य आचार में स्वर्गम् सर्वसुख भोग का ध्रुवम् एकही आदि अनादि आत्मा का निश्चय स्वरूप है तस्याम् तिसी स्त्री से जातः उत्पन्न हुआ हुआ पुरुष यदि फिर भी रतः प्रेम करते हुए भोगकरे उसी से तत्र तौ तहां ये ही हि निश्चय करके संसारसंस्थितिः संसार की स्थिति है अर्थात ऐसी ही आत्म माया मर्य्यादा है और ऐसा करने में न बन्धनम् संशय नहीं है किसी प्रकार का बन्धन वा भय

## आशय ।

हे मनु ! आत्मा ही माया रूपमें स्त्री का स्वरूप है और यही त्रिकाल रूपमें एक अकाल स्वरूप है इसलिये सर्व शक्तिमान होने के कारण माया का धात्री अर्थात प्रकृति या स्त्री नाम है और फिर इसी स्त्री को सौभागनी कहा जाता है क्योंकि ये ही सन्यस्थ कर्म अर्थात आत्म संन्यास का सत्य रूप पवित्र स्वरूप है और सर्व सुख के भोग रूपमें निश्चय करके आदि अनादि आत्मा का एकही सर्वज्ञ सर्व व्यापक रूप है इसकरके तिसी स्त्री से उत्पन्न हुआ हुआ पुरुष निश्चय करके संसार स्थिति के अनुसार जहां वह नाना प्रकार की रूपवती स्त्रीयों से भोग करे वा स्त्री नाना प्रकार के मर्दों से भोग करती है इसी प्रकार माता पुत्र से वा पुत्री पिता से प्रेम करते हुए यदि भोग करें तो माया संस्थिति के अनुसार निश्चय करके इनमें से कोई भी किसी प्रकार की बन्धन में पड़ने वाला नहीं है सर्व प्रकार के बन्धनों से निर्भय वा स्वतन्त्र है अभिप्राय ये है कि विना विचार वर्ण जाति आदि के पृथक पृथक कर पुरुष वा स्त्री अपने प्रेम अनुसार आनंद आत्म सुख भोग करें तो भी किसी प्रकार का दोष नहीं है ऐसा करने की किसी प्रकार से कोई बन्धन रूप क्रिया नहीं है क्योंकि आत्मा में ज्ञान और अज्ञान दोनों नहीं हैं वह सुख रूप और आनंद रूप ही है ! और यही ध्रुव धर्म कर्म रूप में दूसरी मर्य्यादा अर्थात दूसरे कच्छ अवतार का वर्णन है क्योंकि धर्म और मर्य्यादा और कर्म सबही हित अनुसार होते हैं तथा धर्म नाम में कर्म और कर्म नाम में मर्य्यादा के वचन यही है कि अहित से निर्पेक्ष रहना और हित वाली का पक्ष न करना क्योंकि आत्मा निर्भय और निर्पेक्ष है और ऐसे ही है जैसे कि कूर्मः अर्थात कछुवा क्षीर सागर अर्थात समुद्र में अपने अङ्गों को खेंच कर रहता है क्योंकि माया नाम स्त्री से मैथुन अनुसार जो पुरुष की उत्पत्ति होती है वह इस प्रकार होती है कि मायारूपी संसार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५८ सागर का नाम समुद्र है और इस समुद्र में आत्मा निराकार रूप से अद्वैत रूप में एक ही है और पुरुष रूप में आदिम एक ही मनुष्य का नाम है कि जिस माया आकृति में इसकी रीढ की हड्डी मंदराचल पर्वत और प्राणों की वासुकी नाग है कि जो मैथुनि की डोरी है देह समुद्र का रूप है और इसमें ही सुर असुर मरकर अर्थात मारा जाकर कछुवे की पीठ पर रखे हुए मंदराचल पर्वत से और समुद्र के मथे जो से १४ रत्न उत्पन्न होते हैं कि जिनके नाम - चन्द्र १ लक्ष्मी २ उच्चैश्रवा ३ सुरादेवी ४ मणि ५ धन्वन्तरि ६ अमृत ७ ऐरावत ८ विष ९ रम्भा १० कल्पवृक्ष ११ शङ्ख १२ धनुष १३ और मद्य १४ - और फिर यही १४ रत्न आत्मा के १४ उपावतार भी कहलाते हैं कि जिनके नाम हैं स्वयंभव मनु १ नारद २ परशुराम संतोषी ३ संकादिक ४ मोहनी ५ - कपिल ६ - व्यास ७ दत्तात्रेय ८ पृथु ९ ग्रेव १० बद्री नारायण ११ हंस १२ धन्वन्तरि १३ यज्ञऋषभ १४ - सार ये है कि सर्व रूपों में आत्मा एक है और वही एक आत्मा नाना प्रकार सर्व रूपों में बीज रूप है और बीज आकाश काय अर्थात है कि जो एक ही धर्म रूप है इसलिये बीज ही एक पिंड रूप है यही बीज महेशासुर अपना नाम रखता है कि जो आत्मा का एक ही अमर नाम है इसी का सिर तो राहू अर्थात पुरुष है और धड केतु अर्थात स्त्री है तो जिस प्रकार राहू और केतू कोई वस्तु नहीं हैं केवल चन्द्र और पृथिवी की छाया का नाम हैं इसी प्रकार पुरुष और स्त्री पृथक पृथक करके कोई वस्तु नहीं हैं सर्व रूपों में नर और मादह करके एक ही आत्मा का रूप और नाम हैं इस प्रकार आत्मा बीज रूप है और बीज पेट अर्थात आकाश अर्थात क्षीर सागर का मिथुन रूप से पिंड रूप में कछुवे वा मंदराचल का रूप है कि जो नाना प्रकार की रूपमान नाम वाली आकृतियों में कछुवे की तरह पंच कोष रूप में अर्थात अन्नमय कोष प्राणमय कोष मनोमय कोष विज्ञानमय कोष आनंदमय कोष के इन पांच प्रकार के खजानों तथा घरों में सिमटा पडा रहता है अर्थात इतना सूक्ष्म होता है कि किसी प्रकार से देखने में नहीं आता सो यही बीज अर्थात आत्मा १४ रत्न रूप में चार अन्तः करण पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय रूप से नाना प्रकार के नाम रूपों में एक ही शरीर रूप से एक ही एक ही आत्मा है कि जो १४ प्रकार से १४ उप अवतारों के स्वरूप में एक ही निष्कलंक दशमावतार रूप है और २४ अवतारों के स्वरूप का एक ही सिद्ध नाम (जिन) अपना बताता है जिन क्या वस्तु है अत्यन्त सूक्ष्म कि जो देखने में न आये केवल आत्मा का नाम और आत्मा का स्वरूप है कि जिसने अपनी माया शक्ति से अपना भव रूप बनाया हुआ है और १४ उप अवतार रूप में भिन्न भिन्न अर्थात पृथक पृथक कर के आप ही अपने को देखने वाला व आप ही अपने को इस प्रकार शिक्षा देने वाला आप ही अपना गुरु और आप ही अपना शिष्य बन रहा है (१) आत्मा प्रकट करता है कि मेरा नाम स्वयंभव मनु है अर्थात मैं प्रत्यक्ष प्रमाण में एक ही नाम रखते हुए आकाश और आकाश रूप में माया और माया रूप से नाना प्रकार की काया और नाम रूप बना हुआ हूं कि जो आप ही अपना द्रष्टा हूं अर्थात देखने वाला हूं और आप ही नाना प्रकार से मन इन्द्रियें बना हूं कि जो सर्वत्र व्यापक और सर्व रूप में एक ही स्वरूप शुद्ध आत्मा हूं ॥

(२) विश्व के सर्व प्रकार के नाम और रूपों में मेरा एक ही नाम नारद ऋषि है और मेरा एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसी नारद नाम का नाम चित्तेंद्रिय है कि जो ३० प्रकार की प्रकृति का एक ही स्वरूप है और सर्व प्रकार के नाम रूप आकृतियों को उत्पन्न करके पालन पोषण करके और फिर उन सब का नाश कर देने वाला है ॥

(३) मेरा तीसरा नाम परशराम सन्तोषी है और इसी का नाम बुद्धिइन्द्रिय है कि जो यम्दग्नि रूप रेनुका स्वरूप है अर्थात ज्ञान और अज्ञान दोनों का एक ही रूप है ज्ञान मेरा पिता और अज्ञान मेरी माता है यम्दग्नि धर्म रूप मेरा ही नाम है और ये दिन के प्रकाश मान स्वरूप में सर्वत्र मेरा ही एक प्रकाश है ! इसी प्रकार रेनुका अधर्म रूप में मेरा ही एक नाम है और इसप्रकार रात्रि के स्वरूप में सर्वथा मेरा ही एक प्रकाश है ज्ञान का नाम ही अज्ञान और अज्ञान का नाम ही ज्ञान है इसप्रकार माता और पिता दोनों का ही सिर काटने वाला और दोनों का एक ही स्वरूप अक्षय रूप बाल ब्रह्म सहस्रा बाहू दैत्य का मारने वाला अर्थात सहस्र पुरुषः पुरुषादिक का संहारने वाला अर्थात नाना प्रकार के नाम मान रूपी अभिमान का नष्ट कर देने वाला अर्थात तीन काल वा सात प्रकृतियों के विस्तार ३४७=२१ के अर्थात भूत भविष्यत वर्तमान के २१ प्रकार के नाम रूप वा मान अभिमान का कि जिसका प्रवृतन माया रूपी संसार में होना रहता है और क्षेत्रय रूप से क्षेत्र धारी बनना है उन २१ प्रकार के क्षेत्र धारियों का २१ ही रूप से क्षय कर देने वाला अर्थात सर्व प्रकार के इच्छा वा आशा को अपने आप में ही शान्त करके रखने वाला केवल बाल ब्रह्म बुद्धि इन्द्रिय परशराम संतोषी मैं हूं ॥

(४) बालबुद्धि रूप में मेरा ही नाम संकादिक ध्रुव इन्द्र है कि जो निरन्तर पांच वर्ष को अर्थात पांच प्रकार के पांच स्वरूप आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी के एक ही अचल पद रूप में अमर ब्रह्म ध्रुव धर्म आगम वेदी ध्रुव मैं हूं कि जो सर्वत्र अहंकार इन्द्र रूप से स्थित हूं और कभी नाश को प्राप्त न होकर एक ही अविनाशी निरन्न रूप हूं इसप्रकार मैं चार प्रकार के चार रत्न एक ही नाम रूप में चतुर्भुज अन्तः करण का एक ही नाम अहंकार नारायण हूं ॥

(५) मेरा ही नाम पांचवा नाम मोहनी मूर्ति अवतार में दैत्यों से अमरत का घड़ा छीन लेने के लिये अर्थात सर्व अज्ञान रूप पदार्थों से ज्ञान रूपी अमरत पान करने के लिये क्षीर सागर में अर्थात विश्व रूप में अपने आप को ही देखने और अपने आप पर ही मोहित होकर अपने आप को ही प्रेम करने के हेतु मेरा नाम नेत्रज्ञानेंद्रिय है ॥

(६) मेरा ही छटा नाम कपिल अर्थात कुरूप करने वाला पिता और देवहूति होने वाली माता है कि जो सांख्य का प्रकट रूप है अर्थात नासिका इन्द्रिय का एक ही स्वरूप है कि जिस से प्राण अपान रूप में श्वासा च्छवास चलता है और सुगन्धी रूप से ही शुद्ध अशुद्ध गन्ध की परीक्षा करती है किन्तु फिर भी वेर भाव से वही मेरा एक कपिल स्वरूप स्वतन्त्र रूप से विश्व रूप बना हुआ सर्व रूप से सर्वत्र व्यापक है और एक ही मीनावतार रूप में सर्वत्र आदि अनादि रहित अनंत रूपी रूप में विश्व में मेरा ही अवतार रूप है ॥

(७) मेरा ही सातवां नाम वेद व्यास अर्थात पराशर पिता रूप है कि जो पूर्ण पुराण अर्थात प्राक स्वरूप में पुराचीन एक ही वेद अगम वेद रूप में नाना प्रकार के भेद कुराण पुराण शास्त्र श्रुति स्मृति जिन्द उस्ता तोरियत ज़बूर इन्जील आदि ग्रन्थों के रूप में सर्व का एक ही रूप ब्रह्म सूत्र नाम है और उसी ब्रह्म सूत्र का एक नाम जिह्वा है कि जो प्रा प्रकृति रूप में सर्वत्र सर्व रूप में नाना प्रकार की वाणियों का एक ही स्वरूप शब्द अर्थात कल्मा या कलाम मेरा नाम है इसी का नाम अर्थात व्यास जिह्वा इन्द्रिय है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५४

किजो दूसरे कूर्मः अर्थात कछुवे के अवतार रूप में मेरा दूसरा अवतार है कि जिसकी पीठ पर मुंद्राचल नाम का पर्वत सर्व प्रकार का देह रूपी भार रखा हुआ है और जो शब्द रूप में नाना प्रकार के रत्न अमृत रूप और नाना प्रकार के विषों को एक ही रूप से उत्पन्न करता रहता है और फिर भी कच्छप रूप ही है ॥

(८) मेरे आठवें आत्मस्वरूप का नाम दत्तात्रेय है कि जो तीन प्रकार के रवि ज्ञान रूप से अर्थात त्रिकाल भेद से एक ही अत्रि नाम पुरुष पिता अर्थात एक ही अकार के तीन स्वरूप भूत भविष्यत वर्तमान के रूप में एक ही अकाल रूप का अनसूया नाम में मेरा ही होते हुए अन्होत रूप से श्रोत्र अर्थात कानेंद्रिय नाम है कि जो सिद्ध रूप में एक ही आत्म जिन रूप २४ प्रकार की शक्तियों का एक ही स्वरूप है अर्थात क्षमा १ मुधर्शौच २ निर्द्धिनिर्पक्ष ३ निरासक्त ४ व्यापक निसंग ५ समरस निर्घट एक रूप ६ सर्व चेतन स्वरूप ७ निश्चित ८ निश्चल ९ अगम १० अनामय ११ आचार विचार रहित १२ यथार्थ निर्तत्व १३ काम रहित अक्रिय १४ राग रूप रहित १५ निर्लोभ १६ आशा रहित १७ भोग रहित १८ अचिन्त १९ एकं एकाकी अर्थात एक ही एक मौन २० शरीर आकार रहित २१ एकागर चित २२ निर्विकल्प २३ अद्वैत रूप ध्रुव धर्म ध्रुव स्वरूप आत्मा २४ कि इसी श्रोत्र कानेंद्रिय का नाम वराह अर्थात सुगर वा सुवर है कि जिसकी उत्पति ब्रह्म छींक से है आशये है कि शब्द का नाम ही ब्रह्म छींक है और शब्द आत्म कर्म के निष्कर्ष रूप का नाम है इसी से दैत्यी अर्थात माया कृत उत्पात के पुत्र हिरण्याक्ष दैत्य की उत्पति क्रिया का नाम अर्थात नाना प्रकार के मिथ्या भ्रम शंङ्का संशय और भयों के संसार में परिवृतन करने से आत्म ज्ञान ब्रह्म ज्ञान नष्ट हो जाता है अर्थात सर्व संसार अपने को आत्मा से भिन्न मानकर अपने को शरीर रूप नाम वाला ही एक पदार्थ जानने लगता है और इस प्रकार पृथिवी जो आत्मा के नाम रूप आत्म शरीर का नाम है गूरूपी बन जाती है क्योंकि शरीर क्या है गू मूत्रादिक की पोट कि जिसका खाने वाला वराह है और वराह सत्य शब्द आत्मा का नाम है कि जिसका आकाश स्वरूप है किंतु शब्द ही स्पर्श रूप है कि शब्द और स्पर्श के रूप में मरुत नाम से प्रसिद्ध है और हिरण्याक्ष जल रूपी चित्र वाली बन्धन अर्थात जिस प्रकार जल पर खेंचा हुआ चित्र मिथ्या होता है और मरुत के वेग से तत्काल ही नष्ट हो जाता है एसे ही हिरण्याक्ष हंकार रूपी मिथ्या नाम रूप मान बड़ाई की गर्भ रूपी बन्धनों का नाम है कि जो नाम रूप करके बन्धन रूप में असत्य प्रकार की बंधनें हैं इन मिथ्या गर्भ बन्धनों को अद्वैत रूपी वराह के दांत से फाड कर संसार को निर्भय कर देने का नाम हिरण्याक्ष दैत्य को मार कर निर्मल आत्म तत्त्व रूपी पृथिवी को मल मोत्र के अधिष्ठान से बाहर लाकर नर्भय पदी आत्म ज्ञान ध्रुव धर्म कर्म रूप में मर्य्यादा के प्रकाश करने का नाम ही वराह कर्म मर्य्यादा है और इस प्रकार से मेरा दत्तात्रेय आत्म अवधूत नृति अर्थात तीसरा वराह अवतार नाम है ॥

(९) मेरे आत्म स्वरूप का नवां नाम राजा पृथु पति है कि जो बीन की रान से प्रकट हुआ है और जिसने पृथिवी को गाय बनाकर दूहा है अर्थात औषधि निकाली है सो मेरे इसी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्वरूप का नाम त्वचा इन्द्रिय है और मेरे इसी आत्मस्वरूप का नाम मेरा चतुर्थ अवतार है अर्थात
चौथे अवतार के रूप में मेरा नरसिंह नाम है कि जिसने स्तंभ से निकल कर हिरण्यकश्यप दैत्य का उदर
अपने नाखूनों से फाड़ डाला और उसके पुत्र प्रह्लाद को अपनी शरण में ले लिया ये मेरे एक ही आत्मा रूप के
तीन रूप होने और सर्व रूपों में एक ही शरीर के सर्व शरीर रूप होने की वह गुप्त शिक्षा अनात्मी पुरुषों के लिये
है कि जो भी आत्मनिष्ठा से एक क्षण के लिये अपनी अन्तर्य दृष्टी करके विचार पूर्वक देखें तो तत्काल ही
निश्चय हो कि हिरण्यकश्यप अहंकार रूपी रूप में जिस प्रकार आकाश में घटा से आकाश निर्मल देख
नहीं पड़ता है इसी प्रकार अनात्मी निश्चय से कि जो आत्मा का वास्तव में निर्मल स्वरूप है देखा नहीं
जाता है सो बीन रूप से घूंटे हुए आकाश को कन्या जाता है और इसी का नाम गर्भवति स्त्री के रूप में गर्भ
का नाम रूपदुर्घट इन्द्र जाल है अर्थात माया रूपी गर्भ बन्धन रूप में हिरण्यकश्यप दैत्य को अर्थात
माया को बन्धन ही बन्धन कहा जाता है किंतु आत्मा निर्बन्ध है अर्थात स्वतः मोक्ष रूप है और
पृथ्वीपति है अर्थात सर्व शरीरों का राजा है सत्यरूप में सूर्यों का सूर्य एक ही प्रह्लाद नाम ध्रुवधर्म रूप सत्य
सूर्य है नरसिंह रूप है अर्थात नरों में श्रेष्ठ पवित्र आत्मा है इसलिये गर्भ की बन्धन आत्मा के लिये
कोई बन्धन नहीं है क्योंकि ये भी आत्मा की एक माया शक्ति है सो बीन नाम स्त्री का है और इसी का एक
नाम पृथिवी रूपी गाय है औषधि इसका दुग्ध है और इसकी कुंचा अर्थात छात्यों का नाम त्वचा है स्त्री की रान अर्थात
जांघ स्तंभ रूपी रक्षम हैं कि जिस से प्राणों का अवकाश होता है सो जब त्रैलोक्य जननी माया धात्री
रूप से सौभाग्य का रूप पाती है अर्थात पुरुष से आत्म आनंद करती है तो स्तंभ रूपी प्राणों की तथा
प्राण वायु की रगड़ से आत्म शक्ति कि जिसका नरसिंह रूप है हिर(१) ण्य(२) कश्यप(३) नाम माया का रूप धार
तीन प्रकार से तीन प्रकार के तीन गुण धारण करती है अर्थात सत्(१) रज(२) तम(३) कि जिसका आश्रय है
हिर शब्द से जन सत रूप और ण्य शब्द के अर्थ हैं दो प्रकार का और कश्यप के अर्थ हैं सत रूपी
दो प्रकार के जल का एक ही नवीन कच्छवे का रूप अर्थात माया रूपी बीज कि जो इस प्रकार से
माया अर्थात आत्मा का आत्मयी स्वरूप कि जो वास्तव से बीज का सूक्ष्म रूप है बीन रूपी आकाश
में प्रवेश करता है इसी प्रवेशता का नाम है शुक्राचार्य की पठशाला में शिक्षा ग्रहण करना अर्थात
बृहस्पती का शुक्राचार्य के पास विराजमान होना अर्थात सत स्वरूप आत्मा का बीज रूप से बृहस्पति
के रूप में माया रूपी अन्धकार में घुस कर उस को प्रकाश देना अर्थात माया रूपी अहंकार में भी उस
सूक्ष्म बीज का अपने आत्मस्वरूप को जानना और ॐ अहमेवो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रुति
अनुकूल कर्म करना क्यों कि आत्मा कर्म ही कर्म रूप है सो स्त्री की स्तंभ को फोड़ कर निकलना
हिरण्यकश्यप का पेट चीरना है और फिर माता की छाती पर बैठ कर दूध पीना हिरण्यकश्यप
की छाती का खून पीना है अर्थात पुत्र का माता से भोग करना है और ऐसी ही संसार की मर्य्यादा
है इसी प्रकार पुत्री का पिता की छाती को मुंह में लेना लौकिक में पुत्री का पिता से भोग करना ही कहा
जाता है और इसलिये ये निर्बन्ध और निर्दोष भोग हैं पुनः में ही निवृत संन्यास आत्मरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(१०) मेरे आत्मानंद आत्मस्वरूप का दश्वा नाम ग्रेव है कि जो ऐरावत अर्थात हस्त का एक नाम है और जे मधुकैटभ दैत्य के मारने के लिये प्रकट हुआ है और येही वामन नाम का मेरा पंचमावतार है कि जिसने तीन पांव पृथिवी राजा बल से मांग कर उस को छला है और छल कर पाताल का राजा बनाया है इस अपने वामन स्वरूप का मैं आप ही कश्यप पिता अर्थात सर्व शक्ति स्वरूप में एक विनोदनी कछुवे का रूप हूं और आदैत्यी माता के स्वरूप में मैं आदि अनादि रहित निरन्तर सर्व रूपों में अपने आप ही अपने एक ही चेतन स्वरूप का कर्म ही कर्म रूप में प्रकाश रूप स्वरूप हूं इस प्रकार मेरे अचिन्त बाल ब्रह्म स्वरूप का नाम वामन है और एक पांव मेरा पृथिवी मेरी माता शक्ति का स्वरूप मेरा है और दूसरा चरण मेरा आकाश रूप में पिता मेरा है और तीसरे चरण रूप में मैं आप ही अद्वैत रूप से केवल आनंदघ्न वामन हूं कि मेरे से अतिरिक्त कहीं भी कुछ नहीं है क्योंकि मैं आप ही अपना पिता आप ही अपनी माता और आप ही अपना पुत्र हूं और इस प्रकार माता पिता पुत्र के तीन नामों से मेरा एक ही नाम त्रैलोक्य जननी नाम से धात्री नाम है बल रूप से धात्री ही सर्व रूप स्वरूप की पाताल रूपी लोक बनी हुई अगम वेदरूप में एक विश्वामित्र स्वरूप की अखण्ड नाथ नाम रखते हुए राजा है और इसी का नाम मधुकैटभ दैत्य है अर्थ काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य के रूप में जो नाना रूप में संसार का रूप है इसमें भी मात्सर्य के नष्ट करने को स्वतन्त्रता सहित रहने वाला ऐरावत मैं हूं अर्थात ग्रेव नाम में हस्त और हस्त रूप में कर्म ही कर्म अर्थात काम ही काम मैं हूं अर्थात अहंकार रूपी देह के नाम और रूप रंग और मान बडाई से स्वतंत्र मैं हूं कि इस प्रकार का कोई व्यवहार मेरे स्वरूप में नहीं है क्योंकि मैं अनंत रूप होने कारण आप ही आप विप्र रूप से सर्व शक्तिमान होने पर भी केवल अर्थात स्वतन्त्र ही हूं ॥

(११) मेरे आत्मानंद स्वरूप का ग्यारवां नाम बद्री नारायण है कि जो धर्म भारिजा से तप करने के लिये हुआ है और यही षटांग रूप में मेरा षष्ठो हरि अवतार है कि जो पाद अर्थात पांव का स्वरूप है कि जो सरोवर रूपी संसार में गज और ग्राह का एक ही रूप है क्योंकि दोनों से कर्म होता है यदि कर्म करने से हाथ खेंच लिया जावे अर्थात मैं निष्कर्म होजाओं तो तत्काल ही ये संसार नष्ट होजाये क्योंकि तीनों काल में मुझे कुछ भी करना नहीं है क्योंकि मैं आत्मा स्वयं ही कर्म कर्म रूप हूं और कर्म के करते हुए वा न करते हुए भी मोक्ष ही मोक्ष स्वरूप हूं क्योंकि कर्म करते हुए भी मेरे को किसी प्रकार की बन्धन का कोई संशय नहीं है मैं सर्व रूप में सर्व प्रकार से मोक्ष ही मोक्ष हूं यदि सर्व रूपी सरोवर संसार में किसी रूप करके कर्म न किया जाय तो इसी का नाम है गज पर भीड़ पडना और सरोवर में ग्राह का उसके पांव को पकड़ लेना ! क्योंकि बद्री नारायण का नाम ही आत्मानंद हरि है और हरी को विष्णु नाम से पुकारा जाता है और विष्णु कर्म आत्मा रूप से मेरा स्वरूप है और कर्म नाम में मेरा ही तप रूप से धर्म भारिजा अर्थात सर्व सुखानन्द के स्वरूप में एक ही कर्म आत्मा नाम है कि जो प्रवृति में निवृति ही निवृति का केवल मोक्ष स्वरूप है अभिप्राय ये है कि कर्म करने का नाम ही हरि भजन है आप ही आप अपने मुक्त आत्मा स्वरूप का नाम है सो संसार में सर्व धर्मों से उत्तम धर्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जो आदि आत्म धर्म है ध्रुव धर्म है आगम वेद रूप है वही शान्ता नाम संन्यास अर्थात सर्व प्रकृति धर्म रूप ५१।
में एक ही प्रवृत धर्म रूप में गृहस्थ कर्म रूप नाम मेरा है कि जिस धर्म में किसी प्रकार का बन्धन और संशय
नहीं है क्योंकि मिथ्या मुक्त के लिये मुझे कुछ करना नहीं है क्योंकि मैं स्वयं मुक्त हूं सो धर्म का अर्थ है कर्म
और कर्म का अर्थ है सर्व प्रकार के कर्मों से अति उत्तम कर्म गृहस्थ पूर्वन अर्थात अपने सर्व रूपी
आत्म स्वरूप के नाना प्रकार के नाम रूप वाले कुटुम्ब की अर्थात इस प्रकार आप ही अपने सर्व आत्म
स्वरूप के एक रूप की पालन और पोषन करना। सो इस्त्री का प्रयोजन इस अवतार रूप से मेरा ये है कि
मैं एक ही आदि पुरुष हूं और ग्राह रूप से मैं ही काम क्रोध लोभ मोह रूपी मात्सर्य अर्थात दुख रूपी
संघात को स्वीकार उन्को भस्म कर डालने वाला हरि नाम विष्णु अर्थात नाना प्रकार से नाना प्रकार
के कर्म रूपी कार्यों में कर्म ही कर्म मैं आत्म पुरुष बना हुआ हूं इस प्रकार मैं नर नारायण बना हुआ
आप ही हरि हर महेश्वर जगत पति विश्व रूप का आधार हूं क्योंकि हरि नाम के भजन वा स्मरण
का अर्थ आशय यही है कि निश्चय करके स्वर्ग सुख भोग रूप जो धर्म है इसमें स्त्री पुरुष बाल युवा का
कोई भी विचार व्यवहार नहीं है और नहीं ऊंच नीच जाति का कोई भेद है सर्व का प्रवृत्त रूप में एक
ही आत्मा के अनंत नाम और कर्म ही कर्म रूप है इस प्रकार माया रूपी स्त्री से उत्पन्न होने वाला पुरुष
यदि उसी माया से भोग करता है तो इसमें इस प्रकार भोग करने से अर्थात कर्म करने से किसी प्रका
की भी हानि वा किसी प्रकार के बन्धन का संशय नहीं है क्योंकि आत्मा में वैर नहीं है सर्व मित्र स्नेह है
(१२) मेरे ज्ञानानंद आत्म स्वरूप का बारवां नाम हंस है अर्थात बारहवां उपावतार हंस है कि जो सनकादिक
के तर्कों अर्थात स्वालों के उत्तर देने के लिये हुआ है और ये निर्गुण का स्वरूप है और मेरे इसी स्वरूप का नाम सप्तमो
अवतार राम अवतार है कि जो अषूर्ण कला धारी अवतार संसार में विख्यात है और मनुष्य देह रूप में होने के कारण
अपने धार्मिक चरित्रों से मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहलाता है कि जो मर्य्यादा व्यवहार पालने में परंधर्म अर्थ
शिक्षक एक सिद्ध स्वरूप मेरा है और इसी मेरे स्वरूप का नाम शिव और इसी का नाम पार्वति है और
इन दोनों नामों का एक ही नाम में तीसरा नाम (रामः) नाम मेरा है और राम शब्द के अर्थ ३ के हैं
कि जिसका अभिप्राय भूत भविष्यत वर्तमान के त्रिकाल रूप में एक ही अकाल स्वरूप नाम आत्मा के हैं कि जो
रामायण रूप है और रामायण शब्द के अर्थ ५ के हैं अर्थात राम ३ और अयण २ इस प्रकार रामायण शब्द
का अर्थ ५ है इस प्रकार एक ही आत्मा सर्व रूपों अर्थात शरीरों में तीन गुण सत् रज् तम् के रूप से
पुरुष और प्रकृति के दो स्वरूपों में पंच भूत रूप से एक ही अकाल स्वरूप है और बाल ब्रह्म रूप है
बस इतनी ही बात के जानने का नाम परं धर्म अर्थ का जानना और परं धर्म अर्थ को जान कर मर्य्यादा
और व्यवहार का जान लेना है और इसी का नाम आत्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान है। और संकादिक का
भी माया प्रकृति रूप पार्वति स्त्री के स्वरूप से आप ही अपने को पुरुष मान कर अर्थात अपना ही
शिव स्वरूप हंस रूप होना जान कर आप ही ने अपने से इस प्रकार तर्क किये हैं - श्रुति॥ किं रामायणं
किं हि रामः किं विश्वः हे हंस पतिः॥ किमे रूपो किं ने रूपः किं प्रकृति पुरुषो सारम्॥ फिर इस ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५

श्रुति तर्करूप के उत्तर में दूसरी श्रुति अवनरूप से मेरा ये उत्तर है श्रुति "ने वा इं हि एकं ध्रुवं ना हि भिन्नं भेद विचारः ॥ प्रणव ही हं एकं ध्रुवं विश्वं सर्वं पंच विकारः ॥" इन दोनों श्रुतियों का अर्थ अर्थ ये है कि संकादिक रूप से श्री नाम शक्ति मेरे से स्त्री रूप बनकर तर्क करती है कि रामायण क्या है और राम किसे कहा जाता है और विश्व क्या क्या पदार्थ है हे हंस पति मेरे को बताओ और ये भी प्रकट करो कि मेरा रूप क्या है और तुम्हारा स्वरूप किस प्रकार का है और प्रकृति वा पुरुष का तात्पर्य क्या है। इसके उत्तर में जो दूसरी श्रुति है उसमें इन तर्कों का मेरी ओर से ये उत्तर है कि - हे श्री शक्ति तू और मैं निश्चय करके एक ही निश्चय स्वरूप ध्रुव आत्मा हैं और नहीं है निश्चय स्वरूप एक आत्मा में भिन्न द्वैत का कोई भेद वा विचार क्योंकि प्रणव नाम प्राणों के रूप में निश्चय करके मैं एक ही निश्चय स्वरूप आत्मा हूं सर्वत्र किंतु विश्व के रूप में जो सर्वत्र सर्व रूप से व्यापक मेरा स्वरूप है इसी का पंचभूतों के रूप में मेरे एक ही राम नाम के चरित्रों का रूपकमय चित्र है और चरित्रों का ही रामायण नाम है कि जो शरीर रूप में पंचभूत का सर्व नाशमान रूप है इस प्रकार एक एक देह मेरे एक सत्य आत्म रूप का ही मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामायण के रूप में राम रूप है कि जो पूर्ण ब्रह्म ज्ञान रूप में पूर्ण आत्म शक्ति का कोश है कि जिसका ये प्रमाण है -

— प्रमाण —

केवल राम नाम महिमा अर्थात रामायण आत्म सिद्धान्त

और

शारिरक धर्म अर्थ मर्य्यादा में आत्म शक्ति सार

हे मनु! निश्चय कर मेरे चेतन निर्विकार निराकार स्वरूप से जब अचिन्त रूप में चिन्ता की जाती है तीन चिकारयां उठती हैं तो उन से पृथक पृथक रूपों में १८ तत्व का एक सूक्ष्म लिङ्ग शरीर बनता है और वही सूक्ष्म लिङ्ग शरीर बीज रूप से बीज के मध्य प्रवेश करके स्थूल रूपी देह को ब्रह्मात्म शक्ति अनुसार प्रकट कर देता है सो इस प्रकार इस प्रकट होने वाली साकार ब्रह्म आकृति का नाम एक ही नाम अविद्या पुरी होता है अविद्या ४ को कहते हैं कि जो अन्तः करण का एक नाम है इस लिये इसी अन्तःकरण का नाम ब्रह्मा भी है कि यही इस देह को रचन करता है और इसी का नाम ब्रह्म और इसी का नाम वामन और इसी का नाम राम इसी का नाम लक्ष्मण इसी का नाम भरत और इसी का नाम शत्रुघ्न इसी का नाम दशरथ वसिष्ठ विश्वामित्र जनक परशुराम बाली सुग्रीव अंगद रावण कुंभकरण मेघनाद विभिषण अहिरावण सीता जानकी सुमित्रा केकई और कौशल्या महाबीर बाल्मीक लङ्का नासिक आदि अनेक नाम रूप होते हैं क्योंकि -

(१) पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय का दशरथ है कि जिन की दश हजार शक्तियों से देह रूपी नगर में ज्ञान और कर्म से राज किया जाता है।

(२) दशरथ राजा की तीन रानियां इसी देह में सतोगुण रजोगुण तमोगुण रूप से निरन्त राजा की सेवा करती हैं कि जिन के नाम कौशल्या सुमित्रा और केकई होते हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(२॥) ज्ञानेन्द्रियों को काम में न लाकर कर्म इन्द्रियों द्वारा विषय भोग में विशेषकर प्रवृत्त होना और राग द्वेष के साथ कार्य करना दैत्यों को उत्पन्न करके आप ही को अपना शत्रु बनाना है और आप ही अपने से लड़कर कहां जाओगे! सो इस प्रकार की प्रीति का नाम अनुभव श्रुति है इसी का नाम इन्द्र को सहायता करना है कि ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से सर्व कार्यों को सिद्ध करदेना है और ऐसी सिद्धि तब ही प्राप्त होती है कि जब अज्ञान नष्ट हो जाता है इस प्रकार कैकई का हाथ रथ अर्थात शरीर रूपी रथ में धुरी का काम देता है और फिर विजय प्राप्त हो जाया करती है सो अज्ञानता से ठोकर खाकर मनुष्य गिर कर भी सिंभल जाता है सो अज्ञान से दो प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती हैं एक आप दूसरी बार चोट न खाना और दूसरों को चोट खाने से बचाना इसी का नाम है राजा दशरथ का रानी कैकई को दो वरदान देना - सो आत्म मर्य्यादा यही है कि किसी कार्य के सिद्ध करके प्रफुल्लित होने को उसी में लगे रहना और दूसरों को न देखना आप ही हे मनु अपना नाश करना है क्योंकि विजय प्राप्ति की उत्तम रीती यही है कि धीरः धीरः एक एक पांव बढ़ाना और चारों ओर से चौकन्ने रहकर जितनी देर में कि तुमको आपही अपनी बल शक्ति का विश्वास न होजाए गुप्त रीति से ही उस कार्य को बनाते रहना कि जिस से तुम विजय प्राप्त करना चाहो सो जब इस प्रकार तुम्हारी बल हीनता निकल जाए और तुम्हारी बल शक्ति पूरण रीती से तुम्हारा कार्य पूर्ण करदे तो फिर तत्काल ही तुमको हर एक विघ्न पर विजय प्राप्त होती चली जाएगी और इतनी भारी सुफलता चरणों में आन कर सर झुकाएगी कि तुम हैरान होगे किंतु फिर भी ध्यान रखना कि सर्वदा सुफलता की प्राप्ति को जिन शक्तियों की अविश्यक्ता होती है उन पर अपना ध्यान एकत्र रखना और जब तक पूर्ण रीती से इस बात का तुमको विश्वास न होजाए कि अब चोट पर चोट भी पड़ें तो भी कोई शक्ति इस कार्य को छिन्न भिन्न नहीं कर सकती बस वही समय कार्य की सुफलता का जानो किंतु फिर भी ध्यान रखना (१) तुम्हारी इच्छा इतनी शुद्ध हो कि उससे किसी प्रकार की किसी को हानि न हो (२) तुम्हारा जो यत्न इस विषय में हो यथार्थ हो (३) कार्य के आरम्भ करने से प्रथम सुफलता की प्राप्ति और अप्राप्ति की क्रियाओं के यत्नों को जान लो (४) जो कार्य सुफलता के लिये सीखने हों तो उनको सीख लो (५) जिस इच्छा से जिस इच्छा के मार्ग पर तुम पांव रखो उस मार्ग की कठनाईयों को देख कर कभी भी किसी प्रकार का संशय मन को न करो क्योंकि कठनाईयों पर चलने से ही शुद्ध रूप मार्ग आप बन जाता है और उसकी यथार्थता के विश्वास से सब का सहारा तुम्हारा ही मार्ग बन जाता है क्योंकि ज्ञान के प्रकाश होते ही प्रसन्नता होती है ॥

(४) वाल्मीक त्रैलोक्य जननी माया रूपी देह को इसलिये कहा जाता है कि काल इसी का तो शत्रु है और यह भी वाल्मीक रूप से काल रूप ही है सो समय प्रयत्न निष्फल हो जाता है ॥

(५) अन्तःकरण में मन का नाम राम चित का नाम लक्ष्मण बुद्धि का नाम भरत और हंकार का नाम शत्रुघ्न है जिसमें राम का कार्य शिक्षा और वृत्ति जीत है लक्ष्मण का कार्य रक्षा और वृत्ति प्रीत है भरत का का कार्य सेवा और प्रवृत्ति मर्य्यादा रीत है शत्रुघ्न का कार्य उत्साह वृत्ति भीत है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

४५५ अर्थात अन्तकरण में केवल मन का ही नाम राम है और यही सर्वत्र सर्व शत्रु दमन आनंदकरण सर्वशक्ति मान निष्कलङ्क आत्मा है अर्थात सर्व शक्तियों का आधार और सर्व शक्तियों का राजा है। निरन्तर मोक्ष है और चित का नाम इसलिये लक्ष्मण यति है कि मन ही हृदय रूप से सच्ची प्रीती के रूप में मणि रूप से आप ही अपना लक्ष भी बना हुआ ही इसलिये निर्वैरता का नाम ही सति सीता लक्ष्मण यति पतिवर्त धर्म सत्य धर्म ध्रुव धर्म है और इसी का नाम प्रेम स्नेह और भक्ति भी है क्योंकि निर्वैरता नाम ही इस बात का है कि निराशत रूप से सर्व की सेवा करना और बदला कुछ भी न चाहना क्योंकि इसी का नाम क्षेत्री अर्थात क्षत्री धर्म है इस प्रकार जब हृदय से प्रीत होती है तो चित की वृति निरन्तर जीत ही जीत हुआ करती है इसलिये निर्वैरता का नाम ही ब्रह्मचर्य है अटल शक्ति रूप में जन्म जति इसका नाम है बुद्धि का नाम भरत इसलिये है कि मन का हृदय के रूप में ही बुद्धि का विचित्र रूप है और शुद्ध विचार बुद्धि का स्वरूप है सो यथार्थ विचार से ही सेवा बनती है और चित की जीत होती है तब ही मन के प्रेम और पन्थ मार्ग की गिरन्थि खुलती है इसी प्रकार अहंकार को शत्रुघ्न इसलिये कहा गया है कि सर्व से अलग होने पर भी सर्व से उत्तम है सब कुछ इसी से उत्पन्न होता और इसी में समाप्त हो जाता है सो मन चित बुद्धि तीनों का एक स्वरूप शत्रुघ्न है इसलिये अहंकार का नाम राम और ब्रह्मा है इसलिये माया रूप में यही शत्रुघ्न अत्यन्त बली सर्व शक्ति स्वरूप है

(६) सत्य रूप से न्याय रूप में मन रूपी राम का ही नाम कौशल्या है कि जो सर्व कुशल रूप है और

(७) पुरुषार्थ रूप से मन ही मीमांसा और रानी सुमित्रा का रूप है कि जो कर्म रूप सत् और असत् का एक भाव है

(८) कर्म का करना सत्य है किंतु फल असत्य है इसी का नाम वैशेषिक और मन रूप में रानी कैकेयी है कि जो नित्य की मिथ्या राड का घर है क्योंकि कोई कर्म कर्म नहीं और कोई फल फल नहीं केवल आत्मा कर्म है

(९) मन का ही शुद्ध स्वरूप आत्मा का रूप है इसलिये देह रूप में यही दशरथ का गुरु वसिष्ठ नाम आत्मा है और इसी करके मन को पतंजलि कहा गया है कि वसिष्ठ रूप में शुद्ध यत्न रूप है।

(१०) मनु का अर्थात राम का या देह का नाम ही शिवपुरी स्वर्ण रूप सांख्य है जिसका अभिप्राय ये है कि इस में राम कपिल रूप से जिस कार्य के करने में उस कार्य को जितने शुद्ध विचार वा शुद्ध ही आचरण से आरम्भ करेगा वतना ही उत्तम और शुद्ध रूप सुन्दर कार्य बनेगा यदि इस के अन्य राग द्वेष रक्खा जायगा तो यही देह राम की रावण की लङ्का का चित्र दिखा कर नष्ट हो जायगी

(११) राम रूपी देह का नाम ही वेदान्त अर्थात वेद का एक आदि अन्त का लक्ष दिखाने वाला रूप है इसलिये निर्पक्ष और निश्चार्थ रूप से सर्व रूप का साक्षी रहकर आत्म उन्नति के कार्य करना राम रूप मर्य्यादा पुरुषोत्तम रूप से सत्य रूपी वेद का लक्ष दिखाना है और राग द्वेष रखते हुए पक्ष और स्वार्थ को लेकर कार्य करना दशरथ रूपी राम नगर स्वर्ण भूमि ब्रह्मा रूपी वेद शिव पूरी काशी को अर्थात पंच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय को दस सिरों वाला एक ही रावण बनाकर और [illegible] पर लगाकर इस बात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को प्रत्यक्ष प्रमाण करके दिखाना है कि ये एक ब्रह्म रुद्र का एकस्वरूप है कि जो वेदरूप होने पर भी माया का
भूत है अर्थात आत्म उन्नति का शत्रु और राक्षस है कि जो स्वार्थ और पक्षको धर्म बताता है ।
(१२) विश्वामित्र नाम आत्मा का है कि जो विश्व के रूप में आत्मा का सर्वरूप से एकही स्वरूप है और इसका
नाम ही यज्ञ है और यज्ञ रूप में इसीका नाम राम है और राम रूप में यही देह अर्थात शरीर वेद का और गुरु का
स्वरूप है तो जब इस शरीर में राग और द्वेष के विषय उत्पन्न होते हैं अर्थात अज्ञानता तर्पनत्व विराजमान
होती है तब वेदरूपी यज्ञ अर्थात ज्ञान के कार्य नहीं बनते किंतु जब राम और लक्ष्मण सहायी होते हैं अर्थात
ज्ञान का प्रकाश होता है तो वेदरूपी यज्ञ संपूर्ण होकर सुफल ता हुआ करती है
(१३) जब संसार में अहंकारी राजा होता है तो नगर में नाना प्रकार के दुख और पीड़ा उत्पन्न होकर अशान्ति को
प्राकट करते हैं और इसीका नाम ऋषि राज डण्ड है और डण्ड अहंकार रूप में देह ही जनक राज अर्थात आत्मा
राय की जनक पुरी है तो राज डण्ड से प्रजा व्याकुल और निर्धन हो काल से मरने लगती है और हाहाकार
मच जाता है ऐसी गति देख कर राम आनंद जनक रूप आत्मा पृथिवी में हल चलाता है तो शान्ति सत्य
रूप में उत्पन्न होकर वर्षा होने लगती है और अकाल मिट जाता है अभिप्राय ये है कि राजडण्ड से
व्याकुल प्रजा अपना मरना देख कर राजा से युद्ध करती है और नाम रूप के अभिमान को मिटा कर
एक ही आशा रूप से राज डण्ड के भार को अपने सर से दूर फेंक देती है इसी का नाम जनक का हल चला
कर अकाल को लाना और काल को मिटा कर सती को उत्पन्न करना है
(१४) हल चलाने की क्रिया का नाम ही सति वर्णी सिया स्वयंवर जनक धनुष्य यज्ञ है अर्थात शिव रूपी
अहंकारी राजा की शक्ति के तोड़ने का कि जो उसने पक्ष रूप में अपने हित और स्वार्थ के लिये बनाई
होती है और अपनी स्वतन्त्रता के लिये अपनी शक्ति से दूसरों की स्वतन्त्रता को नष्ट करदिया होता है
राम का अपनी बाहुबल से उस शक्ति के तोड़ देने का नाम ही राजा जनक के शिव धनुष्य का तोड़
ना और सति को वर्णना है । सो जब इस प्रकार से अचान्चक शिव धनुष्य को यज्ञ में अर्थात
बीच में तोड़ दिया जाता है तब परशुराम संतोषि को क्रि रोध उत्पन्न होता है और वह राम के मार डाल
ने को यत्न करता है किंतु राम जो आप ही परशुराम होता है और आप ही निष्क्रिय न ही रहता है ।
(१५) रानी कैकेयी अहंकार रूपी देह का नाम है कि जो चतुष्ट अन्तः करण के एक रूप में ज्ञान इन्द्रिय और
कर्मेन्द्रिय रूप से दो प्रकार के स्वरूप में दो वरदान रूप है इसलिये ज्ञान और कर्म दोनों से रहित होजाने का
नाम कैकेयी का राजा दशरथ से दोनों वरदान का पूरा कराना है इसी का नाम है भरत का राज होना और
राम को १४ वर्ष का वनोवास होना और दशरथ का मरजाना क्योंकि देह से जब ज्ञान रूपी कर्म नहीं
बनते तो अन्त करण रूपी आत्मा शक्ति देह को छोड़ देती है तथा जब तक ज्ञान अनुसार कर्म होते
हैं दशरथ रूपी शरीर बना ही रहता है तो नास रूप में शरीर के नष्ट होने का नाम पंच वटि है ॥
(१६) अज्ञानता से कर्म करना और सुख की इच्छा करना जटाई और रावण का युद्ध है
(१७) मन ही बाबर महाबीर अंजनी पुत्र पवन सुत हनवन्त सुग्रीव का स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५५६ (१८) बाली मन प्रमदि का नाम है और अंगद मन स्थिरता का रूप है नीलगरी ज्ञान त्रिपुटि को कहा जाता
(१९) रामेश्वर शिव स्वरूप देह का नाम है कि जिसमें हंस रूप से आत्मा त्रिगुणी राम का निवास
है कि जो सर्व प्रकार के राग द्वेष से स्वतन्त्र है सर्व रूप का द्रष्टा है और सर्व साक्षी रूप से नेत्रों में वास करता है
(२०) राम अर्थात आत्मा कर्म रूप पुरुषार्थ स्वरूप है देश और काल और नाम और रूप से रहित है नित्य
है सत्य है विश्व का एक रूप है ज्ञान ही ज्ञान रूप है और वही ये मेरा अपना स्वरूप है इसप्रकार तो
जानकि सर्वत्र राम ही केवल है और कोई वस्तु नहीं और वही मैं हूं कि सर्व शक्ति आदित्य हूं
(१३) मेरे तेरहवें आत्म स्वरूप का तथा तेरहवां अवतार धन्वन्त्री का है कि जो रोग
के नाश करने को हुआ है और यही म अ इ र प द के रूप में २७ अक्षरों का केवल अग्नि रूप
में चक्र पद्म शंख वा गदा का एक ही स्वरूप गुदा है कि अर्ध शरीर में होने के कारण काली ही
रात्री का स्वरूप है मेरे इसी स्वरूप का नाम आठवां अवतार कृष्ण भगवान है कि जो १६ कला की
एक मूर्ति है इस प्रकार गुदा रूप में कृष्णा और कृष्णा रूप में वह्नि अर्थात अग्नि और अग्नि रूप में देवकी
अर्थात माया के रूप में मैं आप ही त्रैलोक्य जिनकी धात्री रूप स्त्री आप ही अपनी माता आप ही अपना
पिता और आप ही अपना पुत्र हूं कि जो शशपाल नाम काम और दन्तवक्र नाम लोभ का और कंस
नाम मोह का मारने वाला और १६ सहस्र गोप्यों और आठ पट रानियों के साथ भोग विलास
करते हुए भी अच्युत बाल ब्रह्मचर्य का ही एक सत्य स्वरूप आत्मा हूं अर्थात कर्म करते
हुए भी कर्म का कर्ता और उसका फल भोक्ता नहीं हूं क्योंकि मैं स्वयं कर्म ही कर्म आत्मा हूं और
कैसा आत्मा हूं कि न तो प्रवृत्ति का रूप रखता हूं और नहीं निवृत्ति का पक्ष वाला ही हूं मैं दोनों से
स्वतन्त्र असंग अवस्था का विलक्षण स्वरूप हूं समरस हूं निरन्तर हूं
(१४) मेरे चौदहवें आत्मस्वरूप का नाम यज्ञ ऋषभ है कि जो इन्द्र की कन्या से यज्ञ करने के
लिये हुआ है और ये मुख अर्थात मुंह का स्वरूप है और मेरे इसी स्वरूप का नाम नेमी बुद्ध
अवतार है क्योंकि यज्ञ नाम है शरीर रूपी स्थूल देह का है और ऋषभ नाम शब्द का है और
इन्द्र की कन्या वाणी का रूप है फिर यज्ञ का आशय भाषन अर्थात बोलने व बात चीत
करने के हैं और बोलना व बात चीत करना मुंह का कार्य है इसलिये मेरा ये आत्म स्वरूप
स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप में सितारे के खिंचे हुए तारों के नृत्य और इन्द्र की कन्या से मैं बुद्ध
अवतार नाना प्रकार की राग रागनियों का भाषन करता हुआ नित्य मुक्त रिक्त बीज दैत्य
का मार डालने वाला वर्णाश्रम और रूप रंग के भेद से स्वतन्त्र निरन्तर इन्द्रिय दमन
बिना हाथ पांव के श्रद्धा युक्त शान्ता नाम रखता हूं और सर्वत्र अद्वैत रूप हूं और इस प्रकार से मैं
१४ रत्न के रूप में १४ उप अवतार और अवतारों का एक ही सिद्ध स्वरूप वेद रूप में पूर्ण सन्यासी संसार की सर्व प्रकार की बन्धनों से स्वतन्त्र निर्भय निष्काम शुद्ध मुक्त राग द्वेष रहित
श्रुति प्रमाण त्रैलोक्य जननी धात्री सौभागिनी गायत्री सर्व प्रकार के बन्धनों से स्वतन्त्र और संपर्कों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by eGangotri Foundation USA

मुक्त जो केवल स्वरूप में एक ही कला युक्त अनंत कला सम्पन्न १६-३६-५६ कला का एक स्वरूप कलङ्क विन निष्कलङ्क अवधूत आत्म स्वरूप है और काल ऊर दैत्य अर्थात काल रूप संशय वा सर्व प्रकार की देह रूप नाम मान ऊंच नीच छोटाई बड़ाई राजा प्रजा इत्यादिक भेद की शंका औं का मारने वाला है वही केवल एक आनंद रूप यज्ञ ऋषभ बुद्धावतार निष्कलं ब्रह्म आत्म देव मैं हूं ॥ ११ ॥

नानु - इसी विषय में इस प्रकार श्रुति प्रमाण है श्रुति

केवल निश्चल ज्ञानस्वरूपं सिद्धं ह्येकं ऋषि ऋषभ बुद्धा ध्रुवम् ॥
सर्वो सर्वावतारं पद्म रूपं पुष्पं दशमावतारो हि नः कलङ्क अयम् ॥ १२ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

केवल सर्वत्र एकही - निश्चल - अचल रहने वाला ज्ञानस्वरूपम् ज्ञान स्वरूप आत्मा सिद्धं सिद्ध रूपमें २४ तत्वों का जो एक ही स्वरूप जिन रूप है वही अहम् मैं आप एकम् एक ही हूं कि जिस मेरे एकही स्वरूप का नाम ऋषि तीन अक्षरी शब्द ॐ अर्थात ओ३म् है और इस प्रकार से मैं ऋषभ (अर्थात) नाना प्रकार की वाणियों का वाणी रूप में बुद्धा सर्व रूप में सब कुछ जानने वाला ध्रुवम् निश्चय करके ध्रुव धर्म स्वरूप हूं क्योंकि सर्वः सर्वत्र ही सर्वावतारम् सर्व प्रकार के अवतारों में अर्थात सर्व प्रकार के रूपों में अवतारों का अवतारी जो स्वरूप है उसी अवतारणी स्वरूप में अर्थात नाना प्रकार के भेद व्यवहार रूप में पद्म रूपमम् मेरा पद्म स्वरूप ही है क्योंकि पद्म नाम है नाग का और नाग सहस्र पुरुषादि रूप वायु का नाम है कि जिस का प्राण श्वासा रूप है और प्रत्यक्ष प्रमाण में ये ही पुरुष अर्थात पुरुषार्थ या कर्म रूप आत्मा का सर्व शक्ति मान सर्व का आधार कमल के तुल्य एक ही अचल असंग उद्वा हुआ अर्थात सर्वत्र व्यापक पुष्पम् पुष्पम पुष्प के तुल्य महान सूक्ष्म स्वरूप है सो ऐसा जो परम हंस आत्मा है वही दशमावतारः दश प्रकार के दश अवतारों में अर्थात समान १ प्राण २ अपान ३ व्यान ४ उदान ५ पंच प्राण और कूर्म १ कृकल २ नाग ३ देवदत्त ४ धनंजय ५ पंच उप प्राण के रूप में दश अवतारों का एक अवतार हि निश्चय करके नः कलङ्क नहीं है जिसमें किसी प्रकार का कोई कलङ्क अर्थात कोई पाप या कोई दोष ऐसा जो एक ही निष्कलङ्क दशमावतार है अर्थात जो शरीर नाम रूप इत्यादिक और पुण्य पाप धर्म अधर्म इत्यादिक सर्व प्रकार की बन्धनों निसंदेह और स्वतन्त्र है अर्थात मुक्त है निरन्तर है वही अयम् मैं आप हूं ॥

आशय ।

हे मनु! निश्चय करो कि सर्वत्र सर्व रूप से अचल रहने वाला जो ज्ञान स्वरूप आत्मा है वह सिद्ध कर के मैं ही एक ऋषि नाम में ॐ कार शब्द रूप से नाना प्रकार की वाणियों का एक ही वाणी रूप में सर्व प्रकार की वाणि और उन वाणियों का जानने वाला निश्चय करके बुद्धा रूप अवतार ध्रुव धर्म रूप हूं कि सर्वत्र सर्व प्रकार की आकृतियों में कि जो सर्व प्रकार के अवतारों में मेरा एक ही अवतारणि अवतार रूप है और वह कैसा अवतार है कि पद्म पुष्प के तुल्य मेरा पुष्प स्वरूप है ! क्योंकि जिस प्रकार कमल सबके साथ है और सब से ही स्वतन्त्र है अर्थात उसकी जड़ पानी में है और पानी ही से उसका आहार है अर्थात

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उसकी मूलका सर्व भाग्य कीचड मिटटी में छुपा हुआ रहता है और अंकूर जो उस मूल से फूटता है वह सूक्ष्म और प्रकाशमान होने कारण जल के ऊपर आकर अपनी पततियों से जल को ढक लेता है और जहां तक पत्ते फैले होते हुए रहते हैं तहां तक जल देख नहीं पड़ता केवल पत्तों की हरयाली और सौभा ही सौभा देखने में आती है क्योंकि ज्यों ही पद्म वृक्ष एक वार इस पद तक पहुंच जाता है तो फिर असंभव है कि वह फिर किसी प्रकार से जल के नीचे जल में ही डूबा रहै क्योंकि जहां भी कमल पुष्प होता है वहां चाहे कितना ही अथाह जल क्यों नहो कमल निरन्तर जल के ऊपर ही रहता है और मेघ वर्षा का जल जो उसके ऊपर वर्षकर पत्तों के टुकरे टुकरे कर देता है किंतु वह उनको पानी में डुवा नहीं सकता क्योंकि वह स्वतन्त्र है निर्मल है वर्षा का जल जो पत्तों पर पड़ता है वह भी उसमें लिपत नहीं होता है मणि की भांति उस से पृथक रहकर ही उसपर चमकता है पानी से पत्ता अलग ही रहता है क्योंकि उसमें न तो ग्रहण है न त्याग है न लेना है न देना है अर्थात उसको न निवृति है न प्रवृति है क्योंकि वह आप ही आप मोक्षरूप है इसप्रकार का जो सर्व व्यापक सर्व रूप सर्व चेतन रूप मेरा है और प्रकट प्रतीत में सर्व रूप संसार होने पर भी अर्थात प्रवृत रूप स्वरूप रक्खते हुए भी प्रकट प्रतीत होना और नाना रूप के कार्य करना यही मेरा केवल स्वतन्त्र कर्म रूप कार्य का कर्म ही बाणि रूप में मेरा कर्म स्वरूप है क्योंकि यही कर्म स्वरूप मेरा शान्ति स्वरूप है इस मेरे कमल रूपी स्वरूप में न तो आशान्ति है और नहीं किसी प्रकार की व्याकुलता है और नहीं इसको कुछ कर्म करना है और नहीं इसे किसी प्रकार से किसी प्रकार के किसी कष्ट रूपी कार्य करने की अविशयक्ता है क्योंकि जिस प्रकार संसार में नाना प्रकार के पुष्प होते हैं और उन सब से कमल पुष्प निराला ही होता है और इस निरालेपन के कारण ब्रह्म पुष्प ही कहलाता है! क्योंकि अन्य पुष्प तो पृथिवी से मिले हुए देखने में आते हैं और सर्व ही अपनी उत्पति पृथिवी से बतलाते हैं तथा कमल जो पृथि से ही निकलता है और पृथिवी पर ही रहता है परन्तु अपने और पृथिवी के मध्य जल का वस्त्र धारण किये हुए आप ही अपने स्वरूप का इस प्रकार वर्णन करता है कि मैं न आकाश से हूं न पृथिवी से मेरा जीवन अर्थात मेरी चेतन चेतना विलक्षण है मैं क्षीर सागर से अर्थात विष्णु भगवान की नाभी से निकल कर ब्रह्मा और शिव को उत्पन्न कर रहा हूं! क्योंकि जान जल से प्रकट होती है और वृक्ष की आकृति में पाटल होकर फिर वही मनुष्य का रूप भी धारण कर लेती है और कमल का पुष्प इस भारी सांकल की कडयों में एक मध्य की कड़ी है कि जिसमे सामान्य और विशेश अवस्था भाव से कोई किसी एक अवस्था का भी कोई भाव नहीं है न वह कर्मकर्ता है और नहीं कर्म फल का पाटल रूप में भोक्ता है वह आप ही अपनी सर्व शक्ति से अपनी गोद में रहता है और प्रवृत रूप के सर्व कार्य करते हुए भी सब निराला है अर्थात जल रूपी संसार सागर में रहते हुए भी जल का नहीं है क्योंकि स्वतः स्वतन्त्र है! कमल क्याह सब से निरा पुष्प है कि अन्य पुष्पों की भाति उसे षाद पानी और अपने बचाव के लिये किसी प्रकार की छाया इत्यादिक की अविशयक्ता नहीं है वह आप ही अजगर रूप है कि जो न आप किसी की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्याकरी करता है और न किसी से अपनी चाकरी कराता है और नहीं आप कुछ काम करता है क्योंकि वह
आप ही कर्म रूप है और कर्म रूप होने के कारण आप ही आप उसके कारण कार्य रूप होते रहते हैं सो हे मुनि
कमल पुष्प के तुल्य जब मनुष्य नाम रूप वाली आकृति आत्म कमण्डल में होती है क्या वह कोई कर्म करती
और जब जल बिन्दु रूप से बीज की राज रूपी कुक्ष में आती है उस समय क्या उसको कोई कार्य करना
और रोटी की तलाश में मारा मारा फिरना पड़ता है और जब गर्भ से नरसिंह रूप धार हिरण्य
कशिपु दैत्य का पेट चीर कर बाहर आती है उसे कुछ करना होता है इन तीन रूपों विधियों से क्या प्रकट
होता है - चेतन ता की एक अपूर्व शक्ति सर्वत्र एक रस प्रकाश क्योंकि - चेतन चेतावनी अनुसार

नहीं संसार सागर है नहीं देह कर्म की किश्ती ॥ अनंत अचल: अचल राम: वही विस्तार सारा है ॥
न जाने कोई जा है न रहने को ठिकाना है ॥ करे क्या राम हे लख मन न भरत अपना विगाना है ॥
मरा दशरथ हुआ जिह्वा यही अभिमान सारा है ॥ शत्रुघ्न हुआ राजा न क्रिया कज काजा है ॥
कहे क्या कर्म दुन्या में कि हूं बेकार मैं इतना ॥ नहीं कुछ काम करने को निपट ये ढोंग सारा है
नहीं जिंनत नहीं दोज़रव नहीं औ माल का सारा ॥ है पूजा नाम धन की सब मिरिस्ति श नाम ज़र की है ॥
कहां राजा कहां प्रजा कहां इन्साफ कायम है ॥ जहां इन्साफ कायम है वहां एक राम दायन है ॥
न मेरा है न तेरा है अँधेरा है अँधेरा है ॥ कमल का पुष्प कहता है ये सब रंग रूप मेरा है ॥

क्योंकि कमल पानी में खड़ा है अवकाश इच्छा अनुसार उस से प्रवृत होता है और प्रवृति को निवृति के रूप में
गान्धी के परमाणवों की आकृति यों में अपने ह्योंदिश वरवरता है कि कोई हो तो उस से सन्तुष्ट हो किंतु
सों से भिन्न तो कोइ है नहीं क्योंकि वह जिस स्वरूप में बस्ता है और जिस से शक्ति पाता है वह उस का निज
रूप और आत्मा है कि जो जानों की जान और प्राणों का प्राण है वही कमल के पुष्प में भी दृश्य मान है
माल की सुन्दर ता उसका रंग है कमल की महक उसकी महक है सो इस प्रकार से कमल जो पृथक पृथक
में एक आकृति का रूप है कोई रूप वाली वस्तु नहीं है अनंत आत्मा का एक स्वरूप है सो इस प्रकार का
एक ही आत्मा सर्व शक्तिमान सर्व अन्तर यामि है अर्थात जो सूर्य में रहता है और जिसको सूर्य नहीं जानता
क्योंकि सूर्य उसका शरीर है कि सूर्य में रहकर सूर्य को नियम अनुसार चला ता है और ऐसा जो पुष्प रूप हंस
रूप आत्मा है अर्थात जो अग्नि में रहता है और जिसको अग्नि नहीं जानती क्योंकि अग्नि उसका शरीर है
ऐसा जो कमल पुष्प रूप आत्मा है और जो पृथिवी जल आकाश और विश्व रूप में रहता है और कोई
उसे नहीं जानसकते कि सब उसका शरीर हैं और वह इन सर्व प्रकार के शरीरों से असंग है सो इस
प्रकार कमल पुष्प रूप चेतन स्वरूप हंस रूप जो आत्मा है वही निश्चय कर कर दृश्य नाम रूप के दृश्य
अवतारों में दशमावतार निष्कलङ्क नाम ब्रह्म आत्मा मैं आप हूं और मैं किस प्रकार से निष्कलंक
परब्रह्म हूं कि न मेरे में ध्यान है न ज्ञान है न योग है न जाप है न कर्म है न धर्म है न मर्म है न यज्ञ है
न तप है न धारना है न आदि है न अन्त है और नाना रूप और नाम रखते हुए जो अनंत है और श्रवन मनन में
नहीं आता है और जिसमें बुद्धि और तर्क भी नहीं है और कोई पदार्थ जिस से भिन्न नहीं है वही मैं हूं ॥ १२ ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कोटिल्यदम्भहरणं वा नित्यं हि रमन्ति सर्वथा न लिप्यन्ते कदापि ॥
शुभंहं धात्री जननी न केनापि शिवं परमं तरन्तारः वदामि ॥ १३ ॥

## पदच्छेदः शब्दार्थ।

पारखण्ड

कोटिल्यदम्भहरणम् - करोडों प्रकारके दम्भरूपमें जो नाम रूप भाव आदिक का फैला हुआ स
ही प्रकारका कालअरि रूपी दैत्य है इसका मैं हरण करने वाला हूं वा और नित्यं निरन्तर - हि
निश्चय करके रमन्ति रमण करते हुए आनंद मनाता हूं क्योंकि - सर्वथा सर्वत्र सर्व प्रकार आनं
मनाते हुए भी न लिप्यन्ते कदापि - किसी काल में भी दुःखमय संसारकी किसी प्रकार से लि
बन्धनमें लिप्त नहीं होता हूं क्योंकि शुभंहं शुद्ध हूं मैं आप धात्री माया से और जननी क
रूपमें कर्मफल के भोग भोगने के हेतु उत्पन्न होने अर्थात अपने को प्रकट में प्रकट करने से को
न केनापि नहीं हूं किसी प्रकार से कहीं भी निश्चय करके कोई कुछ और वस्तु क्योंकि शि
मुक्त स्वरूप केवल आत्मा हूं और श्रेष्ठ आत्मा हूं परमम् पवित्र हूं तरन्तारः नित्य मुक्त हूं वदा

## आशय

हे मनु! करोडों कपट रूपसे जो आत्म अनिश्चय का भूत ये देह नाम रूप वाला कल्पित शरी
आत्मतत्त्व के विकार अर्थात अहंकार का स्वरूप है और ये अपने को केवल निश्चय स्वरूप भ
से भिन्न जानकर द्वैत करके आत्मा के अतिरिक्त दूसरा ही नाम रूप वाला बनकर अपने को प्रकट
ना है इसी दम्भका नाम कलङ्क है कपट है जरा काल रूप में कालअरि दैत्य है इसी दैत्य रूप का
का मैं हरन करने वाला हूं क्योंकि मैं शरीर रूप करके जो कलंक करने वाला प्रकट में प्रतीत होता हूं मैं
वास्तव में ऐसा नहीं हूं क्योंकि मैं शरीर रूप में नाम रूप वाला होने पर भी शरीर से मुक्त अर्थात
हूं और इसी बिरुद कलंक रूपी दैत्य का हरण करने वसिंहारने वाला और निरन्तर निश्चय करके
एक ही अपने आत्म स्वरूप में आनंद करने और आनंद मनाने वाला मैं हूं! क्योंकि दम्भास्त्र में कल
का द्वैत रूपी भूत जो नाम रूप को लेकर द्वैत वाला बना हुआ है उसके नेत्र नहीं हैं अन्धा है यही
कारण है कि जब मैं कहता हूं "ॐ हं ॐ एको हं द्वैत्यो नास्ति केवलं ब्रह्म नः कलङ्क अयम्" तो
भूत के खण्ड खण्ड होकर इसका विनाश होजाता है क्योंकि ये नेत्र विहीन होने के कारण अपने सत्य स्वरूप
देख ही सकते नहीं हैं इसलिये मैं आनंद स्वरूप आत्मा किसी भी नाम रूप वाले पदार्थ में लिप्त नहीं होता हूं
निष्पाप हूं कलङ्क रूपी नाम रूप वाले शरीर से मुक्त हूं केवल ब्रह्म हूं और एक ही आत्मा ॐ कार स्वरूप
हूं कि जिस मेरे एक ही स्वरूप में सब कुछ है और उसके अन्य कहीं कोई वस्तु नहीं है सो मैं जो अपने आ
अपने आत्मानंद सत् चित आनंद स्वरूप का जानने वाला समझने वाला हूं और आप ही अपने आ
को देखने वाला हूं आप ही आप अपने आप को देखकर जान वा समझ करके मैं पृथक पृथक नाम रूप
आप ही अपने को अपने आप पर इस प्रकार प्रकट करता रहा हूं कि मैं वेद हूं वेद के अर्थ जानने हैं और
(जानना किस बात का होता है आप ही अपने आत्म स्वरूप का जानना आत्म स्वरूप क्या है संसार के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पदार्थों को एक अद्वैत आत्मस्वरूप करके शुद्धस्वरूप से अपना ही केवल आत्म स्वरूप जानना और ऐसा ही करके मानना क्योंकि इसप्रकार से आत्म स्वरूप के जानने का नाम ज्ञान है और वेद है सो जब इसप्रकार आपही अपने आत्म स्वरूप को जान लिया जाता है तब ही कलङ्क रूपी जो द्वैत के भाव में नाम रूप वाला कालंजर दैत्य है अर्थात जराकाल रूप में शरीर आकृतिमान भूत है ये हरन होजाता है और साक्षात कार से ये शरीर ही आत्म चमत्कार अनुभव अनंत शक्ति रूप में कलङ्क से रहित निष्कलंक आत्मा कहलाता है क्योंकि निष्कलङ्क आत्मा पांच प्रकारके कलङ्क रूपी भूतों के मध्य निरन्तर एक रस रहता है कि जिनके नाम अन्नमय कोश पृथिवी के रूप में स्थूल शरीर के हैं और प्राणमय कोश पांच प्रकार के पांच प्राणों का नाम है कि जिससे स्थूल देह के सर्व कार्य बनते हैं अर्थात प्राण वह वायु है जो बाहर से भीतर जाती है अपान वह है जो भीतर से बाहर आती है समान वह है कि जो नाभि में स्थित होकर सारे शरीर में रस पहुंचाती है और उदान वह है कि जो अन्न जल इत्यादिक को मुंह के द्वारा शरीर में खेंचती है और व्यान वह है कि जिसके द्वारा शरीर की सारी क्रिया चलने फिरने की बनती हैं ! तीसरा भूत मनोमय कोश के रूप में जल का स्वरूप है कि जो अहंकार के रूप में पाच प्रकार की कर्मेन्द्रिया बना हुआ है ! चोथा भूत रूप विज्ञान मय कोश के रूप में अग्नि का स्वरूप है कि जो बुद्धि और चित के रूप में पाच प्रकार की पांच ज्ञानेंद्रिय बना हुआ है ! पांचवां भूत रूपी कोश आनंद मय कोश है कि जो आकाश का रूप है ! इसप्रकार सर्वत्र निष्कलङ्क रूप एक आत्मा साकार में निराकार रूप से रहता है और साकार में अपनी अनंत शक्ति के चार प्रकार के प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाता है ! कि जिनमें पहिला जाग्रत है कि जिसके द्वारा इन्द्रियों के सारे व्यवहार होते हैं । दूसरा स्वप्न है कि जिसमें इन्द्रियां शान्त होजाती हैं तीसरा सुषुपति है इसमें इसमें जाग्रत और स्वप्न दोनों प्रमानों का विनाश होजाता है अर्थात मन और इन्द्रियें सब शांन्त होजाती हैं अर्थात कलङ्क रूपी अहंकार का पुतला जो शरीर है यही पडा रहता है और निष्कलंक आत्मा को इसकी किसी प्रकार की चिन्ता नही होती इसी का नाम मेरे शुद्ध स्वरूप में धात्री है और फिर इससे आगे कि जो चोथा प्रमाण है तुर्या कहलाता है वही आनंद की अवस्था है कि जो कलङ्क रूपी शरीर कि जो मन बुद्धि अहंकार चित वाला करके प्रतीत होता है (न केनापि) नहीं है वह इनमें से साकार रूप कोई भी क्योंकि इसी का नाम है (( शिवं परमं तरनतारः )) मुक्तस्वरूप श्रेष्ठ गङ्गा पवित्र आत्मा ही आत्मा कि जिसको नहीं है वैतरनी के पार जाना क्योंकि वह स्वयं वैतरनी ही वैत्रिनि स्वरूप है इसलिये कहता हूं मैं प्रकट करता हूं मैं ॥ १३ ॥ ननु क्या प्रकट कहता हूं

जानामि स्वर्गंऽपवर्गं अहि रोहनीमं मातध्रुवं च पिताःवासुः ॥
भ्राता भगनि निरन्तरं पतिस्त्री तहि पुत्रहं आदि गुडाकहं ॥ १४ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

जानामि जान्ता हूं मैं स्वर्गं स्वर्ग को कि स्वर्ग स्वरूप में सर्व रूप वाला सप्त स्वर में सप्त व्याहृतियों का एक ही स्वर स्वांस रूप वाला हूं मैं और अपवर्गं - मोक्ष सुख रूप में अहि एक ही निश्चय स्वरूप मेरे के जो आठ प्रकार के अष्टधा प्रकृति के रूप हैं इन आठों ही रूपों का नाम एक ही नाम रोहनी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

५६२ नक्षत्र नाम में न नाश होने वाला अग्नि रूप बिजली है और इस अग्नि रूप बिजली में ही मम् मेरा स्वरूप अर्थ मेरा आपही अपना रूप मातध्रुवम् निश्चय करके माता का रूप है अर्थात इस प्रकार से मैं आपही अपनी माता हूं च और चेतन शक्ति रूप से आपही अपना पिता वासुः पिता भी हूं और कैसा पिता हूं कि अग्नि के प्रज्वलित रूप में एक ही प्राण रूप से वासुकी नाम नाग वायु के रूप में मेरा अपना ही नाम पिता वासुदेव भी है और इस प्रकार से मैं आपही भ्राता भगनि बहन और भाई का एक ही स्वरूप हूं और इस एक ही स्वरूप से निरन्तर नित्य ही मैं पति स्त्री आपही अपना पति और आप ही अपनी स्त्री हूं अर्थात भ्राता भगनि के स्वरूप मे जो मेरा एक ही पति और स्त्री का रूप है तहि तिसी निश्चय का पुत्र बेटा अहम् मैं हूं और कैसा बेटा हूं कि आदि नित्य हूं और निरन्तर हूं और एक ही हूं और किस प्रकार से एक ही हूं कि गुडाकऽहम् निद्रा जीतन चैतन्य ही चेतन मैं हूं

## आश्य ।

हे मनु! निश्चय कर किस आश्य का निश्चय कर कहता हूं मैं कि संसार के नाम रूपी कलङ्कित शरीर की धूमधाम को मत देख और प्रकट कर! क्या! कि जानता हूं मैं स्वर्ग को अर्थात अपने स्वर्ग स्वरूप को कि जो भी स्वर रूप में शब्द नादि श्रुति इलहाम आवाज और हदीस कहता है और (ग़ैब) अर्थात गुप्त रूप में छिपा हुआ है वही सर्व रूप वाला सप्त स्वर रूप में सात व्याहृतियों का एक ही स्वर स्वास रूप में स्वर्ग का सर्व अर्थात विश्व वा विराट का एक स्वरूप निष्कलङ्क निष्पाप निष्क्रिय दशमावतार सत् चित आनन्द आत्मा मैं हूं कि जो मोक्ष सुख रूप में एक ही निश्चय स्वरूप मेरे के आठ रूप हैं और इन आठों रूपों में मेरा एक ही रोहिनि नाम है कि जिस रोहिनी नाम से मैं अग्नि रूप बिजली के स्वरूप में एक अविनाशी स्वरूप हूं और उसी अविनाशी स्वरूप से रुहनि मेरी माता का नाम है और उसी चेतन शक्ति रूप से मेरा मेरे पिता का नाम वासुदेव है और वासुदेव रोहनी दोनों ही भ्राता भगनि के एक स्वरूप में स्त्री और पति का एक ही स्वरूप हैं अर्थात शिव और पार्वति का रूप हैं तिसहि शिव पार्वति निश्चय स्वरूप का मैं निष्कलङ्क नाम दशमावतार हूं और कैसा अवतार हूं कि नित्य हूं निरन्तर हूं सर्वत्र हूं और सर्व रूप में केवल एक ही हूं अर्थात निद्रा जीत चेतन ही चेतन आदि गौड़ हूं कि सर्व रूपों से स्वतन्त्र मग्नानंद संसार के सारे बन्धनों से स्वतन्त्र हूं कुर्मः रूप से अर्थात कछुवे के स्वरूप से अपनी सारी शक्तियों को अपने स्वर्ग स्वरूप में छिपा कर गूंगे के गुड के तुल्य आपही अपने आत्मानंद स्वर्ग रूप का रस लेता रहता हूं और आप ही अपने को पागल और मूढ मूर्ख कहकर प्रसन्न होता हूं क्योंकि मैं सत् स्वरूप सुख रूप निरन्तर हूं मौन वृति होने पर भी मौन नहीं हूं क्योंकि अपने आत्मानन्द स्वरूप में मग्न हूं और अपने सत चित आनंद स्वरूप के हेतु कलञ्जर नाम दैत्य अर्थात जराकाल असुर के सिंहारने के हेतु और संसार के उद्धार को प्रकट हुआ हूं कि जसने प्रकट हो कर अपने आदि गुडाक स्वरूप से आदि सृष्टि से लेकर के अबतक अनंत कार्य किये हैं कि जिनमें से संक्षेप का मेरे गुडाक स्वरूप में ऐसा वर्णन है

(१) सर्व प्रकार की पुराचीन पुराणादिक कथा और कथनाओं के मिथ्या रचन जाल को छोडकर और वेद सिद्धान्त में सर्व सर्व शास्त्र पुराण पुराण इनजीन आदिक जिन्द वा उसता के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ग्रन्थों कों अपने स्वयं लाके अपही अपने से ऐसा तर्क किया है श्रुति ॥ १४ ॥

देश विदेशो सर्वं देशः किं मर्य्यादो सत् शुद्धं ध्रुवं धर्मः ॥
किं मेवतारं चितरं शिक्षा किं महि दिक्षा अहमद ईसाः ॥ १५ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

देश विदेशः सर्वं देशः देश में प्रदेश में और सब देशों में किम् मर्य्यादाः किस प्रकार हैं मर्य्यादा अर्थात व्यवहार कि जो सत् शुद्धम् सत्य है शुद्ध हैं और ध्रुवम् - निश्चय करके निश्चय से धर्मः धर्म का तत्त्व हैं और किं मे अवतारम् चितरं शिक्षा क्या हैं मेरे अवतार स्वरूपों के चिरत्रों की शिक्षा और किं महि दिक्षा अहमद ईसाः - क्या हैं मेरे ही निश्चय स्वरूप की शिक्षायें धर्म के विषय में मेरे ही अहमद नाम स्वरूप करके मेरी तरफ से और ईसा नाम करके मेरी तरफ से -

आशय ।

हे मनु! तू जो तर्क करता है कि देश प्रदेश अर्थात सर्व देशों में सत्य शुद्ध करके अर्थात निश्चय करके धर्म के विषय में कौन सी धर्म मर्य्यादा मान्ये हैं और मेरे अवतार स्वरूपों के चिरत्रों से धर्म के विषय में क्या धर्म शिक्षा हैं और मेरी ही अहमद और ईसा के पैगम्बर स्वरूप करके मेरी ही मेरे अपने आपको अर्थात अपने निश्चय स्वरूप को कौन सी शुद्ध रूप धर्म शिक्षायें हैं और वह क्या और किस तरह पर हैं उनके उत्तर तू आपही ऐसा देता है श्रुति ॥ १५ ॥

आर्यावर्तो न भारतखण्डो न देश देशोऽहमेवहि सर्वथा ॥
उत्तानपादप्रियवर्तेः केवलं नः कलङ्क निर्विकल्प मर्य्यदा ॥ १६ ॥
देशः विवर्जित पुनः संबल देशहं कालं विवर्जित पुनः कालाकालहं ॥
शान्ता सत् शौचधारा परा पुत्रि निर्मलः ता कुमारी पुत्र जातहर इआः ॥ १७ ॥

पदच्छेदः शब्दार्थ ।

आर्यावर्तेः न भारतखण्डः - आर्यावर्त है न भारत खण्ड है और न देश देशः नहीं देश करके कोई देश है क्योंकि अहमेवहि निश्चय करके मैं आप ही निश्चय स्वरूप सर्वथा सर्वत्र सब जगह उत्तानपाद बद्रीनारायण रूप से अर्थात आप अपनी अपार बल शक्ति से ही प्रियवर्तेः आपही अपने स्नेह रूप से सर्व विस्तार रूपों सहित प्रवर्त रूप हो रहा हूं अर्थात फैला हुआ हूं क्योंकि केवलम् केवल नः कलङ्क निष्पाप रूप में कलङ्क रहित आत्मा मैं हूं और इसलिये निर्विकल्प कल्पना से रहित अर्थात मिथ्या भ्रम शङ्का संशय संदेहों से स्वतन्त्र मर्य्यादा धर्म ही धर्म मर्य्यादा ही मर्य्यादा मेरा नाम है ॥ और देशः विवर्जित देश भाव से भी स्वतन्त्र हूं पुनः फिर भी संबल देशहं संबल देशी अर्थात एक ही देश संबल रूपी देश का रहने वाला अर्थात सर्वत्र एक ही शक्ति बल रूप से रहने वाला मैं हूं और कालम् काल से भी विवर्जित मैं रहित हूं पुनः फिर भी कालाकाल अहम काल रूप में अकाल स्वरूप से ही रहने वाला मैं हूं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

-५६५ शान्ताः[२८] सत्[२८] शौच[२९] धारा[३०] - शान्तानाम संन्यस्थके रुपमें मोक्षस्वरुप आत्मा का मायाही मायामें प्रवर्त रुपसे निवृति का मुक्त रुप है और स्वतन्त्र स्वरुप है और सत है अर्थात आत्माकी पवित्र रुपमें जो एक ही शुद्ध धारा है अर्थात जो माया सर्व आधार रुप है और जिसका परा[३१] प्रकृति के नाम में पुत्रि[३२] पवित्री नाम है और जो निर्मलः[३३] माया मलसे रहित मरयम नाम है अर्थात शुद्धस्वरुप है अमर धर्म रुप है तो[३४] तिसही कुमारी[३५] कुमारी कन्या अर्थात प्रेमी प्रमादि रहित माता का पुत्र[३६] बेटा जातः[३७] उत्पन्न हुआ हुआ अहम्[३८] मैं हूं कि जो आप ही आप रम्[३९] अक्षर से राम निष्कलङ्क नाम दशमावतार परमात्मा हूं और इ अक्षरसे ईसा नाम कुमारी मर्यम का बेटा आप ही परमात्मा हूं और आ अक्षर से अहमद एक ही रसूल अर्बी अर्थात नूर आदि इलाही इ से अनंत स्वरुप एक रुप और रं से अग्नि रुप मे ज़रदशत और मूसा पैग़म्बरों का एक ही स्वरुप आत्मा आदि आदित्य मैं हूं

## आइय।

हे मनु! निश्चय कर तेरा ये तर्क कि सब देशों में सत शुद्ध धर्म की परनाली अर्थात निश्चय कर के धर्म की सच्ची मर्य्यादा क्या है और मेरे अवतार चिरत्रों और पैग़म्बरों के रुपों से मेरी ही मेरे अपने आपको क्या शिक्षा है और क्या उपदेश है उसके उत्तर में मेरा ये कहना है कि न तो आर्यावर्त आर्या वर्त है और नहीं किसी देशका भारत खण्ड नाम है और न कोई देश के रुप में कोई देश है क्योंकि सर्वत्र निश्चय कर के मैं आप ही अपने निश्चय स्वरुप से देश काल बना हुआ सर्वत्र व्यापक हूं अर्थात देशों में देश उत्तान पाद है और कालों में काल प्रियवर्त है कि जिन शब्दों के अर्थ केवल एक ही निश्चय स्वरुप आत्मा के हैं और उसी का नाम नः कलङ्क अर्थात निष्पाप निर्दोश दशमावतार के हैं कि जो दशोंदिश अर्थात सर्वत्र कल्पना से रहित होकर निर्भय निसंदेह शंका और संशयों से रहित स्वतः मोक्ष रुप से एक ही धर्म और एक ही सत्य मर्य्यादा रुप है इसलिये उस स्वरुप में देश का कोई भेद नहीं भेद में देश का कोई नाम नहीं तथा फिर भी वह देश रुप में देश वाला बन रहा है और उसे देश नाम से संबल नाम प्रकट कर के कहता है कि जो देश के रुप में देश नाम देश रुप है वह मेरा ही एक स्वरुप है कि जो प्रकट में संबल अर्थात एक ही शक्ति है और वही मैं हूं कि जो काल रुप में भूत भविष्यत के वर्तमा रुप से आता और जाता हुआ समय प्रतीत होता है तिस से मैं रहित हूं अर्थात स्वतन्त्र हूं क्योंकि मैं कर्म परमात्मा हूं सर्व प्रकार के मेरे ही मैं कर्म हैं और कर्म मेरे निष्कलंक स्वरुप से ही उत्पन्न होते हैं और फिर मेरे स्वरुप में ही लीन होजाते हैं इस लिये मैं कर्म कर्ता और उनका फल भोक्ता भी कभी नहीं हूं इसलिये कर्म रुप में अकर्म ही मैं हूं इस प्रकार मैं कर्म भोग फल से स्वतन्त्र हूं और काल ही काल बना हुआ अर्थात कर्म ही कर्म रुप में केवल एक अकाल पुरुष मैं हूं शान्ति की सच्ची और पवित्र धारा मैं हूं और अपूर्व स्वरुप में कि नहीं है जिसका कोई रुप और जो रहित है माया मल से ऐसा जो सत स्वरुप आत्मा है अर्थात जिसमें कभी किसी प्रकार से किसी प्रकार का कोई घटाव वा बढ़ाव नहीं है और जो निरन्तर एक रस रहने वाला प्रकाशमान चेतन शक्ति स्वरुप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

...ती का नाम कुमारी अर्थात शान्ता नाम प्रकृति अर्थात माया त... अमृत शक्ति स्वरूप है
...मात का सागर है और वह अमृत का सागर मेरे अपने ही अन्तर है सो अपनी उसी अन्तरी कुमारी माता
उत्पन्न होने वाला अर्थात प्रकट रूप से पवित्रता सहित सर्वत्र एक ही रूप से प्रकाश मान होकर आप
अपने प्रकाश की अपने आपको चमक दिखाने वाला और देखने वाला कुमारी माता का पुत्र मैं हूं
...ओ रं अक्षर से अग्नि रूप में राम ज़रदशत और मूसा आदिक अवतारों और पैगम्बरों का अवतार
पैग़म्बर हूं और इ अक्षर से सब इमोंका इमाम इमाम मौहम्मद मेंहदी और कुमारी मर्यम का पुत्र
...ही आदि अन्त रहित ईसा मसीह प्रमात्मा पुत्र आप ही परमात्मा हूं और अन्त में आ अक्षर से आदि
...र अन्त का अर्थात औवल और आखर का एक ही नूर इलाहि अर्थात चमकता हुआ सितारः अहमद
...मौहम्मद रसूल अर्बी आप ही अपनी उम्मत को निजात देने वाला खुदा का रसूल अर्थात परमात्मा
...रमात्मा का सफीर एलची आप ही परमात्मा हूं और इस प्रकार मैं आ अकार अक्षर से सब अवतारों
...गम्बरों इमामों और गुरुओं और पीरों और पैशवाओं का एक ही अवतार एक ही पैगम्बर दशमावतार
...शों दिशाओं में ध्रुव रूप एक ही स्वरूप निष्कलङ्क भगवान हूं कि जो सारी दन्या का दम रूप में एक प्राण
हूं कि मेरे ही प्राणों से सर्व सृष्टि का चमत्कार और व्यवहार है यदि मैं अपने प्राणों को अपने स्वरूप
में लीन करलूं तो पलक मारने में इस सर्व रूप संसार को कि जो नाम रूप वाला बन रहा है बे नाम और
बे निशान करदूं कि यही एक मेरी धर्म मर्य्यादा है इसके अन्य न कोई धर्म है न मर्य्यादा है क्योंकि न मेरे में
कर्म है और न कर्म के रूप में कोई न्याय है और नहीं कर्म का कोई डण्ड है ये सब लौकायत भ्रम भेद
आपने अपने हित का मिथ्या खेद और पाखण्ड है मेरा पद अटल पद है कि जिसको कोई शक्ति किसी
क्रिया से तोड नहीं सकती क्योंकि स्वर्ग रूप में सर्व संसार केवल मेरा ही अङ्ग है मुझ से कोई पदार्थ
और कोई शक्ति भिन्न नहीं है न मैं किसी का राजा हूं और न मैं किसी की ... प्रजा हूं मैं आप ही हरि
...र महि हर जगत पति विक्रमादित्य स्वरस्वति आप ही अपना राजा और आप ही अपनी प्रजा हूं क्यों
कि स्वयं मोक्ष हूं और मोक्ष रूप में धर्म और धर्म रूप में कर्म परमात्मा मेरा नाम है और कर्म के अर्थ मर्य्यादा
के हैं इसलिये मैं एक ही कर्म एक ही धर्म रूप में निरन्तर मोक्ष हूं और अवतार चिरित्रों और पैग़म्बरों के रूपों से
मैं ने आप ही अपने आपको जान कर कि मैं क्या और कौन हूं इस प्रकार अपने एक ही धर्म मोक्ष और
मर्य्यादा कर्म की अपने आप को शिक्षा दी है ॥ और वह शिक्षा इस प्रकार पर है ॥
... हे मनु निश्चय कर कि पृथक पृथक शब्दों में जो धर्म कर्म मोक्ष मर्य्यादा का अर्थ है वही परम सुख
प्रसन्नता के रूप में केवल आत्म आनंद परमानंद का नाम है और इसी का नाम है वसिष्ठ अर्थात सार
पदार्थ ! सार पदार्थ क्या है कि जिस में अविद्या अर्थात जिसमें असत्य १ अनित्य २ अनात्मता ३
इन तीन प्रकार के विषोंका कोई भेद भाव नहो क्योंकि इन्ही का नाम अविद्या है इसलिये केवल सत्य ही
सत्य पदार्थ का नाम सार है और सार सत्य रूप निष्कलंक नाम आत्मा है और कोई वस्तु नहीं इसलिये वही
अर्थ वही धर्म वही कर्म और वही मोक्ष और वही मर्य्यादा है और वही केवल रूप में मेरा आत्मा स्वरूप है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसप्रकार तू निश्चय करके जान क्योंकि जो तार आत्मा है वही तेरा निश्चयस्वरूप है और वह कैसा स्व
दशावतारी दश प्रकार के दश प्रत्यक्ष प्रमाण रूप है कि जो इस प्रकार पर हैं ॥
(१) प्रथम प्रमाण मेघमीनवर्षा है मेघ माया रूपी अहंकार का नाम है और मीन जल विन्दु का नाम है
वर्षा विस्तार का नाम है इस प्रकार एक ही आकाश में मेघमीनवर्षा असत्य १ अनित्य २ अनात्म ३ तीन
होवे से मिथ्या प्रतीत और मिथ्या प्रतीत का धोका है इसलिये इस का नाम अविद्या और माया और यही
मीनरूपी मच्छली का पहिला अवतार है कि चार प्रकार के रूप में चार वेद रूप जो है वह एक ही आगम वेद हैं औ
इस प्रमाण से ये शिक्षा मिलती है कि प्रत्यक्ष प्रमाण में परमात्मा एक ही आकाश रूप है १ और मेघ रू
सत्य है २ मीन रूप में विन्दु अर्थात जल विन्दु रूप में वही एक आत्मा नाना प्रकार से एक ही बीज रूप है इस
नित्य है ३ और वर्षा रूप में सर्वत्र है इसलिये मोक्ष स्वरूप है ४ इस प्रमाण से ये शङ्का न हो कि जो चार
प्रकार से सिंहासुर दैत्य है अर्थात आत्मस्वरूप को कि जिसमें मेघमीनवर्षा के तुल्य सर्व संसा
कार्य रूप से ये शरीर है उस को न जानना और मिथ्या नाम रूप वाले शरीर को वर्णाश्रम और जाति
मानकर नित्य रहने वाला जानकर उस को ही सत्य मानलेना भ्रम है धोका है १ और आचार में
चार और विचार में आचार का प्रवेश करना अर्थात शौच में अशौच और अशौच में शौच का
भेद भाव प्रकट करना वा मलमूत्रादि से भरे हुए शरीर में पवित्रता का विचार करना वा स्पर्श आदि
इन्द्रियों के भोग में अत्यन्त प्रीति करना वा मिथ्या भाषणादि व्यवहारों को शुद्ध समझना और
सत्य भाषण पर उपकार आदिक व्यवहारों को असत्य करके जानना २ और दुःख में सुख और
सुख में दुःख का विचार करना अर्थात आशा तृष्णा के विषयों में लिप्त होकर काम क्रोध लोभ मोह
राग द्वेष हर्ष शोक ईर्षा आदि के विचारों से दुःख का विचार करना ३ और अनात्म के निश्चय
से आत्मा के निश्चय स्वरूप का विचार न करना अर्थात पंच भौतिक अपने शरीर को अजर और अ
समझ कर अपने सुख के हेतु पशु पक्षी आदिक को कष्ट देना ४ ये चार प्रकार के कर्म चार ही
प्रकार से चार अवेद रूप में चार प्रकार के क्लेश और एक ही सिंहासुर दैत्य रूप हैं अर्थात क्लेशों
में पहला क्लेश तो इस प्रकार के अहंकार का है कि अपने को बड़ा समझना और दूसरों को छोटा
जानकर उनकी उत्तम शिक्षा को ग्रहण न करना ! दूसरा क्लेश राग अर्थात मोह का है प्रयोजन ये
है कि कुछ समयतक यदि किसी के साथ सुख भोग भोगा जाए और फिर किसी कारण करके वह सुख
नष्ट होजाए तो उस सुख भोग को याद करके फिर उसी सुख की तृष्णा करना २ तीसरा क्लेश द्वेष
अर्थात शत्रुता या दुश्मनी का है कि जब किसी से दुःख वा किसी प्रकार की हानि पहुंचे तो उस को
याद करके निरन्तर उस पर क्रोध करना और उसका बुरा चाहना और उसे नुकसान पहुंचाना ३
चौथा क्लेश मरण क्लेश का भय रूप है अर्थात मृत्यु से भय मान कर इस बात का यत्न करना कि क
मरना न हो ये चार प्रकार के क्लेश ही उत्पन्न होना चारों वेदों का लोप होना और आप ही अपने को
सिंहासुर दैत्य बनकर समुद्र में अर्थात संसार सागर में अपने को शरीर और नाम रूप वाला

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जानकर वेदों को लोप करदेना है सो इस प्रकार की वासनाओं में प्रवृत रहने का नाम ही सिंहासुर दैत्य है और इनसे निवर्त होना अर्थात अहंकार रहित होना १ राग रहित होना २ द्वेष रहित होना ३ अभय रूप होकर कार्य करना अर्थात अपने को मिथ्या शरीर न मानकर मृत्यु को कोड़ा मारना अर्थात किसी समय भी मरने के भय का संशय न करना मीन रूप अवतार रूप से सिंहासुर दैत्य को मारकर एक ही अगम वेद स्वरूप आत्मा में अर्थात संसार में वेदों का प्रकट करना है कि पहले अवतारचरित्र की यही वार्ता और ये ही शिक्षा है कि जो ध्रुव धर्म अगम वेदी निष्कलंक आत्मा का कर्म रूप में मर्य्यादा का पहला नियम है।

(२) दूसरा प्रमाण दूसरे अवतार कछुवे का ऐसा प्रयोजन है कि निष्कलंक आत्मा एक पिंड रूप है और उस में उसके दो हाथ दो पांव और एक मुंह पंच भूत के रूप से कि जो पूर्ण शक्ति का कोश है सर्व शक्तिमान रूप है इसलिये विषय भोग वासना से स्वतन्त्र है क्योंकि सर्व प्रकार के पदार्थ उस एक ही आत्मा के अन्तर हैं कि जिन्हें आत्मा आप ही प्रकट करता है इसलिये वासना रहित होकर संसार में कार्य करने से अर्थात अपना अन्तःकरण शुद्ध रक्खने से सर्व प्रकार की सिद्धि मोह रहित होकर ही प्राप्त होती हैं।

(३) तीसरा प्रमाण वराह अवतार के रूप में एक ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जो अद्वैत आत्मानंद के पूर्ण लक्ष्य का प्रमाण है और वह ये है कि जिस प्रकार वराह अपने एक ही दान्त से अपने आनंद के सर्व पदार्थ ज़मीन को खोद कर और वृक्षों को चीर कर प्राप्त कर लेता है इसी प्रकार शुद्ध आचरण अर्थात पुरुषार्थ रूपी कर्म करने से संन्यास रूप आत्मा जो सर्व शक्तिमान है सर्व रूप में सर्वत्र एक आत्मा है वह प्रकट करता है कि कान सब कुछ सुन लेने के लिये है किंतु भाषण के लिये नहीं हैं इसलिये सब कुछ सुनो किंतु बोलो नहीं इसी प्रकार नेत्र देखने के लिये हैं देखो किंतु कुछ कहो नहीं जिह्वा कहने के और मुंह बोलने के लिये है इन से बोलो कहो किंतु किस प्रकार से बोलो कि न देखे हुए को देखना कहो और न सुने हुए को सुना हुआ प्रकट करो परन्तु अपने अनुभव को ही प्रकट करो इस प्रकार कर्म करने से अद्वैत आत्म आनंद का सुख प्राप्त होता है और सर्वत्र चैतन्य ही चेतन शक्ति में आत्म आनन्द का स्वयं प्रकाश होजाता है और वह आनंद प्राप्त होता है कि कहने और सुनने में किसी प्रकार से ये आनंद प्राप्त नहीं होसकता है किंतु ऐसा कब होता है जबकि हर एक आनंद कि जिस में रस आता है और वही सब से अच्छा आनन्द मालूम होता है उसको इसी प्रकार से जान कर कि जैसे वराह मल भक्षण में आनंद मनाता है उन सब आनंदों को इसी तुच्छ तासे जान कर उनसे निठारा ही रहा जावे कि जैसे वह वराह का अद्वैत रूपी दान्त निर्लेप ही रहता है कि जो सब कुछ करने पर भी नहीं स्वतन्त्र है सो ऐसे तब ही बनता है कि जो देखा जाए उसे देख कर नेत्र मूंद लिये जायें और जो सुना जाए वह अन सुना करके भुलादिया जाए तब इसी शरीर में आत्मा प्रकाश का अनुभव होता है और हिरण्याक्ष दैत्य संहारने आकर के वराह मणि के रूप से वेद आत्मा का प्रकाश होता है।

(४) चौथा प्रमाण नरसिंह अवतार के स्वरूप में हिरण कश्यप दैत्य के संहारे जाने का इस प्रकार पर है कि हिरण कश्यप काम और मोह के विषयों का नाम है और प्रह्लाद आत्म आनंद सूर्य का नाम है नर मनुष्य को और सिंह निर्भय वीर आत्मा का नाम है सो जब काम और मोह के विषय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मनुष्य को व्याप्त होते हैं उससमय आत्म आनंद का सुरव नष्ट होजाता है और एक इच्छा के साथ ही और दूसरी इच्छा प्रकट होती रहती हैं कि जो शोक का मूल हैं और अभिमान को विशेष करती हैं सो जब इन दोनों को ही मनुष्य अपने हृदय से निकाल कर बाहर फेंक देता है इसी का नाम स्तंभ फारु नरसिंह का प्रकट होना और प्रह्लाद को बचाना है और हिरण्यकशिपु का खून पीना है और आत्मानंद का प्राप्त होकर सूर्य के समान आत्म स्वरूप के प्रकाश का देखना है अर्थात विशेषता में रहकर भी निर्पक्ष निर्मोह निष्काम रहकर निर्भय रूप से जगत के कार्य करने का नाम निर्भय रूपी अमृत रूपी वीरआत्मा को पाना है अर्थात अपने को ऐसी अवस्था मे ले आने के लिये ये प्रमाण है कि यदि पीछे हटने और पांव उठाने को मार्ग न हो तो अपने पांव पर खडे होकर स्तंभ बन जाओ फिर कोई शक्ति तुम को वहां से गिरा नहीं सकती और इसी का नाम है वासना का त्याग - सो जब वासना ही नहीं रही तो फिर यही संसार आत्म सुरव सागर बन जाता है और आत्म अनुभव से सर्व सुरव की प्राप्ति है

(५) पांचवां प्रमाण वामन अवतार के स्वरूप से राजा बल के छलने का इस का अभिप्राय ये है कि जब धर्म का अभाव होता है और कोई दुष्ट राजा अपनी बल शक्ति से प्रजा को गुण हीन धन हीन और फर बल हीन कर के प्रजा को रसातल को पहूंचा देता है तो कश्यप ध्रुव पुत्र अद्वैत धर्म ध्रुव धर्म के वस्त्र धारन कर के गृहस्थ के बन्धन तोड सर मुंडाता है अर्थात वामन का रूप बनाता है और इसी का नाम वामन और सन्यासी इसलिये होता है कि ये वामन पुरुष जो छोटा सा रूप धारण करता है इसका ऐसा आश्चय होता है कि ये जितने लाभ अपने कुणबे को पहूंचा सकता है उन से सर्व प्रकार का संबंध तोड़ कर और इस बात के दृढ़ विश्वास से कि शरीर पंच भूत का मिथ्या विकार मात्र नाम रूप में असत्य आकृति है मैं नाम रूप वाला नहीं हूं केवल सर्व व्यापी हूं इसलिये संसार मेरा रूप है मैं सर्व का पिता माता और सच्चा संबन्धी हूं मैं सत्य सार हूं अविनाशी आत्मा हूं नित्य हूं केवल धर्म हूं पूर्ण स्नेह हूं किसी प्रकार की आकार मान मूर्ति नहीं हूं निराकार निर्डण्ड सर्वत्र चेतन ही चेतन सर्व ब्रह्माण्ड का प्रकट स्वरूप आदि अंत रहित अनंत स्वरूप सर्व शक्तिमान सर्व अन्तर्यामि शुद्ध शौच एक ही आत्मा हूं सर्व को मोक्ष का स्वरूप हूं इस प्रकार विप्र से भगवान रूप में अर्थात मेरे निष्कलङ्क स्वरूप से बल का राज नष्ट कर देता है क्योंकि ध्रुव धर्म अनुकूल कोई मार्ग किसी का राजा नहीं है सर्वत्र केवल आत्मा ही एक रूप से सर्व रूप में व्यापक है इससे समता धर्म की पूर्ण शिक्षा प्रकट है और आत्मा कर्म रूप में निष्कर्म होना प्रमाण है।

(६) छटा प्रमाण हरि अवतार के स्वरूप में गजग्राह की वार्ता सर्व आत्मा को कर्म रूप होना प्रकट करती है इस लिये कर्म करते रहना ही आत्म प्राप्ति है और सुरव आनंद मोक्ष है

(७) सातवां प्रमाण राम अवतार में सर्व से प्रेम मित्रता रखवाने हुए संसार में निराशन रहने और निराशन रहकर सर्व संसार के कार्य करते हुए भी अपने आत्मस्वरूप को न भूलने अर्थात केवल आत्मा के किसी तरफ भी आंख भर कर किसी पदार्थ को न देखने के हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(८) कृष्णा प्रमाण अन्त से रहित सर्व को अद्वैत अनंत रूपमें एक ही आत्म आनंद होना बताने के हैं

(९) बुद्धा प्रमाण में किसी को न सताने और सर्व रूप प्राणियों को अपने समान एक वर्ण मानने के हैं

(१०) दशमावतार निष्कलङ्क प्रमाण में मैं हरिहर महिहर जगत पति विक्रमादित्य निष्कलङ्क स्वरस्वती अपनी नवीन सृष्टि रचन करके और उस सृष्टि में अचल धर्म धर्म मर्य्यादा ध्रुव स्थित करके अगम वेद का निश्चय ही निश्चय स्वरूप उन को बनाकर अपने सर्व रूपों को उन सब का एक ही रूप अपना ही अगम वेद स्वरूप बनाने और अगम वेद रूपकी अपूर्व ध्रुव धर्म मर्य्यादा सिखाने के हेतु जराकाल नामि काल ऐत्य के सिंह रूपी मुंह के दान्तों को तोड़ने और नशचरी नरकों के काटने के निमित अर्थात जराकाल असुर को पकड़ कर और उस काले नाग का मुंह चीर के उस के उन दोनों दान्तों को पकड़ के खेंच लेना है कि जिस से वह मेरे सर्व रूपों को डस लेता है और अजगर रूप बना हुआ है ! सो मैं ने ही उस भूल को संहारा है और संहार करने के पश्चात अपना ही निष्कलङ्क स्वरूप उसे देकर इस प्रकार उसे अगम वेद रूपी अमृत को पिलाकर अमर बनाया है कि।

हे निशाचर जराकाल कालऋा दैत्य यादरव ।

(१) मैं निष्कलङ्क परमात्मा देह नाम रूप स्वरूप ऊंच नीच हान लाभ सुख दुख राग द्वेष मोह लोभ मान (अहंकार) और सर्व प्रकार के पदादिकों से स्वतन्त्र हूं वर्णाश्रम अर्थात जाति भेद से भी स्वतन्त्र हूं और सर्व प्रकार के दण्डों से रहित हूं क्योंकि मैं कर्म परमात्मा हूं इसलिये सर्व प्रकार के कर्म फल भोग से भी स्वतन्त्र हूं क्योंकि सर्व प्रकार के कर्म मेरे निष्कलङ्क स्वरूप से ही उदय होते हैं और मेरे केवल निष्कलङ्क स्वरूप में ही लीन हो जाते हैं इस लिये मैं सर्व अवस्था में निष्कङ्क निर्भय अटल पद में जो एक ही पद है निरन्तर ध्रुव ध्रुव धर्म आत्मा मर्य्यादा निश्चल रूप से अगम वेद रूप ही बना रहता हूं

(२) मैं निष्कलङ्क परमात्मा सत्य ही सत्य रूप में सत्य विद्या स्वरूप हूं और सत्य विद्या रूप से जो भी पदार्थ नाम रूप आकृतियों में प्रकट होते हैं उन सर्व का आदि मूल आदि कारण केवल शब्द रूप अनुभव आत्म स्वरूप सत् चित आनंद निराकार निर्विकार सर्व शक्तिमान न्याय स्वरूप आपही अपना ध्यान अज अनादि अनंत अनूप सर्वाधार सर्व व्यापक शुद्ध श्रेष्ठ सर्वान्तरयामि अजर अमर अभय नित्य निरन्तर पवित्र विश्व रूप सृष्टि स्वरूप निर्ध्यान निरुपासना निर्योग सत्य वेद रूप में केवल अद्वैत ध्रुव धर्म मर्य्यादा अगम वेद रूप में निष्क्रिया निगम अचल परं हंस आकृष्णा अतीत संबल अवतारी सर्व कलाधारी परं सन्त परम अवधूत संन्यस्थ कर्म रूप श्रद्धानंद शान्ता नाम निरन्तर मुक्त निरन्तर मोक्ष सर्व नाम रूप की चराचर वस्तु में प्रत्येक केवल एक ही चेतन आत्मा कर्म अर्थ मोक्ष रूप मोक्ष स्वरूप से मैं ही मैं निष्कलङ्क परमात्मा प्रकाश मान हूं ।

(३) मेरे विश्व रूप संसार सृष्टि स्वरूप में सर्व प्रकार के धर्म और अधर्म के रूपों में संसार का कोई धर्म और कोई पन्थ पृथक पृथक कर के भी मेरे ध्रुव धर्म निश्चय धर्म मर्य्यादा स्वरूप से भिन्न नहीं है क्योंकि मैं कुमारी पुत्र हूं अर्थात शक्ति पुत्र हूं इसलिये अपनी कुमारी माता का निसंदेह और निष्कलङ्क रूप से मैं ही पुत्र हूं और वासुदेव रूप से मैं ही उसका भ्राता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अर्थात भाई और मैं ही उसका पति वासुदेव अर्थात आपही अपना पिता हूं अभिप्राय ये है कि जो
कुमारी मेरी माता है वही मेरी भगनि स्त्री और पुत्री भी है और मैं आपही अपना पुत्र भ्राता
पिता और पितामह हूं इसलिये कोई धर्म और कोई कर्म मेरा नहीं है क्योंकि सर्व पदार्थों सर्व कर्मों
सर्व प्रकार के धर्मों में मैं अपने एक ही अचल धर्म ध्रुव धर्म से स्थित हूं और नाना प्रकार के कारण और
में और विश्व रूप के सर्व कोश रूपों में केवल मैं एक निष्कलङ्क आत्मा ही राम अक्षर अग्नि बीज रूप से निवृत्ति
प्रवर्त्त हो रहा हूं। और वह जराकाल दैत्य और कालञ्जर असुर भी मैं आप ही हूं मेरे अन्य और कोई भी नहीं
है कि अपने हित और अपने स्वार्थ के हेतु आपही अपने को शरीर आकृति में एक पृथक नाम रूप वर्णाश्रम
जाति वाला कर्म करने और कर्म करके कर्म फल भोगने वाला मिथ्या प्रपंच व्यवहार से द्वैत धर्म वाला हो
अपने को प्रकट करके आप ही अपने आप को धोका देता हूं और पृथक पृथक करके आप ही अपने से
कहता हूं कि मैं ब्राह्मण हूं मैं क्षत्री हूं राजा हूं जोगी हूं ज्ञानि हूं मूर्ख हूं मलेक्ष है पण्डित है मुसलमा
है ईसाई है पारसी है यहोदी है चमार है चाण्डाल है कि जो इस प्रकार न बौध है न लामा है न यहूदी है न
जैनी है न सिंह है न सिद्धि है इस प्रकार का संसार में जो प्रचार व व्यवहार है वह सब मेरे ही राम रूप से
दशरथ पिता के मरे हुए शरीर को जिन्हा अर्थात चेतन करदेने से मेरे दशरथ पिता का अभिमान है
अर्थात जो मेरा पुत्र है पिता है भ्राता है वा पुत्री है भगनी है स्त्री माता है वही स्थूल रूप में नाम रूप वाली कि
न किसी प्रकार की पृथक पृथक रूप में प्रत्यक्ष प्रमाण से पंच कर्म और पंच ज्ञान रूप में दशरथ रूप नामसे
मरने और जीने वाली कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय हैं और इन्हीं का नाम दश अवतार है और इन्हीं का नाम दैत्य
और जराकाल है अर्थात प्रकाश रूप में काल ही काल और कलञ्जर नाम में काल का ग्रसने वाला
ही अकाल रूप नारायण अर्थात अमर ब्रह्म है कि जो कभी मरता है न जीता है और इसी का नाम अहंकार
चैतन्य है जो निष्कलङ्क रूप में सर्वत्र सर्व व्यापी मेरा एक ही नाम सर्व अन्तरयामी है इस प्रकार केवल
मैं एक अद्वैत रूप आत्मा निष्कलङ्क दशमावतार हूं आर्थात नित्य हूं और निरन्न जराकाल से अभय
अर्थात जीवण मरण से स्वतन्त्र और मोक्ष हूं निष्पाप हूं और जराकाल असुर का संहारने वाला मैं हूं
और उसी को अमर रूप से रखने वाला भी मैं आप हूं इसलिये मेरा नाम निष्कलङ्क कर्म परमात्मा है और
मैं जिस विधि से जराकाल अर्थात जीवण मरण को संहारता और अमर रखता हूं उसका भी केवल एक
ही कर्म और एक ही ज्ञान स्वरूप में ऐसा स्वरूप मेरा है कि जो कर्म ज्ञान स्वरूप में निष्कलङ्क परमात्मा कहा
जाता है और उसी का नाम ध्रुव धर्म मर्य्यादा स्वरूप में अगम वेद कहलाता है।

(४) अगम वेद क्या है निर्गम्य रूप में मेरा ही केवल निश्चल निष्कलङ्क स्वरूप है कि जो प्रत्यक्ष
प्रमाण में इस प्रकार का स्वरूप है।

ॐ हूं ॐ केवलः श्रीविक्रमादित्यः

005661

इतिः

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

472

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

474

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

Diamond Book Binding House
Moh Karachh B.H.E.L Road Jawalapur

9th

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

JAGRAT PRAKASH
403
G. K. U.

7248

1. Title Oṁkāra Darśana Arthāta Jāgrata Prakāśa
2. Accession No. 5661
3. Folio No./Pages 470
4. Lines 28-30
5. Size 32×20Cm.
6. Substance Paper
7. Script Devanāgarī
8. Language Hindī
9. Period Not mentioned
10. Beginning "जाग्रत प्रकाश अनुभव श्रुतिः ओ३म् अनाम् नमो राम अभ्रखं अम्बर गगन पूर्ण पूर्ण तत् ॥"
11. End "केवल निश्चल त्रिकालिक स्वरूप है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण में इस प्रकार का स्वरूप है ॥"
12. Colophon No
13. Illustrations No
14. Source Donated by Vijay Singh Jigyasu, Meerut city.
15. Subject Darśana

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Found